आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड की
आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीकृत भाषा टीका

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(प्रथम खण्ड)

गोम्मटसार जीवकाण्ड एवं उसकी भाषा टीका

सम्पादक :
ब्र० यशपाल जैन, एम. ए.

प्रकाशक :
साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग
श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रथम संस्करण : २२००
[७ मई, १९८९ अक्षय तृतीया]

मूल्य : चालीस रुपये मात्र
मुद्रक : श्री बालचन्द्र यन्त्रालय 'मानवाश्रम', जयपुर

प्रकाशकीय

आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड की आचार्यकल्प पण्डित प्रवर टोडरमलजी कृत भाषा टीका, जो सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका के नाम से विख्यात है, के प्रथम खण्ड का प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

दिगम्बराचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती करणानुयोग के महान आचार्य थे। गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार तथा द्रव्य-संग्रह ये महत्वपूर्ण कृतियाँ आपकी प्रमुख देन हैं। पण्डित प्रवर टोडरमलजी ने गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड तथा लब्धिसार और क्षपणासार की भाषा टीकाएँ पृथक्-पृथक् बनाई थीं। चूंकि ये चारों टीकाएँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित तथा सहायक थीं; अतः सुविधा की दृष्टि से उन्होंने उक्त चारों टीकाओं को मिलाकर एक ही ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत कर दिया तथा इस ग्रन्थ का नामकरण उन्होंने 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका किया। इस सम्बन्ध में टोडरमलजी स्वयं लिखते हैं—

या विधि गोम्मटसार, लब्धिसार ग्रन्थनिकी,
भिन्न-भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकैं।
इनिकै परस्पर सहायकपनौ देख्यौ,
तातैं एक कर दई हम तिनकौ मिलायकैं।।
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका धर्यो है याकौ नाम,
सोई होत है सफल ज्ञानानन्द उपजायकैं।
कलिकाल रजनीमें अर्थ को प्रकाश करै,
यातैं निज काज कीजैं इष्ट भाव भायकैं।।

इस ग्रन्थ की पीठिका के सम्बन्ध में मोक्षमार्ग प्रकाशक की प्रस्तावना लिखते हुए डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल लिखते हैं—

"सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखी गई है। प्रारंभ में इकहत्तर पृष्ठ की पीठिका है। आज नवीन शैली से सम्पादित ग्रन्थों में भूमिका का बड़ा महत्त्व माना जाता है। शैली के क्षेत्र में लगभग दो सौ बीस वर्ष पूर्व लिखी गई सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका आधुनिक भूमिका का आरंभिक रूप है। किन्तु भूमिका का आद्य रूप होने पर भी उसमें प्रौढ़ता पाई जाती है, उसमें हलकापन कहीं भी देखने को नहीं मिलता। इसके पढ़ने से ग्रन्थ का पूरा हार्द खुल जाता है एवं इस गूढ़ ग्रन्थ के पढ़ने में आने वाली पाठक की समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। हिन्दी आत्मकथा साहित्य में जो महत्त्व महाकवि पण्डित बनारसीदास के 'अर्द्धकथानक' को प्राप्त है, वही महत्त्व हिन्दी भूमिका साहित्य में सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका की पीठिका का है।"

इस ग्रन्थ का प्रकाशन बड़ा ही श्रम साध्य कार्य था, चूंकि प्रकाशन के लिए समाज का दबाव भी बहुत था; अतः इसे सम्पादित करने हेतु ब्र० यशपाल जी को तैयार किया गया। उन्होंने अथक परिश्रम कर इस गुरुतर भार को वहन किया, इसके लिए यह ट्रस्ट सदैव उनका ऋणी रहेगा।

पुस्तक का प्रकाशन इस विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने बखूबी सम्हाला है। अतः उनका आभार मानते हुए जिन महानुभावों ने इस ग्रन्थ की कीमत कम करने में आर्थिक सहयोग दिया है उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

इस ट्रस्ट के विषय में तो अधिक क्या कहूँ इसकी गतिविधियों से सारा समाज परिचित है ही; तीर्थ क्षेत्रों का जीर्णोद्धार एवं उनका सर्वेक्षण तो इस ट्रस्ट के माध्यम से हुआ ही है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जिसके माध्यम से सैकड़ों विद्वान जैन समाज को मिले हैं और निरन्तर मिल रहे हैं।

साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग के माध्यम से भी अनुकरणीय कार्य इस ट्रस्ट द्वारा हो रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द के पंचपरमागम समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ तथा पंचास्तिकाय जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन तो इस विभाग द्वारा हुआ ही है साथ ही—मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्ग प्रकाशक, श्रावकधर्म प्रकाशक, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, छहढाला, समयसार-नाटक, चिद्विलास आदि का भी प्रकाशन इस विभाग ने किया है। प्रचार कार्य को भी गति देने के लिए पांच विद्वान नियुक्त किये गए हैं जो गांव-गांव जाकर विभिन्न माध्यमों से तत्त्वप्रचार में रत हैं।

इस अनुपम ग्रन्थ के माध्यम से आप अपना आत्म कल्याण कर भव का अभाव करें ऐसी मंगल कामना के साथ—

— नेमीचन्द पाटनी

श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित महत्त्वपूर्ण साहित्य

१. समयसार	२०.०० रु.	१०. श्रावकधर्म प्रकाश	५.५० रु.
२. प्रवचनसार	१६.०० रु.	११. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय	६.०० रु.
३. नियमसार	१५.०० रु.	१२. चिद्विलास	२.५० रु.
४. अष्टपाहुड़	१६.०० रु.	१३. भक्तामर प्रवचन	४.५० रु.
५. पंचास्तिकाय संग्रह	१०.०० रु.	१४. वीतराग-विज्ञान भाग-४ (छहढाला प्रवचन)	५.०० रु.
६. मोक्षशास्त्र	२०.०० रु.		
७. मोक्षमार्ग प्रकाशक	१०.०० रु.	१५. ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव	१२.०० रु.
८. समयसार नाटक	१५.०० रु.	१६. युगपुरुष कानजी स्वामी	२.०० रु.
९. छहढाला	५.०० रु.		

सम्पादकीय

करणानुयोग के महान आचार्य श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने ग्यारहवीं शताब्दि में गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, लब्धिसार और क्षपणासार ग्रन्थों की रचना प्राकृत गाथाओं में की, जिस पर आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने अठारहवीं शताब्दि में ढूंढारी भाषा में "सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" नामक भाषा टीका लिखी है। त्रिलोकसार एवं सुप्रसिद्ध लघु ग्रन्थ द्रव्यसंग्रह भी आचार्य श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की ही रचनाएँ हैं।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका का प्रकाशन इससे पूर्व मात्र एक ही बार जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता से हुआ था, जो कि बहुत वर्षों से अनुपलब्ध है, इसलिए पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने इसका पुनर्प्रकाशन करके करणानुयोग के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शास्त्र की दीर्घकालीन सुरक्षा का उत्तम उपाय किया है। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की महिमा के सम्बन्ध में पण्डित टोडरमलजी के समकालीन स्वाध्यायशील ब्र० पण्डित राजमलजी ने अपने "चर्चा संग्रह" में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे द्रष्टव्य हैं :—

"सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की महिमा वचन अगोचर है, जो कोई जिन धर्म की महिमा और केवलज्ञान की महिमा जाणी चाहौ तो, या सिद्धान्त का अनुभव करो। घणी कहिवा करि कहा।"

इस ग्रन्थ की महिमा एवं विशेषता को समझने के लिए उपरोक्त विचार ही पर्याप्त है, अपनी ओर से और कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

संपूर्ण सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका का एकसाथ एक ही खण्ड में प्रकाशन करने से इसका आकार बहुत ही बड़ा हो जाता, जिससे स्वाध्याय में असुविधा हो सकती थी; इसलिए इसका तीन भागों में प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। उसमें से प्रस्तुत संस्करण में गोम्मटसार जीवकाण्ड की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका को प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित किया है।

इस ग्रन्थ के संपादन के लिए सर्वप्रथम हमने छह हस्तलिखित प्रतियों से इसका मिलान किया। मिलान करते समय हमारे सामने जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित और पं० गजाधरलाल जैन, न्यायतीर्थ एवं श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ द्वारा संपादित प्रति ही मूल आधार रही है। अन्य छह हस्तलिखित प्रतियों का विवरण इसप्रकार है:—

१. (अ) प्रति — श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर तेरह पंथियान, जयपुर (राज०)

काल — पण्डित टोडरमलजी की स्वहस्तलिखित विक्रम संवत् १८१० की प्रति के आधार से विक्रम संवत् १८६१ में लिखी हुई प्रति।

लिपिकार—अज्ञात (अक्षर सुन्दर व स्पष्ट है)

२. (ब) प्रति — श्री दिगम्बर जैन मन्दिर भदीचंदजी, जयपुर (राज०)

काल — अज्ञात

लिपिकार—अनेक लिपिकारों द्वारा लिखित एवं पण्डित टोडरमलजी द्वारा संशोधित प्रति।

३. (क) प्रति—श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, आदर्शनगर, जयपुर (राज०)

काल—विक्रम संवत् १८२६, आषाढ़ सुदी तीज, गुरुवार।

लिपिकार—गोविन्दराम।

४. (ख) प्रति—श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर, फिरोजाबाद (उ० प्र०)

काल—विक्रम संवत् १८१८

लिपिकार—अज्ञात।

५. (ग) प्रति—श्री दिगम्बर जैन मन्दिर संघीजी, जयपुर (राज०)

काल—विक्रम संवत् १९७०, माघ शुक्ला पंचमी।

लिपिकार—श्री जमनालाल शर्मा।

६. (घ) प्रति—श्री दिगम्बर जैन मन्दिर दीवान भदीचंदजी, जयपुर (राज०)

काल—विक्रम संवत् १८६१, पौष वदी बारस।

लिपिकार—श्री लालचन्द महात्मा देहा, श्री सीताराम के पठनार्थं।

इस ग्रंथ का संपादन करते समय हमने जिन बातों का ध्यान रखा है, उनका उल्लेख करना उचित होगा। वे बिन्दु इसप्रकार हैं :—

(१) छह हस्तलिखित प्रतियों से मिलान करते समय जहाँ पर भी परस्पर विरुद्ध कथन आये, उनमें से जो हमें शास्त्र सम्मत प्रतीत हुआ उसे ही मूल में रखा है और अन्य प्रतियों के कथन को फुटनोट में दिया है। और जहाँ निर्णय नहीं कर पाये हैं, वहाँ छपी हुई प्रति को ही मूल में रखकर अन्य प्रतियों का कथन फुटनोट में दिया है।

(२) पीठिका में विषयवस्तु के अनुसार सामान्य प्रकरण, गोम्मटसार (जीवकाण्ड संबंधी प्रकरण, गोम्मटसार कर्मकाण्ड संबंधी प्रकरण, लब्धिसार-क्षपणासार संबंधी प्रकरण – ये शीर्षक हमने अपनी तरफ से दिये हैं, मूल में नहीं।

(३) संपूर्ण ग्रंथ में स्वाध्याय की सुलभता के लिए विषयवस्तु के अनुसार बड़े-बड़े अनुच्छेदों (पैराग्राफों) को विभाजित करके छोटे-छोटे (पैराग्राफ) बनाये हैं। साथ ही टीका में समागत प्रश्नोत्तर अथवा शंका-समाधान भी अलग अनुच्छेद बनाकर दिये हैं।

(४) गाथा के विषय का प्रतिपादक शीर्षकात्मक वाक्य मूल टीका में गाथा के बाद टीका के साथ दिया है, लेकिन गाथा पढ़ने से पूर्व उसका विषय ध्यान में आये – इसीलिए उस वाक्य को हमने गाथा से पहले दिया है।

(५) मूल गाथा तो बड़े टाइप में दी ही है, साथ ही टीका में भी जहाँ पर संस्कृत या प्राकृत के कोई सूत्र अथवा गाथा, श्लोक आदि आये हैं, उनको भी ब्लेक टाइप में दिया है।

(६) गाथा का विषय जहाँ भी धवलादि ग्रंथों से मिलता है, उसका उल्लेख श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास से प्रकाशित गोम्मटसार जीवकाण्ड के आधार से फुटनोट में किया है।

अनेक जगह अलौकिक गणितादि के विषय अति सूक्ष्मता के कारण से हमारे भी समझ में नहीं आये हैं – ऐसे स्थानों पर मूल विषय यथावत ही दिया है; अपनी तरफ से अनुच्छेद भी नहीं बदले हैं।

सर्वप्रथम मैं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामन्त्री श्री नेमीचन्दजी पाटनी का हार्दिक आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रंथ के संपादन का कार्यभार मुझे देकर ऐसे महान ग्रंथ के सूक्ष्मता से अध्ययन का सुअवसर प्रदान किया।

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल का भी इस कार्य में पूरा सहयोग एवं महत्त्वपूर्ण सुझाव तथा मार्गदर्शन मिला है, इसलिए मैं उनका भी हार्दिक आभारी हूँ।

हस्तलिखित प्रतियों से मिलान करने का कार्य अतिशय कष्टसाध्य होता है। मैं तो हस्त-लिखित प्रति पढ़ने में पूर्ण समर्थ भी नहीं था। ऐसे कार्य में शांतस्वभावी स्वाध्यायप्रेमी साधर्मी भाई श्री सौभागमलजी बोहरा दूदूवाले, बापूनगर जयपुर का पूर्ण सहयोग रहा है। ग्रंथ के कुछ विशेष प्रकरण अनेक बार पुनः-पुनः देखने पड़ते थे, फिर भी आप आलस्य छोड़कर निरन्तर उत्साहित रहते थे। मुद्रण कार्य के समय भी आपने प्रत्येक पृष्ठ का शुद्धता की दृष्टि से अवलोकन किया है। एतदर्थ आपका जितना धन्यवाद दिया जाय, वह कम ही है। आशा है भविष्य में भी आपका सहयोग इसीप्रकार निरन्तर मिलता रहेगा। साथ ही ब्र० कमलाबेन जयपुर, श्रीमती शीलाबाई विदिशा एवं श्रीमती श्रीवती जैन दिल्ली का भी इस कार्य में सहयोग मिला है, अतः वे भी धन्यवाद की पात्र हैं।

गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड तथा लब्धिसार-क्षपणासार के "संदृष्टि अधिकार" का प्रकाशन पृथक् ही होगा। गणित सम्बन्धी इस क्लिष्ट कार्य का भार ब्र० बिमलाबेन ने अपने ऊपर लिया तथा शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी अत्यन्त परिश्रम से पूर्ण करके मेरे इस कार्य में अभूतपूर्व योगदान दिया है, इसलिए मैं उनका भी हार्दिक आभारी हूँ।

हस्तलिखित प्रतियाँ जिन मंदिरों से प्राप्त हुई हैं, उनके ट्रस्टियों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने ये प्रतियाँ उपलब्ध कराईं। इस कार्य में श्री विनयकुमार पापड़ीवाल तथा सागरमलजी बज (लल्लूजी) का भी सहयोग प्राप्त हुआ है, इसलिए वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में इस ग्रंथ का स्वाध्याय करके सभी जन सर्वज्ञता की महिमा से परिचित होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव का आश्रय लेवें एवं पूर्ण कल्याण करें – यही मेरी पवित्र भावना है।

— ब्र० यशपाल जैन

अक्षय तृतीया
७ मई, १९८९

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम कराने वाले दातारों की सूची

१.	श्रीमती विमला जैन, ध.प. श्री अरुणकुमारजी जैन	मुजफ्फरनगर	२००१.००
२.	श्रीमती भंवरीदेवी सुपुत्री स्व. श्री ताराचन्दजी गंगवाल	जयपुर	२०००.००
३.	श्रीमती शकुंतलादेवी ध.प. श्री विजयप्रतापजी जैन	कानपुर	१००१.००
४.	श्री के. सी. सोगानी	ब्यावर	१००१.००
५.	श्री छोटाभाई भीखाभाई मेहता	बम्बई	१००१.००
६.	श्रीमती प्यारीबाई ध.प. श्री माणकचन्दजी जैन	मुंगावली	१०००.००
७.	श्रीमती किरणकुमारी जैन	चण्डीगढ़	९००.००
८.	श्री दिगम्बर जैन मन्दिर	लवाण	६४१.००
९.	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल	कानपुर	५५१.००
१०.	श्री महिला मुमुक्षुमण्डल श्रीबुधु ब्याँ सिंघईजी का मन्दिर	सागर	५०५.००
११.	श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री घीसालालजी छाबड़ा	सीकर	५०१.००
१२.	श्रीमती बसंतीदेवी ध.प. श्री हुरकचन्दजी छाबड़ा	बम्बई	५०१.००
१३.	श्रीमती नारायणीदेवी ध.प. श्रीगुलाबचन्दजी रारा	दिल्ली	५०१.००
१४.	श्री हुलासमलजी कासलीवाल	कलकत्ता	५०१.००
१५.	श्री भैयालालजी वैद	उज्जैर	५०१.००
१६.	श्री प्रमोदकुमार विनोदकुमारजी जैन	हस्तिनापुर	५०१.००
१७.	श्री माणकचन्द माधोसिंहजी सांखला	जयपुर	५०१.००
१८.	श्री चतरसेन अमीतकुमारजी जैन	रुड़की	५०१.००
१९.	श्री सोहनलालजी जैन, जयपुर प्रिण्टर्स	जयपुर	५०१.००
२०.	श्री इन्दरचन्दजी विजयकुमारजी कौशल	छिन्दवाड़ा	५०१.००
२१.	श्रीमती सुमित्रा जैन ध.प. श्री नरेशचन्दजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२२.	श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री सुरेशचन्दजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२३.	श्रीमती त्रिशला जैन ध.प. श्री रमेशचन्दजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२४.	श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री अनिलकुमारजी जैन	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२५.	श्री राजेश जैन (टोनी)	मुजफ्फरनगर	५०१.००
२६.	श्री राजकुमारजी कासलीवाल	तिनसुखिया	५०१.००
२७.	श्रीमती धापूदेवी ध.प. स्व. श्री केसरीमलजी सेठी	नई दिल्ली	५०१.००
२८.	श्री अजितप्रसादजी जैन	दिल्ली	५०१.००
२९.	श्री सुमेरमलजी जैन	तिनसुखिया	५०१.००
३०.	श्री पूनमचन्द नेमचन्द जैन	बड़ौत	५०१.००
३१.	श्रीमती मोतीदेवी बण्डी ध.प. स्व. श्री उग्रसेनजी बण्डी	उदयपुर	५०१.००
			२११२२.००

३२.	श्री कपूरचन्द राजमल जैन एवं परिवार	लवाण	५०१.००
३३.	श्री छोटेलाल सतीशचन्दजी जैन	इटावा	५०१.००
३४.	श्रीमती रंगूबाई ध.प. श्री उम्मेदमलजी भण्डारी	सायला	५००.००
३५.	श्रीमती केसरदेवी ध.प. श्री जयनारायणजी जैन	फिरोजाबाद	५००.००
३६.	श्री सुहास वसंत मोहिरे	बेलगांव	५००.००
३७.	श्री वीरेन्द्रकुमार बालचन्द जैन	पारोला	५००.००
३८.	श्रीमती केसरदेवी भण्डी	उदयपुर	५००.००
३९.	श्री माणकचन्द प्रभुलालजी	कुरावड़	५००.००
४०.	श्रीमती रत्नप्रभा सुपुत्री स्व. श्री ताराचन्दजी गंगवाल	जयपुर	५००.००
४१.	श्री माणकचन्द प्रभुलालजी भगनोत	कुरावड़	५००.००
४२.	श्री नेमीचन्दजी जैन भगरोनी वाले	शिवपुरी	५००.००
४३.	स्व. श्रीमती कुसुमलता एवं सुनंद बंसल स्मृति निधि हस्ते डॉ. राजेन्द्र बंसल	अमलाई	१११.००
४४.	श्री जयन्ति भाई धनजी भाई दोशी	दादर बम्बई	१११.००
४५.	श्रीमती धुडीबाई खेमराज गिडिया	खैरागढ़	१०१.००
४६.	चौ० फूलचन्दजी जैन	बम्बई	१०१.००
४७.	फुटकर		५७७२.००
		योग	३२८२०.००

हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं। शब्द या अर्थ का वांचन या सीखना, सिखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारम्बार चर्चा करना इत्यादि अनेक अंग हैं-वहाँ जैसे बने तैसे अभ्यास करना। यदि सर्व शास्त्र का अभ्यास न बने तो इस शास्त्र में सुगम या दुर्गम अनेक अर्थों का निरूपण है, वहाँ जिसका बने उसका अभ्यास करना। परन्तु अभ्यास में आलसी न होना।

– पं० भागचन्द जी

विषय-सूची

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका पीठिका	**१–६८**
मंगलाचरण, सामान्य प्रकरण	१
प्रथमानुयोग पक्षपाती का निराकरण	५
चरणानुयोग पक्षपाती का निराकरण	६
द्रव्यानुयोग पक्षपाती का निराकरण	९
शब्दशास्त्र पक्षपाती का निराकरण	११
अर्थ पक्षपाती का निराकरण	१२
काम भोगादि पक्षपाती का निराकरण	१३
शास्त्राभ्यास की महिमा	१५
जीवकाण्ड संबंधी प्रकरण	१७–३०
कर्मकाण्ड संबंधी प्रकरण	३१–४०
अर्थसंदृष्टी प्रकरण	४६–४७
लब्धिसार, क्षपणासार संबंधी प्रकरण	४८–५४
परिकर्माष्टक संबन्धी प्रकरण	५५–६८
मंगलाचरण व प्रतिज्ञा	**६९–८६**
भाषा टीकाकार का मंगलाचरण	६९–७५
ग्रन्थकर्ता का मंगलाचरण व प्रतिज्ञा	७५–८१
बीस प्ररूपणाओं के नाम व सामान्य कथन	८१–८६
पहला अधिकार :	
गुणस्थान-प्ररूपणा	**८६–१७९**
गुणस्थान और तद् विषयक औदायिक भावों का कथन	८६–९१
मिथ्यात्व का स्वरूप	९१–९५
सासादन का स्वरूप	९५–९६
सम्यग्मिथ्यात्व का स्वरूप	९६–९८
असंयत का स्वरूप	९८–१०३
देशसंयत का स्वरूप	१०३–१०४
प्रमत्त का स्वरूप	१०४–१३२
अप्रमत्त का स्वरूप	१३२–१५३
अपूर्वकरण का स्वरूप	१५३–१५९
अनिवृत्तिकरण का स्वरूप	१५९–१६०
सूक्ष्मसांपराय का स्वरूप	१६०–१६७
उपशांतकषाय का स्वरूप	१६७–१६८
क्षीणकषाय का स्वरूप	१६८
सयोगकेवली का स्वरूप	१६८–१६९
अयोगकेवली का स्वरूप	१६९–१७६
सिद्ध का स्वरूप	१७६–१७९
दूसरा अधिकार :	
जीवसमास-प्ररूपणा	**१८०–२३४**
जीवसमास का लक्षण	१८०–१८२
जीवसमास के भेद	१८३–१९१
योनि अधिकार	१९१–१९८
अवगाहना अधिकार	१९८–२३४
तीसरा अधिकार :	
पर्याप्ति-प्ररूपणा	**२३५–२७६**
अलौकिक गणित	२३५–२६८
दृष्टांत द्वारा पर्याप्ति अपर्याप्ति का स्वरूप व भेद	२६८–२७०
पर्याप्ति, निवृत्ति अपर्याप्ति का स्वरूप	२७०–२७२
लब्धि अपर्याप्तक का स्वरूप	२७२–२७६
चौथा अधिकार :	
प्राण-प्ररूपणा	**२७७–२८०**
प्राण का लक्षण, भेद, उत्पत्ति की सामग्री, स्वामी तथा एकेन्द्रियादि जीवों के प्राणों का नियम	२७७–२८०
पांचवा अधिकार :	
संज्ञा-प्ररूपणा	**२८१–२८३**
संज्ञा का स्वरूप, भेद, आहारादि संज्ञा का स्वरूप तथा संज्ञाओं के स्वामी	२८१–२८३
छठवां अधिकार :	
गतिमार्गणा-प्ररूपणा	**२८४–३०८**
मंगलाचरण और मार्गणाधिकार के वर्णन की प्रतिज्ञा	२८४
मार्गणा शब्द की निरुक्ति का लक्षण	२८४

चौदह मार्गणाओं के नाम २९५
सांतरमार्गणा, उसका स्वरूप व संख्या २९५–२९७
नारकादि गतिमार्गणा का स्वरूप २९७–३००
सिद्धगति का स्वरूप ३०१
नारकी जीवों की संख्या का कथन ३०२–३०८

सातवां अधिकार :
इन्द्रिय मार्गणा प्ररूपणा ३०९–३२१

मंगलाचरण, इन्द्रिय शब्द की निरुक्ति, इन्द्रिय के भेद ३०९–३१२
एकेन्द्रियादि जीवों की इन्द्रिय-संख्या उनका विषय तथा क्षेत्र ३१३–३१७
इन्द्रिय रहित जीवों का स्वरूप ३१८
एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या ३१८–३२१

आठवां अधिकार :
कायमार्गणा-प्ररूपणा ३२२–३५२

मंगलाचरण, कायमार्गणा का स्वरूप व भेद ३२२
स्थावरकाय की उत्पत्ति का कारण ३२३
शरीर के भेद, लक्षण और संख्या ३२४–३२८
सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित जीवों का स्वरूप ३२८–३३०
साधारण वनस्पति का स्वरूप ३३०–३३७
त्रसकाय का प्ररूपण ३३७–३३८
वनस्पतिवत् अन्य जीवों के प्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठितपना ३३९
स्थावरकाय तथा त्रसकाय जीवों के शरीर का आकार ३३९–३४०
कायरहित-सिद्धों का स्वरूप ३४१
पृथ्वीकायिक आदि जीवों की संख्या ३४१–३५१

नवमां अधिकार :
योगमार्गणा-प्ररूपणा ३५२–४०५

योग का सामान्य लक्षण, योग का विशेष लक्षण, योग विशेषों का लक्षण ३५२–३५५
दस प्रकार के सत्य का उदाहरण-पूर्वक कथन ३५६–३५९
मन-वचन-योग के भेदों का कारण ३६०
सयोग केवली को मनोयोग की संभावना ३६१–३६२
काययोग का स्वरूप व भेद ३६३–३७०
योग रहित आत्मा का स्वरूप ३७०–३७१
शरीर में कर्म नोकर्म का भेद ३७१
औदारिकादि शरीर के समयप्रबद्ध की संख्या ३७२–३७४
विस्रसोपचय का स्वरूप ३७५–३७६
औदारिक पांच शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति ३७६–३८८
औदारिक समयप्रबद्ध का स्वरूप ३८८–३८९
औदारिकादि शरीर विषयक विशेष कथन ३८९–४००
योग मार्गणाओं में जीवों की संख्या ४०१–४०५

दसवां अधिकार :
वेदमार्गणा-प्ररूपणा ४०६–४१३

तीन वेद और उनके कारण व भेद ४०६–४०८
वेद रहित जीव ४०९–४१०
वेद की अपेक्षा जीवों की संख्या ४१०–४१३

ग्यारहवां अधिकार :
कषायमार्गणा प्ररूपणा ४१४–४३५

मंगलाचरण तथा कषाय के निरुक्तिसिद्ध लक्षण, शक्ति की अपेक्षा क्रोधादि के ४ भेद तथा दृष्टांत गतियों के प्रथम समय में क्रोधादि का नियम ४१४–४१९
कषाय रहित जीव ४१९–४२०
कषायों का स्थान ४२१–४३०
कषायस्थानों का यन्त्र, कषाय की अपेक्षा जीवसंख्या ४३०–४३५

बारहवां अधिकार :
ज्ञानमार्गणा-प्ररूपणा ४३६–५७१

ज्ञान का निरुक्तिसिद्ध सामान्य लक्षण, पांच ज्ञानों का क्षायोपशमिक क्षायिक-रूप से विभाग, मिथ्याज्ञान का कारण और स्वामी ४३६–४३८
मिश्रज्ञान का कारण और मनःपर्यय-ज्ञान का स्वामी, दृष्टांत द्वारा तीन

मिथ्याज्ञान का स्वरूप, मतिज्ञान का स्वरूप, उत्पत्ति आदि ४३८–४५०
श्रुतज्ञान का सामान्य लक्षण, भेद ४५०–४५१
पर्यायज्ञान, पर्यायसमास, अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ४५३–४८१
श्रुतनिबद्ध विषय का प्रमाण, अक्षर-समास, पदज्ञान, पद के अक्षरों का प्रमाण, प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान ४८१–४८४
अनेक प्रकार के श्रुतज्ञान का विस्तृत स्वरूप, अंगबाह्य श्रुत के भेद, अक्षरों का प्रमाण, अंगों व पूर्वों के पदों की संख्या, श्रुतज्ञान का माहात्म्य, अवधिज्ञान के भेद, ४८४–५२१
उसके स्वामी और स्वरूप, ५२१–५३६
अवधि का द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा वर्णन, अवधि का सबसे जघन्य द्रव्य ५३७–५५४
नरकादि में अवधि का क्षेत्र ५५४–५६०
मनःपर्ययज्ञान का स्वरूप, भेद, स्वामी और उसका द्रव्य ५६०–५६८
केवलज्ञान का स्वरूप, ज्ञानमार्गणा में जीवसंख्या ५६८–५७१

तेरहवां अधिकार :
संयममार्गणा-प्ररूपणा ५७२–५८०

संयम का स्वरूप और उसके पांच भेद, संयम की उत्पत्ति का कारण ५७२–५७४
देश संयम और असंयम का कारण, सामायिकादि ५ संयम का स्वरूप ५७४–५७७
देशविरत, इन्द्रियों के अट्ठाईस विषय, संयम की अपेक्षा जीवसंख्या ५७७–५८०

चौदहवां अधिकार :
दर्शनमार्गणा-प्ररूपणा ५८१–५८४

दर्शन का लक्षण, चक्षुदर्शन आदि ४ भेदों का क्रम से स्वरूप, दर्शन की अपेक्षा जीव संख्या ५८१–५८४

पंद्रहवां अधिकार :
लेश्यामार्गणा-प्ररूपणा ५८५–६४४

लेश्या का लक्षण, लेश्याओं के निर्देश आदि १६ अधिकार ५८५–५८६
निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामी, साधन, उद्देश्य लेश्या का कथन ५८६–६१०
संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व अपेक्षा लेश्या का कथन ६१०–६४३
लेश्या रहित जीव ६४३–६४४

सोलहवां अधिकार :
भव्यमार्गणा-प्ररूपणा ६४५–६५७

भव्य, अभव्य का स्वरूप, भव्यत्व अभव्यत्व से रहित जीव, भव्य मार्गणा में जीवसंख्या ६४५–६४६
पांच परिवर्तन ६४६–६५७

सत्तरहवां अधिकार :
सम्यक्त्वमार्गणा-प्ररूपणा ६५८–७२३

सम्यक्त्व का स्वरूप, सात अधिकारों के द्वारा छह द्रव्यों के निरूपण का निर्देश ६५८–६५९
नाम, उपलक्षण, स्थिति, क्षेत्र, संख्या, स्थानस्वरूप, फलाधिकार द्वारा छह द्रव्यों का निरूपण ६५९–७०१
पंचास्तिकाय, नवपदार्थ, गुणस्थान क्रम से जीवसंख्या, त्रैराशिक यन्त्र ७०२–७०७
क्षपकादि की युगपत् सम्भव विशेष संख्या, सर्व संयमियों की संख्या, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, उपशम सम्यक्त्व ७०८–७१९
पांच लब्धि, सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य जीव, सम्यक्त्वमार्गणा के दूसरे भेद, सम्यक्त्वमार्गणा में जीवसंख्या ७१९–७२३

अठारहवां अधिकार :
संज्ञीमार्गणा-प्ररूपणा ७२४–७२५

संज्ञी, असंज्ञी का स्वरूप, संज्ञी असंज्ञी की परीक्षा के चिन्ह ७२४
संज्ञी मार्गणा में जीवसंख्या ७२५

उन्नीसवां अधिकार :	
आहारमार्गणा-प्ररूपणा	**७२६–७२९**
आहार का स्वरूप, आहारक अनाहारक भेद, समुद्घात के भेद, समुद्घात का स्वरूप	७२६–७२७
आहारक और अनाहारक का काल प्रमाण, आहारमार्गणा में जीवसंख्या	७२८–७२९
बीसवां अधिकार :	
उपयोग-प्ररूपणा	**७३०–७३२**
उपयोग का स्वरूप, भेद तथा उत्तर भेद, साकार अनाकार उपयोग की विशेषता उपयोगाधिकार में जीवसंख्या	७३०–७३२
इक्कीसवां अधिकार :	
अन्तर्भावाधिकार	**७३३–७५०**
गुणस्थान और मार्गणा में शेष प्ररूपणाओं का अन्तर्भाव, मार्गणाओं में जीवसमासादि	७३३–७४१
गुणस्थानों में जीवसमासादि मार्गणाओं में जीवसमास	७४१–७५०
बाईसवां अधिकार :	
आलापाधिकार	**७५१–८५८**
नमस्कार और आलापाधिकार के कहने की प्रतिज्ञा	७५१
गुणस्थान और मार्गणाओं के आलापों की संख्या, गुणस्थानों में आलाप, जीवसमास की विशेषता, बीस भेदों की योजना, आवश्यक नियम	७५१–७६६
यंत्र रचना	७६७–८५५
गुणस्थानातीत सिद्धों का स्वरूप, बीस भेदों के जानने का उपाय, अन्तिम आशीर्वाद,	८५५–८५८

विषयजनित जो सुख है वह दुःख ही है क्योंकि विषय-सुख परनिमित्त से होता है, पूर्व और पश्चात् तुरन्त ही आकुलता सहित है और जिसके नाश होने के अनेक कारण मिलते ही हैं, आगामी नरकादि दुर्गति प्राप्त करानेवाला है····ऐसा होने पर भी वह तेरी चाह अनुसार मिलता ही नहीं, पूर्व पुण्य से होता है, इसलिए विषम है। जैसे खाज से पीड़ित पुरुष अपने अंग को कठोर वस्तु से खुजाते हैं वैसे ही इन्द्रियों से पीड़ित जीव उनकी पीड़ा सही न जाय तब किंचितमात्र जिनमें पीड़ा का प्रतिकार सा भासे ऐसे जो विषयसुख उनमें झपापात करते हैं, वह परमार्थ रूप सुख नहीं, और शास्त्राभ्यास करने से जो सम्यग्ज्ञान हुआ उससे उत्पन्न आनन्द, वह सच्चा सुख है। जिससे वह सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, किसी द्वारा नष्ट नहीं होता, मोक्ष का कारण है, विषम नहीं है। जिस प्रकार खाज की पीड़ा नहीं होती तो सहज ही सुखी होता, उसी प्रकार वहाँ इन्द्रिय पीड़ने के लिए समर्थ नहीं होती तब सहज ही सुख को प्राप्त होता है। इसलिए विषयसुख को छोड़कर शास्त्राभ्यास करना, यदि सर्वथा न छूटे तो जितना हो सके उतना छोड़कर शास्त्राभ्यास में तत्पर रहना।

इसी ग्रन्थ से अनुदित, पृष्ठ — १३ व १४

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीकृत

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका
पीठिका

॥ मंगलाचरण ॥

वंदौं ज्ञानानंदकर, नेमिचन्द गुणकंद ।
माधव वंदित विमलपद, पुण्यपयोनिधि नंद ॥ १ ॥
दोष दहन गुन गहन घन, अरि करि हरि अरहंत ।
स्वानुभूति रमनी रमन, जगनायक जयवंत ॥ २ ॥
सिद्ध सुद्ध साधित सहज, स्वरससुधारसधार ।
समयसार शिव सर्वगत, नमत होहु सुखकार ॥ ३ ॥
जैनी वानी विविध विधि, वरनत विश्वप्रमान ।
स्यात्पद-मुद्रित अहित-हर, करहु सकल कल्यान ॥ ४ ॥
मैं नमो नगन जैन जन, ज्ञान-ध्यान धन लीन ।
मैन मान बिन दान घन, एन हीन तन छीन ॥ ५ ॥[1]
इहविधि मंगल करन तैं, सबविधि मंगल होत ।
होत उदंगल दूरि सब, तम ज्यौं भानु उदोत ॥ ६ ॥

सामान्य प्रकरण

अथ मंगलाचरण करि श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ, ताकी देशभाषामयी टीका करने का उद्यम करौं हौं। सो यहु ग्रंथसमुद्र तौ ऐसा है जो सातिशय बुद्धि-बल संयुक्त जीवनि करि भी जाका अवगाहन होना दुर्लभ है। अर मैं मंदबुद्धि अर्थ प्रकाशनेरूप याकी टीका करनी विचारौं हौं।

सो यहु विचार ऐसा भया जैसैं कोऊ अपने मुख तैं जिनेंद्रदेव का सर्व गुण वर्णन किया चाहै, सो कैसैं बनै ?

इहां कोऊ कहै – नाहीं बनै है तो उद्यम काहे कौं करौ हौ ?

ताकौं कहिये है – जैसैं जिनेंद्रदेव के सर्व गुण कहने की सामर्थ्य नाहीं, तथापि भक्त पुरुष भक्ति के वश तैं अपनी बुद्धि अनुसार गुण वर्णन करै, तैसैं इस ग्रंथ का संपूर्ण अर्थ प्रकाशने की सामर्थ्य नाहीं। तथापि अनुराग के वश तैं मैं अपनी बुद्धि अनुसार (गुण)[2] अर्थ प्रकाशौंगा।

---
१. यह चित्रालंकारयुक्त है।
२. गुण शब्द घ प्रति में मिला।

बहुरि कोऊ कहै कि – अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रंथाभ्यास करो, मंदबुद्धिनि कौं टीका करने का अधिकारी होना युक्त नाहीं।

ताकौं कहिये है – जैसैं किसी शिष्यशाला विषैं बहुत बालक पढैं हैं। तिनिविषैं कोऊ बालक विशेष ज्ञान रहित है, तथापि अन्य बालकनि तैं अधिक पढ्या है, सो आपतैं थोरे पढने वाले बालकनि कौं अपने समान ज्ञान होने के अर्थि किछू लिखि देना आदि कार्य का अधिकारी हो है। तैसैं मेरे विशेष ज्ञान नाहीं, तथापि काल दोष तैं मोतैं भी मंदबुद्धि हैं, अर होंहिगे। तिनिकैं मेरे समान इस ग्रंथ का ज्ञान होने के अर्थि टीका करने का अधिकारी भया हौं।

बहुरि कोऊ कहै कि – यहु कार्य करना तो विचार्या, परन्तु जैसैं छोटा मनुष्य बड़ा कार्य करना विचारै, तहां उस कार्य विषैं चूक होई ही, तहां वह हास्य कौं पावै है। तैसैं तुम भी मंदबुद्धि होय, इस ग्रंथ की टीका करनी विचारौ हौं सो चूक होइगी, तहां हास्य कौं पावोगे।

ताकौं कहिये है – यहु तौ सत्य है कि मैं मंदबुद्धि होइ ऐसैं महान ग्रंथ की टीका करनी विचारौं हौं, सो चूक तौ होइ, परन्तु सज्जन हास्य नाहीं करेंगे। जैसैं औरनि तैं अधिक पढ्या बालक कहीं भूलै तब बड़े ऐसा विचारै हैं कि बालक है, भूलै ही भूलै, परंतु और बालकनि तैं भला है, ऐसैं विचारि हास्य नाहीं करै हैं। तैसैं मैं इहां कहीं भूलौंगा तहां सज्जन पुरुष ऐसा विचारैंगे कि मंदबुद्धि था, सो भूलै ही भूलै, परंतु केतेइक अतिमंदबुद्धीनि तैं भला है, ऐसैं विचारि हास्य न करेंगे।

सज्जन तौ हास्य न करेंगे, परन्तु दुर्जन तौ हास्य करेंगे ?

ताकौं कहिये है कि – दुष्ट तौ ऐसैं ही हैं, जिनके हृदय विषैं औरनि के निर्दोष भले गुण भी विपरीतरूप ही भासैं। सो उनका भय करि जामैं अपना हित होय ऐसे कार्य कौं कौन न करैगा ?

बहुरि कोऊ कहै कि – पूर्व ग्रंथ थे ही, तिनिका अभ्यास करने-करावने तैं ही हित हो है, मंदबुद्धिनि करि ग्रंथ की टीका करने की महंतता काहेकौं प्रगट कीजिये ?

ताकौं कहिये है कि – ग्रंथ अभ्यास करने तैं ग्रंथ की टीका रचना करने विषैं उपयोग विशेष लागै है, अर्थ भी विशेष प्रतिभासै है। बहुरि अन्य जीवनि कौं ग्रंथ अभ्यास करावने का संयोग होना दुर्लभ है। अर संयोग होइ तौ कोई ही जीव कैं अभ्यास होइ। अर ग्रंथ की टीका बनै तौ परंपरा अनेक जीवनि कैं अर्थ का ज्ञान होइ। तातैं अपना अर अन्य जीवनि का विशेष हित होने के अर्थि टीका करिये है, महंतता का तौ किछू प्रयोजन नाहीं।

बहुरि कोऊ कहै कि इस कार्य विषैं विशेष हित हो है सो सत्य, परंतु मंदबुद्धि तैं कहीं भूलि करि अन्यथा अर्थ लिखिए, तहां महत् पाप उपजने तैं अहित भी तो होइ ?

ताकौं कहिए है – यथार्थ सर्व पदार्थनि का ज्ञाता तौ केवली भगवान हैं । औरनि कैं ज्ञानावरण का क्षयोपशम के अनुसारि ज्ञान है, तिनिकौं कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभासै, परंतु जिनदेव का ऐसा उपदेश है – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनि के वचन की प्रतीति करि वा हठ करि वा क्रोध, मान, माया, लोभ करि वा हास्य, भयादिक करि जो अन्यथा श्रद्धान करै वा उपदेश देइ, सो महापापी है । अर विशेष ज्ञानवान गुरु के निमित्त बिना, वा अपने विशेष क्षयोपशम बिना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासै अर यहु ऐसा जानै कि जिनदेव का उपदेश ऐसैं ही है, ऐसा जानि कोई सूक्ष्म अर्थ कौं अन्यथा श्रद्धै है वा उपदेश दे तौ याकौं महत् पाप न होइ । सोइ इस ग्रंथ विषैं भी आचार्य करि कह्या है –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।

सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥ जीवकांड ॥

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम विशेष ज्ञानी तैं ग्रंथ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करि टीका करने का प्रारंभ क्यों न कीया ?

ताकौं कहिये है – काल दोष तैं केवली, श्रुतकेवली का तौ इहां अभाव ही भया । बहुरि विशेष ज्ञानी भी विरले पाइए । जो कोई है तौ दूरि क्षेत्र विषैं है, तिनिका संयोग दुर्लभ । अर आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि तुच्छ रहि गए । तातैं जो बन्या सो अर्थ का निर्णय कीया, अवशेष जैसैं है तैसैं प्रमाण हैं ।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम कही सो सत्य, परंतु इस ग्रंथ विषैं जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का किछू उपाय भी है ?

ताकौं कहिये है – एक उपाय यहु कीजिए है – जो विशेष ज्ञानवान पुरुषनि का प्रत्यक्ष तौ संयोग नाहीं, तातैं परोक्ष ही तिनिस्यों ऐसी बीनती करौ हौं कि मैं मंद बुद्धि हौं, विशेषज्ञान रहित हौं, अविवेकी हौं, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रंथनि का विशेष अभ्यास मेरे नाहीं है, तातैं शक्तिहीन हौं, तथापि धर्मानुराग के वश तैं टीका करने का विचार कीया, सो या विषैं जहां-जहां चूक होइ, अन्यथा अर्थ होइ, तहां-तहां मेरे ऊपरि क्षमा करि तिस अन्यथा अर्थ कौं दूरि करि यथार्थ अर्थ लिखना । ऐसैं विनती करि जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का उपाय कीया है ।

बहुरि कोऊ कहै कि तुम टीका करनी विचारी सो तौ भला कीया, परंतु ऐसे महान ग्रंथनि की टीका संस्कृत ही चाहिये । भाषा विषैं याकी गंभीरता भासै नाहीं ।

शास्त्र विषें कथन कहीं सामान्य है, कहीं विशेष है, कहीं सुगम है, कहीं कठिन है; तहां जो सर्व अभ्यास बनै तौ नीकै ही है, अर जो न बनै तौ अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बनै तैसा ही अभ्यास करौ । अपने उपाय में आलस्य करना नाहीं ।

बहुरि तैं कह्या – प्रथमानुयोग संबंधी कथादिक सुनें पाप तें डरै हैं, अर धर्मानुरागरूप हो हैं ।

सो तहां तौ दोऊ कार्य शिथिलता लीए हो हैं । इहां पाप-पुण्य के कारणकार्यादिक विशेष जानने तैं ते दोऊ कार्य दृढता लिए हो हैं । तातैं याका अभ्यास करना । ऐसें प्रथमानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषें सन्मुख कीया ।

अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषें कह्या जीव-कर्म का स्वरूप, सो जैसें है तैसें है ही, तिनिकौं जानें कहा सिद्धि हो है ? जो हिंसादिक का त्याग करि व्रत पालिए, वा उपवासादि तप करिए, वा अरहंतादिक की पूजा, नामस्मरण आदि भक्ति करिए, वा दान दीजिए, वा विषयादिक स्यौं उदासीन हूजै इत्यादि शुभ कार्य करिए तो आत्महित होइ । तातैं इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना ।

ताकौं कहिए है – हे स्थूलबुद्धि ! तैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे, ते करने योग्य ही हैं । परंतु ते सर्व सम्यक्त्व बिना असैं है जैसैं अंक बिना बिंदी । अर जीवादिक का स्वरूप जानें बिना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसे बांझ का पुत्र । तातैं जीवादिक जानने के अर्थि इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना । बहुरि तैं जैसें व्रतादिक शुभ कार्य कहे अर तिनितैं पुण्यबंध हो है । तैसें जीवादिक का स्वरूप जाननेरूप ज्ञानाभ्यास है, सो प्रधान शुभ कार्य है । यातैं सातिशय पुण्य का बंध हो है । बहुरि तिन व्रतादिकनि विषें भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है, सो कहिए है–

जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवादिक के विशेष जानै, पीछैं यथार्थ ज्ञान करि हिंसादिक कौं त्यागि व्रत धारै, सोई व्रती है । बहुरि जीवादिक के विशेष जानें बिना कथंचित् हिंसादिक का त्याग तैं आपकौं व्रती मानै, सो व्रती नाहीं । तातैं व्रत पालने विषें ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि तप दोय प्रकार है – एक बहिरंग, एक अंतरंग । तहां जाकरि शरीर का दमन होइ, सो बहिरंग तप है, अर जातैं मन का दमन होइ, सो अंतरंग तप है । इनि विषें बहिरंग तप तें अंतरंग तप उत्कृष्ट है । सो उपवासादिक तौ बहिरंग तप है । ज्ञानाभ्यास अंतरंग तप है । सिद्धांत विषें भी छह प्रकार अंतरंग तपनि विषें चौथा स्वाध्याय नाम तप कह्या है । तिसतैं

उत्कृष्ट व्युत्सर्ग अर ध्यान ही है । तातैं तप करने विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । बहुरि जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिकनि का स्वरूप जानैं ही अरहंतादिकनि का स्वरूप नीकै पहिचानिए है, वा अपनी अवस्था पहिचानिए है। ऐसी पहिचानि भए जो तीव्र अंतरंग भक्ति प्रकट हो है, सोई बहुत कार्यकारी है । बहुरि जो कुलक्रमादिक तैं भक्ति हो है, सो किंचिन्मात्र ही फल की दाता है । तातैं भक्ति विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि दान चार प्रकार है – तिनिविषैं आहारदान, औषधदान, अभयदान तौ तात्कालिक क्षुधा के दुःख कौं वा रोग के दुःख कौं, वा मरणादि भय के दुःख ही कौं दूर करै है । **अर ज्ञानदान है सो अनंत भव संतान संबंधी दुःख दूर करने कौं कारण है ।** तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकनि कैं भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है । तातैं ज्ञानदान उत्कृष्ट है, सो अपनैं ज्ञानाभ्यास होइ तौ अपना भला करै, अर अन्य जीवनि कौं ज्ञानदान देवै । ज्ञानाभ्यास बिना ज्ञानदान देना कैसैं होइ ? तातैं दान विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि जैसैं जन्म तैं ही कोई पुरुष ठिगनि के घर गए – तहां तिन ठिगनि कौं अपने मानै हैं । बहुरि कदाचित् कोऊ पुरुष किसी निमित्त स्यों अपने कुल का वा ठिगनि का यथार्थ ज्ञान होतैं तैं ठिगनि स्यों अंतरंग विषैं उदासीन भया, तिनिकौं पर जानि संबंध छुड़ाया चाहै है । बाह्य जैसा निमित्त है तैसा प्रवर्त्तै है । बहुरि कोऊ पुरुष तिन ठिगनि कौं अपना ही जानै है अर किसी कारण तैं कोऊ ठिग स्यों अनुरागरूप प्रवर्तै है । कोई ठिग स्यों लड़ि करि उदासीन भया आहारादिक का त्यागी होइ है ।

तैसैं अनादि तैं सर्व जीव संसार विषैं प्राप्त हैं, तहां कर्मनि कौं अपने मानै हैं । बहुरि कोइ जीव किसी निमित्त स्यों जीव का अर कर्म का यथार्थ ज्ञान होतैं तैं कर्मनि स्यों उदासीन भया, तिनिकौं पर जानने लगा, तिनस्यों संबंध छुड़ाया चाहै है । बाह्य जैसै निमित्त है तैसैं वर्त्तै है। ऐसैं जो ज्ञानाभ्यास तैं उदासीनता होइ सोई कार्यकारी है । बहुरि कोई जीव तिन कर्मनि कौं अपने जानै है । अर किसी कारण तैं कोई शुभ कर्म स्यों अनुराग रूप प्रवर्तै है । कोई अशुभ कर्म स्यों दुःख का कारण जानि उदासीन भया विषयादिक का त्यागी हो है । ऐसैं ज्ञान बिना जो उदासीनता होइ सो पुण्यफल की दाता है, मोक्ष कार्य कौं न साधै है । तातैं उदासीनता विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । याही प्रकार अन्य भी शुभ कार्यनि विषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना । देखो ! महामुनीनि कैं भी ध्यान-अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं । तातैं शास्त्र अध्ययन तैं जीव-कर्म का स्वरूप जानि स्वरूप का ध्यान करना ।

बहुरि इहां कोऊ तर्क करै कि – कोई जीव शास्त्र अध्ययन तौ बहुत करै है। अर विषयादिक का त्यागी न हो है, ताकैं शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है कि नाहीं ? जो है तौ महंत पुरुष काहेकौं विषयादिक तजैं, अर नाहीं है तो ज्ञानाभ्यास का महिमा कहां रह्या ?

ताका समाधान – शास्त्राभ्यासी दोय प्रकार हैं, एक लोभार्थी, एक धर्मार्थी। तहां जो अंतरंग अनुराग बिना-ख्याति-पूजा-लाभादिक के अर्थि शास्त्राभ्यास करै, सो लोभार्थी है, सो विषयादिक का त्याग नाहीं करै है। अथवा ख्याति, पूजा, लाभादिक कै अर्थि विषयादिक का त्याग भी करै है, तौ भी ताका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नाहीं।

बहुरि जो अंतरंग अनुराग तैं आत्म हित के अर्थि शास्त्राभ्यास करै है, सो धर्मार्थी है। सो प्रथम तौ जैन शास्त्र ऐसे हैं जिनका धर्मार्थी होइ अभ्यास करै, सो विषयादिक का त्याग करै ही करै। ताकै तौ ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही। बहुरि कदाचित् पूर्वकर्म का उदय की प्रबलता तैं न्यायरूप विषयादिक का त्याग न बनै है तौ भी ताकैं सम्यग्दर्शन, ज्ञान के होने तैं ज्ञानाभ्यास कार्यकारी हो है। जैसैं असंयत गुणस्थान विषैं विषयादिक का त्याग बिना भी मोक्षमार्गपना संभवै है।

इहां प्रश्न – जो धर्मार्थी होइ जैन शास्त्र अभ्यासै, ताकै विषयादिक का त्याग न होइ सो यहु तौ बनै नाहीं। जातैं विषयादिक के सेवन परिणामनि तैं हो है, परिणाम स्वाधीन हैं।

तहाँ समाधान – परिणाम ही दोय प्रकार है। एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक। तहां अपने अभिप्राय के अनुसारि होइ सो बुद्धिपूर्वक। अर दैव – निमित्त तैं अपने अभिप्राय तैं अन्यथा होइ सो अबुद्धिपूर्वक। जैसैं सामायिक करतैं धर्मात्मा का अभिप्राय ऐसा है कि मैं मेरे परिणाम शुभरूप राखौं। तहां जो शुभपरिणाम ही होइ सो तौ बुद्धिपूर्वक। अर कर्मोदय तैं स्वयमेव अशुभ परिणाम होइ, सो अबुद्धिपूर्वक जानने। तैसैं धर्मार्थी होइ जो जैन शास्त्र अभ्यासै है ताको अभिप्राय तौ विषयादिक का त्याग रूप वीतराग भाव का ही होइ, तहां वीतराग भाव होइ, सौ बुद्धिपूर्वक है। अर चारित्रमोह के उदय तैं सराग भाव होइ तौ अबुद्धिपूर्वक है। तातैं बिना वश जे सरागभाव हो हैं, तिनकरि ताकैं विषयादिक की प्रवृत्ति देखिये है। जातैं बाह्य प्रवृत्ति को कारण परिणाम है।

इहां तर्क – जो ऐसैं है तो हम भी विषयादिक सेवैंगे अर कहेंगे – हमारे उदयाधीन कार्य हो है।

ताकौं कहिये है – रे मूर्ख ! किछु कहने तैं तौ होता नाहीं ! सिद्धि तौ अभिप्राय के अनुसारि है। तातैं जैन शास्त्र के अभ्यास तैं अपना अभिप्राय कौं सम्यक्‌रूप करना। अर अंतरंग विषैं विषयादिक सेवन का अभिप्राय होतैं तौ धर्मार्थी नाम पावै नाहीं।

ऐसैं चरणानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषैं जीव के गुणस्थानादिक रूप विशेष अर कर्म के विशेष वर्णन किए, तिनकौं जानैं अनेक विकल्प तरंग उठै, अर किछू सिद्धि नाहीं। तातैं अपने शुद्धस्वरूप कौं अनुभवना वा अपना अर पर का भेदविज्ञान करना – इतना ही कार्यकारी है। अथवा इनके उपदेशक जे अध्यात्मशास्त्र, तिनका ही अभ्यास करना योग्य है।

ताकौं कहिये है – हे सूक्ष्माभासबुद्धि ! तैं कह्या सो सत्य, परंतु अपनी अवस्था देखनी। जो स्वरूपानुभव विषैं वा भेदविज्ञान विषैं उपयोग निरंतर रहै, तौ काहेकौं अन्य विकल्प करने। तहां ही स्वरूपानंदसुधारस का स्वादी होइ संतुष्ट होना। परन्तु नीचली अवस्था विषैं तहां निरन्तर उपयोग रहै नाहीं। उपयोग अनेक अवलंबनि कौं चाहै है। तातैं जिस काल तहां उपयोग न लागै, तब गुणस्थानादि विशेष जाननें का अभ्यास करना।

बहुरि तैं कह्या कि - अध्यात्मशास्त्रनि का ही अभ्यास करना, सो युक्त ही है। परन्तु तहां भेदविज्ञान करने के अर्थि स्व-पर का सामान्यपनैं स्वरूप निरूपण है। अर विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पष्ट होइ नाहीं। तातैं जीव के अर कर्म के विशेष नीकैं जानैं ही स्व-पर का जानना स्पष्ट हो है। तिस विशेष जानने कौं इस शास्त्र का अभ्यास करना। जातैं सामान्य शास्त्र तैं विशेष शास्त्र बलवान है। सो ही कह्या है– **"सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।"**

इहां वह कहै है कि – अध्यात्मशास्त्रनि विषैं तौ गुणस्थानादि विशेषनिकरि रहित शुद्धस्वरूप का अनुभवना उपादेय कह्या है। इहां गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है। तातैं अध्यात्मशास्त्र अर इस शास्त्र विषैं तौ विरुद्ध भासै है, सो कैसैं है ?

ताकौं कहिये है नय दोय प्रकार है – एक निश्चय, एक व्यवहार। तहां निश्चयनय करि जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद वस्तु मात्र ही है। अर व्यवहार-नय करि गुणस्थानादि विशेष संयुक्त अनेक प्रकार है। तहां जे जीव सर्वोत्कृष्ट, अभेद, एक स्वभाव कौं अनुभवै हैं, तिनकौं तौ तहां शुद्ध उपदेश रूप जो शुद्ध निश्चयनय सो ही कार्यकारी है।

बहुरि जे स्वानुभव दशा कौं न प्राप्त भए, वा स्वानुभवदशा तें छूटि सविकल्प दशा कौं प्राप्त भए ऐसे अनुत्कृष्ट जो अशुद्ध स्वभाव, तिहि विषैं तिष्ठते जीव, तिनकौं व्यवहारनय प्रयोजनवान है। सोई आत्मख्याति अध्यात्मशास्त्र विषैं कह्या है—

सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे ॥ [१]

इस सूत्र की व्याख्या का अर्थ विचारि देखना।

बहुरि सुनि ! तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा विषैं तौ प्रवर्तें नाहीं। अर विकल्प जानि गुणस्थानादि भेदनि का विचार न करैगा तौ तू इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होय अशुभोपयोग ही (विषैं) प्रवर्त्तैगा, तहां तेरा बुरा होयगा।

बहुरि सुनि ! सामान्यपनैं तौ वेदांत आदि शास्त्राभासनि विषैं भी जीव का स्वरूप शुद्ध कहैं हैं, तहां विशेष जानैं बिना यथार्थ-अयथार्थ का निश्चय कैसें होय ? तातैं गुणस्थानादि विशेष जानें जीव की शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र अवस्था का ज्ञान होइ, तब निर्णय करि यथार्थ का अंगीकार करै। **बहुरि सुनि ! जीव का गुण ज्ञान है, सो विशेष जानैं आत्मगुण प्रकट होइ, अपना श्रद्धान भी दृढ़ होय। जैसें सम्यक्त्व है, सो केवलज्ञान भए परमावगाढ नाम पावै है।** तातैं विशेष जानना।

बहुरि **वह कहै है** — तुम कह्या सो सत्य, परंतु करणानुयोग तैं विशेष जानैं भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान बिना संसारी ही रहै। अर अध्यात्म अनुसारि तिर्यंचादिक कैं स्तोक श्रद्धान तैं भी सम्यक्त्व हो है। वा तुषमाष भिन्न इतना ही श्रद्धान तैं शिवभूति मुनि मुक्त भया। तातैं हमारी तो बुद्धि तैं विशेष विकल्पनि का साधन होता नाहीं। प्रयोजनमात्र अध्यात्म अभ्यास करेंगे।

याकौं कहिये है — जो द्रव्यलिंगी जैसें करणानुयोग तैं विशेष जानैं है, तैसें अध्यात्म-शास्त्रनि का भी ज्ञान वाकैं होय, परंतु मिथ्यात्व के उदय तैं अयथार्थ साधन करै तौ शास्त्र कहा करै ? शास्त्रनि विषैं तौ परस्पर विरुद्ध है नाहीं। कैसैं ? सो कहिये है — करणानुयोगशास्त्रनि विषैं भी अर अध्यात्मशास्त्रनि विषैं भी रागादिक भाव आत्मा के कर्म निमित्त तैं उपजे कहे। द्रव्यलिंगी तिनका आप कर्त्ता हुवा प्रवर्तै है। बहुरि शरीराश्रित सर्व शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कही। द्रव्यलिंगी अपनी जानि तिनविषैं त्यजन, ग्रहण बुद्धि करै है। बहुरि सर्व ही शुभाशुभ भाव, आस्रव बंध के कारण कहे। द्रव्यलिंगी शुभभावन को संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण मानै है। बहुरि

---

१. समयसार, गाथा १२

शुद्धभाव संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण कह्या, ताकौं द्रव्यलिंगी पहिचानै ही नाहीं। बहुरि शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष कह्या, ताका द्रव्यलिंगी के यथार्थ ज्ञान नाहीं। ऐसैं अन्यथा साधन करै तौ शास्त्रनि का कहा दोष है ?

बहुरि तैं तिर्यंचादिक कैं सामान्य श्रद्धान तैं कार्यसिद्धि कही, सो उनकैं भी अपना क्षयोपशम अनुसारि विशेष का जानना हो है। अथवा पूर्व पर्यायनि विषैं विशेष का अभ्यास कीया था, तिस संस्कार के बल तैं हो है। बहुरि जैसैं काहूनै कहीं गड्या धन पाया, सो हम भी ऐसैं ही पावैंगे, ऐसा मानि सब ही कौं व्यापारादिक का त्यजन न करना। तैसैं काहूनैं स्तोक श्रद्धान तैं ही कार्य सिद्ध किया तौ हम भी ऐसैं ही कार्य सिद्धि करैंगे – ऐसैं मानि सर्व ही कौं विशेष अभ्यास का त्यजन करना योग्य नाहीं, जातैं यहु राजमार्ग नाहीं। **राजमार्ग तौ यहु ही है – नानाप्रकार विशेष जानि तत्त्वनि का निर्णय भए ही कार्यसिद्धि हो है।**

बहुरि तैं कह्या, मेरी बुद्धि तैं विकल्पसाधन होता नाहीं, सो जैसा बनैं तैसा ही अभ्यास कर। बहुरि तू पापकार्य विषैं तौ प्रवीण, अर इस अभ्यास विषैं कहै मेरी बुद्धि नाहीं, सो यहु तौ पापी का लक्षण है।

ऐसैं द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया। अब अन्य विपरीत विचारवालों कौं समझाइए है।

तहां शब्द-शास्त्रादिक का पक्षपाती बोलै है कि – व्याकरण, न्याय, कोश, छंद, अलंकार, काव्यादिक ग्रंथनि का अभ्यास करिए तौ अनेक ग्रंथनि का स्वयमेव ज्ञान होय वा पंडितपना प्रगट होय। अर इस शास्त्र के अभ्यास तैं तौ एक याही का ज्ञान होय वा पंडितपना विशेष प्रकट न होय, तातैं शब्द-शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

ताकौं कहिये है – जो तू लोक विषैं ही पंडित कहाया चाहै है तौ तू तिन ही का अभ्यास किया करि। अर जो अपना कार्य किया चाहै है तो ऐसे जैनग्रन्थनि का अभ्यास करना ही योग्य है। बहुरि जैनी तौ जीवादिक तत्त्वनि के निरूपक जे जैनग्रन्थ तिन ही का अभ्यास भए पंडित मानैंगे।

बहुरि वह कहै है कि – मैं जैनग्रंथनि का विशेष ज्ञान होने ही के अर्थि व्याकरणादिकनि का अभ्यास करौं हौं।

ताकौं कहिए है – ऐसैं है तो भलैं ही है; परंतु इतना है जैसैं स्याना किसान अपनी शक्ति अनुसारि हलादिक तैं थोड़ा बहुत खेत कौं संवारि समय विषैं बीज

बोवै तौ ताकौं फल की प्राप्ति होइ। ऐसैं तू भी जो अपनी शक्ति अनुसारि व्याकरणादिक का अभ्यास तें थोरी बहुत बुद्धि कौं संवारि यावत् मनुष्य पर्याय वा इंद्रियनि की प्रबलता इत्यादिक वर्तें हैं, तावत् समय विषैं तत्त्वज्ञान कौं कारण जे शास्त्र, तिनिका अभ्यास करेगा तौ तुझकौं सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होयगी।

बहुरि जैसें अयाना खितहर हलादिक तैं खेत कौं संवारता संवारता ही समय कौं खोवै, तौ ताकौं फलप्राप्ति होने की नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न भया। तैसें तू भी जो व्याकरणादिक तैं बुद्धि कौं संवारता संवारता ही समय खोवैगा तौ सम्यक्त्वादिक की प्राप्ति होने की नाहीं। वृथा ही खेदखिन्न भया। बहुरि इस काल विषैं आयु बुद्धि आदि स्तोक हैं, तातैं प्रयोजनमात्र अभ्यास करना, शास्त्रनि का तौ पार है नाहीं। बहुरि सुनि ! केई जीव व्याकरणादिक का ज्ञानबिना भी तत्त्वोपदेशरूप भाषा शास्त्रनि करि, वा उपदेश सुनने करि, वा सीखने करि तत्त्वज्ञानी होते देखिये हैं। अर केई जीव केवल व्याकरणादिक का ही अभ्यास विषैं जन्म गमावै हैं, अर तत्त्वज्ञानी न होते देखिये हैं।

बहुरि सुनि ! व्याकरणादिक का अभ्यास करने तैं पुण्य न उपजै है। धर्मार्थी होइ तिनका अभ्यास करै तौ किंचित् पुण्य उपजै। बहुरि तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास तैं सातिशय महत् पुण्य उपजै है। तातैं भला यहु है – ऐसे तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास करना। ऐसैं शब्द शास्त्रादिक का पक्षपाती कौं सन्मुख किया।

बहुरि अर्थ का पक्षपाती कहै है कि - इस शास्त्र का अभ्यास किए कहा है ? सर्व कार्य धन तैं बनै हैं, धन करि ही प्रभावना आदि धर्म निपजै हैं। धनवान के निकट अनेक पंडित आनि (आय) प्राप्त होइ। अन्य भी सर्वकार्यसिद्धि होइ। तातैं धन उपजावने का उद्यम करना।

ताकौं कहिए है - रे पापी ! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है। भाग्य तैं हो है, सो ग्रंथाभ्यास आदि धर्म साधन तैं जो पुण्य निपजै, ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास किए कैसैं न होगा ? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न किए कैसैं होगा ? तातैं धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है। शास्त्राभ्यास विषैं काहे कौं शिथिल हूजै। बहुरि सुनि ! धन है सो तौ विनाशीक है, भय संयुक्त है, पाप तैं निपजै है, नरकादिक का कारण है।

अर यहु शास्त्राभ्यासरूप ज्ञानधन है सो अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग मोक्ष का कारण है। सो महंत पुरुष तौ धनकादिक कौं छोड़ि शास्त्राभ्यास विषें लगै हैं। तू पापी शास्त्राभ्यास कौं छुड़ाय धन उपजावने की बड़ाई करै है, सो तू अनंत संसारी है।

बहुरि तैं कह्या - प्रभावना आदि धर्म भी धन ही तैं हो है। सो प्रभावना आदि धर्म है सो किंचित् सावद्य क्रिया संयुक्त हैं। तिसतैं समस्त सावद्य रहित शास्त्राभ्यास रूप धर्म है, सो प्रधान है। ऐसें न होइ तौ गृहस्थ अवस्था विषैं प्रभावना आदि धर्म साधते थे, तिनि कौं छांड़ि संजमी होइ शास्त्राभ्यास विषें काहे को लागै है? बहुरि शास्त्राभ्यास तैं प्रभावनादिक भी विशेष हो है।

बहुरि तैं कह्या - धनवान के निकट पंडित भी आनि प्राप्त होइ। सो लोभी पंडित होइ, अर अविवेकी धनवान होइ तहां ऐसैं हो है। अर शास्त्राभ्यासवालों की तौ इंद्रादिक सेवा करै हैं। इहां भी बड़े बड़े महंत पुरुष दास होते देखिए हैं। तातैं शास्त्राभ्यासवालों तैं धनवान कौं महंत मति जानैं।

बहुरि तैं कह्या - धन तैं सर्व कार्यसिद्धि हो है। सो धन तैं तौ इस लोक संबंधी किछू विषयादिक कार्य ऐसा सिद्ध होइ, जातैं बहुत काल पर्यंत नरकादि दुःख सहने होइ। अर शास्त्राभ्यास तैं ऐसा कार्य सिद्ध हो है जातैं इहलोक विषें अर परलोक विषें अनेक सुखनि की परंपरा पाइए। तातैं धन उपजावने का विकल्प छोड़ि शास्त्राभ्यास करना। अर जो सर्वथा ऐसें न बनै तौ संतोष लिए धन उपजावने का साधनकरि शास्त्राभ्यास विषें तत्पर रहना। ऐसें अर्थ उपजावने का पक्षपाती कौं सन्मुख किया।

बहुरि कामभोगादिक का पक्षपाती बोलै है कि - शास्त्राभ्यास करने विषें सुख नाहीं, बड़ाई नाहीं। तातैं जिन करि इहां ही सुख उपजै ऐसे जे स्त्रीसेवना, खाना, पहिरना, इत्यादि विषय, तिनका सेवन करिए। अथवा जिन करि यहां ही बड़ाई होइ ऐसे विवाहादिक कार्य करिए।

ताकौं कहिए है - विषयजनित जो सुख है सो दुःख ही है। जातैं विषय सुख है, सो परनिमित्त तैं हो है। पहिले, पीछैं, तत्काल आकुलता लिए है, जाके नाश होने के अनेक कारण पाइए है। आगामी नरकादि दुर्गति कौं प्राप्त करणहारा है। ऐसा है तौ भी तेरा चाह्या मिलै नाहीं, पूर्व पुण्य तैं हो है, तातैं विषम है। जैसे खाजि करि पीड़ित पुरुष अपना अंग कौं कठोर वस्तु तैं खुजावै, तैसे इंद्रियनि करि

पीड़ित जीव, तिनकी पीड़ा सही न जाय तब किंचिन्मात्र तिस पीडा के प्रतिकार से भासै – ऐसे जे विषयसुख तिन विषैं झंपापात लेवै है, परमार्थरूप सुख है नाहीं ।

बहुरि **शास्त्राभ्यास करनेतें भया जो सम्यग्ज्ञान, ताकरि निपज्या जो आनन्द, सो सांचा सुख है । जातें सो सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, काहू करि नष्ट न हो है, मोक्ष का कारण है, विषम नाहीं ।** जैसें खाजि न पीडै, तब सहज ही सुखी होइ, तैसें तहां इंद्रिय पीड़ने कौं समर्थ न होइ, तब सहज ही, सुख कौं प्राप्त हो है । तातें विषय सुख छोड़ि शास्त्राभ्यास करना । (जो) सर्वथा न छूटे तौ जेता बनै तेता छोडि, शास्त्राभ्यास विषें तत्पर रहना ।

बहुरि तैं विवाहादिक कार्य विषें बड़ाई होने की कही, सो केतेक दिन बड़ाई रहेगी ? जाकै अर्थि महापापारंभ करि नरकादि विषें बहुतकाल दुःख भोगना होइगा । अथवा तुझ तैं भी तिन कार्यनि विषें धन लगावनेवाले बहुत हैं, तातैं विशेष बड़ाई भी होने की नाहीं ।

बहुरि शास्त्राभ्यास तैं ऐसी बडाई हो है, जाकी सर्वजन महिमा करैं, इंद्रादिक भी प्रशंसा करैं अर परंपरा स्वर्ग मुक्ति का कारण है । तातें विवाहादिक कार्यनि का विकल्प छोड़ि, शास्त्राभ्यास का उद्यम राखना । सर्वथा न छूटै तौ बहुत विकल्प न करना । ऐसें काम भोगादिक का पक्षपाती कौं शास्त्राभ्यास विषें सन्मुख किया । या प्रकार अन्य जीव भी जे विपरीत विचार तैं इस ग्रंथ अभ्यास विषें अरुचि प्रगट करैं, तिनकौं यथार्थ विचार तैं इस शास्त्र के अभ्यास विषें सन्मुख होना योग्य है ।

इहां अन्यमती कहै है कि – तुम अपने ही शास्त्र अभ्यास करने कौं दृढ किया । हमारे मत विषें नाना युक्ति आदि करि संयुक्त शास्त्र हैं, तिनका भी अभ्यास क्यों न कराइए ?

ताकौं कहिए है – तुमारे मत के शास्त्रनि विषें आत्महित का उपदेश नाहीं । जातें कहीं शृंगार का, कहीं युद्ध का, कहीं काम सेवनादि का, कहीं हिंसादि का कथन है । सो ए तौ बिना ही उपदेश सहज ही बनि रहें हैं । इनकौं तजें हित होई, ते तहां उलटे पोषे हैं, तातें तिनतैं हित कैसे होइ ?

तहां वह कहै है – ईश्वरनैं असैं लीला करी है, ताकौं गावैं हैं, तिसतैं भला हो है ।

तहां कहिये है – जो ईश्वर कै सहज सुख न होगा, तब संसारीवत् लीला करि सुखी भया । जो (वह) सहज सुखी होता तौ काहेकौं विषयादि सेवन वा

युद्धादिक करता ? जातैं मंदबुद्धि हू बिना प्रयोजन किंचिन्मात्र भी कार्य न करै। तातैं जानिए है – वह ईश्वर हम सारिखा ही है, ताका जस गाएं कहा सिद्धि है ?

बहुरि वह कहै है कि – हमारे शास्त्रनि विषै वैराग्य, त्याग, अहिंसादिक का भी तौ उपदेश है।

तहां कहिए है – सो उपदेश पूर्वापर विरोध लिए है। कहीं विषय पोषे है, कहीं निषेधे है। कहीं वैराग्य दिखाय, पीछै हिंसादि का करना पोष्या है। तहां वातुलवचनवत् प्रमाण कहा ?

बहुरि वह कहै है कि वेदांत आदि शास्त्रनि विषै तौ तत्त्व ही का निरूपण है।

तहां कहिए है – सो निरूपण प्रमाण करि बाधित, अयथार्थ है। ताका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रनि विषै किया है, सो जानना। तातैं अन्यमत के शास्त्रनि का अभ्यास न करना।

ऐसैं जीवनि कौं इस शास्त्र के अभ्यास विषै सन्मुख किया, तिनकौं कहिए है–

हे भव्य ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं। शब्द का वा अर्थ का वांचना, या सीखना, सिखावना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बार बार चरचा करना, इत्यादि अनेक अंग हैं। तहां जैसैं बनैं तैसैं अभ्यास करना। जो सर्व शास्त्र का अभ्यास न बनै तौ इस शास्त्र विषैं सुगम वा दुर्गम अनेक अर्थनि का निरूपण है। तहां जिसका बनैं तिसही का अभ्यास करना। परंतु अभ्यास विषै आलसी न होना।

देखो ! शास्त्राभ्यासकी महिमा, जाकौं होतैं परंपरा आत्मानुभव दशा कौं प्राप्त होइ – सो मोक्ष रूप फल निपजै है; सो तौ दूर ही तिष्ठौ। शास्त्राभ्यास तैं तत्काल ही इतने गुण हो हैं। १. क्रोधादि कषायनि की तौ मंदता हो है। २. पंचइंद्रियनि की विषयनि विषैं प्रवृत्ति रुकै है। ३. अति चंचल मन भी एकाग्र हो है। ४. हिंसादि पंच पाप न प्रवर्तैं हैं। ५. स्तोक ज्ञान होतैं भी त्रिलोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थनि का जानना हो है। ६. हेयोपादेय की पहिचान हो है। ७. आत्मज्ञान सन्मुख हो है (ज्ञान आत्मसन्मुख हो है)। ८. अधिक-अधिक ज्ञान होतैं आनंद निपजै है। ९. लोकविषैं महिमा, यश विशेष हो है। १०. सातिशय पुण्य का बंध हो है – इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करतैं तत्काल ही प्रगट होई हैं।

तातैं शास्त्राभ्यास अवश्य करना। बहुरि हे भव्य ! शास्त्राभ्यास करने का समय पावना महादुर्लभ है। काहे तैं ? सो कहिए है—

एकेंद्रियादि असंज्ञी पर्यंत जीवनिकैं तौ मन ही नाहीं। अर नारकी वेदना पीड़ित, तिर्यंच विवेक रहित, देव विषयासक्त, तातैं मनुष्यनि कैं अनेक सामग्री मिले शास्त्राभ्यास होइ। सो मनुष्य पर्याय का पावना ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि महादुर्लभ है।

तहां द्रव्य करि लोक विषैं मनुष्य जीव बहुत थोरे हैं, तुच्छ संख्यात मात्र ही हैं। अर अन्य जीवनि विषैं निगोदिया अनंत हैं, और जीव असंख्याते हैं।

बहुरि क्षेत्र करि मनुष्यनि का क्षेत्र बहुत स्तोक है, अढाई द्वीप मात्र ही है। अर अन्य जीवनि विषैं एकेंद्रिनि का सर्व लोक है, औरनिका केते इक राजू प्रमाण है। बहुरि काल करि मनुष्य पर्याय विषैं उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि अपेक्षा पृथक्त्व कोटि पूर्व मात्र ही है। अर अन्य पर्यायनि विषैं उत्कृष्ट रहने का काल – एकेंद्रिय विषैं तौ असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र, अर और विषैं संख्यातपल्य मात्र है।

बहुरि भाव करि तीव्र शुभाशुभपना करि रहित ऐसे मनुष्य पर्याय कौं कारण परिणाम होने अति दुर्लभ हैं। अन्य पर्याय कौं कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ हैं। ऐसैं शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमियाँ मनुष्य पर्याय, ताका दुर्लभपना जानना।

तहां सुवास, उच्चकुल, पूर्णआयु, इंद्रियनि की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादिक का पावना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। सो प्रत्यक्ष देखिए है। अर इतनी सामग्री मिले बिना ग्रंथाभ्यास बनै नाहीं। सो तुम भाग्यकरि यहु अवसर पाया है। तातैं तुमकौ हठ करि भी तुमारे हित होने के अर्थि प्रेरै हैं। जैसैं बनै तैसैं इस शास्त्र का अभ्यास करो। बहुरि अन्य जीवनि कौ जैसें बनै तैसैं शास्त्राभ्यास करावो। बहुरि जे जीव शास्त्राभ्यास करते होइ, तिनकी अनुमोदना करहु। बहुरि पुस्तक लिखावना, वा पढने, पढावनेवालों की स्थिरता करनी, इत्यादिक शास्त्राभ्यास कौं बाह्यकारण, तिनका साधन करना। जातैं इनकरि भी परंपरा कार्यसिद्धि हो है वा महत्पुण्य उपजै है।

ऐसैं इस शास्त्र का अभ्यासादि विषैं जीवनि कौं रुचिवान किया।

गोम्मटसार जीवकाण्ड सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि जो यहु **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** नामा भाषा टीका, तिहिविषैं संस्कृत टीका तैं कहीं अर्थ प्रकट करने के अर्थि, वा कहीं प्रसंगरूप, वा कहीं अन्य ग्रंथ का अनुसारि लेइ अधिक भी कथन करियेगा। अर कहीं अर्थ स्पष्ट न प्रतिभासैगा, तहां न्यून कथन होइगा ऐसा जानना। सो इस भाषा टीका विषैं मुख्यपनैं जो-जो मुख्य व्याख्यान है, ताकौ अनुक्रमतैं संक्षेपता करि कहिए है। जातैं याके जानैं अभ्यास करनेवालौं कैं सामान्यपनैं इतना तौ जानना होइ जो या विषैं ऐसा कथन है। अर क्रम जानैं जिस व्याख्यान कौ जानना होइ, ताकौ तहां शीघ्र अवलोकि अभ्यास करै, वा जिनने अभ्यास किया होइ, ते याकौं देखि अर्थ का स्मरण करैं, सो सर्व अर्थ की सूचनिका कीए तौ विस्तार होई, कथन आगै है ही, तातैं मुख्य कथन की सूचनिका क्रम तैं करिए है।

तहाँ इस भाषा टीका विषैं सूचनिका करि कर्माष्टक आदि गणित का स्वरूप दिखाइ संस्कृत टीका के अनुसारि मंगलाचरणादि का स्वरूप कहि मूल गाथानि की टीका कीजिएगा। तहां इस शास्त्र विषैं दोय महा अधिकार हैं – एक जीवकांड, एक कर्मकांड। तहां जीवकांड विषैं बाईस अधिकार हैं।

तिनिविषैं **प्रथम गुणस्थानाधिकार** है। तिस विषैं गुणस्थाननि का नाम, वा सामान्य लक्षण कहि तिनिविषैं सम्यक्त्व, चारित्र अपेक्षा औदयिकादि संभवते भावनि का निरूपण करि क्रम तैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि का वर्णन है। तहां मिथ्यादृष्टि विषैं पंच मिथ्यात्वादि का सासादन विषैं ताके काल वा स्वरूप का, मिश्र विषैं ताके स्वरूप का वा मरण न होने का, असंयत विषैं वेदकादि सम्यक्त्वनि का वा ताके स्वरूपादिक का, देश संयत विषैं ताके स्वरूप का वर्णन है। बहुरि प्रमत्त का कथन विषैं ताके स्वरूप का अर पंद्रह वा अस्सी वा साढे सैंतीस हजार प्रमाद भेदनि का अर तहां प्रसंग पाइ संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट, समुद्दिष्ट करि वा गूढ यंत्र करि अक्षसंचार विधान का कथन है। जहां भेदनि कौ पलटि पलटि परस्पर लगाइए तहां अक्षसंचार विधान हो है। बहुरि अप्रमत्त का कथन विषैं स्वस्थान अर सातिशय दोय भेद कहि, सातिशय अप्रमत्त कै अधःकरण हो है, ताके स्वरूप वा काल वा परिणाम वा समय-समय संबंधी परिणाम वा एक-एक समय विषैं अनुकृष्टि विधान, वा तहां संभवते च्यारि आवश्यक इत्यादिक का विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ श्रेणी व्यवहार रूप गणित का कथन है। तिसविषैं सर्वधन, उत्तरधन, मुख,

भूमि, चय, गच्छ इत्यादि संज्ञानि का स्वरूप वा प्रमाण ल्यावने कौं करणसूत्रनि का वर्णन है। बहुरि अपूर्वकरण का कथन विषैं ताके काल, स्वरूप, परिणाम, समय-समय संबंधी परिणामादिक का कथन है। बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन विषैं ताकै स्वरूपादिक का कथन है। बहुरि सूक्ष्मसांपराय का कथन विषैं प्रसंग पाइ कर्मप्रकृतिनि के अनुभाग अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नाना-गुणहानिनि का अर स्पर्द्धक, अपूर्वस्पर्धक, बादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टि का वर्णन है। इत्यादि विशेष कथन है सो जानना। बहुरि उपशांतकषाय, क्षीणकषाय का कथन विषैं तिनके दृष्टांतपूर्वक स्वरूप का, सयोगी जिन का कथन विषैं नव केवललब्धि आदिक का, अयोगी विषैं शैलेश्यपना आदिक का कथन है। ग्यारह गुणस्थाननि विषैं गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है। तहां द्रव्य कौं अपकर्षण करि उपरितन स्थिति अर गुणश्रेणी आयाम अर उदयावली विषैं जैसे दीजिए है, ताका वा गुणश्रेणी आयाम के प्रमाण का निरूपण है। तहां प्रसंग पाइ अंतर्मुहूर्त के भेदनि का वर्णन है। बहुरि सिद्धनि का वर्णन है।

बहुरि दूसरा जीवसमास अधिकार विषैं – जीवसमास का अर्थ वा होने का विधान कहि चौदह, उगणीस, वा सत्तावन, जीवसमासनि का वर्णन है। बहुरि च्यारि प्रकारि जीवसमास कहि, तहां स्थानभेद विषैं एक आदि उगणीस पर्यंत जीवस्थाननि का, वा इन ही के पर्याप्तादि भेद करि स्थाननि का वा अठ्याणवै वा च्यारि सै छह जीवसमासनि का कथन है। बहुरि योनि भेद विषैं शंखावर्तादि तीन प्रकार योनि का, अर सम्मूर्च्छनादि जन्म भेद पूर्वक नव प्रकार योनि के स्वरूप वा स्वामित्व का अर चौरासी लक्ष योनि का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ च्यारि गतिनि विषैं सम्मूर्च्छनादि जन्म वा पुरुषादि वेद संभवै, तिनका निरूपण है। बहुरि अवगाहना भेद विषैं सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त आदि जीवनि की जघन्य, उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना का विशेष वर्णन है। तहां एकेंद्रियादिक की उत्कृष्ट अवगाहना कहने का प्रसंग पाइ गोलक्षेत्र, संखक्षेत्र, आयत, चतुरस्रक्षेत्र का क्षेत्रफल करने का, अर अवगाहना विषैं प्रदेशनि की वृद्धि जानने के अर्थि अनंतभाग आदि चतुःस्थानपतित वृद्धि का, अर इस प्रसंग तैं दृष्टांतपूर्वक षट्स्थानपतित आदि वृद्धि-हानि का, सर्व अवगाहना भेद जानने के अर्थि मत्स्यरचना का वर्णन है। बहुरि कुल भेद विषैं एक सौ साढा निण्याणवै लाख कोडि कुलनि का वर्णन है।

बहुरि तीसरा पर्याप्ति नामा अधिकार विषैं – पहलैं मान का वर्णन है। तहां लौकिक-अलौकिक मान के भेद कहि। बहुरि द्रव्यमान के दोय भेदनि विषैं, संख्या

मान विषैं संख्यात, असंख्यात, अनंत के इकईस भेदनि का वर्णन है। बहुरि संख्या के विशेष रूप चौदह धारानि का कथन है। तिनि विषैं द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा द्विरूपघनाघनधारानि कैं स्थाननि विषैं जे पाइए हैं, तिनका विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ पणट्ठी, बादाल, एकट्ठी का प्रमाण, अर वर्गशलाका, अर्धच्छेदनि का स्वरूप, वा अविभागप्रतिच्छेद का स्वरूप, वा उक्तम् च गाथानि करि अर्धच्छेदादिक के प्रमाण होनै का नियम, वा अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण ल्यावनै का विधान इत्यादिकनि का वर्णन है। बहुरि दूसरा उपमा मान के पल्य आदि आठ भेदनि का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ व्यवहारपल्य के रोमनि की संख्या ल्यावने कौं परमाणू तैं लगाय अंगुल पर्यंत अनुक्रम का, अर तीन प्रकार अंगुल का, अर जिस जिस अंगुल करि जाका प्रमाण वर्णिए ताका, अर गोलगर्त के क्षेत्रफल ल्यावने का वर्णन है। अर उद्धारपल्य करि द्वीप-समुद्रनि की संख्या ल्याइए है। अद्धापल्य करि आयु आदि वर्णिए है, ताका वर्णन है। अर सागर की सार्थिक संज्ञा जानने कौं, लवण समुद्र का क्षेत्रफल कौं आदि देकर वर्णन है। अर सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, जगत्-प्रतर, (जगत्घन) लोकनि का प्रमाण ल्यावनै कौं विरलन आदि विधान का वर्णन है। बहुरि पल्यादिक की वर्गशलाका अर अर्धच्छेदनि का प्रमाण वर्णन है। तिनिके प्रमाण जानने कौं उक्तम् च गाथा रूप करणसूत्रनि का कथन है। बहुरि पीछैं पर्याप्ति प्ररूपणा है। तहां पर्याप्त, अपर्याप्त के लक्षण का, अर छह पर्याप्तिनि के नाम का, स्वरूप का, प्रारंभ संपूर्ण होने के काल का, स्वामित्व का वर्णन है। बहुरि लब्धिअपर्याप्त का लक्षण, वा ताके निरंतर क्षुद्रभवनि के प्रमाणादिक का वर्णन है। तहां ही प्रसंग पाइ प्रमाण, फल, इच्छारूप त्रैराशिक गणित का कथन है। बहुरि सयोगी जिन कैं अपर्याप्तपना संभवनै का, अर लब्धि अपर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त, पर्याप्त के संभवते गुणस्थाननि का वर्णन है।

बहुरि चौथा प्राणाधिकार विषैं – प्राणनि का लक्षण, अर भेद, अर कारण अर स्वामित्व का कथन है।

बहुरि पांचमां संज्ञा अधिकार विषैं – च्यारि संज्ञानि का स्वरूप, अर भेद, अर कारण, अर स्वामित्व का वर्णन है।

बहुरि छट्ठा मार्गणा महा अधिकार विषैं – मार्गणा की निरुक्ति का, अर चौदह भेदनि का, अर सांतर मार्गणा के अंतराल का, अर प्रसंग पाइ तत्त्वार्थसूत्र टीका के अनुसारि नाना जीव, एक जीव अपेक्षा गुणस्थाननि विषैं, अर गुणस्थान

अपेक्षा लिएँ मार्गणानि विषैं काल का, अर अंतर का कथन करि छट्ठा गति मार्गणा अधिकार है। तहां गति के लक्षण का, अर भेदनि का अर च्यारि भेदनि के निरुक्ति लिए लक्षणनि का, अर पाँच प्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्यनि का अर सिद्धनि का वर्णन है। बहुरि सामान्य नारकी, जुदे-जुदे सात पृथ्वीनि के नारकी, अर पाँच प्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्य, अर व्यंतर, ज्योतिषी, भवनवासी, सौधर्मादिक देव, सामान्य देवराशि इन जीवनि की संख्या का वर्णन है। तहां पर्याप्त मनुष्यनि की संख्या कहने का प्रसंग पाइ "**कटपयपुरस्थवर्णैं**" इत्यादि सूत्र करि ककारादि अक्षररूप अंक वा बिंदी की संख्या का वर्णन है।

बहुरि सातमां इंद्रियमार्गणा अधिकार विषैं – इंद्रियनि का निरुक्ति लिए लक्षण का, अर-लब्धि उपयोगरूप भावेंद्रिय का, अर बाह्य अभ्यन्तर भेद लिए निवृत्ति-उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय का, अर इन्द्रियनि के स्वामी का, अर तिनके विषयभूत क्षेत्र का, अर तहां प्रसंग पाइ सूर्य के चार क्षेत्रादिक का अर इंद्रियनि के आकार का वा अवगाहना का, अर अतींद्रिय जीवनि का वर्णन है। बहुरि एकेन्द्रियादिकनि का उदाहरण रूप नाम कहि, तिनकी सामान्य संख्या का वर्णन करि, विशेषपने सामान्य एकेन्द्री, अर सूक्ष्म बादर एकेंद्री, बहुरि सामान्य त्रस, अर बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइंद्रिय, पंचेन्द्रिय इन जीवनि का प्रमाण, अर इन विषैं पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि आठमां कायमार्गणा अधिकार विषैं – काय के लक्षण का वा भेदनि का वर्णन है। बहुरि पंच स्थावरनि के नाम, अर काय, कायिक जीवरूप भेद, अर बादर, सूक्ष्मपने का लक्षणादि, अर शरीर की अवगाहना का वर्णन है।

बहुरि वनस्पती के साधारण-प्रत्येक भेदनि का, प्रत्येक के सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेदनि का, अर तिनकी अवगावहना का अर एक स्कंध विषैं तिनके शरीरनि के प्रमाण का, अर योनीभूत बीज विषैं जीव उपजने का, वा तहां सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित होने के काल का, अर प्रत्येक वनस्पती विषैं सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जानने कौं तिनके लक्षण का, बहुरि साधारण वनस्पती निगोदरूप तहां जीवनि के उपजने, पर्याप्ति धरने, मरने के विधान का, अर निगोद शरीर की उत्कृष्ट स्थिति का, अर स्कंध, अंडर, पुलवी, आवास, देह, जीव इनके लक्षण प्रमाणादिक का अर नित्यनिगोदादि के स्वरूप का वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनि का अर तिनके क्षेत्र का वर्णन है। बहुरि वनस्पतीवत् औरनि के शरीर विषैं सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठितपने का, अर स्थावर, त्रस

जीवनि के आकार का, अर काय सहित, काय रहित जीवनि का वर्णन है। बहुरि अग्नि, पृथ्वी, अप्, वात, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक-साधारण वनस्पती जीवनि की, अर तिनविषैं सूक्ष्म-बादर जीवनि की, अर तिनविषैं भी पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि की संख्या का वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ पृथ्वी आदि जीवनि की उत्कृष्ट आयु का वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनि की, अर तिनविषैं पर्याप्त-अपर्याप्त जीवनि की संख्या का वर्णन है। बहुरि बादर अग्निकायिक आदि की संख्या का विशेष निर्णय करने के अर्थि तिनके अर्धच्छेदादिक का, अर प्रसंग पाइ "**दिण्णछेदेणवहिद**" इत्यादिक करणसूत्र का वर्णन है।

बहुरि नवमां योगमार्गणा अधिकार विषै — योग के सामान्य लक्षण का अर सत्य आदि च्यारि-च्यारि प्रकार मन, वचन योग का वर्णन है। तहां सत्य वचन का विशेष जानने कौं दश प्रकार सत्य का, अर अनुभय वचन का विशेष जानने कौं आमंत्रणी आदि भाषानि का, अर सत्यादिक भेद होने के कारण का, अर केवली के मन, वचन योग संभवने का अर द्रव्य मन के आकार का इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि काय योग के सात भेदनि का वर्णन है। तहां औदारिकादिकनि के निरुक्ति पूर्वक लक्षण का, अर मिश्रयोग होने के विधान का, अर आहारक शरीर होने के विशेष का, अर कार्मणयोग के काल का विशेष वर्णन है। बहुरि युगपत् योगनि की प्रवृत्ति होने का विधान वर्णन है। अर योग रहित आत्मा का वर्णन है। बहुरि पंच शरीरनि विषैं कर्म-नोकर्म भेद का, अर पंच शरीरनि की वर्गणा वा समय प्रबद्ध विषैं परमाणूनि का प्रमाण वा क्रम तैं सूक्ष्मपना वा तिनकी अवगाहना का वर्णन है। बहुरि विस्रसोपचय का स्वरूप वा तिनकी परमाणुनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि कर्म-नोकर्म का उत्कृष्ट संचय होने का काल वा सामग्री का वर्णन है। बहुरि औदारिक आदि पंच शरीरनि का द्रव्य तौ समय प्रबद्धमात्र कहि। तिनकी उत्कृष्ट स्थिति, अर तहां संभवती गुणहानि, नाना गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दो गुणहानि का स्वरूप प्रमाण कहि, करणसूत्रादिक तैं तहां चयादिक का प्रमाण ल्याय समय-समय संबंधी निषेकनि का प्रमाण कहि, एक समय विषैं केते परमाणू उदयरूप होइ निर्जरैं, केते सत्ता विषैं अवशेष रहैं, ताके जानने कौं अंकसंदृष्टि की अपेक्षा लिये त्रिकोण यंत्र का कथन है। बहुरि वैक्रियिकादिकनि का उत्कृष्ट संचय कौनकै कैसे होइ सो वर्णन है। बहुरि योगमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या का वर्णन विषैं वैक्रियिक शक्ति करि संयुक्त बादर पर्याप्त अग्निकायिक, वातकायिक अर पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्यनि के प्रमाण का, अर भोगभूमियां आदि

जीवनि कै पृथक् विक्रिया, अर औरनि कै अपृथक् विक्रिया हो है, ताका कथन है। बहुरि त्रियोगी, द्वियोगी, एकयोगी जीवनि का प्रमाण कहि त्रियोगीनि विषैं आठ प्रकार मन-वचनयोगी अर काययोगी जीवनि का, अर द्वियोगीनि विषैं वचन-काययोगीनि का प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ सत्यमनोयोगादि वा सामान्य मन-वचन-काय योगनि के काल का वर्णन है। बहुरि काययोगीनि विषैं सात प्रकार काययोगीनि का जुदा-जुदा प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण के काल का, वा व्यंतरनि विषैं सोपक्रम, अनुपक्रम काल का वर्णन है। बहुरि यहु कथन है (जो)जीवनि की संख्या उत्कृष्टपनै युगपत् होने की अपेक्षा कही है।

बहुरि दशवां वेदमार्गणा अधिकार विषैं — भाव-द्रव्यवेद होने के विधान का, अर तिनके लक्षण का, अर भाव-द्रव्यवेद समान वा असमान हो है ताका, अर वेदनि का कारण दिखाई ब्रह्मचर्य अंगीकार करने का अर तीनों वेदनि का निरुक्ति लिये लक्षण का, अर अवेदी जीवनि का वर्णन है। बहुरि तहां संख्या का वर्णन विषैं देव राशि कही। तहां स्त्री-पुरुषवेदीनि का, अर तिर्यंचनि विषैं द्रव्य-स्त्री आदि का प्रमाण कहि समस्त पुरुष, स्त्री, नपुंसकवेदीनि का प्रमाण वर्णन है। बहुरि सैनी पंचेन्द्री गर्भज, नपुंसकवेदी इत्यादिक ग्यारह स्थाननि विषैं जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि ग्यारहवां कषायमार्गणा अधिकार विषैं – कषाय का निरुक्ति लिये लक्षण का, वा सम्यक्त्वादिक घातने रूप दूसरे अर्थ विषैं अनन्तानुबंधी आदि का निरुक्ति लिए लक्षण का वर्णन है। बहुरि कषायनि के एक, च्यारि, सोलह, असंख्यात लोकमात्र भेद कहि क्रोधादिक की उत्कृष्टादि च्यारि प्रकार शक्तिनि का दृष्टांत वा फल की मुख्यता करि वर्णन है। बहुरि पर्याय धरने के पहलैं समय कषाय होने का नियम है वा नाहीं है सो वर्णन है। बहुरि अकषाय जीवनि का वर्णन है। बहुरि क्रोधादिक के शक्ति अपेक्षा च्यार, लेश्या अपेक्षा चौदह, आयुबंध अर अबंध अपेक्षा बीस भेद हैं, तिनका अर सर्व कषायस्थाननि का प्रमाण कहि तिन भेदनि विषैं जेते-जेते स्थान संभवैं तिनका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनि की संख्या का वर्णन विषैं नारकी, देव, मनुष्य, तिर्यंच गति विषैं जुदा-जुदा क्रोधी आदि जीवनि का प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ तिन गतिनि विषैं क्रोधादिक का काल वर्णन है।

बहुरि बारहवां ज्ञानमार्गणा अधिकार विषैं – ज्ञान का निरुक्ति पूर्वक लक्षण कहि, ताके पंच भेदनि का अर क्षयोपशम के स्वरूप का वर्णन है। बहुरि तीन मिथ्या ज्ञाननि का, अर मिश्र ज्ञाननि का अर तीन कुज्ञाननि के परिणमन के उदाहरण का

वर्णन है । बहुरि मतिज्ञान का वर्णन विषैं याके नामांतर का, अर इंद्रिय-मन तें उपजने का अर तहां अवग्रहादि होने का, अर व्यंजन-अर्थ के स्वरूप का, अर व्यंजन विषैं नेत्र, मन वा ईहादिक न पाइए ताका, अर पहले दर्शन होइ पीछै अवग्रहादि होने के क्रम का अर अवग्रहादिकनि के स्वरूप का, अर अर्थ-व्यंजन के विषयभूत बहु, बहुविध आदि बारह भेदनि का, तहां अनिसृत विषैं च्यारि प्रकार परोक्ष प्रमाण गर्भितपना आदि का, अर मतिज्ञान के एक, च्यारि, चौबीस, अठ्ठाईस अर इनतें बारह गुणे भेदनि का वर्णन है । बहुरि श्रुतज्ञान का वर्णन विषैं श्रुतज्ञान का लक्षण निरुक्ति आदि का, अर अक्षर-अनक्षर रूप श्रुतज्ञान के उदाहरण वा भेद वा प्रमाण का वर्णन है । बहुरि भाव श्रुतज्ञान अपेक्षा बीस भेदनि का वर्णन है । तहां पहिला जघन्यरूप पर्याय ज्ञान का वर्णन विषैं ताके स्वरूप का, अर तिसका आवरण जैसैं उदय हो है ताका, अर यहु जाकैं हो है ताका, अर याका दूसरा नाम लब्धि अक्षर हैं, ताका वर्णन है । अर पर्यायसमास ज्ञान का वर्णन विषैं षट्स्थानपतित वृद्धि का वर्णन है । तहां जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण कहि । अर अनंतादिक का प्रमाण अर अनंत भागादिक की सहनानी कहि, जैसैं अनंतभागादिक षट्स्थानपतित वृद्धि हो है, ताके क्रम का यंत्र द्वार तें वर्णन करि अनंत भागादि वृद्धिरूप स्थाननि विषैं अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण ल्यावने कौं प्रक्षेपक आदि का विधान, अर तहां प्रसंग पाइ एक बार, दोय बार, आदि संकलन धन ल्यावने का विधान, अर साधिक जघन्य जहां दुणा हो है, ताका विधान, अर पर्याय समास विषैं अनंतभाग आदि वृद्धि होने का प्रमाण इत्यादि विशेष वर्णन है । बहुरि अक्षर आदि अठारह भेदनि का क्रम तें वर्णन है । तहां अर्थाक्षर के स्वरूप का, अर तीन प्रकार अक्षरनि का अर शास्त्र के विषयभूत भावनि के प्रमाण का, अर तीन प्रकार पदनि का अर चौदह पूर्वनि विषैं वस्तु वा प्राभृत नामा अधिकारनि के प्रमाण का इत्यादि वर्णन है । बहुरि बीस भेदनि विषैं अक्षर, अनक्षर श्रुतज्ञान के अठारह, दोय भेदनि का अर पर्यायज्ञानादि की निरुक्ति लिए स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि द्रव्यश्रुत का वर्णन विषैं द्वादशांग के पदनि की अर प्रकीर्णक के अक्षरनि की संख्यानि का, बहुरि चौसठ मूल अक्षरनि की प्रक्रिया का, अर अपुनरुक्त सर्व अक्षरनि का प्रमाण वा अक्षरनि विषैं प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंगनि करि तिस प्रमाण ल्यावने का विधान अर सर्व श्रुत के अक्षरनि का प्रमाण वा अक्षरनि विषैं अंगनि के पद अर प्रकीर्णकनि के अक्षरनि के प्रमाण ल्यावने का विधान इत्यादि वर्णन है । बहुरि आचारांग आदि ग्यारह अंग, अर दृष्टिवाद अंग के पांच भेद, तिनमैं परिकर्म के पांच

भेद, तहां सूत्र अर प्रथमानुयोग का एक-एक भेद, अर पूर्वगत के चौदह भेद, चूलिका के पांच भेद, इन सबनि के जुदा-जुदा पदनि का प्रमाण अर इन विषैं जो-जो व्याख्यान पाइए, ताकी सूचनिका का कथन है । तहां प्रसंग पाइ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि होने का विधान, अर वर्द्धमान स्वामी के समय दश-दश जीव अंतःकृत केवली अर अनुत्तरगामी भए तिनकानाम अर तीन सौ तिरेसठि कुवादनि के धारकनि विषैं केई कुवादीनि के नाम अर सप्त भंग का विधान, अर अक्षरनि के स्थान-प्रयत्नादिक, अर बारह भाषा अर आत्मा के जीवादि विशेषण इत्यादि घने कथन हैं । बहुरि सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णकनि का स्वरूप वर्णन है । बहुरि श्रुतज्ञान की महिमा का वर्णन है ।

बहुरि अवधिज्ञान का वर्णन विषैं निरुक्ति पूर्वक स्वरूप कहि, ताके भवप्रत्यय-गुणप्रत्यय भेदनि का, अर ते भेद कौनकैं होय, कौन आत्मप्रदेशनि तैं उपजै ताका, अर तहां गुणप्रत्यय, के छह भेदनि का, तिनविषैं अनुगामी, अननुगामी के तीन-तीन भेदनि का वर्णन है । बहुरि सामान्यपनै अवधि के देशावधि, परमावधि, सर्वावधि भेदनि का, अर तिन विषैं भवप्रत्यय-गुणप्रत्यय के संभवपने का, अर ए कौनकैं होइ-ताका, अर तहां प्रतिपाती, अप्रतिपाती, विशेष का, अर इनके भेदनि के प्रमाण का, वर्णन है । बहुरि जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा द्वितीयादि उत्कृष्ट पर्यंत क्रम तैं भेद होने का विधान, अर तहां द्रव्यादिक के प्रमाण का अर सर्व भेदनि के प्रमाण का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ ध्रुवहार, वर्ग, वर्गणा, गुणाकार इत्यादिक का अनेक वर्णन है । अर तहां ही क्षेत्र-काल अपेक्षा तिस देशावधि के उगणीस कांडकनि का वर्णन है ।

बहुरि परमावधि के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा जघन्य तैं उत्कृष्ट पर्यन्त क्रम तैं भेद होने का विधान, वा तहां द्रव्यादिक का प्रमाण वा सर्व भेदनि के प्रमाण का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ संकलित धन ल्यावने का अर "इच्छिदरासिच्छेदं" इत्यादि दोय करणसूत्रनि का आदि अनेक वर्णन है ।

बहुरि सर्वावधि अभेद है । ताकैं विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन है । बहुरि जघन्य देशावधि तैं सर्वावधि पर्यंत द्रव्य अर भाव अपेक्षा भेदनि की समानता का वर्णन है । बहुरि नरक विषैं अवधि का वा ताके विषयभूत क्षेत्र का, अर मनुष्य, तिर्यंच विषैं जघन्य-उत्कृष्ट अवधि होने का, अर देव विषैं भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषीनि के अवधिगोचर क्षेत्रकाल का, सौधर्मादि द्विकनि विषैं क्षेत्रादिक का, वा द्रव्य का भी वर्णन है ।

बहुरि मन:पर्ययज्ञान का वर्णन विषैं ताके स्वरूप का, अर दोय भेदनि का अर तहां ऋजुमति तीन प्रकार, विपुलमति छह प्रकार ताका, अर मन:पर्यय जहांतैं उपजै है अर जिनकैं हो है ताका, अर दोय भेदनि विषैं विशेष है ताका, अर जीव करि चिंतया हुवा द्रव्यादिक कौं जानै ताका, अर ऋजुमति का विषयभूत द्रव्य का अर मन:पर्यय संबंधी ध्रुवहार का, अर विपुलमति के जघन्य तैं उत्कृष्ट पर्यन्त द्रव्य अपेक्षा भेद होने का विधान, वा भेदनि का प्रमाण, वा द्रव्य का प्रमाण कहि, जघन्य उत्कृष्ट क्षेत्र, काल, भाव का वर्णन है ।

बहुरि केवलज्ञान सर्वज्ञ है, ताका वर्णन है । बहुरि इहां जीवनि की संख्या का वर्णन विषैं मति, श्रुति, अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञानी का अर च्यारों गति संबंधी विभंगज्ञानीनि का, अर कुमति-कुश्रुत-ज्ञानीनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि तेरहवां संयममार्गणा अधिकार विषैं – ताके स्वरूप का, अर संयम के भेद के निमित्त का वर्णन है । बहुरि संयम के भेदनि का स्वरूप वर्णन है । तहां परिहारविशुद्धि का विशेष, अर ग्यारह प्रतिमा, अट्ठाईस विषय इत्यादिक का वर्णन है । बहुरि इहां जीवनि की संख्या का वर्णन विषैं सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात संयमधारी, अर संयतासंयत, अर असंयत जीवनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि चौदहवां दर्शनमार्गणा अधिकार विषैं – ताके स्वरूप का, अर दर्शन भेदनि के स्वरूप का वर्णन है । बहुरि इहां जीवनि की संख्या का वर्णन विषैं शक्ति चक्षुर्दर्शनी, व्यक्त चक्षुर्दर्शनीनि का अर अवधि, केवल, अचक्षुर्दर्शनीनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि पंद्रहवां लेश्यामार्गणा अधिकार विषैं – द्रव्य, भाव करि दोय प्रकार लेश्या कहि, भावलेश्या का निरुक्ति लिए लक्षण अर ताकरि बंध होने का वर्णन है । बहुरि सोलह अधिकारनि के नाम है । बहुरि निर्देशाधिकार विषैं छह लेश्यानि के नाम है । अर वर्णाधिकार विषैं द्रव्य लेश्यानि के कारण का, अर लक्षण का, अर छहों द्रव्य लेश्यानि के वर्ण का दृष्टांत का, अर जिनकैं जो-जो द्रव्य लेश्या पाइए, ताका व्याख्यान है । बहुरि प्रमाणाधिकार विषैं कषायनि के उदयस्थाननि विषैं संक्लेशविशुद्धि स्थाननि के प्रमाण का, अर तिनविषैं भी कृष्णादि लेश्यानि के स्थाननि के प्रमाण का, अर संक्लेशविशुद्धि की हानि, वृद्धि तैं अशुभ, शुभलेश्या होने के

अनुक्रम का वर्णन है । बहुरि संक्रमणाधिकार विषैं स्वस्थान-परस्थान संक्रमण कहि संक्लेशविशुद्धि का वृद्धि-हानि तैं जैसै संक्रमण हो है ताका, अर संक्लेशविशुद्धि विषैं जैसे लेश्या के स्थान होइ, अर तहां जैसैं षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि संभवै, ताका वर्णन है । बहुरि कर्माधिकार विषैं छहों लेश्यावाले कार्य विषैं जैसैं प्रवर्तें, ताके उदाहरण का वर्णन है । बहुरि लक्षणाधिकार विषैं छहो लेश्यावालेनि का लक्षण वर्णन है ।

बहुरि गति अधिकार विषैं लेश्यानि के छब्बीस अंश, तिनविषैं आठ मध्यम अंश आयुबंध कौं कारण, ते आठ अपकर्षकालनि विषैं होइ, तिन अपकर्षनि का उदाहरणपूर्वक स्वरूप का अर तिनविषैं आयु न बंधै तौ जहां बंधै ताका, अर सोपक्रमायुष्क, निरुपक्रमायुष्क, जीवनि कैं अपकर्षणरूप काल का; वा तहां आयु बंधने का विधान वा गति आदि विशेष का, अर अपकर्षनि विषैं आयु बंधनेवाले जीवनि के प्रमाण का वर्णन करि पीछैं लेश्यानि के अठारह अंशनि विषैं जिस-जिस अंश विषैं मरण भए, जिस-जिस स्थान विषैं उपजैं ताका वर्णन है ।

बहुरि स्वामी अधिकार विषैं भाव लेश्या की अपेक्षा सात नरकनि के नारकीनि विषैं, अर मनुष्य-तिर्यंच विषैं, तहां भी एकेंद्रिय-विकलत्रय विषैं, असैंनी पंचेंद्रिय विषैं लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच-मनुष्य विषैं, अपर्याप्तक तिर्यंच-मनुष्य-भवनत्रिकदेव सासादन वालों विषैं, पर्याप्त-अपर्याप्त भोगभूमियां विषैं, मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषैं, पर्याप्त भवनत्रिक-सौधर्मादिक आदि देवनि विषैं जो-जो लेश्या पाइए ताका वर्णन है । तहां असैंनी के लेश्यानिमित्त तैं गति विषैं उपजने का आदि विशेष कथन है ।

बहुरि साधन अधिकार विषैं द्रव्य लेश्या अर भाव लेश्यानि के कारण का वर्णन है ।

बहुरि संख्याधिकार विषैं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मान करि कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण वर्णन है ।

बहुरि क्षेत्राधिकार विषैं सामान्यपनैं स्वस्थान, समुद्घात, उपपाद अपेक्षा, विशेषपनैं दोय प्रकार स्वस्थान, सात प्रकार समुद्घात, एक उपपाद इन दश स्थाननि विषैं संभवतै स्थाननि की अपेक्षा कृष्णादि लेश्यानि का (स्थान वर्णन कहिए) क्षेत्र वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ विवक्षित लेश्या विषैं संभवतै स्थान, तिन विषैं जीवनि के प्रमाण का, तिन स्थाननि विषैं क्षेत्र के प्रमाण का, समुद्घातादिक के विधान का, क्षेत्रफलादिक का, मरने वाले आदि देवनि के प्रमाण का, केवल समुद्घात विषैं दंड-कपाटादिक का, तहां लोक के क्षेत्रफल का इत्यादिक का वर्णन है ।

बहुरि स्पर्शाधिकार विषैं पूर्वोक्त सामान्य-विशेषपनैं करि लेश्यानि का तीन काल संबंधी क्षेत्र का वर्णन है । तहाँ प्रसंग पाइ मेरु तैं सहस्रार पर्यंत [illegible] पवन के सद्भाव का, अर जंबूद्वीप समान लवणसमुद्र के खंड, लवणसमुद्र के समान अन्य समुद्र के खंड करने के विधान का, अर जलचर रहित समुद्रनि का मिलाया हुआ क्षेत्रफल के प्रमाण का, अर देवादिक के उपजने, गमन करने का इत्यादि वर्णन है ।

बहुरि काल अधिकार विषैं कृष्णादि लेश्या जितने काल रहै ताका वर्णन है ।

बहुरि अंतराधिकार विषैं कृष्णादि लेश्या का जघन्य, उत्कृष्ट जितने काल-अभाव रहै, ताका वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ एकेंद्री, विकलेंद्री विषैं उत्कृष्ट रहने के काल का वर्णन है ।

बहुरि भावाधिकार विषैं छहौं लेश्यानि विषैं औदयिक भाव के सद्भाव का वर्णन है ।

बहुरि अल्पबहुत्व अधिकार विषैं संख्या के अनुसारि लेश्यानि विषैं परस्पर अल्प-बहुत्व का व्याख्यान है, ऐसैं सोलह अधिकार कहि लेश्या रहित जीवनि का व्याख्यान है ।

बहुरि सोलहवां भव्यमार्गणा अधिकार विषैं – दोय प्रकार भव्य अर अभव्य अर भव्य-अभव्यपना करि रहित जीवनि का स्वरूप वर्णन है । बहुरि इहां संख्या का कथन विषैं भव्य-अभव्य जीवनि का प्रमाण वर्णन है । बहुरि इहां प्रसंग पाइ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंचपरिवर्तननि के स्वरूप का, वा जैसे क्रम तैं परिवर्तन हो है ताका, अर परिवर्तननि के काल का, अनादि तैं जेते परिवर्तन भए, तिनके प्रमाण का वर्णन है । तहां गृहीतादि पुद्गलनि के स्वरूप संदृष्टि का, वा योग स्थान आदिकनि का वर्णन पाइए है ।

बहुरि सतरहवां सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार विषैं – सम्यक्त्व के स्वरूप का, अर सराग-वीतराग के भेदनि का अर षट् द्रव्य, नव पदार्थनि के श्रद्धानरूप लक्षण का वर्णन है । बहुरि षट् द्रव्य का वर्णन विषैं सात अधिकारनि का कथन है ।

तहां नाम अधिकार विषैं द्रव्य के एक वा दोय भेद का, अर जीव-अजीव के दोय-दोय भेदनि का, अर तहां पुद्गल का निरुक्ति लिए लक्षण का, पुद्गल परमाणु के आकार का वर्णनपूर्वक रूपी-अरूपी अजीव द्रव्य का कथन है ।

बहुरि उपलक्षणानुवादाधिकार विषैं छहों द्रव्यनि के लक्षणनि का वर्णन है । तहाँ गति आदि क्रिया जीव-पुद्गल कै है, ताका कारण धर्मादिक है, ताका दृष्टांत-

पूर्वक वर्णन है । अर वर्तनाहेतुत्व काल के लक्षण का दृष्टांतपूर्वक वर्णन है । अर मुख्य काल के निश्चय होने का, काल के धर्मादिक कौं कारणपने का, समय, आवली आदि व्यवहारकाल के भेदनि का, तहां प्रसंग पाइ प्रदेश के प्रमाण का, वा अंतर्मुहूर्त के भेदनि का, वा व्यवहारकाल जानने कौं निमित्त का, व्यवहारकाल के अतीत, अनागत, वर्तमान भेदनि के प्रमाण का, वा व्यवहार निश्चय काल के स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि स्थिति अधिकार विषैं सर्व अपने पर्यायनि का समुदायरूप अवस्थान का वर्णन है ।

बहुरि क्षेत्राधिकार विषैं जीवादिक जितना क्षेत्र रोकैं, ताका वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ तीन प्रकार आधार वा जीव के समुद्घातादि क्षेत्र का वा संकोच विस्तार शक्ति का वा पुद्गलादिकनि की अवगाहन शक्ति का वा लोकालोक के स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि संख्याधिकार विषैं जीव द्रव्यादिक का वा तिनके प्रदेशनि का, वा व्यवहार काल के प्रमाण का, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मान करि वर्णन है ।

बहुरि स्थान स्वरूपाधिकार विषैं (द्रव्यनि का वा) द्रव्य के प्रदेशनि का चल, अचलपने का वर्णन है । बहुरि अणुवर्गणा आदि तेईस पुद्गल वर्गणानि का वर्णन है । तहां तिन वर्गणानि विषैं जेती-जेती परमाणू पाइए, ताका आहारादिक वर्गणा तें जो-जो कार्य निपजै है ताका जघन्य, उत्कृष्ट, प्रत्येकादि वर्गणा जहां पाईए ताका, महास्कंध वर्गणा के स्वरूप का, अणुवर्गणा आदि का वर्गणा लोक विषैं जितनी जितनी पाइए ताका इत्यादि का वर्णन है । बहुरि पुद्गल के स्थूल-स्थूल आदि छह भेदनि का, वा स्कंध, प्रदेश, देश इन तीन भेदनि का वर्णन है ।

बहुरि फल अधिकार विषैं धर्मादिक का गति आदि साधनरूप उपकार, जीवनि के परस्पर उपकार, पुद्गलनि का कर्मादिक वा सुखादिक उपकार, तिनका प्रश्नोत्तरादिक लिए वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ कर्मादिक पुद्गल ही हैं ताका, अर कर्मादिक जिस-जिस पुद्गल वर्गणा तें निपजें हैं ताका, अर स्निग्ध-रूक्ष के गुणनि के अंशनि करि जैसे पुद्गल का संबंध हो है, ताका वर्णन है । असें षट् द्रव्य का वर्णन करि तहां काल बिना पंचास्तिकाय हैं, ताका वर्णन है । बहुरि नव पदार्थनि का वर्णन विषैं जीव-अजीव का तौ षट् द्रव्यनि विषैं वर्णन भया । बहुरि पाप जीव पुण्य जीवनि का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ चौदह गुण-स्थाननि विषैं जीवनि का

प्रमाण वर्णन है। तहां उपशम, क्षपक श्रेणीवाले निरंतर अष्ट समयनि विषैं जेते जेते होंइ ताका, वा युगपत् बोधितबुद्धि आदि जीव जेते-जेते होंइ ताका, अर सकल संयमीनि के प्रमाण का वर्णन है। बहुरि सात नरक के नारकी, भवनत्रिक, सौधर्मद्विकादिक देव, तिर्यंच, मनुष्य ए जेते-जेते मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषैं पाइए, तिनका वर्णन है। बहुरि गुणस्थाननि विषैं पुण्य जीव, पाप जीवनि का भेद वर्णन है। बहुरि पुद्गलीक द्रव्य पुण्य-पाप का वर्णन है। बहुरि आस्रव, बंध, संवर निर्जरा, मोक्षरूप पुद्गलनि का प्रमाण वर्णन है। ऐसें षट् द्रव्यादिक का स्वरूप कहि, तिनके श्रद्धानरूप सम्यक्त्व के भेदनि का वर्णन है।

तहां क्षायिक सम्यक्त्व के भेदनि का वर्णन है।[१] तहां क्षायिक सम्यक्त्व होने के कारण का, ताके स्वरूप का, ताकौं पाएं जेते भवनि विषैं मुक्ति होइ ताका, तिसकी महिमा का, अर तिसका प्रारंभ, निष्ठापन जहां होइ, ताका वर्णन है।

बहुरि वेदकसम्यक्त्व के कारण का वा स्वरूप का वर्णन है। बहुरि उपशम सम्यक्त्व के स्वरूप का, कारण का, पंचलब्धि आदि सामग्री का, वा जाके उपशम सम्यक्त्व होइ ताका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ आयुबंध भए पीछैं सम्यक्त्व, व्रत होने न होने का वर्णन है। बहुरि सासादन, मिश्र, मिथ्यारुचि का वर्णन है। बहुरि इहां जीवनि की संख्या का वर्णन विषैं क्षायिक, उपशम, वेदक सम्यग्दृष्टिनि का अर मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र जीवनि का प्रमाण वर्णन है। बहुरि नव पदार्थनि का प्रमाण वर्णन है। तहां जीव अर अजीव विषैं पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अर पुण्य-पाप रूप जीव, अर पुण्य-पाप रूप अजीव अर आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष इनके प्रमाण का निरूपण है।

बहुरि अठारहवां संज्ञी मार्गणा अधिकार विषैं – संज्ञी के स्वरूप का, संज्ञी असंज्ञी जीवनि के लक्षण का वर्णन है। अर इहां संख्या का वर्णन विषैं संज्ञी-असंज्ञी जीवनि का प्रमाण वर्णन है।

बहुरि उगणीसवां आहारमार्गणा अधिकार विषैं – आहारक के स्वरूप वा निरुक्ति का अर अनाहारक जिनकै हो है ताका, तहां प्रसंग पाइ सात समुद्घातनि के नाम वा समुद्घात के स्वरूप का, अर आहारक अनाहारक के काल का वर्णन है। बहुरि तहां आहारक-अनाहारक जीवनि का प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ **प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड** इत्यादि सूत्र करि मिश्र के व्यवहार का कथन है।

---

१. यह वाक्य छपी प्रति में मिलता है, किन्तु इसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

बहुरि बीसवां उपयोग अधिकार विषैं – उपयोग के लक्षण का, साकार-अनाकार भेदनि का, उपयोग है सो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभवी दोष रहित जीव का लक्षण है ताका, अर केवलज्ञान-केवलदर्शन बिना साकार-अनाकार उपयोगनि का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है, ताका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनि की संख्या साकारोपयोग विषैं ज्ञानमार्गणावत् अर अनाकारोपयोग विषैं दर्शनमार्गणावत् है ताका वर्णन है।

बहुरि इक्कीसवां ओघादेशयो प्ररूपणा प्ररूपण अधिकार विषैं – गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषैं यथासंभव गुणस्थान अर जीवसमासनि का वर्णन है। तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषैं पर्याप्त-अपर्याप्त अपेक्षा गुणस्थाननि का विशेष कह्या है। बहुरि गुणस्थाननि विषैं संभवते जे जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणानि के भेद, उपयोग, तिनका वर्णन है। तहां मार्गणा वा उपयोग के स्वरूप का भी किछू वर्णन है। तहां योग भव्यमार्गणानि के भेदनि का, वा सम्यक्त्वमार्गणा विषैं प्रथम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का इत्यादि विशेष-सा वर्णन है। अर गति आदि केई मार्गणानि विषैं पर्याप्त, अपर्याप्त अपेक्षा कथन है।

बहुरि बावीसवां आलाप अधिकार विषैं – मंगलाचरण करि सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त करि तीन आलाप, अर अनिवृत्तिकरण विषैं पंच भागनि की अपेक्षा पंच आलाप, तिनका गुणस्थाननि विषैं वा गुणस्थान अपेक्षा चौदह मार्गणा के भेदनि विषैं यथासंभव कथन है। तहां गतिमार्गणा विषैं किछू विशेष-सा कथन है। बहुरि गुणस्थान मार्गणास्थाननि विषैं गुणस्थानादि बीस प्ररूपणा यथासंभव आलापनि की अपेक्षा निरूपण करनी। तहां पर्याप्त, अपर्याप्त एकेंद्रियादि जीवनी कैं संभवते पर्याप्ति, प्राण, जीवसमासादिक का किछू वर्णन करि यथायोग्य सर्व प्ररूपणा जानने का उपदेश है। बहुरि तिनके जानने कौं यंत्रनि करि कथन है। तहां पहिलै यंत्रनि विषैं जैसैं अनुक्रम है, वा समस्या है, वा विशेष है सो कथन है। पीछे एक-एक रचना विषैं बीस-बीस प्ररूपणा का कथन स्वरूप छह सौ चौदह यंत्रनि की रचना है। तहां केई रचना समान जानि बहुत रचनानि की एक रचना है। बहुरि मनःपर्यय ज्ञानादिक विषैं एक होतें अन्य न होय ताका, उपशम श्रेणी तैं उतरि मरण भए उपजने का, सिद्धनि विषैं संभवती प्ररूपणानि का निक्षेपादिक करि प्ररूपणा जानने के उपदेश का वर्णन है। बहुरि आशीर्वाद है। बहुरि टीकाकार के वचन हैं।

ऐसैं जीवकाण्ड नामा महा अधिकार के बावीस अधिकारनि विषैं क्रम तैं व्याख्यान की सूचनिका जाननी।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रकरण

ॐ नमः । अथ कर्म (अजीवकांड) नामा महाअधिकार के नव अधिकार हैं । तिनके व्याख्यान की सूचना मात्र क्रम तैं कहिए है –

तहां पहिला **प्रकृतिसमुत्कीर्तन-अधिकार** विषैं मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि प्रतिज्ञा के स्वरूप का, जीव-कर्म के संबंध का, तिनके अस्तित्व का, दृष्टांतपूर्वक कर्म-परमाणूनि के ग्रहण का, बंध, उदय, सत्त्वरूप कर्मपरमाणूनि के प्रमाण का वर्णन है । बहुरि ज्ञानावरणादिक आठ मूल प्रकृतिनि के नाम का, इन विषैं घाती-अघाती भेद का, इनकरि कार्य हो है ताका, इनके क्रम संभवने का, दृष्टांत निरुक्ति लिए इनके स्वरूप का वर्णन है । बहुरि इनकी उत्तर प्रकृतिनि का कथन है । तहां पंच निद्रा का, तीन दर्शनमोह होने के विधान का, पंच शरीरनि के पंद्रह भंगनि का, विवक्षित संहननवाले देव-नरक गतिविषैं जहां उपजैं ताका, कर्मभूमि की स्त्रीनि के तीन संहनन हैं ताका, आताप प्रकृति के स्वरूप वा स्वामित्व का विशेष-व्याख्यान सा है ।

बहुरि मतिज्ञानावरणादि उत्तर प्रकृतिनि के निरुक्ति लिए स्वरूप का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ अभव्य के केवलज्ञान के सद्भाव विषैं प्रश्नोत्तर का, सात धातु, सात उपधातु का इत्यादि वर्णन है । बहुरि अभेद विवक्षाकरि जे प्रकृति गर्भित हो हैं, तिनका वर्णनकरि बंध-उदय-सत्तारूप जेती-जेती प्रकृति हैं, तिनका वर्णन है । बहुरि घातियानि विषैं सर्वघाती-देशघाती प्रकृतिनि का, अर सर्व प्रकृतिनि विषैं प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि अनंतानुबंधी आदि कषायनि का कार्य वा वासनाकाल का वर्णन है । बहुरि कर्म-प्रकृतिनि विषैं पुद्गलविपाकी, भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, जीवविपाकी प्रकृतिनि का वर्णन है ।

बहुरि प्रसंग पाइ संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय का वर्णनपूर्वक तीन प्रकार श्रोतानि का वर्णनकरि प्रकृतिनि के चार निक्षेपनि का वर्णन है । तहां नामादि निक्षेपनि का स्वरूप कहि नाम निक्षेप का अर तदाकार-अतदाकाररूप दोय प्रकार स्थापना निक्षेप का अर आगम-नोआगम रूप दोय प्रकार द्रव्य निक्षेप का; तहां नो-आगम के ज्ञायक, भावी, तद्व्यतिरिक्तरूप तीन प्रकार का, तहां भी भूत, भावी, वर्तमानरूप ज्ञायकशरीर के तीन भेदनि का, तहां भी च्युत, च्यावित, त्यक्तरूप भूत शरीर के तीन भेदनि का, तहां भी त्यक्त के भक्त, प्रतिज्ञा, इंगिनी, प्रायोपगमनरूप भेदनि का, तहां भी भक्त प्रतिज्ञा के उत्कृष्ट, मध्य, जघन्यरूप तीन प्रकारनि का अर तद्व्यतिरिक्त नो-आगम द्रव्य के कर्म-नोकर्म भेदनि का, बहुरि भावनिक्षेप के आगम,

नोआगम भेदनि का वर्णन है । तहां मूल प्रकृतिनि विषैं इनकौं कहि उत्तर प्रकृतिनि विषैं वर्णनहै । तहां औरनि का सामान्यपनैं संभवपना कहि, नोकर्मरूप तद्व्यतिरिक्त-नो-आगम-द्रव्य का जुदी-जुदी प्रकृतिनि विषैं वर्णन है । अर नोआगमभाव का समुच्चयरूप वर्णन है ।

बहुरि दूसरा **बंध-उदय-सत्त्वयुक्तस्तवनामा** अधिकार है । तहां नमस्कार पूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्तवनादिक का लक्षण वर्णन है । बहुरि बंध-व्याख्यान विषैं बंध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप भेदनि का, अर तिनविषैं उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्यपने का; अर इनविषैं भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव संभवने का वर्णन है ।

बहुरि प्रकृतिबंध का कथन विषैं गुणस्थाननि विषैं प्रकृतिबंध के नियम का; तहां भी तीर्थंकरप्रकृति बंधने के विशेष का, अर गुणस्थाननि विषैं व्युच्छित्ति, बंध, अबंध प्रकृतिनि का, तहां भी व्युच्छित्ति के स्वरूप दिखावने कौं द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा का, अर गति आदि मार्गणा के भेदनि विषैं सामान्यपनैं वा संभवते गुणस्थान अपेक्षा व्युच्छित्ति-बंध-अबंध प्रकृतिनि के विशेष का, अर मूल-उत्तर प्रकृतिनि विषैं संभवते सादिनैं आदि देकर बंध का, तहां अध्रुव-प्रकृतिनि विषैं सप्रतिपक्ष-निःप्रतिपक्ष प्रकृतिनि का, अर निरंतर बंध होने के काल का वर्णन है ।

बहुरि स्थितिबंध का वर्णन विषैं मूल-उत्तर प्रकृतिनि के उत्कृष्ट स्थितिबंध का, अर उत्कृष्ट स्थितिबंध संज्ञी पंचेंद्रिय ही के होय ताका, अर जिस परिणाम तैं वा जिस जीव कै जिस प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध होय ताका, तहां प्रसंग पाय उत्कृष्ट ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामनि के स्वरूप दिखावने कौं अनुकृष्टि आदि विधान का, अर मूल-उत्तर प्रकृतिनि के जघन्य स्थितिबंध के प्रमाण का, अर जघन्य-स्थितिबंध जाकैं होय ताका वर्णन है । अर एकेंद्री, बेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, असंज्ञी, संज्ञी पंचेंद्री जीवनि कैं मोहादिक की उत्कृष्ट-जघन्यस्थिति के प्रमाण का, तहां प्रसंग पाइ तिनके आबाधा के कालभेदकाण्डकनि के प्रमाण कौं कहि भेद प्रमाण करि गुणितकांडक प्रमाण कौं उत्कृष्टस्थिति विषैं घटाएं जघन्यस्थिति का प्रमाण होने का वर्णन है ।

बहुरि एकेंद्रियादि जीवनि के स्थितिभेदनि कौं स्थापनकरि तहां चौदह जीवसमासनि विषैं जघन्य-उत्कृष्ट-स्थितिबंध अर अबाधा अर भेदनि के प्रमाण अर तिनके जानने का विधान वर्णन है । तहां प्रकृतिनि का जघन्य स्थितिबंध जिनकैं होइ

ताका, अर जघन्य आदि स्थितिबंध विषैं सादि नैं आदि देकर संभवपने का, अर विशुद्ध-संक्लेशपरिणामनि तें जैसें जघन्य-उत्कृष्ट स्थितिबंध होय ताका, अर आबाधा के लक्षण का, मोहादिक की आबाधा के काल का, आयु की आबाधा के विशेष का, तहां प्रसंग पाइ देव, नारकी, भोगभूमियां, कर्मभूमियानि के आयुबंध होने के समय का, उदीर्णा अपेक्षा आबाधाकाल के प्रमाण का, प्रसंग पाइ अचलावली, उदयावली, उपरितन स्थिति विषैं कर्मपरमाणु खिरने का, उदीर्णा के स्वरूप का, आयु वा अन्य कर्मनि के निषेकनि के स्वरूप का, अंकसंदृष्टिपूर्वक निषेकनि विषैं द्रव्यप्रमाण का, तहां गुणहानि आदि का वर्णन है ।

बहुरि अनुभागबंध का व्याख्यान विषैं प्रकृतिनि का अनुभाग जैसें संक्लेश-विशुद्धिपरिणामनिकरि बंधै है ताका, अर जिस प्रकृति का जाकैं तीव्र वा जघन्य अनुभाग बंधै है ताका, तहां प्रसंग पाइ अपरिवर्तमान, परिवर्तमान मध्यम परिणामनि के स्वरूपादिक का अर उत्कृष्टादि अनुभागबंध विषैं सादि नैं आदि देकरि भेदनि के संभवपने का वर्णन है । बहुरि घातियानि विषैं लता, दारु, अस्थि शैलभागरूप अनुभाग का, तहां देशघातिया स्पर्द्धकनि का मिथ्यात्व विषैं विशेष है ताका, अर जिन प्रकृतिनि विषैं जेते प्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै ताका, अर अघातियानि विषैं प्रशस्त प्रकृतिनि का गुड़, खांड, शर्करा, अमृतरूप; अप्रशस्त प्रकृतिनि का निंब, कांजीर, विष, हलाहलरूप अनुभाग का, अर इन प्रकृतिनि कैं तीन-तीन प्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै, ताका वर्णन है ।

बहुरि प्रदेशबंध का कथन विषैं एकक्षेत्र, अनेकक्षेत्रसंबंधी वा तहां कर्मरूप होने कौं योग्य-अयोग्यरूप; तिनविषैं भी जीव का ग्रहण की अपेक्षा सादि-अनादिरूप पुद्गलनि का प्रमाणादिक कहि, तहां जिन पुद्गलनि कौं समयप्रबद्ध विषैं ग्रहै है ताका, अर ग्रहे जे परमाणु तिनके प्रमाण कौं कहि तिनका आठ वा सात मूल प्रकृतिनि विषैं जैसें विभाग हो है ताका, तहां हीनाधिक विभाग होने के कारण का वर्णन है । अर उत्तर प्रकृतिनि विषैं विभाग के अनुक्रम का अर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय विषैं सर्वघाती-देशघाती द्रव्य के विभाग का, तहां प्रसंग पाइ मतिज्ञानावरणादि प्रकृतिनि विषैं सर्वघाती-देशघाती स्पर्द्धकनि का, तहां अनुभागसंबंधी नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि का प्रमाण कहि, तहां वर्गणानि का प्रमाण ल्याइ तिनविषैं जहां सर्वघाती-देशघातीपना पाइए ताका वर्णनकरि च्यारि घातिया कर्मनि की उत्तर प्रकृतिनि विषैं कर्मपरमाणुनि के विभाग का वर्णन है ।

तहां संज्वलन अर नोकषाय विषें विशेष है ताका, अर नोकषायनि विषें जिनका युगपत् बंध होइ तिनका, अर तिनके निरंतर बंधने के काल का, अर अंतराय की प्रकृतिनि विषें सर्वघातीपना नाहीं ताका वर्णन है। बहुरि युगपत् नामकर्म की तेईस आदि प्रकृति बंधैं तिनविषें विभाग का, अर वेदनीयादिक की एक-एक ही प्रकृति बंधै; तातें तहां विभाग न करने का वर्णन है ।

बहुरि मूल-उत्तर प्रकृतिनि का उत्कृष्टादि प्रदेशबंध विषें सादि इत्यादि भेद संभवने का, अर जिस प्रकृति का उत्कृष्ट-जघन्य प्रदेशबंध जाकें होय ताका, अर तहां प्रसंग पाइ स्तोकसा एक जीव के युगपत् जेते-जेते प्रकृति बंधैं, ताका वर्णन है। बहुरि इहां प्रसंग पाइ योगनि का कथन है। तहां उपपाद, एकांतवृद्धि, परिणामरूप योगनि के स्वरूपादिक का वर्णन है। अर योगनि के अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नानागुणहानि स्थाननि के स्वरूप, प्रमाण, विधान का योगशक्ति या प्रदेश अपेक्षा विशेष वर्णन है। अर योगनि का जघन्य स्थान तें लगाय स्थाननि विषें वृद्धि के अनुक्रम कौं आदि देकरि वर्णन है। अर सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि-अपर्याप्तक का जघन्य उपपादयोगस्थान कौं आदि देकरि चौरासी स्थाननि का, अर बीचि-बीचि जिनका स्वामी न पाइए तिनका, अर तिनविषें गुणकार के अनुक्रम का, अर जघन्य स्थान तें उत्कृष्ट स्थान के गुणकार का वर्णन है। अर तीन प्रकार योग निरंतर जेते काल प्रवर्त्तैं ताका, अर पर्याप्त त्रस संबंधी परिणामयोगस्थाननि विषें जे-जे जेते-जेते योगस्थान दोय आदि आठ समयपर्यंत निरंतर प्रवर्त्तैं तिनके प्रमाण ल्यावने कौं कालयवमध्य रचना का, अर पर्याप्त त्रससंबंधी परिणामयोगस्थाननि विषें जेते-जेते जीव पाइए तिनके प्रमाण जानने कौं गुणहानि आदि विशेष लीए जीवयवमध्य रचना का अर योगस्थाननि तें जेता-जेता प्रदेशबंध होय ताका, अर जघन्य तें उत्कृष्ट स्थान पर्यंत बंधने के क्रम का बीचि-बीचि जेते अविभागप्रतिच्छेद होइ तिनका वर्णन है।

बहुरि च्यारि प्रकार बंध के कारणनि का वर्णन है। बहुरि योगस्थानादिक के अल्पबहुत्व का वर्णन है। तहां योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवां भागमात्र तिनका वर्णनकरि तिनतें असंख्यात लोकगुणे कर्मप्रकृतिनि के भेदनि का वर्णन विषैं मतिज्ञानादिकनि के भेदनि का, अर क्षेत्र अपेक्षा आनुपूर्वी के भेदनि का कथन है। बहुरि तिनतें असंख्यातगुणे कर्मस्थिति के भेदनि का वर्णन विषैं—तिन एक-एक प्रकृति

की जघन्यादि उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति भेदनि का कथन है । बहुरि तिनतैं असंख्यातगुणे स्थितिबंधाध्यवसायनि का वर्णन विषैं द्रव्यस्थिति, गुणहानि, निषेक, चयादिककरि स्थितिबंध कौं कारण परिणामनि का स्तोकसा कथन है । बहुरि तिनतैं असंख्यात लोकगुणे अनुभागबंधाध्यवसायस्थाननि का वर्णन विषैं द्रव्यस्थिति-गुणहान्यादिककरि अनुभाग कौं कारण परिणामनि का स्तोकसा कथन है । बहुरि तिनतैं अनंतगुणे कर्मप्रदेशनि का वर्णन विषैं द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, चय, निषेकनि का अंकसंदृष्टि वा अर्थकरि कथन है । तहां एक समय विषैं समय-प्रबद्धमात्र पुद्गल बंधै, एक-एक निषेक मिलि समयप्रबद्धमात्र ही निर्जरैं, असैं होतैं द्वयर्द्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सत्त्व रहै, ताका विधान जानने कै अर्थि त्रिकोणयंत्र की रचना करी है ।

बहुरि असैं बंध वर्णनकरि उदय का वर्णन विषैं उदय-प्रकृतिनि का नियम कहि गुणस्थाननि विषैं व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि इहां ही उदीरणा विषैं विशेष कहि गुणस्थाननि विषैं व्युच्छित्ति, उदीरणा, अनुदीर्णारूप प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि मार्गणा विषैं उदय प्रकृतिनि का नियम कहि गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषैं संभवते गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय प्रकृतिनि का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ अनेक कथन है ।

बहुरि सत्त्व का कथन विषैं तीर्थंकर, आहारक की सत्ता का, मिथ्यादृष्ट्यादि विषैं विशेष अर आयुबंध भए पीछैं सम्यक्त्व-व्रत होने का विशेष, क्षायिक-सम्यक्त्व होने का विशेष कहि मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थाननि विषैं सत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन करि, ऊपरि क्षपकश्रेणी अपेक्षा व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन है । बहुरि मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषैं सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णनकरि उपशम-श्रेणी विषैं इकईस मोहप्रकृति उपशमावने का क्रम का, अर तहां सत्त्व-प्रकृतिनि का कथन है । बहुरि मार्गणानि विषैं सत्ता-असत्ता प्रकृतिनि का नियम कहि गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषैं संभवते गुणस्थाननि की अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति, सत्त्व, असत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ इन्द्रिय-काय मार्गणा विषैं प्रकृतिनि की उद्वेलना का इत्यादि अनेक वर्णन है ।

बहुरि विवेष सत्तारूप तीसरा सत्त्वस्थान-अधिकार विषैं एक जीव कैं एकै कालि प्रकृति पाइए तिनके प्रमाण की अपेक्षा स्थान, अर स्थान विषैं प्रकृति बदलने की अपेक्षा भंग, तिनका वर्णन है । तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्थानभंगनि का

स्वरूप कहि गुणस्थाननि विषैं सामान्य सत्त्व प्रकृतिनि का वर्णन करि विशेष वर्णन विषैं मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थाननि विषैं जेते स्थान वा भंग पाइए तिनकौं कहि जुदा-जुदा कथन विषैं तिनका विधान वा प्रकृति घटने, बधने, बदलने के विशेष का बद्धायु-अबद्धायु अपेक्षा वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ मिथ्यादृष्टि विषैं तीर्थंकर सत्तावाले कैं नरकायु ही का सत्त्व होइ ताका, वा एकेंद्रियादिक कैं उद्वेलना का अर सासादन विषैं आहार सत्ता के विशेष का, मिश्र विषैं अनंतानुबंधी रहित सत्त्वस्थान जैसें संभवै ताका, असंयत विषैं मनुष्यायु-तीर्थंकर सहित एक सौ अडतीस प्रकृति की सत्तावाले कैं दोय वा तीन ही कल्याणक होइ ताका, अपूर्वकरणादि विषैं उपशमक-क्षपक श्रेणी अपेक्षा का इत्यादि अनेक वर्णन है। बहुरि आचार्यनि के मतकरि जो विशेष है ताकौं कहि तिस अपेक्षा कथन है।

बहुरि चौथा त्रिचूलिका नामा अधिकार है। तहां प्रथम नव प्रश्नकरि चूलिका का व्याख्यान है। तिसविषैं पहिलैं तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिन प्रकृतिनि की उदयव्युच्छित्ति तैं पहिले बंधव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति तैं पीछैं बंधव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति-बंधव्युच्छित्ति युगपत् भई तिनका वर्णन है। बहुरि दूसरा – तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिनका अपना उदय होतैं ही बंध होइ तिनका, अर जिनका अन्य प्रकृतिनि का उदय होतैं ही बंध होइ तिनका, अर जिनका अपना वा अन्य प्रकृतिनि का उदय होतैं बंध होय तिन प्रकृतिनि का वर्णन है। बहुरि तीसरा – तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तर विषैं जिनका निरन्तर बंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर बंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर वा निरंतर बंध होइ तिनका कथन है। इहां तीर्थंकरादि प्रकृति निरंतर बंधी जैसें है ताका, अर सप्रतिपक्ष-निःप्रतिपक्ष अवस्था विषैं सांतर-निरंतर बंध जैसें संभवै है ताका वर्णन है।

बहुरि दूसरी पंचभागहारचूलिका का व्याख्यान विषैं मंगलाचरणकरि उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, सर्वसंक्रम – इन पंच भागहारनि के नाम का, अर स्वरूप का, अर ते भागहार जिनि-जिनि प्रकृतिनि विषैं वा गुणस्थाननि विषैं संभवैं ताका वर्णन है। अर सर्वसंक्रमभागहार, गुणसंक्रमभागहार, उत्कर्षण वा अपकर्षणभागहार, अधःप्रवृत्तभागहार, योगनि विषैं गुणकार, स्थिति विषैं नानागुणहानि, पल्य के अर्धच्छेद, पल्य का वर्गमूल, स्थिति विषैं गुणहानि-आयाम, स्थिति विषैं अन्योन्याभ्यस्त राशि, पल्य, कर्म की उत्कृष्ट स्थिति, विध्यातसंक्रमभागहार, उद्वेलनभागहार,

अनुभाग विषैं नानागुणहानि, गुणहानि, द्व्यर्द्धगुणहानि, दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनका प्रमाणपूर्वक अल्पबहुत्व का कथन है।

बहुरि तीसरी दशकरणचूलिका का व्याख्यान विषैं बंध, उत्कर्षण, संक्रम, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना – इन दशकरणनि के नाम का, स्वरूप का, जिनि-जिनि प्रकृतिनि विषैं वा गुणस्थाननि विषैं जैसें संभवैं तिनका वर्णन है।

बहुरि पांचवां बंध-उदय-सत्त्वसहित स्थानसमुत्कीर्तन नामा अधिकार विषैं मंगलाचरण करि एक जीव कैं युगपत् संभवतां बंधादिक प्रकृतिनि का प्रमाणरूप स्थान वा तहां प्रकृति बदलने करि भये भंगनि का वर्णन है। तहां मूल प्रकृतिनि के बंधस्थाननि का, अर तहां संभवते भुजाकारादि बंध विशेष का, अर भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्यरूप बंध विशेषनि के स्वरूप का, अर मूल प्रकृतिनि कैं उदयस्थान, उदीरणस्थान, सत्त्वस्थाननि का वर्णन है। बहुरि उत्तर प्रकृतिनि का कथन विषैं दर्शनावरण, मोहनीय, नाम की प्रकृतिनि विषैं विशेष है।

तहां दर्शनावरण के बंधस्थाननि का, अर तहां गुणस्थान अपेक्षा भुजाकारादि विशेष संभवने का, अर दर्शनावरण के गुणस्थाननि विषैं संभवते बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थाननि का वर्णन है।

बहुरि मोहनीय के बंधस्थाननि का, अर ते गुणस्थाननि विषैं जैसें संभवैं ताका, अर तहां प्रकृतिनि के नाम जानने कौं ध्रुवबंधी प्रकृति, वा कूटरचना आदिक का, अर तहां प्रकृति बदलने तें भए भंगनि का, अर तिन बंधस्थाननि विषैं संभवते भुजाकारादि विशेषनि का, वा भुजाकारादिक के लक्षण का, वा सामान्य-अवक्तव्य भंगनि की संख्या का, अर भुजाकारादि संभवने के विधान का, अर इहां प्रसंग पाइ गुणस्थाननि विषैं चढना, उतरना इत्यादि विशेषनि का वर्णन है। बहुरि मोह के उदयस्थाननि का, अर गुणस्थाननि विषैं संभवता दर्शनमोह का उदय कहि तहां संभवते मोह के उदयस्थाननि का, अर तहां प्रकृत्यादि के जानने कूं कूटरचना आदि का, अर तहां प्रकृति बदलने तैं भए भंगनि का, अर अनिवृत्तिकरण विषैं वेदादिक के उदयकालादिक का, अर सर्वमोह के उदयस्थान, अर तिनकी प्रकृतिनि का विधान, वा संख्या वा मिलाई हुई संख्या का, अर गुणस्थाननि विषैं संभवते उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व तिनकी अपेक्षा मोह के उदयस्थाननि का, वा तिनकी प्रकृतिनि-

का विधान, संख्या आदिक का, तहां अनंतानुबंधी रहित उदयस्थान मिथ्यादृष्टि की अपर्याप्त-अवस्था में न पाइए इत्यादि विशेष का वर्णन है।

बहुरि मोह के सत्त्वस्थाननि का वा तहां प्रकृति घटने का, अर ते स्थान गुणस्थाननि विषैं जैसैं संभवै ताका, अर अनिवृत्तिकरण विषैं विशेष है ताका वर्णन है।

बहुरि नामकर्म का कथन विषैं आधारभूत इकतालीस जीवपद, चौंतीस कर्मपदनि का व्याख्यान करि नाम के बंधस्थाननि का अर ते गुणस्थाननि विषैं जैसैं संभवै ताका, अर ते जिस-जिस कर्मपदसहित बंधै हैं ताका, अर तिनविषैं क्रम तैं ध्रुवबंधी आदि प्रकृतिनि के नाम का, अर तेइस के नै आदि दे करि नाम के बंधस्थाननि विषैं जे-जे प्रकृति जैसैं पाइए ताका, अर तहां प्रकृति बदलने तैं भए भंगनि का वर्णन है। अर इहां प्रसंग पाइ जीव मरि जहां उपजै ताका वर्णन विषैं प्रथमादि पृथ्वी नारकी मरि जहां उपजै वा न उपजै ताका, तहां प्रसंग पाइ स्वयंभू-रमण-समुद्रपरैं कूणानि विषैं कर्मभूमियां तिर्यंच हैं इत्यादि विशेष का, अर बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त अग्निकायिक आदि जीव जहां उपजै ताका, तहां सूक्ष्मनिगोद तैं आए मनुष्य सकल संयम न ग्रहै इत्यादि विशेष का, अर अपर्याप्त मनुष्य जहां उपजै ताका, अर भोगभूमि-कुभोगभूमि के तिर्यंच-मनुष्य, अर कर्मभूमि के मनुष्य जहां उपजै ताका, अर सर्वार्थसिद्धि तैं लगाय भवनत्रिक पर्यंत देव जहां उपजै ताका वर्णन है। बहुरि जैसैं च्यवन-उत्पाद कहि चौदह मार्गणानि विषैं गुणस्थाननि की अपेक्षा लीएं जैसें जे-जे नामकर्म के बंधस्थान संभवै तिनका वर्णन है।

तहां गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद मार्गणानि विषैं तो लेश्या अपेक्षा बंधस्थाननि का कथन है। कषाय मार्गणा विषैं अनंतानुबंधी आदि जैसैं उदय हो है ताका, वा इनके देशघाती-सर्वघाती स्पर्द्धकनि का, वा सम्यक्त्व-संयम घातने का, वा लेश्या अपेक्षा बंधस्थाननि का कथन है। अर ज्ञान मार्गणा विषैं गति आदिक की अपेक्षा करि बंधस्थाननि का कथन है। अर संयम मार्गणा विषैं सामायिकादिक के स्वरूप का, अर संयतासंयत विषैं दोय गति अपेक्षा, अर असंयम विषैं च्यारि गति अपेक्षा बंधस्थाननि का कथन है। तहां निर्वृत्यपर्याप्त देव के बंधस्थान कहने कौं देवगति विषैं जे-जे जीव जहां पर्यंत उपजै ताका, अर सासादन विषैं बंधस्थान कहने कौं जे-जे जीव जैसैं उपशम-सम्यक्त्व कौं छोडि सासादन होइ ताका इत्यादि कथन है। अर दर्शन मार्गणा विषैं गति अपेक्षा बंधस्थाननि का कथन है।

अर लेश्या मार्गणा विषै प्रथमादि नरक पृथ्वीनि विषै लेश्या संभवने का, जिस-जिस संहनन के धारी जे-जे जीव जहां-जहां पर्यंत नरकविषै उपजैं ताका, नरकनिविषै पर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था अपेक्षा बंधस्थाननि अर का, तिर्यंच विषै एकेंद्रियादिक कै वा भोगभूमियां तिर्यंच कै जो-जो लेश्या पाइए ताका, अर जे-जे जीव जिस-जिस लेश्याकरि तिर्यंच विषै उपजैं ताका, अर तिनकै निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था विषै बंधस्थाननि का, अर जहां तैं आए सासादन वा असंयत होइ अर तिनके जे बंधस्थान होइ ताका, अर शुभाशुभलेश्यानि विषै परिणामनि का, तहां प्रसंग पाइ कषायनि के स्थान वा तहां संक्लेश-विशुद्धस्थान वा कषायनि के च्यारि शक्तिस्थान, चौदह लेश्या स्थान, बीस आयु बन्धाबन्धस्थान तिनका, अर लेश्यानि के छब्बीस अंश, तहां आठ मध्यम अंश आयुबन्ध कौं कारण, ते आठ अपकर्षकालनि विषै होइ, अन्य अठारह अंश च्यारि गतिनि विषै गमन कौं कारण तिनके विशेष का, अर लेश्यानि के पलटने के क्रम का वर्णन करि, तिर्यंच कै मिथ्यादृष्टि आदि विषै जैसैं मिथ्यात्व-कषायनि का उदय पाइए है ताकौं कहि, तहां जे बंधस्थान पाइए ताका, अर भोगभूमियां तिर्यंच कै वा प्रसंग पाई औरनि कै जैसैं निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त मिथ्यादृष्टि आदि विषै जैसैं लेश्याकरि बंधस्थान पाइए, वा भोगभूमि विषै जैसैं उपजना होइ ताका वर्णन है।

बहुरि मनुष्यगति विषै लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, पर्याप्त दशा विषै जो-जो लेश्या पाइए वा तहां संभवते गुणस्थाननि विषै बंधस्थान पाइए ताका वर्णन है ।

बहुरि देवगति विषै भवनत्रिकादिक कै निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त दशा विषै जो-जो लेश्या पाइए, वा देवनि के जहां जन्मस्थान हैं वा जे जीव जिस-जिस लेश्याकरि जहां-जहां देवगति विषै उपजैं, वा निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त-दशा विषै मिथ्यादृष्टि आदि जीवनी कैं जे-जे बंधस्थान पाइए तिनका, अर तहां प्रासंगिक गाथानिकरि जे-जे जीव जहां-जहां पर्यंत देवगति विषै उपजैं, वा अनुदिशादिक विमाननि तैं चयकरि जे पद न पावैं, वा जे जीव देवगति तैं चयकरि मनुष्य होइ निर्वाण ही जाय, वा जहां के आये तिरेसठि शलाका पुरुष न होइ, वा देवपर्याय पाइ जैसैं जिनपूजादिक कार्य करैं तिनका वर्णन है।

बहुरि भव्यमार्गणा विषै बंधस्थाननि का वर्णन है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषै सम्यक्त्व के लक्षण का, भेदनि का, जहां मरण न होय ताका, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व जाकै होइ ताका, वा वाकै जिन प्रकृतिनि

का उपशम होइ ताका, तहां लब्धि आदि होने का, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व भए मिथ्यात्व के तीन खंड हो हैं ताका, तहां नारकादिक कैं जे बंधस्थान पाइए तिनका, तहां नरक विषैं तीर्थंकर के बंध होने के विधान का, वा साकार-उपयोग होने का, वा निसर्गज-अधिगमज के स्वरूप का अर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जाकैं होइ ताका, तहां अपूर्वकरणादि विषैं जो-जो क्रिया करता चढै वा उतरै ताका, तहां जे बंधस्थान संभवैं ताका, वा तहां मरि देव होय ताकैं बंधस्थान संभवै ताका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ-निष्ठापन जाकैं होइ ताका, वा तहां तीन करण हो हैं तिनका, तहां गुणश्रेणी आदि होने का अर अनंतानुबंधी का विसंयोजनकरि पीछैं केई क्रिया करि करणादि विधान तैं दर्शनमोह क्षपावने का, अर तहां प्रारंभ-निष्ठापन के काल का, वा तिनके स्वामीनि का, वा तहां तीर्थंकर सत्तावाले कैं तद्भव-अन्यभव विषैं मुक्ति होने का वर्णनकरि क्षायिक सम्यक्त्व विषैं संभवते बंधस्थाननि का वर्णन है। बहुरि वेदक-सम्यक्त्व जिनकैं होइ अर प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तैं वा मिथ्यात्व तैं जैसैं वेदक सम्यक्त्व होइ, अर तिनकैं जे बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि सासादन, मिश्र, मिथ्यात्व जहां-जहां जिस-जिस दशा विषैं संभवै अर तहां जे बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ विवक्षित गुणस्थान तैं जिस-जिस गुणस्थान कौं प्राप्त होइ ताका वर्णन है।

बहुरि संज्ञी अर आहार मार्गणा विषैं बंधस्थाननि का वर्णन है। बहुरि नाम के बंधस्थाननि विषैं भुजाकारादि कहने कौं पुनरुक्त, अपुनरुक्त भंगनि का, अर स्वस्थानादि तीन भेदनि का, प्रसंग पाइ गुणस्थाननि तैं चढने-उतरने का, जहां मरण न होइ ताका, कृतकृत्य-वेदक सम्यग्दृष्टि मरि जहां उपजै ताका, भुजाकारादिक के लक्षण का, अर इकतालीस जीव पदनि विषैं भंगसहित बंधस्थाननि का वर्णन करि, मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननि विषैं संभवते भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित, अवक्तव्य भंगनि का वर्णन है।

बहुरि नाम के उदयस्थाननि का वर्णन विषैं कार्माण[1], मिश्रशरीर, शरीरपर्याप्ति, उच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति इन पंचकालनि का स्वरूप प्रमाणादिक कहि, वा केवली के समुद्घात अपेक्षा इनका संभवपना कहि, नाम के उदयस्थान हानि

१. 'होने का' ऐसा ख पुस्तक में पाठ है।

का विधान विषैं ध्रुवोदयी आदि प्रकृतिनि का वर्णन करि, तिन पंचकालनि की अपेक्षा लीए जिस-जिस प्रकार बीस प्रकृति रूप स्थान तैं लगाय संभवते नाम के उदयस्थाननि का, अर तहां प्रकृति बदलने करि संभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि नाम के सत्त्वस्थाननि का वर्णन विषैं तिराणवे प्रकृतिरूप स्थान आदि जैसैं जे सत्त्वस्थान हैं तिनका, अर तहां जिन प्रकृतिनि की उद्वेलना हो है तिनके स्वामी वा क्रम वा कालादिक विशेष का, अर सम्यक्त्व, देशसंयम, अनंतानुबंधी का विसंयोजन, उपशमश्रेणी चढना, सकलसंयम धरना, ए उत्कृष्टपनै केती वार होइ तिनका, अर च्यारि गति की अपेक्षा लीए गुणस्थाननि विषैं जे सत्त्वस्थान संभवैं तिनका, अर इकतालीस जीवपदनि विषैं सत्त्वस्थान संभवैं तिनका वर्णन है।

बहुरि त्रिसंयोग विषैं स्थान वा भंगनि का वर्णन है। तहां मूल प्रकृतिनि विषैं जिस-जिस बंधस्थान होतैं जो-जो उदय वा सत्त्वस्थान होइ ताका, अर ते गुणस्थाननि विषैं जैसैं संभवैं ताका वर्णन है। बहुरि उत्तर प्रकृतिनि विषैं ज्ञानावरण, अंतराय का तौ पांच-पांच ही का बंध, उदय, सत्त्व होइ; तातैं तहां विशेष वर्णन नाहीं। अर दर्शनावरण विषैं जिस-जिस बंधस्थान होतैं जो-जो उदय वा सत्त्वस्थान गुणस्थान अपेक्षा संभवै ताका वर्णन है, अर वेदनीय विषैं एक-एक प्रकृति का उदय-बंध होतैं भी प्रकृति बदलने की अपेक्षा, वा सत्त्व दोय का वा एक का भी हो है, ताकी अपेक्षा गुणस्थान विषैं संभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि गोत्र विषैं नीच-उच्च गोत्र के बंध, उदय, सत्त्व के बदलने की अपेक्षा गुणस्थाननि विषैं संभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि आयु विषैं भोगभूमियां आदि जिस काल विषैं आयुबंध करैं ताका, एकेंद्रियादि जिस आयु कौं बांधै ताका, नारकादिकनि कैं आयु का उदय, सत्त्व संभवै ताका, अर आठ अपकर्ष विषैं बंधै ताका, तहां दूसरी, तीसरी बार आयुबंध होने विषैं घटने-बधने का, अर बध्यमान-भुज्यमान आयु के घटनेरूप अपवर्तनघात, कदलीघात का वर्णन करि बंध, अबंध, उपरिलबंध की अपेक्षा गुणस्थाननि विषैं संभवते भंगनि का वर्णन है। बहुरि वेदनीय, गोत्र, आयु इनके भंग मिथ्यादृष्ट्यादि विषैं जेते-जेते संभवैं, वा सर्व भंग जेते-जेते हैं तिनका वर्णन है।

बहुरि मोह के स्थाननि की अपेक्षा भंग कहि गुणस्थाननि विषैं बंध, उदय, सत्त्वस्थान जैसैं पाइए ताका वर्णन करि मोह के त्रिसंयोग विषैं एक आधार, दोय आधेय, तीन प्रकार, तहां जिस-जिस बंधस्थान विषैं जो-जो उदयस्थान, वा

सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस उदयस्थान विषैं जो-जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस सत्त्वस्थान विषैं जो-जो बंधस्थान वा उदयस्थान संभवैं तिनका वर्णन है। बहुरि मोह के बंध, उदय, सत्त्वनि विषैं दोय आधार, एक आधेय तीन प्रकार, तहां जिस-जिस बंधस्थानसहित उदयस्थान विषैं जो-जो सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवै, अर जिस-जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थान विषैं जो-जो उदयस्थान संभवै अर जिस-जिस उदयस्थान सहित सत्त्वस्थान विषैं जो-जो बंधस्थान पाइए ताका वर्णन है। बहुरि नामकर्म के स्थानोक्त भंग कहि गुणस्थाननि विषैं, अर चौदह जीवसमासनि विषैं अर गति आदि मार्गणानि के भेदनि विषैं संभवते बंध, उदय, सत्त्वस्थाननि का वर्णनकरि एक आधार, दोय आधेय का वर्णन विषैं जिस-जिस बंधस्थाननि विषैं जो-जो उदयस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवैं, अर जिस-जिस उदयस्थान विषैं जो-जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवैं, अर जिस-जिस सत्त्वस्थान विषैं जो-जो बंधस्थान वा उदयस्थान जिस-जिसप्रकार संभवैं तिनका वर्णन है। बहुरि दोय आधार, एक आधेय विषैं जिस-जिस बंधस्थानसहित उदयस्थान विषैं जो-जो सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस-जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थान विषैं जो-जो उदयस्थान संभवैं अर जिस-जिस उदयस्थानसहित सत्त्वस्थान विषैं जो-जो बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि छठा प्रत्यय अधिकार है, तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा करि च्यारि मूल आस्रव अर सत्तावन उत्तरआस्रवनि का, अर ते जैसैं गुणस्थाननि विषैं संभवै ताका, तहां व्युच्छित्ति वा आस्रवनि के प्रमाण, नामादिक का वर्णन करि, तहां विशेष जानने कौं पंच प्रकारनि का वर्णन है। तहां प्रथम प्रकार विषैं एक जीव कैं एक काल संभवैं ऐसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप आस्रवस्थान जेते-जेते गुणस्थाननि विषैं पाइए तिनका वर्णन है।

बहुरि दूसरा प्रकार विषैं एक-एक स्थान विषैं आस्रवभेद बदलने तैं जेते-जेते प्रकार होइ तिनका वर्णन है।

बहुरि तीसरा प्रकार विषैं तिन स्थाननि के प्रकारनि विषैं संभवते आस्रवनि की अपेक्षा कूटरचना के विधान का वर्णन है।

बहुरि चौथा प्रकार विषैं तिनहू कूटनि के अनुसारि अक्षसंचारि विधान तैं जैसें आस्रवस्थाननि कौं कहनें का विधानरूप कूटोच्चारण विधान का वर्णन है। तहां

अविरत विषैं युगपत् संभवते हिंसा के प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भेदनि का, अर ते भेद जेते होइ ताका वर्णन है ।

बहुरि पांचवां प्रकार विषैं तिन स्थाननि विषैं भंग ल्यावने के विधान का वा गुणस्थाननि विषैं संभवते भंगनि का, तहाँ अविरत विषैं हिंसा के प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंग ल्यावने कौं गणितशास्त्र के अनुसार प्रत्येक द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंगनि के ल्यावने के विधान का वर्णन है । बहुरि आस्रवनि के विशेषभूत जिनि-जिनि भाव तैं स्थिति-अनुभाग की विशेषता लीयें ज्ञानावरणादि जुदि-जुदि प्रकृति का बंध होइ तिनका क्रम तैं वर्णन है ।

बहुरि सातवां भावचूलिका नामा अधिकार है। तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा करि भावनि तैं गुणस्थानसंज्ञा हो है ऐसें कहि पंच मूल भावनि का, अर इनके स्वरूप का, १ अर तिरेपन उत्तर भावनि का, अर मूल-उत्तर भावनि विषैं अक्षसंचार विधान तैं प्रत्येक परसंयोगी, स्वसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंग जैसें होइ ताका, अर नाना जीव, नाना काल अपेक्षा गुणस्थान विषैं संभवते भावनि का वर्णन है ।

बहुरि एक जीव कैं युगपत् संभवते भावनि का वर्णन है । तहां गुणस्थाननि विषैं मूल भावनि के प्रत्येक, परसंयोगी, द्विसंयोगी आदि संभवते भंगनि का वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग ल्यावने के गणितशास्त्र अनुसार विधान वर्णन है । बहुरि गुणस्थाननि विषैं मूल भावनि की वा तिनके भंगनि की संख्या का वर्णन है ।

बहुरि उत्तर भावनि के भंग स्थानगत, पदगत भेद तैं दोय प्रकार कहे हैं । तहां एक जीव कें एक काल संभवते भावनि का समूह सो स्थान । तिस अपेक्षा जे स्थानगत भंग, तिन विषैं स्वसंयोगी भंग के अभाव का अर गुणस्थाननि विषैं संभवते औपशमिकादिक भावनि का अर औदयिक के स्थाननि के भंगनि का वर्णन करि तहां संभवते स्थाननि के परस्पर संयोग की अपेक्षा गुण्य, गुणकार, क्षेपादि विधान तैं जैसें जेते प्रत्येक भंग अर परसंयोगी विषैं द्विसंयोगी आदि भंग होइ तिनका, अर तहां गुण्य, गुणकार, क्षेप का प्रमाण कहि सर्वभंगनि के प्रमाण का वर्णन है ।

बहुरि जातिपद, सर्वपद भेदकरि पदगत भंग दोय प्रकार, तिनका स्वरूप कहि गुणस्थाननि विषैं जेते-जेते जातिपद संभवैं तिनका, अर तिनकौं परस्पर

१. ख पुस्तक में यह पाठ नहीं है ।

लगावने की अपेक्षा गुण्य, गुणकार, क्षेप आदि विधान तैं जेते-जेते प्रत्येक स्वसंयोगी परसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंग संभवैं तिनका, अर तहां गुण्य, गुणकार, क्षेप का प्रमाण कहि सर्व भंगनि के प्रमाण का वर्णन है ।

बहुरि पिंडपद, प्रत्येकपद भेदकरि सर्वपद भंग दोय प्रकार है । तिनके स्वरूप का, अर गुणस्थान विषैं ए जेतै जैसें संभवैं ताका, अर तहां परस्पर लगावने तैं प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंग कीए जे भंग होहि तिनका, तहां मिथ्यादृष्टि का पन्द्रहवां प्रत्येक पद लिये भंग ल्यावने का प्रसंग पाइ गणितशास्त्र के अनुसार एकवार, दोयबार आदि संकलन धन के विधान का, अर गुणस्थाननि विषैं प्रत्येकपद, पिंडपदनि की रचना के विधान का, अर प्रत्येकपदनि के प्रमाण का, अर तहां जेते सर्वपद भंग भए तिनका वर्णन है । बहुरि यहां तीनसै तिरेसठि कुवाद के भेदनि का अर तिन विषैं जैसें प्ररूपण है ताका, अर एकान्तरूप मिथ्यावचन, स्याद्वादरूप सम्यग्वचन का वर्णन है ।

बहुरि आठवां त्रिकरण चूलिका नामा अधिकार है । तहां मंगलाचरण करि करणनि का प्रयोजन कहि अधःकरण का वर्णन विषैं ताके काल का अर तहां संभवते सर्व परिणाम, प्रथम समय संबंधी परिणाम, अर समय-समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, वा द्वितीयादि समय संबन्धी परिणाम, वा समय-समय सम्बन्धी परिणामनि विषैं खंड रचनाकरि अनुकृष्टि विधान, तहां खंडनि विषैं प्रथम खंड विषैं वा खंड-खंड प्रति वृद्धिरूप वा द्वितीयादि खंडनि विषैं परिणाम तिनका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है । तहां श्रेणीव्यवहार नामा गणित के सूत्रनि के अनुसार ऊर्ध्वरूप गच्छ, चय, उत्तर धन, आदि धन, सर्व धनादिक का, अर अनुकृष्टि विषैं तिर्यग्रूप गच्छादिक के प्रमाण ल्यावने का विधान वर्णन है । अर तिन खंडनि विषैं विशुद्धता का अल्प-बहुत्व का वर्णन है । बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन विषैं अनुकृष्टि विधान नाहीं, ऊर्ध्वरूप गच्छादिक का प्रमाण ल्यावने का विधान पूर्वक ताके काल का वा सर्व परिणाम, प्रथम समयसंबन्धी परिणाम, समय-समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, द्वितीयादि समय संबन्धी परिणाम, तिनका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है । बहुरि अनिवृत्ति करण विषैं भेद नाहीं, तातैं तहां कालादिक का वर्णन है ।

बहुरि नवमा कर्मस्थिति अधिकार है । तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि आबाधा के लक्षण का वा स्थिति अनुसार ताके काल का, वा उदीरणा अपेक्षा

आबाधाकाल का वर्णन है। बहुरि कर्मस्थिति विषैं निषेकनि का वर्णन है। बहुरि प्रथमादि गुणहानिनि के प्रथमादि निषेकनि का वर्णन है। बहुरि स्थितिरचना विषैं द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दोगुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनके स्वरूप, का, अर अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा तिनके प्रमाण का वर्णन है। तहां नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्त राशि सर्व कर्मनि का समान नाहीं, तातैं इनका विशेष वर्णन है। तहां मिथ्यात्वकर्म की नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त जानने का विधान वर्णन है। इहां प्रसंग पाइ **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि करणसूत्रकरि गुणकाररूप पंक्ति के जोडने का विधान आदि वर्णन है। बहुरि गुणहानि, दो गुणहानि के प्रमाण का वर्णन है। तहां ही विशेष जो चय ताका प्रमाण वर्णन है। ऐसे प्रमाण कहि प्रथमादि गुणहानिनि का वा तिनविषैं प्रथमादि निषेकनि का द्रव्य जानने का विधान वा ताका प्रमाण अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। बहुरि मिथ्यात्ववत् अन्यकर्मनि की रचना है। तहां गुणहानि, दो गुणहानि तो समान हैं, अर नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त राशि समान नाहीं। तिनके जानने कौं सात पंक्ति करि विधान कहि तिनके प्रमाण का, अर जिस-जिसका जेता-जेता नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त का प्रमाण आया, ताका वर्णन है। बहुरि ऐसें कहि अंकसंदृष्टि अपेक्षा त्रिकोणयंत्र, अर त्रिकोणयंत्र का प्रयोजन, अर तहां एक-एक निषेक मिलि एक समयप्रबद्ध का उदय त्रिकोणयंत्र हो है। अर सर्व त्रिकोणयंत्र के निषेक जोड़ें किंचिदून द्व्यर्द्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है तिनका वर्णन है। बहुरि निरंतर-सांतररूप स्थिति के भेद, स्वरूप स्वामीनि का वर्णन है। बहुरि स्थितिबंध कौं कारण जे स्थितिबंधाध्यवसायस्थान तिनका वर्णन विषैं आयु आदि कर्म के स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननि के प्रमाण का अर स्थितिबंधाध्यवसाय के स्वरूप जानने कौं सिद्धांत वचनिका वर्णनकरि स्थिति के भेदनि कौं कहि तिन विषैं जेते-जेते स्थितिबंधाध्यवसायस्थान संभवैं तिनके जानने कौं द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दो-गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त का वा चय का, वा प्रथमादि गुणहानिनि का, वा तिनके निषेकनि का, वा आदि धनादिक का द्रव्यप्रमाण अर ताके जानने का विधान, ताका वर्णन है। बहुरि इहां एक-एक स्थितिभेद संबंधी स्थितिबन्धाध्यवसायस्थननि विषैं नानाजीव अपेक्षा खंड हो है। तहां ऊपरली-नीचली स्थिति संबंधी खंड समान भी हो हैं; तातैं तहां अनुकृष्टि-रचना का वर्णन है। तहां आयुकर्म का जुदा ही विधान है, तातैं पहिले आयु की कहि, पीछे मोहादिक की अनुकृष्टि-रचना का अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। तहां

खंडनि की समानता-असमानता इत्यादि अनेक कथन है । बहुरि अनुभागबंध को कारण जे अनुभागाध्यवसायस्थान तिनका वर्णन विषें तिन सर्वनि का प्रमाण कहि, तहां एक-एक स्थितिभेद संबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननि विषैं द्रव्य, स्थिति, गुणहानि आदि का प्रमाणादिक कहि एक-एक स्थितिबंधाध्यवसायस्थानरूप जे निषेक तिनविषें जेते-जेते अनुभागाध्यवसायस्थान पाइए तिनका वर्णन है । बहुरि मूलग्रंथकर्त्ताकरि कीया हुवा ग्रंथ की संपूर्णता होने विषैं ग्रंथ के हेतु का, चामुंडराय राजा को आशीर्वाद का, ताकरि बनाया चैत्यालय वा जिनबिंब का, वीरमार्तंड राजा कौं आशीर्वाद का वर्णन है । बहुरि संस्कृत टीकाकार अपने गुरुनि का वा ग्रंथ होने के समाचार कहे हैं तिनका वर्णन है ।

ऐसें श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह मूलशास्त्र, ताकी जीवतत्त्व-प्रदीपिका नामा संस्कृतटीका के अनुसार इस भाषाटीका विषैं अर्थ का वर्णन होसी ताकी सूचनिका कही ।

अर्थसंदृष्टि सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि तहां जे संदृष्टि हैं, तिनका अर्थ, वा कहे अर्थ तिनकी संदृष्टि जानने कौं इस भाषाटीका विषैं जुदा ही संदृष्टि अधिकार विषैं वर्णन होसी ।

इहां कोऊ कहै – अर्थ का स्वरूप जान्या चाहिए, संदृष्टिनि के जानें कहा सिद्धि हो है ?

ताका समाधान – संदृष्टि जानें पूर्वाचार्यनि की परंपरा तैं चल्या आया जो संकेतरूप अभिप्राय, ताकौं जानिए है । अर थोरे में बहुत अर्थ कौं नीकै पहिचानिए है । अर मूलशास्त्र वा संस्कृतटीका विषैं, वा अन्य ग्रंथनि विषैं, जहां संदृष्टिरूप व्याख्यान है, तहां प्रवेश पाइये है । अर अलौकिक गणित के लिखने का विधान आदि चमत्कार भासै है । अर संदृष्टिनि कौं देखते ही ग्रंथ की गंभीरता प्रगट हो है – इत्यादि प्रयोजन जानि संदृष्टि अधिकार करने का विचार कीया है ।

तहां केई संदृष्टि आकाररूप है, केई अंकरूप है, केई अक्षररूप है, केई लिखने ही का विशेषरूप है, सो तिस अधिकार विषैं पहिले तौ सामान्यपनैं संदृष्टिनि का वर्णन है, तहां पदार्थनि के नाम तैं, संख्या तैं अर अक्षरनि तैं अंकनि की अर प्रभृति आदि की संदृष्टिनि का वर्णन है ।

बहुरि सामान्य संख्यात, असंख्यात,अनंत की, अर इनके इकईस भेदनि की, अर पल्य आदि आठ उपमा प्रमाण की, अर इनके अर्धच्छेद वा वर्गशलाकानि की संदृष्टिनि का वर्णन है । बहुरि परिकर्माष्टक विषैं संकलनादि होतैं जैसैं सहनानि हो है अर बहुत प्रकार संकलनादि होतें वा संकलनादि आठ विषैं एकत्र दोय, तीन आदि होतैं जो सहनानी हो है, वा संकलनादि विषैं अनेक सहनानी का एक अर्थ हो है इत्यादिकिनि का वर्णन है । अर स्थिति-अनुभागादिक विषैं आकाररूप सहनानी है, वा केई इच्छित सहनानी है, इत्यादिकनि का वर्णन है । ऐसैं सामान्य वर्णन करि पीछैं श्रीमद् गोम्मटसार नामा मूलशास्त्र वा ताकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा टीका, ताविषैं जिस-जिस अधिकार विषैं कथन का अनुक्रम लीए संख्यादिक अर्थ की जैसें-जैसें संदृष्टि है, तिनका अनुक्रम तैं वर्णन है । तहां केई करण वा त्रिकोणयंत्र का जोड़ इत्यादिकनि का संदृष्टिनि का संस्कृत टीका विषैं वर्णन था अर भाषा करतें अर्थ न लिख्या था, तिनका इस संदृष्टि अधिकार विषैं अर्थ लिखिएगा । अर मूलशास्त्र के यंत्ररचना विषैं वा संस्कृत टीका विषैं केई संदृष्टिरूप रचना ही लिखी थी । तिनकौं अर्थपूर्वक इस संदृष्टि अधिकार विषैं लिखिएगा, सो इहां तिनकी सूचनिका लिखैं विस्तार होई, तातैं तहां ही वर्णन होगा सो जानना ।

इहां कोऊ कहै – मूलशास्त्र वा टीका विषैं जहां संदृष्टि वा अर्थ लिख्या था, तहां ही तुम भी तिनके अर्थनि का निरूपण करि क्यों न लिखान किया ? तहां छोडि तिनकौं एकत्र करि संदृष्टि अधिकार विषैं कथन किया सो कौन कारण ?

तहां समाधान – जो यहु टीका मंदबुद्धीनि कैं ज्ञान होने के अर्थि करिए है, सो या विषैं बीचि-बीचि संदृष्टि लिखने तैं कठिनता तिनकौं भासै, तब अभ्यास तैं विमुख होइ, तातैं जिनकौं अर्थमात्र ही प्रयोजन होहि, सो अर्थ ही का अभ्यास करौ अर जिनकौं संदृष्टि कौं भी जाननी होइ, ते संदृष्टि अधिकार विषैं तिनका भी अभ्यास करौ ।

बहुरि इहां कोई कहै – तुम ऐसा विचार कीया, परंतु कोई इस टीका का अवलंबन तैं संस्कृत टीका का अभ्यास कीया चाहै, तो कैसैं अभ्यास करै ?

ताकौं कहिए है – अर्थ का तौ अनुक्रम जैसै संस्कृत टीका विषैं है, तैसें या विषैं है ही । अर जहां जो संदृष्टि आदि का कथन बीचि मैं आवै, ताकौं संदृष्टि अधिकार विषैं तिस स्थल विषैं बाकी कथन है; ताकौं जानि तहां अभ्यास करौ । ऐसैं विचारि संदृष्टि अधिकार करने का विचार कीया है ।

लब्धिसार-क्षपणासार सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि ऐसा विचार भया जो लब्धिसार अर क्षपणासार नामा शास्त्र है, तिन विषें सम्यक्त्व का अर चारित्र का विशेषता लीए बहुत नीकै वर्णन है। अर तिस वर्णन कौं जानें मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननि का भी स्वरूप नीकै जानिए है, सो इनका जानना बहुत कार्यकारी जानि, तिन ग्रंथनि के अनुसारि किछू कथन करना। तातैं लब्धिसार शास्त्र के गाथा सूत्रनि की भाषा करि इस ही टीका विषें मिलाइएगा। तिस ही के क्षपक श्रेणी का कथन रूप गाथा सूत्रनि का अर्थ विषें क्षपणासार का अर्थ गर्भित होयगा ऐसा जानना।

इहां कोऊ कहै – तिन ग्रंथनि की जुदी ही टीका क्यों न करिए ? याही विषें कथन करने का कहा प्रयोजन ?

ताका समाधान – गोम्मटसार विषें कह्या हुवा केतेइक अर्थनि कौं जानें बिना तिन ग्रंथनि विषें कह्या हुवा केतेइक अर्थनि का ज्ञान न होय, वा तिन ग्रंथनि विषें कह्या हुवा अर्थ कौं जानें इस शास्त्र विषें कहे हुए गुणस्थानादिक केतेइक अर्थनि का स्पष्ट ज्ञान होइ, सो ऐसा संबंध जान्या अर तिन ग्रंथनि विषें कहे अर्थ कठिन हैं, सो जुदा रहे प्रवृत्ति विशेष न होइ तातैं इस ही विषें तिन ग्रंथनि का अर्थ लिखने का[1] विचार कीया है। सो तिस विषें प्रथमोपशम सम्यक्त्वादि होने का विधान धाराप्रवाह रूप वर्णन है। तातैं ताकी सूचनिका लिखें विस्तार होइ, कथन आगैं होयहीगा। तातैं इहां अधिकार मात्र ताकी सूचनिका लिखिए है।

प्रथम मंगलाचरण करि प्रकार कारण का वा प्रकृतिबंधापसरण, स्थिति-बंधापसरण, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक, गुणश्रेणी फालि इत्यादि, केतीइक संज्ञानि का स्वरूप वर्णन करि प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने का विधान वर्णन है।

तहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने योग्य जीव का, अर पंचलब्धिनि के नामादिक कहि, तिनके स्वरूप का वर्णन है। तहां प्रायोग्यता लब्धि का कथन विषें जैसें स्थिति घटै है अर तहां च्यारि गति अपेक्षा प्रकृतिबन्धापसरण हो है ताका, अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेशबंध का वर्णन है। बहुरि च्यारि गति अपेक्षा एक जीव कैं युगपत् संभवता भंगसहित प्रकृतिनि के उदय का, अर स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के

---

१. ध प्रति में 'अर्थ लिखने का' स्थान पर 'अनुसारि किछु कथन' ऐसा पाठ मिलता है।

उदय का वर्णन है । बहुरि एक जीव कैं युगपत् संभवती प्रकृतिनि के सत्त्व का वा स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के सत्त्व का वर्णन है । बहुरि करणलब्धि का कथन विषैं तीन करणनि का नाम-कालादिक कहि तिनके स्वरूपादिक का वर्णन है ।

तहां अधःकरण विषैं स्थितिबंधापसरणादिक आवश्यक हो है, तिनका वर्णन है ।

अर अपूर्वकरण विषैं च्यारि आवश्यक, तिनविषैं गुणश्रेणी निर्जरा का कथन है । तहां अपकर्षण किया हुआ द्रव्य कौं जैसें उपरितन स्थिति गुणश्रेणी आयाम उदयावली विषैं दीजिए है, सो वर्णन है । तहां प्रसंग पाइ उत्कर्षण वा अपकर्षण किया हुआ द्रव्य का निक्षेप अर अतिस्थापन का विशेष वर्णन है । बहुरि गुणसंक्रमण इहां न संभवै है, सो जहां संभवै है ताका वर्णन है । बहुरि स्थितिकांडक, अनुभाग-कांडक के स्वरूप, प्रमाणादिक का अर स्थिति, अनुभागकांडकोत्करण काल का वर्णनपूर्वक स्थिति, अनुभाग, सत्त्व घटावने का वर्णन है ।

बहुरि अनिवृत्तिकरण विषैं स्थितिकांडकादि विधान कहि ताके काल का संख्यातवां भाग रहैं अंतरकरण हो है, ताके स्वरूप का, अर आयाम प्रमाण का, अर ताके निषेकनि का अभाव करि जहां निक्षेपण कीजिए है ताका इत्यादि वर्णन है । बहुरि अंतरकरण करने का अर प्रथम स्थिति का, अर अंतरायाम का काल वर्णन है । बहुरि अंतरकरण का काल पूर्ण भए पीछैं प्रथम स्थिति का काल विषैं दर्शनमोह के उपशमावने का विधान, काल, अनुक्रमादिक का, तहां आगाल, प्रत्यागाल जहां पाइए है वा न पाइए है ताका, दर्शनमोह की गुणश्रेणी जहां न होइ है, ताका इत्यादि अनेक वर्णन है ।

बहुरि पीछैं अंतरायाम का काल प्राप्त भए उपशम सम्यक्त्व होने का, तहां एक मिथ्यात्व प्रकृति कौं तीन रूप परिणमावने के विधान का वर्णन है । बहुरि उपशम सम्यक्त्व का विधान विषैं जैसें काल का अल्पबहुत्व पाइए है, तैसें वर्णन है ।

बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व विषैं मरण के अभाव का, अर तहां तें सासादन होने के कारण का, अर उपशम सम्यक्त्व का प्रारंभ वा निष्ठापन विषैं जो-जो उपयोग, योग, लेश्या पाइए ताका, अर उपशम सम्यक्त्व के काल, स्वरूपादिक का, अर तिस काल कौं पूर्ण भए पीछैं एक कोई दर्शनमोह की प्रकृति उदय आवने का, तहां जैसें

द्रव्य कौं अपकर्षण करि अंतरायामादि विषैं दीजिए है ताका, अर दर्शनमोह का उदय भए वेदक सम्यक्त्व वा मिश्र गुणस्थान वा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान हो है, तिनके स्वरूप का वर्णन है ।

बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व का विधान वर्णन है । तहां क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ जहां होइ ताका, अर प्रारंभ-निष्ठापन अवस्था का वर्णन है । बहुरि अनंतानुबंधी के विसंयोजन का वर्णन है । तहां तीन करणनि का अर अनिवृत्तिकरण विषैं स्थिति घटने का अर अन्य कषायरूप परिणमने के विधान प्रमाणादिक का कथन है । बहुरि विश्राम लेइ दर्शनमोह की क्षपणा हो है, ताका विधान वर्णन है । तहां संभवता स्थितिकांडादिक का वर्णन है । अर मिथ्यात्व, मिश्रमोहनी, सम्यक्त्वमोहनी विषैं स्थिति घटावने का, वा संक्रमण होने का विधान वर्णन करि सम्यक्त्वमोहनी की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति रहे अनेक क्रिया विशेष हो हैं, वा तहां गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादिक विषैं विशेष हो है, तिनका वर्णन है । बहुरि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होने का वा तहां मरण होतें लेश्या वा उपजने का, वा कृतकृत्य वेदक भए पीछे जे क्रिया विशेष हो हैं अर तहां अंतकांडक वा अंतफालि विषैं विशेष हो है, तिनका वर्णन है । बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व होने का वर्णन है । बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व के विधान विषैं संभवते काल का तेतीस जायगा अल्पबहुत्व वर्णन है । बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व के स्वरूप का वा मुक्त होने का इत्यादि वर्णन है ।

बहुरि चारित्र दोय प्रकार – देशचारित्र, सकलचारित्र । सो ए जाकैं होइ वा सन्मुख होतें जो क्रिया होइ सो कहि देशचारित्र का वर्णन है । तहां वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्र जो ग्रहै, ताकै दोइ ही कारण होइ, गुणश्रेणी न होइ, देशसंयत कों प्राप्त भए गुणश्रेणी होइ इत्यादि वर्णन है । बहुरि एकांतवृद्धि देशसंयत के स्वरूपादिक का वर्णन है । बहुरि अधःप्रवृत्त देशसंयत का वर्णन है । तहां ताके स्वरूप-कालादिक का, अर तहां स्थिति-अनुभागखंडन न होइ, अर तहां देशसंयत तें भ्रष्ट होइ देशसंयत कौं प्राप्त होइ ताकैं करण होने न होने का, अर देशसंयत विषैं संभवते गुणश्रेण्यादि विशेष का वर्णन है । बहुरि देशसंयम के विधान विषैं संभवते काल का अल्पबहुत्वता का वर्णन है । बहुरि जघन्य, उत्कृष्ट देशसंयम जाकैं होइ ताका, अर देशसंयम विषैं स्पर्द्धक का अविभागप्रतिच्छेद पाइए ताका वर्णन है । बहुरि देशसंयम के स्थाननि का, अर तिनके प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप तीन प्रकारनि का, अर ते क्रम

तें जैसें जिनकैं जेते पाइए, अर बीचि में स्वामीरहित स्थान पाइए तिनका, अर तहां विशुद्धता का वर्णन है।

बहुरि सकलचारित्र तीन प्रकार - क्षायोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक; तहां क्षायोपशमिक चारित्र का वर्णन है। तिसविषें सन्मुख जाकें होइ ताका, वा सन्मुख होतें जो क्रिया होइ, ताका वर्णन करि वेदक सम्यक्त्व सहित चारित्र ग्रहण करनेवाले कैं दोय ही करण होइ इत्यादि अल्पबहुत्व पर्यंत सर्व कथन देशसंयतवत् है, ताका वर्णन है। बहुरि सकलसंयम स्पर्द्धक वा अविभागप्रतिच्छेदनि का कथन करि प्रतिपात, प्रतिपद्यमान, अनुभयरूप स्थान कहि ते जैसें जेते जिस जीव के पाइए, तिनका क्रम तैं वर्णन है। तहां विशुद्धता का वा म्लेच्छ के सकलसंयम संभवने का वा सामयिकादि संबंधी स्थाननि का इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि औपशमिक चारित्र का वर्णन है। तहां वेदक सम्यक्त्वी जिस-जिस विधानपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्वी वा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी होइ उपशम श्रेणी चढै है, ताका वर्णन है। तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होने का विधान विषें तीन करण, गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादिक वा अंतरकरणादिक का विशेष वर्णन है।

बहुरि उपशम श्रेणी विषें आठ अधिकार हैं, तिनका वर्णन है। तहां प्रथम अधःकरण का वर्णन है। बहुरि दूसरा अपूर्वकरण का वर्णन है। इहां संभवते आवश्यकनि का वर्णन है। इहांतैं लगाय उपशम श्रेणी का चढना वा उतरणा विषें स्थितिबंधापसरण अर स्थितिकांडक वा अनुभागकांडक के आयामादिक के प्रमाण का, अर इनकौं होतें जैसा-जैसा स्थितिबंध अर स्थितिसत्त्व वा अनुभागसत्त्व अवशेष रहै, ताका यथा ठिकाणें बीचि-बीचि वर्णन है, सो कथन आगें होइगा तहां जानना। बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन विषें प्रसंग पाइ, अनुभाग के स्वरूप का वा वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि, नानागुणहानि का वर्णन है। अर इहां गुणश्रेणी, गुणसंक्रम हो है, अर प्रकृतिबंध का व्युच्छेद हो है, ताका वर्णन है। बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन विषें दश करणनि विषें तीन करणनि का अभाव हो है। ताका अनुक्रम लीएं कर्मनि का स्थितिबंध करनेरूप क्रमकरण हो है ताका; तहां असंख्यात समयप्रबद्धनि की उदीरणादिक का, अर कर्मप्रकृतिनि के स्पर्द्धक देशघाती करनेरूप देशघातीकरण का, अर कर्मप्रकृतिनि कैं केतेइक निषेकनि का अभाव करि अन्य निषेकनि विषें निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का, अर अंतरकरण की समाप्तता भए युगपत् सात करननि का प्रारंभ हो है ताका, तहां ही आनुपूर्वी संक्रमण का - इत्यादि वर्णन करि नपुंसकवेद

अर स्त्रीवेद अर छह हास्यादिक, पुरुषवेद, तीन क्रोध अर तीन माया अर दोय लोभ; इनके उपशमावने के विधान का अनुक्रम तैं वर्णन है। तहां गुणश्रेणी का वा स्थिति-अनुभागकांडकघात होने न होने का अर नपुंसकवेदादिक विषैं नवकबंध के स्वरूप-परिणमनादि विशेष का, वा प्रथम स्थिति के स्वरूप का आदि विशेष का, वा तहां आवाल, प्रत्यावाल गुणश्रेणी न हो है इत्यादि विशेषनि का, अर संक्रमणादि विशेष पाइए हैं, तिनका इत्यादि अनेक वर्णन पाइए है। बहुरि संज्वलन लोभ का उपशम विधान विषैं लोभ-वेदककाल के तीन भागनि का, अर तहां प्रथम स्थिति आदिक का वर्णन करि सूक्ष्मकृष्टि करने का विधान वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धकनि का कथन करि अर कृष्टि करने का वर्णन है। इहां बादरकृष्टि तो है ही नाहीं, सूक्ष्मकृष्टि है, तिनविषैं जैसें कर्मपरमाणु परिणमैं हैं वा तहां ही जैसें अनुभागादिक पाइए है, वा तहां अनुसमयापवर्त्तनरूप अनुभाग का घात हो है इत्यादिकनि का, अर उपशमावने आदि क्रियानि का वर्णन है। बहुरि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान कौं प्राप्त होइ सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्त जो लोभ, ताके उदय कौं भोगवने का, तहां संभवती गुणश्रेणी, प्रथम स्थिति आदि का इहां उदय-अनुदयरूप जैसें कृष्टि पाइए तिनका, वा संक्रमण-उपशमनादि क्रियानि का वर्णन है। बहुरि सर्व कषाय उपशमाय उपशांत कषाय हो है ताका, अर तहां संभवती गुणश्रेणी आदि क्रियानि का, अर इहां जे प्रकृति उदय हैं, तिनविषैं परिणामप्रत्यय अर भवप्रत्ययरूप विशेष का वर्णन है। ऐसें संभवती इकईस चारित्रमोह की प्रकृति उपशमावने का विधान कहि उपशांत कषाय तैं पड़नेरूप दोय प्रकार प्रतिपात का, तहां भवक्षय निमित्त प्रतिपात तैं देव संबन्धी असंयत गुणस्थान कौं प्राप्त हो है। तहां गुणश्रेणी वा अनुपशमन वा अंतर का पूरण करना इत्यादि जे क्रिया हो है, तिनका वर्णन है। अर अद्धाक्षय निमित्त तैं क्रम तैं पडि स्वस्थान अप्रमत्त पर्यंत आवै तहां गुणश्रेणी आदिक का, वा चढ़तें जे क्रिया भई थी, तिनका अनुक्रम तैं नष्ट होने का वर्णन है। बहुरि अप्रमत्त तैं पड़ने का तहां संभवति क्रियानि का अर अप्रमत्त तैं चढै तौ बहुरि श्रेणी मांडै ताका वर्णन है। ऐसें पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध का उदय सहित जो श्रेणी मांडै, ताकी अपेक्षा वर्णन है। बहुरि पुरुषवेद, संज्वलन मान सहित आदि ग्यारह प्रकार उपशम श्रेणी चढनेवालों कैं जो-जो विशेष पाइए है, तिनका वर्णन है। बहुरि इस उपशम चारित्र विधान विषैं संभवते काल का अल्पबहुत्व वर्णन है।

बहुरि क्षपणासार के अनुसारि लीएं क्षायिकचारित्र के विधान का वर्णन है। तहां अधःकरणादि सोलह अधिकारनि का अर क्षपक श्रेणी कौं सन्मुख जीव का वर्णन है।

बहुरि अधःकरण का वर्णन है । तहां विशुद्धता की वृद्धि आदि च्यारि आवश्यकनि का, अर तहां संभवते परिणाम, योग, कषाय, उपयोग, लेश्या, वेद; अर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप कर्मनि का सत्त्व, बंध उदय, तिनका वर्णन है ।

बहुरि अपूर्वकरण का वर्णन है । तहां संभवते स्थितिकांडकघात, अनुभाग-कांडकघात, गुणश्रेणी, गुणसंक्रम इनका विशेष वर्णन है । अर इहां प्रकृतिबंध की व्युच्छित्ति हो है, तिनका वर्णन है । इहांतैं लगाय क्षपक श्रेणी विषैं जहां-जहां जैसा-जैसा स्थितिबंधापसरण, अर स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात पाइए अर इनकौं होतैं जैसा-जैसा स्थितिबंध, अर स्थितिसत्त्व अर अनुभागसत्त्व रहै, तिनका बीच-बीच वर्णन है, सो कथन होगा तहां जानना ।

बहुरि अनिवृत्तिकरण का कथन है । तहां स्वरूप, गुणश्रेणी, स्थितिकांडकादि का वर्णन करि कर्मनि का क्रम लीएं स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व करने रूप क्रमकरण का वर्णन है । बहुरि गुणश्रेणी विषैं असंख्यात समयप्रबद्धनि की उदीरणा होने लगी, ताका वर्णन है ।

बहुरि प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यानरूप आठ कषायनि के खिपावने का विधान वर्णन है । बहुरि निद्रा-निद्रा आदि सोलह प्रकृति खिपावने का विधान वर्णन है । बहुरि प्रकृतिनि को देशघाती स्पर्द्धकनि का बंध करनेरूप देशघातीकरण का वर्णन है । बहुरि च्यारि संज्वलन, नव नोकषायनि के केतेइक निषेकनि का अभाव करि अन्यत्र निक्षेपण करनेरूप अंतरकरण का वर्णन है । बहुरि नपुंसकवेद खिपावने का विधान वर्णन है । तहां संक्रम का वा युगपत् सात क्रियानि का प्रारंभ हो है, तिनका इत्यादि वर्णन है । बहुरि स्त्रीवेद क्षपणा का वर्णन है । बहुरि छह नोकषाय अर पुरुषवेद इनकी क्षपणा का विधान वर्णन है । बहुरि अश्वकर्णकरणसहित अपूर्वस्पर्द्धक करने का वर्णन है । तहां पूर्वस्पर्द्धक जानने कौं वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धकनि का अर तिन-विषैं देशघाती, सर्वघातिनि के विभाग का, वा वर्गणा की समानता, असमानता आदिक का कथन करि अश्वकरण के स्वरूप, विधान क्रोधादिकनि के अनुभाग का प्रमाणादिक का अर अपूर्वस्पर्द्धकनि के स्वरूप प्रमाण का तिनविषैं द्रव्य-अनुभागा-दिक का, तहां समय-समय संबंधी क्रिया का वा उदयादिक का बहुत वर्णन है ।

बहुरि कृष्टिकरण का वर्णन है । तहां क्रोधवेदककाल के विभाग का, अर बादर-कृष्टि के विधान विषैं कृष्टिनि के स्वरूप का, तहां बारह संग्रहकृष्टि, एक-एक संग्रहकृष्टि

विषैं अनंती अंतरकृष्टि तिनका, अर तिनविषैं प्रदेश अनुभागादिक के प्रमाण का, तहां समय-समय संबंधी क्रियानि का वा उदयादिक का अनेक वर्णन है । बहुरि कृष्टि वेदना का विधान वर्णन है । तहां कृष्टिनि के उदयादिक का, वा संक्रम का, वा घात करने का, वा समय-समय संबंधी क्रिया का विशेष वर्णन करि क्रम तैं दश संग्रहकृष्टिनि के भोगवने का विधान-प्रमाणादिक का बहुत कथन करि तिनकी क्षपणा का विधान वर्णन है । बहुरि अन्य प्रकृति संक्रमण करि इसरूप परिणमी, तिनके द्रव्यसहित लोभ की द्वितीय, तृतीय संग्रहकृष्टि के द्रव्य कौं सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है, ताके विधान-स्वरूप-प्रमाणादिक का वर्णन है । ऐसैं अनिवृत्तिकरण का बहुत वर्णन है। याविषैं गुणश्रेणी-अनुभागघात के विशेष आदि बीचि-बीचि अनेक कथन पाइए है, सो आगैं कथन होइगा तहां जानना ।

बहुरि सूक्ष्मसांपराय का वर्णन है । तहां स्थिति, अनुभाग का घात वा गुणश्रेणी आदि का कथन करि बादरकृष्टि संबंधी अर्थ का निरूपण पूर्वक सूक्ष्मसांपराय संबंधी कृष्टिनि के अर्थ का निरूपण, अर तहां सूक्ष्मकृष्टिनि का उदय, अनुदय, प्रमाण अर संक्रमण, क्षयादिक का विधान इत्यादि अनेक वर्णन है । बहुरि यहु तौ पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध का उदय सहित श्रेणी चढ्या, ताकी अपेक्षा कथन है । बहुरि पुरुषवेद, संज्वलन मान आदि का उदय सहित ग्यारह प्रकार श्रेणी चढने वालों कैं जो-जो विशेष पाइए, ताका वर्णन है । ऐसैं कृष्टिवेदना पूर्ण भए ।

बहुरि क्षीणकषाय का वर्णन । तहां ईर्यापथबंध का, अर स्थिति-अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि का, वा तहां संभवते ध्यानादिक का अर ज्ञानावरणादिक के क्षय होने के विधान का, अर इहां शरीर सम्बन्धी निगोद जीवनि के अभाव होने के क्रम का इत्यादि वर्णन है ।

बहुरि सयोगकेवली का वर्णन है । तहां ताके महिमा का अर गुणश्रेणी का अर विहार-आहारादिक होने न होने का वर्णन करि अंतर्मुहूर्त मात्र आयु रहै आवर्जितकरण हो है ताका, तहां गुणश्रेणी आदि का, अर केवलसमुद्घात का, तहां दंड-कपाटादिक के विधान वा क्षेत्रप्रमाणादिक का, वा तहां संभवती स्थिति-अनुभाग घटने आदि क्रियानि का वा योगनि का इत्यादि वर्णन है । बहुरि बादर मन-वचन काय योग कौं निरोधि सूक्ष्म करने का, तहां जैसें योग हो है, ताका अर सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास-निश्वास, काययोग के निरोध करने का, तहां काययोग के

पूर्वस्पर्द्धकनि के अपूर्वस्पर्द्धक अर तिनकी सूक्ष्मकृष्टि करिए है, तिनका स्वरूप, विधान, प्रमाण, समय-समय सम्बन्धी क्रियाविशेष इत्यादिक का अर करी सूक्ष्मकृष्टि, ताकौं भोगवता सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान युक्त हो है, ताका वा तहां संभवते स्थिति-अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि विशेष का वर्णन है ।

बहुरि अयोगकेवली का वर्णन है । तहां ताकी स्थिति का, शैलेश्यपना का, ध्यान का, तहां अवशेष सर्व प्रकृति खिपवाने का वर्णन है ।

बहुरि सिद्ध भगवान का वर्णन है । तहां सुखादिक का, महिमा का, स्थान का, अन्य मतोक्त स्वरूप के निराकरण का इत्यादि वर्णन है । ऐसें लब्धिसार क्षपणासार कथन की सूचनिका जाननी ।

बहुरि अन्त विषैं अपने किछू समाचार प्रगट करि इस सम्यग्ज्ञानचंद्रिका की समाप्तता होतैं कृतकृत्य होइ आनंद दशा कौं प्राप्त होना होइगा । ऐसें सूचनिका करि ग्रंथसमुद्र के अर्थ संक्षेपपनैं प्रकट किए हैं ।

इति सूचनिका ।

परिकर्माष्टक सम्बन्धी प्रकरण

बहुरि इस करणानुयोगरूप शास्त्र के अभ्यास करने के अर्थि गणित का ज्ञान अवश्य चाहिये, जातैं अलंकारादिक जानैं प्रथमानुयोग का, गणितादिक जानैं करणानुयोग का, सुभाषितादिक जानैं चरणानुयोग का, न्यायादि जानैं द्रव्यानुयोग का विशिष्ट ज्ञान हो है, तातैं गणित ग्रंथनि का अभ्यास करना । अर न बनैं तौ परिकर्माष्टक तौ अवश्य जान्या चाहिये । जातैं याकौं जाणैं अन्य गणित कर्मनि का भी विधान जानि तिनकौं जानैं अर इस शास्त्र विषैं प्रवेश पावै । तातैं इस शास्त्र का अभ्यास करने कौ प्रयोजनमात्र परिकर्माष्टक का वर्णन इहां करिए है–

तहां परिकर्माष्टक विषैं संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, घन, वर्गमूल, घनमूल ए आठ नाम जानने । ए लौकिक गणित विषैं भी संभवै हैं, अर अलौकिक गणित विषैं भी संभवै हैं । सो लौकिक गणित तौ प्रवृत्ति विषैं प्रसिद्ध ही है । अर अलौकिक गणित जघन्य संख्यातादिक वा पल्यादिक का व्याख्यान आगैं जीवसमासाधिकार पूर्ण भए पीछैं होइगा, तहां जानना । अब संकलनादिक का स्वरूप

कहिए है। किसी प्रमाण कौं किसी प्रमाण विषैं जोडिये तहां संकलन कहिए । जैसैं सात विषैं पांच जोडैं बारह होइ, वा पुद्गलराशि विषैं जीवादिक का प्रमाण जोडैं सर्व द्रव्यनि का प्रमाण होइ है ।

बहुरि किसी प्रमाण विषैं किसी प्रमाण कौं घटाइए, तहां व्यवकलन कहिए । जैसैं बारह विषैं पांच घटाऐं सात होय, वा संसारी राशि विषैं त्रसराशि घटाऐं स्थावरनि का प्रमाण होइ ।

बहुरि किसी प्रमाण कौं किसी प्रमाण करि गुणिए, तहां गुणकार कहिए । जैसैं पांच कौं च्यारि करि गुणिए वीस होइ, वा जीवराशि कौं अनन्त करि गुणैं पुद्गलराशि होइ ।

बहुरि किसी प्रमाण कौं किसी प्रमाण का जहां भाग दीजिए, तहां भागहार कहिए । जैसैं वीस कौं च्यारि करि भाग दीऐ पांच होइ, वा जगत् श्रेणी कौं सात का भाग दीए राजू होइ ।

बहुरि किसी प्रमाण कौं दोय जायगां मांडि परस्पर गुणिए, तहां तिस प्रमाण का वर्ग कहिए । जैसैं पांच कौं दोय जायगां मांडि परस्पर गुणैं पाँच का वर्ग पचीस होइ, वा सूच्यंगुल कौं दोय जायगां मांडि, परस्पर गुणैं, सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल होइ ।

बहुरि किसी प्रमाण कौं तीन जायगां मांडि, परस्पर गुणैं, तिस प्रमाण को घन कहिए। जैसैं पांच कौं तीन जायगां मांडि, परस्पर गुणैं, पांच का घन एक सौ पचीस होइ । वा जगत् श्रेणी कौं तीन जायगां मांडि परस्पर गुणैं लोक होइ ।

बहुरि जो प्रमाण जाका वर्ग कीये होइ, तिस प्रमाण का सो वर्गमूल कहिए । जैसैं पचीस पांच का वर्ग कीए होइ तातैं पचीस का वर्गमूल पांच है । वा प्रतरांगुल है सो सूच्यंगुल का वर्ग कीए हो है, तातैं प्रतरांगुल का वर्गमूल सूच्यंगुल है ।

बहुरि जो प्रमाण जाका घन कीए होइ, तिस प्रमाण का सो घनमूल कहिए । जैसैं एक सौ पचीस पांच का घन कीए होइ, तातैं एक सौ पचीस का घनमूल पांच है । वा लोक है सो जगत्श्रेणी का घन कीए हो है, तातैं लोक का घनमूल जगत्श्रेणी है ।

अब इहां केतेइक संज्ञाविशेष कहिए है । संकलन विषैं जोडने योग्य राशि का नाम धन है । मूलराशि कौं तिस धन करि अधिक कहिए । जैसें पांच अधिक कोटि वा जीवराश्यादिक करि अधिक पुद्गल इत्यादिक जानने ।

बहुरि व्यवकलन विषैं घटावने योग्य राशि का नाम ऋण है । मूलराशि कौं तिस ऋण करि हीन वा न्यून वा शोधित वा स्फोटित इत्यादि कहिए । जैसें पांच करि हीन कोटि वा त्रसराशि हीन संसारी इत्यादि जानने । कहीं मूलराशि का नाम धन भी कहिए है ।

बहुरि गुणकार विषैं जाकौं गुणिए, ताका नाम गुण्य कहिए ।

जाकरि गुणिए, ताका नाम गुणकार वा गुणक कहिए ।

गुण्यराशि कौं गुणकार करि गुणित वा हत वा अभ्यस्त वा घ्नत इत्यादि कहिए । जैसें पंचगुणित लक्ष वा असंख्यात करि गुणित लोक कहिए । कहीं गुणकार प्रमाण गुण्य कहिए । जैसें पांच गुणां बीस कौं पांच बीसी कहिए वा असंख्यातगुणां लोक कूं असंख्यातलोक कहिए इत्यादिक जानने । गुनने का नाम गुणन वा हनन वा घात इत्यादि कहिए है ।

बहुरि भागहार विषैं जाकौं भाग दीजिए ताका नाम भाज्य वा हार्य इत्यादि है । अर जाका भाग दीजिए ताका नाम भागहार वा हार वा भाजक इत्यादि है । भाज्य राशि कूं भागहार करि भाजित भक्त वा हृत वा खंडित इत्यादि कहिए । जैसें पांच करि भाजित कोटि वा असंख्यात करि भाजित पल्य इत्यादिक जानने । भागहार का भाग देइ एक भाग ग्रहण करना होइ, तहां तेथवां भाग वा एक भाग कहिये । जैसें बीस का चौथा भाग, वा पल्य का असंख्यातवां भाग वा असंख्यातैक भाग इत्यादि जानना ।

बहुरि एक भाग विना अवशेष भाग ग्रहण करने होई तहां बहुभाग कहिए । जैसें बीस के च्यारि बहुभाग वा पल्य का असंख्यात बहुभाग इत्यादि जानने ।

बहुरि वर्ग का नाम कृति भी है । बहुरि वर्गमूल का नाम कृतिमूल वा मूल वा पद वा प्रथम मूल भी है । बहुरि प्रथम मूल के मूल कौं द्वितीय मूल कहिए । द्वितीय मूल के मूल कौं तृतीय मूल कहिए । ऐसें चतुर्थादि मूल जानने । जैसें

पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस का प्रथम मूल दोय सै छप्पन, द्वितीय मूल सोलह, तृतीय मूल च्यारि, चतुर्थ मूल दोय होइ। असैं ही पल्य वा केवलज्ञानादि के प्रथमादि मूल जानने। ऐसैं अन्य भी अनेक संज्ञाविशेष यथासंभव जानने।

अब इहां विधान कहिए है। सो प्रथम लौकिक गणित अपेक्षा कहिए है। तहां असा जानना 'अंकानां वामतो गतिः' अंकनि का अनुक्रम बाई तरफ सेती है। जैसें दोय सै छप्पन (२५६) के तीन अंकनि विषैं छक्का आदि अंक, पांचा दूसरा अंक, दूवा अंत अंक कहिये। असैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि अंकनि कौं क्रम तैं एक स्थानीय, दश स्थानीय, शत स्थानीय, सहस्र स्थानीय आदि कहिए। प्रवृत्ति विषैं इनही कौं इकवाई, दहाई, सैंकडा, हजार आदि कहिए है।

बहुरि संकलनादि होतैं प्रमाण ल्यावने कौं गणित कर्म कौं कारण जे करण-सूत्र, तिनकरि गणित शास्त्रनि विषैं अनेक प्रकार विधान कह्या है, सो तहांतैं जानना वा त्रिलोकसार की भाषा टीका बनी है, तहां लौकिक गणित का प्रयोजन जानि पीठबंध विषैं किछु वर्णन किया है, सो तहांतैं जानना।

इस शास्त्र विषैं गणित का कथन की मुख्यता नाहीं वा लौकिक गणित का बहुत विशेष प्रयोजन नाहीं तातैं इहां बहुत वर्णन न करिए है। विधान का स्वरूप मात्र दिखावने कौं एक प्रकार करि किंचित् वर्णन करिए है।

तहां संकलन विषैं जिनका संकलन करना होइ, तिनके एक स्थानीय आदि अंकनि कौं क्रम तैं यथास्थान जोडैं जो-जो अंक आवै, सो-सो अंक जोड विषैं क्रम तैं यथास्थान लिखना। सो प्रवृत्ति विषैं जैसैं जोड देने का विधान है, तैसैं ही यहु जानना। बहुरि जो एक स्थानीय आदि अंक जोडैं दोय, तीन आदि अंक आवैं तौ प्रथम अंक कौं जोड विषैं पहिले लिखिए। द्वितीय आदि अंकनि कौं दश स्थानीय आदि अंकनि विषैं जोडिए। याकौं प्रवृत्ति विषैं हाथिलागा कहिए है। असैं करतैं जो अंक होइ, सो जोड्या हुवा प्रमाण जानना।

इहां उदाहरण – जैसैं दोय सै छप्पन अर चौरासी (२५६+८४) जोडिए, तहां एक स्थानीय छह अर च्यारि जोडैं दश भए। तहां जोड विषैं एक स्थानीय बिंदी लिखी, अर रह्या एक, ताकौं अर दश स्थानीय पांचा, आठा इन कौं जोडैं,

चौदह भए । तहां जोड विषैं दश स्थानीय चौका लिख्या अर रह्या एका, ताकौं अर शत स्थानीय दूवा कौं जोडैं, तीन भया, सो जोड विषैं शत स्थानीय लिख्या । ऐसैं जोडैं तीन सै चालीस भये । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि व्यवकलन विषैं मूलराशि के एक स्थानीय आदि अंकनि विषैं ऋण राशि के एक स्थानीय आदि अंकनि कौं यथाक्रम घटाइए । जो मूलराशि के एक स्थानीय आदि अंक तैं ऋणराशि के एक स्थानीय आदि अंक अधिक प्रमाण लीए होइ तौ धनराशि के दश स्थानीय आदि अंक विषैं एक घटाइ धनराशि के एक स्थानीय आदि अंक विषैं दश जोडि, तामैं ऋणराशि का अंक घटावना । सो प्रवृत्ति विषैं जैसैं बाकी काढने का विधान है, तैसैं ही यहु जानना । ऐसैं करतैं जो होइ, सो अवशेष प्रमाण जानना ।

इहां उदाहरण – जैसैं छह सै पिचहत्तरि मूलराशि विषैं बाणवै (६७५–९२) ऋण घटावना होइ, तहां एक स्थानीय पांच में दूवा घटाए तीन रहे अर दश स्थानीय सात विषैं नव घटै नाहीं तातैं शतस्थानीय छक्का मैं एक घटाइ ताके दश सात विषैं जोडैं सतरह भए, तामैं नौ घटाइ आठ रहे शत स्थानीय छक्का मैं एक घटायें पांच रहे, तामैं ऋण का अंक कोऊ घटावने कौं है नाहीं तातैं, पांच ही रहे । ऐसैं अवशेष पांच सै तियासी प्रमाण आया । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि गुणकार विषैं गुण्य के अंत अंक तैं लगाय आदि अंक पर्यंत एक-एक अंक कौं क्रम तैं गुणकार के अंकनि करि गुणि यथास्थान लिखिए वा जोडिए, तब गुणित राशि का प्रमाण आवै ।

इहां उदाहरण – जैसैं गुण्य दोय सै छप्पन अर गुणकार सोलह (२५६×१६) । तहां गुण्य का अंत अंक दूवा कौं सोलह करि गुणना । तहां छक्का तौ दूवा ऊपरि अर एका ताके पीछैं $\overset{१६}{२५६}$ ऐसैं स्थापन करि एक करि दूवा कौ गुणैं, दोय पाये, सो तौ एक के नीचैं लिखना । अर छह करि दूवा कौ गुणैं बारह पाए, तिसविषैं दूवा तौ गुण्य की जायगां लिखना एका पहिलै दोय लिख्या था तामैं जोडना तब ऐसा भया [३२ ५६] । बहुरि ऐसैं ही गुण्य का उपांत अंक पांचा; ताकौ सोलह करि गुणना तहां ऐसैं $\overset{१६}{३२,५६}$ स्थापना करि एका करि पांचा कौं गुणैं, पांच भये, सो तौ एका के नीचैं दूवा, तामैं जोडिए अर छक्का करि पांचा कौ गुणैं तीस भए, तहां बिंदी पांचा की जायगां मांडि तीन पीछले अंकनि विषैं जोडिए ऐसैं कीए

ऐसा ४००६ भया । बहुरि गुण्य का आदि अंक छक्का कौं सोलह करि गुणना तहां
१६
ऐसें ४००६ स्थापि एक करि छह कों गुणें छह भये सो तौ एका के नीचै बिंदी तामैं जोडिए अर छ कों छ करि गुणें छत्तीस भया, तहां छक्का तौ गुण्य का छक्का की जायगा स्थापना, तीया पीछला अंक छक्का तामैं जोडना, ऐसैं कीए ऐसा ४०६६ भया । या प्रकार गुणित राशि च्यारि हजार छिनवै आया । ऐसैं ही अन्यत्र विधान जानना ।

बहुरि भागहार विषै भाज्य के जेते अंकनि विषैं भागहार का भाग देना संभवै, तितने अंकनि कौं ताका भाग देइ पाया अंक कौं जुदा लिखि तिस पाया अंक करि भागहार कौं गुणें जो प्रमाण होइ, तितना जाका भाग दीया था, तामैं घटाय अवशेष तहां लिखना । बहुरि तैसें ही भाग दीए जो अंक पावै, ताकौं पूर्वै लिख्या था अंक, ताके आगै लिखि ताकरि भागहार कौं गुणि तैसैं ही घटावना । ऐसैं यावत् भाज्यराशि निःशेष होइ तावत् कीए जुदे लिखे अंक प्रमाण एक भाग आवैं है ।

इहां उदाहरण-जैसैं भाज्य च्यारि हजार छिनवै, भागहार सोलह । तहां भाज्य का अन्त अंक च्यारि कौं तौ सोलह का भाग संभवै नाहीं तातैं दोय अंके
४०९६
चालीस तिनकौं भाग देना, तहां ऐसैं १६ लिखि । इहां तीन आदि अंकनि करि सोलह कौं गुणैं, तौ चालीस तैं अधिक होइ जाय तातैं दोइ पाये सो दूवा जुदा लिखि, ताकरि सोलह कौं गुणि चालीस मैं घटाए ऐसा ८९६ भया ।
८९६
बहुरि इहां निवासी कौं सोलह का भाग दीए १६ पांच पाए, सो दूवा के आगैं लिखि, ताकरि सोलह कौं गुनि निवासी मैं घटाए ऐसा ९६ रह्या । याकौं सोलह का भाग दीएं छह पाय, सो पांचा के आगैं लिखि, ताकरि सोलह कौं गुणि छिनवै भए, सो घटाए भाज्यराशि निःशेष भया । ऐसैं जुदे लिखे अंक तिनकरि एक भाग का प्रमाण दोय सैं छप्पन आवै है । बहुरि **'भागो नास्ति लब्धं शून्यं'** इस वचन तैं जहां भाग टूटि जाय तहां बिंदी पावै । जैसैं भाज्य तीन हजार छत्तीस (३०३६) भागहार छह (६) तहां तीस कौं छह का भाग दीए, पांच पाए, तिनकरि छह कौं गुणि, घटाए तीस निःशेष होय गया, सो इहां भाग टूट्या, तातैं पांच के आगैं बिंदी लिखिए । बहुरि अवशेष छत्तीस कौं छह का भाग दीए छह पाए, सो बिंदी के आगैं लिखि, ताकरि छह कौं गुणि घटाएं सर्व भाज्य निःशेष भया । ऐसैं लब्ध प्रमाण पांच सैं छै पाया । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि वर्ग विषैं गुणकारवत् विधान जानना । जातैं दोय जायगां समान राशि लिखि एक कौं गुण्य, एक कौं गुणकार स्थापि परस्पर गुणें वर्ग हो है । जैसैं सोलह कौं सोलह करि गुणें, सोलह का वर्ग दोय सै छप्पन हो है ।

बहुरि घन विषैं भी गुणकारवत् ही विधान है । जातैं तीन जायगां समान राशि मांडि परस्पर गुणन करना । तहां पहिला राशिरूप गुण्य कौं दूसरा राशिरूप गुणकार करि गुणें जो (प्रमाण) होइ ताकौं गुण्य स्थापि, ताकौं तीसरा राशिरूप गुणकार करि गुणें जो प्रमाण आवै, सोइ तिस राशि का घन जानना ।

जैसैं सोलह कौं सोलह करि गुणें, दोय सै छप्पन, बहुरि ताकौं सोलह करि गुणें च्यार हजार छिनवै होइ, सोई सोलह का घन है । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि वर्गमूल विषैं वर्गरूप राशि के प्रथम अंक उपरि विषम की दूसरे अंक उपरि सम की तीसरे (अंक) उपरि विषम की चौथे (अंक) उपरि सम की ऐसैं क्रम तैं अन्त अंक पर्यंत उभी आडी लीक करि सहनानी करनी । जो अन्त का अंक सम होय तो तहां उपांत का अर अन्त का दोऊ अंकनि कौं विषम संज्ञा जाननी । तहां अन्त का एक वा दोय जो विषम अंक, ताका प्रमाण विषैं जिस अंक का वर्ग संभवै, ताका वर्ग करि अन्त का विषम प्रमाण मैं घटावना । अवशेष रहै सो तहां लिखना । बहुरि जाका वर्ग कीया था, तिस मूल अंक कौं जुदा लिखना । बहुरि अवशेष रहे अंकनि करि सहित जो तिस विषम के आगैं सम अंक, ताके प्रमाण कौं जुदा स्थाप्या जो अंक, तातैं दूणा प्रमाण रूप भागहार का भाग दीए जो अंक पावैं, ताकौं तिस जुदा स्थाप्या, अंक के आगैं लिखना । अर तिस अंक करि गुण्या हुवा भागहार का प्रमाण को तिस भाज्य में घटाइ अवशेष तहां लिखि देना । बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस सम के आगैं विषम अंक, तामैं जो अंक पाया था, ताका वर्ग कीए जो प्रमाण होइ, सो घटावना अवशेष तहां लिखना । बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस विषम के आगैं सम अंक, ताकौं तिन जुदे लिखे हुए सर्व अंकरूप प्रमाण तैं दूणा प्रमाण रूप भागहारा का भाग देइ पाया अंक कौं तिन जुदे लिखे हुए अंकनि के आगैं लिखना । अर इस पाया अंक करि भागहार कौं गुणि भाज्य में घटाइ, अवशेष तहां लिखना । बहुरि इस अवशेष सहित जो सम अंक के आगैं विषम अंक ताविषैं पाया अंक का वर्ग घटावना । ऐसैं ही क्रमतैं यावत् वर्गित राशि निःशेष होय, तावत् कीए वर्गमूल का प्रमाण आवै है ।

इहां उदाहरण – जैसैं वर्गित राशि पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस (६५५३६) इहां विषम-सम की सहनानी ऐसी $\overset{|-|-|}{६५५३६}$ करि अन्त का विषम छक्का तामैं तीन का वर्ग तौ बहुत होइ जाइ, तातैं संभवता दोय का वर्ग च्यारि घटाइ अवशेष दोइ तहां लिखना। अर मूल अंक दूवा जुदा पंक्ति विषैं लिखना। बहुरि तिस अवशेष सहित आगिला सम अंक ऐसा २५। ताकौं जुदा लिख्या जो दूवा तातैं दूणा च्यारि का भाग दीए, छह पावैं; परंतु आगैं वर्ग घटावने का निर्वाह नाहीं; तातैं पांच पाया, सो जुदा लिख्या हुआ दूवा के आगैं लिखना। अर पाया अंक पांच करि भागहार च्यारि कौं गुणि, भाज्य मैं घटाएं, पचीस की जायगां पांच रह्या, तिस सहित आगिला विषम ऐसा (५५) तामैं पाया अंक पांच का वर्ग पचीस घटाए, अवशेष ऐसा ३०, तिस सहित आगिला सम ऐसा ३०३, ताकौं जुदे लिखे अंकनि तैं दूणा प्रमाण पचास का भाग दीए छह पाया, सो जुदे लिखे अंकनि के आगैं लिखना। अर छह करि भागहार पचास कौं गुणि, भाज्य मैं घटाए अवशेष ऐसा ३ रह्या, तिस सहित आगिला विषम ऐसा ३६, यामैं पाया अंक छह का वर्ग घटाए राशि निःशेष भया। ऐसैं जुदे लिखे हूवे अंकनि करि पैंसठ हजार पांच सै छत्तीस का वर्गमूल दोए सै छप्पन आया। ऐसैं ही अन्यत्र विधान जानना।

बहुरि घनमूल विषैं घन रूप राशि के अंकनि उपरि पहिला घन, दूजा-तीजा अघन चौथा घन, पांचवां-छठा अघन ऐसैं क्रमतैं ऊभी आडी लीक रूप सहनानी करनी। जो अंत का घन अंक न होइ तौ अन्त उपांत दोय अंकनि की घन संज्ञा जाननी। अर ते दोऊ घन न होइ तौ अन्त तैं तीन अंकनि की घन संज्ञा जाननी। तहां एक वा दोय वा तीन अंक रूप जो अन्त का घन, तामैं जाका घन संभवै ताका घन करि ताकौं अंत का घन अंकरूप प्रमाण मैं घटाइ अवशेष तहां लिखना। अर जाका घन कीया था, तिस मूल अंक कौं जुदा पंक्ति विषैं स्थापना। बहुरि तिस अवशेष सहित आगिला अंक कौं तिस मूल अंक के वर्ग तैं तिगुणा भागहार का भाग देना जो अंक पावैं, ताकौं जुदा लिख्या हुवा अंक के आगे लिखना। अर पाया अंक करि भागहार कौं गुणी, भाज्य मैं घटाइ अवशेष तहां लिखि देना। बहुरि इस अवशेष सहित आगिला अंक, ताविषैं पाया अंक के वर्ग कौं पूर्व पंक्ति विषैं तिष्ठते अंकनि करि गुणें, जो प्रमाण होइ, ताकौं तिगुणा करि घटाइ देना। अवशेष तहां लिखना। बहुरि इस अवशेष सहित आगिला अंक विषैं तिस ही पाया अंक का घन घटावना। बहुरि अवशेष सहित आगिला अंक कौं जुदा लिखि अंकनि के प्रमाण

का वर्ग कौं तिगुणा करि निर्वाह होइ, तैसें भाग देना। पाया अंक पंक्ति विषैं आगैं लिखना। ऐसें ही अनुक्रम तें यावत् घनराशि निःशेष होइ तावत् कीए घनमूल का प्रमाण आवै है।

इहां उदाहरण – जैसें घनराशि पंद्रह हजार छह सै पच्चीस (१५६२५) इहां घनअघन की सहनानी कीए ऐसा (१५६२५) इहां अन्त अंक घन नाहीं तातें दोय अंक रूप अन्तघन १५। इहां तीन का घन कीए बहुत होइ जाइ, तातैं दोय का घन आठ घटाइ, तहां अवशेष सात लिखना। अर घनमूल दूवा जुदी पंक्ति विषैं लिखना बहुरि तिस अवशेष सहित आगिला अंक ऐसा (७६) ताकौं मूल अंक का वर्ग च्यारि, ताका तिगुणा बारह, ताका भाग दिए छह पावैं, परंतु आगैं निर्वाह नाहीं तातैं पांच पाया सो दूवा के आगें पंक्ति विषैं लिखना अर इस पांच करि भागहार बारह कौं गुणि, भाज्य में घटाए, अवशेष सोलह (१६) तिस सहित आगिला अंक ऐसा (१६२) तामैं पाया अंक पांच, ताका वर्ग पचीस, ताकौं पूर्वें पंक्ति विषैं लिख्या था दूवा, ताकरी गुणे पचास, तिनके तिगुणे ड्योढ सैं घटाएं अवशेष बारह, तिस सहित आगिला अंक ऐसा (१२५), यामैं पांच का घन घटाएं राशि निःशेष भया ऐसैं पंद्रह हजार छःसै पच्चीस का घनमूल पच्चीस प्रमाण आया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

ऐसें वर्णन करि अब भिन्न परिकर्माष्टिक कहिए है। तहां हार अर अंशनि का संकलनादिक जानना। हार अर अंश कहा कहिए। जैसें जहां छह पंचास कहे, तहां एक के पंचास अंश कीए तिह समान छह अंश जानने। वा छह का पांचवां भाग जानना। तहां छह कौं तो हार वा हर वा छेद कहिए। अर पांच कौं अंश वा लव इत्यादिक कहिए। तहां हार कौं ऊपरि लिखिए, अंश कौं नीचैं लिखिए। जैसें छह पंचास कौं ऐसा $\frac{6}{50}$ लिखिए। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। तहाँ भिन्न संकलन-व्यवकलन के अर्थि भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबंध, भागापवाह ए च्यारि जाति हैं। तिन-विषैं इहां विशेष प्रयोजनभूत समच्छेद विधान लीए भागजाति कहिए है। जुदे-जुदे हार अर तिनके अंश लिखि एक-एक हार कौं अन्य हारनि के अंशनि करि गुणिए अर सर्व अंशनि कौं परस्पर गुणिए। ऐसैं करि जो संकलन करना होइ तौ परस्पर हारनि कौं जोड दीजिए अर व्यवकलन करना होइ तो मूलराशि के हारनि विषैं ऋणराशि के हार घटाइ दीजिए। अर अंश सबनि के समान भए। तातैं अंश परस्पर गुणे जेते भए तेते ही राखिए। ऐसैं समान अंश होने तैं याका नाम समच्छेद विधान है।

इहां उदाहरण – तहां संकलन विषैं पांच छट्ठा अंश दोय तिहाइ तीन पाव (चौथाई) इनकौं जोडना होइ तहां $\frac{5}{6}\ \frac{2}{3}\ \frac{3}{4}$ ऐसा लिखि तहां पांच हार कौं अन्य के तीन च्यारि-अंशनि करि अर दोय हार कौं अन्य के छह-च्यारि अंशनि करि अर तीन हार कौं अन्य के छह-तीन अंशनि करि गुणे साठि अडतालीस चौवन हार भए। अर अंशनि कौं परस्पर गुणे सर्वत्र बहत्तर अंश $\frac{60}{72}\ \frac{48}{72}\ \frac{54}{72}$ ऐसैं भए। इहां हारनि कौं जोडे एक सौ बासठ हार अर बहत्तर अंश भए तहां हार कौं अंश का भाग दीए दोय पाये अर अवशेष अठारह का बहत्तरिवां भाग रह्या। ताका अठारह करि अपवर्त्तन कीए एक का चौथा भाग भया। ऐसैं तिनका जोड सवा दोय आया। कोई संभवता प्रमाण का भाग देइ भाज्य वा भाजक राशि का महत् प्रमाण कौं थोरा कीजिए (वा निःशेष कीजिए) तहां अपवर्त्तन संज्ञा जाननी सो इहां अठारह का भाग दीए भाज्य अठारह था, तहां एक भया अर भागहार बहत्तर था, तहां च्यारि भया, तातैं अठारह करि अपवर्त्तन भया कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र अपवर्त्तन का स्वरूप जानना।

बहुरि व्यवकलन विषैं जैसैं तीन विषैं पांच चौथा अंश घटावना। तहां **'कल्प्यो हरो रूपमहाररशेः'** इस वचन तैं जाकैं अंश न होइ, तहां एक अंश कल्पना, सो इहां तीनका अंश नाहीं, तातैं एक अंश कल्पि $\frac{3}{1}\ \frac{5}{4}$ ऐसैं लिखना इहां तीन हारनि कौं अन्य के च्यारि अंश करि, अर पांच हारनि कौं अन्य के एक अंश करि गुणे अर अंशनि कौं परस्पर गुणे $\frac{12}{4}\ \frac{5}{4}$ ऐसा भया। इहां बारह हारनि विषैं पांच घटाएं सात हार भए। अर अंश च्यारि भए। तहां हार कौं अंश का भाग दीए एक अर तीन का चौथा भाग पौण इतना फल आया।

बहुरी भिन्न गुणकार विषैं गुण्य अर गुणकार के हार कौं हार करि अंश कौं अंश करि गुणन करना। जैसैं दश की चौथाइ कौं च्यारि की तिहाइ करि गुणना होइ, तहां ऐसा $\frac{10}{4}\ \frac{4}{3}$ लिखि गुण्य-गुणकार के हार अर अंशनि कौं गुणें चालीस हार अर बारह अंश $\frac{40}{12}$ भए तहां हार कौं अंश का भाग दीए तीन पाया। अव शेष च्यारि का बारहवां भाग ताकौं च्यारि करि अपवर्त्तन कीए एक का तीसरा भाग भया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न भागहार विषैं भाजक के हारनि कौं अंश कीजिए अर अंशनि कौं हार कीजिए । ऐसैं पलटि भाज्य-भाजक का गुण्य-गुणकारवत् विधान करना । जैसैं सैंतीस के आधा कौं तेरह की चौथाई का भाग देना होइ तहां ऐसैं |३७/२|१३/४| लिखिए बहुरि भाजक के हार अर अंश पलटैं ऐसैं |३७/२|४/१३| लिखिना । बहुरि गुणनविधि कीए एक सौ अडतालीस हार अर छब्बीस अंश १४८/२६ भए । तहां अंश का हार कौं भाग दीए पांच पाए । अर अवशेष अठारह छब्बीसवां भाग, ताका दोय करि अपवर्तन कीए नव तेरहवां भागमात्र भया । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि भिन्न वर्ग अर घन का विधान गुणकारवत् ही जानना । जातैं समान राशि दोय कौं परस्पर गुणें वर्ग हो है । तीन कौं परस्पर गुणें घन हो है । जैसैं तेरह का चौथा भाग कौं दोय जायगा मांडि |१३/४|१३/४| परस्पर गुणें ताका वर्ग एक सौ गुणहत्तर का सोलहवां भागमात्र १६९/१६ हो है । अर तीन जायगा मांडि |१३/४|१३/४|१३/४| परस्पर गुणें इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग मात्र २१९७/६४ घन हो है । बहुरि भिन्न वर्गमूल, घनमूल विषैं हारनि का अर अंशनि का पूर्वोक्त विधान करि जुदा-जुदा मूल ग्रहण करिए । जैसैं वर्गित राशि एक सौ गुणहत्तरि का सोलहवां भाग १६९/१६ । तहां पूर्वोक्त विधान तैं एक सौ गुणहत्तरि का वर्गमूल तेरह, अर सोलह का च्यारि ऐसैं तेरह का चौथा भागमात्र १३/४ वर्गमूल आया । बहुरि घनराशि इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग २१९७/६४ । तहां पूर्वोक्त विधान करि इकईस सै सत्याणवै का घनमूल तेरह, चौसठि का च्यारि ऐसैं तेरह का चौथा भागमात्र १३/४ घनमूल आया । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि अब शून्यपरिकर्माष्ट लिखिए है । शून्य नाम बिंदी का है, ताके संकलनादिक कहिए है । तहां बिंदी विषैं अंक जोड़ें अंक ही होय । जैसैं पचास विषैं पांच जोडिए । तहां एकस्थानीय बिंदी विषैं पांच जोड़ैं पांच भए । दशस्थानीय पांच है ही, ऐसैं पचावन भए । बहुरि अंक विषै बिंदी घटाए अंक ही रहैं । जैसैं पचावन में दश

इहां उदाहरण – तहां संकलन विषैं पांच छट्ठा अंश दोय तिहाइ तीन पाव (चौथाई) इनकौं जोडना होइ तहां $\frac{5}{6} \Big| \frac{2}{3} \Big| \frac{3}{4}$ ऐसा लिखि तहां पांच हार कौं अन्य के तीन च्यारि-अंशनि करि अर दोय हार कौं अन्य के छह-च्यारि अंशनि करि अर तीन हार कौं अन्य के छह-तीन अंशनि करि गुणे साठि अडतालीस चौवन हार भए। अर अंशनि कौं परस्पर गुणे सर्वत्र बहत्तर अंश $\frac{60}{72} \Big| \frac{48}{72} \Big| \frac{54}{72}$ ऐसैं भए। इहां हारनि कौं जोडे एक सो बासठ हार अर बहत्तर अंश भए तहां हार कौं अंश का भाग दीए दोय पाये अर अवशेष अठारह का बहत्तरिवां भाग रह्या। ताका अठारह करि अपवर्त्तन कीए एक का चौथा भाग भया। ऐसैं तिनका जोड सवा दोय आया। कोई संभवता प्रमाण का भाग देइ भाज्य वा भाजक राशि का महत् प्रमाण कौं थोरा कीजिए (वा निःशेष कीजिए) तहां अपवर्त्तन संज्ञा जाननी सो इहां अठारह का भाग दीए भाज्य अठारह था, तहां एक भया अर भागहार बहत्तर था, तहां च्यारि भया, तातैं अठारह करि अपवर्त्तन भया कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र अपवर्त्तन का स्वरूप जानना।

बहुरि व्यवकलन विषैं जैसैं तीन विषैं पांच चौथा अंश घटावना। तहां **'कल्प्यो हरो रूपमहाररराशेः'** इस वचन तैं जाकैं अंश न होइ, तहां एक अंश कल्पना, सो इहां तीनका अंश नाहीं, तातैं एक अंश कल्पि $\frac{3}{1} \Big| \frac{5}{4}$ ऐसैं लिखना इहां तीन हारनि कौं अन्य के च्यारि अंश करि, अर पांच हारनि कौं अन्य के एक अंश करि गुणे अर अंशनि कौं परस्पर गुणे $\frac{12}{4} \Big| \frac{5}{4}$ ऐसा भया। इहां बारह हारनि विषैं पांच घटाएं सात हार भए। अर अंश च्यारि भए। तहां हार कौं अंश का भाग दीए एक अर तीन का चौथा भाग पौण इतना फल आया।

बहुरी भिन्न गुणकार विषैं गुण्य अर गुणकार के हार कौं हार करि अंश कौं अंश करि गुणन करना। जैसैं दश की चौथाइ कौ च्यारि की तिहाइ करि गुणना होइ, तहां ऐसा $\frac{10}{4} \Big| \frac{4}{3}$ लिखि गुण्य-गुणकार के हार अर अंशनि कौं गुणें चालीस हार अर बारह अंश $\frac{40}{12}$ भए तहां हार कौं अंश का भाग दीए तीन पाया। अब शेष च्यारि का बारहवां भाग ताकौं च्यारि करि अपवर्त्तन कीए एक का तीसरा भाग भया। असें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न भागहार विषैं भाजक के हारनि कौं अंश कीजिए अर अंशनि कौं हार कीजिए। ऐसैं पलटि भाज्य-भाजक का गुण्य-गुणकारवत् विधान करना। जैसैं सैंतीस के आधा कौं तेरह की चौथाई का भाग देना होइ तहां ऐसैं $\left|\frac{३७}{२}\right|\frac{१३}{४}\right|$ लिखिए बहुरि भाजक के हार अर अंश पलटे ऐसैं $\left|\frac{३७}{२}\right|\frac{४}{१३}\right|$ लिखिना। बहुरि गुणनविधि कीए एक सौ अडतालीस हार अर छब्बीस अंश $\frac{१४८}{२६}$ भए। तहां अंश का हार कौं भाग दीए पांच पाए। अर अवशेष अठारह छब्बीसवां भाग, ताका दोय करि अपवर्त्तन कीए नव तेरहवां भागमात्र भया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्न वर्ग अर घन का विधान गुणकारवत् ही जानना। जातैं समान राशि दोय कौं परस्पर गुणें वर्ग हो है। तीन कौं परस्पर गुणें घन हो है। जैसे तेरह का चौथा भाग कौं दोय जायगा मांडि $\left|\frac{१३}{४}\right|\frac{१३}{४}\right|$ परस्पर गुणें ताका वर्ग एक सौ गुणहत्तर का सोलहवां भागमात्र $\frac{१६९}{१६}$ हो है। अर तीन जायगा मांडि $\left|\frac{१३}{४}\right|\frac{१३}{४}\right|\frac{१३}{४}\right|$ परस्पर गुणें इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग मात्र $\frac{२१९७}{६४}$ घन हो है। बहुरि भिन्न वर्गमूल, घनमूल विषैं हारनि का अर अंशनि का पूर्वोक्त विधान करि जुदा-जुदा मूल ग्रहण करिए। जैसैं वर्गित राशि एक सौ गुणहत्तरि का सोलहवां भाग $\frac{१६९}{१६}$। तहां पूर्वोक्त विधान तैं एक सौ गुणहत्तरि का वर्गमूल तेरह, अर सोलह का च्यारि ऐसैं तेरह का चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ वर्गमूल आया। बहुरि घनराशि इकईस सै सत्याणवै का चौसठवां भाग $\frac{२१९७}{६४}$। तहां पूर्वोक्त विधान करि इकईस सै सत्याणवे का घनमूल तेरह, चौसठि का च्यारि ऐसें तेरह का चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ घनमूल आया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि अब शून्यपरिकर्माष्ट लिखिए है। शून्य नाम बिंदी का है, ताके संकलनादिक कहिए है। तहां बिंदी विषैं अंक जोडें अंक ही होय। जैसें पचास विषैं पांच जोडिए। तहां एकस्थानीय बिंदी विषैं पांच जोडें पांच भए। दशस्थानीय पांच है ही, ऐसैं पचावन भए। बहुरि अंक विषैं बिंदी घटाए अंक ही रहैं। जैसें पचावन में दश

घटाए एक स्थानीय पांच में बिंदी घटाए पांच ही रहे, दशस्थानीय पांच में एक घटाए च्यारि रहे अैसें पैंतालीस भए। बहुरि गुणकार विषैं अंक कौ बिंदीकरि गुणें बिंदी होय। जैसें वीस कौं पांच करि गुणिए, तहां गुण्य के दूवा कौ पांच करि गुणे दश भए। बहुरि बिंदी कौं पांच करि गुणे, बिंदी ही भई अैसें सौ भए।

बहुरि अंक कौ बिंदी का भाग दीए खहर कहिए। जातैं जैसें-जैसें भागहार घटता होइ, तैसें-तैसें लब्धराशि बधती होइ। जैसें दश कौं एक का छठा भाग का भाग दिए साठि होइ, एक का वीसवां भाग का भाग दीए दोय सै होय, सो बिंदी शून्यरूप, ताका भाग दीए फल का प्रमाण अवक्तव्य है। याका हार बिंदी है, इतना ही कह्या जाए। बहुरी बिंदी का वर्गघन, वर्गमूल, घनमूल विषैं गुणकारादिवत् बिंदी ही हो है। अैसें लौकिक गणित अपेक्षा परिकर्माष्टक का विधान कह्या।

बहुरि अलौकिक गणित अपेक्षा विधान है, सो सातिशय ज्ञानगम्य है। जातैं तहां अंकादिक का अनुक्रम व्यक्तरूप [1] नाहीं है। तहां कहीं तौ संकलनादि होतें जो प्रमाण भया ताका नाम कहिए है। जैसें उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात विषैं एक जोड़ैं जघन्य परीतानंत होइ, (जघन्य परीतानंत में एक घटाएं उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होइ) [2] अर जघन्य परीतासंख्यात विषैं एक घटाएं उत्कृष्ट संख्यात होइ। पल्य कौं दशकोडाकोडि करि गुणें सागर होइ जगत् श्रेणी कूं सात का भाग दीए राजू होइ। जघन्य युक्तासंख्यात का वर्ग कीए जघन्य असंख्यातासंख्यात होइ। सूच्यंगुल का घन कीये घनांगुल होइ। प्रतरांगुल का वर्गमूल ग्रहे सूच्यंगुल होइ। लोक का घनमूल ग्रहे जगत् श्रेणी होइ, इत्यादि जानना।

बहुरि कहीं संकलनादि होतें जो प्रमाण भया, ताका नाम न कहिए है, संकलनादिरूप ही कथन कहिए है। जातैं सर्व संख्यात, असंख्यात, अनंतनि के भेदनि का नाम वक्तव्यरूप नाहीं है। जैसें जीवराशि करि अधिक पुद्गलराशि कहिए वा सिद्धराशि करि हीन जीवराशि कहिए, वा असंख्यात गुणा लोक कहिए वा संख्यात प्रतरांगुल करि भाजित जगत्प्रतर कहिए, वा पल्य का वर्ग कहिए, वा पल्य का घन कहिए, वा केवलज्ञान का वर्गमूल कहिए, वा आकाश प्रदेशराशि का घनमूल कहिए, इत्यादि

---

१. ध प्रति 'वक्तव्यरूप' ऐसा पाठ है।

२. यह वाक्य सिर्फ छपी प्रति में है, हस्तलिखित छह प्रतियों में नहीं है।

जानना । बहुरि अलौकिक मान की सहनानी स्थापि, तिनके लिखने का वा तहां संकलनादि होतें लिखने का जो विधान है, सो आगै संदृष्टि अधिकार विषै वर्णन करेंगे, तहां तैं जानना । बहुरि तहां ही लौकिक-मान का भी लिखने का वा तहां संकलनादि होतें लिखने का जो विधान है, सो वर्णन करेंगे । इहां लिखें ग्रन्थ विषै प्रवेश करते ही शिष्यनि कौं कठिनता भासती; तहां अरुचि होती, तातैं इहां न लिखिए है । उदाहरण मात्र इतना ही इहां भी जानना, जो संकलन विषै तौ अधिक राशि कौं ऊपरि लिखना जैसें पंच अधिक सहस्र "५ / १०००" ऐसैं लिखने । व्यवकलन विषै हीन राशि कौं ऊपरि लिखि तहां पूंछडीकासा आकार करि बिंदी दीजिए जैसें पंच हीन सहस्र ५~ / १००० ऐसैं लिखिए । गुणकार विषैं गुण्य के आगैं गुणक कौं लिखिए । जैसें पंचगुणा सहस्र १०००×५ ऐसैं लिखिए । भागहार विषै भाज्य के नीचैं भाजक कौं लिखिए । जैसें पांच करि भाजित सहस्र १००० / ५ ऐसैं लिखिए । वर्ग विषैं राशि कौं दोय बार बराबर मांडिए । जैसें पांच का वर्ग कौं ५×५ ऐसैं लिखिए । घन विषैं राशि कौं तीन बार बराबरि मांडिए । जैसें पांच का घन कौं ५×५×५ ऐसैं लिखिए । वर्गमूल-घनमूल विषैं वर्गरूप-घनरूप राशि कै आगै मूल की सहनानी करनी । जैसें पचीस का वर्गमूल कौं "२५ व० मू०" ऐसैं लिखिए । एक सौ पचीस का घनमूल कौं "१२५ घ० मू०" ऐसैं लिखिए । ऐसैं अनेक प्रकार लिखने का विधान है । ऐसैं परिकर्माष्टक का व्याख्यान कीया सो जानना ।

बहुरि त्रैराशिक का जहां-तहां प्रयोजन जानि स्वरूप मात्र कहिए है । तहां तीन राशि हो हैं – प्रमाण, फल, इच्छा । तहां जिस विवक्षित प्रमाण करि जो फल प्राप्त होइ, सो प्रमाणराशि अर फलराशि जाननी । बहुरि अपना इच्छित प्रमाण होइ, सो इच्छा राशि जाननी । तहां फल कौं इच्छा करि गुणि, प्रमाण का भाग दीए अपना इच्छित प्रमाण करि प्राप्त जो फल, ताका प्रमाण आवै है, इसका नाम लब्ध है । इहां प्रमाण अर इच्छा[१] की एकजाति जाननी । बहुरि फल अर लब्ध की एक जाति जाननी । इहां उदाहरण जैसें पांच रुपैया का सात मण अन्न आवै तौ सात रुपैया का केता अन्न आवै ऐसैं त्रैराशिक कीया । इहां प्रमाण राशि पांच, फल राशि सात, इच्छा राशि सात, तहां फलकरि इच्छा कौं गुणि प्रमाण का भाग दीए गुणचास

१. छपी प्रति 'इच्छा' शब्द और अन्य हस्तलिखित प्रतियों में 'फल' शब्द है ।

का पांचवां भाग मात्र लब्ध प्रमाण आया। ताका नव मण अर च्यारि मण का पांचवां भाग मात्र लब्धराशि भया।

ऐसें ही छह सै आठ (६०८) सिद्ध छह महीना आठ समय विषें होइ, तौ सर्व सिद्ध केते काल में होइ, ऐसें त्रैराशिक करिए, तहां प्रमाण राशि छह सै आठ, अर फलराशि छह मास आठ समयनि की संख्यात आवली, इच्छा राशि सिद्धराशि। तहां फल करि इच्छा कौं गुणि, प्रमाण का भाग दीए लब्धराशि संख्यात आवली करि गुणित सिद्ध राशि मात्र अतीत काल का प्रमाण आवै है। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि केतेइक गणितनि का कथन आगें इस शास्त्र विषें जहां प्रयोजन आवैगा तहां कहिएगा। जैसें श्रेणी व्यवहार का कथन गुणस्थानाधिकार विषें करणनि का कथन करते कहिएगा। बहुरि एक बार, दोय बार आदि संकलन का कथन ज्ञानाधिकार विषें पर्यायसमासज्ञान का कथन करते कहिएगा। बहुरि गोल आदि क्षेत्र व्यवहार का कथन जीवसमासादिक अधिकारनि विषें कहिएगा। ऐसें ही और भी गणितनि का जहां प्रयोजन होइगा तहां ही कथन करिएगा सो जानना। बहुरि अज्ञात राशि ल्यावने का विधान वा सुवर्णगणित आदि गणितनि का इहां प्रयोजन नाहीं, तातैं तिनका इहां कथन न करिए है। ऐसें गणित का कथन किया। ताकौं यादि राखि जहां प्रयोजन होइ, तहां यथार्थरूप जानना। बहुरि ऐसें ही इस शास्त्र विषें करणसूत्रनि का, वा केई संज्ञानि का वा केई अर्थनि का स्वरूप एक बार जहां कह्या होइ, तहांतैं यादि राखि, तिनका जहां प्रयोजन आवै, तहां तैसा ही स्वरूप जानना।

या प्रकार श्रीगोम्मटसार शास्त्र की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषें पीठिका समाप्त भई।

गोम्मटसार जीवकाण्ड

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

भाषाटीका सहित

अब इस शास्त्र के मूल सूत्रनि की संस्कृत टीका के अनुसारि भाषा टीका करिए है। तहां प्रथम ही संस्कृत टीकाकार करि कथित ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा, वा मूल शास्त्र होने के समाचार वा मंगल करने की पुष्टता इत्यादि कथन कहिए है।

बंदौ नेमिचंद्र जिनराय, सिद्ध ज्ञानभूषण सुखदाय।
करि हौं गोम्मटसार सुटीक, करि कर्णाटि टीक तैं ठीक ।।१।।

ऐसें संस्कृत टीकाकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करी है। बहुरि कहै हैं – श्रीमान् अर काहू करि हण्या न जाय है प्रभाव जाका, ऐसा जो स्याद्वाद मत, सोही भई गुफा ताके अभ्यंतर वास करता जो कुवादीरूप हस्तीनि कौं सिंहसमान सिंहनन्दि नामा मुनींद्र, तिहकरि भई है ज्ञानादिक की वृद्धि जाकैं, ऐसा जो गंगनामा वंश विषैं तिलक समान अर राजकार्य का सर्व जानने कौं आदि दे करि अनेक गुणसंयुक्त श्रीमान् राजमल्ल नामा महाराजा देव, पृथिवी कौं प्यारा, ताका महान् जो मंत्रीपद, तिहविषैं शोभायमान अर रण की रंगभूमि विषैं शूरवीर अर पर का सहाय न चाहै, ऐसा पराक्रम का धारी, अर गुणरूपी रत्ननि का आभूषण जाके पाइए अर सम्यक्त्व रत्न का स्थानकपना कौं आदि देकरि नानाप्रकार के गुणन करि अंगीकार करी जो कीर्ति, ताका भर्त्तार ऐसा जो श्रीमान् चामुंडराय राजा, ताका प्रश्न करि जाका अवतार भया, ऐसा इकतालीस पदनि विषैं नामकर्म के सत्त्व का निरूपण, तिह द्वार करि समस्त शिष्य जननि के समूह कौं संबोधन के अर्थि श्रीमान् नेमीचन्द्र नामा सिद्धांतचक्रवर्ती, समस्त सिद्धांत पाठी, जननि विषैं विख्यात है निर्मल यश जाका, अर विस्तीर्ण बुद्धि का धारक, यहु भगवान् शास्त्र का कर्त्ता।

सो महाकर्मप्रकृति प्राभृत नामा मुख्य प्रथम सिद्धांत, तिहका १. जीवस्थान, २. क्षुद्रबंध, ३. बंधस्वामी, ४. वेदनाखण्ड, ५. वर्गणाखंड, ६. महाबंध – ए छह खंड हैं।

तिनविषैं जीवादिक जो प्रमाण करनेयोग्य समस्त वस्तु, ताकौं उद्धार करि गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह नामा ग्रंथ के विस्तार कौं रचता संता तिस ग्रंथ कौं आदि ही विषैं निर्विघ्न शास्त्र की संपूर्णता होने के अर्थि, वा नास्तिक वादी का परिहार के अर्थि, वा शिष्टाचार का पालने के अर्थि, वा उपकार कौं स्मरण के अर्थि विशिष्ट जो अपना इष्ट देव का विशेष, ताहि नमस्कार करें हैं।

भावार्थ – इहां असा जानना – सिद्धनन्दि नामा मुनि का शिष्य, जो गंगवंशी राजमल्ल नामा महाराजा, ताका मंत्री जो चामुंडराय राजा, तिहनें नेमीचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती प्रति असा प्रश्न कीया –

जो सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायादिक इकतालीस जीवपदनि विषैं नामकर्म के सत्त्वनि का निरूपण कैसें है ? सो कहौ।

तहां इस प्रश्न के निमित्त कौं पाय अनेक जीवनि के संबोधने के अर्थि जीवस्थानादिक छह अधिकार जामैं पाइए, असा महाकर्म प्रकृति प्राभृत है नाम जाका, असा अग्रायणीय पूर्व का पांचवां वस्तु, अथवा यति भूतबलि आचार्यकृत १ धवल शास्त्र, ताका अनुसार लेइ गोम्मटसार अर याहीका द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ, ताके करने का प्रारंभ किया। तहां प्रथम अपने इष्टदेव कौं नमस्कार करें हैं। ताके निर्विघ्नपने शास्त्र की समाप्तता होने कूं आदि देकरि च्यारि प्रयोजन कहे। अब इनकौं दृढ करें हैं।

इहां तर्क – जो इष्टदेव, ताकौं नमस्कार करने करि निर्विघ्नपनें शास्त्र की समाप्तता कहा हो है ?

तहां कहिए है – जो ऐसी आशंका न करनी, जातें शास्त्र का असा वचन है–

"विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥"

याका अर्थ – जो जिनेश्वरदेव कौं स्तवतां थकां विघ्न के जु समूह, ते नाश कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि शाकिनी, भूत, सर्पादिक, ते नाश कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि विष है, सो विषरहितपना कौं प्राप्त हो है। सो असा वचन थकी शंका न करना। बहुरि जैसें प्रायश्चित्त का आचरण करि व्रतादिक का दोष नष्ट हो है, बहुरि जैसें

१. यति वृषभाचार्य ने गुणधराचार्य विरचित कषायपाहुड के सूत्रों पर चूर्णिसूत्र लिखे हैं। भूतबली आचार्य ने षट्खण्डागम सूत्रों की रचना की है और आचार्य वीरसेन ने षट्खण्डागम सूत्रों की 'धवला' टीका लिखी है

औषधि सेवन करि रोग नष्ट हो है; तैसें मंगल करने करि विघ्नकर्ता अन्तरायकर्म के नाश का अविरोध है, तातें शंका न करनी। ऐसें प्रथम प्रयोजन दृढ़ कीया।

बहुरि तर्क – जो ऐसा न्याय है—

"सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः ।
विद्यते नहि स कश्चिदुपाय सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥"

याका अर्थ – जो सर्वप्रकार करि अपना हित का आचरण करना। अपना हित करतें बहुत बकै है जो मनुष्यलोक, सो कहा करैगा ? अर कोऊ कहै जो सर्व प्रसन्न होइ, सो कार्य करना; तो लोक विषैं सो कोई उपाय ही नाहीं, जो सर्व लोक कौं संतोष करै। ऐसें न्याय करि जाका प्रारंभ करो हौ, ताका प्रारंभ करो।

नास्तिकवादी का परिहार करि कहा साध्य है ?

तहां कहिए है – ऐसा भी न कहना। जातें प्रशम, संवेग अनुकंपा, आस्तिक्य गुण का प्रगट होनेरूप लक्षण का धारी सम्यग्दर्शन है। यातें नास्तिकवादी का परिहार करि आप्त जो सर्वज्ञ, तिहनै आदि देकरि पदार्थनि विषैं जो आस्तिक्य भाव हो है, ताकैं सम्यग्दर्शन का प्राप्ति करने का कारणपना पाइए है। बहुरि ऐसा प्रसिद्ध वचन है—

"यद्यपि विमलो योगी, छिद्रान् पश्यति मेदनि ।
तथापि लौकिकाचारं, मनसापि न लंघयेत् ॥"

याका अर्थ – यद्यपि योगीश्वर निर्मल है, तथापि पृथ्वी वाके भी छिद्रनि कौं देखै है। तातें लौकिक आचार कूं मन करि भी उल्लंघन न करै; ऐसें प्रसिद्ध है। तातें नास्तिक का परिहार कीया चाहिये। ऐसें दूसरा प्रयोजन दृढ कीया।

बहुरि तर्क – जो शिष्टचार का पालन किसैं अर्थ करिए ?

तहां कहिए है – ऐसा विचार योग्य नाहीं, जातें ऐसा वचन मुख्य है **"प्रायेण गुरुजनशीलमनुचरंति शिष्याः ।" याका अर्थ** – जे शिष्य हैं ते, अतिशय करि गुरुजन का जु स्वभाव, ताकौं अनुसार करि आचरण करै हैं। बहुरि ऐसा न्याय है – **"मंगलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्तारमिति षडपि व्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वन्तु"** **याका अर्थ**—जो मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम, कर्ता इन छहों कौं पहिले करि

आचार्य है सो पीछैं शास्त्र कौं करै । असा न्याय आचार्यनि की परंपरा तैं चल्या आया है । ताका उल्लंघन कीए उन्मार्ग विषैं प्रवर्तने का प्रसंग होय । तातैं शिष्टाचार का पालना किरो अर्थ करिए है ? ऐसा विचार योग्य नाहीं ।

अब इहां मंगलादिक छहों कहा ? सो कहिए है – तहां प्रथम ही पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ, सौख्य – इत्यादि मंगल के पर्याय हैं । मंगल ही के पुण्यादिक भी नाम हैं । तहां मल दोय प्रकार है – द्रव्यमल, भावमल तहां द्रव्यमल दोयप्रकार – बहिरंग, अन्तरंग । तहां पसेव, मल, धूलि, कादो इत्यादि बहिरंग द्रव्यमल है । बहुरि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशनि करि आत्मा के प्रदेशनि विषैं निबिड बंध्या जो ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्म, सो अन्तरंग द्रव्यमल है ।

बहुरि भावमल अज्ञान, अदर्शनादि परिणामरूप है । अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव भेदरूप मल है । अथवा उपचार मल जीव के पाप कर्म हैं । तिस सब ही मल कौं गालयति कहिए विनाशै, वा घातै, वा दहै, वा हनै, वा शोधै, वा विध्वंसै, सो मंगल कहिए । अथवा मंगं कहिए सौख्य वा पुण्य, ताकौं लाति कहिए आदान करै, ग्रहण करै, सो मंगल है ।

बहुरि सो मंगल नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेद तैं आनंद का उपजावनहारा छह प्रकार है । तहां अर्हंत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, इनका जो नाम, सो तौ नाम मंगल है । बहुरि कृत्रिम, अकृत्रिम जिनादिक के प्रतिबिंब,सो स्थापना मंगल है । बहुरि जिन, आचार्य, उपाध्याय, साधु इनका जो शरीर, सो द्रव्य मंगल है ।

बहुरि कैलाश, गिरिनार, सम्मेदाचलादिक पर्वतादिक, अर्हन्त आदिक के तप-केवलज्ञानादि गुणनि के उपजने का स्थान, वा साढा तीन हाथ तैं लगाय पांच सैं पचीस धनुष पर्यन्त केवली का शरीर करि रोक्या हूवा आकाश अथवा केवली का समुद्घात् करि रोक्या हूवा आकाश, सो क्षेत्र मंगल है ।

बहुरि जिस काल विषैं तप आदिक कल्याण भए होंहि, वा जिस काल विषैं अष्टाह्निक आदि जिनादिक के महान उत्सव वर्तैं, सो काल मंगल है ।

बहुरि मंगल पर्याय करि संयुक्त जीवद्रव्यमात्र भाव मंगल है ।

सो यहु कह्या हूवा मंगल जिनादिक का स्तवनादिरूप है, सो शास्त्र की आदि विषैं कीया हूवा शिष्यनि कौं थोरे कालादिक करि शास्त्रनि का पारगामी करै है ।

मध्य विषैं कीया हूवा मंगल विद्या का व्युच्छेद न होइ, ताकौं करै है। अन्त विषैं कीया हूवा विद्या का निर्विघ्नपनैं कौं करै है।

कोई तर्क करै कि – इष्ट अर्थ की प्राप्ति परमेष्ठीनि के नमस्कार तैं कैसें होइ ?

तहां कारण कहिए है –

"नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतराय ।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः ॥"

याका अर्थ – अर्हन्तादिक कौं नमस्काररूप शुभ भावनि करी नष्ट भया है अनुभाग का आधिक्य जाका, ऐसा जु अन्तराय नामा कर्म, सो इष्ट के घातने कौं प्रभु कहिए समर्थ न होइ, तातैं तिस अभिलाष युक्त जीव करि गुणानुराग तैं अर्हंत आदिक कौं कीया हूवा नमस्कारादिक, सो इष्ट अर्थ का करनहारा है - ऐसा परमागम विषैं प्रसिद्ध है, तातैं सो मंगल अवश्य करना ही योग्य है।

बहुरि निमित्त इस शास्त्र का यहु है – जे भव्य जीव हैं, ते बहुत नय प्रमाणनि करि नानाप्रकार भेद कौं लीये पदार्थ कौं जानहु, इस कार्य कौं कारणभूत करिए हैं।

बहुरि हेतु इस शास्त्र के अध्ययन विषै दोय प्रकार है – प्रत्यक्ष, परोक्ष। तहां प्रत्यक्ष दोय प्रकार – साक्षात्प्रत्यक्ष, परंपराप्रत्यक्ष। तहां अज्ञान का विनाश होना, बहुरि सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होनी, बहुरि देव-मनुष्यादिकनि करि निरंतर पूजा करना, बहुरि समय-समय प्रति असंख्यात गुणश्रेणीरूप कर्म निर्जरा होना, ये तौ साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु हैं। शास्त्राध्ययन करतैं ही ए फल निपजैं हैं। बहुरि शिष्य वा शिष्यनि के प्रति शिष्य, तिनकरि निरंतर पूजा का करना, सो परंपरा प्रत्यक्ष हेतु है। शास्त्राध्ययन कीए तैं ऐसी फल की परंपरा हो है।

बहुरि परोक्ष हेतु दोय प्रकार – अभ्युदयरूप, निःश्रेयसरूप। तहां सातावेदनीयादिक प्रशस्त प्रकृतिनि का तीव्र अनुभाग का उदय करि निपज्या तीर्थंकर, इंद्र, राजादिक का सुख, सो तौ अभ्युदयरूप है। बहुरि अतिशय संयुक्त, आत्मजनित, अनौपम्य, सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर का सुख वा पंचेंद्रियनि तैं अतीत सिद्ध सुख, सो निःश्रेयसरूप है। ग्रंथ अध्ययन तैं पीछैं परोक्ष ऐसा फल पाइए हैं। तातैं यहु ग्रंथ ऐसे फलनि का हेतु जानना।

बहुरि प्रमाण इस शास्त्र का नानाप्रकार अर्थनि करि अनंत है । बहुरि अक्षर गणना करि संख्यात है; जातें जीवकांड का सात से पचीस गाथा सूत्र है ।

बहुरि नाम-जीवादि वस्तु का प्रकाशने कौं दीपिका समान है । तातैं संस्कृत टीका की अपेक्षा **जीवतत्वप्रदीपिका** है ।

बहुरि कर्ता इस शास्त्र का तीन प्रकार – अर्थकर्ता, ग्रंथकर्ता, उत्तर ग्रंथकर्ता ।

तहां समस्तपनै दग्ध कीया घाति कर्म चतुष्टय, तिहकरि उपज्या जो अनन्त ज्ञानादिक चतुष्टयपना, ताकरि जान्या है त्रिकाल संबन्धी समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थ स्वरूप जिहैं, बहुरि नष्ट भए हैं क्षुधादिक अठारह दोष जाके, बहुरि चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य करि संयुक्त, बहुरि समस्त सुरेंद्र-नरेंद्रादिकनि करि पूजित है चरण कमल जाका, बहुरि तीन लोक का एक नाथ, बहुरि अठारह महाभाषा अर सात से क्षुद्र भाषा, वा संज्ञी संबंधी अक्षर-अनक्षर भाषा तिहस्वरूप, अर तालवा, दांत, होठ, कंठ का हलावना आदि व्यापाररहित, अर भव्य जीवनि कौं आनन्द का कर्ता, अर युगपत् सर्व जीवनि कौं उत्तर का प्रतिपादन करनहारा ऐसी जु दिव्यध्वनि, तिहकरि संयुक्त, बहुरि बारह सभा करि सेवनीक, ऐसा जो भगवान श्री वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेव, सो अर्थकर्ता जानना ।

बहुरि तिस अर्थ का ज्ञान वा कवित्वादि विज्ञान अर सात ऋद्धि, तिनकरि संपूर्ण विराजमान ऐसा गौतम गणधर देव, सो ग्रंथकर्ता जानना । बहुरि तिसही के अनुक्रम का धारक, बहुरि नाहीं नष्ट भया है सूत्र का अर्थ जाकैं, बहुरि रागादि दोषनि करि रहित ऐसा जो मुनिश्वरनि का समूह, सो उत्तर ग्रंथकर्ता जानना ।

या प्रकार मंगलादि छहोंनि का व्याख्यान इहां कीया । ऐसैं तीसरा प्रयोजन दृढ कीया है ।

बहुरि तर्क – जो शास्त्र की आदि विषै उपकार स्मरण किसे अर्थ करिए है?

तहां कहिए हैं – जो ऐसा न कहना, जातैं ऐसा कथन है

"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥"

याका अर्थ — श्रेय जो कल्याण, ताके मार्ग की सम्यक् प्रकार सिद्धि, सो परमेष्ठि के प्रसाद तैं हो है । इस हेतु तैं मुनि प्रधान हैं, ते शास्त्र की आदि विषैं तिस परमेष्ठी का स्तोत्र करना कहै हैं । बहुरि ऐसा वचन है—

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः, प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् ।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकारं पण्डिताः (साधवो) विस्मरंति ।।

याका अर्थ – वांछित, अभीष्ट फल की सिद्धि होने का उपाय सम्यग्ज्ञान है । बहुरि सो सम्यग्ज्ञान शास्त्र तैं हो है । बहुरि तिस शास्त्र की उत्पत्ति आप्त जो सर्वज्ञ तैं है । इस हेतु तैं सो आप्त सर्वज्ञदेव है, सो तिसका प्रसाद तैं ज्ञानवंत भए जे जीव, तिनकरि पूज्य हो हैं, सो न्याय ही है व पंडित हैं, ते कीए उपकार कौं नाहीं भूलै हैं, तातैं शास्त्र की आदि विषैं उपकार स्मरण किसे अर्थ करिए ऐसा न कहना । ऐसैं चौथा प्रयोजन दृढ किया ।

याहीतैं विघ्न विनाशने कौं, बहुरि शिष्टाचार पालने कौं, बहुरि नास्तिक के परिहार कौं, बहुरि अभ्युदय का कारण जो परम पुण्य, ताहि उपजावने कौं, बहुरि कीया उपकार के यादि करने कौं शास्त्र की आदि विषैं जिनेंद्रादिक कौं नमस्कारादि रूप जो मुख्य मंगल, ताकौ आचरण करत संता, बहुरि जो अर्थ कहेगा, तिस अभिधेय की प्रतिज्ञा कौं प्रकाशता संता आचार्य है, सो **सिद्धं** इत्यादि गाथा सूत्र कौं कहै है-

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं ।
गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं ।।१।।

सिद्धं शुद्धं प्रणम्य, जिनेंद्रवरनेमिचन्द्रमकलंकम् ।
गुणरत्नभूषणोदयं, जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्ये ।।१।।

टीका – **अहं वक्ष्यामि** । **अहं** कहिए मैं जु हौं ग्रंथकर्ता । सो **वक्ष्यामि** कहिये कहौंगा करौंगा । किं ? किसहि करौंगा ? **प्ररूपणं** कहिये व्याख्यान अथवा अर्थ कौं प्ररूपै वा अर्थ याकरि प्ररूपिये ऐसा जु ग्रंथ, ताहि करौंगा । **कस्य प्ररूपणं** ? किसका प्ररूपण कहौंगा ? **जीवस्य** कहिये च्यारि प्राणनि करि जीवै है, जीवेगा, जीया ऐसा जीव जो आत्मा, तिस जीव के भेद का प्रतिपादन करण हारा शास्त्र

मैं कहौंगा; अैसी प्रतिज्ञा करि । इस प्रतिज्ञा करि इस शास्त्र कैं संबन्धाभिधेय, शक्यानुष्ठान, इष्टप्रयोजनपना है; तातैं बुद्धिवंतनि करि आदर करना योग्य कह्या है ।

तहां जैसा संबन्ध होइ, तैसा ही जहां अर्थ होइ; सो संबंधाभिधेय कहिये । बहुरि जाके अर्थ के आचरण करने की सामर्थ्य होइ, सो शक्यानुष्ठान कहिये । बहुरि जो हितकारी प्रयोजन लिए होइ, सो इष्टप्रयोजक कहिये ।

कथंभूतं प्ररूपणं ? जाकौं कहौंगा, सो कैसा है प्ररूपण ? **गुणरत्नभूषणोदयं**– गुण जे सम्यग्दर्शनादिक, तेई भये रत्न, सोई है आभूषण जाकैं, अैसा जो गुणरत्नभूषण चामुंडराय, तिसतैं है उदय कहिये उत्पत्ति जाकी अैसा शास्त्र है । जातैं चामुंडराय के प्रश्न के वश तैं याकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है । अथवा गुणरूप जो रत्न सो **भूषयति** कहिये शोभै जिहि विषैं ऐसा गुणरत्नभूषण मोक्ष, ताकी है उदय कहिये उत्पत्ति जातैं ऐसा शास्त्र है ।

भावार्थ – यहु शास्त्र मोक्ष का कारण है । बहुरि विकथादिरूप बंध का कारण नाहीं है । इस विशेषण करि १. बंधक २. बंध्यमान ३. बंधस्वामी ४. बंधहेतु ५. बंधभेद - ये पंच सिद्धांत के अर्थ हैं ।

तहां कर्मबंध का कर्ता संसारी जीव, सो बंधक । बहुरि मूल-उत्तर प्रकृतिबंध सो बंध्यमान । बहुरि यथासंभव बंध का सद्भाव लीयें गुणस्थानादिक, सो बंधस्वामी । बहुरि मिथ्यात्वादि आस्रव, सो बंधहेतु । बहुरि प्रकृति, स्थिति आदि बंधभेद – इनका निरूपण है, तातैं गोम्मटसार का द्वितीयनाम पंचसंग्रह है । तिहिविषैं बंधक जो जीव, ताका प्रतिपादन करणहारा यहु शास्त्र **जीवस्थान** वा **जीवकांड** इनि दोय नामनिकरि विख्यात, ताहि मैं कहौंगा । अैसा शास्त्र के कर्ता का अभिप्राय यहु विशेषण दिखावै है ।

बहुरि **कथंभूतं प्ररूपणं** ? कैसा है प्ररूपण ? **सिद्धं** कहिये पूर्वाचार्यनि की परंपरा करि प्रसिद्ध है, अपनी रुचि करि नाहीं रचनारूप किया है । इस विशेषण करि आचार्य अपना कर्तापना कौं छोडि पूर्व आचार्यादिकनि का अनुसार कों कहै हैं । **पुनः किं विशिष्टं प्ररूपणं** ? बहुरि कैसा है प्ररूपण ? **शुद्धं** कहिये पूर्वापर विरोध कौं आदि देकरि दोषनि करि रहित है, तातैं निर्मल है । इस विशेषण करि सम्यग्ज्ञानी जीवनि कै उपादेयपना इस शास्त्र का प्रकाशित कीया है ।

किं कृत्य ? कहाकरि ? **प्रणम्य** कहिये प्रकर्षपने नमस्कार करि प्ररूपण करौ हौं । कं किसहि ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** - कर्मरूप वैरीनि कौं जीतै; सो जिन । अपूर्वकरण परिणाम कौं प्राप्त प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौं सन्मुख सातिशय मिथ्यादृष्टि, ते जिन कहिये । तेई भए इंद्र, कर्मनिर्जरारूप ऐश्वर्य, ताका भोक्ता कौं आदि देकरि सर्वजिनेंद्रनि विषें वर कहिये श्रेष्ठ, असंख्यातगुणी महानिर्जरा का स्वामी असा चामुंडराय करि निर्मापित महापूत चैत्यालय विषें विराजमान नेमि नामा तीर्थंकर देव, सोइ भव्य जीवनि कौं **चंद्रयति** कहिये आह्लाद करै वा समस्त वस्तुनि कौं प्रकाशै अथवा संसार आताप अर अज्ञान अंधकार का नाशक चंद्र असा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र । बहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए कलंकरहित, ताकौं नमस्कार करि जीव का प्ररूपण मैं कहौंगा ।

अथवा अन्य अर्थ कहैं – **कं प्रणम्य** ? किसहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौं हौं ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** – नेमिचंद्र नामा बाईसमा जिनेंद्र तीर्थंकर देव, ताहि नमस्कार करि जीव की प्ररूपणा करौं हौं । कैसा है सो ? **सिद्धं** कहिये समस्त लोक विषैं विख्यात है । बहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिये द्रव्य-भावस्वरूप घातिया कर्मनि करि रहित है । तथापि ताके कोई संशयी क्षुधादिदोष का संभव कहै है, तिस प्रति कहैं हैं – कैसा है सो ? **अकलंकं** कहिये नाहीं विद्यमान है कलंक कहिये क्षुधादिक अठारह दोष जाकै, ऐसा है । बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** – गुण जे अनंत ज्ञानादिक, तेई भए रत्न के आभूषण, तिनका है उदय कहिये उत्कृष्टपना जा विषैं ऐसा है । इस प्रकार अन्य विषैं न पाईए ऐसे असाधारण विशेषण; समस्त अतिशयनि के प्रकाशक, अन्य के आप्तपनें की वार्ता कौं भी जे सहैं नाहीं, तिन इनि विशेषणनि करि इस ही भगवान के परम आप्तपना, परम कृतकृत्यपना हम आदि दै जे अकृतकृत्य हैं, तिनकैं शरणपना प्रतिपादन किया है, ऐसा जानना ।

अथवा अन्य अर्थ कहैं हैं – **कं प्रणम्य** ? किसहि नमस्कार करि जीव का प्रतिपादन करौं हौ ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** - सकल आत्मा के प्रदेशनि विषैं सघन बंधे जे घाति कर्मरूप मेघपटल, तिनके विघटन तैं प्रकटीभूत भए अनंतज्ञानादिक नव केवल लब्धिपना; तातैं जिन कहिये । बहुरि अनौपम्य परम ईश्वरता करि संपूर्णपनां होनेकरि इंद्र कहिये । जिन सोई जो इंद्र सो जिनेंद्र, अपने ज्ञान के प्रभाव करि व्याप्त भया है तीन काल संबंधी तीन लोक का विस्तार जाकैं ऐसा जिनेंद्र, वर कहिये अक्षर संज्ञा करि चौबीस, कैसें ? **'कटपयपुरस्थवर्णैः'** इत्यादि सूत्र अपेक्षा य र ल व विषैं वकार

चौथा अक्षर, ताका च्यारि का अंक, अर रकार दूसरा अक्षर, ताका दोय का अंक, अंकनि की बाईं तरफ से गति है, ऐसें वर शब्द करि चौबीस का अर्थ भया । बहुरि अपने अद्भुत पुण्य के माहात्म्य तें नागेंद्र, नरेंद्र, देवेंद्र का समूह कौं अपने चरणकमल विषें नमावे, सो नेमि कहिये । अथवा धर्मतीर्थरूपी रथ के चलावने विषें सावधान हैं, तातें जैसें रथ के पहिए कैं नेमि - धुरी है; तैसें सो तीर्थंकरनि का समुदाय धर्मरथ विषें नेमि कहिये है । बहुरि चंद्रयति कहिये तीनलोक के नेत्ररूप चंद्रवंशी कमलवननि कौं आह्लादित करै, सो चंद्र कहिये । अथवा जाके तैसा रूप की संपदा का संपूर्ण उदय होय है, जिसरूप संपदा के तौलन के विषें इंद्रादिकनि की सुन्दरता की समीचीन सर्वस्व भी परमाणु समान हलवा (हलका) हो है, सो जो नेमि सोई चंद्र, सो नेमिचंद्र, वर - चौबीस संख्या लिए जो नेमिचंद्र, सो वरनेमिचंद्र, जो जिनेन्द्र सोइ वर नेमिचंद्र, सो जिनेन्द्रवरनेमिचंद्र कहिए वृषभादि वर्धमानपर्यंत तीर्थंकरनि का समुदाय, ताहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण कहौ हौं; ऐसा अभिप्राय है । अवशेष सिद्ध आदि विशेषणनि का पूर्वोक्त प्रकार संबंध जानना ।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं – प्रणम्य कहिये नमस्कार करि कं ? किसहि ? जिनेन्द्रवरनेमिचंद्रं । जयति कहिये जीतै, भेदै, विदारै कर्मपर्वतसमूह कौं, सो जिन कहिए । बहुरि नाम का एकदेश संपूर्णनाम विषें प्रवर्तै है - इस न्याय करि इन्द्र कहिये इन्द्रभूति ब्राह्मण, ताका वा इन्द्र कहिये देवेंद्र, ताका वर कहिए गुरु, ऐसा इन्द्रवर श्रीवर्धमानस्वामी, बहुरि 'नयति' कहिए अविनश्वर पद कौं प्राप्त करै शिष्य समूह कौं, सो नेमि कहिये । बहुरि समस्त तत्त्वनि कौं प्रकाशै है चंद्रवत्, तातैं चंद्र कहिये । जिन सोई इन्द्रवर, सोई नेमि, सोई चन्द्र, ऐसा जिनेन्द्रवरनेमिचंद्र वर्धमान-स्वामी ताहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौ हौं । अन्य संबंध पूर्वोक्त प्रकार जानना ।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं – प्रणम्य – नमस्कार करि । कं ? किसहि ? सिद्धं कहिये सिद्ध भया, वा निष्ठित - संपूर्ण भया वा निष्पन्न (जो) होना था सो हूवा । वा कृतकृत्य जो करना था, सो जानैं कीया । वा सिद्धसाध्य, सिद्ध भया है साध्य जाकैं, ऐसा सिद्धपरमेष्ठी बहुत हैं; तथापि जाति एक है, तातैं द्वितीया विभक्ति का एकवचन कह्या । सिद्ध करि सर्वक्षेत्र विषैं, सर्वकाल विषैं, सर्वप्रकार करि सिद्धनि का सामान्यपनैं करि ग्रहण करना । सो सर्वसिद्धसमूह कौं नमस्कार करि जीव का

प्ररूपण करौं हौं; असा अर्थ जानना । सो कैसा है ? **शुद्धं** कहिये ज्ञानावरणादि आठ प्रकार द्रव्य-भावस्वरूप कर्म करि रहित है । बहुरि कैसा है ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** – अनेक संसार वन संबंधी विषम कष्ट दैने कौं कारण कर्म वैरी, ताहि जीतैं, सो जिन । बहुरि इंदन कहिये परम ईश्वर ताका योग, ताकरि राजते कहिए शोभै, सो इंद्र । बहुरि यथार्थ पदार्थनि कौं **नयति** कहिये जानै, सो नेमि कहिये ज्ञान, वर कहिए उत्कृष्ट अनंतरूप जाके पाइए, सो वरनेमि । बहुरि **चंद्रयति** कहिए आह्लादरूप होइ परम सुख को अनुभवे सो चंद्र । इहां सर्वत्र जाति अपेक्षा एकवचन जानना । सो जो जिन, सोई इंद्र, सोई वर नेमि, सोई चंद्र, असा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र सिद्ध है । बहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए नाही विद्यमान है **कलंक** कहिए अन्यमतीनि करि कल्पना कीया दोष जाकै ऐसा है । बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** गुण कहिए परमावगाढ सम्यक्त्वादि आठ गुण, तेई भए रत्न-आभूषण, तिनका है उदय कहिए अनुभवन वा उत्कृष्ट प्राप्ति जाकैं असा है ।

अथवा अन्य अर्थ कहैं हैं – **प्रणम्य** नमस्कार करि **कं** ? किसहि ? **कं** कहिए आत्मद्रव्य, ताहि नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौं हौं । कैसा है ? **अकलं** कहिये नाही विद्यमान है कल कहिये शरीर जाकै ऐसा है । बहुरि कैसा है ? **सिद्धं** कहिए नित्य अनादि-निधन है । बहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिये शुद्धनिश्चयनय के गोचर है ।

बहुरि कैसा है ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** – जिन जे असंयत सम्यग्दृष्टी आदि, तिनका इंद्र कहिये स्वामी है, परम आराधने योग्य है । बहुरि **वर** कहिये समस्त पदार्थनि विषैं सारभूत है । बहुरि नेमिचंद्र कहिये ज्ञान-सुखस्वभाव कौं धरै है । सो जिनेंद्र, सोई वर, सोई नेमिचंद्र असा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र आत्मा है ।

बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** - **गुणानां** कहिये समस्त गुणनि विषैं रत्न कहिये रत्नवत् पूज्य प्रधान असा जो सम्यक्त्वगुण, ताको है उदय कहिये उत्पत्ति जाकैं वा जातैं आत्मानुभव तैं सम्यक्त्व हो है, तातैं आत्मा गुणरत्नभूषणोदय है ।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं – **प्रणम्य** नमस्कार करि, **कं** ? किसहि ? **सिद्धं** कहिये सिद्ध परमेष्ठीनि के समूह कौं, सो कैसा है ? **शुद्धं** कहिये दग्ध किए हैं आठ कर्ममूल जिहि । बहुरि किसहि ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** जिनेंद्र कहिये अर्हत् परमेष्ठीनि का समूह सो **वराः** कहिये उत्कृष्ट जीव गणधर, चक्रवर्ती, इंद्र, धरणेंद्रादिक भव्यप्रधान तेई भए नेमि कहिये नक्षत्र, तिनिविषैं चंद्र कहिये चंद्रमावत् प्रधान, असा जिनेंद्र, सोई

वरनेमिचंद्र, ताहि अर्हंतपरमेश्वरनि के समूह कौं। सो कैसा है ? **अकलंकं** कहिए दूर कीया है तरेसठि कर्मप्रकृतिरूप मल कलंक जानैं असा है। केवल तिसही कौ नमस्कार करि नाही, बहुरि **गुणरत्नभूषणोदयं** गुणरूपी रत्न सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तेई भए भूषण कहिए आभरण, तिनका है उदय कहिए समुदाय (जाके) असा आचार्य, उपाध्याय, साधुसमूह ताकौं, असें सिद्ध, अरहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूप पंचपरमेष्ठीनि कौं नमस्कार करि जीव का प्ररूपण करौ हौं।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं – **प्रणम्य** कहिये नमस्कार करि, **कं** कहिए किसहि ? **जीवस्य प्ररूपणं** कहिए जीवनि का निरूपण वा ग्रंथ, ताहि नमस्कार करि कहौं। सो कैसा है ? **सिद्धं** कहिए सम्यक् गुरुनि का उपदेश पूर्वकपनें करि अखंडित प्रवाहरूप करि अनादितें चल्या आया है। बहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिए प्रमाण तें अविरोधी अर्थ का प्रतिपादकपनें करि पूर्वापरतें, प्रत्यक्षतें अनुमान तें, आगम तें, लोक तें निजवचनादि तें विरोध, तिनिकरि अखंडित है। बहुरि कैसा है **'जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं'** – जिनेंद्र कहिये सर्वज्ञ, सो है वर कहिए कर्ता जाका, असा जिनेंद्रवर कहिए सर्वज्ञ-प्रणीत है। इस विशेषण करि वक्ता के प्रमाणपना तें वचन का प्रमाणपना दिखाया। बहुरि यथावस्थित अर्थ कौं **नयति** कहिए प्रतिपादन करै, प्रकासै, सो नेमि कहिए। बहुरि **चंद्रयति** कहिए आह्लादित करै, विकासै शब्द, अर्थ, अलंकारनि करि श्रोतानि के मनरूपी गहूलनि (कमल) कौं, सो चंद्र कहिए जिनेंद्रवर, सोई नेमि, सोई चंद्र असा जिनेंद्रवरनेमिचन्द्र प्ररूपण है। बहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए दूरहि तें छोड्या है शब्द-अर्थ-गोचर दोषकलंक जिहि, असा है। बहुरि कैसा है ? **गुणरत्न-भूषणोदयं** – गुणरत्न जे रत्नत्रयरूप भूषण कहिये आभूषण, तिनकी है उदय कहिए उत्पत्ति वा प्राप्ति, हम आदि जीवनि कै जातैं, ऐसा गुणरत्नभूषण प्ररूपण है।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं – चामुंडराय कै जीवप्ररूपणशास्त्र का कर्तापनै का आश्रय करि मंगलसूत्र व्याख्यान करिए है।

भावार्थ – इस गोम्मटसार का मूलगाथाबंध ग्रंथकर्ता नेमिचन्द्र आचार्य है। ताकी टीका कर्णाटकदेशभाषाकरि चामुण्डराय करी है। ताकै अनुसारि केशवनामा ब्रह्मचारी संस्कृतटीका करी है। सो चामुण्डराय की अपेक्षा करि इस सूत्र का अर्थ करिए है। **अहं जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्यामि** मैं जु हौं चामुण्डराय, सो जीव का प्ररूपण रूप ग्रंथ का टिप्पण ताहि कहौंगा। कि **कृत्वा** ? कहाकरि ? **प्रणम्य** नमस्कार करि।

कं ? किसहि ? **जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं** जिनेंद्र है वर कहिए भर्ता, स्वामी जाका, सो जिनेन्द्रवर इहां जिन कहिये कर्मनिर्जरा संयुक्त जीव, तिनि विषें इंद्र कहिए स्वामी अर्हंत, सिद्ध । बहुरि जिन हैं इंद्र कहिए स्वामी जिनिका ऐसें आचार्य, उपाध्याय, साधु; ऐसें जिनेंद्र शब्दकरि पंच परमेष्ठी आए । तिनका आराधन तैं उपजें जे सम्यग्दर्शनादिक गुण, तिनिकरि संयुक्त अपना परमगुरु नेमिचंद्र आचार्य, ताहि नमस्कार करि जीव प्ररूपणा कहौंगा । सो कैसा है ? **सिद्धं** कहिये प्रसिद्ध है वा वर्तमान काल विषें प्रवृत्ति-रूप समस्त शास्त्रनि मैं निष्पन्न है । बहुरि कैसा है ? **शुद्धं** कहिये पचीस मलरहित सम्यक्त्व जाकै पाइये है वा अतिचार रहित चारित्र जाके पाइए है। वा देश, जाति, कुल कर शुद्ध है । बहुरि कैसा है ? **अकलंकं** कहिए विशुद्ध मन, वचन, काय संयुक्त है । बहुरि कैसा है ? **गुणरत्नभूषणोदयं** – गुणरत्नभूषण कहिए चामुण्डराय राजा, ताकै है उदय कहिये ज्ञानादिक की वृद्धि, जातैं ऐसा नेमिचंद्र आचार्य है । ऐसें इष्ट विशेष-रूप देवतानि कौं नमस्कार करना है लक्षण जाका, ऐसा परम मंगल कौं अंगीकार करि याकै अनंतर अधिकारभूत जीवप्ररूपणा के अधिकारनि कौं निर्देश करै हैं ।

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।
उओवगोवि य कमसो, वीसं तु परूवणा भणिदा ॥२॥[1]

गुणजीवाः पर्याप्तयः, प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणाश्च ।
उपयोगोऽपि च क्रमशः, विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ॥२॥

टीका – इहां चौदह गुणस्थान, अठ्याणवै जीवसमास, छह पर्याप्ति, दश प्राण, च्यारि संज्ञा; मार्गणा विषैं च्यारि गतिमार्गणा, पांच इंद्रियमार्गणा, छह कायमार्गणा, पंद्रह योगमार्गणा, तीन वेदमार्गणा, च्यारि कषायमार्गणा, आठ ज्ञानमार्गणा, सात संयममार्गणा, च्यारि दर्शनमार्गणा, छह लेश्यामार्गणा, दोय भव्यमार्गणा, छह सम्यक्त्वमार्गणा, दोय संज्ञिमार्गणा, दोय आहारमार्गणा, दोय उपयोग – ऐसें ये जीव-प्ररूपणा बीस कहीं हैं ।

इहां निरुक्ति करिये है – **गुण्यते** कहिये जाणिये द्रव्य तैं द्रव्यांतर कौं याकरि, सो गुण कहिये । बहुरि कर्म उपाधि की अपेक्षा सहित ज्ञान-दर्शन उपयोगरूप चैतन्य प्राण करि जीवैं हैं ते जीव, सम्यक् प्रकार आसते कहिये स्थितिरूप होइ इनि विषैं

१-षट्खंडागम – धवला पुस्तक २, पृष्ठ ४११, गाथा २२२.

ते जीवसमास है। बहुरि परि कहिये समंतता तैं आप्ति कहिये प्राप्ति, सो पर्याप्ति है। शक्ति की निष्पन्नता का होना सो पर्याप्ति जानना। बहुरि प्राणंति कहिये जीवें हैं जीवितव्यरूप व्यवहार कौं योग्य हो हैं जीव जिनिकरि, ते प्राण हैं। बहुरि आगम विषैं प्रसिद्ध वांछा, संज्ञा, अभिलाषा ए एकार्थ हैं। बहुरि जिन करि वा जिन विषैं जीव हैं, ते मृग्यंते कहिये अवलोकिये ते मार्गणा है। तहां अवलोकनहारा मृगयिता तौ भव्यनि विषैं उत्कृष्ट, प्रधान तत्त्वार्थ श्रद्धावान जीव जानना। अवलोकने योग्य, मृग्य चौदह मार्गणानि के विशेष लिये आत्मा जानना। बहुरि अवलोकना मृग्यता का साधन कौं वा अधिकरण कौं जे प्राप्त, ते गति आदि मार्गणा हैं। बहुरि मार्गणा जो अवलोकन, ताका जो उपाय, सो ज्ञान-दर्शन का सामान्य भावरूप उपयोग है। ऐसें इन प्ररूपणानि का साधारण अर्थ का प्रतिपादन कह्या।

आगें संग्रहनय की अपेक्षा करि प्ररूपणा का दोय प्रकार को मन विषैं धारि गुणस्थान-मार्गणास्थानरूप दोय प्ररूपणानि के नामांतर कहैं हैं –

संखेओ ओघोत्ति य, गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।
वित्थारादेसोत्ति य, मग्गणसण्णा सकम्मभवा ॥३॥

संक्षेप ओघ इति च गुणसंज्ञा, सा च मोहयोगभवा।
विस्तार आदेश इति च, मार्गणसंज्ञा स्वकर्मभवा ॥३॥

टीका – संक्षेप ऐसी ओघ गुणस्थान की संज्ञा अनादिनिधन ऋषिप्रणीत मार्ग विषैं रूढ है, प्रसिद्ध है। गुणस्थान का ही संक्षेप वा ओघ असा भी नाम है। बहुरि सो संज्ञा 'मोहयोगभवा' कहिए दर्शन-चारित्रमोह वा मन, वचन, काय योग, तिनकरि उपजी है। इहां संज्ञा के धारक गुणस्थान कैं मोह-योग तैं उत्पन्नपना है। तातैं तिनकी संज्ञा कैं भी मोह-योग करि उपजना उपचार करि कह्या है। बहुरि सूत्र विषैं चकार कह्या है, तातैं सामान्य असी भी गुणस्थान की संज्ञा है; असा जानना।

बहुरि तैसें ही विस्तार, आदेश असी मार्गणास्थान की संज्ञा है। मार्गणा का विस्तार, आदेश असा नाम है। सो यहु संज्ञा अपना-अपना मार्गणा का नाम की प्रतीति के व्यवहार कौं कारण जो कर्म, ताके उदय तैं हो हैं। इहां भी पूर्ववत् संज्ञा के कर्म तैं उपजने का उपचार जानना। निश्चय करि संज्ञा तौ शब्दजनित ही है।

बहुरि चकार तें विशेष ऐसी भी मार्गणास्थान की संज्ञा गाथा विषें बिना कही भी जाननी ।

आगें प्ररूपणा का दोय प्रकार पना विषें अवशेष प्ररूपणानि का अंतर्भूतपना दिखावैं हैं –

आदेसे संलीणा, जीवा पज्जत्तिपाणसण्णाओ ।
उवओगोवि य भेदे, वीसं तु परूवणा भणिदा ।।४।।

आदेशे संलीना, जीवाः पर्याप्तिप्राणसंज्ञाश्च ।
उपयोगोऽपि च भेदे, विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ।।४।।

टीका – मार्गणास्थानप्ररूपणा विषैं जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग – ए पांच प्ररूपणा **संलीना** कहिए गर्भित हैं, किसी प्रकार करि तिनि मार्गणाभेदनि विषें अंतर्भूत हैं । तैसें होतें गुणस्थानप्ररूपणा अर मार्गणास्थानप्ररूपणा ऐसें संग्रहनय अपेक्षा करि प्ररूपणा दोय ही निरूपित हो हैं ।

आगें किस मार्गणा विषें कौन प्ररूपणा गर्भित है ? सो तीन गाथानि करि कहै हैं –

इंदियकाये लीणा, जीवा पज्जत्तिआणभासमणो ।
जोगे काओ णाणे, अक्खा गदिमग्गणे आऊ ।।५।।

इंद्रियकाययोर्लीना, जीवाः पर्याप्त्यानभाषामनांसि ।
योगे कायः ज्ञाने, अक्षीणि गतिमार्गणायामायुः ।।५।।

टीका – इंद्रियमार्गणा विषैं, बहुरि कायमार्गणा विषें जीवसमास अर पर्याप्ति अर सासोस्वास, भाषा, मनबल प्राण ए अंतर्भूत हैं । कैसें हैं ? सो कहे हैं – जीवसमास अर पर्याप्ति इनिकें इंद्रिय अर कायसहित तादात्म्यकरि कीया हूवा एकत्व संभवै है । जीवसमास अर पर्याप्ति ए इंद्रिय-कायरूप ही हैं । बहुरि सामान्य-विशेष करि कीया हूवा एकत्व संभवै है । जीवसमास, पर्याप्ति अर इंद्रिय, काय विषें कहीं सामान्य का ग्रहण है, कहीं विशेष का ग्रहण है । बहुरि पर्याप्तिनि कै धर्म-धर्मीकरि कीया हूवा एकत्व संभवै है । पर्याप्ति धर्म है, इंद्रिय-काय धर्मी हैं । तातैं जीवसमास अर पर्याप्ति

ए इंद्रिय-कायमार्गणा विषैं गर्भित जानने। बहुरि उश्वास, वचनबल, मनबल, प्राणनि कैं अपनां कारणभूत उश्वास, भाषा, मनःपर्याप्ति जहां-जहां अंतर्भूत भया, तिसविषैं अंतर्भूतपना न्याय ही है। तातैं एऊ तहां ही इंद्रिय-कायमार्गणा विषैं गर्भित भए। बहुरि योग-मार्गणा विषैं कायबल प्राण गर्भित है, जातैं जीव के प्रदेशनि का चंचल होनैं रूप लक्षण धरैं काययोगरूप जो कार्य, तीहिविषैं तिस काय का बलरूप, लक्षण धरैं कायबल प्राणस्वरूप जो कारण, ताकैं अपने स्वरूप का सामान्य-विशेष करि कीया एकत्व-विशेष का सद्भाव है, तातैं कार्य-कारण करि कीया एकत्व हो है। बहुरि ज्ञानमार्गणा विषैं इंद्रिय-प्राण गर्भित है, जातैं इंद्रियरूप मति-श्रुतावरण के क्षयोपशम तैं प्रकट जे लब्धिरूप इंद्रिय, तिनकैं ज्ञान सहित तादात्म्य करि कीया एकत्व का सद्भाव है। बहुरि गतिमार्गणा विषैं आयु प्राण गर्भित है। जातैं गति और आयु के परस्पर अजहद्वृत्ति है। गति आयु बिना नाहीं, आयु गति बिना नाहीं, सो इस लक्षण करि एकत्व संभवै है।

मायालोहे रदिपुव्वाहारं, कोहमाणगम्हि भयं।
वेदे मेहुणसण्णा, लोहम्हि परिग्गहे सण्णा ॥६॥

मायालोभयोः रतिपूर्वकमाहारं, क्रोधमानकयोर्भयं।
वेदे मैथुनसंज्ञा, लोभे परिग्रहे संज्ञा ॥६॥

टीका – माया कषाय अर लोभ कषाय विषैं आहार संज्ञा गर्भित है, जातैं आहार की वांछा रतिनामकर्म के उदय कौं पहिले भए हो है। बहुरि रतिकर्म है, सो माया-लोभ कषाय राग कौं कारण है, तहां अंतर्भूत है। बहुरि क्रोध कषाय अर मान कषाय विषैं भयसंज्ञा गर्भित है। जातैं भय के कारणनि विषैं द्वेष का कारणपना है, तातैं द्वेषरूप जे क्रोध-मान कषाय, तिनकैं कार्य-कारण अपेक्षा एकत्व संभवै है। बहुरि वेदमार्गणा विषैं मैथुन संज्ञा अंतर्भूत है, जातैं काम का तीव्रपना का वशीभूतपना करि कीया स्त्री-पुरुष युगलरूप जो मिथुन का कार्य अभिलाषसहित संभोगरूप, सो वेद का उदय करि निपज्या पुरुषादिक का अभिलाषरूप कार्य है। ऐसैं कार्य-कारणभाव करि एकत्व का सद्भाव है। बहुरि लोभ कषाय विषैं परिग्रह संज्ञा अंतर्भूत है, जातैं लोभ कषाय होतैं ही ममत्वभावरूप जो परिग्रह का अभिलाष, ताका संभव है, तातैं यहां कार्य-कारण अपेक्षा एकत्व है। ऐसा हे भव्य! तू जाणि।

सागारो उवजोगो, णाणे मग्गम्हि दंसणे मग्गे।
अणगारो उवजोगो, लीणोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥७॥

साकारो उपयोगो ज्ञानमार्गणायां दर्शनमार्गणायाम् ।
अनाकारो उपयोगो लीन इति जिनैर्निदिष्टम् ॥७॥

टीका – ज्ञानमार्गणा विषैं साकार उपयोग गर्भित है। जातैं ज्ञानावरण, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम तैं उत्पन्न ज्ञाता का परिणमन का निकटपना होतैं ही विशेष ग्रहण रूप लक्षण धरैं जो ज्ञान, ताकी उत्पत्ति है, तातैं कार्य-कारण करि कीया एकत्व संभवै है। बहुरि दर्शनमार्गणा विषैं अनाकार उपयोग गर्भित है। जातैं दर्शनावरण, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम करि प्रकट भया पदार्थ का सामान्य ग्रहणरूप व्यापार होते ही पदार्थ का सामान्य ग्रहणरूप लक्षण धरैं जो दर्शन, ताकी उत्पत्ति है, तातैं कार्य-कारण भाव बनै है। असैं यहु गर्भितभाव पूर्वोक्त रीति करि जिन जे अर्हन्तादिक, तिनिकरि निर्दिष्ट कहिए कह्या है। बहुरि अपनी रुचि करि रच्या हुवा नाहीं है। असैं जीवसमासादिकनि कैं मार्गणास्थान विषैं गर्भित भाव का समर्थन करि गुणस्थान अर मार्गणास्थान ए प्ररूपणा दोय प्रतिपादन करि। बहुरि भेदविवक्षा करि बीस प्ररूपणा पूर्वें कहीं, तेई कहिए है। पूर्वें गाथा विषैं 'भणिताः' असा पद कह्या, ताकरि बीस प्ररूपणा परमागम विषैं प्रसिद्ध हैं, तिनका प्रकाशन करि तिनका विशेष कथन विषैं स्वाधीनपना अपनी इच्छा के अनुसारि कहना, सो छोड्या है। असैं यह न्याय तैसैं ही जोडिए है।

आगै तिनि बीस प्ररूपणानि विषैं पहलैं कही जो गुणस्थानप्ररूपणा, ताका प्रतिपादनि के अर्थि प्रथम गुणस्थान शब्द की निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहै हैं –

जेहिं दु लक्खिज्जंते, उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा, णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥८॥[१]

येस्तु लक्ष्यंते, उदयादिषु संभवैर्भावैः ।
जीवास्ते गुणसंज्ञा, निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥८॥

टीका – मोहनीय आदि कर्मनि का उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम परिणामरूप जे अवस्था विशेष, तिनकौं होते संतैं उत्पन्न भए जे भाव कहिए जीव के

१–षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १०४, पृष्ठ १६२.

मिथ्यात्वादिक परिणाम, तिनकरि गुण्यंते कहिए लखिए वा देखिए वा लांछित करिए जीव, ते जीव के परिणाम गुणस्थान संज्ञा के धारक हैं, ऐसा सर्वदर्शी जे सर्वज्ञदेव, तिनकरि निर्दिष्टाः कहिए कहे हैं । इस गुण शब्द की निरुक्ति की प्रधानता लीए सूत्र करि मिथ्यात्वादिक अयोगिकेवलीपर्यंत ये जीव के परिणाम विशेष, तेई गुणस्थान हैं, ऐसा प्रतिपादन कीया है ।

तहां अपनी स्थिति के नाश के वश तैं उदयरूप निषेक विषैं गले जे कार्माण स्कंध, तिनका फल देनेरूप जो परिणमन, सो उदय है । ताकौं होते जो भाव होइ, सो औदयिक भाव है ।

बहुरि गुण का प्रतिपक्षी जे कर्म, तिनका उदय का अभाव , सो उपशम है । ताकौं होते संतैं जो होय, सो औपशमिक भाव है ।

बहुरि प्रतिपक्षी कर्मनि का बहुरि न उपजै ऐसा नाश होना, सो क्षय; ताकौं होतैं जो होइ, सो क्षायिक भाव है ।

बहुरि प्रतिपक्षी कर्मनि का उदय विद्यमान होतैं भी जो जीव के गुण का अंश देखिए, सो क्षयोपशम; ताकौं होतैं जो होइ, सो क्षायोपशमिक भाव है ।

बहुरि उदयादिक अपेक्षा तैं रहित, सो परिणाम है; ताकौं होतैं जो होइ, सो पारिणामिक भाव है । ऐसें औदयिक आदि पंचभावनि का सामान्य अर्थ प्रतिपादन करि विस्तार तैं आगे तिनि भावनि का महा अधिकार विषैं प्रतिपादन करिसी ।

आगै ते गुणस्थान गाथा दोय करि नाममात्र कहै हैं–

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्ठि सुहमो य ॥९॥

उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ।
चउदस जीवसमासा, कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥१०॥[1]

मिथ्यात्वं सासनः मिश्रः, अविरतसम्यक्त्वं च देशविरतश्च ।
विरताः प्रमत्तः इतरः, अपूर्वः अनिवृत्तिः सूक्ष्मश्च ॥९॥
उपशांतः क्षीणमोहः, सयोगकेवलिजिनः अयोगी च ।
चतुर्दश जीवसमासाः, क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्या ॥१०॥

१, षट्खंडागम धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९२ से २०१ तक, सूत्र ९ से २३ तक ।

टीका – मिथ्या कहिए अतत्त्वगोचर है दृष्टि कहिए श्रद्धा जाकी, सो मिथ्यादृष्टि है । '**नाम्न्युत्तरपदस्य च**' असा व्याकरण सूत्र करि दृष्टिपद का लोप करतें 'मिच्छो' असा कह्या है । यहु भेद आगें भी जानना ।

बहुरि आसादन जो विराधना, तिहि सहित वर्तै सो सासादना, सासादना है सम्यग्दृष्टि जाकै, सो सासादन सम्यग्दृष्टि है । अथवा आसादन कहिए सम्यक्त्व का विराधन, तीहि सहित जो वर्तमान, सो सासादन । बहुरि सासादन अर सो सम्यग्दृष्टि सो सासादन सम्यग्दृष्टि है । यहु पूर्वै भया था सम्यक्त्व, तिस न्याय करि इहां सम्यग्दृष्टिपना जानना ।

बहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्व का जो मिश्रभाव, सो मिश्र है ।

बहुरि सम्यक् कहिए समीचीन है दृष्टि कहिए तत्त्वार्थश्रद्धान जाकै, सो सम्यग्दृष्टि अर सोई अविरत कहिए असंयमी, सो अविरतसम्यग्दृष्टि है ।

बहुरि देशतः कहिए एकदेश तें विरत कहिए संयमी, सो देशविरत है, संयता-संयत है, असा अर्थ जानना ।

इहां जो विरत पद है, सो ऊपरि के सर्व गुणस्थानवर्तीनि कैं संयमीपना कौं जनावै है । बहुरि **प्रमाद्यति** कहिये प्रमाद करै, सो प्रमत्त है । बहुरि इतर कहिए प्रमाद न करै, सो अप्रमत्त है ।

बहुरि अपूर्व है करण कहिए परिणाम जाकैं, सो अपूर्वकरण है ।

बहुरि निवृत्ति कहिए परिणामनि विषैं विशेष न पाइए है निवृत्तिरूप करण कहिए परिणाम जाकैं, सो अनिवृत्तिकरण है ।

बहुरि सूक्ष्म है सांपराय कहिये कषाय जाकै, सो सूक्ष्मसांपराय है ।

बहुरि उपशांत भया है मोह जाका, सो उपशांतमोह है ।

बहुरि क्षीण भया है मोह जाका, सो क्षीणमोह है ।

बहुरि घातिकर्मनि कौं जीतता भया, सो जिन, बहुरि केवलज्ञान याकैं है यातैं केवली, केवली सोई जिन, सो केवलिजिन, बहुरि योग करि सहित सो सयोग, सोई केवलिजिन, ऐसे सयोगकेवलीजिन है ।

बहुरि योग थाकैं है सो योगी, योगी नाहीं सो अयोगी, केवलिजिन ऐसी अनुवृत्ति तैं अयोगी, सोई केवलिजिन ऐसैं अयोगकेवलिजिन है ।

ऐसैं ए मिथ्यादृष्टि आदि अयोगिकेवलिजिन पर्यन्त चौदह जीवसमास कहिए गुणस्थान ते जानने ।

कैसैं यहु जीवसमास ऐसी संज्ञा गुणस्थान की भई ?

तहां कहिए हैं – जीव हैं, ते समस्यंते कहिए संक्षेपरूप करिए इनिविषैं, ते जीवसमास अथवा जीव हैं । ते सम्यक् आसते एषु कहिए भले प्रकार तिष्ठै हैं, इनिविषैं, ते जीवसमास, ऐसैं इहां प्रकरण जो प्रस्ताव, ताकी सामर्थ्य करि गुणस्थान ही जीवसमास शब्द करि कहिए है । जातैं ऐसा वचन है – 'यादृशं प्रकरणं तादृशोर्थः' जैसा प्रकरण तैसा अर्थ, सो इहां गुणस्थान का प्रकरण है, तातैं गुणस्थान अर्थ का ग्रहण किया है ।

बहुरि ये कर्म सहित जीव जैसैं लोक विषैं है, तैसैं नष्ट भए सर्वकर्म जिनके, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी भी हैं; ऐसा जानना । क्रमेण कहिए क्रम करि सिद्ध हैं, सो यहां क्रम शब्द करि पहिलैं घातिकर्मनि कौं क्षपाइ सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थाननि विषैं यथायोग्य काल तिष्ठि, अयोगकेवली का अंत समय विषैं अवशेष अघातिकर्म समस्त खिपाइ सिद्ध हो है – ऐसा अनुक्रम जनाइए है । सो इस अनुक्रम कौं जनावनहारा क्रम शब्द करि युगपत् सर्वकर्म का नाशपना, बहुरि सर्वदा कर्म के अभाव तैं सदा ही मुक्तपना परमात्मा कैं निराकरण कीया है ।

आगै गुणस्थाननि विषैं औदयिक आदि भावनि का संभव दिखावैं हैं –

मिच्छे खलु ओदइओ, विदिये पुण पारणामिओ भावो ।
मिस्से खओवसमिओ, अविरदसम्मम्हि तिण्णेव ॥११॥[1]

मिथ्यात्वे खलु औदयिको द्वितीये पुनः पारिणामिको भावः ।
मिश्रे क्षायोपशमिकः अविरतसम्यक्त्वे त्रय एव ॥११॥

टीका – मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषैं दर्शनमोह का उदय करि निपज्या ऐसा औदयिक भाव, अतत्त्वश्रद्धान है लक्षण जाका, सो पाइए है । खलु कहिए

१ षट्खण्डागम – धवला पुस्तक–५ पृष्ठ १७४ १७७ भावानुगम सूत्र २, से ५

प्रकटपनें । बहुरि दूसरा सासादनगुणस्थान विषैं पारिणामिक भाव है । जातैं इहां दर्शनमोह का उदय आदि की अपेक्षा का जु अभाव, ताका सद्भाव है ।

बहुरि मिश्रगुणस्थान विषैं क्षायोपशमिक भाव है । काहे तें ?

मिथ्यात्वप्रकृति का सर्वघातिया स्पर्धकनि का उदय का अभाव, सोई है लक्षण जाका, ऐसा तो क्षय होते संते, बहुरि सम्यग्मिथ्यात्व नाम प्रकृति का उदय विद्यमान होते संते, बहुरि उदय कौं न प्राप्त भए ऐसे निषेकनि का उपशम होते संते, मिश्रगुणस्थान हो है । तातैं ऐसा कारण तें मिश्र विषैं क्षायोपशमिकभाव है ।

बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान विषैं औपशमिक सम्यक्त्व, बहुरि क्षायोपशमिकरूप वेदकसम्यक्त्व, बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व ऐसे नाम धारक तीन भाव हैं, जातैं इहां दर्शनमोह का उपशम वा क्षयोपशम वा क्षय संभवै है ।

आगैं कहे हैं जु ए भाव, तिनके संभवनें के नियम का कारण कहै हैं –

एदे भावा णियमा, दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु ।
चारित्तं णत्थि जदो, अविरदअंतेसु ठाणेसु ॥१२॥

एते भावा नियमाद्, दर्शनमोहं प्रतीत्य भाषिताः खलु ।
चारित्रं नास्ति यतो, ऽविरतांतेषु स्थानेषु ॥१२॥

टीका – ऐसैं पूर्वोक्त औदयिक आदि भाव कहे, ते नियम तें दर्शनमोह कौं प्रतीत्य कहिए आश्रयकरि, भणिता कहिए कहे हैं प्रगटपनें; जातें अविरतपर्यंत च्यारि गुणस्थान विषैं चारित्र नाहीं है । इस कारण तें ते भाव चारित्र मोह का आश्रय करि नाहीं कहे हैं ।

तीहिं करि सासादनगुणस्थान विषैं अनंतानुबंधी की कोई क्रोधादिक एक कषाय का उदय विद्यमान होतैं भी ताकी विवक्षा न करने करि पारिणामिकभाव सिद्धांत विषैं प्रतिपादन कीया है, ऐसा तू जानि ।

बहुरि अनंतानुबंधी की किसी कषाय का उदय की विवक्षा करि औदयिक भाव भी है ।

आगैं देशसंयतादि गुणस्थाननि विषैं भावनि का नियम गाथा दोय करि दिखावैं हैं –

देसविरदे पमत्ते, इदरे य खओवसमियभावो दु ।
सो खलु चरित्तमोहं, पडुच्च भणियं तहा उवरिं ॥१३॥

देशविरते प्रमत्ते, इतरे च क्षायोपशमिकभावस्तु ।
स खलु चारित्रमोहं, प्रतीत्य भणितस्तथा उपरि ॥१३॥

टीका – देशविरत विषैं, बहुरि प्रमत्तसंयत विषैं, बहुरि इतर अप्रमत्तसंयत विषैं क्षायोपशमिक भाव है । तहां देशसंयत अपेक्षा करि प्रत्याख्यान कषायनि के उदय अवस्था कौं प्राप्त भए जे देशघाती स्पर्धकनि का अनंतवां भाग मात्र, तिनका जो उदय, तीहि सहित जे उदय कौं न प्राप्त भए ही निर्जरा रूप क्षय होते जे विवक्षित उदयरूप निषेक, तिनि स्वरूप जे सर्वघातिया स्पर्धक अनंत भागनि विषैं एक भागविना बहुभाग, प्रमाण मात्र लीए तिनका उदय का अभाव, सो ही है लक्षण जाका असा क्षय होते संते, बहुरि वर्तमान समय संबंधी निषेक तैं ऊपरि के निषेक जे उदय अवस्थाकौं न प्राप्त भए, तिनकी सत्तारूप जो अवस्था, सोई है लक्षण जाका, असा उपशम होते संते देशसंयम प्रकटै है । तातैं चारित्र मोह कौं आश्रय करि देशसंयम क्षायोपशमिक भाव है, असा कह्या है ।

बहुरि तैसैं ही प्रमत्त-अप्रमत्त विषैं भी संज्वलन कषायनि का उदय आए जे देशघातिया स्पर्धक अनंतवां भागरूप, तिनिका उदय करि सहित उदय कौं न प्राप्त होतैं ही क्षयरूप होते जे विवक्षित उदय निषेक, तिनिरूप सर्वघातिया स्पर्धक अनंत भागनि विषैं एक भागविना बहुभागरूप, तिनिका उदय का अभाव, सो ही है लक्षण जाका असा क्षय होते, बहुरि ऊपरि के निषेक जे उदय कौं प्राप्त न भए, तिनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका, असा उपशम, ताकौं होते संतै प्रमत्त-अप्रमत्त हो है । तातैं चारित्र मोह अपेक्षा इहां सकलसंयम है । तथापि क्षायोपशमिक भाव है ऐसा कह्या है, असा श्रीमान् अभयचंद्रनामा आचार्य सिद्धांतचक्रवर्ती, ताका अभिप्राय है ।

भावार्थ – सर्वत्र क्षयोपशम का स्वरूप असा ही जानना । जहां प्रतिपक्षी कर्म के देशघातिया स्पर्धकनि का उदय पाइए, तीह सहित सर्वघातिया स्पर्धक उदय-निषेक संबंधी, तिनका उदय न पाइए (बिना हीं उदय दीए) निर्जरै, सोई क्षय, अर जे उदय न प्राप्त भए आगामी निषेक, तिनका सत्तास्वरूप उपशम, तिनि दोऊनि कौं होतैं

क्षयोपशम हो है । सो स्पर्धकनि का वा निषेकनि का वा सर्वघाति-देशघातिस्पर्धकनि के विभाग का आगै वर्णन होगा, तातैं इहां विशेष नाहीं लिख्या है । सो इहां भी पूर्वोक्तप्रकार चारित्रमोह को क्षयोपशम ही है । तातैं क्षायोपशमिक भाव देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त विषैं जानना । तैसैं ही ऊपरि भी अपूर्वकरणादि गुणस्थाननि विषैं चारित्रमोह कौं आश्रय करि भाव जानने ।

तत्तो उवरिं उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा, अजोगिचरिमोत्ति सिद्धे य ॥१४॥

तत उपरि उपशमभावः उपशामकेषु क्षपकेषु ।
क्षायिको भावो नियमात् अयोगिचरम इति सिद्धे च ॥१४॥

टीका – तातैं ऊपरि अपूर्वकरणादि च्यारि गुणस्थान उपशम श्रेणी संबंधी, तिनिविषैं औपशमिक भाव है । जातैं तिस संयम का चारित्रमोह के उपशम ही तैं संभव है । बहुरि तैसैं ही अपूर्वकरणादि च्यारि गुणस्थान क्षपक श्रेणी संबंधी अर सयोग-अयोगीकेवली, तिनिविषैं क्षायिक भाव है नियमकरि; जातैं तिस चारित्र का चारित्रमोह के क्षय ही तैं उपजना है ।

बहुरि तैसैं ही सिद्ध परमेष्ठीनि विषैं भी क्षायिक भाव ही है, जातैं तिस सिद्धपद का सकलकर्म के क्षय ही तैं प्रकटपना हो है ।

आगें पूर्वै नाममात्र कहे जे चौदह गुणस्थान, तिनिविषैं पहिले कह्या जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, ताका स्वरूप कौं प्ररूपै हैं –

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्चअत्थाणं ।
एयंतं विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं ॥१५॥

मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्वमश्रद्धानं तु तत्त्वार्थानाम् ।
एकांतं विपरीतं, विनयं संशयितमज्ञानम् ॥१५॥

टीका – दर्शनमोहनी का भेदरूप मिथ्यात्व प्रकृति का उदय करि जीव कैं अतत्त्व श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा मिथ्यात्व हो है । बहुरि सो मिथ्यात्व १. एकांत २. विपरीत ३. विनय ४. संशयित ५. अज्ञान – ऐसैं पांच प्रकार है ।

तहां जीवादि वस्तु सर्वथा सत्स्वरूप ही है, सर्वथा असत्स्वरूप ही है, सर्वथा एक ही है, सर्वथा अनेक ही है – इत्यादि प्रतिपक्षी दूसरा भाव की अपेक्षारहित एकांतरूप अभिप्राय, सो एकांत मिथ्यात्व है ।

बहुरि अहिंसादिक समीचीन धर्म का फल जो स्वर्गादिक सुख, ताकौं हिंसादिरूप यज्ञादिक का फल कल्पना करि मानैं; वा जीव कैं प्रमाण करि सिद्ध है जो मोक्ष, ताका निराकरण करि मोक्ष का अभाव मानै; वा प्रमाण करि खंडित जो स्त्री कैं मोक्षप्राप्ति, ताका अस्तित्व वचन करि स्त्री कौं मोक्ष है अैसा मानैं इत्यादि एकांत अवलंबन करि विपरीतरूप जो अभिनिवेश – अभिप्राय, सो विपरीत मिथ्यात्व है ।

बहुरि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सापेक्षा रहितपनैं करि गुरुचरणपूजनादिरूप विनय ही करि मुक्ति है – यहु श्रद्धान वैनयिक मिथ्यात्व है ।

बहुरि प्रत्यक्षादि प्रमाण करि ग्रह्या जो अर्थ, ताका देशांतर विषैं अर कालांतर विषैं व्यभिचार जो अन्यथाभाव, सो संभवै है । तातैं अनेक मत अपेक्षा परस्पर विरोधी जो आप्तवचन, ताका भी प्रमाणता की प्राप्ति नाहीं । तातैं अैसैं ही तत्त्व है, अैसा निर्णय करने की शक्ति के अभाव तैं सर्वत्र संशय ही है, अैसा जो अभिप्राय, सो संशय मिथ्यात्व है ।

बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण का तीव्र उदय करि संयुक्त जे एकेंद्रियादिक जीव, तिनके अनेकांत स्वरूप वस्तु है, अैसा वस्तु का सामान्य भाव विषैं अर उपयोग लक्षण जीव है अैसा वस्तु का विशेष भाव विषैं जो अज्ञान, ताकरि निपज्या जो श्रद्धान, सो अज्ञान मिथ्यात्व है ।

अैसें स्थूल भेदनि का आश्रय करि मिथ्यात्व का पंचप्रकारपना कह्या, जातैं सूक्ष्म भेदनि का आश्रय करि असंख्यात लोकमात्र भेद संभवै हैं । तातैं तहां व्याख्यानादिक व्यवहार की अप्राप्ति है ।

आगै इन पंचनि का उदाहरण कौं कहै हैं –

एयंत बुद्धदरसी, विवरीओ बह्म तावसो विणओ ।
इंदो विय संसइयो, मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥१६॥

एकांतो बुद्धदर्शी, विपरीतो ब्रह्म तापसो विनयः ।
इंद्रोऽपि च संशयितो, मस्करी चैवाज्ञानी ॥१६॥

टीका – ए उपलक्षणपना करि कहे हैं । एक का नाम लेनें तें अन्य भी ग्रहण करने, तातें ऐसें कहने – बुद्धदर्शी जो बौद्धमती, ताकौं आदि देकरि एकांत मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि यज्ञकर्ता ब्राह्मण आदि विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि तापसी आदि विनय मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि इन्द्रनामा जो श्वेतांबरनि का गुरु, ताकौं आदि देकरि संशय मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि मस्करी (मुसलमान) संन्यासी कौं आदि देकरि अज्ञान मिथ्यादृष्टि हैं । वर्तमान काल अपेक्षा करि ए भरतक्षेत्र विषैं संभवते बौद्धमती आदि उदाहरण कहे हैं ।

आगैं अतत्त्वश्रद्धान है लक्षण जाका, ऐसे मिथ्यात्व कौं प्ररूपैं हैं –

मिच्छंतं वेदंतो, जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु, महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥१७॥[1]

मिथ्यात्वं विदन् जीवो, विपरीतदर्शनो भवति ।
न च धर्मं रोचते हि, मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥१७॥

टीका – उदय आया मिथ्यात्व कौं वेदयन् कहिए अनुभवता जो जीव, सो विपरीतदर्शन कहिए अतत्त्वश्रद्धानसंयुक्त है, अयथार्थ प्रतीत करै है । बहुरि केवल अतत्त्व ही कौं नाहीं श्रद्धै है, अनेकांतस्वरूप जो धर्म कहिए वस्तु का स्वभाव अथवा रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का कारणभूत धर्म, ताहि न रोचते कहिए नाहीं रुचिरूप प्राप्त हो है ।

इहां दृष्टांत कहै हैं – जैसें ज्वरित कहिए पित्तज्वर सहित पुरुष, सो मधुर – मीठा दुग्धादिक रस, ताहि न रोचै है; तैसें मिथ्यादृष्टि धर्म कौं न रोचै है, ऐसा अर्थ जानना ।

इस ही वस्तु स्वभाव के श्रद्धान कौं स्पष्ट करै हैं –

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१८॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं, उपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ॥१८॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक –१, पृष्ठ १६३, गाथा १०६.

टीका – मिथ्यादृष्टि जीव है, सो उपदिष्ट कहिए अर्हंत आदिकनि करि उपदेस्या हूवा प्रवचन कहिए आप्त, आगम, पदार्थ इनि तीनों कौं नाहीं श्रद्धै है, जातें प्र कहिए उत्कृष्ट है वचन जाका, असा प्रवचन कहिए आप्त । बहुरि प्रकृष्ट जो परमात्मा, ताका वचन सो प्रवचन कहिए परमागम । बहुरि प्रकृष्ट उच्यते कहिए प्रमाण करि निरूपिए असा प्रवचन कहिए पदार्थ, या प्रकार निरुक्ति करि प्रवचन शब्द करि आप्त, आगम, पदार्थ तीनों का अर्थ हो है । बहुरि सो मिथ्यादृष्टि असद्भाव कहिए मिथ्यारूप; प्रवचन कहिए आप्त आगम, पदार्थ; उपदिष्टं कहिए आप्त कीसी आभासा लिए कुदेव जे हैं, तिनकरि उपदेस्या हूवा अथवा अनुपदिष्ट कहिए विना उपदेस्या हूवा, ताकौं श्रद्धान करै है । बहुरि वादी का अभिप्राय लेइ उक्तं च गाथा कहै हैं –

"घडपडथंभादिपयत्थेसु मिच्छाइट्ठी जहावगमं ।
सद्दहंतो वि अण्णाणी उच्चदे जिणवयणे सद्दहणाभावादो ॥"

याका अर्थ – घट, पट, स्तंभ आदि पदार्थनि विषै मिथ्यादृष्टि जीव यथार्थ ज्ञान लीए श्रद्धान करता भी अज्ञानी कहिए, जातैं जिनवचन विषैं श्रद्धान का अभाव है । असा सिद्धांत का वाक्य करि कह्या मिथ्यादृष्टि का लक्षण जानि सो मिथ्यात्व भाव त्यजना योग्य है । ताका भेद भी इस ही वाक्य करि जानना । सो कहिए हैं – कोऊ मिथ्यादर्शनरूप परिणाम आत्मा विषैं प्रकट हूवा थका वर्ण-रसादि की उपलब्धि जो ज्ञान करि जानने की प्राप्ति, ताहि होतें संतें कारणविपर्यास, बहुरि भेदाभेदविपर्यास, बहुरि स्वरूपविपर्यास कौं उपजावै है ।

तहां कारणविपर्यास प्रथम कहिए है । रूप-रसादिकनि का एक कारण है, सो अमूर्तीक है, नित्य है असें कल्पना करै है । अन्य कोई पृथ्वी आदि जातिभेद लीए भिन्न-भिन्न परमाणु हैं, ते पृथ्वी के च्यारि गुणयुक्त, अप के गंध बिना तीन गुणयुक्त, अग्नि के रस बिना दोय गुणयुक्त, पवन के एक स्पर्श गुणयुक्त परमाणु हैं, ते अपनी समान जाति के कार्यनि कौं निपजावनहारे हैं, असा वर्णन करै है । या प्रकार कारण विषैं विपरीतभाव जानना ।

बहुरि भेदाभेदविपर्यास कहै हैं – कार्य तैं कारण भिन्न ही है अथवा अभिन्न ही है, असी कल्पना भेदाभेद विषैं अन्यथापना जानना ।

बहुरि स्वरूपविपर्यास कहै हैं – रूपादिक गुण निर्विकल्प हैं, कोऊ कहै – हैं ही नाहीं। कोऊ कहै – रूपादिकनि के जानने करि तिनके आकार परिणया ज्ञान ही है नाहीं, तिनका अवलंबन बाह्य वस्तुरूप है। असा विचार स्वरूप विषैं मिथ्यारूप जानना। या प्रकार कुमतिज्ञान का बल का आधार करि कुश्रुतज्ञान के विकल्प हो हैं। इनका सर्व मूल कारण मिथ्यात्व कर्म का उदय ही है, असा निश्चय करना।

आगै सासादनगुणस्थान का स्वरूप दोय सूत्रनि करि कहै हैं –

आदिमसम्मत्तद्धा, समयादो छावलित्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मोत्ति सासणक्खो सो ॥१९॥

आदिमसम्यक्त्वाद्धा, आसमयतः षडावलिरिति वा शेषे।
अनान्यतरोदयात् नाशितसम्यक्त्व इति सासानाख्यः सः ॥१९॥

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल विषैं जघन्य एकसमय, उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं, अनंतानुबंधी च्यारि कषायनि विषैं अन्यतम कोई एक का उदय होते संतै, नष्ट कीया है सम्यक्त्व जानैं असा होई, सो सासादन असा कहिए। बहुरि वा शब्दकरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का काल विषैं भी सासादन गुणस्थान की प्राप्ति हो है। असा (गुणधराचार्यकृत) कषायप्राभृतनामा यतिवृषभाचार्यकृत (चूर्णिसूत्र) जयधवल ग्रन्थ का अभिप्राय है।

जो मिथ्यात्व तैं चतुर्थादि गुणस्थाननि विषैं उपशम सम्यक्त्व होइ, सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व है।

बहुरि उपशमश्रेणी चढते क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तैं जो उपशम सम्यक्त्व होय, सो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जानना।

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो, सासणणामो मुणेयव्वो ॥२०॥[1]

सम्यक्त्वरत्नपर्वतशिखरात् मिथ्यात्वभूमिसमभिमुखः।
नाशितसम्यक्त्वः सः, सासननामा मंतव्य ॥२०॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक – १, पृष्ठ १६७, गाथा १०८.

टीका – जो जीव सम्यक्त्वपरिणामरूपी रत्नमय पर्वत के शिखर तें मिथ्यात्व-परिणामरूपी भूमिका के सन्मुख होता संता, पडि करि जितना अंतराल का काल एक समय आदि छह आवली पर्यन्त है, तिहि विषें वर्तें, सो जीव नष्ट कीया है सम्यक्त्व जानें, असा सासादन नाम धारक जानना ।

आगें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का स्वरूप गाथा च्यारि करि कहै हैं -

सम्मामिच्छुदयेण य, जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण ।
ण य सम्मं मिच्छं पि य, सम्मिस्सो होदि परिणामो ॥२१॥[१]

सम्यग्मिथ्यात्वोदयेन च, जात्यंतरसर्वघातिकार्येण ।
न च सम्यक्त्वं मिथ्यात्वमपि च, सम्मिश्रो भवति परिणामः ॥२१॥

टीका – जात्यंतर कहिए जुदी ही एक जाति भेद लीए जो सर्वघातिया कार्यरूप सम्यग्मिथ्यात्व नामा दर्शनमोह की प्रकृति, ताका उदय करि मिथ्यात्व प्रकृति का उदयवत् केवल मिथ्यात्व परिणाम भी न होइ है । अर सम्यक्त्व प्रकृति का उदयवत् केवल सम्यक्त्व परिणाम भी न होइ है । तिहिं कारण तें तिस सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का कार्यभूत जुदी ही जातिरूप सम्यग्मिथ्यात्वपरिणाम मिलाया हूआ मिश्रभाव हो है, असा जानना ।

दहिगुडमिव वामिस्सं, पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं ।
एवं मिस्सयभावो, सम्मामिच्छोत्ति णादव्वो ॥२२॥[१]

दधिगुडमिव व्यामिश्रं, पृथग्भावं नैव कर्तुं शक्यम् ।
एवं मिश्रकभावः, सम्यग्मिथ्यात्वमिति ज्ञातव्यम् ॥२२॥

टीका – इव कहिए जैसें, **व्यामिश्रं** कहिए मिल्या हूआ, दही अर गुड सो **पृथग्भावं कर्तुं** कहिए जुदा-जुदा भाव करने कौं, **नैव शक्यं** कहिए नाहीं समर्थपना है, **एवं** कहिए तैसें, सम्यग्मिथ्यात्वरूप मिल्या हूआ परिणाम, सो केवल सम्यक्त्वभाव करि अथवा केवल मिथ्यात्वभाव करि जुदा-जुदा भाव करि स्थापने कौं नाहीं समर्थपना है । इस कारण तें सम्यग्मिथ्यादृष्टि असा जानना योग्य है । समीचीन अर सोई मिथ्या, सो सम्यग्मिथ्या असा है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाकें, सो सम्यग्मिथ्या-

---

१–षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृ. १७१–गा. १०६

मिथ्यादृष्टि है। इस निरुक्ति तैं भी पूर्वं ग्रह्या जो अतत्त्वश्रद्धान, ताका सर्वथा त्याग बिना, तीहिं सहित ही तत्त्व श्रद्धान हो है। जातैं तैसें ही संभवता प्रकृति का उदयरूप कारण का सद्भाव है।

सो संजमं ण गिण्हदि, देसजमं वा ण बंधदे आउं।
सम्मं वा मिच्छं वा, पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥२३॥[1]

स संयमं न गृह्णाति, देशयमं वा न बध्नाति आयुः ।
सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं, वा प्रतिपद्य म्रियते नियमेन ॥२३॥

टीका – सो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है, सो सकलसंयम वा देशसंयम कौं ग्रहण करै नाहीं, जातैं तिनके ग्रहण योग्य जे करणरूप परिणाम, तिनिका तहां मिश्र-गुणस्थान विषैं असंभव है। बहुरि तैसें ही सो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव च्यारि गति संबंधी आयु कौं नाहीं बांधै है। बहुरि मरणकाल विषैं नियमकरि सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणाम कौं छोडि, असंयत सम्यग्दृष्टीपना कौं वा मिथ्यादृष्टीपना कौं नियमकरि प्राप्त होइ, पीछे मरै है।

भावार्थ – मिश्रगुणस्थान तैं पंचमादि गुणस्थान विषैं चढना नाहीं है। बहुरि तहां आयुबंध वा मरण नाहीं है।

सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं ।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥२४॥[2]

सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामेषु यत्रायुष्कं पुरा बद्धम् ।
तत्र मरणं मरणांतसमुद्घातोऽपि च न मिश्रे ॥२४॥

टीका – सम्यक्त्वपरिणाम अर मिथ्यात्वपरिणाम इनि दोऊनि विषैं जिह परिणाम विषैं पुरा कहिए सम्यग्मिथ्यादृष्टीपना की प्राप्ति भए पहिलें, परभव का आयु बंध्या होइ, तीहिं सम्यक्त्वरूप वा मिथ्यात्वरूप परिणाम विषैं प्राप्त भया ही जीव का मरण हो है, ऐसा नियम कहिए है। बहुरि अन्य केई आचार्यनि के

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ४, पृष्ठ ३४१, गाथा ३३

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ४, पृष्ठ ३४६ गाथा ३३ एवं पुस्तक ५, पृष्ठ ३१ टीका.

अभिप्राय करि नियम नाहीं है । सोई कहिए है – सम्यक्त्वपरिणाम विषैं वर्तमान कोई जीव यथायोग्य परभव का आयु कौं बांधि बहुरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि होइ पीछैं सम्यक्त्व कौं वा मिथ्यात्व कौं प्राप्त होइ मरै है । बहुरि कोई जीव मिथ्यात्व-परिणाम विषैं वर्तमान, सो यथायोग्य परभव का आयु बांधि, बहुरि सम्यग्मिथ्या-दृष्टि होइ पीछैं सम्यक्त्व कौं वा मिथ्यात्व कौं प्राप्त होइ मरै है । बहुरि तैसें ही मारणांतिक समुद्घात भी मिश्रगुणस्थान विषैं नाहीं है ।

आगैं असंयत गुणस्थान के स्वरूप कौं निरूपैं हैं ।

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥२५॥

सम्यक्त्वदेशघातेरुदयाद्वेदकं भवेत्सम्यक्त्वम् ।
चलं मलिनमगाढं तन्नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥२५॥

टीका – अनंतानुबंधी कषायनि का प्रशस्त उपशम नाहीं है, इस हेतु तैं तिन अनंतानुबंधी कषायनि का अप्रशस्त उपशम कौं होतें अथवा विसंयोजन होतें, बहुरि दर्शनमोह का भेदरूप मिथ्यात्वकर्म अर सम्यग्मिथ्यात्वकर्म, इनि दोऊनि कौं प्रशस्त उपशमरूप होतें वा अप्रशस्त उपशम होतें वा क्षय होने के सन्मुख होतें बहुरि सम्यक्त्व प्रकृतिरूप देशघातिया स्पर्धकों का उदय होतें ही जो तत्त्वार्थश्रद्धान है लक्षण जाका, ऐसा सम्यक्त्व होइ, सो वेदक ऐसा नाम धारक है ।

जहां विवक्षित प्रकृति उदय आवने योग्य न होइ अर स्थिति, अनुभाग घटनैं वा बधनें वा संक्रमण होनें योग्य होइ, तहां अप्रशस्तोपशम जानना ।

बहुरि जहां उदय आवने योग्य न होइ अर स्थिति, अनुभाग घटने-बधने वा संक्रमण होने योग्य भी न होइ, तहां प्रशस्तोपशम जानना ।

बहुरि तीहि सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होतें देशघातिया स्पर्धकनि कैं तत्त्वार्थश्रद्धान नष्ट करने की सामर्थ्य का अभाव है; तातैं सो सम्यक्त्व चल, मलिन अगाढ हो है । जातैं सम्यक्त्व प्रकृति के उदय का तत्त्वार्थश्रद्धान कौं मल उपजावने मात्र ही विषैं व्यापार है । तीहि कारण तैं तिस सम्यक्त्व प्रकृति कैं देशघातिपना है । ऐसैं सम्यक्त्व प्रकृति के उदय कौं अनुभवता जीव के उत्पन्न भया

जो तत्त्वार्थश्रद्धान, सो वेदक सम्यक्त्व है, असा कहिए है। यह ही वेदक सम्यक्त्व है, सो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व असा नामधारक है, जातैं दर्शनमोह के सर्वघाती स्पर्धकनि का उदय का अभावरूप है लक्षण जाका, ऐसा क्षय होतैं, बहुरि देशघातिस्पर्धकरूप सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होतैं, बहुरि तिसही का वर्तमान समयसबंधी तैं ऊपरि के निषेक उदय कौं न प्राप्त भए, तिनिसंबंधी स्पर्धकनि का सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका, ऐसा उपशम होतैं वेदक सम्यक्त्व हो है। तातैं याही का दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, भिन्न नाहीं है।

सो वेदक सम्यक्त्व कैसा है ? **नित्यं** कहिए नित्य है। इस विशेषण करि याकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त है, तथापि उत्कृष्टपना करि छ्यासठि सागरप्रमाण काल रहै है। तातैं उत्कृष्ट स्थिति अपेक्षा दीर्घकाल ताईं रहै है, तातैं नित्य कह्या है। बहुरि सर्वकाल अविनश्वर अपेक्षा नित्य इहां न जानना। बहुरि कैसा है ? **कर्मक्षपणहेतु** (कहिए) कर्मक्षपावने का कारण है। इस विशेषण करि मोक्ष के कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम हैं, तिनि विषैं सम्यक्त्व ही मुख्य कारण है, ऐसा सूचै है। बहुरि वेदक सम्यक्त्व विषैं शंकादिक मल हैं, ते भी यथासंभव सम्यक्त्व का मूल तैं नाश करने कौं कारण नाहीं, असे सम्यक्त्व प्रकृति के उदय तैं उपजे हैं।

बहुरि औपशमिक अर क्षायिक सम्यक्त्व विषैं मल उपजावने कौं कारण तिस सम्यक्त्व प्रकृति का उदय का अभाव तैं निर्मलपना सिद्ध है, ऐसा हे शिष्य ! तू जान।

बहुरि चलादिकनि का लक्षण कहै हैं, तहां चलपना कहिए है -

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं।
लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं ॥
स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते।
अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥

याका अर्थ - नाना प्रकार अपने ही विशेष कहिए आप्त, आगम, पदार्थरूप श्रद्धान के भेद, तिनि विषैं जो चलै - चंचल होइ, सो चल कह्या है। सोई कहिए है - अपना कराया अर्हन्तप्रतिबिंबादिक विषैं यहु मेरा देव है, ऐसे ममत्व करि, बहुरि

अन्यकरि कराया अर्हन्तप्रतिबिंबादिक विषैं यहु अन्य का है, ऐसें पर का मानिकरि भेदरूप भजन करै है; तातैं चल कह्या है।

इहां दृष्टांत कहै हैं – जैसैं नाना प्रकार कल्लोल तरंगनि की पंक्ति विषैं जल एक ही अवस्थित है, तथापि नाना रूप होइ चल है; तैसैं मोह जो सम्यक्त्व प्रकृति का उदय, तातैं श्रद्धान है, सो भ्रमण रूप चेष्टा करै है।

भावार्थ – जैसैं जल तरंगनि विषैं चंचल होइ, परंतु अन्यभाव कौं न भजै, तैसैं वेदक सम्यग्दृष्टि अपना वा अन्य का कराया जिनबिंबादि विषैं यहु मेरा, यहु अन्य का इत्यादि विकल्प करै है, परंतु अन्य देवादिक कौं नाहीं भजै है।

अब मलिनपना कहिए है –

तदप्यलब्धमाहात्म्यं पाकात्सम्यक्त्वकर्मणः।
मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥

याका अर्थ – सो भी वेदक सम्यक्त्व है, सो सम्यक्त्व प्रकृति के उदय तैं न पाया है माहात्म्य जिहि, ऐसा हो है। बहुरि सो शंकादिक मल का संगकरि मलिन हो है। जैसैं शुद्ध सोना बाह्य मल का संयोग तैं मलिन हो है, तैसे वेदक सम्यक्त्व शंकादिक मल का संयोग तैं मलिन हो है।

अब अगाढ कहिए है –

स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते ।
वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥
समेऽप्यनंतशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं ।
देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥

याका अर्थ – स्थान कहिए आप्त, आगम, पदार्थनि का श्रद्धान रूप अवस्था, तिहि विषैं तिष्ठता हुआ ही कांपै, गाढा न रहै, सो अगाढ ऐसा कहिए है।

ताका उदाहरण कहैं हैं – जैसें तीव्र रुचि रहित होय सर्व अर्हन्त परमेष्ठीनि कैं अनंतशक्तिपना समान होतैं संतै, भी इस शांतिकर्म, जो शांति क्रिया ताकै अर्थि शांतिनाथ देव है, सो प्रभु कहिए समर्थ है। बहुरि इस विघ्ननाशन आदि क्रिया के अर्थि पार्श्वनाथ देव समर्थ है। इत्यादि प्रकार करि रुचि, जो प्रतीति, ताकी शिथिलता संभवै है। तातैं बूढे का हाथ विषैं लाठी शिथिल संबंधपना करि अगाढ है, तैसें सम्यक्त्व अगाढ है।

भावार्थ – जैसें बूढे के हाथ तें लाठी छूटै नाहीं, परंतु शिथिल रहै । तैसें वेदक सम्यक्त्व का श्रद्धान छूटै नाहीं । शांति आदि के अर्थि अन्य देवादिकनि कौं न सेवै, तथापि शिथिल रहै । जैन देवादिक विषैं कल्पना उपजावै ।

असा इहां चल, मलिन, अगाढ का वर्णन उपदेशरूप उदाहरण मात्र कह्या है । सर्व तारतम्य भाव ज्ञानगम्य है ।

आगैं औपशमिक, क्षायिक सम्यक्त्वनि का उपजने का कारण अर स्वरूप प्रतिपादन करैं हैं –

सत्तण्हं उवसमदो, उवसमसम्मो खयादु खइयो य ।
बिदियकसायुदयादो, असंजदो होदि सम्मो य ॥२६॥

सप्तानामुपशमतः, उपशमसम्यक्त्वं क्षयात्तु क्षायिकं च ।
द्वितीयकषायोदयादसंयतं भवति सम्यक्त्वं च ॥२६॥

टीका – नाहीं पाइए है अंत जाका, असा अनंत कहिए मिथ्यात्व, ताहि **अनुबध्नंति** कहिए आश्रय करि प्रवर्तैं असैं अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; बहुरि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति नाम धारक दर्शनमोह प्रकृति तीन; असैं सात प्रकृतिनि का सर्व उपशम होनैं करि **औपशमिक** सम्यक्त्व हो है । बहुरि तैसें तिन सात प्रकृतिनि का क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व हो है । बहुरि दोऊ सम्यक्त्व ही निर्मल हैं, जातैं शंकादिक मलनि का अंश की भी उत्पत्ति नाहीं संभवै है । बहुरि तैसें दोऊ सम्यक्त्व निश्चल हैं, जातैं आप्त, आगम, पदार्थ गोचर श्रद्धान भेदनि विषैं कहीं भी स्खलित न हो हैं । बहुरि तैसें ही दोऊ सम्यक्त्व गाढ हैं; जातैं आप्तादिक विषैं तीव्र रुचि संभवै है । यहु मल का न संभवना, स्खलित न होना तीव्ररुचि का संभवना – ए तीनों सम्यक्त्व प्रकृति का उदय का इहां अत्यंत अभाव है, तातैं पाइए है असा जानना ।

बहुरि या प्रकार कहे तीन प्रकार सम्यक्त्वनि करि परिणया जो सम्यग्दृष्टि जीव, सो द्वितीय कषाय जे अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ; इन विषैं एक किसी का उदय करि असंयत कहिए असंयमी हो है, याही तैं याका नाम असंयत-सम्यग्दृष्टी है ।

आगैं तत्त्वार्थश्रद्धान का सम्यक् प्रकार ग्रहण अर त्याग का अवसर नाहीं, ताहि गाथा दोय करि प्ररूपे हैं –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥[1]

सम्यग्दृष्टिर्जीवः, उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं, अजानमानो गुरुनियोगात् ॥२७॥

टीका – जो जीव अर्हन्तादिकनि करि उपदेस्या हूवा असा जु प्रवचन कहिए आप्त, आगम, पदार्थ ए तीन, ताहि **श्रद्दधाति** कहिए श्रद्धै है, रोचै है । बहुरि तिनि आप्तादिकनि विषैं **असद्भावं** कहिए असत्य, अन्यथा रूप ताकौं भी अपने विशेष ज्ञान का अभाव करि केवल गुरु ही का नियोग तैं जो इस गुरु ने कह्या, सो ही अर्हन्त की आज्ञा है; असा प्रतीति तैं श्रद्धान करै है, सो भी सम्यग्दृष्टि ही है, जातैं तिस की आज्ञा का उल्लंघन नाहीं करै है ।

भावार्थ – जो अपनैं विशेष ज्ञान न होइ, बहुरि जैनगुरु मंदमति तैं आप्तादिक का स्वरूप अन्यथा कहै, अर यहु अर्हन्त की असी ही आज्ञा है, असें मानि जो असत्य श्रद्धान करै तौ भी सम्यग्दृष्टि का अभाव न होइ, जातैं इसनैं तो अर्हन्त की आज्ञा जानि प्रतीति करी है ।

सुत्तादो तं सम्मं, दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥२८॥

सूत्रात्तं सम्यग्दर्शयंतं, यदा न श्रद्दधाति ।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवः तदा प्रभृति ॥२८॥

टीका – तैसैं असत्य अर्थ श्रद्धान करता आज्ञा सम्यग्दृष्टी जीव, सो जिस काल प्रवीण अन्य आचार्यनि करि पूर्वे ग्रह्या हुवा असत्यार्थरूप श्रद्धान तैं विपरीत भाव सत्यार्थ, सो गणधरादिकनि के सूत्र दिखाइ सम्यक् प्रकार निरूपण कह्या हुवा होइ, ताकौं खोटा हठ करि न श्रद्धान करै तौ, तीहि काल सौं लगाय, सो जीव

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १७४, गाथा ११०

मिथ्यादृष्टी हो है। जातें सूत्र का अश्रद्धान करि जिन आज्ञा का उल्लंघन का सुप्रसिद्धपना है, तीहि कारण तें मिथ्यादृष्टी हो है।

आगें असंयतपना अर सम्यग्दृष्टीपना कें सामानाधिकरण्य कौं दिखावैं हैं –

णो इंदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं, सम्माइट्ठी अविरदोसो ॥२९॥[1]

नो इन्द्रियेषु विरतो, नो जीवे स्थावरे त्रसे वापि।
यः श्रद्धाति जिनोक्तं, सम्यग्दृष्टिरविरतः सः ॥२९॥

टीका – जो जीव इंद्रियविषयनि विषैं नोविरत – विरति रहित है, बहुरि तैसें ही स्थावर, त्रस जीव की हिंसा विषैं भी नाहीं विरत है – त्याग रहित है। बहुरि जिन करि उपदेश्या प्रवचन कौं श्रद्धान करै है, सो जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हो है। या करि असंयत, सोई सम्यग्दृष्टी, सो असंयतसम्यग्दृष्टी है ऐसें समानाधिकरणपना दृढ कीया। बहुत विशेषणनि का एक वस्तु आधार होइ, तहां कर्मधारेय समास विषैं समानाधिकरणपना जानना। बहुरि अपि शब्द करि ताकैं संवेगादिक सम्यक्त्व के गुण भी याकैं पाइए है, ऐसा सूचै है। बहुरि इहां जो अविरत विशेषण है, सो अंत्यदीपक समान जानना। जैसें छेहडें धर्या हुवा दीपक, पिछले सर्वपदार्थनि कौं प्रकाशै, तैसें इहां अविरत विशेषण नीचे के मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि विषैं अविरतपना कौं प्रकाशै है, ऐसा संबंध जानना। बहुरि अपि शब्द करि अनुकंपा भी है।

भावार्थ—कोऊ जानैगा कि विषयनि विषैं अविरती है, तातैं विषयानुरागी बहुत होगा, सो नाहीं है, संवेगादि गुणसंयुक्त है। बहुरि हिंसादि विषैं अविरति है, तातैं निर्दयी होगा, सो नाहीं है; दया भाव संयुक्त है, ऐसा अविरतसम्यग्दृष्टि है।

आगे देशसंयत गुणस्थान कौं गाथा दोय करि निर्देश करै हैं –

पच्चक्खाणुदयादो, संजमभावो ण होदि णवरिं तु।
थोववदो होदि तदो, देसवदो होदि पंचमओ ॥३०॥[2]

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १७४, गाथा १११.
२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १७६, गाथा ११२.

प्रत्याख्यानोदयात् संयमभावो न भवति नवरि तु ।
स्तोकव्रतं भवति ततो, देशव्रतो भवति पंचमः ।।३०।।

टीका – अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायनि का उपशम तैं प्रत्याख्यानावरण कषायनि का देशघाती स्पर्धकनि का उदय होतैं संतैं सर्वघाती स्पर्धकनि का उदयाभाव रूप लक्षण जाका, ऐसा क्षय करि जाकैं सकल संयमरूप भाव न हो है । विशेष यहु देशसंयम कहिए, किंचित् विरति हो है, ताकौं धरै-धरै, देशसंयत नामा पंचमगुणस्थानवर्ती जीव जानना ।

जो तसवहाउ विरदो, अविरदओ तह य थावरवहादो ।
एक्कसमयम्हि जीवो, विरदाविरदो जिणेक्कमई ।।३१।।

यस्त्रसवधाद्विरतः, अविरतस्तथा च स्थावरवधात् ।
एकसमये जीवो, विरताविरतो जिनैकमतिः ।।३१।।

टीका – सोई देशसंयत विरताविरत ऐसा भी कहिए है । एक काल ही विषैं जो जीव त्रसहिंसा तैं विरत है अर स्थावरहिंसा तैं अविरत है, सो जीव विरत अर सोई अविरत ऐसैं विरत-अविरत विषैं विरोध है; तथापि अपने-अपने गोचर भाव त्रस-स्थावर के भेद अपेक्षा करि विरोध नाहीं । तीहिं करि विरत-अविरत ऐसा उपदेश योग्य है । बहुरि तैसैं चकार शब्द करि प्रयोजन बिना स्थावर हिंसा कौं भी नाही करै है, ऐसा व्याख्यान करना योग्य है । सो कैसा है ? **जिनैकमतिः** कहिए जिन जे आप्तादिक, तिनही विषैं है एक केवल मति कहिए इच्छा - रुचि जाकैं ऐसा है । इस करि देशसंयत कैं सम्यग्दृष्टीपना है, ऐसा विशेषण निरूपण कीया है । यहु विशेषण आदि दीपक समान है, सो आदि विषैं धरया हूवा दीपक जैसैं अगिले सर्व पदार्थनि कौं प्रकाशै, तैसैं इहांतैं आगै भी सर्व गुणस्थानकनि विषैं इस विशेषण करि संबंध करना योग्य है – सर्व सम्यग्दृष्टी जानने ।

आगै प्रमत्तगुणस्थान कौं गाथा दोय करि कहैं हैं –

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा ।
मलजणणपमादो वि, य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ।।३२।।

संज्वलननोकषायाणामुदयात्संयमो भवेद्यस्मात् ।
मलजननप्रमादोऽपि च तस्मात्खलु प्रमत्तविरतः सः ।।३२।।

टीका – जा कारण तैं संज्वलनकषाय के सर्वघाती स्पर्धकनि का उदयाभाव लक्षण धरें क्षय होतें, बहुरि बारह कषाय उदय कौं न प्राप्त तिनका, अर संज्वलन कषाय अर नोकषाय, इनके निषेकनि का सत्ता अवस्था रूप लक्षण धरें उपशम होतें; बहुरि संज्वलनकषाय, नोकषायनि का देशघाती स्पर्धकनि का तीव्र उदय तैं सकलसंयम अर मल का उपजावनहारा प्रमाद दोऊ हो है । तीहि कारण तैं प्रमत्त सोई विरत, सो षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्तसंयत ऐसा कहिए है ।

"विवक्खिदस्स संजमस्स खओवसमियत्तपडुप्पायणमेत्तफलत्तादो कथं संजलणणोकसायाणं चरित्तविरोहीणं चारित्तकारयत्तं ? देशघादित्तेण सपडिवक्ख गुणं णिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणो वि ण स कज्जकार ओत्ति संजमहेदुत्तेण विविक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि मलजणणपमादोविय 'अपिय इत्यवधारणे' मलजणणपमादो चेव जम्हा एवं तम्हा हु पमत्तविरदो सो समुवलक्खदि ।"

याका अर्थ – विवक्षित जो संयम, ताकैं क्षायोपशमिकपना का उत्पादनमात्र फलपना है । संज्वलन अर नोकषाय जे चारित्र के विरोधी, तिनकैं चारित्र का करना – उपजावना कैसें संभव हैं ?

तहां कहै हैं – एक देशघाती है, तीहि भावकरि अपना प्रतिपक्षी संयमगुण, ताहि निर्मूल नाश करने की शक्ति रहित है । सो इनका उदय विद्यमान भी है, तथापि अपना कार्यकारी नाहीं, संयम नाश न करि सकै है । ऐसें संयम का कारणपना करि विवक्षा तैं संज्वलन अर नोकषायनि कैं चारित्र उपजावना उपचार करि जानना । वस्तु तैं यथार्थ निश्चय विचार करिए, तब ए संज्वलन अर नोकषाय अपने कार्य ही कौं उपजावैं हैं । इनि तैं मल का उपजावनहारा प्रमाद हो है । अपि च ऐसा शब्द है सो प्रमाद भी है, ऐसा अवधारण अर्थ विषैं जानना । मल का उपजावनहारा प्रमाद है, जातैं ऐसैं तातैं प्रकट प्रमत्तविरत, सो षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव है ।

ताहि लक्षण करि कहैं हैं –

वत्तावत्तपमादे, जो वसइ पमत्तसंजदो होदि ।
सयलगुणशीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो ॥३३॥[1]

---

१. षट्खंडागम – धवला, पुस्तक १, पृष्ठ १७८, गाथा ११३

व्यक्ताव्यक्तप्रमादे यो वसति प्रमत्तसंयतो भवति ।
सकलगुणशीलकलितो, महाव्रती चित्रलाचरणः ।।३३।।

टीका – **व्यक्त** कहिए आपके जानने में आवै, बहुरि **अव्यक्त** कहिए प्रत्यक्ष ज्ञानीनि के ही जानने योग्य असा जो प्रमाद, तीहिविषैं जो संयत प्रवर्तै, सो चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम का माहात्म्य करि समस्त गुण अर शील करि संयुक्त महाव्रती हो है । **अपि** शब्द करि प्रमादी भी हो है, अर महाव्रती भी हो है । इहां सकलसंयमपनौं महाव्रतीपनौं देशसंयत अपेक्षा करि जानना, ऊपरि के गुणस्थाननि की अपेक्षा नाहीं है । तिस कारण तैं ही प्रमत्तसंयत चित्रलाचरण है, असा कह्या है । **चित्रं** कहिए प्रमाद करि मिश्ररूप कौं **'लाति'** कहिए गहै – करै, सो चित्रल कहिए । चित्रल आचरण जाकै होइ, सो चित्रलाचरण जानना । अथवा चित्रल कहिए सारंग, चीता, तिहि समान मिल्या हूवा काबरा आचरण जाका होइ, सो चित्रलाचरण जानना । अथवा **चित्तं लाति** कहिए मन कौं प्रमादरूप करि कहै, सो चित्तल कहिए । चित्तल है आचरण जाका, सो चित्तलाचरण जानना । असी विशेष निरुक्ति भी पाठांतर अपेक्षा जाननी ।

आगै तिनि प्रमादनि का नाम, संख्या दिखावने के अर्थि सूत्र कहैं हैं –

विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्दा तहेव पणयो य ।
चदु चदु पणमेगेगं, होंति पमादा हु पण्णरस ।।३४।।[1]

विकथा तथा कषाया, इंद्रियनिद्राः तथैव प्रणयश्च ।
चतुश्चतुः पञ्चैकैकं, भवंति प्रमादाः खलु पंचदश ।।३४।।

टीका – संयमविरुद्ध जे कथा, ते विकथा कहिए । बहुरि **कषंति** कहिए संयमगुण कौं घातैं, ते कषाय कहिए । बहुरि संयम विरोधी इंद्रियनि का विषय प्रवृत्तिरूप व्यापार, ते इंद्रिय कहिए । बहुरि स्त्यानगृद्धि आदि तीन कर्मप्रकृतिनि का उदय करि वा निद्रा, प्रचला का तीव्र उदय करि प्रकट भई जो जीव कैं अपने दृश्य पदार्थनि का सामान्यमात्र ग्रहण कौं रोकनहारी जडरूप अवस्था, सो निद्रा है । बहुरि बाह्य पदार्थनि विषैं ममत्वरूप भाव सो, प्रणय कहिए स्नेह है । ए क्रम तैं विकथा च्यारि, कषाय च्यारि, इंद्रिय पांच, निद्रा एक, स्नेह एक असैं सर्व मिलि प्रमाद पंद्रह

---

१. षट्खंडागम – धवला, पुस्तक १, पृष्ठ १७६ गाथा ११४.

हो हैं। इहां सूत्र विषैं पहिलैं चकार कह्या, सो सर्व ही ए प्रमाद हैं, असा साधारण भाव जानने के अर्थि कह्या है। बहुरि दूसरा तथा शब्द कह्या, सो परस्पर समुदाय करने के अर्थि कह्या है।

आगें इनि प्रमादनि के अन्य प्रकार करि पांच प्रकार हैं, तिनकौं नव गाथानि करि कहैं हैं –

संखा तह पत्थारो, परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं।
एदे पंच पयारा, पमदसमुक्कित्तणे णेया ॥३५॥

संख्या तथा प्रस्तारः, परिवर्तन नष्टं तथा समुद्दिष्टम्।
एते पंच प्रकाराः, प्रमादसमुत्कीर्तने ज्ञेयाः ॥३५॥

टीका – संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट, समुद्दिष्ट ए पांच प्रकार प्रमादनि का व्याख्यान विषैं जानना। तहां प्रमादनि का आलाप कौं कारणभूत जो अक्ष-संचार के निमित्त का विशेष, सो संख्या है। बहुरि इनका स्थापन करना, सो प्रस्तार है। बहुरि अक्षसंचार परिवर्तन है। संख्या धरि अक्ष का ल्यावना नष्ट है। अक्ष धरि संख्या का ल्यावना समुद्दिष्ट है। इहां भंग कौं कहने का विधान, सो आलाप जानना। बहुरि भेद वा भंग का नाम अक्ष जानना। बहुरि एक भेद अनेक भंगनि विषैं क्रम तैं पलटै, ताका नाम अक्षसंचार जानना। बहुरि जेथवां भंग होइ, तीहि प्रमाण का नाम संख्या जानना।

आगें विशेष संख्या की उत्पत्ति का अनुक्रम कहैं हैं –

सव्वे पि पुव्वभंगा, उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु।
मेलंति त्ति य कमसो, गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥३६॥

सर्वेऽपि पूर्वभंगा, उपरिमभंगेषु एकैकेषु।
मिलंति इति च क्रमशो, गुणिते उत्पद्यते संख्या ॥३६॥

टीका – सर्व ही पहिलें भंग ऊपरि-ऊपरि के भंगनि विषैं एक-एक विषैं मिलैं हैं, संभवैं हैं। यातैं क्रम करि परस्पर गुणैं, विशेष संख्या उपजै है। सोई कहिए है – पूर्व भंग विकथाप्रमाद च्यारि, ते ऊपरि के कषायप्रमादनि विषैं एक-एक विषैं संभवैं

हैं। ऐसें च्यारि विकथानि करि गुणें, च्यारि कषायनि के सोलह प्रमाद हो हैं। बहुरि ए नीचले भंग सोलह भए, ते ऊपरि के इंद्रियप्रमादनि विषें एक-एक विषें संभवैं हैं। ऐसें सोलह करि गुणें, पंच इंद्रियनि के असी प्रमाद हो हैं। तैसें ही निद्रा विषें, बहुरि स्नेह विषें एक-एक ही भेद है। तातें एक-एक करि गुणें भी असी-असी ही प्रमाद हो हैं। ऐसें विशेष संख्या की उत्पत्ति कही।

आगें प्रस्तार का अनुक्रम दिखावैं हैं –

पढमं पमदपमाणं, कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च।
पिंडं पडि एक्केक्कं, णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥३७॥

प्रथमं प्रमादप्रमाणं, क्रमेण निक्षिप्य उपरिमाणं च।
पिंडं प्रति एकैकं, निक्षिप्ते भवति प्रस्तारः ॥३७॥

टीका – प्रथम विकथास्वरूप प्रमादनि का प्रमाण का विरलन करि एक-एक जुदा बिखेरी, पीछें क्रम करि नीचें विरल कीया था। ताकै एक-एक भेद प्रति एक-एक ऊपरि का प्रमादपिंड कौं स्थापन करना, तिनकौं मिलैं प्रस्तार हो है। सो कहिए है – विकथा प्रमाद का प्रमाण च्यारि, ताकौं विरलन करि क्रम तैं स्थापि (१ १ १ १) बहुरि ताकै ऊपरि का दूसरा कषाय नामा प्रमाद, ताका पिंड जो समुदाय, ताका प्रमाण च्यारि (४) ताहि विरलनरूप स्थापे जे नीचले प्रमाद, तिनिका एक-एक भेद प्रति देना।

भावार्थ – एक-एक विकथा भेद ऊपरि च्यारि-च्यारि कषाय स्थापने

क ४ ४ ४ ४
वि १ १ १ १ सो इनकौं मिलाए जोडें, सोलह प्रमाद हो हैं। बहुरि ऊपरि की अपेक्षा लीए याकौं पहिला प्रमादपिंड कहिए, सो याकौं विरलन करि क्रम तैं स्थापि, यातैं ऊपरी का तिस पहिला की अपेक्षा याको दूसरा इंद्रियप्रमाद, ताका पिंड प्रमाण पांच, ताहि पूर्ववत् विरलन करि स्थापें, जे नीचले प्रमाद, तिनके एक-एक भेद प्रति एक-एक पिंडरूप स्थापिए –

५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री,	भ	भ	भ	भ,	रा	रा	रा	रा,	अ	अ	अ	अ,

भावार्थ – सोलह भेदनि विषैं एक-एक भेद ऊपरि पांच-पांच इंद्रिय स्थापने, सो इनकौं जोडैं, असी भंग हो हैं । यहु प्रस्तार आगैं कहिए जो अक्षसंचार, ताका कारण है । अैसैं प्रस्ताररूप स्थापे जे असी भंग, तिनिका आलाप जो भंग कहने का विधान, ताहि कहिए है – स्नेहवान्-निद्रालु-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्री-कथालापी अैसैं यहु असी भंगनि विषैं पहिला भंग है । बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-रसना इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु दूसरा भंग है । बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-घ्राण इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु तीसरा भंग भया । बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-चक्षु इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु चौथा भंग है । बहुरि स्नेहवान्-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-स्त्रीकथालापी अैसैं यहु पांचवा भंग है । अैसैं पांच भंग भए । याही प्रकार क्रोधी की जायगा मानी स्थापि पंच भंग करने ।

बहुरि मायावी स्थापि पंच भंग करने । बहुरि लोभी स्थापि पंच भंग करने । अैसैं एक-एक कषाय के पांच-पांच होइ, च्यारि कषायनि के एक स्त्रीकथा प्रमाद विषैं वीस आलाप हो हैं । बहुरि जैसैं स्त्रीकथा आलापी की अपेक्षा वीस भेद कहे, तैसैं ही स्त्रीकथालापी की जायगा भक्तकथालापी, बहुरि राष्ट्रकथालापी, बहुरि अवनिपालकथालापी क्रम तैं स्थापि एक-एक विकथा के वीस-वीस भंग होइ । च्यारौ विकथानि के मिलि करि सर्वप्रमादनि के असी आलाप हो हैं, अैसा जानना ।

आगैं अन्य प्रकार प्रस्तार दिखावै हैं –

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं, पढमं तस्सुवरि बिदयमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खेओ, एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥३८॥

निक्षिप्त्वा द्वितीयमात्रं, तस्योपरि द्वितीयमेकैकम् ।
पिंडं प्रति निक्षेप, एवं सर्वत्र कर्तव्यः ॥३८॥

टीका – कषायनामा दूसरा प्रमाद का जेता प्रमाण, तीहिमात्र स्थानकनि विषैं विकथास्वरूप पहिला प्रमाद का समुदायरूप पिंड जुदा-जुदा स्थापि (४ ४ ४ ४), बहुरि एक-एक पिंडप्रति द्वितीय प्रमादनि का प्रमाण का एक-एक रूप ऊपरि स्थापना ।

भावार्थ – च्यारि-च्यारि प्रमाण लीए, एक-एक विकथा प्रमाद का पिंड, ताकौं दूसरा प्रमाद कषाय का प्रमाण च्यारि, सो च्यारि जायगा स्थापि, एक-एक पिंड के ऊपरि क्रम तैं एक-एक कषाय स्थापिए (१ १ १ १ / ४ ४ ४ ४) असें स्थापन कीए, तिन का जोड सोलह पिंड प्रमाण होइ। बहुरि 'असैं ही सर्वत्र करना' इस वचन तैं यहु सोलह प्रमाण पिंड जो समुदाय, सो तीसरा इंद्रिय प्रमाद का जेता प्रमाण, तितनी जायगा स्थापिए। सो पांच जायगा स्थापि (१६ १६ १६ १६ १६), इनके ऊपरी तीसरा इंद्रिय प्रमाद का प्रमाण एक-एक रूपकरि स्थापन करना।

भावार्थ – पूर्वोक्त सोलह भेद जुदे-जुदे इंद्रिय प्रमाद का प्रमाण पांचा, सो पांच जायगा स्थापि, एक-एक पिंड के ऊपरि एक-एक इंद्रिय भेद स्थापन करना (१ १ १ १ / १६ १६ १६ १६) असें स्थापन कीए, अधस्तन कहिए नीचे की अपेक्षा अक्षसंचार कौं कारण दूसरा प्रस्तार हो है।

सो इस प्रस्तार अपेक्षा आलाप जो भंग कहने का विधान, सो कैसें हो है ?

सोई कहिए है – स्त्रीकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन-इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान् असा असी भंगनि विषें प्रथम भंग है। बहुरि भक्तकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा दूसरा भंग है। बहुरि राष्ट्रकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान् असा तीसरा भंग है। बहुरि अवनिपालकथालापी-क्रोधी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान् असा चौथा भंग है। असें ही क्रोध की जायगा मानी वा मायावी वा लोभी क्रम तें कहि च्यारि-च्यारि भंग होइ, च्यारौं कषायनि के एक स्पर्शन इंद्रिय विषें सोलह आलाप हो हैं।

बहुरि असें ही स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत की जायगा रसना वा घ्राण वा चक्षु वा श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत क्रम तें कहि एक-एक के सोलह-सोलह भेद होइ पांचों इंद्रियनि के असी प्रमाद आलाप हो हैं। तिनि सबनि कों जानि व्रती पुरुषनि करि प्रमाद छोडने।

भावार्थ – एकै जीव कें एक काल कोई एक-एक, कोई भेदरूप विकथादिक हो हैं। तातैं तिनके पलटने की अपेक्षा पंद्रह प्रमादनि के असी भंग हो हैं। असा ही यहु अनुक्रम चौरासी लाख उत्तरगुण, अठारह हजार शील के भेद, तिनका भी प्रस्तार विषें करना।

आगै पीछे कह्या जो दूसरा प्रस्तार, ताकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तन कहिए अक्षसंचार, ताका अनुक्रम कहै हैं –

पढमक्खो अंतगदो, आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णिवि गंतूणंतं, आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ॥३९॥

प्रथमाक्ष अंतगतः आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः ।
द्वावपि गत्वांतमादिगते, संक्रामति तृतीयाक्षः ॥३९॥

टीका – पहिला प्रमाद का अक्ष कहिए भेद विकथा, सो आलाप का अनुक्रम करि अपने पर्यन्त जाइ, बहुरि बाहुडि करि अपने प्रथम स्थान कौं युगपत् प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो अपने दूसरे स्थान कौं प्राप्त होइ ।

भावार्थ – आलापनि विषै पहिलैं तौ विकथा के भेदनि कौं पलटिए, क्रम तैं स्त्री, भक्त, राष्ट्र, अवनिपालकथा च्यारि आलापनि विषैं कहिए । अर अन्य प्रमादनि का पहिला-पहिला ही भेद इन च्यारी आलापनि विषैं ग्रहण करिए । तहां पीछैं पहिला विकथा प्रमाद अपना अंत अवनिपालकथा तहां पर्यंत जाइ, बाहुडि करि अपना स्त्रीकथारूप प्रथम भेद कौं जब प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद कषाय, सो अपना पहला स्थान क्रोध कों छोडि, द्वितीय स्थान मान कौं प्राप्त होइ । बहुरि प्रथम प्रमाद का अक्ष पूर्वोक्त अनुक्रम करि संचार करता अपना पर्यन्त कौं जाइ, बाहुडि करि युगपत् अपना प्रथम स्थान कौ जब प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो अपना तीसरा स्थान कौं प्राप्त होइ ।

भावार्थ – दूसरा कषाय प्रमाद दूसरा भेद मान कौं प्राप्त हुवा, तहां भी पूर्वोक्त प्रकार पहला भेद क्रम तैं च्यारि आलापनि विषैं क्रम तैं पलटी, अपना पर्यन्त भेद ताईं जाइ, बाहुडि अपना प्रथम भेद स्त्रीकथा कौं प्राप्त होइ, तब कषाय प्रमाद अपना तीसरा भेद माया कौं प्राप्त हो है । बहुरि ऐसैं ही संचार करता, पलटता दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो जब अपने अंत पर्यन्त भेद कौं प्राप्त होइ, तब प्रथम अक्ष विकथा, सो भी अपना पर्यन्त भेद कौं प्राप्त होइ तिष्ठै ।

भावार्थ – पूर्वोक्त प्रकार च्यारि आलाप माया विषैं, च्यारि आलाप लोभ विषैं भएं कषाय अक्ष अपना पर्यन्त भेद लोभ, ताकौं प्राप्त भया । अर इनिविषैं

पहिला अक्ष विकथा, सो भी अपना पर्यन्त भेद अवनिपालकथा, ताकौं प्राप्त भया; असैं होतें सोलह आलाप भए ।

बहुरि ए दोऊ अक्ष विकथा अर कषाय बाहुडि करि अपने प्रथम स्थान कौं प्राप्त भए, तब तीसरा प्रमाद का अक्ष अपना प्रथम स्थान छोडि, दूसरा स्थान कौं प्राप्त हो है । अर इस ही अनुक्रम करि प्रथम अर द्वितीय अक्ष का क्रम तें अपने पर्यन्त भेद ताईं जानना । बहुरि बाहुडना तिनकरि तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो अपना तीसरा आदि स्थान कौ प्राप्त होइ, असा जानना ।

भावार्थ – विकथा अर कषाय अक्ष बाहुडि अपना प्रथम स्थान स्त्रीकथा अर क्रोध कौं प्राप्त होइ, तब इंद्रिय अक्ष विषैं पूर्वैं सोलह आलापनि विषैं पहिला भेद स्पर्शन इंद्रिय था, सो तहां रसना इंद्रिय होइ, तहां पूर्वोक्त प्रकार अपना-अपना पर्यंत भेद ताईं जाय, तब रसना इंद्रिय विषैं सोलह आलाप होइ । बहुरि तैसैं ही ते दोऊ अक्ष बाहुडि अपने प्रथम स्थान कौं प्राप्त होइ, तब इंद्रिय अक्ष अपना तीसरा भेद घ्राण इंद्रिय कौं प्राप्त होइ, या विषैं पूर्वोक्त प्रकार सोलह आलाप होइ ।

बहुरि इस ही क्रमकरि सोलह-सोलह आलाप चक्षु, श्रोत्र इंद्रिय विषैं भए, सर्व प्रमाद के अक्ष अपने पर्यन्त भेद कौं प्राप्त होइ तिष्ठै हैं । यहु अक्षसंचार का अनुक्रम नीचे के अक्ष तें लगाय, ऊपरि के अक्ष पर्यन्त विचार करि प्रवर्तावना । बहुरि अक्ष की सहनानी हंसपद है, ताका आकार (×) असा जानना ।

आगैं प्रथम प्रस्तार की अपेक्षा अक्षपरिवर्तन कहै हैं –

तदियक्खो अंतगदो, आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णिवि गंतूणंतं, आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥४०॥

तृतीयाक्षः अंतगतः, आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः ।
द्वावपि गत्वांतमादिगते संक्रामति प्रथमाक्षः ॥४०॥

टीका – तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो आलाप का अनुक्रम करि अपने पर्यन्त जाइ स्पर्शनादि क्रम तें पांच आलापनि विषैं श्रोत्र पर्यन्त जाइ, बहुरि बाहुडि युगपत् अपने प्रथम स्थान स्पर्शन कौं प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो पहलैं क्रोधरूप प्रथम स्थान कौं प्राप्त था, ताकौं छोडि अपना दूसरा स्थान मान

कौं प्राप्त हो है । तहां बहुरि तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो पूर्वोक्त अनुक्रम करि अपने अंत भेद पर्यन्त जाइ, बाहुडि युगपत् प्रथम स्थान कौं प्राप्त होइ, तब दूसरा प्रमाद का अक्ष कषाय, सो दूसरा स्थान मान कौं छोडि, अपना तृतीय स्थान माया कौं प्राप्त होइ । तहां भी पूर्वोक्त प्रकार विधान होइ, असैं क्रम तैं दूसरा प्रमाद का अक्ष जब एक बार अपना पर्यन्त भेद लोभ कौं प्राप्त होइ, तब तीसरा प्रमाद का अक्ष इंद्रिय, सो भी क्रम करि संचार करता अपने अंत भेद कौं प्राप्त होइ, तब बीस आलाप होइ ।

भावार्थ – एक-एक कषाय विषैं पांच-पांच आलाप इंद्रियनि के संचार करि होइ । बहुरि ते इंद्रिय अर कषाय दोऊ ही अक्ष बाहुडि अपने-अपने प्रथम स्थान कौं युगपत् प्राप्त होइ, तब पहिला प्रमाद का अक्ष विकथा, सो पहिलें बीसों आलापनि विषैं अपना प्रथम स्थान स्त्रीकथा रूप, ताकौं प्राप्त था । सो अब प्रथम स्थान कौं छोडि, अपना द्वितीय स्थान भक्तकथा कौं प्राप्त होइ । बहुरि इस ही अनुक्रम करि पूर्वोक्त प्रकार तृतीय, द्वितीय प्रमाद का अक्ष इंद्रिय अर कषाय, तिनिका अपने अंत पर्यन्त जानना । बहुरि बाहुडना इनि करि प्रथम प्रमाद का अक्ष विकथा, सो अपना तृतीयादि स्थानकनि कौं प्राप्त होइ, असा संचार जानना ।

भावार्थ – पूर्वोक्त प्रकार एक-एक विकथा भेद विषैं इंद्रिय-कषायनि के पलटने तैं बीस आलाप होइ, ताके चारौ विकथानि विषैं असी आलाप हो हैं । यहु अक्षसंचार का अनुक्रम ऊपरि अंत का भेद इंद्रिय का पलटन तैं लगाय क्रम तैं अधस्तन पूर्व-पूर्व अक्ष का परिवर्तन कौं विचारि पलटना, असैं अक्षसंचार कह्या । अक्ष जो भेद, ताका क्रम तैं पलटने का विधान असैं जानना ।

आगे नष्ट ल्यावने का विधान दिखावैं हैं –

सगमाणेहिं विभत्ते, सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं ।
लद्धे रूवं पक्खिव, सुद्धे अंते ण रूवपक्खेओ ।।४१ ।।

स्वकमानैर्विभक्ते, शेषं लक्षयित्वा जानीहि अक्षपदम् ।
लब्धे रूपं प्रक्षिप्य शुद्धे अंते न रूपप्रक्षेपः ।।४१।।

टीका – कोऊ जेथवां प्रमाद भंग पूछै, तीहिं प्रमाद भंग का आलाप की खबरि नाहीं, जो यहु आलाप कौन है, तहां ताकौं नष्ट कहिए । ताकें ल्यावने

का, जानने का उपाय कहिए है। कोऊ जेथवां प्रमाद पूछ्या होइ, ताकौं अपना प्रमाद पिंड का भाग दीजिए, जो अवशेष रहै, सो अक्षस्थान जानना। बहुरि जेते पाए होइ, तिनिविषैं एक जोडि, जो प्रमाण होइ, ताकौं द्वितीय प्रमाद पिंड का भाग देना, तहां भी तैसें ही जानना। असें ही क्रम तें सर्वत्र करना। इतना विशेष जानना, जो जहां भाग दीएं राशि शुद्ध होइ जाय, कछु भी अवशेष न रहै; तहां तिस प्रमाद का अंत भेद ग्रहण करना। बहुरि तहां जो लब्धराशि होइ, तिहि विषैं एक न जोडना। बहुरि असें करतें अंत जहां होइ, तहां एक न जोड़ना, सो कहिए है।

जेथवां प्रमाद पूछ्या, तिस विवक्षित प्रमाद की संख्या कौं प्रथम प्रमाद विकथा, ताका प्रमाण पिंड च्यारि, ताका भाग देइ, अवशेष जितना रहैं, सो अक्षस्थान हैं। जितने अवशेष रहैं, तेथवां विकथा का भेद, तिस आलाप विषैं जानना। बहुरि इहां भाग दीए, जो पाया, तींह लब्धराशि विषैं एक और जोड़ना। जोडैं जो प्रमाण होइ, ताका ऊपरि का दूसरा प्रमाद कषाय, ताका प्रमाण पिंड च्यारि, ताका भाग देइ, जो अवशेष रहै, सो तहां अक्षस्थान जानना। जितने अवशेष रहैं, तेथवां कषाय का भेद तिस आलाप विषैं जानना बहुरि जो इहां लब्धराशि होइ, तींहि विषैं एक जोडि, तीसरा प्रमाद इंद्रिय, ताका प्रमाण पिंड पांच, ताका भाग दीजिए। बहुरि जहां अवशेष शून्य रहै, तहां प्रमादनि का अंतस्थान विषैं ही अक्ष तिष्ठै है। तहां अंत का भेद ग्रहण करना, बहुरि लब्धिराशि विषैं एक न जोड़ना।

इहां उदाहरण कहिए है – काहूने पूछ्या कि असी भंगनि विषैं पंद्रहवां प्रमाद भंग कौन है ?

तहां ताके जानने कौं विवक्षित नष्ट प्रमाद की संख्या पंद्रह, ताकौं प्रथम प्रमाद का प्रमाण पिंड च्यारि का भाग देइ तीन पाए, अर अवशेष भी तीन रहे, सो तीन अवशेष रहै, तातैं विकथा का तीसरा भेद राष्ट्रकथा, तींहि विषैं अक्ष है, तहां अक्ष देइकरि देखै।

भावार्थ – तहां पंद्रहवां आलाप विषैं राष्ट्रकथालापी जानना। बहुरि तहां तीन पाए थे। तिस लब्धराशि तीन विषैं एक जोडैं, च्यारि होइ, ताकौं ताके ऊपरि कषाय प्रमाद, ताका प्रमाण पिंड च्यारि, ताका भाग दीएं अवशेष शून्य है, किछु न रह्या, तहां तिस कषाय प्रमाद का अंत भेद जो लोभ, ताका आलाप विषैं अक्ष सूचै है। जातें जहां राशि शुद्ध होइ जाइ, तहां ताका अंत भेद ग्रहण करना।

भावार्थ – पंद्रहवां आलाप विषें लोभी जानना । बहुरि तहां लब्धराशि एक, तीहि विषें एक न जोड़ना । जातें जहां राशि शुद्ध होइ जाय, तहां पाया राशि विषें एक और न मिलावना सो एक का एक ही रह्या, ताकौं ऊपरि का इंद्रिय प्रमाण पिंड पांच का भाग दीए, लब्धराशि शून्य है । जातें भाज्य तें भागहार का प्रमाण अधिक है, तातें इहां लब्धराशि का अभाव है । अवशेष एक रह्या, तातें इंद्रिय का स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत असा प्रथम भेद रूप अक्ष पंद्रहवां आलाप विषें सूचै है । असें पंद्रहवां राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान ऐसा आलाप जानना ।

याही प्रकार जेथवां आलाप जान्यां चाहिए, तेथवां नष्ट आलाप कौं साधै ।

बहुरि इहां द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा विकथादिक का क्रम करि जैसें नष्ट ल्यावने का विधान कह्या, तैसें ही प्रथम प्रस्तार अपेक्षा ऊपरि तें इंद्रिय, कषाय, विकथा का अनुक्रम करि पूर्वोक्त प्रकारादिक विधान तें नष्ट ल्यावने का विधान करना ।

तहां उदाहरण – किसी ने पूछा प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पंद्रहवां आलाप कौंन ?

तहां इस संख्या कौं पांच का भाग दीए, अवशेष शून्य, तातें इहां अंत का भेद श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत ग्रहण करना ।

बहुरि इहां पाए तीन, ताकौं कषाय पिंड प्रमाण च्यारि, ताका भाग दीएं, लब्धराशि शून्य, अवशेष तीन, तातें तहां तीसरा कषाय भेद मायावी जानना । बहुरि लब्धराशि शून्य विषें एक मिलाएं एक भया, ताकौं विकथा का प्रमाद पिंड च्यारि का भाग दीएं लब्धराशि शून्य, अवशेष एक, सो स्त्रीकथालापी जानना । ऐसें प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पंद्रहवां स्नेहवान्-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-स्त्रीकथालापी असा आलाप जानना । असें ही अन्य नष्ट आलाप साधने ।

आगें आलाप धरि संख्या साधने कौं अगिला सूत्र कहैं हैं –

संठाविदूण रूवं, उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।
अवणिज्ज अणंकिदयं, कुज्जा एमेव सव्वत्थ ।।४२।।

संस्थाप्य रूपमुपरितः संगुणित्वा स्वकमानम् ।
अपनीयानंकितं, कुर्यात् एवमेव सर्वत्र ।।४२।।

टीका – प्रथम एक रूप स्थापन करि ऊपरि तें अपना प्रमाण करि गुणैं, जो प्रमाण होई, तामैं अनंकित स्थान का प्रमाण घटावना, असैं सर्वत्र करना । इहां जो भेद ग्रहण होइ, ताकैं परें स्थानकनि की जो संख्या, ताकौं अनंकित कहिए । जैसें विकथा प्रमाद विषें प्रथम भेद स्त्रीकथा का ग्रहण होइ, तौ तहां ताकें परें तीन स्थान रहैं, तातें अनंकित का प्रमाण तीन है । बहुरि जो भक्तकथा का ग्रहण होइ, तौ ताकें परें दोय स्थान रहैं, तातें अनंकित स्थान दोय हैं । बहुरि जो राष्ट्रकथा का ग्रहण होइ, तौ ताकें परें एक स्थान है, तातें अनंकित स्थान एक है । बहुरि जो अवनिपालकथा का ग्रहण होइ, तौ ताकें परें कोऊ भी नहीं, तातें तहां अनंकित स्थान का अभाव है । असैं ही कषाय, इंद्रिय प्रमाद विषें भी अनंकित स्थान जानना ।

सो कोऊ कहे कि अमुक आलाप केथवां है ? तहां आलाप कह्या, ताकी संख्या न जानिए, तो ताकी संख्या जानने कौं उद्दिष्ट कहिए है । प्रथम एक रूप स्थापिए, बहुरि ऊपरि का इंद्रिय प्रमाद संख्या पांच, ताकरि तिस एक कौं गुणिए, तहां अनंकित स्थानकनि की संख्या घटाइ, अवशेष कौं ताके अनंतर नीचला कषाय प्रमाद का पिंड की संख्या च्यारि, ताकरि गुणिए, तहां भी अनंकित स्थान घटाइ, अवशेष कौं ताके अनंतरि नीचला विकथा प्रमाद का पिंड च्यारि, ताकरि गुणिए, तहां भी अनंकित स्थान घटाइ, अवशेष रहै तितनां विवक्षित आलाप की संख्या हो है । असैं ही सर्वत्र उत्तरगुण वा शीलभेदनि विषें उद्दिष्ट ल्यावने का अनुक्रम जानना ।

इहां भी उदाहरण दिखाइए है – काहूने पूछ्या कि राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा आलाप केथवां है ?

तहां प्रथम एक रूप स्थापि, ताकौं ऊपरि का इंद्रिय प्रमाद, ताकी संख्या पांच, तींहिकरि गुणें पांच भए । तींहि राशि विषें पंद्रहवां उद्दिष्ट की विवक्षा करि, तामैं पहला भेद स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत ऐसा आलाप विषें कह्या था, तातें ताके परें रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ए च्यारि अनंकित स्थान हैं । तातें इनकौं घटाएं, अवशेष एक रहै, ताकौं नीचला कषाय प्रमाद की संख्या च्यारि करि गुणें, च्यारि भए, सो इस लब्धराशि च्यारि विषें इहां आलाप विषें लोभी कह्या था, सो लोभ के परें कोऊ भेद नाहीं । तातें अनंकित स्थान कोऊ नाहीं । इस हेतु तें इहां शून्य घटाए, राशि जैसा का तैसा ही रह्या, सो च्यारि ही रहै । बहुरि इस राशि कौं याके नीचे विकथा प्रमाद की संख्या च्यारि ताकरि गुणें सोलह भए । इहां आलाप विषें

राष्ट्रकथालापी कह्या, सो याके परें एक भेद अवनिपाल कथा है, यातें अनंकित स्थान एक घटाएं, पंद्रह रहै, सोई पूछ्या था, ताका उत्तर असा – जो राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान, असा आलाप पंद्रहवां है। सो यहु विधान दूसरा प्रस्तार की अपेक्षा जानना।

बहुरि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा नीचे तैं अनुक्रम जानना।

तहां उदाहरण कहिए है – स्नेहवान-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-स्त्रीकथालापी, असा आलाप केथवां है ?

तहां एक रूप स्थापि, प्रथम प्रस्तार अपेक्षा ऊपरि का प्रमाद विकथा, ताका प्रमाण च्यारि करि गुणें, च्यारि भए, सो इहां स्त्रीकथालापी ग्रह्या, सो याकै परें तीन भेद हैं। तातैं अनंकित स्थान तीन घटाएं, अवशेष एक रह्या, ताकौं कषाय प्रमाद च्यारि करि गुणें, च्यारि भए, सो इहां मायावी ग्रह्या, ताकें परें एक लोभ अनंकित स्थान है, ताकौं घटाएं तीन रहै, याकौं इंद्रिय प्रमाद पांच करि गुणें, पंद्रह भए, सो इहां श्रोत्र इंद्रिय का ग्रहण है। ताके परें कोऊ भेद नाहीं, तातैं अनंकित स्थान का अभाव है। इस हेतु तैं शून्य घटाएं भी पंद्रह ही रहैं। असैं स्नेहवान-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-स्त्रीकथालापी, ऐसा आलाप पंद्रहवां है। या ही प्रकार विवक्षित प्रमाद का आलाप की संख्या हो है, ऐसैं अक्ष धरि संख्या का ल्यावना, सो उद्दिष्ट सर्वत्र साधै।

आगै प्रथम प्रस्तार का अक्षसंचार कौं आश्रय करि नष्ट, उद्दिष्ट का गूढ यंत्र कहै हैं –

इगिबितिचपणखपणदसपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य।
संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥४३॥

एकद्वित्रिचतुः पंचखपंचदशपंचदशखविंशच्चत्वारिंशत्षष्टीश्च।
संस्थाप्य प्रमाद स्थाने, नष्टोद्दिष्टे च जानीहि त्रिस्थाने ॥४३॥

टीका – प्रमादस्थानकनि विषैं इंद्रियनि के पंच कोठानि विषैं क्रम तैं एक, दोय, तीन, च्यारि, पांच इन अंकनि कौं स्थापि; कषायनि के च्यारि कोठानि विषैं क्रम तैं बिंदी, पांच, दश, पंद्रह इन अंकनि कौं स्थापि; तैसैं विकथानि के च्यारि कोठानि विषैं क्रम तैं बिंदी, बीस, चालीस, साठि इनि अंकनि कौं स्थापि; निद्रा,

स्नेह के दोय, तीन आदि भेदनि का अभाव है। तीहिं करि ताके निमित्त तैं हुई जो आलापनि की बहुत संख्या, सो न संभवै है। यातैं तिन तीनों स्थानकनि विषैं स्थापे अंक, तिन विषैं नष्ट उद्दिष्ट तू जानि।

भावार्थ - निद्रा, स्नेह का तौ एक-एक भेद ही है। सो इनकी तौ सर्वभंगनि विषैं पलटनि नाहीं। तातैं इनिकों तौ कहि लैनै। अर अवशेष तीन प्रमादनि का तीन पंक्ति रूप यंत्र करना। तहां ऊपरि की पंक्ति विषैं पंच कोठे करने। तिन विषैं क्रम तैं स्पर्शन आदि इंद्रिय लिखने। अर एक, दोय, तीन, च्यारि, पांच ए अंक लिखने। बहुरि ताके नीचली पंक्ति विषैं च्यारि कोठे करने, तिन विषैं क्रम तैं क्रोधादि कषाय लिखने। अर बिंदी, पांच, दश, पंद्रह ए अंक लिखने। बहुरि ताके नीचली पंक्ति विषैं च्यारि कोठे लिखने, तहां स्त्री आदि विकथा क्रम तैं लिखनी। अर बिंदी, बीस, चालीस, साठ ए अंक लिखने।

स्पर्शन १	रसन २	घ्राण ३	चक्षु ४	श्रोत्र ५
क्रोध ०	मान ५	माया १०	लोभ १५	
स्त्री ०	भक्त २०	राष्ट्र ४०	अवं ६०	

इहां कोऊ नष्ट बूझै तो जेथवां प्रमाद भंग पूछ्या सो प्रमाण तीनों पंक्ति विषैं जिन-जिन कोठेनि के अंक जोडैं होंइ, तिन-तिन कोठेनि विषैं जो-जो इंद्रियादि लिखा होइ, सो-सो तिस पूछ्या हूवा आलाप विषैं जानने। बहुरि जो उद्दिष्ट बूझै तौ, जो आलाप पूछ्या, तिस आलाप विषैं जो इंद्रियादिक ग्रहे होंइ, तिनके तीनों पंक्तिनि के कोठेनि विषैं जे-जे अंक लिखे होंइ, तिनकों जोडें जो प्रमाण होइ, तेथवां सो आलाप जानना।

तहां नष्ट का उदाहरण कहिए है -

जैसैं पैंतीसवां आलाप कैसा है ?

ऐसा पूछें इंद्रिय, कषाय, विकथानि के तीनों पंक्ति संबंधी जिन-जिन कोठानि के अंक वा शून्य मिलाएं, सो पैंतीस की संख्या होइ, तिन-तिन कोठानि विषैं लिखे हुवे इंद्रियादि प्रमाद अर स्नेह-निद्रा विषैं आगैं उच्चारण कीए स्नेहवान-निद्रालु-श्रोत्र इंद्रिय के वशीभूत-मायावी-भक्तकथालापी ऐसा पूछ्या हूआ पैंतीसवां आलाप जानना।

भावार्थ – यंत्र विषें इंद्रियपंक्ति का पांचवां कोठा, कषायपंक्ति का तीसरा कोठा, विकथापंक्ति का दूसरा कोठा, इन कोठेनि का अंक जोडें पैंतीस होंइ, तातें इन कोठेनि विषें जे-जे इंद्रियादि लिखे, ते-ते पैंतीसवां आलाप विषें जानने । स्नेह, निद्रा कौं पहिलें कहि लीजिये ।

बहुरि दूसरा उदाहरण नष्ट का ही कहिए है । इकसठिवां आलाप कैसा है ?

असें पूछें, इहां भी इंद्रिय कषाय विकथानि के जिन-जिन कोठानि के अंक वा शून्य जोडें, सो इकसठि संख्या होइ, तिन-तिन कोठानि विषें प्राप्त प्रमाद पूर्ववत् कहे । स्नेहवान्-निद्रालु-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-क्रोधी-अवनिपालकथालापी असा पूछ्या हुवा इकसठिवां आलाप हो है ।

भावार्थ – इंद्रियपंक्ति का प्रथम कोठा का एका अर कषायपंक्ति का प्रथम कोठा की बिंदी, विकथा का चौथा कोठा का साठि जोडें, इकसठि होइ । सो इनि कोठानि विषें जे-जे इंद्रियादि लिखे हैं, ते इकसठिवां आलाप विषें जानने । असें ही अन्य आलाप का प्रश्न भए भी विधान करना ।

बहुरि उद्दिष्ट का उदाहरण कहिए है – स्नेहवान्-निद्रालु-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-मानी-राष्ट्रकथालापी असा आलाप केथवां है ?

असा प्रश्न होतें स्नेह, निद्रा बिना जे-जे इंद्रियादिक इस आलाप विषें कहे, ते तीनों पंक्तिनि विषें जिस-जिस कोठे विषें ये लिखे होंइ, सो ये इंद्रियपंक्ति का प्रथम कोठा, कषायपंक्ति का दूसरा कोठा, विकथापंक्ति का तीसरा कोठानि विषें ये आलाप लिखे हैं । सो इन कोठानि के एक, पांच, चालीस ये अंक मिलाइ, छियालीस होइ है, सो पूछ्या हुआ आलाप छयालीसवां है ।

बहुरि दूसरा उदाहरण कहिए है – स्नेहवान-निद्रालु-चक्षु इंद्रिय के वशीभूत लोभी-भक्तकथालापी ऐसा आलाप केथवां है ?

तहां इस आलाप विषें कहे इंद्रियादिकनि के कोठे, तिनि विषें लिखे हुवे च्यारि, पंद्रह, बीस ये अंक जोडें गुणतालीस होंइ, सो पूछ्या आलाप गुणतालीसवां है । ऐसें ही अन्य आलाप पूछें भी विधान करना ।

आगे द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा नष्ट, उद्दिष्ट का गूढ यंत्र कहे हैं –

इगिबितिचखचडवारं, खसोलरागट्ठदालचउसट्ठिं ।
संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ।।४४।।

एकद्वित्रिचतुःखचतुरष्टद्वादश खषोडशरागाष्टचत्वारिंशच्चतुःषष्टिम् ।
संस्थाप्य प्रमादस्थाने, नष्टोद्दिष्टे च जानीहि त्रिस्थाने ।।४४।।

टीका – प्रमादस्थानकनि विषैं विकथा प्रमाद के च्यारि कोठानि विषैं क्रम तैं एक, दोय, तीन, च्यारि अंकनि कौं स्थापि; तैसें ही कषाय प्रमाद के च्यारि कोठानि विषैं क्रम तैं बिंदी, आठ, बारह अंकनि कौं स्थापि; तैसें ही इंद्रिय प्रमादनि के पंच कोठानि विषैं क्रम तैं बिंदी, सोलह, बत्तीस, अड़तालीस, चौंसठि अंकनि कौं स्थापि, पूर्वोक्त प्रकार हेतु तैं तिन तीनों स्थानकनि विषैं स्थापे जे अंक, तिनि विषैं नष्ट अर समुद्दिष्ट कौं तू जानहु ।

भावार्थ – यहां भी पूर्वोक्त प्रकार तीन पंक्ति का यन्त्र करना । तहां ऊपर की पंक्ति विषैं च्यारि कोठे करने, तहां क्रम तैं स्त्री आदि विकथा लिखनीं अर एक, दोय, तीन, च्यारि, ए अंक लिखने । बहुरि ताके नीचैं पंक्ति विषैं च्यारि कोठे करने, तहां क्रम तैं क्रोधादि कषाय लिखने अर बिंदी, च्यारि, आठ, बारा ए अंक लिखने । बहुरि नीचैं पंक्ति विषैं पांच कोठे करने, तहां क्रम तैं स्पर्शनादि इंद्रिय लिखने, अर बिंदी, सोलह, बत्तीस, अड़तालीस, चौसठि ए अंक लिखने ।

स्त्री १	भक्त २	राष्ट्र ३	अवनि ४	
क्रोध ०	मान ४	माया ८	लोभ १२	
स्पर्शन ०	रसना १६	घ्राण ३२	चक्षु ४८	श्रोत्र ६४

ऐसें यंत्र करि पूर्वं जैसें विधान कह्या, तैसें इहां भी नष्ट, समुद्दिष्ट का ज्ञान करना ।

तहां नष्ट का उदाहरण – जैसें पंद्रहवां आलाप कैसा है ?

ऐसा प्रश्न होतें विकथा, कषाय, इंद्रियनि के जिस-जिस कोठा के अंक वा शून्य मिलाए, सो पंद्रह संख्या होइ, तिस-तिस कोठा कौं प्राप्त विकथादिक जोड़ें, राष्ट्रकथालापी-लोभी-स्पर्शन इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान ऐसा तिस पंद्रहवां आलाप कौं कहै ।

तथा दूसरा उदाहरण – तीसवां आलाप कैसा है ?

असा प्रश्न होतें विकथा, कषाय, इंद्रिय के जिस-जिस कोठा के अंक जोड़ें सो तीस संख्या होइ, तिस-तिस कोठा कों प्राप्त विकथादि प्रमाद जोड़ें, भक्तकथा-लापी-लोभी-रसना इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा तिस तीसवां आलाप को कहै ।

अब उद्दिष्ट का उदाहरण कहिए हैं – स्त्रीकथालापी-मानी-घ्राण इंद्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा आलाप केथवां है ?

असा प्रश्न होतें इस आलाप विषैं जो-जो विकथादि प्रमाद कह्या है, तींह-तींह प्रमाद का कोठा विषैं जो-जो अंक एक, च्यारि, बत्तीस, लिखे हैं; तिनकौं जोडें, सैंतीस होइ, तातैं सो आलाप सैंतीसवां कहिए ।

बहुरि दूसरा उदाहरण अवनिपालकथालापी-लोभी-चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत-निद्रालु-स्नेहवान असा आलाप कैथवां है ?

तहां इस आलाप विषैं जे प्रमाद कहे, तिनके कोठानि विषैं प्राप्त च्यारि, बारह, अड़तालीस अंक मिलाएं, जो संख्या चौंसठि होइ, सोई तिस आलाप कौं चौसठिवां कहै, असें ही अन्य आलाप पूछें भी विधान करना ।

असें मूल प्रमाद पांच, उत्तर प्रमाद पंद्रह, उत्तरोत्तर प्रमाद असी, इनका यथासंभव संख्यादिक पांच प्रकारनि कौं निरूपण करि ।

अब और प्रमाद की संख्या का विशेष कौं जनावैं हैं, सो कहैं हैं । स्त्री की सो स्त्रीकथा, धनादिरूप अर्थकथा, खाने की सो भोजन कथा, राजानि की सो राज-कथा चोर की सो चोरकथा, वैर करणहारी सो वैरकथा, पराया पाखंडादिरूप सो परपाखंडकथा, देशादिक की सो देशकथा, कहानी इत्यादि भाषाकथा, गुण रोकनेरूप गुणबंधकथा, देवी की सो देवीकथा, कठोररूप निष्ठुरकथा, दुष्टतारूप परपैशून्यकथा, कामादिरूप कंदर्पकथा, देशकाल विषैं विपरीत सो देशकालानुचितकथा, निर्लज्जता-दिरूप भंडकथा, मूर्खतारूप मूर्खकथा, अपनी बढाईरूप आत्मप्रशंसाकथा, पराई निंदा रूप परपरिवादकथा, पराई घृणारूप परजुगुप्साकथा, पर कौं पीड़ा देनेरूप परपीड़ा कथा, लड़नेरूप कलहकथा, परिग्रह कार्यरूप परिग्रहकथा, खेती आदि का आरंभरूप कृष्याद्यारंभकथा, संगीत वादित्रादिरूप संगीतवादित्रादि कथा – असें विकथा पचीस भेदसंयुक्त है ।

बहुरि सोलह कषाय अर नव नो कषाय भेद करि कषाय पचीस हैं । बहुरि स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र मन नाम धारक इंद्रिय छह हैं । बहुरि स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला भेद करि निद्रा पांच हैं । बहुरि स्नेह, मोह भेद करि प्रणय दोय हैं । इनकौं परस्पर गुणैं, पांचसै अधिक सैंतीस हजार प्रमाण हो हैं (३७५००) । ए भी मिथ्यादृष्टि आदि प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यंत प्रवर्ते हैं । जे बीस प्ररूपणा, तिनि विषैं यथासंभव बंध का हेतुपणाकरि पूर्वोक्त संख्या आदि पांच प्रकार लीए जैनागम तैं अविरुद्धपनें जोडने ।

अब प्रमादनि के साढ़ा सैंतीस हजार भेदनि विषैं संख्या, दोय प्रकार प्रस्तार, तिन प्रस्तारनि की अपेक्षा अक्षसंचार, नष्ट, समुद्दिष्ट पूर्वोक्त विधान तैं यथासंभव करना ।

बहुरि गूढ यंत्र करने का विधान न कह्या, सो गूढ यंत्र कैसे होइ ?

तातैं इहां भाषा विषैं गूढ यंत्र करने का विधान कहिए है । जाकौं जानैं, जाका चाहिए, ताका गूढ यंत्र कर लीजिये । तहां पहिले प्रथम प्रस्तार की अपेक्षा कहिए है । जाका गूढ यंत्र करना होइ, तिस विवक्षित के जे मूलभेद जितने होंइ, तितनी पंक्ति का यंत्र करना । तहां तिन मूल भेदनि विषैं अंत का मूलभेद होइ, ताकी पंक्ति सबनि के ऊपरि करनी । तहां तिस मूल भेद के जे उत्तर भेद होंहि, तितने कोठे करने । तिन कोठानि विषैं तिस मूल भेद के जे उत्तर भेद होंहि, ते क्रम तैं लिखने । बहुरि तिनही प्रथमादि कोठानि विषैं एक, दोय इत्यादि क्रम तैं एक-एक बधता का अंक लिखना । बहुरि ताके नीचें जो अंत भेद तैं पहला उपांत मूल भेद होइ, ताकी पंक्ति करनी । तहां उपांत मूल भेद के जेते उत्तर भेद होइ तिनके कोठे करने । तहां उपान्त मूल भेद के उत्तर भेदनि कौं क्रम तैं लिखने । बहुरि तिनहीं कोठानि विषैं प्रथम कोठा विषैं बिंदी लिखनी । दूसरे कोठा विषैं ऊपरि की पंक्ति का अंत का कोठा विषैं जेते का अंक होइ, सो लिखना । बहुरि तृतीयादि कोठानि विषैं दूसरा कोठा विषैं जेते का अंक लिख्या, तितना-तितना ही बधाई-बधाई क्रम तैं लिखने । बहुरि ताके नीचें-नीचें जे उपांत तैं पूर्वं मूल भेद होंइ, ताकौं आदि देकरि आदि के मूल भेद पर्यंत जे मूल भेद होंइ, तिनकी पंक्ति करनी । तहां तिनके जेते-जेते उत्तर भेद होंइ, तितने-तितने कोठे करने । बहुरि तिन कोठानि विषैं अपना-मूल भेद के जे उत्तर भेद होंइ, ते क्रम तैं लिखने ।

बहुरि तिन सर्व पंक्तिनि के प्रथम कोठानि विषैं तौ बिंदी लिखनी, बहुरि द्वितीय कोठा विषैं अपनी पंक्ति तैं ऊपरि की सर्व पंक्ति के अंत का कोठानि विषैं जितने-जितने का अंक लिख्या होइ, तिनकौं जोडें जो प्रमाण होइ, तितने का अंक लिखना । बहुरि तृतीयादि कोठानि विषैं जेते का अंक दूसरा कोठा विषैं लिख्या होइ तितना-तितना ही क्रम तैं बधाइ-बधाइ लिखना । ऐसैं विधान करना ।

अब द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा कहिए है । जो विधान प्रथम प्रस्तार अपेक्षा लिख्या, सोई विधान द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा जानना । विशेष इतना – इहां विवक्षित का जो प्रथम मूल भेद होइ, ताकी पंक्ति ऊपरि करनी । ताके नीचैं दूसरे मूल भेद की पंक्ति करनी । ऐसैं ही नीचैं-नीचैं अंत के मूल भेद पर्यंत पंक्ति करनी । बहुरि तहां जैसैं अंत मूल भेद संबंधी ऊपरि पंक्ति तैं लगाइ क्रम वर्णन कीया था, तैसैं यहां प्रथम मूल भेद संबंधी पंक्ति तैं लगाइ क्रम तैं विधान जानना । अन्य या प्रकार साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि का प्रथम प्रस्तार अपेक्षा गूढ यंत्र कह्या ।

तहां कोऊ नष्ट पूछै कि एथवां आलाप भंग कौन ?

तहां जिस प्रमाण का आलाप पूछ्या, सो प्रमाण सर्व पंक्तिनि के जिस-जिस कोठानि के अंक वा बिंदी मिलाएं होइ, तिस-तिस कोठा विषैं जे-जे उत्तर भेद लिखे, तिनरूप सो पूछ्या हूवा आलाप जानना ।

बहुरि कोई उद्दिष्ट पूछै कि अमुक आलाप केथवां है ?

तौ तहां पूछे हुए आलाप विषैं जे-जे उत्तर भेद ग्रहे हैं, तिन-तिन उत्तर भेदनि के कोठानि विषैं जे-जे अंक वा बिंदी लिखी हैं, तिनकौं जोडें जो प्रमाण होइ, तेथवां सो पूछ्या हूवा आलाप जानना । अब इस विधान तैं साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि का प्रथम प्रस्तार अपेक्षा गूढ यंत्र लिखिए हैं ।

इहां प्रमाद के मूल भेद पांच हैं, तातैं पांच पंक्ति करनीं । तहां ऊपरि प्रणय पंक्ति विषैं दोय कोठे करि, तहां स्नेह मोह लिखे अर एक दोय का अंक लिखे, ताके नीचै निद्रा पंक्ति के पांच कोठे करि तहां स्त्यानगृद्धि आदि लिखे अर प्रथम कोठा विषैं बिंदी लिखी । द्वितीय कोठा विषैं ऊपरि की पंक्ति के अंत के कोठे में अंक दोय था, सो लिख्या । अर तृतीयादि कोठे विषैं तितने-तितने ही बधाइ च्यारि, छह, आठ लिखे । बहुरि ताके नीचैं इंद्रिय पंक्ति के छह कोठे करि, तहां स्पर्शनादि लिखे ।

अर प्रथम कोठा विषैं बिंदी, द्वितीय कोठा विषैं ऊपरि की दोय पंक्ति के अंत का कोठा के जोडें दश होंइ सो, अर तृतीयादि कोठानि विषैं सोई दश-दश बधाइ लिखे हैं। अर ताके नीचें कषाय पंक्ति विषैं पचीस कोठे करि, तहां अनंतानुबंधी क्रोधादि लिखे। अर प्रथम कोठा विषैं बिंदी, दूसरा कोठा विषैं ऊपरि की तीन पंक्ति का अंत के कोठानि का जोड साठि लिखि, तृतीयादि कोठानि विषैं तितने-तितने बधाइ लिखे। बहुरि ताके नीचें विकथा पंक्ति विषैं पचीस कोठा करि तहां स्त्रीकथादि लिखे। अर प्रथम कोठा विषैं बिंदी, द्वितीय कोठा विषैं ऊपरि की च्यारि पंक्तिनि के अंत कोठानि का जोड पंद्रह सै, तृतीयादि कोठानि विषैं तितने-तितने ही बधाइ लिखे हैं। असैं प्रथम प्रस्तार अपेक्षा यंत्र भया। (देखिए पृष्ठ १२५)

बहुरि साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि का द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा गूढ यंत्र लिखिए हैं।

तहां ऊपरि विकथा पंक्ति करी, तहां पचीस कोठे करि, तहां स्त्रीकथादि लिखे। अर एक, दोय आदि एक-एक बधता अंक लिखे, ताके नीचें-नीचें कषाय पंक्ति अर इंद्रिय पंक्ति अर निद्रा पंक्ति अर प्रणय पंक्ति विषैं क्रम तैं पचीस, पचीस, छह, पांच, दोय कोठे करि तहां अपने-अपने उत्तर भेद लिखे। बहुरि इन सब पंक्तिनि के प्रथम कोठा विषैं बिंदी लिखी। अर दूसरा कोठा विषैं अपनी-अपनी पंक्ति तैं ऊपरि क्रम तैं एक, दोय, तीन, च्यारि पंक्ति, तिनके अंत कोठा संबंधी अंकनि कौं जोडैं, पचीस, छह सै पचीस, साडा सैंतीस सै, अठारह हजार साल सै पचास लिखे। बहुरि तृतीयादि कोठानि विषैं जेते दूसरे कोठा विषैं लिखे, तितने-तितने बधाइ, क्रम तैं अंत कोठा पर्यंत लिखे हैं। असैं द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यंत्र जानना। (सोही यंत्र का कोठा की विधि वा अक्षर अंकादिक कही विधि मूजिब क्रम तैं यंत्र रचना विधि लिखि है।)[१] इसप्रकार साढा सैंतीस हजार प्रमाद का गूढ यंत्र कीए। (देखिए पृष्ठ १२६)

तहां प्रथम प्रस्तार अपेक्षा कोऊ पूछे कि इन भंगनि विषैं पैंतीस हजारवां भंग कौन है ?

तहां प्रणय पंक्ति का दूसरा कोठा, निद्रा पंक्ति का पांचवां कोठा, इंद्रिय पंक्ति का दूसरा कोठा, कषाय पंक्ति का नवमा कोठा, विकथा पंक्ति का चौबीसवां कोठा,

१ यह वाक्य छह हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिला।

०	स्त्री	अनंतानुबंधी क्रोध ०	स्पर्शन ०	स्त्यानगृद्धि ०	१ स्नेह
१५००	अर्थ	अनंतानुबंधी मान ६०	रसन १०	निद्रानिद्रा २	२ मोह
३०००	भोजन	अनंतानुबंधी माया १२०	घ्राण २०	प्रचलाप्रचला ४	
४५००	राजा	अनंतानुबंधी लोभ १८०	चक्षु ३०	निद्रा ६	
६०००	चोर	अप्रत्याख्यान क्रोध २४०	श्रोत्र ४०	प्रचला ८	
७५००	वैर	अप्रत्याख्यान मान ३००	मन ४०		
९०००	परपाखंड	अप्रत्याख्यान माया ३६०			
१०५००	देश	अप्रत्याख्यान लोभ ४२०			
१२०००	भाषा	प्रत्याख्यान क्रोध ४८०			
१३५००	गुणबंध	प्रत्याख्यान मान ५४०			
१५०००	देवी	प्रत्याख्यान माया ६००			
१६५००	निष्ठुर	प्रत्याख्यान लोभ ६६०			
१८०००	परपैशुन्य	संज्वलन क्रोध ७२०			
१९५००	कंदर्प	संज्वलन मान ७८०			
२१०००	देशकालानुचित	संज्वलन माया ८४०			
२२५००	भंड	संज्वलन लोभ ९००			
२४०००	मूर्ख	हास्य ९६०			
२५५००	आत्मप्रशंसा	रति १०२०			
२७०००	परपरिवाद	अरति १०८०			
२८५००	परजुगुप्सा	शोक ११४०			
३००००	परपीड़ा	भय १२००			
३१५००	कलह	जुगुप्सा १२६०			
३३०००	परिग्रह	पुरुष १३२०			
३४५००	कृष्याद्यारंभ	स्त्री १३८०			
३६०००	संगीतवाद्य	नपुंसक १४४०			

सर्व विधान पूर्वोक्त जानना, ऐसें गूढ यंत्र करना । तहां प्रमाद के साडे सैंतीस हजार भेद, तिनिका यंत्र लिखिए ।

१	स्त्री	अनंतानुबंधी क्रोध ०	स्पर्शन ०	स्त्यानगृद्धि ०	० स्नेह
२	अर्थ	अनंतानुबंधी मान २५	रसन ६२५	निद्रानिद्रा ३७५०	१८७५० मोह
३	भोजन	अनंतानुबंधी माया ५०	घ्राण १२५०	प्रचलाप्रचला ७५००	
४	राजा	अनंतानुबंधी लोभ ७५	चक्षु १८७५	निद्रा ११२५०	
५	चोर	अप्रत्याख्यान क्रोध १००	श्रोत्र २५००	प्रचला १५०००	
६	वैर	अप्रत्याख्यान मान १२५	मन ३१२५		
७	परपाखंड	अप्रत्याख्यान माया १५०			
८	देश	अप्रत्याख्यान लोभ १७५			
९	भाषा	प्रत्याख्यान क्रोध २००			
१०	गुणबंध	प्रत्याख्यान मान २२५			
११	देवी	प्रत्याख्यान माया २५०			
१२	निष्ठुर	प्रत्याख्यान लोभ २७५			
१३	परपैशून्य	संज्वलन क्रोध ३००			
१४	कंदर्प	संज्वलन मान ३२५			
१५	देशकाला- नुचित	संज्वलन माया ३५०			
१६	भंड	संज्वलन लोभ ३७५			
१७	मूर्ख	हास्य ४००			
१८	आत्मप्रशंसा	रति ४२५			
१९	परपरिवाद	अरति ४५०			
२०	परजुगुप्सा	शोक ४७५			
२१	परपीड़ा	भय ५००			
२२	कलह	जुगुप्सा ५२५			
२३	परिग्रह	पुरुष ५५०			
२४	कृष्याद्यारंभ	स्त्री ५७५			
२५	संगीतवाद्य	नपुंसक ६००			

चौवीस अनंकित स्थान घटाइए, तब च्यारि सै एक होंइ । बहुरि इनिकौं छह इंद्रिय करि गुणिए अर इहां अंतभेद का ग्रहण है, तातैं अनंकित न घटाइए, तब चौवीस सै छह होंइ । बहुरि इनकौं पांच निद्रा करि गुणिए अर इहां चौथी निद्रा का ग्रहण है, तातैं याके परैं एक अनंकित स्थान है, ताकौं घटाइए, तब बारह हजार गुणतीस होंइ । याकौं दोय प्रणय करि गुणिए अर इहां प्रथम भेद का ग्रहण है; तातैं याके परैं एक अनंकित स्थान घटाइए, तब चौवीस हजार सत्तावन होंइ, ऐसैं स्नेहवान-निद्रालु-मन के वशीभूत-अनंतानुबंधीक्रोधयुक्त-मूर्खकथालापी ऐसा पूछ्या हुवा आलाप चौवीस हजार सत्तावनवां जानना । याही प्रकार अन्य उद्दिष्ट साधने । बहुरि जैसें प्रथम प्रस्तार अपेक्षा विधान कह्या; तैसें ही द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यथा-संभव नष्ट, उद्दिष्ट ल्यावने का विधान जानना । ऐसें साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनि के प्रकार जानने ।

बहुरि याही प्रकार अठारह हजार शील भेद, चौरासी लाख उत्तर गुण, मतिज्ञान के भेद वा पाखंडनि के भेद वा जीवाधिकरण के भेद इत्यादिकनि विषैं जहां अक्षसंचार करि भेदनि की पलटनी होइ, तहां संख्यादिक पांच प्रकार जानने । विशेष इतना पूर्वैं प्रमादनि की अपेक्षा वर्णन कीया है । इहां जाका विवक्षित वर्णन होइ, ताकी अपेक्षा सर्वविधान करना । तहां जैसैं प्रमादनि के विकथादि मूलभेद कहे हैं, तैसें विवक्षित के जेते मूलभेद होइ, ते कहने । बहुरि जैसें प्रमाद के मूल भेदनि के स्त्रीकथादिक उत्तरभेद कहे हैं, तैसैं विवक्षित के मूलभेदनि के जे उत्तर भेद हो हैं, ते कहने । बहुरि जैसें प्रमादनि के आदि-अंतादिरूप मूलभेद ग्रहि विधान कह्या है, तैसें विवक्षित के जे आदि-अंतादि मूलभेद होंइ, तिनकौ ग्रहि विधान करना । बहुरि जैसें प्रमाद के मूलभेद-उत्तरभेद का जेता प्रमाण था, तितना ग्रहण कीया । तैसें विवक्षित के मूल भेद वा उत्तर भेदनि का जेता-जेता प्रमाण होइ, तितना ग्रहण करना । इत्यादि संभवते विशेष जानि, संख्या अर दोय प्रकार प्रस्तार अर तिन प्रस्तारनि की अपेक्षा अक्षसंचार अर नष्ट अर समुद्दिष्ट ए पांच प्रकार हैं, ते यथा-संभव साधन करने ।

तहां उदाहरण – तत्त्वार्थसूत्र का षष्टम अध्याय विषैं जीवाधिकरण के वर्णन स्वरूप ऐसा सूत्र है –

"आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकश:" ।

इस सूत्र विषें संरंभ, समारंभ, आरंभ – ए तीन; अर मन, वचन, काय – ए योग तीन; अर कृत, कारित, अनुमोदित – ए तीन; अर क्रोध, मान, माया, लोभ ए कषाय च्यारि; इनके एक-एक मूल भेद के एक-एक उत्तर भेद कौं होतें अन्य सर्व मूल भेदनि के एक-एक उत्तर भेद संभवै हैं। तातें क्रम तें ग्रहे, इनका परस्पर गुणने तें एक सौ आठ भेद हो हैं, सो यहु संख्या जानना।

बहुरि पहला-पहला प्रमाण का विरलन करि ताके एक-एक के ऊपरी आगला प्रमाण पिंड कौं स्थापैं, प्रथम प्रस्तार हो हैं। बहुरि पहला-पहला प्रमाण पिंड की संख्या कौं आगला मूल भेद के उत्तर भेद प्रमाण स्थानकनि विषें स्थापि, तिनके ऊपरि तिनि उत्तर भेदनि कौं स्थापै, द्वितीय प्रस्तार हो है। (देखिए पृष्ठ १३० पर)

बहुरि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा अंत का मूल भेद तें लगाय आदि भेद पर्यन्त अर द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा आदि मूल भेद तें लगाय अंत भेद पर्यन्त क्रम तें उत्तर भेदनि का अंत पर्यन्त जाइ-जाइ बाहुडना का अनुक्रम लीए उत्तर भेदनि के पलटनेरूप अक्ष संचार जानना। **'बहुरि सगमाणेहिं विभत्ते'** इत्यादि पूर्वोक्त सूत्र करि नष्ट का विधान करिए।

तहां उदाहरण – प्रथम प्रस्तार अपेक्षा कोउ पूछै कि पचासवां आलाप कौन है?

तहां पचास कौं पहलैं च्यारि कषाय का भाग दीए, बारह पाए, अर अवशेष दोय रहै, तातैं दूसरा कषाय मान ग्रहना। बहुरि अवशेष बारह विषैं एक जोड़ि कृतादि तीन का भाग दीए, च्यारि पाए, अवशेष एक रह्या, तातैं पहला भेद कृत जानना। बहुरि पाए च्यारि विषैं एक जोड़ि, योग तीन का भाग दीए, एक पाया, अवशेष दोय, सो दूसरा वचन योग ग्रहना। बहुरि पाया एक विषैं एक जोड़ संरंभादि तीन भाग दीए किछू भी न पाया, अवशेष दोय, सो दूसरा भेद समारंभ ग्रहना। ऐसैं पूछ्या हुवा पचासवां आलाप मान कषायकृत वचन समारंभ ऐसा भंग रूप हो है। ऐसैं ही अन्य नष्ट साधने।

बहुरि **'संठाविदूणरूवं'** इत्यादि पूर्वोक्त सूत्र करि उद्दिष्ट का विधान करिए। तहां उदाहरण।

प्रश्न – जो माया कषाय कारित मन आरंभ ऐसा आलाप केथवां है?

यह जीवाधिकरण का प्रथम प्रस्तार है । यहां संरंभादिक की प्रथम अक्षर की सहनानी है । ऊपरि च्यारि कषायनि की सहनानी है ।

४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म	कृ	का	म
म	म	म	व	व	व	का	का	का	म	म	म	व	व	व	का	का	का	म	म	म	व	व	व	का	का	का
सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	स	स	स	स	स	स	स	स	स	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ

बहुरि यह द्वितीय प्रस्तार है । इहां क्रोधादि कषायनि विषैं क्रम तैं सत्ताईस-सत्ताईस भंग कहने ।

क्रोध	मान	माया	लोभ
१	१	१	१
२७	२७	२७	२७

तहां प्रथम एक स्थापि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा उपरि तैं संरंभादि तीन करि गुणी, इहां अंतस्थान का ग्रहण है, तातैं अनंकित कौं न घटाए, तीन ही भए। बहुरि इनकौं तीन योग करि गुणि, इहां वचन, काय ए दोय अनंकित घटाए सात भए। बहुरि इनकौं कृतादि तीन करि गुणि, अनुमोदन अनंकित स्थान घटाए, बीस ही हैं। बहुरि इनकौं च्यारि कषाय करि गुणिए, एक लोभ अनंकित स्थान घटाए गुण्यासी हो हैं। ऐसा पूछ्या हुवा आलाप गुण्यासीवां है; ऐसें ही अन्य उद्दिष्ट साधने। बहुरि इस ही प्रकार तैं द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा भी नष्ट-उद्दिष्ट समुद्दिष्ट साधने। बहुरि पूर्वं जो विधान कह्या है, तातैं याके गूढयंत्र ऐसैं करने।

प्रथम प्रस्तार अपेक्षा जीवाधिकरण का गूढयंत्र।

क्रोध १	मान २	माया ३	लोभ ४
कृत ०	कारित ४	अनुमोदित ८	
मन ०	वचन १२	काय २४	
संरंभ ०	समारंभ ३६	आरंभ ७२	

द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा जीवाधिकरण का गूढयंत्र।

संरंभ १	समारंभ २	आरंभ ३	
मन ०	वचन ३	काय ६	
कृत ०	कारित ९	अनुमोदित १८	
क्रोध ०	मान २७	माया ५४	लोभ ८१

तहां नष्ट पूछै तौ जैसें च्यारों पंक्तिनि के जिस-जिस कोठा के अंक मिलाए पूछ्या हुवा प्रमाण मिलै, तिस-तिस कोठा विषैं स्थित भेदरूप आलाप कहना। जैसैं साठिवां आलाप पूछै तौ च्यारि, आठ, बारह, छत्तीस अंक जोडे साठि अंक होइ।

तातैं इन अंक संयुक्त कोठानि के भेद ग्रहैं, लोभ अनुमोदित वचन समारंभ असा आलाप कहिए ।

बहुरि उद्दिष्ट पूछै तौ, तिस आलाप विषैं कहे भेद संयुक्त कोठेनि के अंक मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तेथवां आलाप कहना । जैसैं पूछया कि मान कृत काय आरंभ केथवां आलाप है ? तहां इस आलाप विषैं कहे भेद संयुक्त कोठेनि के दोय, बिंदी, चौवीस, बहत्तरि ए अंक जोडि, अठ्याणवैवां आलाप है; असा कहना । याही प्रकार प्रथम प्रस्तार अपेक्षा अन्य नष्ट-समुद्दिष्ट वा दूसरा प्रस्तार अपेक्षा ते नष्ट-समुद्दिष्ट साधन करने । असें ही शील भेदादि विषैं यथासंभव साधन करना । या प्रकार प्रमत्तगुणस्थान विषैं प्रमाद भंग कहने का प्रसंग पाइ संख्यादि पांच प्रकारनि का वर्णन करि प्रमत्तगुणस्थान का वर्णन समाप्त किया ।

आगैं अप्रमत्त गुणस्थान के स्वरूप कौं प्ररूपै हैं –

संजलणणोकसायाणुदयो मंदो जदा तदा होदि ।
अपमत्तगुणो तेण य, अपमत्तो संजदो होदि ।।४५।।

संज्वलननोकषायाणामुदयो मंदो यदा तदा भवति ।
अप्रमत्तगुणस्तेन च, अप्रमत्तः संयतो भवति ।।४५।।

टीका – यदा कहिए जिस काल विषैं संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ च्यारि कषाय अर हास्यादि नव नोकषाय इनका यथासंभव उदय कहिए फल देनेरूप परिणमन, सो मंद होइ, प्रमाद उपजावने की शक्ति करि रहित होइ, तदा कहिए तींहि काल विषैं अंतर्मुहूर्त पर्यंत जीव कैं अप्रमत्तगुण कहिए अप्रमत्तगुणस्थान हो है, तींहि कारणकरि तिस अप्रमत्त गुणस्थान संयुक्त संयत कहिए सकलसंयमी, सो अप्रमत्तसंयत है । चकार करि आगैं कहिए हैं जे गुण, तिनकरि संयुक्त है ।

आगैं अप्रमत्त संयत के दोय भेद हैं; स्वस्थान अप्रमत्त, सातिशय अप्रमत्त । तहां जो श्रेणी चढने कौं सन्मुख नाहीं भया, सो स्वस्थान अप्रमत्त कहिए । बहुरि जो श्रेणी चढने कौं सन्मुख भया, सो सातिशय अप्रमत्त कहिए ।

तहां स्वस्थान अप्रमत्त संयत के स्वरूप कौं निरूपै हैं –

णट्ठासेसपमादो, वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी ।
अणुवसमओ अखवओ, झाणणिलीणो हु अपमत्तो ॥ ४६ ॥[1]

नष्टाशेषप्रमादो, व्रतगुणशीलावलिमंडितो ज्ञानी ।
अनुपशमकः अक्षपको, ध्याननिलीनो हि अप्रमत्तः ॥ ४६ ॥

टीका – जो जीव नष्ट भए हैं समस्त प्रमाद जाके असा होइ, बहुरि व्रत, गुण, शील इनकी आवली - पंक्ति, तिनकरि मंडित होइ – आभूषित होइ, बहुरि सम्यग्ज्ञान उपयोग करि संयुक्त होइ, बहुरि धर्मध्यान विषै लीन है मन जाका असा होइ, असा अप्रमत्त संयमी यावत् उपशम श्रेणी वा क्षपक श्रेणी के सन्मुख चढने कौं न प्रवर्तै, तावत् सो जीव प्रकट स्वस्थान अप्रमत्त है; असा कहिए । इहां ज्ञानी ऐसा विशेषण कह्या है, सो जैसें सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र मोक्ष के कारण हैं, तैसें सम्यक्ज्ञान कैं भी मोक्ष का कारणपना कौं सूचै है ।

भावार्थ – कोऊ जानैगा कि चतुर्थ गुणस्थान विषै सम्यक्त्व का वर्णन कीया, पीछें चारित्र का कीया, सो ए दोय ही मोक्षमार्ग हैं; तातैं ज्ञानी असा विशेषण कहि सम्यग्ज्ञान भी इनि की साथि ही मोक्ष का कारण है असा अभिप्राय दिखाया है ।

आगै सातिशय अप्रमत्तसंयत के स्वरूप कौं कहै हैं –

इगवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापवत्तं, करणं तु करेदि अपमत्तो ॥ ४७ ॥

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तेषु ।
प्रथममधःप्रवृत्तं, करणं तु करोति अप्रमत्तः ॥ ४७ ॥

टीका – इहां विशेष कथन है; सो कैसें है ? सो कहिए है – जो जीव समय-समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धता करि वर्धमान होइ, मंदकषाय होने का नाम विशुद्धता है; सो प्रथम समय की विशुद्धता तें दूसरे समय की विशुद्धता अनंतगुणी, तातैं तीसरे समय की अनन्त गुणी, असें समय-समय विशुद्धता जाकैं बधती होइ, असा जो

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८०, गाथा ११५

वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव, सो प्रथम ही अनंतानुबंधी के चतुष्क कौं अधःकरणादि तीन करणरूप पहिलें करि विसंयोजन करै है ।

विसंयोजन कहा करै है ?

अन्य प्रकृतिरूप परिणमावनेरूप जो संक्रमण, ताका विधान करि इस अनंतानुबन्धी के चतुष्क के जे कर्म परमाणु, तिनकौं बारह कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमावै है ।

बहुरि ताके अनंतरि अंतर्मुहूर्तकाल ताईं विश्राम करि जैसा का तैसा रहि, बहुरि तीन करण पहिले करि, दर्शन मोह की तीन प्रकृति, तिन कौं उपशमाय, द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो है ।

अथवा तीनकरण पहिलें करि, तीन दर्शनमोह की प्रकृतिनि कौं खिपाइ, क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो है ।

बहुरि ताके अनंतर अंतर्मुहूर्त काल ताईं अप्रमत्त तैं प्रमत्त विषै प्रमत्त तैं अप्रमत्त विषैं हजारांबार गमनागमन करि पलटनि करै है । बहुरि ताके अनंतर समय-समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धता की वृद्धि करि वर्धमान होत संता इकईस चारित्र मोह की प्रकृतिनि के उपशमावने कौं उद्यमवंत हो है । अथवा इकईस चारित्र मोह की प्रकृति क्षपावने कौं क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उद्यमवंत हो है ।

भावार्थ – उपशम श्रेणी कौं क्षायिक सम्यग्दृष्टि वा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि दोऊ चढ़ैं अर क्षपक श्रेणी कौं क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही चढने कौं समर्थ है । उपशम सम्यग्दृष्टि क्षपक श्रेणी कौं नाहीं चढै है । सो यहु ऐसा सातिशय अप्रमत्तसंयत, सो अनंतानुबंधी चतुष्क बिना इकईस प्रकृतिरूप, तिस चारित्रमोह कौं उपशमावने वा क्षय करने कौं कारणभूत ऐसें जे तीन करण के परिणाम, तिन विषैं प्रथम अधःप्रवृत्तकरण कौं करै है; ऐसा अर्थ जानना ।

आगै अधःप्रवृत्तकरण का निरुक्ति करि सिद्ध भया ऐसा लक्षण कौं कहै हैं –

जह्मा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति ।
तह्मा पढमं करणं, अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं ॥४८॥

यस्मादुपरितनभावा, अधस्तनभावैः सदृशका भवंति ।
तस्मात्प्रथमं करणं, अधःप्रवृत्तिमिति निर्दिष्टम् ॥४८॥

टीका – जा कारण तें जिस जीव का ऊपरि-ऊपरि के समय संबंधी परिणामनि करि सहित, अन्य जीव के नीचे-नीचे के समय संबंधी परिणाम सदृश - समान हो हैं, ता कारण तें सो प्रथम करण अधःकरण है – ऐसा णिद्दिट्ठं कहिए परमागम विषैं प्रतिपादन कीया है ।

भावार्थ – तीनों करणनि के नाम नाना जीवनि के परिणामनि की अपेक्षा हैं । तहां जैसी विशुद्धता वा संख्या लीए किसी जीव के परिणाम ऊपरि के समय संबंधी होंइ, तैसी विशुद्धता वा संख्या लीए किसी अन्य जीव के परिणाम अधस्तन समय संबंधी भी जिस करण विषैं होंइ; सो अधःप्रवृत्त करण है । **अधःप्रवृत्त कहिए नीचले समय संबंधी परिणामनि की समानता कौं प्रवर्तैं ऐसें हैं करण कहिए परिणाम जा विषैं, सो अधःप्रवृत्तकरण** है । इहां करण प्रारंभ भए पीछैं घने-घने समय व्यतीत भए जे परिणाम होंहि, ते ऊपरि ऊपरि समय संबंधी जानने । बहुरि थोरे-थोरे समय व्यतीत भए जे परिणाम होंहि, ते अधस्तन-अधस्तन समय संबंधी जानने । सो नाना जीवनि कैं इनकी समानता भी होइ ।

ताका उदाहरण - जैसैं दोय जीव कैं एकै कालि अधःप्रवृत्तकरण का प्रारंभ करे, तहां एक जीव कैं द्वितीयादि घने समय व्यतीत भये, जैसैं संख्या वा विशुद्धता लीये परिणाम भये, तैसैं संख्या वा विशुद्धता लीये द्वितीय जीव कैं प्रथम समय विषैं भी होंइ । याही प्रकार अन्य भी ऊपरि नीचैं के समय संबंधी परिणामनि की समानता इस करण विषैं जानि याका नाम अधःप्रवृत्तकरण निरूपण कीया है ।

आगैं अधःप्रवृत्तकरण के काल का प्रमाण कौं चय का निर्देश के अर्थि कहै हैं –

अंतोमुहुत्तमेत्तो, तक्कालो होदि तत्थ परिणामा ।
लोगाणमसंखमिदा, उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥४९॥

अंतर्मुहूर्तमात्रस्तत्कालो भवति तत्र परिणामाः ।
लोकानामसंख्यमिता, उपर्युपरि सदृशवृद्धिगताः ॥४९॥

"मुहभूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि" इस सूत्र करि मुख आदिस्थान अर भूमि अंतस्थान, इनकौं जोडि, ताका आधा करि, ताकौं गच्छकरि गुणैं, पदधन कहिए सर्वधन हो है ।

बहुरि **'आदि अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे ।'** इस सूत्र करि आदि कौं अंतधन विषैं घटाएं, जेते अवशेष रहैं, तिनकौं वृद्धि जो चय, ताका भाग दीयैं, जो होइ, तामैं एक मिलाएं स्थानकनि का प्रमाणरूप पद वा गच्छ का प्रमाण आवै है । बहुरि **'पदकदिसंखेण भाजियं पचयं'** पद जो गच्छ, ताकी जो कृति कहिए वर्ग, ताका भाग सर्वधन कौं दीएं जो प्रमाण आवै, ताकूं संख्यात का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, सो चय जानना । सो इहां अधःकरण विषैं पहिलैं मुखादिक का ज्ञान न होइ तातैं असें कथन कीया है । बहुरि सर्वत्र सर्वधन कौं गच्छ का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तामैं मुख का प्रमाण घटाइ, अवशेष रहै, तिनकौं एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण का भाग दीए चय का प्रमाण हो है ।

अथवा **'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजितं प्रचयः'** इस वचन तैं सर्वस्थानक संबंधी आदिधन कौं सर्वधन विषैं घटाइ, अवशेष कौं गच्छ के प्रमाण का वर्ग विषैं गच्छ का प्रमाण घटाइ अवशेष रहै, ताका आधा जेता होय, ताका भाग दीयें चय का प्रमाण आवै है । बहुरि उत्तरधन कौं सर्वधन विषैं घटाएं, अवशेष रहै, ताकौं गच्छ का भाग दीएं मुख का प्रमाण आवै है ।

बहुरि **"व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं"** इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ कौं चय करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, ताकौं मुख का प्रमाण सहित जोडें, अंतधन हो है । बहुरि मुख अर अंतधन कौं मिलाइ ताका आधा कीएं मध्यधन हो है ।

बहुरि **'पदहतमुखमादिधनं'** इस सूत्र करि पद करि गुण्या हुवा मुख का प्रमाण, सो आदिधन हो है ।

बहुरि **"व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं"** इस सूत्र करि एक घाटि जो गच्छ, ताका आधा प्रमाण कौं चय करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, ताकौं गच्छ करि गुणैं, उत्तरधन हो है । सो आदिधन, उत्तरधन मिलाएं भी सर्वधन का प्रमाण हो

है । अथवा मध्यधन कौं गच्छ करि गुणें भी सर्वधन का प्रमाण आवै है । असैं श्रेणी व्यवहाररूप गणित का किंचित् स्वरूप प्रसंग पाइ कह्या ।

अब अधिकारभूत अधःकरण विषैं सर्वधन आदि का वर्णन करिए है । तहां प्रथम अंकसंदृष्टि करि कल्पनारूप प्रमाण लीएं दृष्टांतमात्र कथन करिए है । सर्व अधःकरण का परिणामनि की संख्यारूप सर्वधन तीन हजार बहत्तरि (३०७२) । बहुरि अधःकरण के काल का समयनि का प्रमाणरूप गच्छ सोलह (१६) । बहुरि समय-समय परिणामनि की वृद्धि का प्रमाणरूप चय च्यारि (४) । बहुरि इहां संख्यात का प्रमाण तीन (३) । अब उर्ध्व रचना विषैं धन ल्याइए है । सो युगपत् अनेक समय की प्रवृत्ति न होइ, तातैं समय संबंधी रचना ऊपरि-ऊपरि ऊर्ध्वरूप करिए है । तहां आदि धनादिक का प्रमाण ल्याइये है ।

'पदकदिसंखेण भाजियं पचयं' इस सूत्र करि सर्वधन तीन हजार बहत्तरी, ताकौं पद सोलह की कृति दोय सैं छप्पन, ताका भाग दीएं बारह होइ । अर ताकौं संख्यात का प्रमाण तीन, ताका भाग दीए च्यारि होइ । अथवा दोय सौ छप्पन कौं तिगुणा करि, ताका भाग सर्व धन कौं दीये भी च्यारि होइ सो समय-समय प्रति परिणामनि का चय का प्रमाण है । अथवा याकौं अन्य विधान करि कहिए है । सर्वधन तीन हजार बहत्तरि, ताकौं गच्छ का भाग दीएं एक सौ बाणवैं, तामैं आगैं कहिए है मुख का प्रमाण एक सौ बासठि, सो घटाइ तीस रहे । इनकौं एक घाटि गच्छ का आधा साढा सात, ताका भाग दीये च्यारि पाए, सो चय जानना ।

अथवा **'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजितं'** इस सूत्र करि आगैं कहिए है – आदिधन पचीस सैं बाणवै, तीहकरि रहित सर्वधन च्यारि सैं असी, ताकौं पद की कृति दोय सैं छप्पन विषैं पद सोलह घटाइ, अवशेष का आधा कीयें, एक सौ बीस होइ, ताका भाग दीये च्यारि पाये, सो चय का प्रमाण जानना ।

बहुरि **'व्येकपदार्धध्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ पंद्रह, ताका आधा साढा सात $\left(\frac{१५}{२}\right)$ ताकौं चय च्यारि, ताकरि गुणें तीस, ताकौं गच्छ सोलह करि गुणें, च्यारि सौ असी चयधन का प्रमाण हो है । बहुरि इस प्रचयधन करि सर्वधन तीन हजार बहत्तरि सो हीन कीये, अवशेष दोय हजार पांच

सै बाणवै रहे । इनकी पद सोलह, ताका भाग दीये एक सौ बासठि पाये, सोई प्रथम समय संबंधी परिणामनि की संख्या हो है । बहुरि यामैं एक-एक चय बधाये संते द्वितीय, तृतीयादि समय संबंधी परिणामनि की संख्या हो है । तहां द्वितीय समय संबंधी एक सौ छ्यासठ, तृतीय समय संबंधी एक सौ सत्तरि इत्यादि क्रम तैं एक-एक चय बधती परिणामनि की संख्या हो है । १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ ।

इहां अंत समय संबंधी परिणामनि की संख्यारूप अंतधन ल्याइये है ।

'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं' इस सूत्र तैं एक घाटि गच्छ पंद्रह, ताकौं चय च्यारि करि गुणे साठि, बहुरि यामैं आदि एक सौ बासठि करि युक्त कीएं दोय सै बाईस होइ; सोई अंत समय संबंधी परिणामनि का प्रमाण जानना । बहुरि यामैं एक चय च्यारि घटाएं दोय सै अठारह द्विचरम समय संबंधी परिणामनि का प्रमाण जानना । असैं कहै जो धन कहिए समय-समय संबंधी परिणामनि का प्रमाण, तिनकौं अधःप्रवृत्तकरण का प्रथम समय तैं लगाइ अंत समय पर्यन्त ऊपरि-ऊपरि स्थापन करने ।

आगे अनुकृष्टिरचना कहिए है - तहां नीचै के समय संबंधी परिणामनि के खंड, तिनके ऊपरि के समय संबंधी परिणामनि के जे खंडनि करि जो सादृश्य कहिए समानता, सो अनुकृष्टि असा नाम धरै है ।

भावार्थ - ऊपरि के अर नीचे के समय संबंधी परिणामनि के जे खंड, ते परस्पर समान जैसें होंइ, तैसें एक समय के परिणामनि विषैं खंड करना, तिसका नाम अनुकृष्टि जानना । तहां ऊर्ध्वगच्छ के संख्यातवां भाग अनुकृष्टि का गच्छ है, सो अंकसंदृष्टि अपेक्षा ऊर्ध्वगच्छ का प्रमाण सोलह, ताकौं संख्यात का प्रमाण च्यारि का भाग दीए जो च्यारि पाए; सोई अनुकृष्टि विषैं गच्छ का प्रमाण है । अनुकृष्टि विषैं खंडनि का प्रमाण इतना जानना । बहुरि ऊर्ध्व रचना का चय कौं अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीएं, अनुकृष्टि विषैं चय होइ, सो ऊर्ध्व चय च्यारि कौं अनुकृष्टि गच्छ च्यारि का भाग दीएं एक पाया; सोई अनुकृष्टि चय जानना । खंड-खंड प्रति बधती का प्रमाण इतना है । बहुरि प्रथम समय संबंधी समस्त परिणामनि का प्रमाण एक सौ बासठि, सो इहां प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि रचना विषैं सर्वधन जानना । बहुरि **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ तीन,

ताका आधा कौं चय एक करि गुणी अर गच्छ च्यारि करि गुणें छह होइ, सो इहां उत्तरधन का प्रमाण जानना। बहुरि इस उत्तरधन छह कौं (६) सर्वधन एक सौ बासठि (१६२) विषैं घटाएं, अवशेष एक सौ छप्पन रहे, तिनकौं अनुकृष्टि गच्छ च्यारि का भाग दीएं गुणतालीस पाए, सोई प्रथम समय संबंधी परिणामनि का जो प्रथम खण्ड, ताका प्रमाण है, सो यहु ही सर्व जघन्य खण्ड है; जातैं इस खण्ड तैं अन्य सर्व खंडनि के परिणामनि की संख्या अर विशुद्धता करि अधिकपनों संभवै है। बहुरि तिस प्रथम खंड विषैं एक अनुकृष्टि का चय जोडैं, तिसही के दूसरा खंड का प्रमाण चालीस हो है। अैसें ही तृतीयादिक अंत खंड पर्यंत तिर्यक् एक-एक चय अधिक स्थापनें। तहां तृतीय खंड विषैं इकतालीस अंत खंड विषैं बियालीस परिणामनि का प्रमाण हो है। ते ऊर्ध्वरचना विषैं जहां प्रथम समय संबंधी परिणाम स्थापे, ताकैं आगैं-आगैं बरोबरि ए खंड स्थापन करने। ए (खंड) एक समय विषैं युगपत् अनेक जीवनि के पाइए, तातैं इनिको बरोबरि स्थापन कीए हैं। बहुरि तातैं परैं ऊपरि द्वितीय समय का प्रथम खंड प्रथम समय का प्रथम खंड ३९ तैं एक अनुकृष्टि चय करि (१) एक अधिक हो है; तातैं ताका प्रमाण चालीस है। जातैं द्वितीय समय संबंधी परिणाम एक सो छघासठि, सो ही सर्वधन, तामें अनुकृष्टि का उत्तर धन छह घटाइ, अवशेष कौं अनुकृष्टि का गच्छ च्यारि का भाग दीयें, तिस द्वितीय समय का प्रथम खंड की उत्पत्ति संभवै है। बहुरि ताकैं आगैं द्वितीय समय के द्वितीयादि खंड, तें एक-एक चय अधिक संभवै हैं ४१, ४२, ४३। इहां द्वितीय समय का प्रथम खंड सो प्रथम समय का द्वितीय खंड करि समान है।

अैसें ही द्वितीय समय का द्वितीयादि खंड, ते प्रथम समय का तृतीयादि खंडनि करि समान हैं। इतना विशेष - जो द्वितीय समय का अंत का खंड प्रथम समय का सर्व खंडनि विषैं किसी खंड करि भी समान नाहीं। बहुरि तृतीयादि समयनि के प्रथमादि खंड द्वितीयादि समयनि के प्रथमादि खंडनि तैं एक विशेष अधिक हैं।

तहां तृतीय समय के ४१, ४२, ४३, ४४। चतुर्थ के ४२, ४३, ४४, ४५। पंचम समय के ४३, ४४, ४५, ४६। षष्ठम समय के ४४, ४५, ४६, ४७। सप्तम समय के ४५, ४६, ४७, ४८। अष्टम समय के ४६, ४७, ४८, ४९। नवमा समय के ४७, ४८, ४९, ५०। दशवां समय के ४८, ४९, ५०, ५१। ग्यारहवां समय के ४९, ५०, ५१, ५२। बारहवां समय के ५०, ५१, ५२, ५३। तेरहवां समय

के ५१, ५२, ५३, ५४। चौदहवां समय के ५२, ५३, ५४, ५५। पंद्रहवां समय के ५३, ५४, ५५, ५६। सोलहवां समय के ५४, ५५, ५६, ५७ खंड जानने।

जातैं ऊपरि-ऊपरि सर्वधन एक-एक ऊर्ध्व चय करि अधिक हैं। इहां सर्व जघन्य खंड जो प्रथम समय का प्रथम खंड, ताके परिणामनि के अर सर्वोत्कृष्ट खंड अंत समय का अंत का खंड, ताके परिणामनि के किस ही खंड के परिणामनि करि सहित समानता नाहीं है; जातैं अवशेष समस्त ऊपरि के वा नीचले समय संबंधी खंडनि का परिणाम पुंजनि कैं यथासंभव समानता संभवै है। बहुरि इहां ऊर्ध्व रचना विषै **'मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि'** इस सूत्र करि मुख एक सौ बासठि, अर भूमि दोय सौ बाइस, इनिकौं जोड़ि ३८४। आधा करि १९२ गच्छ, सोलह करि गुणैं सर्वधन तीन हजार बहत्तरी हो है। अथवा मुख १६२, भूमि २२२ कौं जोडै ३८४, आधा कीये मध्यधन का प्रमाण एक सौ बाणवै होइ, ताकौं गच्छ सोलह करि गुणै सर्वधन का प्रमाण हो है। अथवा **'पहधलसुखमादिधनं'** इस सूत्र करि गच्छ सोलह करि मुख एक सौ बासठि कौं गुणै, पचीस सै बाणवै सर्वसमय संबंधी आदि धन हो है। बहुरि उत्तरधन पूर्वै च्यारि सै असी कह्या है, इनि दोऊनि कौं मिलाएं सर्वधन का प्रमाण हो है। बहुरि गच्छ का प्रमाण जानने कौं **'आदी अंते सुध्दे वड्ढिहदे रूवसंजुदे ठाणे'** इस सूत्र करि आदि एक सौ बासठि, सो अंत दोय सै बाईस में घटाएं अवशेष साठि, ताकौं वृद्धिरूप चय च्यारि का भाग दीएं पंद्रह, तामैं एक जोडें गच्छ का प्रमाण सोलह आवै है। असें दृष्टांतमात्र सर्वधनादिक का प्रमाण कल्पना करि वर्णन कीया है, सो याका प्रयोजन यहु - जो इस दृष्टांत करि अर्थ का प्रयोजन नीकैं समझने में आवै।

अब यथार्थ वर्णन करिए है - सो ताका स्थापन असंख्यात लोकादिक की अर्थ-संदृष्टि करि वा संदृष्टि के अर्थि समच्छेदादि विधान करि संस्कृत टीका विषैं दिखाया है, सो इहां भाषा टीका विषैं आगैं संदृष्टि अधिकार जुदा कहैंगे, तहां इनिकी भी अर्थ-संदृष्टि का अर्थ-विधान लिखैंगे तहां जानना। इहां प्रयोजन मात्र कथन करिए है। आगैं भी जहां अर्थसंदृष्टि होय, ताका अर्थ वा विधान आगैं संदृष्टि अधिकार विषैं ही देख लेना। जायगा-जायगा संदृष्टि का अर्थ लिखने तैं ग्रंथ प्रचुर होइ, अर कठिन होइ; तातैं न लिखिए हैं। सो इहां त्रिकालवर्ती नाना जीव संबंधी समस्त अधः-प्रवृत्तकरण के परिणाम असंख्यात लोकमात्र हैं; सो सर्वधन जानना। बहुरि अधः-

प्रवृत्तकरण का काल अंतर्मुहूर्तमात्र, ताके जेते समय होंइ, सो इहाँ गच्छ जानना। बहुरि सर्वधन कौं गच्छ का वर्ग करि, ताका भाग दीजिए। बहुरि यथासंभव संख्यात का भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै; सो ऊर्ध्वचय जानना। बहुरि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण करि चय कौं गुणि, बहुरि गच्छ का प्रमाण करि गुणें जो प्रमाण आवै, सो उत्तरधन जानना। बहुरि इस उत्तरधन कौं सर्वधन विषें घटाइ, अवशेष कौं ऊर्ध्वगच्छ का भाग दीए, त्रिकालवर्ती समस्त जीवनि का अधःप्रवृत्तकरण काल के प्रथम समय विषें संभवते परिणामनि का पुंज का प्रमाण हो है। बहुरि याके विषें एक उर्ध्व चय जोडें, द्वितीय समय संबंधी नाना जीवनि के समस्त परिणामनि के पुंज का प्रमाण हो है। अैसें ही ऊपरि भी समय-समय प्रति एक-एक ऊर्ध्वचय जोडें, परिणाम पुंज का प्रमाण जानना।

तहां प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज विषें एक घाटि गच्छ प्रमाण चय जोडें अंत समय संबंधी नाना जीवनि के समस्त परिणामनि के पुंज का प्रमाण हो है; सो ही कहिए है – **'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंतधनं भवेत्'** इस करण सूत्र करि एक घाटि गच्छ का प्रमाण करि चय कौं गुणें जो प्रमाण होइ, ताकौं प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज प्रमाण विषें जोडें, अंत समय संबंधी परिणाम पुंज का प्रमाण हो है। बहुरि या विषें एक चय घटाए, द्विचरम समयवर्ती नाना जीव संबंधी समस्त विशुद्ध परिणाम पुंज का प्रमाण हो है। अैसें ऊर्ध्वरचना जो ऊपरि-ऊपरि रचना, तींहि विषें समय-समय संबंधी अधःप्रवृत्तकरण के परिणाम पुंज का प्रमाण कह्या।

भावार्थ – आगें कषायाधिकार विषें विशुद्ध परिणामनि की संख्या कहैंगे, तिस विषें अधःकरण विषें संभवते शुभलेश्यामय संज्वलन कषाय का देशघाती स्पर्धकनि का उदय संयुक्त विशुद्ध परिणामनि की संख्या त्रिकालवर्ती नाना जीवनि कैं असंख्यात लोकमात्र है। तिनि विषें जिनि जीवनि कौं अधःप्रवृत्तकरण मांडें पहला समय है, अैसे त्रिकाल संबंधी अनेक जीवनि कैं जे परिणाम संभवैं, तिनिके समूह कौं प्रथम समय परिणाम पुंज कहिए। बहुरि जिनि जीवनि कौं अधःकरण मांडें, दूसरा समय भया, अैसे त्रिकाल संबंधी अनेक जीवनि कैं जे परिणाम संभवैं, तिनिकैं समूह कौं द्वितीय समय परिणाम पुंज कहिए। अैसें ही क्रम तैं अन्त समय पर्यंत जानना।

तहां प्रथमादि समय संबंधी परिणाम पुंज का प्रमाण श्रेणी व्यवहार गणित का विधान करि जुदा-जुदा कह्या; सो सर्वसमय संबंधी परिणाम पुंजनि कौं जोडें

असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होइ है। बहुरि इन अधःप्रवृत्तकरण काल का प्रथमादि समय संबंधी परिणामनि विषैं त्रिकालवर्ती नाना जीव संबन्धी प्रथम समय के जघन्य मध्यम, उत्कृष्ट भेद लीएं जो परिणाम पुंज कह्या, ताके अधःप्रवृत्तकरण काल के जेते समय, तिनकौं संख्यात का भाग दीएं जेता प्रमाण आवै, तितना खंड करिए। ते खंड निर्वर्गणा कांडक के जेते समय, तितने हो हैं। वर्गणा कहिए समयनि की समानता, तीहिकरि रहित जे ऊपरि-ऊपरि समयवर्ती परिणाम खंड, तिनका जो कांडक कहिए पर्व प्रमाण; सो निर्वर्गणा कांडक है। तिनिके समयनि का जो प्रमाण सो अधःप्रवृत्तकरण कालरूप जो ऊर्ध्वगच्छ, ताके संख्यातवे भागमात्र हैं, सो यहु प्रमाण अनुकृष्टि के गच्छ का जानना। इस अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण एक-एक समय संबंधी परिणामनि विषैं खंड हो हैं। बहुरि ते खंड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक हैं। तहां ऊर्ध्व रचना विषैं जो चय का प्रमाण कह्या, ताकौं अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीए जो पाइए; सो अनुकृष्टि के चय का प्रमाण है।

बहुरि **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि अनुकृष्टि के गच्छ का आधा प्रमाण कौं अनुकृष्टि चय करि गुणी, बहुरि अनुकृष्टि गच्छ करि गुणें जो प्रमाण होइ; सो अनुकृष्टि का चयधन हो है। याकौं ऊर्ध्व रचना विषैं जो प्रथम समय संबंधी समस्त परिणाम पुंज का प्रमाणरूप सर्वधन, तींहि विषैं घटाइ, अवशेष जो रहै, ताकौं अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीएं जो प्रमाण होइ; सोई प्रथम समय संबंधी प्रथम खंड का प्रमाण है। बहुरि या विषैं एक अनुकृष्टि चय कौं जोडें, प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणामनि के द्वितीय खंड का प्रमाण हो है। असैं ही तृतीयादिक खंड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक अपने अंत खंड पर्यन्त क्रम तैं स्थापन करने।

तहां अनुकृष्टि का प्रथम खंड विषैं एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ का प्रमाण अनुकृष्टि चय जोडें जो प्रमाण होइ, सोई अंत खंड का प्रमाण जानना। यामैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं, प्रथम समय संबंधी द्विचरम खंड का प्रमाण हो है। असैं प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंजरूप खंड संख्यात आवली प्रमाण हैं, ते क्रम तैं जानने। इहां तीन बार संख्यात करि गुणित आवली प्रमाण जो अधःकरण का काल, ताके संख्यातवे भाग खंडनि का प्रमाण, सो दोइ बार संख्यात करि गुणित आवली प्रमाण है, असा जानना।

बहुरि द्वितीय समय संबंधी परिणाम पुंज का प्रथम खंड है, सो प्रथम समय संबंधी प्रथम खंड तैं अनुकृष्टि चय करि अधिक है। काहे तैं ? जातैं द्वितीय समय संबंधी समस्त परिणाम पुंजरूप जो सर्वधन, तामैं पूर्वोक्त प्रमाण अनुकृष्टि का चय-धन घटाएं अवशेष रहै, ताकौं अनुकृष्टि का भाग दीएं, सो प्रथम खंड सिद्ध हो है। बहुरि इस द्वितीय समय का प्रथम खंड विषैं एक अनुकृष्टि चय कौं जोडें, द्वितीय समय संबंधी परिणामनि का द्वितीय खंड का प्रमाण हो है। ऐसैं तृतीयादिक खंड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक स्थापन करने। तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय द्वितीय समय परिणाम का प्रथम खंड विषैं जोडैं, द्वितीय समय संबंधी अंत खंड का प्रमाण हो है। यामैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं द्वितीय समय संबंधी द्विचरम खंड का प्रमाण हो है। बहुरि इहां द्वितीय समय का प्रथम खंड अर प्रथम समय का द्वितीय खंड, ए दोऊ समान हैं। तैसैं ही द्वितीय समय का द्वितीयादि खंड अर प्रथम समय का तृतीयादि खण्ड दोऊ समान हो हैं। इतना विशेष द्वितीय समय का अंत खंड, सो प्रथम समय का खंडनि विषैं किसीही करि समान नाहीं। बहुरि याके आगैं ऊपरि तृतीयादि समयनि विषैं अनुकृष्टि का प्रथमादिक खंड, ते नीचला समय सम्बन्धी प्रथमादि अनुकृष्टि खंडनि तैं एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक हैं। ऐसैं अधःप्रवृत्तकरण काल का अंत समय पर्यन्त जानने। तहां अन्त समय का समस्त परिणामरूप सर्वधन विषैं अनुकृष्टि का चयधन कौं घटाई, अवशेष कौं अनुकृष्टि गच्छ का भाग दीएं, अंत समय सम्बन्धी परिणाम का प्रथम अनुकृष्टि खंड हो है। यामैं एक अनुकृष्टि चय जोडें, अंत समय का द्वितीय अनुकृष्टि खंड हो है। ऐसैं तृतीयादि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय करि अधिक जानने। तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टि चय अन्त समय सम्बन्धी परिणाम का प्रथम खण्ड विषैं जोडैं, अंत समय सम्बन्धी अंत अनुकृष्टि खण्ड के परिणाम पुंज का प्रमाण हो है। बहुरि यामैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं, अन्त समय सम्बन्धी द्विचरम खण्ड के परिणाम पुंज का प्रमाण हो है। ऐसैं अंत समय संबंधी अनुकृष्टि खंड, ते अनुकृष्टि के गच्छ प्रमाण हैं; ते बरोबरि आगैं-आगैं क्रम तैं स्थापने। बहुरि अंत समय संबंधी अनुकृष्टि का प्रथम खंड विषैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं, अवशेष द्विचरम समय संबंधी प्रथम खंड का परिणाम पुंज का प्रमाण हो है। बहुरि यामैं एक अनुकृष्टि चय जोडें, द्विचरम समय संबंधी द्वितीय खंड का परिणाम पुंज हो है। बहुरि ऐसैं ही तृतीयादि खंड एक-एक चय अधिक जानने। तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टि चय द्विचरम

समय संबंधी परिणाम का प्रथम खण्ड विषैं जोडै, द्विचरम समय संबंधी अनुकृष्टि का अंत खंड का परिणाम पुंज का प्रमाण हो है । बहुरि यामैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं, तिस ही द्विचरम समय का द्विचरम खंड का प्रमाण हो है । ऐसैं अध:प्रवृत्तकरण के काल का द्विचरम समय संबंधी अनुकृष्टि खंड, ते अनुकृष्टि का गच्छप्रमाण हैं, ते क्रम तैं एक-एक चय अधिक स्थापन करने । ऐसैं तिर्यक्रचना जो बरोबर रचना, तींहि विषैं एक-एक समय संबंधी खंडनि विषैं परिणामनि का प्रमाण कह्या ।

भावार्थ - पूर्वे अध:करण का एक-एक समय विषैं संभवते नाना जीवनि के परिणामनि का प्रमाण कह्या था । अब तिस विषैं जुदे जुदे संभवते ऐसे एक-एक समय संबंधी खंडनि विषैं परिणामनि का प्रमाण इहां कह्या है । सो ऊपरि के अर नीचैं के समय संबंधी खंडनि विषैं परस्पर समानता पाइए है । तातैं अनुकृष्टि ऐसा नाम इहां संभवै है । जितनी संख्या लीयें ऊपरि के समय विषैं परिणाम खंड हो हैं, तितनी संख्या लीये नीचले समय विषैं भी परिणाम खण्ड होइ हैं । ऐसैं नीचले समय संबंधी परिणाम खंड तैं ऊपरि के समय संबंधी परिणाम खण्ड विषैं समानता जानि इसका नाम अध:प्रवृत्तकरण कह्या है ।

बहुरि इहां विशेष है, सो कहिए है । प्रथम समय संबंधी अनुकृष्टि का प्रथम खण्ड, सो सर्व तैं जघन्य खण्ड है; जातैं सर्वखण्डनि तैं याकी संख्या घाटि है । बहुरि अंतसमय संबंधी अंत का अनुकृष्टि खण्ड, सो सर्वोत्कृष्ट है; जातैं याकी संख्या सर्व खण्डनि तैं अधिक है; सो इन दोऊनि कै कहीं अन्य खण्ड करि समानता नाहीं है । बहुरि अवशेष ऊपरि समय संबंधी खण्डनि के नीचले समय संबंधी खण्डनि सहित अथवा नीचले समय संबंधी खण्डनि कैं ऊपरि समय संबंधी खण्डनि सहित यथासंभव समानता है । तहां द्वितीय समय तैं लगाय द्विचरम समय पर्यंत जे समय, तिनका पहला-पहला खण्ड अर अंत समय का प्रथम खण्ड तैं लगाइ द्विचरम खण्ड पर्यंत खण्ड, ते अपने-अपने ऊपरि के समय संबंधी खंडनि करि समान नाहीं हैं । तातैं असदृश हैं, सो द्वितीयादि द्विचरम पर्यन्त समय संबंधी प्रथम खण्डनि की ऊर्ध्वरचना कीएं । अर ऊपरि अंत समय के प्रथमादि द्विचरम पर्यन्त खण्डनि की तिर्यक् रचना कीएं अंकुश के आकार रचना हो है । तातैं याकौं अंकुश रचना कहिए ।

यहु अंक संदृष्टि अपेक्षा अंकुश रचना															
	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०
	५५														
	५६														

बहुरि द्वितीय समय तैं लगाइ द्विचरम समय पर्यंत समय संबंधी अंत-अंत के खण्ड अर प्रथम समय संबंधी प्रथम खंड बिना अन्य सर्व खण्ड, ते अपने-अपने नीचले समय संबंधी किसी ही खण्डनि करि समान नाहीं, तातैं असदृश हैं। सो इहां द्वितीयादि द्विचरम पर्यंत समय संबंधी अंत-अंत खण्डनि की ऊर्ध्वरचना कीएं अर नीचें प्रथम समय के द्वितीयादि अंत पर्यंत खण्डनि की तिर्यक्‌रचना कीएं हल के आकार रचना हो है। तातैं याकौं लांगल रचना कहिए।

यहु अंक संदृष्टि अपेक्षा लांगल रचना														
														४०
														४१
५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२

बहुरि जघन्य उत्कृष्ट खंड अर ऊपरि नीचै समय संबंधी खण्डनि की अपेक्षा कहे असदृश खण्ड, तिनि खंडनि बिना अवशेष सर्व खण्ड अपने ऊपरि के अर नीचले समय संबंधी खण्डनि करि यथासंभव समान जानने।

अब विशुद्धता के अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा वर्णन करिए हैं। जाका दूसरा भाग न होइ – ऐसा शक्ति का अंश, ताका नाम अविभागप्रतिच्छेद जानना। तिनकी अपेक्षा गणना करि पूर्वोक्त अधःकरण के खंडनि विषैं अल्पबहुत्वरूप वर्णन करै हैं। तहां अधःप्रवृत्तकरण के परिणामनि विषैं प्रथम समय संबंधी जे परिणाम, तिनके खंडनि विषैं जे प्रथम खंड के परिणाम, ते सामान्यपनैं असंख्यात लोकमात्र हैं। तथापि पूर्वोक्त विधान के अनुसारि स्थापि, भाज्य भागहार का यथासंभव अपवर्तन किये, संख्यात प्रतरावली का जाकौं भाग दीजिये, ऐसा असंख्यात लोक मात्र है। ते ए परिणाम अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद लिये हैं। तहां एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का घन करि तिसही का वर्ग कौं गुणैं जो प्रमाण होइ, तितने परिणामनि विषैं जो एक बार षट्स्थान होइ, तौ संख्यात प्रतरावली भक्त असंख्यात लोक प्रमाण प्रथम समय संबंधी प्रथम खंड के परिणामनि विषैं केती बार षट्स्थान होइ? ऐसैं त्रैराशिक करि पाए हुए असंख्यात लोक वार षट्स्थाननि कौं प्राप्त जो विशुद्धता की वृद्धि, तींहि करि वर्धमान हैं।

भावार्थ – आगैं ज्ञानमार्गणा विषैं पर्याय समास श्रुतज्ञान का वर्णन करतैं जैसैं अनंतभाग वृद्धि आदि षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम कहैंगे, तैसैं इहां अधःप्रवृत्तकरण सम्बन्धी विशुद्धतारूप कषाय परिणामनि विषैं भी अनुक्रम तैं अनन्तभाग,

उत्कृष्ट परिणामनि की विशुद्धता अनंतगुणी-अनंतगुणी अंत के खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त प्रवर्तै है ।

बहुरि प्रथम समय संबंधी प्रथम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता तैं द्वितीय समय के प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातैं तिस ही की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है ।

बहुरि तातैं द्वितीय खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातैं तिस ही की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । ऐसैं तृतीयादि खण्डनि विषैं भी जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणा अनुक्रम करि द्वितीय समय का अंत का खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त प्राप्त हो है । बहुरि इस ही मार्ग करि तृतीयादि समयनि विषैं भी पूर्वोक्त लक्षणयुक्त जो निर्वर्गणाकांडक, ताका द्विचरम समय पर्यन्त जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणा अनुक्रम करि ल्यावनी ।

बहुरि निर्वर्गणाकाण्डक का अंत समय संबंधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता तैं प्रथम समय का अंत खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातैं दूसरा निर्वर्गणाकांडक का प्रथम समय संबंधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातैं तिस प्रथम निर्वर्गणाकांडक का द्वितीय समय संबंधी अंत के खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है । तातैं द्वितीय निर्वर्गणाकांडक का द्वितीय समय संबंधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम

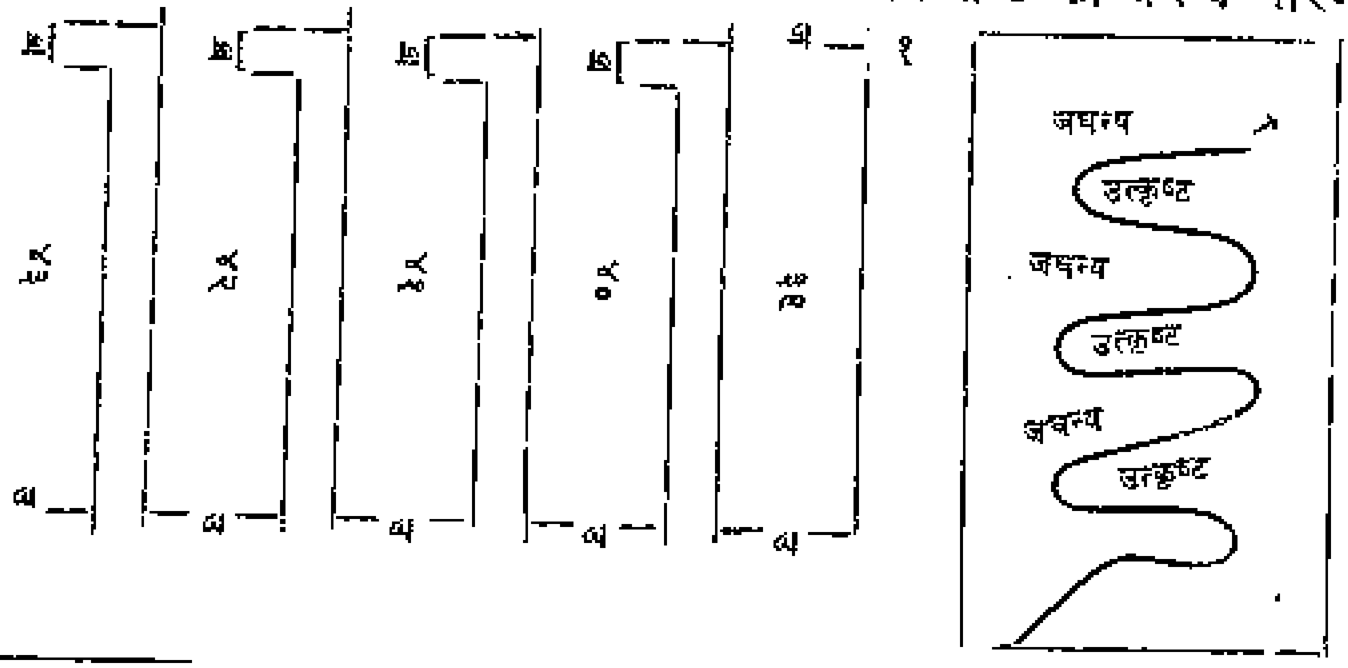

१ – भाषाटीका में सर्प का आकार बनाकर बीच में जघन्य उत्कृष्ट तीन-तीन बार लिखकर संदृष्टि लिखी है, परंतु मंदप्रबोधिका में इस प्रकार है ।

विशुद्धता अनंतगुणी है। तातैं प्रथम निर्वर्गणाकांडक का तृतीय समय संबंधी उत्कृष्ट खण्ड की उत्कृष्ट विशुद्धता अनंतगुणी है। या प्रकार जैसें सर्प की चाल इधर तैं ऊधर, ऊधर तैं इधर पलटनिरूप हो है; तैसें जघन्य तैं उत्कृष्ट, उत्कृष्ट तैं जघन्य ऐसें पलटनि विषैं अनंतगुणी अनुक्रम करि विशुद्धता प्राप्त करिए, पीछे अंत का निर्वर्गणाकांडक का अंत समय संबंधी प्रथम खण्ड की जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतानंतगुणी है। काहे तैं ? जातैं पूर्व-पूर्व विशुद्धता तैं अनंतानंतगुणापनौ सिद्ध है। बहुरि तातैं अंत का निर्वर्गणाकांडक का प्रथम समय संबंधी उत्कृष्ट खण्ड की परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। तातैं ताके ऊपरि अंत का निर्वर्गणाकांडक का अंत समय संबंधी अंत खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त उत्कृष्ट खण्ड की उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतानंतगुणा अनुक्रम करि प्राप्त हो है। तिनि विषैं जे जघन्य तैं उत्कृष्ट परिणामनि की विशुद्धता अनंतानंतगुणी है, ते इहां विवक्षारूप नाहीं है; ऐसा जानना।

या प्रकार विशुद्धता विशेष धरैं जे अधःप्रवृत्तकरण के परिणाम, तिनि विषैं गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकोत्करण, अनुभागकांडकोत्करण भए च्यारि आवश्यक न संभवैं हैं। जातैं तिस अधःकरण के परिणामनि के तैसा गुण-श्रेणि निर्जरा आदि कार्य करने की समर्थता का अभाव है। इनका स्वरूप आगै अपूर्वकरण के कथन विषैं लिखैंगे।

तौ इस करण विषैं कहा हो है ?

केवल प्रथम समय तैं लगाइ समय-समय प्रति अनंतगुणी-अनंतगुणी विशुद्धता की वृद्धि हो है। बहुरि स्थितिबंधापसरण हो है। पूर्वै जेता प्रमाण लीए कर्मनि का स्थितिबंध होता था, तातैं घटाइ-घटाइ स्थितिबंध करै है। बहुरि साता वेदनीय कौं आदि देकरि प्रशस्त कर्मप्रकृतिनि का समय-समय प्रति अनंतगुणा-अनंतगुणा बधता गुड, खंड, शर्करा, अमृत समान चतुस्थान लीए अनुभाग बंध हो है। बहुरि असाता वेदनीय आदि अप्रशस्त कर्म प्रकृतिनि का समय-समय प्रति अनंतगुणा-अनंतगुणा घटता निंब, कांजीर समान द्विस्थान लीए अनुभाग बंध हो है, विष-हलाहल रूप न हो है। ऐसें च्यारि आवश्यक इहां संभवैं हैं। अवश्य हो हैं, तातैं इनिकौं आवश्यक कहिए है।

बहुरि ऐसें यहु कह्या जो अर्थ, ताकी रचना अंकसंदृष्टि अपेक्षा लिखिए है।

अंकसंदृष्टि अपेक्षा अधःकरण रचना

सोलह समयनि की ऊर्ध्व रचना	अनुकृष्टिरूप एक-एक समय संबंधी च्यारि-च्यारि खंडनि की तिर्यक् रचना			
	प्रथम खंड	द्वितीय खंड	तृतीय खंड	चतुर्थ खंड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

अर्थसंदृष्टि अपेक्षा रचना है, सो आगें संदृष्टि अधिकार विषें लिखेंगे। तथा याका यहु अभिप्राय है – एक जीव एक काल ऐसा कहिए, तहां विवक्षित अधःप्रवृत्तकरण का परिणामरूप परिणया जो एक जीव, ताका परमार्थवृत्ति करि वर्तमान अपेक्षा काल एक समय मात्र ही है; तातें एक जीव का एक काल समय प्रमाण जानना। बहुरि एक जीव नानाकाल ऐसा कहिए, तहां अधःप्रवृत्तकरण का नानाकालरूप अंतर्मुहूर्त के समय ते अनुक्रम तें एक जीव करि चढिए है; यातें एक जीव का नानाकाल अंतर्मुहूर्त का समय मात्र है। बहुरि नानाजीवनि का एक काल ऐसा कहिए, तहां विवक्षित एक समय अपेक्षा अधःप्रवृत्तकाल के असंख्यात समय हैं, तथापि तिनिविषें यथासंभव एक सौ आठ समयरूप जे स्थान, तिनिविषें संग्रहरूप जीवनि की विवक्षा करि एक काल है; जातें वर्तमान एक कोई समय विषें अनेक जीव हैं, ते पहिला, दूसरा, तीसरा आदि अधःकरण के असंख्यात समयनि विषें यथासंभव एक सौ आठ समय विषें ही प्रवर्तते पाइए है। तातें अनेक जीवनि का एक काल एक सौ आठ समय प्रमाण है। बहुरि नाना-जीव, नानाकाल ऐसा कहिए; तहां अधःप्रवृत्तकरण के परिणाम असंख्यात लोकमात्र हैं, ते त्रिकालवर्ती अनेक जीव संबंधी हैं। बहुरि जिस परिणाम कौं कह्या, तिसकों

यहु अंक संदृष्टि अपेक्षा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्र की वासना कहने कौं रचना है।

सर्व स्थानकनि विषै प्राप्ति का प्रमाण	सर्वस्थानकनि विषैं समानरूप कीएं चयनि की रचना तहां च्यारि-च्यारि तौ एक-एक चय का प्रमाण, आगैं दोय आधा चय का प्रमाण जानना	ऊपरि समयवर्ती चयकानि नीचले समय स्थान विषैं स्थापे, तिनकी रचना
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।४।४।४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।४।४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	४।२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	२
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
१६२	४।४।४।४।४।४।४।२	
इनको जोड़ें प्राप्तिधन २५९२	इनको जोड़ें उत्तरधन ४८०	

बहुरि एक स्थान विषैं साडा सात चय का प्रमाण होइ, तौ सोलह स्थानकनि विषैं केते चय हो हैं ? ऐसैं त्रैराशिक करि प्रमाण राशि एक स्थान, फलराशि साडा सात चय, तिनिका प्रमाण तीस, इच्छाराशि सोलह स्थान, तहां फल कौं इच्छा करि गुणि, प्रमाण का भाग दिये लब्धराशि च्यारि सै असी पूर्वोक्त उत्तरधन का प्रमाण आवै है । ऐसैं ही अनुकृष्टि विषैं भी अंकसंदृष्टि करि प्ररूपण करना ।

बहुरि याही प्रकार अर्थसंदृष्टि करि भी सत्यार्थरूप साधन करना । ऐसैं **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र की वासना बीजगणित करि दिखाई । बहुरि अन्य करण सूत्रनि की भी यथासंभव बीजगणित करि वासना जानना ।

ऐसैं अप्रमत्त गुणस्थान कौं व्याख्यान करि याके अनन्तर अपूर्वकरण गुणस्थान कौं कहै हैं –

अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तं ।
पडिसमयं सुज्झंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥५०॥

अंतर्मुहूर्तकालं, गमयित्वा अधःप्रवृत्तकरणं तत् ।
प्रतिसमयं शुध्यन् अपूर्वकरणं समाश्रयति ॥५०॥

टीका – ऐसैं अंतर्मुहूर्तकाल प्रमाण पूर्वोक्त लक्षण धरैं अधःप्रवृत्तकरण कौं गमाइ, विशुद्ध संयमी होइ, समय-समय प्रति अनन्तगुणी विशुद्धता की वृद्धि करि बधता संता अपूर्वकरण गुणस्थान कौं आश्रय करै है ।

एदम्हि गुणट्ठाणे, विसरिस समयट्ठियेहिं जीवेहिं ।
पुव्वमपत्ता जह्मा, होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥५१॥ [१]

एतस्मिन् गुणस्थाने, विसदृशसमयस्थितैर्जीवैः ।
पूर्वमप्राप्ता यस्मात्, भवंति अपूर्वा हि परिणामाः ॥५१॥

टीका – जा कारण तैं इस अपूर्वकरण गुणस्थान विषैं विसदृश कहिए समानरूप नाहीं, ऐसैं जे ऊपरि-ऊपरि के समयनि विषैं तिष्ठते जीवनि करि जे विशुद्ध परिणाम पाइए हैं; ते पूर्व-पूर्व समयनि विषैं किसी ही जीव करि न पाये

---

१ षट्खंडागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ १६८, गाथा ११७

ऐसें हैं; ता कारण तें अपूर्व है करण कहिए परिणाम जा विषें, सो अपूर्वकरण गुणस्थान है – ऐसा निरुक्ति करि लक्षण कह्या है ।

भिण्णसमयट्ठियेहिं दु, जीवेहिं ण होदि सव्वदा सरिसो ।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा ॥५२॥ [१]

भिन्नसमयस्थितैस्तु, जीवैर्न भवति सर्वदा सादृश्यम् ।
करणैरेकसमयस्थितैः सादृश्यं वैसादृश्यं वा ॥५२॥

टीका – जैसें अधःप्रवृत्तकरण विषें भिन्न-भिन्न ऊपरि नीचै के समयनि विषें तिष्ठते जीवनि के परिणामनि की संख्या अर विशुद्धता समान संभवै है; तैसें इहां अपूर्वकरण गुणस्थान विषें सर्वकाल विषें भी कोई ही जीव कें सो समानता न संभवै है । बहुरि एक समय विषें स्थित करण के परिणाम, तिनके मध्य विवक्षित एक परिणाम की अपेक्षा समानता अर नाना परिणाम की अपेक्षा असमानता जीवनि के अधःकरणवत् इहां भी संभवै है, नियम नाहीं; ऐसा जानना ।

भावार्थ – इस अपूर्वकरण विषें ऊपरि के समयवर्ती जीवनि कें अर नीचले समयवर्ती जीवनि के समान परिणाम कदाचित् न होंइ । बहुरि एक समयवर्ती जीवनि कें तिस समय संबंधी परिणामनि विषें परस्पर समान भी होंइ अर समान नाहीं भी होंइ ।

ताका उदाहरण - जैसें जिनि जीवनि कौं अपूर्वकरण मांडें पांचवां समय भया, तहां तिन जीवनि के जैसे परिणाम होंहि, तैसे परिणाम जिन जीवनि कौं अपूर्वकरण मांडें प्रथमादि चतुर्थ समय पर्यन्त वा षष्ठमादि अंत समय पर्यन्त भए होंहि, तिनकें कदाचित् न होंइ, यहु नियम है । बहुरि जिनि जीवनि कौं अपूर्वकरण मांडें पांचवां समय भया, असे अनेक जीवनि के परिणाम परस्पर समान भी होंइ, जैसा एक जीव का परिणाम होइ, तैसा अन्य का भी होइ अथवा असमान भी होइ । एक जीव का औरसा परिणाम होइ, एक जीव का औरसा परिणाम होइ । असें ही अन्य-अन्य समयवर्ती जीवनि कें तौ जैसें अधःकरण विषें परस्पर समानता भी थी, तैसें इहां नाहीं है । बहुरि एक समयवर्ती जीवनि कें जैसें अधःकरण विषें

१ - षट्खंडागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८४, गाथा नं. ११६.

समानता वा असमानता थी; तैसें इहां भी है । या प्रकार त्रिकालवर्ती नाना जीवनि के परिणाम इस अपूर्वकरण विषें प्रवर्तते जानने ।

अंतोमुहुत्तमेत्ते, पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढा पुव्वगुणे, अणुकट्ठी णत्थि णियमेण ॥५३॥

अंतर्मुहूर्तमात्रे, प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः ।
क्रमवृद्धा अपूर्वगुणे, अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन ॥५३॥

टीका – अंतर्मुहूर्तमात्र जो अपूर्वकरण का काल, तीहिं विषें समय-समय प्रति क्रम तें एक-एक चय बधता असंख्यात लोकमात्र परिणाम है । तहां नियम करि पूर्वापर समय संबंधी परिणामनि के समानता का अभाव तैं अनुकृष्टि विधान नाहीं है ।

इहां भी अंक संदृष्टि करि दृष्टांतमात्र प्रमाण कल्पना करि रचना का अनुक्रम दिखाइये है । अपूर्वकरण के परिणाम च्यारि हजार छिनवै, सो सर्वधन है । बहुरि अपूर्वकरण का काल आठ समय मात्र, सो गच्छ है । बहुरि संख्यात का प्रमाण च्यारि (४) है । सो '**पदकदिसंखेण भाजिदे पचयो होदि**' इस सूत्र करि गच्छ ८ का वर्ग ६४ अर संख्यात च्यारि का भाग सर्वधन ४०९६ कौं दीए चय होइ, ताका प्रमाण सोलह भया । बहुरि '**व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं**' इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ ७, ताका आधा $\frac{7}{2}$ कौं चय १६ करि गुणें जो प्रमाण ५६ होय, ताका गच्छ (८) आठ करि गुणें चय धन च्यारि सै अड़तालीस (४४८) होइ । याकौं सर्वधन ४०९६ में घटाइ, अवशेष ३६४८ कौं गच्छ आठ (८) का भाग दीए, प्रथम समय संबंधी परिणाम च्यारि सै छप्पन (४५६) हो हैं । यामैं एक चय १६ मिलाए द्वितीय समय संबंधी हो है । ऐसें तृतीयादि समयनि विषें एक-एक चय बधता परिणाम पुंज है, तहां एक घाटि गच्छ मात्र चय का प्रमाण एक सौ बारह, सो प्रथम समय संबंधी धन विषें जोडें, अंत समय संबंधी परिणाम पुंज पांच सै अडसठि हो है । यामैं एक चय घटाएं द्विचरम समय संबंधी परिणाम पुंज पांच सै बावन हो है । ऐसें ही एक चय घटाए आठौं गच्छ कौ प्रमाण जानना ।

अंकसंदृष्टि अपेक्षा समय-समयसंबंधी अपूर्वकरण परिणाम रचना

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६

सर्व परिणाम जोड

४०९६

अब यथार्थ कथन करिये है । तहां अर्थसंदृष्टि करि रचना है, सो आगै संदृष्टि अधिकार विषैं लिखेंगे । सो त्रिकालवर्ती नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण के विशुद्धतारूप परिणाम, ते सर्व ही अधःप्रवृत्तकरण के जेते परिणाम हैं, तिनतैं असंख्यात लोक गुणे हैं । काहे तैं ? जातैं अधःप्रवृत्तकरण काल का अंत समय संबंधी जे विशुद्ध परिणाम हैं, तिनका अपूर्वकरण काल का प्रथम समय विषैं प्रत्येक एक-एक परिणाम के असंख्यात लोक प्रमाण भेदनि की उत्पत्ति का सद्भाव है । तातैं अपूर्वकरण का सर्व परिणामरूप सर्वधन, सो असंख्यात लोक कौं असंख्यात लोक करि गुणैं जो प्रमाण होइ, तितना है; सो सर्वधन जानना । बहुरि ताका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है; ताके जेते समय, सो गच्छ जानना । बहुरि **'पदकदिसंखेण भाजिदं पचयं'** इस सूत्र करि गच्छ का वर्ग का अर संख्यात का भाग सर्वधन कौं दीए जो प्रमाण होइ; सो चय जानना । बहुरि **'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'** इस सूत्र करि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण करि चय कौं गुणि गच्छ कौं गुणैं जो प्रमाण होइ, सो चय धन जानना । याकौं सर्वधन विषैं घटाइ अवशेष कौं गच्छ का भाग दीएं जो प्रमाण आवै, सोई प्रथम समयवर्ती त्रिकाल गोचर नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण परिणाम का प्रमाण हो है । बहुरि यामैं एक चय जोडैं, द्वितीय समयवर्ती नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण परिणामनि का पुंज प्रमाण हो है । ऐसैं ही तृतीयादि समयनि विषैं एक-एक चय की वृद्धि का अनुक्रम करि परिणाम पुंज का प्रमाण ल्याएं संतैं अंत समय विषैं परिणाम धन है । सो एक घाटि गच्छ का प्रमाण चयनि कौं प्रथम समय संबंधी धन विषैं जोडें जितना प्रमाण होइ, तितना हो है । बहुरि यामैं एक चय घटाएं, द्विचरम समयवर्ती नाना जीव संबंधी विशुद्ध परिणामनि का पुंज प्रमाण हो है । ऐसैं समय-समय संबंधी परिणाम क्रम तैं बधते जाननें ।

बहुरि इस अपूर्वकरण गुणस्थान विषैं पूर्वोत्तर समय संबंधी परिणामनि कैं सदा ही समानता का अभाव है; तातैं इहां खंडरूप अनुकृष्टि रचना नाहीं है ।

भावार्थ – आगैं कषायाधिकार विषैं शुक्ल लेश्या संबंधी विशुद्ध परिणामनि का प्रमाण कहैंगे । तिसविषैं इहां अपूर्वकरण विषैं संभवते जे परिणाम, तिनिविषैं

अपूर्वकरण काल का प्रथमादि समयनि विषें जेते-जेते परिणाम संभवें, तिनका प्रमाण कह्या है। बहुरि इहां पूर्वापर विषें समानता का अभाव है; तातें खंड करि अनुकृष्टि विधान न कह्या है। बहुरि इस अपूर्वकरण काल विषें प्रथमादिक अंत समय पर्यंत स्थित जे परिणाम स्थान, ते पूर्वोक्त विधान करि असंख्यात लोक बार षट्स्थान पतित वृद्धि कौं लीएं जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद संयुक्त हैं। तिनका समय-समय प्रति अर परिणाम-परिणाम प्रति विशुद्धता का अविभागप्रतिच्छेदनि का प्रमाण अवधारणे के अर्थि अल्पबहुत्व कहिए हैं।

तहां प्रथम समयवर्ती सर्वजघन्य परिणाम विशुद्धता, सो अधःप्रवृत्तकरण का अंत समय संबंधी अंत खंड की उत्कृष्ट विशुद्धता तें भी अनंतगुणा अविभागप्रतिच्छेदमयी है, तथापि अन्य अपूर्वकरण के परिणामनि की विशुद्धता तें स्तोक है। बहुरि तातें प्रथम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। बहुरि तातें द्वितीय समयवर्ती जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। जातें प्रथम समय उत्कृष्ट विशुद्धता तें असंख्यात लोक मात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धिरूप अंतराल करि सो द्वितीय समयवर्ती जघन्य विशुद्धता उपजै है। बहुरि तातें तिस द्वितीय समयवर्ती उत्कृष्ट विशुद्धता अनंतगुणी है। असें उत्कृष्ट तें जघन्य अर जघन्य तें उत्कृष्ट विशुद्ध स्थान अनंतगुणा-अनंतगुणा है। या प्रकार सर्प की चालवत् जघन्य तें उत्कृष्ट, उत्कृष्ट तें जघन्यरूप अनुक्रम लीएं अपूर्वकरण का अंत समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यंत जघन्य, उत्कृष्ट विशुद्धता का अल्पबहुत्व जानना।

या प्रकार इस अपूर्वकरण परिणाम का जो कार्य है, ताके विशेष कौं गाथा दोय करि कहै हैं –

तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं।
मोहस्सपुव्वकरणा, खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥५४॥[1]

तादृशपरिणामस्थितजीवा हि जिनैर्गलिततिमिरैः।
मोहस्यापूर्वकरणा, क्षपणोपशमनोद्यता भणिताः ॥५४॥

टीका – तादृश कहिए तैसा पूर्व-उत्तर समयनि विषें असमान जे अपूर्वकरण के परिणाम, तिनिविषें स्थिताः कहिए परिणए असे जीव, ते अपूर्वकरण हैं।

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८४, गाथा ११६

ऐसें गल्या है ज्ञानावरणादि कर्मरूप अंधकार जिनिका, ऐसे जिनदेवनि करि कह्या है ।

बहुरि ते अपूर्वकरण जीव सर्व ही प्रथम समय तें लगाइ चारित्र मोहनीय नामा कर्म के क्षपावने कौं वा उपशम करने कौं उद्यमवंत हो हैं । याका अर्थ यहु – जो गुणश्रेणिनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागखंडन ऐसें लक्षण धरैं जे च्यारि आवश्यक, तिनकौं करें हैं ।

तहां पूर्वें बांध्या था ऐसा सत्तारूप जो कर्म परमाणुरूप द्रव्य, तामैं सौं काढि जो द्रव्य गुणश्रेणी विषें दीया, ताका गुणश्रेणी का काल विषें समय-समय प्रति असंख्यात-असंख्यातगुणा अनुक्रम लीए पंक्तिबंध जो निर्जरा का होना, सो गुणश्रेणि-निर्जरा है ।

बहुरि समय-समय प्रति गुणकार का अनुक्रम तें विवक्षित प्रकृति के परमाणु पलटि करि अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं, सो गुण संक्रमण है ।

बहुरि पूर्वें बांधी थी ऐसी सत्तारूप कर्म प्रकृतिनि की स्थिति, ताका घटावना; सो स्थिति खंडन कहिए ।

बहुरि पूर्वें बांध्या था ऐसा सत्तारूप अप्रशस्त कर्म प्रकृतिनि का अनुभाग, ताका घटावना; सो अनुभाग खंडन कहिए । ऐसैं च्यारि कार्य अपूर्वकरण विषें अवश्य हो हैं । इनिका विशेष वर्णन आगें लब्धिसार, क्षपणासार अनुसार अर्थ लिखेंगे, तहां जानना ।

णिद्दापयले णट्ठे, सदि आऊ उवसमंति उवसमया ।
खवयं ढुक्के खवया, णियमेण खवंति मोहं तु ।।५५।।

निद्राप्रचले नष्टे, सति आयुषि उपशमयंति उपशमकाः ।
क्षपकं ढौकमानाः, क्षपका नियमेन क्षपयंति मोहं तु ।।५५।।

टीका – इस अपूर्वकरण गुणस्थान विषें विद्यमान मनुष्य आयु जाकैं पाइए, ऐसा अपूर्वकरण जीव कैं प्रथम भाग विषें निद्रा अर प्रचला – ए दोय प्रकृति बंध होने तें व्युच्छित्तिरूप हो है ।

अर्थ यहु - जो उपशम श्रेणी चढनेवाले अपूर्वकरण जीव का प्रथम भाग विषें मरण न होइ, बहुरि निद्रा-प्रचला का बंध व्युच्छेद होइ, तिसको होतें ते अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव जो उपशम श्रेणी प्रति चढै तो चारित्रमोह को नियमकरि उपशमावै है। बहुरि क्षपक श्रेणी प्रति चढनेवाले क्षपक, ते नियम करि तिस चारित्र मोह को क्षपावै हैं। बहुरि क्षपक श्रेणी विषें सर्वत्र नियमकरि मरण नाहीं है।

आगै अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का स्वरूप कौं गाथा दोय करि प्ररूपै हैं -

एक्कह्मि कालसमये, संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥५६॥

होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा ॥५७॥[1] (जुम्मम्)

एकस्मिन् कालसमये, संस्थानादिभिर्यथा निवर्तंते।
न निवर्तंते तथापि च, परिणामैर्मिथो यैः ॥५६॥

भवंति अनिवर्तिनस्ते, प्रतिसमयं येषामेकपरिणामाः।
विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः ॥५७॥ (युग्मम्)

टीका - अनिवृत्तिकरण काल विषें एक समय विषें वर्तमान जे त्रिकालवर्ती अनेक जीव, ते जैसें शरीर का संस्थान, वर्ण, वय, अवगाहना अर क्षयोपशमरूप ज्ञान उपयोगादिक, तिनकरि परस्पर भेद कौं प्राप्त हैं; तैसें विशुद्ध परिणामनि करि भेद कौं प्राप्त न हो हैं प्रगटपनें, ते जीव अनिवृत्तिकरण हैं, ऐसें सम्यक् जानना। जातें नाहीं विद्यमान है निवृत्ति कहिए विशुद्ध परिणामनि विषें भेद जिनकें, ते अनिवृत्तिकरण हैं, ऐसी निरुक्ति हो है।

भावार्थ - जिन जीवनि कौं अनिवृत्तिकरण मांडें पहला, दूसरा आदि समान समय भए होंहि, तिनि त्रिकालवर्ती अनेक जीवनि के परिणाम समान ही होंइ। जैसें अधःकरण, अपूर्वकरण विषें समान वा असमान होते थे, तैसें इहां नाहीं। बहुरि अनिवृत्तिकरण काल का प्रथम समय कौं आदि देकरि समय-समय प्रति वर्त-

---

१. षट्खंडागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८७ गाथा १६, २०

मान जे सर्व जीव, ते हीन-अधिकपना तैं रहित समान विशुद्ध परिणाम धरै हैं। तहां समय-समय प्रति ते विशुद्ध परिणाम अनंतगुणे-अनंतगुणे उपजै हैं। तहां प्रथम समय विषें जे विशुद्ध परिणाम हैं; तिनतैं द्वितीय समय विषैं विशुद्ध परिणाम अनंतगुणे हो हैं। ऐसें पूर्व-पूर्व समयवर्ती विशुद्ध परिणामनि तैं जीवनि के उत्तरोत्तर समयवर्ती विशुद्ध परिणाम अविभागप्रतिच्छेदनि की अपेक्षा अनंतगुणा-अनंतगुणा अनुक्रम करि बधता हुआ प्रवर्तै हैं। ऐसा यहु विशेष जैनसिद्धांत विषें प्रतिपादन किया है, सो प्रतीति मैं ल्यावना।

भावार्थ – अनिवृत्तिकरण विषैं एक समयवर्ती जीवनि के परिणामनि विषैं समानता है। बहुरि ऊपरि-ऊपरि समयवर्तीनि के अनंतगुणी-अनंतगुणी विशुद्धता बधती है।

ताका उदाहरण – जैसें जिनकौं अनिवृत्तिकरण मांडें पांचवां समय भया, ऐसे त्रिकालवर्ती अनेक जीव, तिनकैं विशुद्ध परिणाम परस्पर समान ही होंइ, कदाचित् हीन-अधिक न होंइ। बहुरि ते विशुद्ध परिणाम जिनकौं अनिवृत्तिकरण मांडें चौथा समय भया, तिनकें विशुद्ध परिणामनि तैं अनंतगुणे हैं। बहुरि इनतैं जिनकौं अनिवृत्तिकरण मांडें छठा समय भया, तिनकैं अनंतगुणे विशुद्ध परिणाम हो हैं; ऐसें सर्वत्र जानना। बहुरि तिस अनिवृत्तिकरण परिणाम संयुक्त जीव, ते अति निर्मल ध्यानरूपी हुतभुक् कहिए अग्नि, ताकी शिखानि करि दग्ध कीए हैं कर्मरूपी वन जिनने ऐसे हैं। इस विशेषण करि चारित्र मोह का उपशमावना वा क्षय करना अनिवृत्तिकरण परिणामनि का कार्य है; ऐसा सूच्या है।

आगैं सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के स्वरूप कौं कहै हैं –

धुवकोसुंभयवत्थं, होदि जहा सुहमरायसंजुत्तं।
एवं सुहमकसाओ, सुहमसरागो त्ति णादव्वो ॥५८॥

धौतकौसुंभवस्त्रं भवति यथा सूक्ष्मरागसंयुक्तं।
एवं सूक्ष्मकषायः, सूक्ष्मसांपराय इति ज्ञातव्यः ॥५८॥

टीका – जैसें धोया हुआ कसूंमल वस्त्र, सो सूक्ष्म लाल रंग करि संयुक्त हो है। तैसें अगिला सूत्र विषें कह्या विधान करि सूक्ष्म कृष्टि कौं प्राप्त जो लोभ कषाय, ताहिकरि जो संयुक्त, सो सूक्ष्मसांपराय है; ऐसा जानना।

आगे सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्तपने का स्वभाव कौं गाथा दोय करि प्ररूपै हैं –

पुव्वापुव्वप्फड्डय, बादरसुहमगयकिट्टिअणुभागा ।
हीणकमाणंतगुणेणवराद्दु वरं च हेट्ठस्स ॥५९॥ [1]

पूर्वापूर्वस्पर्धकबादरसूक्ष्मगतकृष्टयनुभागाः ।
हीनक्रमा अनंतगुणेन, अवरात्तु वरं चाधस्तनस्य ॥५९॥

टीका – पूर्वे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान विषैं वा संसार अवस्था विषैं जे सभवैं ऐसै कर्म की शक्ति समूहरूप पूर्वस्पर्धक, बहुरि अनिवृत्तिकरण परिणामनि करि कीए तिनके अनंतवें भाग प्रमाण अपूर्वस्पर्धक, बहुरि तिनहि करि करी जे बादर-कृष्टि, बहुरि तिनही करि करी जे कर्म शक्ति का सूक्ष्म खंडरूप सूक्ष्मकृष्टि, इनिका क्रम तें अनुभाग अपने उत्कृष्ट तें अपना जघन्य, अर ऊपरि के जघन्य तें नीचला उत्कृष्ट ऐसा अनंतगुणा घाटि क्रम लीए है।

भावार्थ – पूर्व स्पर्धकनि का उत्कृष्ट अनुभाग, सो अविभागप्रतिच्छेद अपेक्षा जो प्रमाण धरै है, ताके अनंतवें भाग पूर्व स्पर्धकनि का जघन्य अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग अपूर्वस्पर्धकनि का उत्कृष्ट अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग अपूर्वस्पर्धकनि का जघन्य अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग बादरकृष्टि का उत्कृष्ट अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग बादरकृष्टि का जघन्य अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग सूक्ष्मकृष्टि का उत्कृष्ट अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग सूक्ष्मकृष्टि का जघन्य अनुभाग है; ऐसा अनुक्रम जानना।

बहुरि इन पूर्वस्पर्धकादिकनि का स्वरूप आगैं लब्धिसार-क्षपणासार का कथन लिखेंगे, तहां नीकैं जानना। तथापि इनिका स्वरूप जानने के अर्थि इहां भी किंचित् वर्णन करिये है।

कर्म प्रकृतिरूप परिणए जे परमाणु, तिनिविषैं अपने फल देने की जो शक्ति, ताकौं अनुभाग कहिये। तिस अनुभाग का ऐसा कोई केवलज्ञानगम्य अंश, जाका दूसरा भाग न होइ; सो इहाँ अविभागप्रतिच्छेद जानना।

बहुरि एक परमाणु विषैं जेते अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तिनके समूह का नाम वर्ग है।

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १८६, गाथा १२१

बहुरि जिन परमाणुनि विषैं परस्पर समान गणना लीए अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तिनिके समूह का नाम वर्गणा है ।

तहां अन्य परमाणुनि तैं जाविषैं थोरे अविभागप्रतिच्छेद पाइए, ताका नाम जघन्य वर्ग है ।

बहुरि तिस परमाणु के समान जिन परमाणुनि विषैं अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तिनके समूह का नाम जघन्य वर्गणा है । बहुरि जघन्य वर्ग तैं एक अविभाग-प्रतिच्छेद अधिक जिनिविषैं पाइए औसी परमाणुनि का समूह; सो द्वितीय वर्गणा है । औसैं जहां ताईं एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बधने का क्रम लीए जेती वर्गणा होंइ, तितनी वर्गणा के समूह का नाम जघन्य स्पर्धक है । बहुरि यातैं ऊपरि जघन्य वर्गणा के वर्गनि विषैं जेते अविभागप्रतिच्छेद थे, तिनतैं दूणे जिस वर्गणा के वर्गनि विषैं अविभागप्रतिच्छेद होंहि, तहांतैं द्वितीय स्पर्धक का प्रारंभ भया । तहां भी पूर्वोक्त प्रकार एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बधने का क्रमयुक्त वर्गनि के समूहरूप जेती वर्गणा होंइ, तिनके समूह का नाम द्वितीय स्पर्धक है । बहुरि प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गनि विषैं जेते अविभागप्रतिच्छेद थे, तिनतैं तिगुणे जिस वर्गणा के वर्गनि विषैं अविभागप्रतिच्छेद पाइए, तहांतैं तीसरे स्पर्धक का प्रारंभ भया, तहां भी पूर्वोक्त क्रम जानना ।

अर्थ इहां यहु – जो यावत् वर्गणा के वर्गनि विषैं क्रम तैं एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बधै, तावत् सोई स्पर्धक कहिए । बहुरि जहां युगपत् अनेक अविभागप्रति-च्छेद बधैं, तहांतैं नवीन अन्य स्पर्धक का प्रारंभ कहिए । सो चतुर्थादि स्पर्धकनि की आदि वर्गणा का वर्ग विषैं अविभागप्रतिच्छेद प्रथम स्पर्धक की आदि वर्गणा के वर्गनि विषैं जेते थे, तिनतैं चौगुणा, पंचगुणा आदि क्रम लीए जानने । बहुरि अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणा के वर्ग विषैं अपनी-अपनी प्रथम वर्गणा के वर्ग तैं एक-एक अविभागप्रतिच्छेद बधता अनुक्रम तैं जानना । औसैं स्पर्धकनि के समूह का नाम प्रथम गुणहानि है । इस प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा विषैं जेता परमाणुरूप वर्ग पाइए है, तिनितैं एक-एक चय प्रमाण घटते द्वितीयादि वर्गणानि विषैं वर्ग जानने । औसैं क्रम तैं जहां प्रथम गुणहानि की वर्गणा के वर्गनि तैं आधा जिस वर्गणा विषैं वर्ग होइ, तहांतैं दूसरी गुणहानि का प्रारंभ भया । तहां द्रव्य, चय आदि का प्रमाण आधा-आधा जानना । इस क्रम तैं जेती गुणहानि सर्व कर्म परमाणुनि विषैं पाइए, तिनिके समूह का नाम नानागुणहानि है ।

इहां वर्गणादि विषैं परमाणुनि का प्रमाण ल्यावने कौं द्रव्य, स्थिति, गुण-हानि, दोगुणहानि, नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि ए छह जानने ।

तहां सर्व कर्म परमाणुनि का प्रमाण त्रिकोण यंत्र के अनुसारि स्थिति संबंधी किंचित्ऊन द्वयर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्ध प्रमाण, सो सर्वद्रव्य जानना ।

बहुरि नानागुणहानि करि गुणहानि आयाम कौं गुणें जो सर्वद्रव्य विषैं वर्गणानि का प्रमाण होई, सो स्थिति जाननी ।

बहुरि एक गुणहानि विषैं अनंतगुणा अनंत प्रमाण वर्गणा पाइए हैं; सो गुणहानि आयाम जानना ।

याकौं दूणा किए जो प्रमाण होई, सो दोगुणहानि है ।

बहुरि सर्वद्रव्य विषैं जे गुणहानि प्रमाण अनंत पाइए; तिनिका नाम नाना-गुणहानि है; जातैं दोय का गुणकार रूप घटता-घटता जाविषैं द्रव्यादिक पाइए, सो गुणहानि; अनेक जो गुणहानि, सो नानागुणहानि जानना ।

बहुरि नानागुणहानि प्रमाण दुवे मांडि परस्पर गुणें, जो प्रमाण होई, सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ।

तहां एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग सर्वद्रव्य कौं दीए जो प्रमाण होई, सो अंत की गुणहानि के द्रव्य का प्रमाण है । यातैं दूणा-दूणा प्रथम गुणहानि पर्यन्त द्रव्य का प्रमाण है । बहुरि **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इस सूत्र करि साधिक ड्योढ गुणहानि आयाम का भाग सर्वद्रव्य कौं दीए जो प्रमाण होइ, सोई प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा विषैं परमाणुनि का प्रमाण है । बहुरि याकौं दो गुणहानि का भाग दीए चय का प्रमाण आवै है, सो द्वितीयादि वर्गणानि विषैं एक-एक चय घटता परमाणुनि का प्रमाण जानना । असैं क्रम तैं जहां प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा तैं जिस वर्गणा विषैं आधा परमाणुनि का प्रमाण है; सो द्वितीय गुण-हानि की प्रथम वर्गणा है । याके पहले जेती वर्गणा भई, ते सर्व प्रथम गुणहानि संबंधी जाननी ।

बहुरि इहां द्वितीय गुणहानि विषैं भी द्वितीयादि वर्गणानि विषैं एक-एक चय घटता परमाणुनि का प्रमाण जानना । इहां द्रव्य, चय आदि का प्रमाण प्रथम गुण-

हानि तैं सर्वत्र आधा-आधा जानना, ऐसैं क्रम तैं सर्वद्रव्य विषैं नानागुणहानि अनंत हैं। बहुरि इहां प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा तैं लगाइ अंत वर्गणा पर्यन्त जे वर्गणा, तिनिके वर्गनि विषैं अविभागप्रतिच्छेदनि का प्रमाण प्रवाहरूप पूर्वोक्त प्रकार अनुक्रमरूप बधता-बधता जानना ।

अब इस कथन कौं अंकसंदृष्टि करि दिखाइए है।

सर्वद्रव्य इकतीस सै ३१००, स्थिति चालीस ४०, गुणहानि आयाम आठ ८, दोगुण हानि सोलह १६, नानागुणहानि पांच ५, अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीस ३२, तहाँ एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० कौं दीएं सौ पाये, सो अंत गुणहानि का द्रव्य है। यातैं दूणा-दूणा प्रथम गुणहानि पर्यंत द्रव्य जानना। १६००, ८००, ४००, २००, १००। बहुरि साधिक ड्योढ गुणहानि का भाग सर्वद्रव्य कौं दीए, दोय सै छप्पन (२५६) पाए, सो प्रथम गुणहानि विषैं प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा विषैं इतना-इतना घटता कौं जानना ऐसे वर्गनि का प्रमाण है। याकौं दो गुणहानि सोलह (१६) का भाग दीए सोलह पाए, सो चय का प्रमाण है। सो द्वितीयादि वर्गणा विषैं इतना-इतना घटता वर्ग जानना। ऐसैं आठ वर्गणा प्रथम गुणहानि विषैं जाननी। बहुरि द्वितीय गुणहानि विषैं आठ वर्गणा हैं। तिनि विषैं पूर्व तैं द्रव्य वा चय का प्रमाण आधा-आधा जानना। ऐसैं आधा-आधा क्रम करि पांच नानागुणहानि सर्व द्रव्य विषैं हो हैं।

अंकसंदृष्टी अपेक्षा गुणहानि की वर्गणानि विषैं वर्गनि के प्रमाण का यंत्र है।

प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि
१४४	७२	३६	१८	९
१६०	८०	४०	२०	१०
१७६	८८	४४	२२	११
१९२	९६	४८	२४	१२
२०८	१०४	५२	२६	१३
२२४	११२	५६	२८	१४
२४०	१२०	६०	३०	१५
२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़ १६००	जोड़ ८००	जोड़ ४००	जोड़ २००	जोड़ १००

इनकी रचना –

बहुरि च्यारि-च्यारि वर्गणा का समूह एक-एक स्पर्धक है, तातैं एक-एक गुणहानि विषैं दोय-दोय स्पर्धक हैं। तहां प्रथम गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथमवर्गणा का वर्गनि विषैं आठ-आठ अविभागप्रतिच्छेद पाइये हैं। दूसरी वर्गणा का वर्गनि विषैं नव-नव, तीसरी का विषैं दश-दश, चौथी का विषैं ग्यारह-ग्यारह जानने। बहुरि प्रथम गुणहानि का द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा का वर्गनि विषैं सोलह-सोलह, दूसरीकानि विषैं सतरह-सतरह, तीसरीकानि विषैं अठारह-अठारह, चौथीकानि विषैं उगणीस-उगणीस अविभागप्रतिच्छेद हैं। बहुरि द्वितीय गुणहानि का प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के वर्गनि विषैं चौईस-चौईस, ऊपरि एक-एक बधती ऐसैं ही अनंतगुणहानि का अंत स्पर्धक की अन्त वर्गणा पर्यन्त अनुक्रम जानना। इनकी रचना –

अंकसंदृष्टि अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेदनि की रचना का यंत्र

प्रथम गुणहानि		द्वितीय गुणहानि		तृतीय गुणहानि		चतुर्थ गुणहानि		पञ्चम गुणहानि	
प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक	प्रथम स्पर्धक	द्वितीय स्पर्धक
११	१९	२७	३५	४३	५१	५९	६७	७५	८३
१०।१०	१८।१८	२६।२६	३४।३४	४२।४२	५०।५०	५८।५८	६६।६६	७४।७४	८२।८२
९।९।९	१७।१७।१७	२५।२५।२५	३३।३३।३३	४१।४१।४१	४९।४९।४९	५७।५७।५७	६५।६५।६५	७३।७३।७३	८१।८१।८१
८।८।८।८	१६।१६।१६।१६	२४।२४।२४।२४	३२।३२।३२।३२	४०।४०।४०।४०	४८।४८।४८।४८	५६।५६।५६।५६	६४।६४।६४।६४	७२।७२।७२।७२	८०।८०।८०।८०

इहां च्यारि, तीन आदि स्थानकनि विषैं आठ, ... आदि अविभागप्रतिच्छेद
स्थापे हैं । तिनकी सहनानी करि अपनी-अपनी वर्गणा विषैं जेते-जेते वर्ग हैं; तितने-
तितने-स्थानकनि विषैं तिन अविभागप्रतिच्छेदनि का स्थापन जानना ।

ऐसें अंकसंदृष्टि करि जैसैं दृष्टांत कह्या, तैसें ही पूर्वोक्त यथार्थ कथन का
अवधारण करना । या प्रकार कहे जे अनुभागरूप स्पर्धक, ते पूर्वैं संसार अवस्था विषैं
जीवनि के संभवै हैं; तातैं इनिकौं पूर्वस्पर्धक कहिये । इनि विषैं जघन्य स्पर्धक तैं
लगाइ लताभागादिकरूप स्पर्धक प्रवर्तै हैं । तिनि विषैं लताभागादिरूप केई
स्पर्धक देशघाती हैं । ऊपरि के केई स्पर्धक सर्वघाती हैं, तिनिका त्रिभाग आगै
लिखेंगे । बहुरि अनिवृत्तिकरण परिणामनि करि कबहू पूर्वैं न भए ऐसे अपूर्वस्पर्धक
हो हैं । तिनि विषैं जघन्य पूर्वस्पर्धक तैं भी अनंतवे भाग उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धक विषैं
भी अनुभाग शक्ति पाइए है । विशुद्धता का माहात्म्य तैं अनुभाग शक्ति घटाए कर्म
परमाणुनि कौं ऐसें परिणमावैं है । इहां विशेष इतना ही भया – जो पूर्वस्पर्धक की
जघन्य वर्गणा के वर्ग तैं इस अपूर्वस्पर्धक की अंत वर्गणा के वर्ग विषैं अनंतवे भाग
अनुभाग है । बहुरि तातैं अन्य वर्गणानि विषैं अनुभाग घटता है, ताका विधान
पूर्वस्पर्धकवत् ही जानना । बहुरि वर्गणानि विषैं परमाणुनि का प्रमाण पूर्वस्पर्धक
की जघन्य वर्गणा तैं एक-एक चय बधता पूर्व स्पर्धकवत् क्रम तैं जानना । इहां चय
का प्रमाण पूर्वस्पर्धक की आदि गुणहानि का चय तैं दूणा है । बहुरि पीछैं अनि-
वृत्तिकरण के परिणामनि ही करि कृष्टि करिये है । अनुभाग का कृष करना,
घटावना, सो कृष्टि कहिये । तहां संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का अनुभाग
घटाइ स्थूल खण्ड करना, सो बादरकृष्टि है । तहां उत्कृष्ट बादरकृष्टि विषैं भी
जघन्य अपूर्वस्पर्धक तैं भी अनंतगुणा अनुभाग घटता हो है । तहां च्यारों कषायनि
की बारह संग्रहकृष्टि हो हैं । अर एक-एक संग्रहकृष्टि के विषैं अनन्त-अनन्त अंतर
कृष्टि हो हैं । तिनि विषैं लोभ की प्रथम संग्रह की प्रथमकृष्टि तैं लगाइ क्रोध की
तृतीय संग्रह की अंतकृष्टि पर्यन्त क्रम तैं अनन्तगुणा-अनन्तगुणा अनुभाग है । तिस
क्रोध की तृतीय कृष्टि की अंतकृष्टि तैं अपूर्वस्पर्धकनि की प्रथम वर्गणा विषैं
अनन्तगुणा अनुभाग है । सो स्पर्धकनि विषैं तौ पूर्वोक्त प्रकार अनुभाग का अनुक्रम
था । इहां अनन्तगुणा घटता अनुभाग का क्रम भया, सोई स्पर्धक अर कृष्टि विषैं
विशेष जानना । बहुरि तहां परमाणुनि का प्रमाण लोभ की प्रथम संग्रह की जघन्य
कृष्टि विषैं यथासंभव बहुत है, तातैं क्रोध की तृतीय संग्रह की अंतकृष्टि पर्यन्त चय
घटता क्रम लीए है । सो याका विशेष आगै लिखेंगे, सो जानना । सो यहु अपूर्व

स्पर्धक अर बादरकृष्टि क्षपक श्रेणी विषैं ही हो है, उपशम श्रेणी विषैं न हो है। बहुरि अनिवृत्तिकरण के परिणामनि करि ही कषायनि के सर्व परमाणु आनुपूर्वी संक्रमादि विधान करि एक लोभरूप परिणमाइ बादरकृष्टिगत लोभरूप करि पीछैं तिनिकौं सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है, सो सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्त भया लोभ, ताका जघन्य बादरकृष्टि तैं भी अनंतवें भाग उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टि विषैं अनुभाग हो है। तहां अनंती कृष्टिनि विषैं क्रम तैं अनंतगुणा अनुभाग घटता है। बहुरि परमाणुनि का प्रमाण जघन्य कृष्टि तैं लगाइ उत्कृष्ट कृष्टि पर्यन्त चय घटता क्रम लीए है, सो विशेष आगे लिखेंगे सो जानना। सो यहु विधान क्षपक श्रेणी विषैं हो है।

उपशम श्रेणी विषैं पूर्वस्पर्धकरूप जे लोभ के केई परमाणु, तिन ही कौं सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमावै है, ताका विशेष आगै लिखेंगे।

बहुरि असैं अनिवृत्तिकरण विषैं करी जो सत्ता विषैं सूक्ष्म कृष्टि, सो जहां उदयरूप होइ प्रवर्ते, तहां सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान हो है असा जानना।

अणुलोहं वेदंतो, जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहमसांपराओ, जहखादेणूणओ किंचि ॥६०॥

अणुलोभं विदन्, जीवः उपशामको व क्षपको वा।
स सूक्ष्मसांपरायो, यथाख्यातेनोनः किंचित् ॥६०॥

टीका — अनिवृत्तिकरण काल का अंत समय के अनंतरि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान कौं पाइ, सूक्ष्म कृष्टि कौं प्राप्त जो लोभ, ताके उदय कौं भोगवता संता उपशमावनेवाला वा क्षय करने वाला जीव, सो सूक्ष्मसांपराय है; असा कहिए है।

सोई सामायिक, छेदोपस्थापना संयम की विशुद्धता तैं अति अधिक विशुद्धतामय जो सूक्ष्मसांपराय संयम, तींहिकरि संयुक्त जो जीव; सो यथाख्यातचारित्र संयुक्त जीव तैं किंचित् मात्र ही हीन है। जातैं सूक्ष्म कहिए सूक्ष्म कृष्टि कौं प्राप्त असा जो सांपराय कहिए लोभ कषाय, सो जाकैं पाइए, सो सूक्ष्मसांपराय है असा सार्थक नाम है।

आगैं उपशांत कषाय गुणस्थान के स्वरूप का निर्देश करैं हैं।

कदकफलजुदजलं [1] वा, सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो, उवसंतकसायओ होदि ॥६१॥ [2]

---

१. 'कदकफलजुदजलं' के स्थान पर 'सकयगहलं जलं' ऐसा पाठान्तर है।

२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९०, गाथा १२२

कतकफलयुतजलं वा शरदि सरःपानीयं व निर्मलं ।
सकलोपशांतमोहः, उपशांत कषायको भवति ।।६१।।

टीका – कतकफल का चूर्ण करि संयुक्त जो जल, सो जैसें प्रसन्न हो है अथवा मेघपटल रहित जो शरत्काल, तीहि विषैं जैसें सरोवर का पानी प्रसन्न हो है, ऊपरि तैं निर्मल हो है; तैसें समस्तपने करि उपशांत भया है मोहनीय कर्म जाका, सो उपशांत कषाय है । उपशांतः कहिए समस्तपनेकरि उदय होने कौं अयोग्य कीए हैं कषाय-नोकषाय जानैं, सो उपशांत कषाय है । असी निरुक्त करि अत्यंत प्रसन्न-चित्तपना सूचन किया है ।

आगैं क्षीण कषाय गुणस्थान का स्वरूप कौं प्ररूपैं हैं –

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं ।।६२।।[1]

निश्शेषक्षीणमोहः, स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तः ।
क्षीणकषायो भण्यते, निर्ग्रन्थो वीतरागैः ।।६२।।

टीका – अवशेष रहित क्षीण कहिए प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश करि रहित भई है मोहनीय कर्म की प्रकृति जाकैं; सो निःशेष क्षीणकषाय है । असें निःशेष मोह प्रकृतिनि का सत्त्व करि रहित जीव, सो क्षीण कषाय है । ता कारण तैं स्फटिक का भाजन विषैं तिष्ठता जल सदृश प्रसन्न – सर्वथा निर्मल है चित्त जाका असा क्षीणकषाय जीव है, असैं वीतराग सर्वज्ञदेवनि करि कहिए है । सोई परमार्थ करि निर्ग्रन्थ है । उपशांत कषाय भी यथाख्यात चारित्र की समानता करि निर्ग्रन्थ है, असैं जिनवचन विषैं प्रतिपादन करिए है ।

भावार्थ – उपशांत कषाय कैं तौ मोह के उदय का अभाव है, सत्त्व विद्यमान है । बहुरि क्षीणकषाय कैं उदय, सत्त्व सर्वथा नष्ट भए हैं; परन्तु दोऊनि के परिणामनि विषैं कषायनि का अभाव है । तातैं दोऊनि कैं यथाख्यात चारित्र समान है । तीहिकरि दोऊ बाह्य, अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ कहे हैं ।

आगैं सयोगकेवलिगुणस्थान कौं गाथा दोय करि कहैं हैं –

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ।।६३।।[2]

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९१, गाथा १२३
२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९२, गाथा १२४

केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः ।
नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः ॥६३॥

टीका – केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः कहिए केवलज्ञान-रूपी दिवाकर जो सूर्य, ताके किरणनि का कलाप कहिए समूह, पदार्थनि के प्रकाशने विषैं प्रवीण दिव्यध्वनि के विशेष, तिनकरि प्रनष्ट कीया है शिष्य जननि का अज्ञानां-धकार जानैं असा सयोगकेवली है। इस विशेषण करि सयोगी भट्टारक कैं भव्यलोक कौं उपकारीपना है लक्षण जाका, असी परार्थरूप संपदा कही। बहुरि नवकेवल-लब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः' कहिए क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यरूप लक्षण धरैं जे नव केवललब्धि, तिनिका उदय कहिए प्रकट होना, ताकरि सुजनित कहिए वस्तुवृत्ति करि निपज्या है परमात्मा, असा व्यपदेश कहिए नाम जाका, असा सयोगकेवली है। इस विशेषण करि भगवान अर्हत्परमेष्ठी कैं अनंत ज्ञानादि लक्षण धरैं स्वार्थरूप संपदा दिखाइए है।

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण।
जुत्तो त्ति सजोगिजिणो,[1] अणाइणिहणारिसे उत्तो ॥६४॥ [2]

असहायज्ञानदर्शनसहितः इति केवली हि योगेन।
युक्त इति सयोगिजिनः अनादिनिधनार्षे उक्तः ॥६४॥

टीका – योग करि सहित सो सयोग, अर परसहाय रहित जो ज्ञान-दर्शन, तिनिकरि सहित सो केवली, सयोग सो ही केवली, सो सयोगकेवली। बहुरि घाति-कर्मनि का निर्मूल नाशकर्ता, सो जिन सयोगकेवली सोई जिन, सो सयोगकेवलिजिन कहिए। असैं अनादि-निधन ऋषिप्रणीत आगम विषैं कह्या है।

आगै अयोग केवलि गुणस्थान कौं निरूपै हैं –

सीलेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को, गयजोगो केवली होदि ॥६५॥ [3]

---

१. 'सजोगिजिणो' इसके स्थान पर 'सजोगो इदि' ऐसा पाठान्तर है।

२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १९३, गाथा १२५

३. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २००, गाथा १२६

शीलेश्यं संप्राप्तो निरुद्धनिश्शेषास्रवो जीवः ।
कर्मरजोविप्रमुक्तो गतयोगः केवली भवति ॥६५॥

टीका – अठारह हजार शील का स्वामित्वपना कौं प्राप्त भया । बहुरि निरोधे हैं समस्त आस्रव जानैं; तातैं नवीन बध्यमान कर्मरूपी रज करि सर्वथा रहित भया । बहुरि मन, वचन, काय योग करि रहितपना तैं अयोग भया । सो नाहीं विद्यमान है योग जाकैं, असा अयोग अर अयोग सोई केवली, सो अयोग केवली भगवान परमेष्ठी जीव असा है ।

या प्रकार कहे चौदह गुणस्थान, तिनिविषैं अपने आयु बिना सात कर्मनि की गुणश्रेणी निर्जरा संभवै है । ताका अर तिस गुणश्रेणी निर्जरा का काल विशेष कौं गाथा दोय करि कहैं हैं –

सम्मत्तुप्पत्तीये, सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवगे, कसायउवसामगे य उवसंते ॥६६॥

खवगे य खीणमोहे, जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा ।
तव्विवरीया काला, संखेज्जगुणक्कमा होंति ॥६७॥

सम्यक्त्वोत्पत्तौ, श्रावकविरते अनंतकर्मांशे ।
दर्शनमोहक्षपके, कषायोपशामके चोपशांते ॥६६॥

क्षपके च क्षीणमोहे, जिनेषु द्रव्याण्यसंख्यगुणितक्रमाणि ।
तद्विपरीताः कालाः संख्यातगुणक्रमा भवंति ॥६७॥

टीका – प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौं कारण तीन करणनि के परिणामनि का अंत समय, तीहिविषैं प्रवर्तमान असा जो विशुद्धता का विशेष धरैं मिथ्यादृष्टि जीव, ताकैं आयु बिना अवशेष ज्ञानावरणादि कर्मनि का जो गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य है; तातैं देशसंयत कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है । बहुरि तातैं सकलसंयमी के गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । तातैं अनंतानुबंधी कषाय का विसंयोजन करनहारा जीव कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । तातैं दर्शन मोह का क्षय करने वाले कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है । बहुरि तातैं कषाय उपशम करते वाले अपूर्वकरणादि

तीन गुणस्थानवर्ती जीवनि कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती जीव कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं क्षपक श्रेणीवाले अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती जीव कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीव कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं समुद्घात रहित जो स्वस्थान केवली जिन, ताकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं समुद्घात सहित जो स्वस्थान समुद्घात केवली जिन, ताकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। ऐसैं ग्यारह स्थानकनि विषैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य के स्थान-स्थान प्रति असंख्यातगुणापना कह्या।

अब तिस गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य का प्रमाण कहिए है। कर्मप्रकृतिरूप परिणए पुद्गल परमाणू, तिनका नाम इहां द्रव्य जानना। अनादि संसार के हेतु तैं बंध का संबंध करि बंधरूप भया जो जगच्छ्रेणी का घनमात्र लोक, तींहि प्रमाण एक जीव के प्रदेशनि विषैं तिष्ठता ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृति संबंधी सत्तारूप सर्वद्रव्य, सो आगै कहिएगा जो त्रिकोण रचना, ताका अभिप्राय करि किंचित् ऊन ड्योढ गुणहानि आयाम का प्रमाण करि समयप्रबद्ध का प्रमाण कौं गुणैं जो प्रमाण होइ, तितना है।

बहुरि इस विषैं आयु कर्म का स्तोक द्रव्य है, तातैं या विषैं किंचित् ऊन किए अवशेष द्रव्य सात कर्मनि का है। तातैं याकौं सात का भाग दीए एक भाग प्रमाण ज्ञानावरण कर्म का द्रव्य हो है। बहुरि याकौं देशघाती, सर्वघाती द्रव्य का विभाग के अर्थि जिनदेव करि देखा यथासंभव अनंत, ताका भाग दीए एक भाग प्रमाण तौ सर्वघाती केवलज्ञानावरण का द्रव्य है। अवशेष बहुभाग प्रमाण मति-ज्ञानादि देशघाति प्रकृतिनि का द्रव्य है। बहुरि इस देशघाती द्रव्य कौं मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, ज्ञानावरणरूप च्यारि देशघाती प्रकृतिनि का विभाग के अर्थि च्यारि का भाग दीए एक भाग प्रमाण मतिज्ञानावरण का द्रव्य हो है।

भावार्थ – इहां मतिज्ञानावरण के द्रव्य की गुणश्रेणी का उदाहरण करि कथन कीया है। तातैं मतिज्ञानावरण द्रव्य का ही ग्रहण कीया है। ऐसैं ही अन्य प्रकृतिनि का भी यथासंभव जानि लेना। बहुरि इस मतिज्ञानावरण द्रव्य कौं अपकर्षण भागहार का भाग देइ, तहां बहुभाग तौ तैसैं ही तिष्ठै है; ऐसा जानि एक भाग का ग्रहण कीया।

उदयावली का द्वितीय समय संबंधी द्वितीय निषेक का प्रमाण आवै है। असें ही क्रम तैं उदयावली का अंत निषेक पर्यन्त एक-एक चय घटाए, एक घाटि आवली प्रमाण चय उदयावली का प्रथम निषेक विषै घटें उदयावली का अंत का निषेक का प्रमाण हो है। याकौं अंकसंदृष्टि करि व्यक्ति करिए है।

जैसें उदयावली विषै दीया द्रव्य दोय सै, बहुरि गच्छ आवली, ताका प्रमाण आठ, बहुरि एक-एक गुणहानि विषै जो निषेकनि का प्रमाण सो गुणहानि का आयाम, ताका प्रमाण आठ, याकौं दूणा कीए दो गुणहानि का प्रमाण सोलह, तहां सर्वद्रव्य दोय सै कौं आवली प्रमाण गच्छ आठ का भाग दीए पचीस मध्यधन का प्रमाण होइ। याकौं एक घाटि आवली का आधा साढा तीन, सो निषेकहार सोलह में घटाए साढ बारा, ताका भाग दीए दोय पाए, सो चय का प्रमाण जानना। याकौं दोगुणहानि सोलह, ताकरि गुणैं, बत्तीस पाए, सो प्रथम निषेक का प्रमाण है। यामैं एक-एक चय घटाए द्वितीयादि निषेकनि का तीस आदि प्रमाण हो है। असें एक घाटि आवली प्रमाण चय के भये चौदह, ते प्रथम निषेक विषै घटाए, अवशेष अठारह अंत निषेक का प्रमाण हो है। इनि सर्वनि कौं जोडैं ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८ दोय सै (२००) सर्वद्रव्य का प्रमाण हो है। असें ही अर्थसंदृष्टि करि पूर्वोक्त यथार्थ स्वरूप अवधारण करना।

बहुरि यातैं परें उदयावली काल पीछैं अंतर्मुहूर्तमात्र जो गुणश्रेणी का आयाम कहिए काल प्रमाण, ताविषैं दीया हुवा द्रव्य, सो तिस काल का प्रथमादि समय विषैं जे पूर्व निषेक थे, तिनकी साथि क्रम तैं असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा होई निर्जरै है। सो गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात लोक का भाग दीए बहुभाग प्रमाण था, सो सम्यक्त्व की उत्पत्तिरूप करणकाल संबंधी गुणश्रेणी का आयाम अंतर्मुहूर्तमात्र, तिसविषैं असंख्यात-असंख्यात गुणी अनुक्रम करि निषेक रचना करिए है।

इहां सम्यक्त्व की उत्पत्ति संबंधी गुणश्रेणी का कथन मुख्य कीया, तातैं तिस ही के काल का ग्रहण कीया है। तहां **'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति'** इस करण सूत्र करि प्रक्षेप जो शलाका, तिनिका जो योग कहिए जोड, ताकरि उद्धृत कहिए भाजित, असा जो मिश्रपिंड कहिए मिल्या हुवा द्रव्य का जो प्रमाण, सो प्रक्षेप कहिए। अपनी-अपनी शलाकनि का प्रमाण, ताका गुणक कहिए

भावार्थ - जैसें अन्न का राशि में स्यों च्यारि का भाग देइ, कोई कार्य के अर्थि एक भाग जुदा काढिए, अवशेष बहुभाग जैसें थे तैसें ही राखिए । तैसें इहां मतिज्ञानावरणरूप द्रव्य में स्यों अपकर्षण भागहार का भाग देइ, एकभाग कौं अन्यरूप परणमावने के अर्थि जुदा ग्रहण कीया । अवशेष बहुभाग प्रमाण द्रव्य,जैसें पूर्व अपनी स्थिति के समय-समय संबंधी निषेकनि विषें तिष्ठे था, तैसें ही रह्या । इहां कर्म परमाणुरूप राशि विषें स्थिति घटावने कौं जिस भागहार का भाग संभवै, ताका नाम अपकर्षण भागहार जानना । सो इस अपकर्षण भागहार का प्रमाण, आगे कर्मकांड विषें पंच भागहार चूलिका अधिकार विषें कहैंगे, तहां जानना । बहुरि विवक्षित भागहार का भाग दीए, तहां एक भाग बिना अवशेष सर्व भागनि के समूह का नाम बहुभाग जानना । सो अपकर्षण भागहार का भाग देई, बहुभाग कौं तैसें ही राखि, एकभाग कौं जुदा ग्रह्या था, ताकौं कैसें-कैसें परिणमाया सो कहैं हैं ।

तिस एक भाग कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग देई, तहां बहुभाग तौ उपरितन स्थिति विषें देना, सो एक जायगा स्थापै, बहुरि अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं बहुरि असंख्यात लोक का भाग देइ, तहां बहुभाग तौ गुणश्रेणी का आयाम विषें देना, सो एक जायगा स्थापै अवशेष एक भागहार रह्या, सो उदयावली विषें दीजिए है ।

अब उदयावली, गुणश्रेणी, उपरितन स्थिति विषें दीया हुवा द्रव्य कैसें परिणमै हैं ? सो कहिए है । तहां उदयावली विषें दीया हुआ द्रव्य वर्तमान समय तैं लगाइ एक आवली प्रमाण काल विषें पूर्व जे आवली के निषेक थे, तिनकी साथि अपना फल कौं देइ खिरै है ।

तहां आवली का काल के प्रथमादि समयनि विषें केता-केता द्रव्य उदय आवै है ? सो कहैं हैं - एक समय संबंधी जेता द्रव्य का प्रमाण, ताका नाम निषेक जानना । तहां उदयावली विषें दीया जो द्रव्य, ताकौं उदयावली काल के समयनि का जो प्रमाण, ताका भाग दीए बीचि के समय संबंधी द्रव्यरूप जो मध्यधन, ताका प्रमाण आवै है । ताकौं एक घाटि आवली का आधा प्रमाण करि हीन ऐसा जो निषेकहार कहिए गुणहानि आयाम का प्रमाण तैं दूणा जो दो गुणहानि का प्रमाण, ताका भाग दीए चय का प्रमाण हो है । बहुरि इस चय कौं दोगुणहानि करि गुणें, उदयावली का प्रथम समय संबंधी प्रथम निषेक का प्रमाण आवै है । यामैं एक चय घटाए,

गुणकार हो है । अथवा यहु गुण्य ही है, ते प्रक्षेप गुणकार हो हैं, ऐसैं भी करिए तौ दोष नाहीं, जातैं दोऊनि का प्रयोजन एक है । सो इहां तिस गुणश्रेणी आयाम का प्रथम समय विषैं जेता द्रव्य दीया, तीहि प्रमाण एक शलाका है । बहुरि तातैं दूसरे समय तैसैं ही असंख्यात गुणी शलाका हैं । तातैं तीसरे समय असंख्यातगुणी शलाका हैं । ऐसैं असंख्यातगुणा अनुक्रम करि अंत समय विषैं यथायोग्य असंख्यातगुणी शलाका हो हैं । इनि सर्व प्रथमादि समय संबंधी शलाकानि का जोड दीए, जो प्रमाण होइ, सो प्रक्षेपयोग जानना । ताका भाग गुणश्रेणी विषैं दीया हुवा द्रव्य कौं लीए जो प्रमाण आवै, ताकौं प्रक्षेपक, जो अपना-अपना समय संबंधी शलाका का प्रमाण, ताकरि गुणें, अपने-अपने द्रव्य का प्रमाण आवै है । ऐसैं जिस-जिस समय विषैं जेता-जेता द्रव्य का प्रमाण आवै है, तितना-तितना द्रव्य तिस-तिस समय विषैं निर्जरै है । या प्रकार गुणश्रेणी आयाम विषैं सर्व गुणश्रेणी विषैं दीया हुवा जो द्रव्य, सो निर्जरै है ।

अब इस कथन कौं अंकसंदृष्टि करि व्यक्त करिए है ।

जैसैं गुणश्रेणी विषैं दीया हुवा द्रव्य का प्रमाण छ सै असी, गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण च्यारि, असंख्यात का प्रमाण च्यारि । तहां प्रथम समय संबंधी जेता द्रव्य, तीहि प्रमाण शलाका एक, दूसरा समय संबंधी तातैं असंख्यात गुणी शलाका च्यारि (४), तीसरा समय संबंधी तातैं असंख्यातगुणी शलाका सोलह (१६), चौथा समय संबंधी तातैं असंख्यातगुणी शलाका चौसठि (६४); सो इनि शलाकनि का नाम प्रक्षेप है । इनिका जो योग कहिये जोड, सो पिच्यासी हो है । ताकरि मिश्रपिंड जो सबनि का मिल्या हुआ द्रव्य छ सै असी, ताकौं भाग दीजिये, तब आठ पाये । बहुरि यहु पाया हुआ राशि, ताकौं प्रक्षेप कहिए । अपनी-अपनी शलाका का प्रमाण; ताकरि गुणिये है । तहां आठ कौं एक करि गुणैं प्रथम समय संबंधी निषेक का प्रमाण आठ (८) हो है । बहुरि च्यारि कौं गुणैं द्वितीय निषेक का प्रमाण बत्तीस हो है । बहुरि सोलह करि गुणें तृतीय निषेक का प्रमाण एक सौ अठाईस (१२८) हो है । बहुरि चौसठि करि गुणैं अंत निषेक का प्रमाण पांच सै बारह (५१२) हो है । ऐसैं सर्व समयनि विषैं ८, ३२, १२८, ५१२ मिलि करि छ सै असी (६८०) द्रव्य निर्जरै हैं ।

भावार्थ – लोक विषैं जाकौं विसवा कहिए, ताका नाम इहां शलाका है । बहुरि जाकौं लोक विषैं सीर का द्रव्य कहिए, ताका नाम इहां मिश्रपिंड कह्या है, सो

सब विसवा मिलाइ, इनिका भाग देइ अपना-अपना विसवानि करि गुणें, जैसें अपना-अपना द्रव्य का प्रमाण आवै, तैसें इहां समय-समय विषैं जेता-जेता द्रव्य निर्जरै, ताका प्रमाण वर्णन किया है। ऐसें इहां सम्यक्त्व की उत्पत्तिरूप करण का गुणश्रेणी आयाम विषैं वर्णन उदाहरण मात्र किया; ऐसें ही अन्यत्र भी जानना। तहां काल का वा द्रव्य का विशेष है, सो यथासंभव जानना।

बहुरि यातैं आगैं जो उपरितन स्थिति विषैं दीया द्रव्य, सो विवक्षित मतिज्ञानावरण की स्थिति के निषेक पूर्वैं थे, तिन विषैं इस गुणश्रेणी आयाम के काल कैं पीछै अनन्तर समय संबंधी जो निषेक, तातैं लगाइ अंत विषैं अतिस्थापनावली के निषेकनि कौं छोडि जे पूर्वैं निषेक थे, तिनि विषैं क्रम तैं दीजिए हैं। पूर्वैं तिनि निषेकनि कौं द्रव्य विषैं याकौं भी क्रम करि मिलाइए है। तहां नानागुणहानि विषैं पहला-पहला निषेकनि विषैं आधा-आधा दीजिये, द्वितीयादि निषेकनि विषैं चय हीन का अनुक्रम करि दीजिए, सो इस वर्णन विषैं त्रिकोण रचना संभवै है। ताका विशेष आगैं करेंगे। इहां प्रयोजन का अभाव है, तातैं विशेष न कीया है। ऐसें जो एक भाग मात्र जुदा द्रव्य ग्रह्या था, ताकौं वर्तमान समय तैं लगाइ उदयावली का काल, ताके पीछैं गुणश्रेणी आयाम का काल, ताके पीछैं अवशेष सर्वस्थिति का काल, अंत विषैं अतिस्थापनावली बिना सो उपरितनस्थिति का काल, तिनके निषेक पूर्वैं थे, तिनिविषैं मिलाइए है; सो यह मिलाया हुवा द्रव्य पूर्व निषेकनि की साथि उदय होइ निर्जरै है; ऐसा भाव जानना।

बहुरि पूर्वै कह्या जो-जो गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य, सो-सो श्रावकादि दश स्थानकनि विषैं असंख्यात-असंख्यात गुणा है, सो कैसे ?

ताका समाधान – तिस गुणश्रेणी द्रव्य कौं कारणभूत जो अपकर्षण भागहार, तिनके अधिक-अधिक विशुद्धता का निमित्त करि असंख्यातगुणा घाटिपना है, तातैं तिस गुणश्रेणी द्रव्य कैं असंख्यातगुणा अनुक्रम की प्रसिद्धता है।

भावार्थ – श्रावकादि दश स्थानकनि विषैं विशुद्धता अधिक-अधिक है, तातैं जो पूर्वस्थान विषैं अपकर्षण भागहार का प्रमाण था, ताके असंख्यातवें भाग उत्तर स्थान विषैं अपकर्षण भागहार का प्रमाण जानना। सो जेता भागहार घटता होइ, तेता लब्धराशि का प्रमाण अधिक होइ। तातैं इहां लब्धराशि जो गुणश्रेणी का द्रव्य, सो भी क्रम तैं असंख्यातगुणा हो है।

बहुरि गुणश्रेणी आयाम का काल तातैं विपरीत उल्टा अनुक्रम धरै है, सोई कहिए है – 'समुद्घात जिनकौ आदि देकरि विशुद्ध मिथ्यादृष्टि पर्यंत गुणश्रेणी आयाम का काल क्रम करि संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है'। समुद्घात जिनका गुणश्रेणी आयामकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। तातैं स्वस्थान जिनका गुणश्रेणी आयामकाल संख्यात गुणा है। तातैं क्षीणमोह का संख्यातगुणा है। ऐसैं ही क्रम तैं पीछे तैं क्षपकश्रेणी वाले आदि विषैं संख्यात-संख्यात गुणा जानना।

तहां अंत विषैं बहुत बार संख्यातगुणा भया, तौ भी करण परिणाम संयुक्त विशुद्ध मिथ्यादृष्टि कैं गुणश्रेणी आयाम का काल अंतर्मुहूर्तमात्र ही है, अधिक नाहीं। काहे तैं?

जातैं अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं। तहां जघन्य अंतर्मुहूर्त एक आवली प्रमाण है, सो सर्व तैं स्तोक है। बहुरि यातैं एक समय अधिक आवली तैं लगाइ एक-एक समय बधता मध्यम अंतर्मुहूर्त होइ। अंत का उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त एक समय घाटि दोय घटिकारूप मुहूर्त प्रमाण है। तहां ताके उच्छ्वास तीन हजार सात सै तेहत्तरि अर एक उच्छ्वास की आवली संख्यात, यातैं दोय बार संख्यातगुणी आवली प्रमाण उत्कृष्ट मुहूर्त है। बहुरि – 'आदि अंते सुद्धे वड्ढिहदे रूवसंजुदे ठाणे' इस सूत्र करि आवलीमात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त कौं दोय बार संख्यातगुणित आवली प्रमाण उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त विषैं घटाइ, वृद्धि का प्रमाण एक समय का भाग दीए जो प्रमाण होइ, तामैं एक और जोडैं जो प्रमाण होइ, तितने अंतर्मुहूर्त के भेद संख्यात आवली प्रमाण हो हैं।

आगैं ऐसैं कर्म सहित जीवनि का गुणस्थानकनि का आश्रय लीए स्वरूप अर तिस-तिस का कर्म की निर्जरा का द्रव्य वा काल आयाम का प्रमाण, ताकौं निरूपण करि अब निर्जरे हैं सर्व कर्म जिनकरि ऐसे जे सिद्ध परमेष्ठी, तिनका स्वरूप कौं अन्यमत के विवाद का निराकरण लीए गाथा दोय करि कहैं हैं –

अट्ठविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६८॥[1]

अष्टविधकर्मविकलाः, शीतीभूता निरंजना नित्याः।
अष्टगुणाः कृतकृत्याः, लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥६८॥

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०१, सूत्र २३, गाथा १२७

टीका – केवल कहे जे गुणस्थानवर्ती जीव, तेई नाहीं है सिद्ध कहिये अपने आत्मस्वरूप की प्राप्तिरूप लक्षण धरें जो सिद्धि, ताकरि संयुक्त मुक्त जीव भी लोक विषें हैं। ते कैसे हैं ? **अष्टविधकर्मविकलाः** कहिये अनेक प्रकार उत्तर प्रकृतिरूप भेद जिन विषें गर्भित ऐसे जो ज्ञानावरणादिक आठ प्रकार कर्म आठ गुणनि के प्रतिपक्षी, तिनका सर्वथा क्षय करि प्रतिपक्ष रहित भए हैं। कैसे आठ कर्म आठ गुणनि के प्रतिपक्षी हैं ? सो कहै हैं –

उक्तं च

मोहो खाइय सम्मं, केवलणाणं च केवलालोयं।
हणदि उ आवरणदुगं, अणंतविरयं हणेदि विग्घं तु ॥
सुहमं च णामकम्मं, हणेदि, आऊ हणेदि अवगहणं।
अगुरुलहुगं गोदं अव्वाबाहं हणेइ वेयणियं ॥

इनिका अर्थ – मोहकर्म क्षायिक सम्यक्त्व कौं घातै है। केवलज्ञान अर केवलदर्शन कौं आवरणद्विक जो ज्ञानावरण-दर्शनावरण, सो घातै है। अनंतवीर्य कौं विघन जो अंतराय कर्म, सो घातै है। सूक्ष्मगुण कौं नाम कर्म घातै है। आयुकर्म अवगाहन गुण कौं घातै है। अगुरुलघु कौं गोत्र कर्म घातै है। अव्याबाध कौं वेदनीयकर्म घातै है। ऐसैं आठ गुणनि के प्रतिपक्षी आठ कर्म जानने।

इस विशेषण करि जीव के मुक्ति नाहीं है, ऐसा मीमांसक मत, बहुरि सर्वदा कर्ममलनि करि स्पर्शा नाहीं, तातैं सदाकाल मुक्त ही है, सदा ही ईश्वर है ऐसा सदाशिव मत, सो निराकरण किया है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? **शीतीभूता** कहिये जन्म-मरणादिरूप सहज दुःख अर रोगादिक तैं निपज्या शरीर दुःख अर सर्पादिक तैं उपज्या आगंतुक दुःख अर आकुलतादिरूप मानसदुःख इत्यादि नानाप्रकार संसार संबंधी दुःख, तिनकी जो वेदना, सोई भया आतप, ताका सर्वथा नाश करि शीतल भए हैं; सुखी भए हैं। इस विशेषण करि मुक्ति विषें आत्मा के सुख का अभाव है; ऐसें कहता जो सांख्यमत, सो निराकरण कीया है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? **निरंजनाः** कहिये नवीन आस्रवरूप जो कर्ममल, सो ही भया अंजन, ताकरि रहित हैं। इस विशेषण करि मुक्ति भए पीछैं, बहुरि कर्म अंजन का संयोग करि संसार हो है; ऐसैं कहता जो सन्यासी मत, सो निराकरण कीया है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? **नित्याः** कहिये यद्यपि समय-समयवर्ती अर्थपर्यायनि करि परिणमए सिद्ध अपने विषैं उत्पाद, व्यय कौं करें हैं; तथापि विशुद्ध चैतन्य स्वभाव का सामान्यभावरूप जो द्रव्य का आकार, सो अन्वयरूप है, भिन्न न हो है, ताके माहात्म्य तैं सर्वकाल विषैं अविनाशीपणा कौं आश्रित हैं, तातैं ते सिद्ध नित्यपना कौं नाही छोडै हैं। इस विशेषण करि क्षण-क्षण प्रति विनाशीक चैतन्य के पर्याय ते, एक संतानवर्ती हैं, परमार्थ तैं कोई नित्य द्रव्य नाही है; ऐसैं कहता जो बौद्धमती की प्रतिज्ञा, सो निराकरण करी है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? **अष्टगुणाः** कहिए क्षायिक सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघुत्व, अव्याबाध नाम धारक जे आठ गुण, तिनकरि संयुक्त हैं। सो यहु विशेषण उपलक्षणरूप है, ताकरि तिनि गुणनि के अनुसार अनंतानंत गुणनि का तिन ही विषैं अंतर्भूतपना जानना। इस विशेषण करि ज्ञानादि गुणनि का अत्यन्त अभाव होना, सोई आत्मा कैं मुक्ति है ऐसैं कहता जो नैयायिक अर वैशेषिक मत का अभिप्राय, सो निराकरण कीया है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? **कृतकृत्याः** कहिए संपूर्ण कीया है कृत्य कहिए सकल कर्म का नाश अर ताका कारण चारित्रादिक जिनकरि असे हैं। इस विशेषण करि ईश्वर सदा मुक्त है, तथापि जगत का निर्मापण विषैं आदर कीया है, तींहि करि कृतकृत्य नाही, वाकैं भी किछू करना है, असे कहता जो ईश्वर सृष्टिवाद का अभिप्राय, सो निराकरण कीया है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? **लोकाग्रनिवासिनः** कहिए विलोकिए हैं जीवादि पदार्थ जाविषैं, असा जो तीन लोक, ताका अग्रभाग, जो तनुवात का भी अंत, तींहिविषैं निवासी हैं; तिष्ठै हैं। यद्यपि कर्म क्षय जहां कीया, तिस क्षेत्र तैं ऊपरि ही कर्मक्षय के अनंतरि ऊर्ध्वगमन स्वभाव तैं ते गमन करैं हैं; तथापि लोक का अग्रभाग पर्यंत ऊर्ध्वगमन हो है। गमन का सहकारी धर्मास्तिकाय के अभाव तैं तहां तैं ऊपरि गमन न हो हैं, असैं लोक का अग्रभाग विषैं ही निवासीपणा तिन सिद्धनि के युक्त है। अन्यथा कहिए तौ लोक-अलोक के विभाग का अभाव होइ। इस विशेषण करि आत्मा के ऊर्ध्वगमन स्वभाव तैं मुक्त अवस्था विषैं कहीं भी विश्राम के अभाव तैं ऊपरि-ऊपरि गमन हुवा ही करै है; असैं कहता जो मांडलिक मत, सो निराकरण कीया है।

आगें श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव ते 'अष्टविधकर्मविकला:' इत्यादि सात विशेषणनि का प्रयोजन दिखावै हैं —

सदसिवसंखो मक्कडि, बुद्धो णैयाइयो य वेसेसी ।
ईसरमंडलिदंसण,–विदूसणट्ठं कयं एदं ।। ६९ ।।

सदाशिवः सांख्यः मस्करी, बुद्धो नैयायिकश्च वैशेषिकः ।
ईश्वरमंडलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतत् ।। ६९ ।।

टीका — सदाशिवमत, सांख्यमत, मस्करी सन्यासी मत, बौद्धमत, नैयायिक मत, वैशेषिकमत, ईश्वरमत, मंडलिमत ए जु दर्शन कहिए मत, तिनके दूषने के अर्थि ए पूर्वोक्त विशेषण कीए हैं ।

उक्तं च —

सदाशिवः सदाकर्म, सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम् ।
मस्करी किल मुक्तानां, मन्यते पुनरागतिम् ।।
क्षणिकं निर्गुणं चैव, बुद्धो यौगश्च मन्यते ।
कृतकृत्यं तमीशानो, मंडली चोर्ध्वगामिनम् ।।

इनिके अर्थ — सदाशिव मतवाला सदा कर्म रहित मानैं है । सांख्य मतवाला मुक्त जीव कौं सुख रहित मानै है । मस्करी सन्यासी, सो मुक्त जीव कैं संसार विषैं बहुरि आवना मानै है । बहुरि बौद्ध अर योग मतवाले क्षणिक अर निर्गुण आत्मा कौं मानै हैं । बहुरि ईशान जो सृष्टिवादी, सो ईश्वर कौं अकृतकृत्य मानै हैं । बहुरि मांडलिक आत्मा कौं ऊर्ध्वगमन रूप ही मानै हैं । असैं माननेवाले मतनि का पूर्वोक्त विशेषण तें निराकरण करि यथार्थ सिद्धपरमेष्ठी का स्वरूप निरूपण कीया । ते सिद्ध भगवान आनन्दकर्ता होहु ।

इति श्रीआचार्य नेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रन्थ की जीव
तत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि **सम्यग्ज्ञानचंद्रिका** नाम
भाषा टीका के विषैं जीव कांडविषैं कहीं जे बीस प्ररूपणा
तिन विषैं **गुणस्थान प्ररूपणा** है नाम जाका
असा **प्रथम** अधिकार संपूर्ण भया ।।१।।

दूसरा अधिकार : जीवसमास प्ररूपण

कर्मघातिया जीति जिन, पाय चतुष्टय सार[1] ।
विश्वस्वरूप प्रकाशियो, नमौं अजित सुखकार[2] ।।

टीका – अैसें गुणस्थान संबन्धी संख्यादिक प्ररूपणा के अनन्तरि जीवसमास प्ररूपणा कौं रचता संता निरुक्ति पूर्वक सामान्यपनें तिस जीवसमास का लक्षण कहैं है –

जेहिं अणेया जीवा, णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था, जीवसमासा त्ति विण्णेया ।। ७० ।।

यैरनेके जीवाः, ज्ञायंते बहुविधा अपि तज्जातयः ।
ते पुनः संगृहितार्था, जीवसमासा इति विज्ञेयाः ।। ७० ।।

टीका – **यैः** कहिए जिनि समान पर्यायरूप धर्मनि करि **जीवा** कहिए जीव हैं, ते **अनेके अपि** कहिए यद्यपि बहुत हैं, **बहुविधाः** कहिए बहुत प्रकार हैं, तथापि **तज्जातयः** कहिए विवक्षित सामान्यभाव करि एकठा करने तैं एक जाति विषैं प्राप्त कीए हुए **ज्ञायंते** कहिए जानिए ते कहिये जीव समान पर्यायरूप **धर्मसंगृहीतार्थाः** कहिए अंतर्भूत करी है अनेक व्यक्ति जिनिकरि अैसे **जीवसमासाः** कहिए जीवसमास हैं, अैसें जानना ।

भावार्थ – जैसें एक गऊ जाति विषैं अनेक खांडी, मुंडी, सांवरी गऊरूप व्यक्ति सास्नादिमत्त्व समान धर्म करि अंतर्गर्भित हो है । तैसें एकेंद्रियत्वादि जाति विषैं अनेक पृथ्वीकायादिक व्यक्ति जिनि एकेंद्रियत्वादि युक्त लक्षणनि करि अंतर्गर्भित करिए, तिनिका नाम जीवसमास है । काहे तैं ? जातैं **'जीवाः समस्यंते यैर्येषु वा ते जीवसमासाः'** जीव हैं ते संग्रहरूप करिए जिनि समानधर्मनि करि वा जिनि समान लक्षणनि विषैं ते वे समानरूप लक्षण जीवसमास हैं, अैसी निरुक्ति हो है । इस विशेषण करि समस्त संसारी जीवनि का संग्रहणरूप ग्रहण करना है प्रयोजन जाका, अैसा जीवसमास का प्ररूपण है; सो प्रारंभ कीया है, अैसा जानना । अथवा अन्य अर्थ कहै हैं **'जीवा अज्ञेया अपि'** कहिए यद्यपि जीव अज्ञात है । काहे तैं ? **बहुविधत्वात्** कहिए जातैं जीव बहुत प्रकार हैं । नानाप्रकार आत्मा की पर्यायरूप व्यक्ति तैं

---

१. 'सार' के स्थान पर 'अनन्त' ऐसा पाठान्तर है ।
२. 'सुखकार' के स्थान पर 'शिवसंत' ऐसा पाठान्तर है ।

समस्तपना करि केवलज्ञान विना न जानिये है, यातैं सर्वपर्यायरूप जीव जानने कौं असमर्थपना है, तथापि **तज्जातयः** कहिए सोई एकेन्द्रियत्वादिरूप है जाति जिनकी। बहुरि **संगृहीतार्थाः** कहिए समस्तपना करि गर्भित कीए हैं, एकठे कीये हैं व्यक्ति जिनिकरि, ऐसे जीव हैं, तेई जीवसमास हैं; ऐसा जानना। अथवा अन्य अर्थ कहै हैं – **संगृहीतार्थाः** कहिए समस्तपना करि गर्भित करी है, एकठी करी है व्यक्ति जिन करि ऐसी **तज्जातयः** कहिए ते जाति हैं। जातैं विशेष विना सामान्य न होइ। काहे तैं ? जातैं असा वचन है – **'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्'** याका अर्थ – विशेष रहित जो सामान्य, सो ससा के सींग समान अभावरूप है, तातैं संगृहीतार्थ जे वे जाति, तिनका कारणभूत जातिनि करि जीव प्राणी हैं, ते **'अनेकेऽपि'** कहिए यद्यपि अनेक हैं, **बहुविधा अपि** कहिए बहुत प्रकार हैं; तथापि ज्ञायंते कहिए जानिए हैं, ते वे जाति जीवसमास हैं, असा जानना।

भावार्थ – जीवसमास शब्द के तीन अर्थ कहे। तहां एक अर्थ विषैं एकेंद्रिय-युक्तत्वादि समान धर्मनि कौं जीवसमास कहे। एक अर्थ विषैं एकेंद्रियादि जीवनि कौं जीवसमास कहे। एक अर्थ विषैं एकेंद्रियत्वादि जातिनि कौं जीवसमास कहे, असैं विवक्षा भेद करि तीन अर्थ जानने।

आगे जीवसमास की उत्पत्ति का कारण बहुरि जीवसमास का लक्षण कहैं हैं –

तसचदुजुगाणमज्झे, अविरुद्धेहिं जुदजादिकम्मुदये।
जीवसमासा होंति हु, तब्भवसारिच्छसामण्णा॥ ७१॥

त्रसचतुर्युगलानां मध्ये, अविरुद्धैर्युतजातिकर्मोदये।
जीवसमासा भवंति हि, तद्भवसादृश्यसामान्याः॥ ७१॥

टीका – त्रस-स्थावर, बहुरि बादर-सूक्ष्म, बहुरि पर्याप्त-अपर्याप्त, बहुरि प्रत्येक-साधारण ऐसैं नाम कर्म की प्रकृतिनि के च्यारि युगल हैं। तिनिके विषैं यथासंभव परस्पर विरोध रहित जे प्रकृति, तिनिकरि सहित मिल्या ऐसा जो एकेंद्रियादि जातिरूप नाम कर्म का उदय, ताकौं होते संतैं प्रकट भए ऐसे तद्भवसादृश्य सामान्य-रूप जीव के धर्म, ते जीवसमास हैं।

तहां तद्भव सामान्य का अर्थ कहैं है – विवक्षित एकद्रव्य विषैं प्राप्त जो त्रिकाल संबंधी पर्याय, ते भवंति कहिए विद्यमान जाविषैं होइ, सो तद्भव सामान्य है। ऊर्ध्वता सामान्य का नाम तद्भव सामान्य है। जहां अनेक काल संबंधी पर्याय का ग्रहण होइ, तहां ऊर्ध्वता सामान्य कहिए। जातैं काल के समय हैं, ते ऊपरि-ऊपरि क्रम तैं प्रवर्तै हैं, युगपत् चौड़ाईरूप नाहीं प्रवर्तै हैं; तातैं इहां नाना काल विषैं एक विवक्षित व्यक्ति विषैं प्राप्त जे पर्याय, तिनिका अन्वयरूप ऊर्ध्वता सामान्य है; सो एक द्रव्य के आश्रय जो पर्याय, सो अन्वयरूप है। जैसैं स्थास, कोश, कुशूल, घट, कपालक आदि विषैं माटी अन्वयरूप आकार धरैं द्रव्य है।

भावार्थ – माटी क्रम तैं इतने पर्यायरूप परिणया। प्रथम स्थास कहिए पिंडरूप भया। बहुरि कोश कहिए चाक के ऊपरि ऊभा कीया, पिंडरूप भया। बहुरि कुशूल कहिए हाथ अगूंठनि करि कीया आकाररूप भया। बहुरि घट कहिए घडारूप भया। बहुरि कपाल कहिए फूटया घडारूप भया। ऐसैं एक माटीरूप व्यक्ति विषैं अनेक कालवर्ती पर्याय हो हैं। तिनि सबनि विषैं माटीपना पाइए है। ताकरि सर्वत्र माटी द्रव्य अवलोकिए है। ऐसैं इहां भी अनेक कालवर्ती अनेक अवस्थानि विषैं एकेंद्रिय आदि जीव द्रव्यरूप व्यक्ति, सो अन्वयरूप द्रव्य जानना। सो याका नाम तद्भव सामान्य वा ऊर्ध्वता सामान्य है। तीहि तद्भव सामान्य करि उपलक्षणरूप संयुक्त ऐसैं जो सादृश्य सामान्य कहिए, तिर्यक् सामान्य ते जीवसमास हैं। सो एक काल विषैं नाना व्यक्तिनि कौं प्राप्त भया ऐसा एक जातिरूप अन्वय, सो तिर्यक् सामान्य है। याका अर्थ यहु – जो समान धर्म का नाम सादृश्य सामान्य है। जैसैं खांडी, मूंडी, सांवरी इत्यादि नाना प्रकार की व्यक्तिनि विषैं गऊपणा समान धर्म है।

भावार्थ – एक कालवर्ती खांडा, मूंडा, सांवला इत्यादि अनेक बैल, तिनि विषैं बैलपना समान धर्म है; सो यहु सादृश्य सामान्य है। तैसैं एक कालवर्ती पृथ्वीकायिक आदि नाना प्रकार जीवनि विषैं एकेंद्रिय युक्तपना आदि धर्म हैं, ते समान परिणामरूप हैं; तातैं इनिकौं सादृश्य सामान्य कहिए। ऐसैं जे सादृश्य सामान्य, तेई जीवसमास हैं; ऐसा तात्पर्य जानना। बहुरि तिनि च्यारि युगलनि की आठ प्रकृतिनि विषैं एकेंद्रिय जाति नाम कर्म सहित त्रस नाम कर्म का उदय विरोधी है। बहुरि द्वींद्रियादिक जातिरूप नाम कर्म की च्यारि प्रकृतिनि का उदय सहित स्थावर-सूक्ष्म-साधारण नाम प्रकृतिनि का उदय विरोधी है, अन्य कर्म का

उदय अविरोधी है । बहुरि तैसें ही त्रस नाम कर्म सहित स्थावर-सूक्ष्म-साधारण नाम कर्म का उदय विरोधी है, अन्य कर्म का उदय अविरोधी है । बहुरि स्थावर नाम कर्म सहित त्रस नाम कर्म का उदय एक ही विरोधी है, अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है । बहुरि बादर नाम कर्म सहित सूक्ष्म नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष प्रकृतिनि का उदय अविरोधी है । बहुरि सूक्ष्म नाम कर्म सहित त्रस बादर नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है । बहुरि पर्याप्त नाम कर्म सहित अपर्याप्त नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष सर्व कर्म का उदय अविरोधी है । बहुरि अपर्याप्त नाम कर्म का उदय सहित पर्याप्त नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष सर्व कर्म का उदय अविरोधी है । बहुरि प्रत्येक शरीर नाम कर्म का उदय सहित साधारण शरीर नाम कर्म का उदय विरोधी है, अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है । बहुरि साधारण शरीर नाम कर्म का उदय सहित प्रत्येक शरीर नाम कर्म का उदय अर त्रस नाम कर्म का उदय विरोधी है; अवशेष कर्म का उदय अविरोधी है । असें अविरोधी प्रकृतिनि का उदय करि निपजे जे सदृश परिणामरूप धर्म, ते जीवसमास हैं; असा जानना ।

आगैं संक्षेप करि जीवसमास के स्थानकनि कौं प्ररूपैं हैं –

बादरसुहमेइंदिय, बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता, एवं ते चोद्दसा होंति ॥७२॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिनश्च ।
पर्याप्तापर्याप्ता, एवं ते चतुर्दश भवंति ॥७२॥

टीका – एकेंद्रिय के बादर, सूक्ष्म ए दोय भेद । बहुरि विकलत्रय के द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय ए तीन भेद । बहुरि पंचेंद्रिय के संज्ञी, असंज्ञी ए दोय भेद, असें सात जीवभेद भए । ये एक-एक भेद पर्याप्त, अपर्याप्त रूप हैं । असें संक्षेप करि चौदह जीवसमास हो हैं ।

आगैं विस्तार तैं जीवसमास कौं प्ररूपैं हैं –

भूआउतेउवाऊ, णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा ।
पत्तेयपदिट्ठिदरा, तसपण पुण्णा अपुण्णदुगा ॥७३॥

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदस्थूलेतराः ।
प्रत्येकप्रतिष्ठेतराः, त्रसपंच पूर्णा अपूर्णद्विकाः ॥७३॥

टीका -- पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेज:कायिक, वायुकायिक, अर वनस्पतिकायिकनि विषैं दोय भेद नित्यनिगोद साधारण, चतुर्गतिनिगोद साधारण ए छह भेद भए। ते एक-एक भेद बादर, सूक्ष्म करि दोय-दोय भेदरूप हैं; असैं बारह भए। बहुरि प्रत्येक शरीररूप वनस्पतीकायिक के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित ए दोय भेद हैं। बहुरि विकलेंद्रिय के बेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, ए तीन भेद। बहुरि पंचेंद्रिय के संज्ञी पंचेंद्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय ए दोय भेद। ए सर्व मिलि सामान्य अपेक्षा उगणीस जीवसमास हो हैं। बहुरि ए सर्व ही प्रत्येक पर्याप्तक, निर्वृत्ति अपर्याप्तक, लब्धि अपर्याप्तक असैं तीन-तीन भेद लीए हैं। तातैं विस्तार तैं जीवसमास सत्तावन भेद संयुक्त हो है।

आगै इनि सत्तावन जीव-भेदनि के गर्भित विशेष दिखावने के अर्थि स्थानादिक च्यारि अधिकार कहै हैं -

ठाणेहिं वि जोणीहिं वि, देहोग्गाहणकुलाण भेदेहिं ।
जीवसमासा सव्वे, परूविदव्वा जहाकमसो ।।७४।।

स्थानैरपि योनिभिरपि, देहावगाहनकुलानां भेदैः ।
जीवसमासाः सर्वे, प्ररूपितव्या यथाक्रमशः ।।७४।।

टीका -- स्थानकनि करि, बहुरि योनि भेदनि करि, बहुरि देह की अवगाहना के भेदनि करि, बहुरि कुलभेदनि, करि सर्व ही ते जीवसमास यथाक्रम सिद्धांत परिपाटी का उल्लंघन जैसैं न होइ, तैसें प्ररूपण करने योग्य हैं।

आगै जैसैं उद्देश कहिए नाम का क्रम होइ, तैसैं ही निर्देश कहिए स्वरूप निर्णय क्रम करि करना। इस न्याय करि प्रथम कह्या जो जीवसमास विषैं स्थानाधिकार, ताकौं गाथा च्यारि करि कहै हैं -

सामण्णजीव तसथावरेसु, इगिविगलसयलचरिमदुगे ।
इंदियकाये चरिमस्स य, दुतिचदुपणगभेदजुदे ।।७५।।

सामान्यजीवः त्रसस्थावरयोः, एकविकलसकलचरमद्विके ।
इंद्रियकाययोः चरमस्य च, द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते ।।७५।।

टीका – तहां उपयोग लक्षरण धरैं सामान्यमात्र जीवद्रव्य, सो द्रव्यार्थिक नय करि ग्रहण कीए जीवसमास का स्थान एक है । बहुरि संग्रहनय करि ग्रह्या जो अर्थ, ताका भेद करणहारा जो व्यवहारनय, ताकी विवक्षा विषै संसारी जीव के मुख्य भेद त्रस-स्थावर, ते अधिकाररूप हैं; असैं जीवसमास के स्थान दोय हैं । बहुरि अन्य प्रकार करि व्यवहारनय की विवक्षा होतैं एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय, जीवनि कौं अधिकाररूप करि जीवसमास के स्थान तीन हैं । बहुरि असैं ही आगै भी सर्वत्र अन्य-अन्य प्रकारनि करि व्यवहारनय की विवक्षा जाननी । सो कहै हैं – एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय दोय तौ ए, अर सकलेंद्रिय जो पंचेंद्रिय, ताके असंज्ञी, संज्ञी ए दोय भेद, असैं मिलि जीवसमास के स्थान च्यारि हो हैं । बहुरि तैसैं ही एकेंद्रिय, बेइंद्री तेइंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री भेद तैं जीवसमास के स्थान पांच हैं । बहुरि तैसैं ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, त्रसकायिक भेद तैं जीवसमास के स्थान छह हैं । बहुरि तैसैं ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति ए पांच स्थावर अर अन्य त्रसकाय के विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय ए दोय भेद, असैं मिलि जीवसमास के स्थानक सप्त हो हैं । बहुरि तैसैं ही पृथ्वी आदि स्थावरकाय पांच, विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पंचेंद्रिय ए तीन मिलि करि जीवसमास के स्थान आठ हो हैं । बहुरि स्थावरकाय पांच अर बेंद्री, तेइंद्री, चौंद्री, पंचेंद्री ए च्यारि मिलि करि जीवसमास के स्थान नव हो हैं । बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय पांच, अर बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी पंचेंद्री ए पांच मिलि करि जीवसमास के स्थान दश हो हैं ।

पणजुगले तससहिये, तसस्स दुतिचदुरपणगभेदजुदे ।
छद्दुगपत्तेयह्मि य, तसस्स तियचदुरपणगभेदजुदे ।।७६।।

पंचयुगले त्रससहिते, त्रसस्य द्वित्रिचतुःपंचकभेदयुते ।
षड्द्विकप्रत्येके च, त्रसस्य त्रिचतुःपंचभेदयुते ।।७६।।

टीका – तैसैं ही स्थावरकाय पांच, ते प्रत्येक बादर-सूक्ष्म भेद संयुक्त, ताके दश अर त्रसकाय ए मिलि जीवसमास के स्थान ग्यारह हो हैं । बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय, मिलि करि जीवसमास के स्थान बारह हो हैं । बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय दश अर त्रसकाय के विकलेंद्रिय, संज्ञी, असंज्ञी पंचेंद्रिय ए तीन मिलि करि जीवसमास के स्थान तेरह हो हैं । बहुरि स्थावरकाय दश अर त्रसकाय के बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, पंचेंद्री ए च्यारि भेद मिलि जीवसमास के

स्थान चौदह हो हैं । बहुरि तैसें ही स्थावरकाय के दश, बहुरि त्रसकाय के बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी पंचेंद्री ए पांच मिलि करि जीवसमास के स्थान पंद्रह हो हैं । बहुरि तैसें ही पृथिवी, अप्, तेज, वायु ए च्यारि अर साधारण वनस्पति के नित्यनिगोद, इतरनिगोद ए दोय भेद मिलि छह भए । ते ए जुदे-जुदे बादर सूक्ष्म भेद लीए हैं । ताके बारह अर एक प्रत्येक वनस्पती, असें स्थावरकाय तेरह अर त्रसकाय विकलेंद्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पंचेंद्रिय ए तीनि मिलि जीवसमास के स्थान सोलह हो हैं । बहुरि तैसें ही स्थावरकाय के तेरह अर त्रसकाय के बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, पंचेंद्री ए च्यारि भेद मिलि करि जीवसमास के स्थान सतरह हो हैं । बहुरि स्थावरकाय के तेरह अर त्रसकाय के बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी पंचेंद्री ए पांच मिलि जीवसमास के स्थान अठारह हो हैं ।

सगजुगलह्मितसस्स य, पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा ।
एयादुणवीसो त्ति य, इगिबितिगुणिदे हवे ठाणा ॥७७॥

सप्तयुगले त्रसस्य च, पंचभंगयुतेषु भवंति एकोनविंशतिः ।
एकादेकोनविंशतिरिति च, एकद्वित्रिगुणिते भवेयुः स्थानानि ॥७७॥

टीका – तैसें ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद ए छहों बादर-सूक्ष्मरूप, ताके बारह अर प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित ए दोय अर त्रस के बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पंचेंद्रिय ए पांच मिलि जीवसमास के स्थान उगणीस हो हैं । असें कहे जे ए सामान्य जीवरूप एक स्थान कौं आदि देकरि उगणीस भेदरूप स्थान पर्यन्त स्थान, तिनिकौं एक, दोय तीन करि गुणें, अनुक्रम तें अंत विषें उगणीस भेदस्थान, अड़तीस भेदस्थान, सत्तावन भेदस्थान हो हैं ।

सामण्णेण तिपंती, पढमा बिदिया अपुण्णगे इदरे ।
पज्जत्ते लद्धिअपज्जत्तेऽपढमा हवे पंती ॥७८॥

सामान्येन त्रिपंक्तयः, प्रथमा द्वितीया अपूर्णके इतरस्मिन् ।
पर्याप्ते लब्ध्यपर्याप्तेऽप्रथमा भवेत् पंक्तिः ॥७८॥

टीका – पूर्वें कहे जे एक कौं आदि देकरि एक-एक बधते उगणीस भेदरूप स्थान, तिनिकी तीन पंक्ति नीचैं-नीचैं करनी । तिनि विषें प्रथम पंक्ति तौ पर्याप्तादिक

की विवक्षा कौं न करि सामान्य आलाप करि गुरानी । बहुरि दूसरी पंक्ति दोय जे पर्याप्त, अपर्याप्त भेद, तिनि करि गुणनी । बहुरि अप्रथमा कहिए तीसरी पंक्ति, सो तीन जे पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद तिनि करि गुणनी । इहां दूसरी, तीसरी दोय पंक्ति अप्रथमा हैं । तथापि दूसरी पंक्ति कांठै ही कही, तीहिकरि अप्रथमा अैसैं शब्द करि अवशेष रही पंक्ति तीसरी सोई ग्रहण करी है ।

भावार्थ – एक कौं आदि देकरि उगणीस पर्यन्त जीवसमास के स्थान कहे । तिनिका सामान्यरूप ग्रहण कीएं एक आदि एक-एक बधते उगणीस पर्यन्त, स्थान हो हैं । इहां सामान्य विषैं पर्याप्तादि भेद गर्भित जानने । बहुरि तिन ही एक-एक के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद कीए दोय कौं आदि देकरि दोय-दोय बधते अडतीस पर्यन्त स्थान हो हैं । इहां अपर्याप्त विषैं निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त दोऊ गर्भित जानने । बहुरि तिन ही एक-एक के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद कीये तिनिकौं आदि देकरि तीन-तीन बधते सत्तावन पर्यन्त स्थान हो हैं । इहां जुदे-जुदे भेद जानने ।

अब कहे भेदनि की यंत्र में रचना अंकनि करि लिखिये है ।

जीवसमास के स्थानकनि का यंत्र

सामान्य अपेक्षा स्थान	पर्याप्त, अपर्याप्त अपेक्षा स्थान	पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त अपेक्षा स्थान
१	२	३
२	४	६
३	६	९
४	८	१२
५	१०	१५
६	१२	१८
७	१४	२१
८	१६	२४
९	१८	२७
१०	२०	३०
११	२२	३३
१२	२४	३६
१३	२६	३९
१४	२८	४२
१५	३०	४५
१६	३२	४८
१७	३४	५१
१८	३६	५४
१९	३८	५७
१९०	३८०	५७०

अब इनि पंक्तिनि का जोड देने के अर्थि करणसूत्र कहिए है '**मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि**' मुख आदि अर भूमी अंत, इनिकौं जोडैं, आधा करि पद जो स्थान प्रमाण, तीहिं करि गुणैं, सर्वपदधन हो है ।

सो प्रथम पंक्ति विषै मुख एक अर भूमी उगणीस जोडें बीस, ताका आधा दश, पद उगणीस करि गुणैं एक सौ नब्बे सर्व जोड हो है ।

बहुरि द्वितीय पंक्ति विषै मुख दोय, भूमी अडतीस जोडैं चालीस, आधा कीए बीस पद, उगणीस करि गुणैं, तीन सैं असी सर्व जोड हो है ।

बहुरि तीसरी पंक्ति विषै मुख तीन, भूमी सत्तावन जोडैं साठि, आधा कीएं तीस, पद उगणीस करि गुणैं पांच सैं सत्तरि सर्व जोड हो है ।

आगे एकेंद्रिय, विकलत्रय जीवसमासनि करि मिले हुए ऐसैं पंचेंद्रिय संबंधी जीवसमास स्थान कैं विशेषनि कौं गाथा दोय करि कहै हैं –

इगिवण्णं इगिविगले, असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं ।
गब्भभवे सम्मुच्छे, दुतिगं भोगथलखेचरे दो दो ।।७९।।

अज्जवमलेच्छमणुए, तिदु भोगकुभोगभूमिजे दो दो ।
सुरणिरये दो दो इदि, जीवसमासा हु अडणउदी ।।८०।।

एकपंचाशत् एकविकले, असंज्ञिसंज्ञिगतजलस्थलखगानाम् ।
गर्भभवे सम्मूर्छे, द्वित्रिकं भोगस्थलखेचरे द्वौ द्वौ ।।७९।।

आर्यम्लेच्छमनुष्ययोस्त्रयो द्वौ भोगकुभोगभूमिजयोर्द्वौ द्वौ ।
सुरनिरयोर्द्वौ द्वौ इति, जीवसमासा हि अष्टानवतिः ।।८०।।

टीका – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद-इतरनिगोद के सूक्ष्म, बादर भेद करि छह युगल अर प्रत्येक वनस्पती का सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित भेद करि एक युगल, ऐसें एकेन्द्रिय के सात युगल । बहुरि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री ए तीन ऐसें ए सतरह भेद पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद करि तीन-तीन प्रकार हैं । ऐसें एकेंद्रिय, विकलेंद्रियनि विषैं इक्यावन भेद भये । बहुरि पंचेंद्रियरूप तिर्यंच गति विषैं कर्मभूमि के तिर्यंच तीन प्रकार हैं । तहां जे जल विषैं गमनादि करैं, ते जलचर; अर जे भूमि

विषैं गमनादि करैं, ते स्थलचर; अर जे आकाश विषैं उडना आदि गमनादि करैं, ते नभचर; ते तीनों प्रत्येक संज्ञी, असंज्ञी भेदरूप हैं, तिनिके छह भए। बहुरि ते छहौं गर्भज अर सम्मूर्छन हो हैं। तहां गर्भज विषैं पर्याप्त अर निर्वृत्ति अपर्याप्त ए दोय-दोय भेद संभवैं हैं, तिनिके बारह भए। बहुरि सम्मूर्छन विषैं पर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त ऐ तीन-तीन भेद संभवैं हैं, तिनिके अठारह भए। ऐसैं कर्मभूमियां पंचेंद्रिय तिर्यंच के तीस भेद भये।

बहुरि भोगभूमि विषैं संज्ञी ही हैं, असंज्ञी नाहीं। बहुरि स्थलचर अर नभचर ही हैं, जलचर नाहीं। बहुरि पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त ही हैं, लब्धि अपर्याप्त नाहीं। तातैं संज्ञी स्थलचर, नभचर के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करि च्यारि ए भए; ऐसैं तिर्यंच पंचेंद्रिय के चौंतीस भेद भये।

बहुरि मनुष्यनि के कर्मभूमि विषैं, आर्यखंड विषैं तौ गर्भज के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त करि दोय भेद अर सम्मूर्छन का लब्धि अपर्याप्तरूप एक भेद ऐसैं तीन भए। बहुरि म्लेच्छखंड विषैं गर्भज ही हैं। ताके पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त करि दोय भेद। बहुरि भोगभूमि अर कुभोगभूमि इन दोऊनि विषैं गर्भज ही हैं। तिनके पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त करि दोय-दोय भेद भए। च्यारि भेद मिलि करि मनुष्यगति विषैं नव भेद भए।

बहुरि देव, नारकी औपपादिक हैं, तिनिके पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद करि दोय-दोय भेद होई च्यारि भेद। ऐसैं च्यारि गतिनि विषैं पंचेंद्रिय के जीवसमास के स्थान सैंतालीस हैं।

बहुरि ए सैंतालीस अर एकेंद्री, विकलेंद्रिय के इक्यावन मिलि करि अठ्याणवैं जीवसमास स्थान हो हैं, ऐसा सूत्रनि का तात्पर्य जानना।

इहां विवक्षा करि स्थावरनि के बियालीस, विकलेंद्रियनि के नव, तिर्यंच पंचेंद्रियनि के चौंतीस, देवनि के दोय, नारकीनि के दोय, मनुष्यनि के नव, सर्व मिलि अठ्याणवे भए। ऐसैं ए कहे जीवसमास के स्थान, ते संसारी जीवनि के ही जानने, मुक्त जीवनि के नाहीं हैं। जातैं विशुद्ध चैतन्यभाव ज्ञान-दर्शन उपयोग का संयुक्तपना करि तिन मुक्त जीवनि के त्रस-स्थावर भेदनि का अभाव है। अथवा **'संसारिणस्त्रस-स्थावराः'** ऐसा तत्त्वार्थसूत्र विषैं वचन है; तातैं ए भेद संसारी जीवनि के ही जानने।

अब कहे जे जीवसमासनि तैं विशेष जीवसमास का कहनहारा अन्य आचार्य करि कह्या हुवा गाथा सूत्र कहै हैं –

सुद्द-खरकु-जल-ते-वा, णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा ।
पदिठिदरपंचपत्तिय, वियलतिपुण्णा अपुण्णदुगा ॥
इगिवियले इगिसीदी, असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं ।
गब्भभवे सम्मुच्छे, दुतिगतिभोगथलखेचरे दो दो ॥
अज्जसमुच्छिमगब्भे, मलेच्छभोगतियकुणरछपणतीससये ।
सुरणिरये दो दो इदि, जीवसमासा हु छहियचारिसयं ॥

टीका – माटी आदिरूप शुद्ध पृथ्वीकायिक, पाषाणादिरूप खरपृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद का दूसरा नाम चतुर्गतिनिगोद ऐसें इनि सातनि के बादर-सूक्ष्म भेद तैं चोदह भए । बहुरि तृण, बेलि, छोटे वृक्ष, बड़े वृक्ष, कंदमूल ऐसैं ए पांच प्रत्येक वनस्पति के भेद हैं । ए जब निगोद शरीर करि आश्रित होंइ, तब प्रतिष्ठित कहिए । निगोद रहित होंइ, तब अप्रतिष्ठित कहिए । ऐसें इनिके दश भेद भए ।

बहुरि बेइंद्री, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रय ऐसें विकलेंद्रिय के तीन, ए सर्व मिलि सत्ताइस भेद एकेंद्रिय-विकलेंद्रियनि के भए । इन एक-एक के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेद करि इक्यासी भए ।

बहुरि पंचेंद्रियनि विषें – तिर्यंच कर्मभूमि विषें तौ संज्ञी, असंज्ञी भेद लीयें जलचर, स्थलचर, नभचर भेद करि छह, तिनि छहौं गर्भजनि विषें तौ पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद करि बारह, अर तिनि छहौं सम्मूर्छनिनि विषें पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त भेदनि करि अठारह । बहुरि उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य भोगभूमि के संज्ञी थलचर, नभचर इनि छहौं विषें पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद करि बारह, सर्व मिलि पंचेंद्री तिर्यंच, के बियालीस भेद भए ।

बहुरि मनुष्यनि विषें आर्यखंड विषें उपज्या सम्मूर्छन विषें लब्धि अपर्याप्तकरूप एक स्थान है । बहुरि आर्यखण्ड विषें उपजे गर्भज अर म्लेच्छखंड विषें उपजे गर्भज ही हैं । अर उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य भोगभूमि उपजे गर्भज ही हैं । अर कुभोगभूमि विषें उपजे गर्भज ही हैं । ऐसें छह प्रकार तौ मनुष्य, बहुरि तैसें ही दश प्रकार

भवनवासी, आठ प्रकार व्यंतर, पांच प्रकार ज्योतिषी, पटलनि की अपेक्षा करि तरेसठि प्रकार वैमानिक, सर्व मिलि छियासी प्रकार देव ।

बहुरि प्रस्तारनि की अपेक्षा करि गुणचास प्रकार नारकी ए सर्व मिलि सर्व एक सौ इकतालीस भए । तिन एक एक के पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त भेद कीए दोय सैं बियासी होंइ । असैं एकेन्द्री, विकलेंद्रिय के इक्यासी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच के बियालीस, सम्मूर्छन मनुष्य का एक, गर्भज मनुष्य, देव, नारकिनि के दोय सैं बियासी मिलि करि छह अधिक च्यारि सैं जीवसमास प्रकटरूप हो हैं ।

इति जीवसमासनि का स्थान अधिकार समाप्त भया ।

आगै योनि प्ररूपणा विषैं प्रथम आकार योनि के भेदनि कौं कहै हैं –

संखावत्तयजोणी, कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य ।
तत्थ य संखावत्ते, णियमादु विवज्जदे गब्भो ॥८१॥

शंखावर्तकयोनिः, कूर्मोन्नतवंशपत्रयोनि च ।
तत्र तु शंखावर्ते, नियमात्तु विवर्ज्यते गर्भः ॥ ८१ ॥

टीका – शंखावर्तयोनि कूर्मोन्नतयोनि, वंशपत्र योनि असैं स्त्री शरीर विषैं संभवती आकाररूप योनि तीन प्रकार हैं । योनि कहिए मिश्ररूप होइ औदारिकादिक नोकर्मवर्गणारूप पुद्गलनि करि सहित बंधै जीव जाविषैं, सो योनि कहिए । जीव का उपजने का स्थान सो योनि है । तहां तीन प्रकार योननि विषैं शंखावर्तयोनि विषैं तो गर्भ नियम करि विवर्जित है, गर्भ रहै ही नाहीं । अथवा कदाचित रहै तौ नष्ट होइ है ।

कुम्मण्णयजोणीए, तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य ।
रामा वि य जायंते, सेसाये सेसगजणो दु ॥ ८२ ॥

कूर्मोन्नतयोनौ, तीर्थंकराः द्विविधचक्रवर्तिनश्च ।
रामा अपि च जायंते, शेषायां शेषकजनस्तु ॥८२॥

टीका – कूर्मोन्नतयोनि विषैं तीर्थंकर वा सकलचक्रवर्ती वा अर्धचक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण वा बलभद्र उपजैं हैं । अपि शब्द करि अन्य कोई नाहीं

उपजैं है । बहुरि अवशेष वंशपत्रयोनि विषैं अवशेष जन उपजैं हैं; तीर्थंकरादि नाहीं उपजैं हैं ।

आगैं जन्मभेदनि का निर्देश पूर्वक गुणयोनि निर्देश करैं हैं –

जम्मं खलु संमुच्छण, गब्भुववादा[1] दु होदि तज्जोणी ।
सच्चित्तसीदसंउडसेदर मिस्सा [2] य पत्तेयं ॥ ८३ ॥

जन्म खलु संमूर्छनगर्भोपपादास्तु भवति तद्योनयः ।
सचित्तशीतसंवृतसेतरमिश्राश्च प्रत्येकं ॥८३॥

टीका – सम्मूर्छन, गर्भज, उपपाद ए तीन संसारी जीवनि के जन्म के भेद हैं । **सं** कहिए समस्तपनैं करि **मूर्छनं** कहिए जन्म धरता जो जीव, ताकौं उपकारी असें जे शरीर के आकारि परिणमने योग्य पुद्गलस्कंध, तिनिका स्वयमेव प्रकट होना, सो सम्मूर्छन जन्म है ।

बहुरि जन्म धरता जीव करि शुक्र-शोणितरूप पिंड का **गरणं** कहिए अपना शरीररूप करि ग्रहण करना, सो गर्भ है । बहुरि **उपपादनं** कहिए संपुट शय्या वा उष्ट्रादि मुखाकार योनि विषैं लघु अंतर्मुहूर्त काल करि ही जीव का उपजना, सो उपपाद है । असैं तीन प्रकार जन्म भेद हैं ।

भावार्थ – माता-पितादिक का निमित्त विना स्वयमेव शरीराकार पुद्गल का प्रकट होने करि जीव का उपजना; सो सम्मूर्छन जन्म है ।

बहुरि माता का लोही अर पिता का वीर्यरूप पुद्गल का शरीररूप ग्रहण करि जीव का उपजना, सो गर्भ जन्म है । बहुरि देवनि का संपुट शय्या विषैं, नारकीनि का उष्ट्रमुखादि आकाररूप योनि स्थानकनि विषैं लघु अंतर्मुहूर्त करि संपूर्ण शरीर करि जीव का उपजना, सो उपपाद जन्म है । असैं तीन प्रकार जन्म भेद जानने ।

बहुरि इनि सम्मूर्छनादि करि तिनि जीवनि की योनि कहिए । जीव के शरीर ग्रहण का आधारभूत स्थान, ते यथासंभव नव प्रकार हैं । सचित्त, शीत,

---

१. सम्मूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

२. सचित्तशीतसंवृताः सेतराः मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय दूसरा.

संवृत; इनिके प्रतिपक्षी इतर अचित्त, उष्ण विवृत; बहुरि इनिके मिलने से मिश्र – सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृत असें नव प्रकार हैं। बहुरि ते योनि सम्मूर्छनादिकनि विषें प्रत्येक यथासंभव जानना।

तहां चित्त कहिए अन्य चेतन, तींहिकरि सहित वर्ते, ते सचित्त हैं। अन्य प्राणी करि पूर्वें ग्रहे हुवे पुद्गल स्कंध सचित्त कहिए। बहुरि तातें विपरीत अन्य प्राणीनिकरि न ग्रहे जे पुद्गल स्कंध, ते अचित्त हैं। बहुरि सचित्त-अचित्त दोऊरूप जे पुद्गल स्कंध, ते मिश्र हैं। बहुरि प्रगट हैं शीत स्पर्श जिनके ऐसे पुद्गल, ते शीत हैं। बहुरि प्रगट हैं उष्ण स्पर्श जिनिके असें पुद्गल, ते उष्ण हैं। बहुरि शीत, उष्ण दोऊरूप जे पुद्गल, ते मिश्र हैं। बहुरि प्रकट जाकों न अवलोकिए असा गुप्त आकार जाका, सो पुद्गल स्कंध संवृत है। बहुरि प्रकट आकाररूप जाकों अवलोकिए असा पुद्गल स्कंध, सो विवृत है। बहुरि संवृत-विवृत दोऊरूप पुद्गल स्कंध, सो मिश्र है। असें जीव उपजने के आधाररूप पुद्गल स्कंध, नव प्रकार जानने।

भावार्थ – गुण कौं धरें त्रैलोक्य विषें यथासंभव जीव जहां उपजें, असें योनिरूप पुद्गल स्कंध, तिनिके भेद नव हैं।

आगें सम्मूर्छनादिक जन्मभेद के जे स्वामी हैं, तिनका निर्देश करें हैं –

पोतजरायुजअंडज, जीवाणं गब्भ देवणिरयाणं।
उववादो सेसाणं, सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं ॥८४॥[1]

पोतजरायुजांडजजीवानां गर्भः देवनारकाणाम्।
उपपादः शेषाणां, सम्मूर्छनकं तु निर्दिष्टम् ॥८४॥

टीका – किछु भी शरीर ऊपरि आवरण बिना संपूर्ण है अवयव जाका अर योनि तें निकसता ही चलनादिक की सामर्थ्य, ताकरी संयुक्त असा जीव, सो पोत कहिए। बहुरि जालवत् प्राणी का शरीर ऊपरि आवरण, मास, लोही जामें विस्तार रूप पाइए असा जो जरायु, ता विषें जो जीव उपज्या, सो जरायुज कहिए। बहुरि शुक्र, लोहीमय आवरण कठिनता कौं लीए नख की चामडी समान गोल आकार

---

१. जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां संमूर्च्छनम् ॥३५॥ तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय दूसरा

धरै, सो अंड; तींहि विषैं उपज्या जो जीव, सो अंडज कहिए । इनि पोतजरायुज अंडज जीवनि के गर्भरूप ही जन्म का भेद जानना ।

बहुरि च्यारि प्रकार देव अर धम्मादि विषैं उपजे नारकी, तिनिके उपपाद ही जन्म का भेद है ।

इनि कहे जीवनि बिना अन्य सर्व एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री अर केई पंचेंद्री तिर्यञ्च अर लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य, इनिकैं सम्मूर्छन ही जन्म का भेद पाइए है; असा सिद्धांत विषैं कह्या है ।

आगै सचित्तादि योनिभेदनि का सम्मूर्छनादि जन्मभेद विषैं संभवपना, असंभवपना गाथा तीन करि दिखावै हैं –

उववादे अच्चित्तं, गब्भे मिस्सं तु होदि सम्मुच्छे ।
सच्चित्तं अच्चित्तं, मिस्सं च य होदि जोणी हु ॥८५॥

उपपादे अचित्ता, गर्भे मिश्रा तु भवति संमूर्च्छे ।
सचित्ता अचित्ता, मिश्रा च च भवति योनिर्हि ॥८५॥

टीका – देव, नारकी संबंधी जो उपपाद जन्म का भेद, तींहिविषैं अचित्त ही योनि हैं । तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध सर्व अचित्त ही हैं ।

गर्भजन्म का भेदरूप सचित्त, अचित्त दोऊरूप मिश्र ही पुद्गल स्कंधरूप योनि है । तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध विषैं कोई पुद्गल सचित्त हैं, कोई अचित्त हैं ।

बहुरि सम्मूर्छन जन्म विषैं सचित्त, अचित्त, मिश्र ए तीन प्रकार योनि पाइए हैं । कहीं योनिरूप पुद्गल स्कंध सचित्त ही हैं, कहीं अचित्त ही हैं, कहीं मिश्र हैं ।

उववादे सीदुसणं, सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि ।
उववादेयक्खेसु य संउड वियलेसु विउलं तु ॥८६॥

उपपादे शीतोष्णे, शेषे शीतोष्णमिश्रका भवंति ।
उपपादैकाक्षेषु च, संवृता विकलेषु विवृता तु ॥८६॥

टीका – उपपाद जन्मभेद विषैं शीत अर उष्ण ए दोय योनि हैं । योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत हैं वा उष्ण हैं । तहां नारकीनि के रत्नप्रभा का बिलनि तैं लगाइ धूमप्रभा बिलनि का तीन चौथा भाग पर्यन्त बिलनि विषैं उष्ण योनि ही है । बहुरि धूमप्रभा बिलनि का चौथा भाग तैं लगाइ महातम प्रभा का बिलनि पर्यन्त बिलनि विषैं शीत योनि ही है, ऐसा विशेष जानना । बहुरि अवशेष गर्भ जन्मभेद विषैं अर सम्मूर्छन जन्म के भेद विषैं शीत, उष्ण, मिश्र तीनों योनि हैं । कोई योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत ही हैं, कोऊ उष्ण ही हैं । कोऊ योनिरूप पुद्गल स्कंध विषैं कोई पुद्गल शीत है, कोई उष्ण है, तातैं मिश्र हैं । तहां तेजस्कायिक जीवनि विषैं उष्ण ही योनि है । तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध उष्ण ही है । बहुरि जलकायिक जीवनि विषैं शीत ही योनि हैं । तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत ही हैं । बहुरि उपपादज देव-नारकी अर एकेंद्रिय इन विषैं संवृत ही योनि है; जहां उपजैं ऐसा योनिरूप पुद्गल स्कंध, सो अप्रकट आकाररूप ही है । बहुरि विकलेंद्रिय विषैं विवृत योनि ही है; जहां उपजैं ऐसा योनिरूप पुद्गल स्कंध, सो प्रकट ही है ।

गब्भजजीवाणं पुण, मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु ।
सम्मुच्छणपंचक्खे, वियलं वा विउलजोणी हु ॥८७॥

गर्भजजीवानां पुनः, मिश्रा नियमेन भवति योनिर्हि ।
संमूर्च्छनपंचाक्षेषु, विकलं वा विवृतयोनिर्हि ॥८७॥

टीका – बहुरि गर्भज जीवनि कैं संवृत, विवृत दोऊरूप मिश्र योनि है । जहां उपजैं ऐसा योनिरूप पुद्गल स्कंध विषैं किछु प्रकट, किछु अप्रकट हैं । बहुरि सम्मूर्च्छन पंचेंद्रियनि विषैं विकलेंद्रियवत् विवृत योनि ही है ।

आगैं योनिभेदनि की संख्या का उद्देश के आगे कथन का संकोचनि कौं कहै हैं –

सामण्णेण य एवं, णव जोणीओ हवंति वित्थारे ।
लक्खाण चदुरसीदी, जोणीओ होंति णियमेण ॥८८॥

सामान्येन च एवं, नव योनयो भवंति विस्तारे ।
लक्षाणां चतुरशीतिः, योनयो भवंति नियमेन ॥८८॥

टीका – असैं पूर्वोक्त प्रकार करि **सामान्येन** कहिए संक्षेप करि नव योनि हैं। बहुरि विस्तार करि चौरासी लाख योनि हैं नियमकरि।

भावार्थ – जीव उपजने का आधारभूत पुद्गल स्कंध का नाम योनि है। ताके सामान्यपनै नव भेद हैं, विस्तार करि तिस ही के चौरासी लाख भेद हैं।

आगैं तिनि योनिनि की विस्तार करि संख्या दिखावैं हैं –

णिच्चिदरधादुसत्त य, तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो, चोद्दस मणुए सदसहस्सा ॥८९॥

नित्येतरधातुसप्त च, तरुदश विकलेंद्रियेषु षट् चैव।
सुरनिरयतिर्यक्चतस्रः, चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राः ॥८९॥

टीका – नित्यनिगोद, इतरनिगोद अर धातु कहिए पृथ्वीकायिक, अप कायिक, तेजस्कायिक वायुकायिक इनि छहों स्थाननि विषैं प्रत्येक सात-सात लाख योनि हैं। बहुरि तरु जो प्रत्येक वनस्पति, तिनि विषैं दश लाख योनि हैं। बहुरि विकलेंद्रीरूप बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री इनि विषैं प्रत्येक दोय-दोय लाख योनि हैं। बहुरि देव, नारकी, पंचेंद्री तिर्यंच इनि विषैं प्रत्येक च्यारि-च्यारि लाख योनि हैं। बहुरि मनुष्यनि विषैं चौदह लाख योनि हैं। असैं समस्त संसारी जीवनि के योनि सर्व मिलि चौरासी लाख संख्यारूप प्रतीति करनी।

आगैं गतिनि का आश्रय करि जन्मभेद कौं गाथा दोय करि कहै हैं –

उववादा सुरणिरया, गब्भजसमुच्छिमा हु णरतिरिया।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा ॥९०॥

उपपादाः सुरनिरयाः, गर्भजसंमूर्छिमा हि नरतिर्यंचः।
सम्मूर्छिमा मनुष्या, अपर्याप्ताः एकविकलाक्षाः ॥९०॥

टीका – देव अर नारकी उपपाद जन्म संयुक्त हैं। बहुरि मनुष्य अर तिर्यंच ए गर्भज अर सम्मूर्च्छन यथासंभव हो हैं। तहां लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य अर एकेंद्रिय विकलेंद्रिय ए केवल सम्मूर्च्छन ही हैं।

पंचक्खतिरिक्खाओ, गब्भजसम्मुच्छिमा तिरिक्खाणं ।
भोगभुमा गब्भभवा, नरपुण्णा गब्भजा चेव ॥६१॥

पंचाक्षतिर्यंचः, गर्भजसम्मूर्छिमा तिरश्चाम् ।
भोगभूमा गर्भभवा, नरपूर्णा गर्भजाश्चैव ॥९१॥

टीका – पंचेंद्रिय तिर्यंच, ते गर्भज अर सम्मूर्च्छन हो हैं । बहुरि तिर्यंचनि विषैं भोगभूमियां तिर्यंच गर्भज ही हैं । बहुरि पर्याप्त मनुष्य गर्भज ही हैं ।

आगें औपपादिकादिनि विषैं लब्धि अपर्याप्तकपना का संभवपना-असंभवपना कौं कहैं हैं –

उववादगब्भजेसु य, लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण ।
णरसम्मुच्छिमजीवा, लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥६२ ॥

उपपादगर्भजेषु च, लब्ध्यपर्याप्तका न नियमेन ।
नरसम्मूर्छिमजीवा, लब्ध्यपर्याप्तकाश्चैव ॥९२॥

टीका – औपपादिकनि विषैं, बहुरि गर्भजनि विषैं लब्धि अपर्याप्तक नियम करि नाहीं हैं । बहुरि सम्मूर्च्छन मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक ही हो हैं, पर्याप्त न हो हैं ।

आगैं नरकादि गतिनि विषैं वेदनि कौं अवधारण करैं हैं –

णेरइया खलु संढा, णरतिरिये तिण्णि होंति सम्मुच्छा ।
संढा सुरभोगभुमा, पुरिसिच्छीवेदगा चेव ॥६३॥

नैरयिकाः खलु षंढा, नरतिरश्चोस्त्रयो भवंति सम्मूर्छाः ।
षंढाः सुरभोगभुमाः पुरुषस्त्रीवेदकाश्चैव ॥९३॥

टीका – नारकी सर्व ही नियमकरि षंढा कहिए नपुंसक वेदी ही हैं । बहुरि मनुष्य-तिर्यंचनि विषैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक भेदरूप तीनों वेद हैं । बहुरि सम्मूर्च्छन तिर्यंच अर मनुष्य सर्व नपुंसक वेदी ही हैं । ते सम्मूर्च्छन मनुष्य स्त्री की योनि वा कांख वा स्तननि का मूल, तिनि विषैं अर चक्रवर्ती की पट्टराणी बिना मूत्र, विष्टा आदि अशुचिस्थानकनि विषैं उपजै हैं, ऐसा विशेष जानना । बहुरि देव अर भोग

भूमियां ते पुरुष वेद, स्त्री वेद का ही उदय संयुक्त नियम करि हैं। तहां नपुंसक न पाइए हैं।

इति तीन प्रकार योनिनि का अधिकार जीवसमासनि का कह्या।

आगै शरीर की अवगाहना आश्रय करि जीवसमासनि कौं कहने का है मन जाका, ऐसा आचार्य; सो प्रथम ही सर्व जघन्य अर उत्कृष्ट अवगाहना के जे स्वामी, तिनिका निर्देश करै हैं –

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥९४॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अंगुलासंख्यभागं, जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥९४॥

टीका – जितना आकाश क्षेत्र शरीर रोकै, ताका नाम इहां अवगाहना है। सो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जीव, तींहि पर्याय विषैं ऋजुगति करि उत्पन्न भया, ताके तीसरा समय विषैं घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रदेशनि की अवगाह विशेष धरैं शरीर हो है। सो यहु अन्य सर्व अवगाहना भेदनि तैं जघन्य है। बहुरि स्वयंभूरमण नामा समुद्र के मध्यवर्ती जो महामत्स्य, ताका उत्कृष्ट अवगाहना तैं भी सबनि तैं सर्वोत्कृष्ट अवगाहना विशेष धरैं शरीर हो है।

इहां तर्क – जो उपजनें तैं तीसरा समय विषैं सर्व तैं जघन्य अवगाहना कैसैं संभवै है ?

तहां समाधान – जो उपजता ही प्रथम समय विषैं तो निगोदिया जीव का शरीर लंबा बहुत, चौडा थोडा, ऐसा चौकोर हो है। बहुरि दूसरा समय विषैं लंबा-चौडा समान ऐसा चौकोर हो है। बहुरि तीसरे समय कोण दूर करणें करि गोल आकार हो है; तब ही तिस शरीर कैं अवगाहना का अल्प प्रमाण हो है, जातैं लंबा चौकोर, सम चौकोर तैं गोल क्षेत्रफल स्तोक हो है।

बहुरि तर्क – जो ऐसैं है तो ऋजुगति करि उपज्या ही कैं होइ – ऐसैं कैसैं कह्या ?

ताका समाधान – जीव पर भव कौं गमन करै, ताकी विदिशा करि वर्जित च्यारि दिशा वा अधः, ऊर्ध्व विषैं गमन क्रिया होइ है, सो च्यारि प्रकार है - ऋजु गति, पाणिमुक्ता गति, लांगल गति, गोमूत्रिका गति । तहां सूधा गमन होइ, सो ऋजु गति है । जामैं बीचि एक बार मुडे, सो पाणिमुक्ता गति है । जामैं बीच दोय बार मुडे, सो लांगल गति है । जामैं बीच तीन बार मुडे, सो गोमूत्रिका गति है । सो मुडने रूप जो विग्रह गति, ताविषैं जीव योगनि की वृद्धि करि युक्त हो है । ताकरि शरीर की अवगाहना भी वृद्धिरूप हो है । तातैं ऋजुगति करि उपज्या जीव कैं जघन्य अवगाहना कही, सो सर्वजघन्य अवगाहन का प्रमाणक हैं हैं । घनांगुल रूप जो प्रमाण, ताका पल्य का असंख्यातवां भाग उगणीस बार, बहुरि आवली का असंख्यातवां भाग नव बार, बहुरि एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग बाईस बार, बहुरि संख्यात का भाग नव बार इतने तौ भागहार जानने । बहुरि तिस घनांगुल कौं आवली का असंख्यातवां भाग का बाईस बार गुणकार जानने । तहां पूर्वोक्त भागहारनि कौं मांडि परस्पर गुणन कीए, जेता प्रमाण आवै, तितना भागहार का प्रमाण जानना । बहुरि बाईस जायगा आवली का असंख्यातवां भाग कौं मांडि परस्पर गुणैं जो प्रमाण आवै, तितना गुणकार का प्रमाण जानना । तहां घनांगुल के प्रमाण कौं भागहार के प्रमाण का भाग दीए, अर गुणकार का प्रमाण करि गुणैं जो प्रमाण आवै, तितना जघन्य अवगाहना के प्रदेशनि का प्रमाण जानना । असैं ही आगै भी गुणकार, भागहार का अनुक्रम जानना ।

आगै इंद्रिय आश्रय करि उत्कृष्ट अवगाहनानि का प्रमाण, तिनिके स्वामीनि कौं निर्देश करैं हैं –

साहियसहस्समेकं, बारं कोसूणमेकमेक्कं च ।
जोयणसहस्सदीहं, पम्मे वियले महामच्छे ॥६५॥

साधिकसहस्रमेकं, द्वादश क्रोशोनमेकमेकं च ।
योजनसहस्रदीर्घं, पद्मे विकले महामत्स्ये ॥९५॥

टीका – एकेंद्रियनि विषैं स्वयंभूरमण द्वीप के मध्यवर्ती जो स्वयंप्रभ नामा पर्वत, ताका परला भाग संबंधी कर्मभूमिरूप क्षेत्र विषैं उपज्या असा जो कमल, तीहि विषैं किछू अधिक एक हजार योजन लंबा, एक योजन चौडा असा उत्कृष्ट

अवगाह है । याका क्षेत्रफल कहिए है – समान प्रमाण लीए खंड कल्पें जितने खंड होइ, तिस प्रमाण का नाम क्षेत्रफल है । तहां ऊंचा, लम्बा, चौडा क्षेत्र का ग्रहण जहां होइ, तहां घन क्षेत्रफल वा खात क्षेत्रफल जानना । बहुरि जहां ऊंचापना की विवक्षा न होइ अर लम्बा-चौडा ही का ग्रहण होइ, तहां प्रतर क्षेत्रफल वा वर्ग क्षेत्रफल जानना । बहुरि जहां ऊंचा-चौडापना की विवक्षा न होइ, एक लम्बाई का ही ग्रहण होइ, तहां श्रेणी क्षेत्रफल जानना ।

सो इहां खात क्षेत्रफल कहिए है । तहां कमल गोल है, तातें गोल क्षेत्र का क्षेत्रफल साधनरूप करण सूत्र करि साधिए है –

वासोत्तिगुणो परिही, वासचउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहगुणं, खादफलं होइ सव्वत्थ ।।

याका अर्थ – व्यास, जो चौडाई का प्रमाण, तातैं तिगुणा गिरदभ्रमणरूप जो परिधि, ताका प्रमाण हो है । बहुरि परिधि कौं व्यास का चौथा भाग करि गुणें, प्रतररूप क्षेत्रफल हो है । बहुरि याकौं वेध, जो ऊंचाई का प्रमाण, ताकरि गुणें सर्वत्र खातफल हो है । सो इहां कमल विषें व्यास एक योजन, ताकौं तिगुणा कीए परिधि तीन योजन हो है । याकौं व्यास का चौथा भाग पाव योजन करि गुणें, प्रतर क्षेत्रफल पौंण योजन हो है । याकौं वेध हजार योजन करि गुणें, च्यारि करि अपवर्तन कीए, योजन स्वरूप कमल का क्षेत्रफल साड़ा सात सौ योजन प्रमाण हो है ।

भावार्थ – एक-एक योजन लम्बा, चौडा, ऊंचा खंड कल्पें इतने खंड हो हैं ।

बहुरि द्वींद्रियनि विषें तींहि स्वयंभूरमण समुद्रवर्ती शंख विषें बारह योजन लम्बा, योजन का पांच चौथा भाग प्रमाण चौडा, च्यारि योजन मुख व्यास करि युक्त, असा उत्कृष्ट अवगाह है । याका क्षेत्रफल करणसूत्र करि साधिए है –

व्यासस्तावद् गुणितो, वदनदलोनो मुखार्धवर्गयुतः ।
द्विगुणश्चतुर्भिर्भक्तः, पंचगुणः शंखखातफलं ।।

याका अर्थ – प्रथम व्यास कौं व्यास करि गुणिए, तामें मुख का आधा प्रमाण घटाइ, तामें मुख का आधा प्रमाण का वर्ग जोडिए, ताका दूणा करिए, ताकौं च्यारि

का भाग दीजिए, ताकौं पांचगुणा करिए,ऐसें करते शंख क्षेत्र का खातफल हो है। सो इहां व्यास बारह योजन कौं याही करि गुणैं एक सौ चवालीस होइ। यामें मुख का आधा प्रमाण दोय घटाए, एक सौ ब्यालीस होइ। यामें मुख का आधा प्रमाण का वर्ग च्यारि जोडें, एक सौ छियालीस होइ। याकौं दूणा कीए दोय सै बाणवे होइ। याकौं च्यारि का भाग दीए तेहत्तरि होइ। याकौं पांच करि गुणें, तीन सौ पैंसठि योजन प्रमाण शंख का क्षेत्रफल हो है।

बहुरि त्रींद्रियनि विषैं स्वयंभूरमण द्वीप का परला भाग विषैं जो कर्मभूमि संबंधी क्षेत्र है, तहां रक्त बीछू जीव है। तींहि विषैं योजन का तीन चौथा भाग प्रमाण ($\frac{३}{४}$) लम्बा, लम्बाई के आठवें भाग ($\frac{३}{३२}$) चौडा, चौडाई तैं आधा ($\frac{३}{६४}$) ऊंचा ऐसा उत्कृष्ट अवगाह है। यहु क्षेत्र आयत चतुरस्र है। लम्बाई लीए चौकोर है, सो याका प्रतर क्षेत्रफल भुज कोटि बधतैं हो है। सन्मुख दोय दिशानि विषैं कोई एक दिशा विषैं जितना प्रमाण, ताका नाम भुज है। बहुरि अन्य दोय दिशा विषैं कोई एक दिशा विषैं जितना प्रमाण, ताका नाम कोटि है। अर्थ यहु जो लम्बाई-चौडाई विषैं एक का नाम भुज, एक का नाम कोटि जानना। इनिका वेध कहिए परस्पर गुणना, तींहि थकी प्रतर क्षेत्रफल हो है। सो इहां लम्बाई तीन चौथा भाग, चौडाई तीन बत्तीसवां भाग, इनिकौ परस्पर गुणें नव का एक सौ अठाईसवां भाग ($\frac{९}{१२८}$) भया। बहुरि याकौं वेध ऊंचाई का प्रमाण तिनिका चौसठिवां भाग, ताकरि गुणैं, सत्ताईस योजन कौं इक्यासी सै बाणवैं का भाग दीए एक भाग ($\frac{२७}{८१९२}$)प्रमाण रक्त बीछू का घन क्षेत्रफल हो है।

बहुरि चतुरिंद्रियनि विषैं स्वयंभूरमण द्वीप का परला भागवर्ती कर्मभूमि संबंधी क्षेत्र विषैं भ्रमर हो है। सो तिहि विषैं एक योजन लांबा, पौन योजन ($\frac{३}{४}$) चौडा, आधा योजन ($\frac{१}{२}$) ऊंचा उत्कृष्ट अवगाह है। ताकौं भुज कोटि वेध - एक योजन अर तीन योजन का चौथा भाग, अर एक योजन का दूसरा भाग, इनिकौं परस्पर गुणैं, तीन योजन का आठवां भाग ($\frac{३}{८}$) प्रमाण घन क्षेत्रफल हो है।

बहुरि पंचेंद्रियनि विषैं स्वयंभूरमण समुद्र के मध्यवर्ती महामच्छ, तींहि विषैं हजार (१०००) योजन लांबा, पांच सै (५००) योजन चौडा, पचास अधिक दोय सै (२५०) योजन ऊंचा उत्कृष्ट अवगाह है। तहां भुज, कोटि, वेध हजार

(१०००) अर पांच सै (५००) अर अढाई सै (२५०) योजन प्रमाण, इनिकौं परस्पर गुणें साढे बारा कोडि (१२५००००००) योजन प्रमाण घनफल हो है। ऐसें कहे जो योजन रूप घनफल, तिनके प्रदेशनि का प्रमाण कीए एकेंद्रिय के च्यारि बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, द्वींद्रिय कैं तीन बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, त्रींद्रिय के एक बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, चतुरिंद्रिय के दोय बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, पंचेंद्रिय के पांच बार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण प्रदेश उत्कृष्ट अवगाहना विषें हो है।

आगें पर्याप्त द्वींद्रियादिक जीवनि का जघन्य अवगाहना का प्रमाण अर ताका स्वामी का निर्देश कौं कहै हैं –

बितिचपपुण्णजहण्णं, अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु।
सिच्छयमच्छे विंदंगुलसंखं संखगुणिदकमा ॥९६॥

द्वित्रिचपपूर्णजघन्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिकासु ।
सिक्थकमत्स्ये वृंदांगुलसंख्यं संख्यगुणितक्रमाः ॥९६॥

टीका – पर्याप्त द्वींद्रिय विषें अनुंधरी, त्रींद्रियनि विषें कुंथु, चतुरिंद्रियनि विषें काणमक्षिका, पंचेंद्रियनि विषें तंदुलमच्छ इनि जीवनि विषें जघन्य अवगाहना विशेष धरें जो शरीर, ताकरि रोक्या हुवा क्षेत्र (प्रदेशनि) का प्रमाण घनांगुल का संख्यातवां भाग तें लगाइ, संख्यातगुणा अनुक्रम करि जानना। तहां द्वींद्रिय विषें च्यारि बार, त्रींद्रिय विषें तीन बार, चतुरिंद्रिय विषें दोय बार, पंचेंद्रिय विषें एक बार, संख्यात का भाग जाकौं दीजिए ऐसा घनांगुल मात्र पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना के प्रदेशनि का प्रमाण जानना। इनिका अब चौडाई, लम्बाई, ऊंचाई का उपदेश इहां नाहीं है। घनफल कीए जो प्रदेशनि का प्रमाण भया, सो इहां कह्या है।

आगे सर्व तें जघन्य अवगाहना कौं आदि देकरि उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत शरीर की अवगाहना के भेद, तिनिका स्वामी वा अल्पबहुत्व वा क्रम तें गुणकार, तिनिकौं गाथा पंच करि इहां दिखावै हैं –

सुहमणिवातेआभू वातेआपुणिपदिट्ठिदं इदरं।
बितिचपमादिल्लाणं, एयाराणं तिसेढीय ॥९७॥

सूक्ष्मनिवातेआभू, वातेअपृनिप्रतिष्ठितमितरत् ।
द्वित्रिचपमाद्यानामेकादशानां त्रिश्रेणयः ॥९७॥

टीका – इहां नाम का एक देश, सो संपूर्ण नाम विषें वर्ते है । इस लघु-करण न्याय कौं आश्रय करि गाथा विषैं कह्या हुवा णिवा इत्यादि आदि अक्षरनि करि निगोद वायुकायिक आदि जीवनि का ग्रहण करना । सो इहां अवगाहना के भेद जानने के अर्थि एक यंत्र करना ।

तहां सूक्ष्म निगोदिया, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म तेजःकायिक, सूक्ष्म अप्-कायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक नाम धारक पांच सूक्ष्म तिस यंत्र के प्रथम कोठे विषैं लिखे हो हैं ।

बहुरि ताकी बरोबरि आगैं बादर – वायु, तेज, जल, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक नाम धारक ये छह बादर पूर्ववत् अनुक्रम करि दूसरा कोठा विषैं लिखे हो हैं। पहिलें जिनिके नाम लीए थे, तिन ही के फेरी लीए, इस प्रयोजन की समर्थता तैं प्रथम कोठा विषैं सूक्ष्म कहे थे; इहां दूसरा कोठा विषैं बादर ही हैं, असा जानना ।

बहुरि ताके आगैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय नाम धारक ए पांच बादर तीसरा कोठा विषैं लिखे हो हैं । इनि सोलहौं विषैं आदि के सूक्ष्म निगोदादिक ग्यारह, तिनिकैं आगै तीन पंक्ति करनी । तहां एक-एक पंक्ति विषैं दोय-दोय कोठे जानने । कैसैं ? सो कहिए है - पूर्वैं तीसरा कोठा कह्या था, ताके आगैं दोय कोठे करने । तिनि विषैं जैसें पहला, दूसरा कोठा विषैं पांच सूक्ष्म, छह बादर लिखे थे, तैसैं इहां भी लिखे हो हैं । बहुरि तिनि दोऊ कोठानि के नीचें पंक्ति विषैं दोय कोठे और करने । तहां भी तैसैं ही पांच सूक्ष्म, छह बादर लिखे हो हैं । बहुरि तिनिके नीचै पंक्ति विषैं दोय कोठे और करने, तहां भी तैसें ही पांच सूक्ष्म, छह बादर लिखे हो हैं । असैं सूक्ष्म निगोदादि ग्यारह स्थानकनि का दोय-दोय कोठानि करि संयुक्त तीन पंक्ति भई । या प्रकार ऊपरि की पंक्ति विषैं पांच कोठे, तातैं नीचली पंक्ति विषैं दोय कोठे, तातैं नीचली पंक्ति विषैं दोय कोठे मिलि नव कोठे भए ।

अपदिट्ठिदपत्तेयं, बितिचपतिचबि-अपदिट्ठिदं सयलं ।
तिचबि-अपदिट्ठिदं च य, सयलं बादालगुणिदकमा ॥९८॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येकं द्वित्रिचपत्रिचद्विचप्रतिष्ठितं सकलम् ।
त्रिचद्विचप्रतिष्ठितं च च सकलं द्वाचत्वारिंशद्गुणितक्रमाः ॥९८॥

टीका – बहुरि तिनि तीनि पंक्तिनि के आगें ऊपर पंक्ति विषें दशवां कोठा करना तींहि विषें अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय नाम धारक पांच बादर लिखे हो हैं। बहुरि ताके आगें ग्यारहवां कोठा विषें त्रींद्रिय, चौइंद्रिय, बेंद्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, पचेंद्रिय नाम धारक पांच बादर लिखे हो हैं। बहुरि ताके आगें बारहवां कोठा विषें त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, द्वींद्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, पंचेंद्रिय नाम धारक पांच बादर लिखे हो हैं। ऐसें ए चौसठि जीवसमासनि की अवगाहना के भेद हैं। तिनि विषें ऊपरि की पंक्तिनि के आठ कोठानि विषें प्राप्त ऐसे जे बियालीस जीवसमास, तिनकी अवगाहना के स्थान, ते गुणितक्रम हैं। अनुक्रम तैं पूर्व स्थान कौं यथासंभव गुणकार करि गुणे उत्तरस्थान हो हैं। बहुरि तातैं इनि नीचै की दोय पंक्तिनि विषें प्राप्त भए बाईस स्थान, ते 'सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो' इस वचन तैं अधिक रूप है। तहां एक प्रतिभाग का अधिकपना जानना। पूर्वस्थान कौं संभवता भागहार का भाग देइ एक भाग कौं पूर्वस्थान विषें अधिक कीए उत्तरस्थान हो है; ऐसा सूचन कीया है।

अवरमपुण्णं पढमं, सोलं पुण पढमबिदियतदियोली।
पुण्णिदरपुण्णियाणं, जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं ॥९९॥

अवरमपूर्णं प्रथमे, षोडश पुनः प्रथमद्वितीयतृतीयावलिः।
पूर्णेतरपूर्णानां, जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं ॥९९॥

टीका – पहलै तीन कोठेनि विषें प्राप्त जे सोलह जीवसमास, तिनिकी अपर्याप्त विषें जघन्य अवगाहना जाननी। बहुरि आगै ऊपरि तैं पहली, दूसरी, तीसरी पंक्तिनि विषें एक-एक पंक्ति विषें दोय-दोय कोठे कीए, ते क्रम तैं पर्याप्त, अपर्याप्त, पर्याप्तरूप तीन प्रकार जीव की जघन्य, उत्कृष्ट अर उत्कृष्ट अवगाहना है। याका अर्थ यहु – जो ऊपरि तैं प्रथम पंक्ति के दोय कोठानि विषें पांच सूक्ष्म, छह बादर इनि ग्यारह पर्याप्त जीवसमासनि की जघन्य अवगाहना के स्थान हैं। तैसें ही नीचैं दूसरी पंक्ति विषें प्राप्त तिनि ग्यारह अपर्याप्त जीवसमासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान हैं। तैसें ही तीसरी पंक्ति विषें प्राप्त तिनि ग्यारह पर्याप्त जीव समासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान हैं।

पुण्णजहण्णं तत्तो, वरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं ।
बीपुण्णजहण्णो त्ति, असंखं संखं गुणं तत्तो ॥१००॥

पूर्णजघन्यं ततो, वरमपूर्णस्य पूर्णोत्कृष्टं ।
द्विपूर्णजघन्यमिति असंख्यं संख्यं गुणं ततः ॥१००॥

टीका – ताके आगें दशवां कोठा विषें प्राप्त पर्याप्त पांच जीवसमासनि की जघन्य अवगाहना के स्थान हैं । बहुरि तहां तें आगें ग्यारहवां कोठा विषें अपर्याप्त पांच जीवसमासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान हैं । बहुरि ताके आगें बारहवां कोठा विषें पर्याप्त पंच जीवसमासनि की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान हैं । असें ए कहे स्थान, तिनि विषें प्रथम कोठा विषें प्राप्त सूक्ष्म अपर्याप्त निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना तें लगाइ दशवां कोठा विषें प्राप्त बादर पर्याप्त द्वीन्द्रिय की जघन्य अवगाहना पर्यंत ऊपरि की पंक्ति संबंधी गुणतीस अवगाहना के स्थान, ते असंख्यात-असंख्यात गुणा क्रम लीए है । बहुरि तिसतें आगें बादर पर्याप्त पंचेंद्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत तेरह अवगाहना के स्थान, ते संख्यातगुणां, संख्यातगुणां अनुक्रम लीए हैं; असा जानना ।

सुहमेदरगुणगारो, आवलिपल्ला असंखभागो दु ।
सट्ठाणे सेढिगया, अहिया तत्थेकपडिभागो ॥१०१॥

सूक्ष्मेतरगुणकार, आवलिपल्यासंख्येयभागस्तु ।
स्वस्थाने श्रेणिगता, अधिकास्तत्रैकप्रतिभागः ॥१०१॥

टीका – इहां गुणतीस स्थान असंख्यातगुणे कहे, तिनिविषें जे सूक्ष्म जीवनि के अवगाहना के स्थान हैं, ते आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणित जानने । पूर्वस्थान कौं घनावली[1] का असंख्यातवां भाग करि तहां एक भाग करि गुणें उत्तर स्थान हो है । बहुरि जे बादर जीवनि के अवगाहन के स्थान हैं, ते पल्य का असंख्यातवां भाग करि गुणित हैं । पल्य का असंख्यात भाग करि तहां एक भाग करि पूर्वस्थान कौं गुणें, उत्तर स्थान हो हैं । असें स्वस्थान विषें गुणकार हैं, या प्रकार असंख्यात का गुणकार विषें भेद है, सो देखना । बहुरि नीचली दूसरी, तीसरी पंक्ति

---

१. ब प्रति में 'आवली' है, बाकी चार प्रतियों में 'घनावली' है ।

सूक्ष्मनिगोद १ वात २ तेज ३ अप ४ पृथ्वी ५ इति पंच अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना ।	बादरवात ६ तेज ७ अप् ८ पृथ्वी ९ निगोद १० प्रतिष्ठित प्रत्येक ११ इनि छह अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना ।	अप्रतिष्ठित प्रत्येक १२ बेंद्री १३ तेंद्री १४ चौंद्री १५ पंचेंद्री १६ इनि पांच अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना ।	सूक्ष्मनिगोद १७ वात १८ तेज १९ अप् २० पृथ्वी २१ इनि पंच पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना ।	बादर वात २२ तेज २३ अप् २४ पृथ्वी २५ निगोद २६ प्रतिष्ठित प्रत्येक २७ इनि छहों पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना ।	अप्रतिष्ठित प्रत्येक ५० बेंद्री ५१ तेंद्री ५२ चौंद्री ५३ पंचेंद्री ५४ इनि पांच पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना ।	तेंद्री ५५ चौइंद्री ५६ बेंद्री ५७ अप्रतिष्ठित ५८ पंचेंद्री ५९ इनि पांच अपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना ।	तेंद्री ६० चौइंद्री ६१ बेंद्री ६२ अप्रतिष्ठित प्रत्येक ६३ पंचेंद्री ६४ इनि पांच पर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना ।
			सूक्ष्मनिगोद २८ वात २९ तेज ३० अप् ३१ पृथ्वी ३२ इनि पांच अपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना ।	बादर वात ३३ तेज ३४ अप् ३५ पृथ्वी ३६ निगोद ३७ प्रतिष्ठित प्रत्येक ३८ इनि छहों अपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना ।			
			सूक्ष्मनिगोद ३९ वात ४० तेज ४१ अप् ४२ पृथ्वी ४३ इनि पंचपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना ।	बादर वात ४४ तेज ४५ अप् ४६ पृथ्वी ४७ निगोद ४८ प्रतिष्ठित प्रत्येक ४९ इनि छहों पर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना ।			

विषें प्राप्त जे अवगाहना के स्थान ते अधिक अनुक्रम धरें हैं। तहां सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना के स्थान कौं आदि देकरि उत्तर-उत्तर स्थान पूर्व-पूर्व अवगाहना स्थान तें ताही कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, तहां एक भागमात्र अधिक है। पूर्वस्थान कौं आवली का असंख्यातवां (भाग का) भाग दीए जो प्रमाण होइ, तितना पूर्वस्थान विषें अधिक कीए उत्तरस्थान विषें प्रमाण हो है। इहां अधिक का प्रमाण ल्यावने के अर्थि भागहार वा भागहार का भागहार, सो आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है। असें परमगुरु का उपदेश तें चल्या आया प्रमाण जानना। बहुरि यहां यहु जानना - सूक्ष्मनिगोदिया का तीनों पंक्ति विषें अनुक्रम करि पीछें सूक्ष्म वातकायिक का तीनों पंक्तिनि विषें अनुक्रम करना। असें ही क्रम तें ग्यारह जीवसमासनि का अनुक्रम जानना।

यहु यंत्र जीवसमासनि की अवगाहना का है। इहां ऊपरि की पंक्ति विषें प्राप्त बियालीस स्थान गुणाकाररूप हैं। तहां पहला, चौथा कोठा विषें सूक्ष्म जीव कहे, ते क्रम तें पूर्वस्थान तें उत्तरस्थान आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणित है। बहुरि दूसरा, तीसरा, सातवां कोठा विषें बादर कहे अर दशवां कोठा विषें अप्रतिष्ठित प्रत्येक वा बेंद्री कहे, ते क्रम तें पल्य के असंख्यातवां भाग करि गुणित हैं। बहुरि दशवां कोठा विषें तेंद्री सौं लगाइ बारहवां[1] कोठा विषें प्राप्त पंचेंद्री पर्यंत संख्यात करि गुणित हैं। बहुरि नीचली दोय पंक्तिनि के च्यारि कोठानि विषें जे स्थान कहे, ते आवली का असंख्यातवां भाग करि भाजित पूर्वस्थान प्रमाण अधिक हैं।

(देखिए पृष्ठ २०६)

अब इहां कहे जे अवगाहना के स्थान, तिनके गुणाकार का विधान कहिए है। सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना का स्थान, सो आगें कहैंगे गुणाकार, तिनकी अपेक्षा असा है। उगणीस बार पल्य का भाग, नव बार आवली का असंख्यातवां भाग, बाईस बार एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग, नव बार संख्यात, इनिका तौ जाकौं भाग दीजिए। बहुरि बाईस बार आवली का असंख्यातवां भाग करि जाकौं गुणिए असा जो घनांगुल, तींहि प्रमाण है, सो याकौं आदिभूत स्थान स्थापि, यातें सूक्ष्म अपर्याप्तक वायुकायिक जीव का जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणित है, सो याका गुणाकार आवली का असंख्यातवां भाग अर पूर्व आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार

१ छपी हुई प्रति में 'ग्यारहवां', अन्य छह हस्तलिखित प्रतियों, में 'बारहवां' है।

नव बार कह्या था, तामैं एक बार आवली का असंख्यातवां भाग सदृश देखि दोऊनि का अपवर्तन कीए, पूर्वै जहां नव बार कह्या था, तहां इहां आठ बार आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार जानना। ऐसें ही आगें भी गुणकार भागहार कौं समान देखि, तिनि दोऊनि का अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्-कायिक की जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार अपवर्तन कीए आठ बार की जायगा सात बार आवली का असंख्यात भाग का भागहार हो है। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक का जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां पूर्ववत् अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायिक का जघन्य अवगाहना स्थान आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। ऐसें इहां आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार तौ पांच बार रह्या, अन्य सर्व गुणकार भागहार पूर्ववत् जानने। बहुरि इहां पर्यंत सूक्ष्म तैं सूक्ष्म का गुणकार भया, तातैं स्वस्थान गुणकार कहिए है। अब सूक्ष्म तैं बादर का गुणकार कहिए है, सो यहु परस्थान गुणकार जानना। आगैं भी सूक्ष्म तैं बादर, बादर तैं सूक्ष्म का जहां गुणकार होइ, सो परस्थान गुणकार है; ऐसा विशेष जानना। बहुरि इस सूक्ष्म अपर्याप्त पृथिवीकायिक का जघन्य अवगाहन स्थान तैं स्वस्थान गुणकार कौं उलंघि परस्थानरूप बादर अपर्याप्त वातकायिक का जघन्य अवगाहना स्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां इस गुणकार करि उगणीस बार पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार था, तामैं एक बार का अपवर्तन करना। बहुरि यातैं बादर तेजःकायिक अपर्याप्तक का जघन्य अवगाहना स्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। ऐसें ही पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा अनुक्रम करि अपर्याप्त बादर, अप्, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येकनि के जघन्य अवगाहना स्थान, अर अपर्याप्त अप्रतिष्ठित प्रत्येक, बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री पंचेंद्री, के जघन्य अवगाहना स्थान, इन नव स्थानकनि कौं प्राप्त करि पूर्ववत् अपवर्तन करतें अपर्याप्त पंचेंद्रिय का जघन्य अवगाहना स्थान विषैं आठ बार पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार रहै हैं। अन्य भागहार गुणकार पूर्ववत् जानना। बहुरि यातैं सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान, सो परस्थानरूप आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। सो पूर्वै आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार पांच बार रह्या था, तामैं एक बार करि इस गुणकार का अपवर्तन करना।

बहुरि यातैं सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहना स्थान विशेष करि अधिक है। विशेष का प्रमाण कह्या सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, तहां एक भाग मात्र विशेष का प्रमाण है। याकौं तिस ही सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का जघन्य स्थान विषै समच्छेद विधान करि मिलाइ राशि कौं अपवर्तन कीए, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहना हो है।

अपवर्तन कैसें करिए !

जहां जिस राशि का भागहार देइ एक भाग कोई विवक्षित राशि विषै जोडना होइ, तहां तिस राशि तैं एक अधिक का तौ गुणकार अर तिस पूर्ण राशि का भागहार विवक्षित राशि कौं दीजिए। जैसैं चौसठि का चौथा भाग चौसठि विषैं मिलावना होइ तौ चौसठि कौं पांच गुणा करि च्यारि का भाग दीजिए। तैसैं इहां भी आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ एक भाग मिलावना है, तातैं एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार करना। बहुरि पूर्व राशि विषैं बाईस बार एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार है अर बाईस बार ही आवली का असंख्यात भाग का गुणकार है। सो इनि विषैं एक बार का भागहार गुणकार करि अबै कहे जे गुणकार भागहार तिनिका अपवर्तन कीए बाईस बार की जायगा गुणकार भागहार इकईस बार ही रहै है। ऐसैं ही आगै भी जहां विशेष अधिक होइ, तहां अपवर्तन करि आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार एक-एक बार घटावना। बहुरि सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन तैं सूक्ष्म निगोद पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहना विशेष करि अधिक है। इहां विशेष का प्रमाण सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए एक भागमात्र है। याकौं पूर्व अवगाहन विषै जोडि, पूर्ववत् अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाह आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है। सोइ यहां अपवर्तन कीए च्यारि बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग था, सो तीन बार ही रहै है। बहुरि यातैं सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। इहां विशेष का प्रमाण पूर्वराशि कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए एक भागमात्र है, ताकौं जोडि अपवर्तन करना। बहुरि यातें याके नीचै सूक्ष्म वायुकायिक

पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन, सो विशेष करि अधिक है । पूर्वराशि कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीये, तहां एक भाग करि अधिक जानना । इहां भी अपवर्तन करना । बहुरि यातैं सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्तक का जघन्य अवगाहन आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है । इहां अपवर्तन करिए, तहां आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार तीन बार की जायगा दोए बार ही रहै है; ऐसैं ही यातैं सूक्ष्म तेजकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातैं सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातैं सूक्ष्म अपकायिक पर्याप्तक का जघन्य अवगाहन आवली का असंख्यातवां भाग गुणा है । यातैं सूक्ष्म अपकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है । यातैं सूक्ष्म अपकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है । यातैं सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन आवली का असंख्यातवां भाग-गुणा है, यातैं सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है । यातैं सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है, ऐसैं दोय-दोय तौ आवली का असंख्यातवां भाग करि भाजित पूर्वराशि-प्रमाण विशेष करि अधिक अर एक-एक अपना-अपना पूर्वराशि तैं आवली का असंख्यातवां भाग गुणा जानना । ऐसैं आठ अवगाहना स्थाननि कौं उलंघि तहां आठवां सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन, सो पूर्वोक्त प्रकार अपवर्तन करतैं बारह बार आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर आठ बार पल्य का असंख्यात भाग, बारह बार एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग, नव बार संख्यात का भाग जाकैं पाइए, ऐसा घनांगुल प्रमाण हो है । बहुरि यातैं बादर वायुकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन परस्थानरूप है, तातैं पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है । इहां पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार आठ बार था, तामैं एकबार करि अपवर्तन कीए सात बार रहै है । बहुरि यातैं आगैं दोय-दोय स्थान तौ विशेष करि अधिक अर एक-एक स्थान पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा जानना । तहां विशेष का प्रमाण अपना-अपना पूर्वराशि कौं आवली का असंख्यातवां भागरूप प्रतिभाग का भाग दीए एक भाग प्रमाण जानना । सो जहां अधिक होइ, तहां अपवर्तन कीए बारह बार आवली का असंख्यातवां भाग का गुणकार अर एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग का भागहार थे. तिनिविषैं एक-एक बार घटता हो है । बहुरि जहाँ पल्य का असंख्यातवां भाग का गुणकार होइ, तहां अपवर्तन कीए सात बार पल्य का

असंख्यातवां भाग का भागहार थे, तिनि विषैं एक-एक बार घटता हो है, असा क्रम जानना । सो बादर वायुकायिक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन तें बादर वायुकायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है। यातें बादर वायुकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है । यातें बादर तेजकाय पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है, यातें बादर तेजकाय अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । यातें बादर तेजकायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है । यातें बादर अप्कायिक अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है । यातें बादर अप्कायिक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष करि अधिक है । यातें बादर अप्कायिक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । यातें बादर पृथ्वी पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है । यातें बादर पृथ्वी अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातें बादर पृथ्वी पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । यातें बादर निगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है । यातें बादर निगोद अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । यातें बादर निगोद पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । यातें प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य के असंख्यातवां भाग गुणा है । यातें प्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । यातें प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । असें सतरह अवगाहन स्थाननि कौं उलंघि पूर्वोक्त प्रकार अपवर्तन कीए सतरहवां बादर पर्याप्त प्रतिष्ठित प्रत्येक का उत्कृष्ट अवगाहन दोय बार पल्य का असंख्यातवां भाग अर नव बार संख्यात का भाग जाकौं दीजिए, असा घनांगुल प्रमाण हो है । बहुरि यातें अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है, इहां भी अपवर्तन करना ।

बहुरि यातें बेंद्री पर्याप्त का जघन्य अवगाहन पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा है । इहां भी अपवर्तन कीए पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार था, सो दूरि होइ घनांगुल का नव बार संख्यात का भागहार रह्या । बहुरि यातें तेंद्री, चौंद्री, पंचेंद्री पर्याप्तनि के जघन्य अवगाहन ते क्रम तें पूर्व-पूर्व तें संख्यात-संख्यात गुणें हैं । यातें तेंद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । यातें चौंद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । यातें बेंद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । यातें अप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात

गुणा है । यातैं पंचेंद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है । असैं एक-एक बार संख्यात का गुणकार करि नव बार संख्यात का भागहार विषैं एक-एक बार का अपवर्तन करतैं पंचेंद्री अपर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन एक बार संख्यात करि भाजित घनांगुल प्रमाण हो है। बहुरि यातैं त्रींद्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है, सो अपवर्तन करिए; तथापि इहां गुणकार के संख्यात का प्रमाण भागहार के संख्यात का प्रमाण तैं बहुत है। तातैं त्रींद्रिय पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा घनांगुल प्रमाण है। यातैं चौइंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं बेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं पंचेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। असैं क्रम तैं अवगाहन के स्थान जानने ।

आगै सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन तैं सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त के जघन्य अवगाहन का गुणाकार स्वरूप आवली का असंख्यात भाग कह्या। ताकी उत्पत्ति का अनुक्रम कौं अर तिन दोऊनि के मध्य अवगाहन के भेद हैं, तिनके प्रकारनि कौं गाथा नव करि कहै हैं—

अवरुवरि इगिपदेसे,जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए ।
आदी णिरंतरमदो, एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥१०२॥

अवरोपरि एकप्रदेशे, युते असंख्यातभागवृद्धेः ।
आदिः निरंतरमतः, एकैकप्रदेशपरिवृद्धिः ॥१०२॥

टीका — सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव का जघन्य अवगाहन पूर्वोक्त प्रमाण, ताकी लघु संदृष्टि करि यहु सर्व तैं जघन्य भेद है, तातैं याका आदि अक्षर ज ऐसा स्थापन करि बहुरि यातैं दूसरा अवगाहना का भेद के अर्थि इस जघन्य अवगाहन विषैं एक प्रदेश जोडैं, सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक का दूसरा अवगाहन का भेद हो है। बहुरि ऐसैं ही एक-एक प्रदेश बधता अनुक्रम करि तावत् प्राप्त होना, यावत् सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना, सो सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य अवगाहना तैं आवली का असंख्यातवां भाग गुणा होइ। तहां असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि असंख्यात गुण वृद्धि ऐसैं चतुस्थान पतित वृद्धि अर बीचि-बीचि अवक्तव्य भाग वृद्धि

वा अवक्तव्य गुण वृद्धि, तिनिकरि बधते जे अवगाहन के स्थान, तिनिके उपजने का विधान कहिए है ।

भावार्थ – जघन्य अवगाहना का जेता प्रदेशनि का प्रमाण, ताकौं जघन्य अवगाहना प्रमाण असंख्यात तैं लगाइ जघन्य परीतासंख्यात पर्यंत जिस-जिसका भाग देना संभवै, तिस-तिस असंख्यात का भाग देते (जघन्य अवगाहन) जिस-जिस अवगाहन भेद विषैं प्रदेश बधती का प्रमाण होइ, तहां-तहां असंख्यात भाग वृद्धि कहिए बहुरि तिस जघन्य अवगाहना का प्रदेश प्रमाण कौं उत्कृष्ट संख्यात तैं लगाइ यथा संभव दोय पर्यंत संख्यात के भेदनि का भाग देतैं जघन्य अवगाहना तैं जिस-जिस अवगाहना विषैं बधती का प्रमाण होइ, तहां-तहां संख्यात भाग वृद्धि कहिये । बहुरि दोय तैं लगाइ उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत (संख्यात के भेदनि करि) जघन्य अवगाहना कौं गुणें जिस-जिस अवगाहना विषैं प्रदेशनि का प्रमाण होइ, तहां-तहां संख्यात गुण वृद्धि कहिए । बहुरि जघन्य परीतासंख्यात तैं लगाइ आवली का असंख्यातवां भाग पर्यंत असंख्यात के भेदनि करि जघन्य अवगाहना कौं गुणें, जिस-जिस अवगाहना के भेद विषैं प्रदेशनि का प्रमाण होइ तहां-तहां असंख्यात गुण वृद्धि कहिए । बहुरि जहां-जहां इनि संख्यात वा असंख्यात के भेदनि का भागहार गुणकार न संभवै ऐसे प्रदेश जघन्य अवगाहना तैं जहां-जहां बधती होइ, सो अवक्तव्य भाग वृद्धि वा अवक्तव्य गुण वृद्धि कहिए । सो यहु (अवक्तव्य)[1] वृद्धि पूर्वोक्त चतुःस्थान पतित वृद्धि के बीचि-बीचि होइ है । बहुरि यहाँ जघन्य अवगाहना प्रमाण तैं बधता असंख्यात का अर अनंत का भाग की वृद्धि न संभवै है, जातैं इनिका भाग जघन्य अवगाहना कौं न बनै हैं । बहुरि इहां आवली का असंख्यातवां भाग तैं बधता असंख्यात का अर अनन्त का गुणकाररूप वृद्धि न संभवै है, जातैं इनि करि जघन्य अवगाहना कौं गुणैं प्रमाण बधता होइ । इहां सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक का जघन्य अवगाहना पर्यंत ही विवक्षा है ।

असें इहां प्रदेश वृद्धि का स्वरूप जानना, सोई विशेष करि कहिए है । सर्व तैं जघन्य अवगाहना कौं इस जघन्य अवगाहना प्रमाण असंख्यात का भाग दीए एक पाया, सो जघन्य अवगाहना के ऊपरि एक प्रदेश जोड़ें, दूसरा अवगाहना का भेद हो है, सो यहु असंख्यात भाग वृद्धि का आदि स्थान है । बहुरि जघन्य अवगाहना तैं आधा प्रमाणरूप असंख्यात का भाग तिस जघन्य अवगाहना कौं दीए दोय पाए,

१. ब प्रति के अनुसार पाठभेद है ।

सो जघन्य अवगाहना विषैं जोडें, तीसरा अवगाहना का भेद होइ, सो यहु असंख्यात भाग वृद्धि का दूसरा स्थान है। ऐसें ही क्रम करि जघन्य अवगाहना कौं यथायोग्य असंख्यात का भाग दीए तीन, च्यारि, पांच इत्यादि संख्यात असंख्यात पाए, ते जघन्य अवगाहना विषैं जोडें निरंतर एक-एक प्रदेश की वृद्धि करि संयुक्त अवगाहना के स्थान असंख्यात हो हैं। तिनिकौं उलंघि कहा होइ सो कहैं हैं—

अवरोग्गाहणमाणे, जहण्णपरिमिदअसंखरासिहिदे।
अवरस्सुवरिं उड्ढे, जेट्ठमसंखेज्जभागस्स ॥१०३॥

अवरावगाहनाप्रमाणे, जघन्यपरिमितासंख्यातराशिहृते।
अवरस्योपरि वृद्धे, ज्येष्ठमसंख्यातभागस्य ॥१०३॥

टीका — एक जायगा जघन्य अवगाहना कौं जघन्य परिमि असंख्यात राशि का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य अवगाहना विषैं जोडें जितने होइ, तितने प्रदेश जहां अवगाहना भेद विषैं होइ, तहां असंख्यात भाग वृद्धिरूप अवगाहना स्थाननि का अंतस्थान हो है। ऐसे ए असंख्यात भाग वृद्धि के स्थान कितने भए? सो कहिए है — 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इस करण सूत्र करि असंख्यात भाग वृद्धिरूप अवगाहना का आदिस्थान का प्रदेश प्रमाण कौं अंतस्थान का प्रदेश प्रमाण में स्यों घटाए अवशेष रहै, ताकौं स्थान-स्थान प्रति एक-एक प्रदेश बधता है, तातें एक का भाग दीए भी तितने ही रहैं, तिनमें एक और जोडें जितने होइ, तितने असंख्यात भाग वृद्धि के स्थान जानने।

तस्सुवरि इगिपदेसे, जुदे अवत्तव्वभागपारंभो।
वरसंखमवहिदवरे, रूऊणे अवरउवरिजुदे ॥१०४॥

तस्योपरि एकप्रदेशे, युते अवक्तव्यभागप्रारंभः।
वरसंख्यातावहितावरे, रूपोने अवरोपरियुते ॥१०४॥

टीका — पूर्वोक्त असंख्यात वृद्धि का अन्त अवगाहना स्थान, तीहि विषैं एक प्रदेश जुडें अवक्तव्य भाग वृद्धि का प्रारंभरूप प्रथम अवगाहना स्थान हो है। बहुरि ताके आगें एक-एक प्रदेश बधता अनुक्रम करि अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थानकनि कौं उलंघि एक बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग जघन्य अवगाहना कौं दीए जो

प्रमाण आवै, तामैं एक घटाए जितने होंइ, तितने प्रदेश जघन्य अवगाहना के ऊपरि जुडैं कहा होइ सो कहै हैं –

तव्वड्ढीए चरिमो, तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा ।
संखेज्जभागउड्ढी, उवरिमदो रूवपरिवड्ढी ॥१०५॥

तद्वृद्धेश्चरमः, तस्योपरि रूपसंयुते प्रथमा ।
संख्यातभागवृद्धिः उपर्यतो रूपपरिवृद्धिः ॥१०५॥

टीका – तौहि अवक्तव्य भाग वृद्धि का अन्त अवगाहन स्थान हो है । बहुरि ए अवक्तव्य भाग वृद्धि स्थानकनि के भेद कितने हैं ! सो कहिए है –'**आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे**' इस करण सूत्र करि अवक्तव्य भाग वृद्धि का आदिस्थान का प्रदेश प्रमाण अन्तस्थान का प्रदेश प्रमाण विषैं घटाइ, अवशेष कौं वृद्धि प्रमाण एक-एक का भाग देइ जे पाए तिनि में एक जोडैं जितने होंइ, तितने अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान हैं ।

बहुरि अब अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थानकनि की उत्पत्ति कौ अंक संदृष्टि करि व्यक्त करैं हैं । जैसे जघन्य अवगाहना का प्रमाण अडतालीस सै (४८००), जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण सोलह, उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण १५, तहां भागहारभूत जघन्य परीतासंख्यात सोलह (१६) का भाग जघन्य अवगाहना अडतालीस सै (४८००) कौं दीए तीन सै पाए, सो इतने जघन्य अवगाहना तैं वधैं असंख्यात भाग वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान हो है । बहुरि तिस जघन्य अवगाहना अडतालीस सै कौं उत्कृष्ट संख्यात पंद्रह, ताका भाग दीए तीन सै बीस (३२०) पाए, सो इतने वधें संख्यात भाग वृद्धि का प्रथम अवगाहना स्थान हो है । बहुरि इनि दोऊनि के बीच अंतराल विषैं तीन सै एक कौं आदि देकरि तीन सै उगणीस ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२ ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९ पर्यन्त वधैं जे ए उगणीस स्थान भेद हो हैं, ते असंख्यात भाग वृद्धिरूप वा संख्यात भाग वृद्धिरूप न कहे जाइ, जातैं जघन्य असंख्यात का भी वा उत्कृष्ट संख्यात का भी भाग दीए ते तीन सै एक आदि न पाइए हैं । काहे तैं ! जातै जघन्य असंख्यात का भाग दीए तीन सैं पाए, उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीए तीन सै बीस पाए, इनि तैं तिनकी संख्या हीन अधिक है । तातैं इनिकौं अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप स्थान कहिए तौ इहां अवक्तव्य भाग वृद्धि विषैं भागहार का प्रमाण कैसा संभवै है ! सो कहिए है – जघन्य का प्रमाण अडतालीस

सैं, ताकौं इस तीन सै एक प्रमाण भागहार का भाग दीए जो पाइए, तितने का भागहार संभवै है । तहां 'हारस्य हारो गुणकोंशराशेः' इस करण सूत्र करि भागहार का भागहार है, सो भाज्य राशि का गुणकार होइ; असैं भिन्न गणित का आश्रय करि अडतालीस सै कौं तीन सै एक करि ताकौ अडतालीस सै का भाग दीए इतने प्रमाण तिस अवक्तव्य भागवृद्धि का प्रथम अवगाहन भेद कै वृद्धि का प्रमाण हो है। सो अपवर्तन कीए तीन सै एक ही आवै है। सो यहु संख्यात-असंख्यातरूप भागहाररूप न कह्या जाय; तातैं अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप कह्या है ।

भावार्थ – इहां असा जो भिन्न गणित का आश्रय करि इहां भागहार का प्रमाण असा आवै है । बहुरि जैसैं यहु अंकसंदृष्टि करि कथन कीया, असैं ही अर्थ-संदृष्टि करि कथन जोडना । इस ही अनुक्रम करि अवक्तव्य भाग वृद्धि के अन्तस्थान पर्यन्त स्थान ल्यावने । बहुरि तिस अवक्तव्य भाग वृद्धि का अन्त अवगाहना स्थान विषैं एक प्रदेश जुडैं संख्यात भाग वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । ताके आगे एक-एक प्रदेश की वृद्धि का अनुक्रम करि अवगाहन स्थान असंख्यात प्राप्त हो है ।

अवरद्धे अवरुवरिं, उड्ढे तव्वड्ढिपरिसमत्तीहु ।
रूवे तदुवरि उड्ढे, होदि अवत्तव्वपढमपदं ।।१०६।।

अवरार्धे अवरोपरिवृद्धे तद्वृद्धिपरिसमाप्तिर्हि ।
रूपे तदुपरिवृद्धे, भवति अवक्तव्यप्रथमपदम् ।।१०६।।

टीका – जघन्य अवगाहना का आधा प्रमाणरूप प्रदेश जघन्य अवगाहना के ऊपरि बधतें संतें संख्यात भाग वृद्धि का अन्तस्थान हो है । जातैं जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है, ताका भाग दीए राशि का आधा प्रमाण हो है । बहुरि ए संख्यात भाग वृद्धि के स्थान केते हैं ! सो कहिए है - **आदी अंत सुद्धे वट्टिहिदे रूवसंजुदे ठाणे'** इस सूत्र करि संख्यात भाग वृद्धि का आदिस्थान का प्रदेश प्रमाण कौं अन्तस्थान का प्रदेश प्रमाण विषैं घटाइ अवशेष कौं वृद्धि का प्रमाण एक का भाग दीए भी तितने ही रहैं । तहां एक जोडैं जो प्रमाण होइ, तितने संख्यात भाग वृद्धि के स्थान हैं । बहुरि संख्यात भाग वृद्धि का अन्त अवगाहना स्थान विषैं एक प्रदेश जुडैं, अवक्तव्य भागवृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान उपजै है । बहुरि ताके आगे एक-एक प्रदेश बधता अनुक्रम करि अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान असंख्यात उलंघि एक जायगा कह्या, सो कहै हैं ।

रूऊणवरे अवरुस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं ।
तम्हि पदेसे उड्ढे, पढमा संखेज्जगुणवड्ढि ॥१०७॥

रूपोनावरे अवरस्योपरि संवर्धिते तदुत्कृष्टं ।
तस्मिन् प्रदेशे वृद्धे प्रथमा संख्यातगुणवृद्धिः ॥१०७॥

टीका – एक घाटि जघन्य अवगाहना का प्रदेश प्रमाण जघन्य अवगाहना के ऊपरि बधतैं संतैं अवक्तव्य भाग वृद्धि का अन्त उत्कृष्ट अवगाहना स्थान हो है । जातैं जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है, सो दूणा भए संख्यात गुण वृद्धि का आदि स्थान होइ । तातैं एक घाटि भए, याका अंतस्थान हो है । इहां अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान केते हैं ? सो कहिए है – **'आदी अंते सुद्धे'** इत्यादि सूत्र करि याके आदि कौं अन्त विषैं घटाइ, अवशेष कौं वृद्धि एक का भाग देइ एक जोडैं जो प्रमाण होइ, तितने अवक्तव्य भाग वृद्धि के स्थान हो है । बहुरि तिस अवक्तव्य भाग वृद्धि का अंत स्थान विषैं एक प्रदेश जुडैं, संख्यात गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । तार्कै आगें एक-एक प्रदेश की वृद्धि करि संख्यात गुण वृद्धि के असंख्यात अवगाहना स्थान कौं प्राप्त होइ, एक स्थान विषैं कह्या, सो कहै हैं –

अवरे वरसंखगुणे, तच्चरिमो तह्मि रूवसंजुत्ते ।
उग्गाहणह्मि पढमा, होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥१०८॥

अवरे वरसंख्यगुणे, तच्चरमः तस्मिन् रूपसंयुक्ते ।
अवगाहने प्रथमा, भवति अवक्तव्यगुणवृद्धिः ॥१०८॥

टीका – जघन्य अवगाहना कौं उत्कृष्ट संख्यात करि गुणें जितने होंइ, तितने प्रदेश जहां पाइए, सो संख्यात गुण वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान है । बहुरि ए संख्यात गुण वृद्धि के स्थान केते हैं ? सो कहिए है – पूर्ववत् **'आदी अंते सुद्धे वट्ठिहिदे रूवसंजुदे ठाणे'** इत्यादि सूत्र करि याका आदि कौं अन्त विषैं घटाइ, वृद्धि एक का भाग देई, एक जोडैं, जितने पावैं तितने हैं । बहुरि आगैं संख्यात गुण वृद्धि का अन्त अवगाहना स्थान विषैं एक प्रदेश जोडैं, अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है । यातैं आगैं एक-एक प्रदेश की वृद्धि करि अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान असंख्यात प्राप्त करि एक स्थान विषैं कह्या, सो कहै हैं –

अवरपरित्तासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे ।
तच्चरिमो रूवजुदे, तह्यि असंखेज्जगुणपढमं ।।१०९।।

अवरपरीतासंख्येनावरं संगुण्य रूपपरिहीने ।
तच्चरमो रूपयुते, तस्मिन् असंख्यातगुणप्रथमम् ।।१०९।।

टीका – जघन्य परीता असंख्यात करि जघन्य अवगाहना कौं गुणि, तामैं एक घटाए जो प्रमाण होइ, तितने प्रदेशरूप तिस अवक्तव्य गुण वृद्धि का अन्त अवगाहना स्थान हो है । ए अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान केते हैं ! सो कहिए है – पूर्ववत् 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्र करि याका आदि कौं अंत विषै घटाए, अवशेष कौं वृद्धि एक का भाग देइ एक जोडें, जितने होंइ तितने हैं । बहुरि इहां अवक्तव्य गुण वृद्धि का स्वरूप अंकसंदृष्टि करि अवलोकिए हैं । जैसैं जघन्य अवगाहना का प्रमाण सोलह (१६), एक घाटि जघन्य परीता असंख्यात प्रमाण जो उत्कृष्ट संख्यात, ताका प्रमाण तीन, ताकरि जघन्य कौं गुणें अडतालीस होंइ । बहुरि जघन्य परिमित असंख्यात का प्रमाण च्यारि, ताकरि जघन्य कौं गुणें चौंसठि होइ, इनिके बीचि जे भेद, ते अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान हैं । जातें इनि कौं संख्यात वा असंख्यात गुण वृद्धि रूप कहे न जाइ, तहां जघन्य अवगाहन सोलह कौं एक घाटि परीता संख्यात तीन करि गुणें अडतालीस होंइ, तामें एक जोडें अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम स्थान हो है । याकौं जघन्य अवगाहन सोलह का भाग दीए पाया गुणचास का सोलहवां भाग प्रमाण अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम स्थान ल्यावने कौं गुणकार हो है । याकरि जघन्य अवगाहन कौं गुणि अपवर्तन कीए अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान गुणचास प्रदेश प्रमाण हो है । अथवा अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम स्थान एक अधिक तिगुणा सोलह, ताकौं जघन्य अवगाहना सोलह, ताका भाग देइ पाया एक सोलहवां भाग अधिक तीन, ताकरि जघन्य अवगाहन सोलह कौं गुणें गुणचास पाए, तितने ही प्रदेश प्रमाण अवक्तव्य गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो हैं । असैं अन्य उत्तरोत्तर भेदनि विषैं भी गुणकार का अनुक्रम जानना । तहां अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत का अवगाहना स्थान, सो जघन्य अवगाहन सोलह कौं जघन्य परिमिता संख्यात च्यारि करि गुणें जो पाया, तामें एक घटाए तरेसठि होइ, सो इतने प्रदेश प्रमाण हैं । बहुरि याकौं जघन्य अवगाहन सोलह का भाग देइ, पाया तरेसठि का सोलहवां भाग, सोइ अवक्तव्य गुण वृद्धि का

अंत अवगाहना स्थान ल्यावने विषें गुणकार हो है । याकरि जघन्य अवगाहन सोलह कौं गुणें, अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत अवगाहन स्थान की उत्पत्ति हो है; सो अवलोकनी । अथवा अवक्तव्य गुण वृद्धि के अंत अवगाहन स्थान तरेसठि कौं जघन्य अवगाहन सोलह का भाग देइ पाया तीन अर पंद्रह सोलहवां भाग, इस करि जघन्य अवगाहन सोलह कौं गुणें, अवक्तव्य गुण वृद्धि का अंत अवगाहना स्थान का प्रदेश प्रमाण हो है । सो सर्व अवक्तव्य गुण वृद्धि का स्थापन गुणचास आदि एक-एक बधता तरेसठि पर्यन्त जानना । ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३ । बहुरि इस ही अनुक्रम करि अर्थसंदृष्टि विषें भी एक घाटि जघन्य अवगाहन प्रमाण इस अवक्तव्य गुण वृद्धि के स्थान जानने । बहुरि अब पूर्वोक्त अवक्तव्य गुण वृद्धि का अन्त अवगाहन स्थान विषें एक प्रदेश जुडें, असंख्यात गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान हो है ।

रूवुत्तरेण तत्तो, आवलियासंखभागगुणगारे ।
तप्पाउग्गे जादे, वाउस्सोगाहणं कमसो ॥११०॥

रूपोत्तरेण तत, आवलिकासंख्यभागगुणकारे ।
तत्प्रायोग्ये जाते, वायोरवगाहनं क्रमशः ॥११०॥

टीका – **ततः** कहिए तीहि असंख्यात गुण वृद्धि का प्रथम अवगाहन स्थान तें आगें एक-एक प्रदेश वृद्धि करि असंख्यात गुण वृद्धि के अवगाहन स्थान असंख्यात हो हैं । तिनिकौं उलंघि एक स्थान विषें यथायोग्य आवलि का असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात का गुणकार, सो सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त निगोद का जघन्य अवगाहन गुण्य का होते संते सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान की उत्पत्ति हो है । इहां ए केते स्थान भए ! तहां 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्र करि आदि स्थान कौं अन्त स्थान विषें घटाइ, अवशेष कौं वृद्धि एक का भाग देइ लब्ध राशि विषें एक जोडें, स्थानकनि का प्रमाण हो है ।

आगें सर्व अवगाहन के स्थानकनि का गुणकार की उत्पत्ति का अनुक्रम कहै हैं–

एवं उवरि विणेओ, पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं ।
सव्वत्थेक्केक्कह्मि य, जीवसमासाण विच्चाले ॥१११॥

एवमुपर्यपि ज्ञेयः, प्रदेशवृद्धिक्रमो यथायोग्यम् ।
सर्वत्रैकैकस्मिश्च जीवसमासानामंतराले ॥१११॥

टीका – **एवं** कहिए इस ही प्रकार जैसें सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक का जघन्य अवगाहना स्थान कौं आदि देकरि सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त वायुकायिक जीव का जघन्य अवगाहन स्थान पर्यन्त पूर्वोक्त प्रकार चतुःस्थान पतित प्रदेश वृद्धि का अनुक्रम विधान कह्या, तैसें ऊपरि भी सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक तेजकाय का जघन्य अवगाहन तैं लगाइ द्वींद्रिय पर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान पर्यन्त जीवसमास का अवगाहना स्थानकनि का अन्तरालनि विषैं प्रत्येक जुदा-जुदा चतुःस्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम करि प्राप्त होइ यथायोग्य गुणकार की उत्पत्ति का विधान जानना ।

भावार्थ – जैसें सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान अर सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान के बीचि अन्तराल विषैं चतुःस्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम विधान कह्या । तैसें ही सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्त अर सूक्ष्म तेजःकायिक लब्धि अपर्याप्तकनि का अंतराल विषैं वा ऐसें ही द्वींद्रिय पर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान पर्यंत अगिले अंतरालनि विषैं चतुःस्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम विधान जानना । विशेष इतना - तहां आदि अवगाहन स्थान का वा भाग वृद्धि, गुण वृद्धि विषैं असंख्यात का प्रमाण वा अनुक्रम वा स्थानकनि का प्रमाण इत्यादि यथासंभव जानने ।

बहुरि तैसें ही ताके आगे तेइंद्री पर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान आदि देकरि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत अवगाहन स्थानकनि का एक-एक अन्तराल विषैं असंख्यात गुण वृद्धि बिना त्रिस्थान पतित प्रदेशनि की वृद्धि का अनुक्रम करि प्राप्त होइ यथायोग्य गुणकार की उत्पत्ति का विधान जानना ।

भावार्थ – इहां पूर्वस्थान तैं अगिला स्थान संख्यात गुणा ही है । तातैं तहां असंख्यात गुण वृद्धि न संभवै है, त्रिस्थान पतित वृद्धि ही संभवै है । इहां भी विशेष इतना – जो आदि अवगाहना स्थान का वा भाग वृद्धि विषैं असंख्यात का वा गुण वृद्धि विषैं संख्यात का प्रमाण वा अनुक्रम वा स्थानकनि का प्रमाण इत्यादिक यथासंभव जानने । ऐसें इहां प्रसंग पाइ चतुःस्थान पतित वृद्धि का वर्णन किया है ।

बहुरि कहीं षट्स्थान पतित, कहीं पंचस्थान पतित, कहीं चतुःस्थान पतित, कहीं त्रिस्थान पतित, कहीं द्विस्थान पतित, कहीं एकस्थान पतित वृद्धि संभवै है । अथवा कहीं ऐसें ही हानि संभवै है, तहां भी ऐसें ही विधान जानना । तहां जाका निरूपण होइ ऐसा जो विवक्षित, ताके आदि स्थान के प्रमाण तैं अगले स्थान विषैं

प्रमाण बधता होइ, तहां वृद्धि संभवै है; जहां घटता होइ, तहां हानि संभवै है। सो इनिका स्वरूप नीकैं जानने के अर्थि इस भाषाटीका विषै किछू कथन करिए है।

प्रथम षट्स्थान पतित वृद्धि वा हानि का स्वरूप कहिये है। अनन्त भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनंत गुण वृद्धि ऐसैं षट्स्थान पतित वृद्धि जाननी। बहुरि अनंत भागहानि, असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि असंख्यात गुणहानि, असंख्यात गुणहानि, अनंत गुणहानि ऐसैं षट्स्थानपतित हानि जाननी। बहुरि इनिके बीचि-बीचि अवक्तव्य वृद्धि वा हानि संभवै है। सो इनिका स्वरूप अंकसंदृष्टिरूप दृष्टांत करि दिखाइए है, जातैं याके जानैं यथार्थ स्वरूप का ज्ञान सुगम होइ है।

तहां जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय (२), उत्कृष्ट संख्यात का पांच (५), जघन्य असंख्यातका छह (६), उत्कृष्ट असंख्यातका पंद्रह (१५), जघन्य अनंत का सोलह (१६), उत्कृष्ट अनंत का प्रमाण बहुत है। तथापि इहां भागहार विषै तौ आदिस्थान प्रमाण जानना अर गुणकार विषै आदिस्थान तैं जितने गुणां बधता वा घटता अंत स्थान होई, तौहि प्रमाण ग्रहण करना। सो इहां अंकदृष्टि विषै आदि स्थान का प्रमाण चौवीस सै स्थापना कीया। बहुरि वृद्धिरूप होइ दूसरा स्थान चौवीस सै एक प्रमाणरूप भया। तहां अनंत भाग वृद्धि का आदि संभवै है, जातैं आदि स्थान के प्रमाण कौं आदि स्थान प्रमाण जो अनंत का भेद, ताका भाग दीए एक पाया, सो आदि स्थान तैं इहां एक की वृद्धि भई है। ऐसैं ही जिस-जिस स्थान विषै आदि स्थान तैं जो अधिक का प्रमाण होइ, सो प्रमाण संभवतैं कोई अनंत के भेद का भाग आदि स्थान कौं दीए आवै, तहां-तहां अनंत भाग वृद्धि संभवै है। तहां जो स्थान पचीस सै पचास प्रमाणरूप भया, तहां अनंत भाग वृद्धि का अंत जानना। जातैं जघन्य अनंत का प्रमाण सोलह, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए एक सौ पचास पाए, सोई इहां आदि स्थान तैं अधिक का प्रमाण है। बहुरि पचीस सै इक्यावन तैं लगाइ पचीस सै गुणसठि पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान, ते अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप हैं। जातैं जघन्य अनंत का भी वा उत्कृष्ट असंख्यात का भी भाग की वृद्धि कीए जो प्रमाण होइ, तातैं इनिका प्रमाण हीन अधिक है। यद्यपि भिन्न गणित करि इहां भागहार का प्रमाण सोलह तैं किछू हीन वा पंद्रह तैं किछू अधिक पाइए, तथापि सोलह प्रमाण जघन्य अनंत तैं भी याका प्रमाण हीन भया। तातैं याकौं अनंत भागरूप न कह्या जाय।

अर उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह तैं भी याका प्रमाण अधिक भया, तातैं याकौं असंख्यात भागरूप न कह्या जाय । जातैं उत्कृष्ट तैं अधिक अर जघन्य तैं हीन कहना असंभव है, तातैं इहां अवक्तव्य भाग का ग्रहण कीया । असैं ही आगैं भी यथासंभव अवक्तव्य भाग वृद्धि वा गुण वृद्धि वा अवक्तव्य भाग हानि वा गुण हानि का स्वरूप जानना । बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान पचास सै साठिप्रमाण रूप भया, तहां असंख्यात भाग वृद्धि आदि संभवै है । जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह का भाग आदि स्थान कौं दीए एक सौ साठि पाए, सोई इहां आदि स्थान तैं अधिक का प्रमाण है । बहुरि ऐसैं ही जिस-जिस स्थान विषैं आदि स्थान तैं अधिक का प्रमाण संभवतैं असंख्यात के भेद का भाग आदि स्थान कौं दीए आवै, तहां-तहां असंख्यात भाग वृद्धि संभवै है । तहां जो स्थान अठाइस सै प्रमाणरूप भया, तहां असंख्यात भाग वृद्धि का अंत जानना । जातैं जघन्य असंख्यात छह, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए च्यारि सै पाए, सोई इहां इतने आदि स्थान तैं अधिक है । बहुरि जे स्थान अट्ठाइस सै एक आदि अट्ठाईस सै गुण्यासी पर्यंत प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य भाग वृद्धि संभवै है । जातैं जघन्य असंख्यात का भी वा उत्कृष्ट संख्यात का भी भाग की वृद्धिरूप प्रमाण तैं इनिका प्रमाण अधिक हीन है । बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अठ्ठाईस सै असी प्रमाणरूप भया, तहां संख्यात भाग वृद्धि का आदि संभवै है । जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए च्यारि सै असी पाए, सोई इतने इहां आदि स्थान तैं अधिक हैं । बहुरि ऐसैं ही जिस-जिस स्थान विषैं आदि स्थान तैं अधिक का प्रमाण संभवते संख्यात के भेद का भाग आदि स्थान कौं दीए आवै, तहां-तहां संख्यात भाग वृद्धि संभवै है । तहां जो स्थान छत्तीस सै प्रमाणरूप भया, तहां संख्यात भाग वृद्धि का अंत जानना । जातैं जघन्य संख्यात दोय, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए बारह सै पाए, सो इतने इहां आदि स्थान तैं अधिक हैं । बहुरि जे स्थान छत्तीस सै एक आदि सैंतालीस सै निन्याणवे पर्यन्त प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य भाग वृद्धि संभवै है । जातैं जघन्य संख्यात भाग वृद्धि वा जघन्य संख्यात गुण वृद्धिरूप प्रमाण तैं भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है । बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अडतालीस सै प्रमाणरूप भया, तहां संख्यात गुण वृद्धि का आदि संभवै है; जातैं जघन्य संख्यात दोय, ताकरि आदि स्थान कौं गुणैं इतना प्रमाण हो है । ऐसैं ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवते संख्यात के भेद करि आदि स्थान कौं गुणैं आवै, तहां-तहां संख्यात गुण वृद्धि संभवै हैं । तहां जो स्थान बारह हजार प्रमाणरूप भया, तहां संख्यात

गुण वृद्धि का अंत जानना। जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच, ताकरि आदि स्थान कौं गुणें इतना प्रमाण हो है। बहुरि जे स्थान बारह हजार एक तें लगाई चौदह हजार तीन सौ निन्याणवै पर्यंत प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य गुण वृद्धि संभवै है। जातैं उत्कृष्ट संख्यात गुण वृद्धि वा जघन्य असंख्यात गुण वृद्धिरूप प्रमाण तें भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है। बहुरि वृद्धिरूप होई जो स्थान चौदह च्यारि सै प्रमाणरूप भया, तहां असंख्यात भागवृद्धि[1] का आदि संभव है। जातैं जघन्य असंख्यात छह, ताकरि आदि स्थान कौं गुणैं, इतना प्रमाण हो है। बहुरि ऐसैं ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवते असंख्यात के भेद करि आदि स्थान कौं गुणें आवै, तहां-तहां असंख्यात गुण वृद्धि[2] संभवै है। तहां जो स्थान छत्तीस हजार प्रमाण तहां असंख्यात गुण वृद्धि[3] का अंत जानना। जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह, ताकरि आदि स्थान कौं गुणें इतना प्रमाण हो है। बहुरि जे स्थान छत्तीस हजार एक आदि अड़तीस हजार तीन सै निन्याणवै पर्यंत प्रमाणरूप हैं, तहां अवक्तव्य गुण वृद्धि संभवै है। जातैं उत्कृष्ट असंख्यात गुण वृद्धि वा जघन्य अनंत गुण वृद्धिरूप प्रमाण तें भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अड़तीस हजार च्यारि सै प्रमाणरूप भया, तहां अनंत गुणवृद्धि का आदि संभवै है, जातैं जघन्य अनंत सोलह, ताकरि आदि स्थान कौं गुणें इतना प्रमाण हो है।

बहुरि ऐसैं ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण सम्भवतें अनन्त का भेद करि आदि स्थान कौं गुणें आवै, तहां अनन्त गुण वृद्धि सम्भवै है। तहां जो स्थान दोय लाख चालीस हजार प्रमाण रूप भया, तहां अनन्त गुण वृद्धि का अंत जानना। जातैं यद्यपि अनन्त का प्रमाण बहुत है, तथापि इहां जिस अनन्त के भेद करि गुणित अंतस्थान होइ, सोई अनन्त का भेद इहां अंत विषें ग्रहण करना। सो अंकसंदृष्टि विषें एक सौ प्रमाण अनन्त के भेद का अंत विषें ग्रहण कीया। तीहिकार आदि स्थान कौं गुणें दोय लाख चालीस हजार होइ, सोई विवक्षित के अंतस्थान का प्रमाण जानना। ऐसैं इहां षट्स्थान पतित वृद्धि का विधान दिखाया।

अब षट्स्थान पतित हानि का विधान दिखाइए है। इहां विवक्षित का आदि स्थान दोय लाख चालीस हजार प्रमाणरूप स्थापन कीया। यातैं घटि करि दूसरा स्थान जो दोय लाख गुणतालीस हजार नौ सै निन्याणवै प्रमाणरूप भया, सो

१. ख प्रति में गुणवृद्धि है। २. ब प्रति में यहां भागवृद्धि है। ३. ब प्रति में यहां भागवृद्धि है।

अनंत भाग हानि का आदिरूप है । जातैं आदि स्थान कौं आदि स्थान प्रमाणरूप जो अनंत का भेद, ताका भाग दीए एक पाया, सोई इहां आदि स्थान तैं एक घटती भया है । बहुरि ऐसें ही जिस-जिस स्थान विषें आदि स्थान तैं जेता घटती होइ, तितना प्रमाण कोई अनंत के भेद का भाग आदि स्थान कौं दीए पावैं, सो-सो स्थान अनंत भाग हानिरूप जानना । तहां जो स्थान दोय लाख पचीस हजार प्रमाणरूप होइ, सो स्थान अनंत भाग हानि का अन्त जानना । जातैं जघन्य अनंत सोलह, ताका भाग आदि स्थान कौं दीए पंद्रह हजार पाये, सो इहां आदि स्थान तैं हीन का प्रमाण है । बहुरि दोय लाख चौवीस हजार नव सै निन्याणवै तैं लगाइ दोय लाख चौवीस हजार एक पर्यन्त प्रमाणरूप जे स्थान हैं, ते अवक्तव्य भाग हानिरूप हैं । जातैं जघन्य अनन्त का भी वा उत्कृष्ट असंख्यात का भी भाग हानिरूप प्रमाण तैं इनिका प्रमाण हीन अधिक पावै है । तातैं इनिकौं अनंत वा असंख्यात भाग हानिरूप न कहे जाइ । बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान दोय लाख चौवीस हजार प्रमाण होइ, सो स्थान असंख्यात भाग हानि का आदिरूप जानना । जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह का भाग आदि स्थान कौं दीए सोलह हजार पाए, सोइ इतने इहां आदि स्थान तैं हीन हैं । बहुरि ऐसै ही जिस-जिस स्थान विषें आदि स्थान तैं हीन का प्रमाण सभवते असंख्यात के भेद का भाग दीए पावै, सो-सो स्थान असंख्यात भाग हानिरूप जानना । तहां स्थान दोय लाख प्रमाणरूप भया, तहां असंख्यात भाग हानि का अंत जानना । तैं जघन्य असंख्यात छह का भाग आदि स्थान को दीए चालीस हजार पाए, सोई इतना इहां आदिस्थान तैं हीन है । बहुरि एक घाटि दोय लाख तैं लगाइ एक अधिक एक लाख बाराणवै हजार पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान हैं, ते अवक्तव्य भाग हानिरूप हैं । जातैं जघन्य असंख्यात का भी वा उत्कृष्ट संख्यात का भी भाग हानिरूप प्रमाण तैं इनिका प्रमाण हीन अधिक है, तातैं इनिकौं असंख्यात वा संख्यात भाग हानिरूप कहे न जाइ । बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान एक लाख बाणवै हजार प्रमाणरूप होय, तहां संख्यात भाग हानि का आदि है; जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच का भाग आदि स्थान कौं दीए अडतालीस हजार पाए, सो इतने इहां आदि स्थान तैं हीन हैं । ऐसें ही जिस-जिस स्थान विषें आदि स्थान तैं हीन का प्रमाण संभवते संख्यात का भाग दीए पावै; सो-सो स्थान संख्यात भाग हानिरूप जानना । तहां सो स्थान एक लाख बीस हजार प्रमाण होइ, सो स्थान संख्यात भाग हानि का अंतरूप जानना । जातैं जघन्य संख्यात दोय का भाग आदिस्थान कौं दीए एक लाख

बीस हजार पाए; सोई इतने इहां आदि स्थान तैं हीन है। बहुरि इस ही स्थान कौं संख्यात गुणहानि का आदिरूप कहिए, जातैं जघन्य संख्यात दोय, सो आदि स्थान कौं दुगुणा घाटि कीए एक लाख बीस हजार पाए, सोई इस स्थान का प्रमाण है। पूर्व राशि कौं जितने का भाग दीए उत्तर राशि का प्रमाण आवै अर तिस उत्तर राशि के प्रमाण कौं तितने करि गुणैं पूर्व राशि का प्रमाण होइ; तातैं भागहार का कहना अर गुणहानि का कहना एकार्थरूप जानना। जैसैं चौसठि कौं च्यारि का भाग दीजिए तौ भी सोलह होइ अर सोलह कौं च्यारि करि गुणें भी चौसठि होइ; तातैं सोलह कौं चौसठि का चौथा भाग भी कहिए, अर चौसठि तैं चौगुणां घाटि भी कहिए। ऐसैं ही जहां जितनी गुणहानि का प्रमाण होइ, तहां तितने का भागहार जानना। सो इहां जघन्य संख्यात दोय, सो आदि स्थान कौं दुगुणा घाटि कीए वा दोय का भाग दीए एक लाख बीस हजार होइ, तींहि प्रमाण जो स्थान, सो संख्यात गुणहानि का आदिरूप जानना। बहुरि ऐसैं ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवते संख्यात के भेदनि करि गुणैं आदि स्थान का प्रमाण मात्र होइ, सो-सो स्थान संख्यात गुणहानिरूप जानना। तहां जो स्थान अडतालीस हजार प्रमाण भया, सो स्थान संख्यात गुणहानि का अंतरूप जानना। जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच, सो आदि स्थान का प्रमाण कू पंचगुणा घाटि कीए इतना प्रमाण आवै है। बहुरि सैंतालीस हजार नव सै निन्याणवै तैं लगाइ चालीस हजार एक पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान हैं, ते अवक्तव्य गुणहानिरूप जानने। जातैं उत्कृष्ट संख्यात वा जघन्य असंख्यात गुणा घाटि आदि स्थान कौं कीए भी जो प्रमाण होइ, तातैं इनिका प्रमाण हीन अधिक है। तातैं इनिकौं संख्यात गुणहानिरूप वा असंख्यात गुणहानिरूप न कहे जाइ। बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान चालीस हजार प्रमाण भया, सो स्थान असंख्यात गुणहानि का आदिरूप है; जातैं जघन्य असंख्यात छह, सो आदि स्थान कौं छहगुणा घाटि कीए इतना प्रमाण आवै है। ऐसैं ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवते असंख्यात के भेदनि करि गुणैं आदि स्थान मात्र होइ, सो-सो स्थान असंख्यात गुणहानिरूप जानना। तहां जो स्थान सोलह हजार प्रमाण रूप होइ, सो स्थान असंख्यात गुणहानि का अंतरूप है। जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह, सो आदि स्थान कौं पंद्रहगुणा घाटि कीए इतना प्रमाण हो है। बहुरि एक घाटि सोलह हजार तैं लगाइ एक अधिक पंद्रह हजार पर्यन्त जे स्थान हैं, ते अवक्तव्य गुणहानिरूप जानने। जातैं उत्कृष्ट असंख्यात वा जघन्य अनंतगुणा घाटि भी आदि

स्थान कौं कीए जो प्रमाण होइ, तिनि तें इनिका प्रमाण हीन अधिक है । बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान पंद्रह हजार प्रमाणरूप भया, तहां अनंत गुणहानि का आदि जानना । जातैं जघन्य अनंत सोलह, सो आदि स्थान कौं सोलह गुणा घाटि कीए इतना प्रमाण आवै है । बहुरि असैं ही जिस-जिस स्थान का प्रमाण संभवले अनंत का भेद करि गुणैं आदि स्थान मात्र होइ, सो-सो स्थान अनंत गुणहानिरूप जानना । तहां जो स्थान चौबीस सैं प्रमाण रूप भया, सो स्थान अनंत गुणहानि का अंतरूप है । जातैं यद्यपि अनंत का प्रमाण बहुत है; तथापि इहां आदि स्थान तें अंत स्थान जितने गुणा घाटि होइ, तितने प्रमाण ही अनंत का अंत विषें ग्रहण करना, सो अंकसंदृष्टि विषें जो प्रमाण अनंत का भेद ग्रहण कीया, सो आदि स्थान कौं सौ गुणा घाटि कीए इतना ही प्रमाण आवै है । या प्रकार जैसें अंक-संदृष्टि करि कथन कीया, तैसें ही यथार्थ कथन अवधारण करना । इतना विशेष – तहां जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है । उत्कृष्ट संख्यात का एक घाटि जघन्य परीतासंख्यात मात्र है । जघन्य असंख्यात का जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण है । उत्कृष्ट असंख्यात का उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात मात्र है । जघन्य अनंत का जघन्यपरीतानंत प्रमाण है । उत्कृष्ट अनंत का केवलज्ञानमात्र है, तथापि इहां भाग वृद्धि वा हानि विषैं तौ आदि स्थान प्रमाण अर गुण वृद्धि वा हानि विषें आदि स्थान तें अंत स्थान जितने गुणा बधता वा घटता होइ, तीहि प्रमाण अनंत का ही अंत विषैं ग्रहण करना । बहुरि जाका निरूपण कीजिए, ताकौं विवक्षित कहिए, ताका आदि भेद विषें जितना प्रमाण होइ, सो आदि स्थान का प्रमाण जानना । ताके आगै अगिले स्थान वृद्धिरूप वा हानिरूप होइ, तिनिका प्रमाण यथासम्भव जानना । इत्यादिक विशेष होइ, सो विशेष जानना अर अन्य विधान अंकसंदृष्टि करि जानना । बहुरि जहां आदि स्थान का प्रमाण असंख्यातरूप ही होइ, तहां अनंत भाग की वृद्धि वा हानि न संभवै, जहां आदि स्थान का प्रमाण संख्यातरूप ही होइ, तहां अनंत भाग अर असंख्यात भाग की वृद्धि वा हानि न संभवै है । बहुरि जहाँ आदि स्थान तें अंत स्थान का प्रमाण असंख्यात गुणा ही अधिक वा हीन होइ, तहां अनंत गुण वृद्धि वा हानि न संभवै है । जहां आदि स्थान तें अंत स्थान का प्रमाण संख्यात गुणा ही अधिक वा हीन होइ, तहां अनंत वा असंख्यात गुणी वृद्धि वा गुणहानि न संभवै है; तातैं कहीं पंच स्थान पतित, कहीं चतुस्थान पतित, कहीं त्रीस्थान पतित, कहीं द्विस्थान पतित, कहीं एकस्थान पतित वृद्धि वा हानि यथासंभव जाननी । असैं

ही आदि स्थान की अपेक्षा लीए वृद्धि-हानि का स्वरूप कह्या । बहुरि कहीं एक स्थान का प्रमाण की अपेक्षा दूसरा स्थान विषें वृद्धि वा हानि कही, दूसरा स्थान का प्रमाण की अपेक्षा तीसरा स्थान विषें वृद्धि वा हानि कही; ऐसैं स्थान-स्थान प्रति वृद्धि वा हानि का अनुक्रम हो है । तहां अनंत भागादिरूप वृद्धि वा हानि होइ, सो यथासंभव जाननी । बहुरि पर्यायसमास नामा श्रुतज्ञान के भेद वा कषाय स्थान इत्यादिकनि विषें संभवती षट्स्थान पतित वृद्धि वा हानि के अनुक्रम का विधान आगे ज्ञानमार्गणा अधिकार विषें लिखेंगे, सो जानना । ऐसैं वृद्धि-हानि का विधान अनुक्रम अनेक प्रकार है, सो यथासंभव है । ऐसैं प्रसंग पाइ षट्गुणी आदि हानि-वृद्धि का वर्णन कीया ।

आगें जिस-जिस जीवसमास के अवगाहन कहे, तिस-तिसके सर्व अवगाहन के भेदनि के प्रमाण कौं ल्यावै हैं –

हेट्ठा जेसिं जहण्णं, उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ ।
तत्थंतरगा सव्वे, तेसिं उग्गाहणविअप्पा ॥११२॥

अधस्तनं येषां, जघन्यमुपर्युत्कृष्टकं भवेत्तत्र ।
तत्रांतरगाः सर्वे, तेषामवगाहनविकल्पाः ॥११२॥

टीका – इहां मत्स्यरचना कौं मन विषें विचारि यहु कहिये है – जो जिन अवगाहना स्थाननि का प्रदेश प्रमाण थोरा होइ, ते अधस्तन स्थान हैं । बहुरि जिन अवगाहना स्थाननि का प्रदेश प्रमाण बहुत होइ, ते उपरितन स्थान हैं, ऐसा कहिये है । सो जिन जीवनि का जघन्य अवगाहना स्थान तौ नीचैं तिष्ठै अर जहां उत्कृष्ट अवगाहना स्थान ऊपरि तिष्ठै, तिनि दोऊनि का अंतराल विषें वर्तमान सर्व ही अवगाहना के स्थान तिन जीवनि के मध्य अवगाहना स्थान के भेदरूप हैं – ऐसा सिद्धांत विषें प्रतिपादन कीया है ।

भावार्थ – पूर्वे अवगाहन के स्थान कहे, तिनि विषें जिसका जघन्य स्थान जहां कह्या होइ, तहांतें लगाइ एक-एक प्रदेश की वृद्धि का अनुक्रम लीए जहां तिस ही का उत्कृष्ट स्थान कह्या होइ, तहां पर्यंत जेते भेद होइ, ते सर्व ही भेद तिस जीव की अवगाहना के जानने । तहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का पूर्वोक्त प्रमाणरूप जो जघन्य स्थान, सो तो आदि जानना । बहुरि इस ही का पूर्वोक्त प्रमाणरूप जो

उत्कृष्ट स्थान, सो अंत जानना । तहां 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इस कारण सूत्र करि आदि का प्रमाण कौं अंत का प्रमाण समच्छेद विषै अपवर्तनादि विधान करि घटाए जो अवशेष प्रमाण रहै, ताकौं स्थान-स्थान प्रति वृद्धिरूप जो एक प्रदेश, ताका भाग दीए भी तेता ही रहै, तामैं एक जोडैं जो प्रमाण होइ, तितने सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवनि के सब अवगाहना के भेद हैं । इनिमैं आदि स्थान अर अंत स्थान, इनि दोऊनि कौं घटाये अवशेष तिस ही जीव के मध्यम अवगाहना के स्थान हो हैं । बहुरि इस ही प्रकार सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक वायुकायिक जीव आदि देकरि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त पर्यंत जीवनि के अपने-अपने जघन्य अवगाहना स्थान तैं लगाइ, अपने-अपने उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यंत सर्व अवगाहना के स्थान, अर तिनि विषैं जघन्य-उत्कृष्ट दोय स्थान घटाये तिन ही के मध्य अवगाहना स्थान, ते सूत्र के अनुसारि ल्याईये ।

अब मत्स्यरचना के मध्य प्राप्त भए ऐसे सर्व अवगाहना स्थान, तिनिके स्थापना का अनुक्रम कहिये है । पूर्वं अवगाहना के स्थान चौसठि कहे थे, तिनि विषैं ऊपरि की पंक्ति विषैं प्राप्त जे बियालीस गुणकाररूप स्थान, तिनिकौं गुणित क्रमस्थान कहिये । बहुरि नीचैं की दोय पंक्तिनि विषैं प्राप्त जे बावीस अधिकरूप स्थान, तिनिकौं अधिक स्थान कहिये । तहां चौसठि स्थाननि विषैं गुणित क्रमरूप वा अधिकरूप स्थान अपने-अपने जघन्य तैं लगाइ अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यंत जेते-जेते होंइ, तिनि एक-एक स्थान की दोय-दोय बिंदी बरोबरि लिखनी; जातैं एक-एक स्थान के बीचि अवगाहना के भेद बहुत हैं । तिनिकी संदृष्टि के अर्थि दोय बिंदी स्थापी, बहुरि तिनि जीवसमासनि विषैं संभवते स्थाननि की नीचैं-नीचैं पंक्ति करनी । ऐसैं स्थापैं माछलेकासा आकार हो है, सो कहिए है । (देखिए पृष्ठ २२९-२३०)

प्रथम सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहन स्थान तैं लगाइ ताही का उत्कृष्ट पर्यंत सतरह स्थान हैं। तहां सोलह गुणित स्थान हैं । एक अधिकस्थान है । सो प्रथमादि एक-एक स्थान की दोय-दोय बिंदी की संदृष्टि करने करि चौंतीस बिंदी बरोबरि ऊपरि पंक्ति विषैं लिखनी । इहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य स्थान पहला है, उत्कृष्ट अठारहवां है, तथापि गुणाकारपना वा अधिकपनारूप अंतराल सतरह ही है; तातैं सतरह ही स्थान ग्रहे हैं । ऐसैं आगैं भी जानना । बहुरि तैसें ही तिस पंक्ति के नीचैं दूसरी पंक्ति विषैं सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक वायुकायिक जीव का जघन्य अवगाहना स्थान तैं लगाइ ताके उत्कृष्ट

अवगाहना स्थान पर्यंत उगणीस स्थान हैं, तिनकी अडतीस बिंदी लिखना । सो इहां दूसरा स्थान तैं लगाइ स्थान है, तातैं ऊपरि की पंक्ति विषैं दोय बिंदी प्रथम स्थान की लिखी थी, तिनकी नीचा कौं छोडि द्वितीय स्थान की दोय बिंदी तैं लगाइ आगै बरोबरि अडतीस बिंदी लिखनी । बहुरि तैसैं ही तिस पंक्ति के नीचैं तीसरी पंक्ति विषैं सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक तेजस्कायिक का जघन्य अवगाहन तैं उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत इकईस स्थान हैं, तिनकी बियालीस बिंदी लिखनी । सो इहां तीजा स्थान तैं लगाइ स्थान हैं, तातैं ऊपरि की पंक्ति विषैं दूसरा स्थान की दोइ बिंदी लिखी थी, तिनके नीचा कौं भी छौडि तीसरी स्थानक की दोइ बिंदी तैं लगाइ बियालीस बिंदी लिखनी । बहुरि तैसैं ही तिस पंक्ति के नीचै चौथी पंक्ति विषैं सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक अप्कायिक का जघन्य अवगाहन स्थान तैं लगाइ, ताका उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यंत तेवीस स्थाननि की छियालीस बिंदी लिखनी । सो इहां चौथा स्थान तैं लगाइ स्थान है, तातैं तीसरा स्थानक की दोय बिंदी का नीचा कौं छोडि चौथा स्थानक की दोय बिंदी तैं लगाइ छियालीस बिंदी लिखनी । बहुरि तैसैं ही तिस पंक्ति के नीचैं पांचमी पंक्ति विषैं सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक पृथ्वीकायिक का जघन्य अवगाहन तैं लगाइ ताका उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत पचीस स्थान हैं; तिनकी पचास बिंदी लिखनी । सो इहां पांचवां स्थान तैं लगाइ स्थान है, तातैं चौथा स्थान की दोय बिंदी का भी नीचा कौं छोडि पांचवां स्थानक की दोय बिंदी तैं लगाइ पचास बिंदी लिखनी । बहुरि तैसैं ही तिस पंक्ति के नीचैं-नीचैं छठी, सातमी, आठवीं, नवमीं, दशमीं, ग्यारहमीं बारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, पंद्रहवीं, सोलहवीं पंक्ति विषैं बादर लब्धि अपर्याप्तक वायु, तेज, अप्, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वींद्रिय, त्रीद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय इनि ग्यारहनि का अपना-अपना जघन्य स्थान तैं लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यंत अनुक्रम तैं सत्ताईस, गुणतीस, इकतीस, तेतीस, पैंतीस, सैंतीस, छियालिस, चवालीस, इकतालीस, इकतालीस, तियालीस स्थान हैं । तिनिकी चौवन, अठावन, बासठि, छयासठि, सत्तरि, चौहत्तरि, बाणवै, अठासी, बियासी, छियासी बिंदी लिखनी । सो इहां छठा, सातवां आदि स्थान तैं लगाइ स्थान हैं, तातैं ऊपरि पंक्ति का आदि स्थान की दोय-दोय बिंदी का नीचा कौं छोडि छठा, सातवां आदि स्थान की दोय बिंदी तैं लगाइ ए बिंदी तिनि पंक्तिनि विषैं क्रम तैं लिखनी ।

बहुरि तिस पंचेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक की पंक्ति के नीचे सतरहवां पंक्ति विषैं सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान तैं लगाइ, उत्कृष्ट अवगाहना स्थान

पर्यन्त दोय स्थान है, तिनिकी च्यारि बिंदी लिखनी । बहुरि इस ही प्रकार आगै इस एक ही पंक्ति विषै सूक्ष्म पर्याप्त वायु, तेज, अप्, पृथ्वी, बहुरि बादर पर्याप्त वायु, तेज, पृथ्वी, अप्, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक इनिका अपना-अपना जघन्य अवगाहना स्थान कौं आदि देकरि अपना-अपना उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यन्त दोय-दोय स्थाननि की च्यारि-च्यारि बिंदी लिखनी । बहुरि अैसें ही प्रतिष्ठित प्रत्येक का उत्कृष्ट अवगाहन स्थान तें आगै तिस ही पंक्ति विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान तें लगाइ उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यन्त तेरह स्थान हैं। तिनिकी छब्बीस बिंदी लिखनी । अैसें इस एक ही पंक्ति विषै बिंदी लिखनी कही । तहां पर्याप्त सूक्ष्म निगोद का आदि स्थान सतरहवां है, तातैं इनिके दोय स्थाननि की सोलहवां स्थान की दोय बिंदीनि का नीचा कौं छोडि सतरहवां अठारहवां स्थान की च्यारि बिंदी लिखनी । बहुरि सूक्ष्म पर्याप्त का आदि स्थान बीसवां है । तातैं तिस ही पंक्ति विषै उगणीसवां स्थान की दोय बिंदी का नीचा कौं छोडि बीसवां, इकईसवां दोय स्थाननि की च्यारि बिंदी लिखनीं । अैसें ही बीचि-बीचि एक स्थान की दोय-दोय बिंदी का नीचा कौं छोडि-छोडि सूक्ष्म पर्याप्त तेज आदिक के दोय-दोय स्थाननि की च्यारि-च्यारि बिंदी लिखनी । बहुरि तिस ही पंक्ति विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक के पचासवां तें लगाइ स्थान हैं, तातैं पचासवां स्थानक की बिंदीनि तें लगाइ तेरह स्थाननि की छब्बीस बिंदी लिखनी; अैसें एक-एक पंक्ति विषै कहे । बहुरि तिस पंक्ति के नीचैं-नीचैं अठारमी, उगणीसमी, बीसमी, इकवीसमी पंक्ति विषै पर्याप्त द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय जीवनि का अपना-अपना जघन्य अवगाहन स्थान तैं लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त ग्यारह, आठ, आठ, दश स्थान हैं । तिनिकी क्रम तें बाईस, सोलह, सोलह, बीस बिंदी लिखनि । तहां पर्याप्त बेंद्रिय के इक्यावन तैं लगाइ स्थान हैं, तातैं सतरहवीं पंक्ति विषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक की छब्बीस बिंदी लिखी थी, तिनिके नीचे आदि की पचासवां स्थान की दोय बिंदी का नीचा कौं छोडि आगै बाईस बिंदी लिखनी । बहुरि अैसें ही नीचे-नीचे आदि की दोय-दोय बिंदी का नीचा कौं छोडि बावनवां, तरेपनवां, चौवनवां स्थानक की बिंदी तें लगाइ क्रम तें सोलह, सोलह, बीस बिंदी लिखनी । या प्रकार मत्स्यरचना विषै सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त का जघन्य अवगाहना स्थान कौं आदि देकरि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त का उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यन्त सर्व अवगाहन स्थाननि की प्रत्येक दोय-दोय शून्य की विवक्षा करि तिन स्थानकनि की गणती के आश्रय अैसा हीनाधिक तैं

रहित बिंदीनि के स्थापन का अनुक्रम, सो अनादिनिधन ऋषि प्रणीत आगम विषैं कह्या है । ऐसैं जीवसमासनि की अवगाहना कहि ।

अब तिनके कुल की संख्या का जो विशेष, ताकौं गाथा च्यारि करि कहै हैं –

बावीस सत्त तिण्णि य, सत्त य कुलकोडिसयसहस्साइं ।
णेया पुढविदगागणि, वाउक्कायाण परिसंखा ॥११३॥

द्वाविंशतिः सप्त त्रीणि, च सप्त च कुलकोटिशतसहस्राणि ।
ज्ञेया पृथिवीदकाग्निवायुकायिकानां परिसंख्या ॥११३॥

टीका – पृथ्वी कायिकनि के कुल बाईस लाख कोडि हैं । अप् कायिकनि के कुल सात लाख कोडि हैं । तेज कायिकनि के कुल तीन लाख कोडि हैं । वायु कायिकनि के कुल सात लाख कोडि हैं; ऐसैं जानना ।

कोडिसयसहस्साइं, सत्तट्ठणव य अट्ठवीसाइं ।
बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियहरिदकायाणं ॥११४॥

कोटिशतसहस्राणि, सप्ताष्ट नव च अष्टाविंशतिः ।
द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियहरितकायानाम् ॥११४॥

टीका – बेंद्रिय के कुल सात लाख कोडि हैं । त्रींद्रियनि के कुल आठ लाख कोडि हैं । चतुरिंद्रियनि के कुल नव लाख कोडि हैं । वनस्पति कायिकनि के कुल अठाईस लाख कोडि हैं ।

अद्धत्तेरस बारस, दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं ।
जलचर-पक्खि-चउप्पय-उरपरिसप्पेसु णव होंति ॥११५॥

अर्धत्रयोदश द्वादश, दशकं कुलकोटिशतसहस्राणि ।
जलचरपक्षिचतुष्पदोरुपरिसर्पेषु नव भवंति ॥११५॥

टीका – पंचेंद्रिय विषैं जलचरनि के कुल साढ़ा बारा लाख कोडि हैं । पक्षीनि के कुल बारा लाख कोडि हैं । चौपदनि के कुल दश लाख कोडि हैं । उरसर्प जे सरीसृप आदि, तिनिके कुल नव लाख कोडि हैं ।

छप्पंचाधियवीसं, बारसकुलकोडिसदसहस्साइं ।
सुर-णेरइय-णराणं, जहाकमं होंति णेयाणि ॥११६॥

षट्पंचाधिकविंशतिः, द्वादश कुलकोटिशतसहस्राणि ।
सुरनैरयिकनराणां, यथाक्रमं भवंति ज्ञेयानि ॥११६॥

टीका – देवनि के कुल छब्बीस लाख कोडि हैं । नारकीनि के कुल पचीस लाख कोडि हैं । मनुष्यनि के कुल बारह लाख कोडि हैं । ए सर्व कुल यथाक्रम करि कहे, ते भव्य जीवनि करि जानने योग्य हैं ।

आगे सर्व जीवसमासनि के कुलनि के जोड कौं निर्देश करै हैं –

एया य कोडिकोडी, सत्ताणउदी य सदसहस्साइं ।
पण्णं कोडिसहस्सा, सव्वंगीणं कुलाणं य ॥११७॥

एका च कोटिकोटी, सप्तनवतिश्च शतसहस्राणि ।
पंचाशत्कोटिसहस्राणि सर्वांगिनां कुलानां च ॥११७॥

टीका – ऐसें कहे जे पृथ्वीकायिकादि मनुष्य पर्यन्त सर्व प्राणी, तिनके कुलनि का जोड एक कोडा-कोडि अर सत्याणवै लाख पचास हजार कोडि प्रमाण (१९७५०००००००००००) है ।

इहां कोऊ कहै कि कुल अर जाति विषै भेद कहा ?

ताका समाधान – जाति है सो तो योनि है, तहां उपजने के स्थानरूप पुद्गल स्कंध के भेदनि का ग्रहण करना । बहुरि कुल है सो जिनि पुद्गलनि करि शरीर निपजै, तिनके भेदरूप हैं । जैसें शरीररूप पुद्गल आकारादि भेद करि पंचेंद्रिय तिर्यंच विषैं हाथी, घोडा इत्यादि भेद हैं, ऐसें यथासंभव जानने ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह
ग्रन्थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि **सम्यग्ज्ञान**
चंद्रिका नामा इस भाषाटीका विषैं जीवकांड विषैं प्ररूपित जे बीस
प्ररूपणा, तिनि विषैं **जीवसमास प्ररूपणा** है नाम
जाका, ऐसा दूसरा अधिकार संपूर्ण भया ॥२॥

तीसरा अधिकार : पर्याप्ति प्ररूपणा

संभव स्वामि नमौं सदा, घातिकर्म विनसाय ।
पाय चतुष्टय जो भयो, तीजो श्रीजिनराय ।।

अब इहां जहां-तहां अलौकिक गणित का प्रयोजन पाइए, तातैं अलौकिक गणित कहिए है संदृष्टि इनिकी आगे संदृष्टि अधिकार विषें जानना ।

मान दोय प्रकार है, एक लौकिक एक अलौकिक । तहां लौकिक मान छह प्रकार – मान, उन्मान, अवमान, गणितमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमान एवं छह प्रकार जानना । तहां पाइ माणी इत्यादिक मान जानना । ताखडी का तौल उन्मान जानना । चलू इत्यादिक का प्रमाण (परिमाण) अवमान जानना । एक-दोय कौं आदि देकरि गणितमान जानना । चरिम तोला, मासा, इत्यादिक प्रतिमान जानना । घोडा का मोल इत्यादि तत्प्रतिमान जानना ।

बहुरि अलौकिक मान के च्यारि भेद हैं – द्रव्य मान, क्षेत्र मान, काल मान, भाव मान । तहां द्रव्य मान विषें जघन्य एक परमाणु अर उत्कृष्ट सब पदार्थनि का परिमाण । क्षेत्र मान विषें जघन्य एक प्रदेश अर उत्कृष्ट सब आकाश । काल मान विषें जघन्य एक समय अर उत्कृष्ट तीन काल का समय समूह । भाव मान विषें जघन्य सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक का लब्धि अक्षर ज्ञान अर उत्कृष्ट केवलज्ञान ।

बहुरि द्रव्य मान के दोय भेद – एक संख्या मान एक उपमा मान । तहां संख्या मान के तीन भेद – संख्यात, असंख्यात, अनंत । तहां संख्यात जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तैं तीन प्रकार है । बहुरि असंख्यात है, सो परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, असंख्याता-संख्यात इनि तीनों के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि नव प्रकार है । बहुरि अनंत है, सो परीतानंत, युक्तानंत, अनंतानंत इनि तीनों के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि नव प्रकार है – ऐसें संख्यामान के इकईस भेद भए । तिनि विषें जघन्य संख्यात दोय संख्यामात्र है । इहां एक का गुणकार भागहार कीए किछू वृद्धि-हानि होइ नाहीं, तातैं दोय के ही भेद का ग्राहकपना है, एक के नाहीं है । बहुरि तीनि आदिकनि के मध्यम संख्यात का भेदपना है, तातैं दोय ही को जघन्य संख्यात

कहिये । बहुरि तीनि कौं आदि देकरि एक घाटि उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त मध्यम संख्यात जानना ।

सो जघन्य (परीतासंख्यात) कितना है ?

ताके जानने निमित्त उपाय कहैं हैं । अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका, महाशलाका ए नाम धारक च्यारि कुंड करने । तिनिका प्रत्येक प्रमाण जंबूद्वीप समान

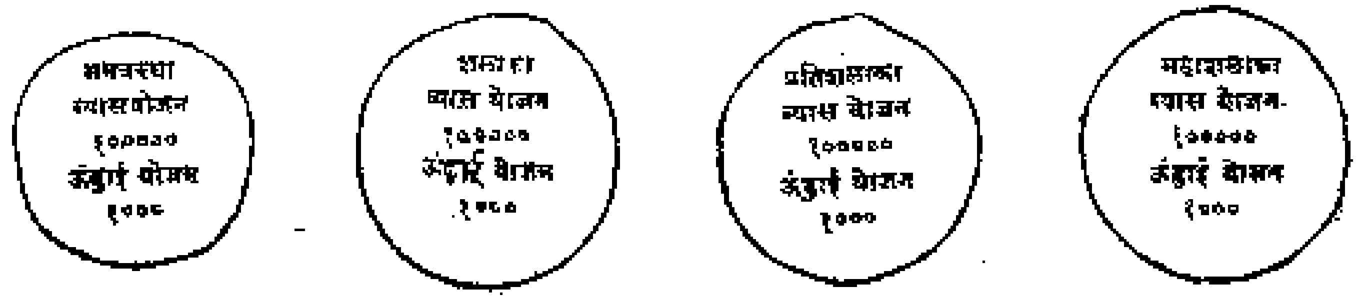

लाख योजन चौडा अर एक हजार योजन ऊंडा जानना । तिनि विषै अनवस्था कुंड कौं सिघाउ गोल सरसौं करि भरना । केते सरसौंनि करि भरै, सो कहिए है – एक, नव, सात, नव, एक, दोय, बिंदी, नव, दोय, नव, नव, नव, छह, आठ इतने तौ अंक अनुक्रम तैं लिखने, तिनके आगै इकतीस बिंदी और लिखनी, इतने प्रमाण सरिसौं तौ उस कुंड के मांही मावै । (१९७९१२०९२९९९८००००००००००००००००० ००००००००००००००००) बहुरि उस कुंड के ऊपरि आकाश विषै राशि करिए, सो सिघाउ भरना कहिए, सो ऊपरि कितने सरसौं का ढेर होइ, सो कहिए है । एक सात, नव, नव, दोय बिंदी, बिंदी, आठ, च्यारि, पांच, च्यारि, पांच, एक, छह इतने तौ अनुक्रम तैं लिखने अर इनिके आगै सोलह बार छत्तीस-छत्तीस लिखने । (१७ ९९२००८४५४५१६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६) इतनी सरसौं, बहुरि च्यारि सरसौं का ग्यारहवां भाग ($\frac{४}{११}$) इतनी सरसौं का ऊपरि ढेर होइ । इनिका फलावना गोल घनरूप क्षेत्रफल के करण सूत्रनि करि वा अन्य राशि के करण सूत्रनि करि होइ है, सो त्रिलोकसारादिक सौं जानना । इनि दोऊ राशि कौं जोड दीजिए, तब एक हजार नव सै सत्ताणवै कोडाकोडि कोडाकोडि कोडाकोडि ग्यारा लाख गुणतीस हजार तीन सै चौरासी कोडाकोडि कोडाकोडिकोडि इक्यावन लाख इकतीस हजार छ सै छत्तीस कोडाकोडि कोडाकोडि छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीन सै त्रेसठि कोडाकोडि कोडि तरेसठि लाख तरेसठि हजार छ सै छत्तीस कोडाकोडि छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीन सै तरेसठि कोडि

तरेसठि लाख तरेसठि हजार छ सै छत्तीस सरसौं अर च्यारि सरसौं का ग्यारहवां भाग (१९१७, ११२९३८४, ५१३१६३६, ३६३६३६३, ६३६३६३६, ३६ ३६ ३६३ ६३ ६३ ६३६ । $\frac{४}{११}$) इतनी सरसौं करि अनवस्था कुंड सिघाऊ भरया । सो भरि करि अन्य एक सरसौं कौं शलाका कुंड में नाखि, तिस अनवस्था कुंड की सर्व सरसौंनि कौं मनुष्य है, सो बुद्धि करि अथवा देव है, सो हस्तादि करि ग्रहण करि जंबूद्वीपादिक द्वीप-समुद्रनि विषैं अनुक्रम तैं एक द्वीप विषैं एक समुद्र विषैं गेरता गया, वे सरिसौं जहां द्वीप विषैं वा समुद्र विषैं पूर्ण होइ, तहां तिस द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण चौडा अर औंडा पूर्वोक्त हजार ही योजन असा दूसरा अनवस्था कुंड तहां ही करना ।

सूची कहा कहिए ?

विवक्षित के सन्मुख अंत के दोऊ तटनि के बीचि जेता चौडाई का परिणाम होइ, सोई सूची जाननी । जैसें लवण समुद्र की सूची पांच लाख जोजन है । जिस द्वीप की वा समुद्र की सूची कहिए, तिस तैं पहिले द्वीप वा समुद्र ते वाकी सूची के मध्य आय गये । असा वहां कीया हुवा अनवस्था कुंड कौं सरसोंनि करि सिघाऊ भरना । भरि करि अन्य एक सरिसौं उस ही शलाका कुंड विषैं गेरणी । अर इस दूसरे अनवस्था कुंड की सरिसोंनि कौं लेइ, तहां तैं आगैं एक द्वीप विषैं, एक समुद्र विषैं गेरते जाइए, तेऊ जहां द्वीप वा समुद्र विषैं पूर्ण होइ तिस सहित पूर्व के द्वीप समुद्र तिनि का व्यासरूप जो सूची, तींहि प्रमाण चौडा अर औंडा पूर्वोक्त हजार जोजन असा तीसरा अनवस्था कुंड सिघाऊ सरिसोंनि करि भरना । भरि करि अन्य एक सरिसौं उस ही शलाका कुंड में गेरि, इस तीसरे अनवस्था कुंड की सरिसौं लेइ, तहां तैं आगैं एक द्वीप विषैं एक समुद्र विषैं गेरणी । वह जहां पूर्ण होइ, तहां तिस की सूची प्रमाण चौथा अनवस्था कुंड करना, ताकौं सरिसों करि सिघाऊ भरना । भरि करि अन्य एक सरिसौं शलाका कुंड विषैं गेरिए, इनि सरसों को तहां तैं आगैं एक द्वीप विषैं एक समुद्र विषैं गेरणी, असैं ही व्यास करि बधता-बधता अनवस्था कुंड करि एक-एक सरिसौं शलाका कुंड विषैं गेरतैं जहां शलाका कुंड भरि जाइ, तब एक सरिसौं प्रतिशलाका कुंड विषैं गेरिए । असैं एक नवे आदि अंक प्रमाण जितनी सरिसौं पहिला अनवस्था कुंड विषैं माई थी, तितने प्रमाण अनवस्था कुंड भए शलाका कुंड एक बार सिघाऊ भरया गया । बहुरि इस शलाका कुंड कौं रीता

कीया अर पिछला अनवस्था कुंड की सरिसौं तहां तें आगैं एक द्वीप विषैं एक समुद्र विषैं गेरता जहां पूर्ण भई, तहां फेरि उसकी सूची प्रमाण चौडा अनवस्था कुंड करि एक सरिसौं जो रीता कीया था शलाका कुंड, तिस विषैं गेरी। असैं ही पूर्ववत् व्यास करि बधता-बधता तितना ही अनवस्था कुंड कीजिए, तब दूसरी बार शलाका कुंड पूर्ण होइ। तब प्रतिशलाका कुंड विषैं एक सरिसौं और गेरणी। पीछै फेरी शलाका कुंड रीता करि तैसैं ही भरणा। जब भरै, तब एक सरिसौं प्रतिशलाका कुंड विषैं और गेरणी। असैं ही जब एक, नव आदिक प्रमाण कौं एक नवादिक अंकनि तैं गुणैं जो परिणाम होइ, तितने अनवस्था कुंड जब होंइ, तब प्रतिशलाका कुंड संपूर्ण भरै; तब ही एक सरिसौं महाशलाका कुंड विषैं गेरणी। बहुरि वे शलाका कुंड वा प्रतिशलाका कुंड दोऊ रीते करणे। बहुरि पूर्वोक्त रीति करि एक-एक अनवस्था कुंड करि एक-एक सरिसौं शलाका कुंड विषैं गेरणी। जब शलाका कुंड भरे, तब एक सरिसौं प्रतिशलाका कुंड विषैं गेरणी। असैं करते-करते प्रतिशलाका कुंड फेरी संपूर्ण भरै, तब दूसरी सरिसौं महाशलाका कुंड विषैं फेरी गेरणी। बहुरि वैसैं ही शलाका प्रतिशलाका कुंड रीता करि उस ही रीति सौं प्रतिशलाका कुंड भरे, तब संपूर्ण तीसरी सरिसौं महाशलाका कुंड विषैं गेरणी। असैं करते-करते एक नव नै आदि देकरि जे अंकनि का घन कीये जो परिणाम होइ, तितने अनवस्था कुंड जब होंइ, तब महाशलाका कुंड भी संपूर्ण भरै, तब प्रतिशलाका वा शलाका, अनवस्था कुंड भी भरैं। इहां जे एक नव नै आदि देकरि अंकनि का घन प्रमाण अनवस्था कुंड कहे, ते सर्व ऊंडे तौ हजार योजन ही जानने। बहुरि इनिका व्यास, अपना द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण बधता-बधता जानना। सो लक्ष योजन का जेथवा द्वीप वा समुद्र होइ, तितनी बार दूणा कीये तिस द्वीप वा समुद्र का व्यास आवै है। बहुरि व्यास कौं चौगुणा करि तामैं तीन लाख योजन घटायें सूची का प्रमाण आवै है। तातैं तहां प्रथम अनवस्था कुंड का व्यास का प्रमाण लाख योजन है। बहुरि पहला कुंड में जितनी सरिसों माई थी, तितनी ही बार लक्ष योजन का दूणा-दूणा कीयें जहां द्वीप वा समुद्र विषैं वे सरिसौं पूर्ण भई थी, तिस द्वीप वा समुद्र के व्यास का परिमाण आवै है। बहुरि व्यास का परिमाण कौं चौगुणा करि तीहि में तीन लाख योजन घटाइए, तब तिस ही द्वीप वा समुद्र का सूची परिमाण आवै। जो सूची परिमाण आवै, सो ही दूसरा कुंड का व्यास परिमाण जानना। बहुरि पहिला वा दूसरा कुंड विषैं जितनी सरिसौं माई, तितनी बार लक्ष योजन कौं दूणा-दूणा करि

जो परिमाण आवै, ताकौं चौगुणा करि तीन लाख योजन घटाइए, तब तीसरा अनवस्था कुंड का व्यास परिमाण आवै है । बहुरि पहिला वा दूसरा वा तीसरा अनवस्था कुंड विषें जेती सरिसों माई होइ, तेती बार लक्ष योजन कौं दूणा-दूणा करि जो परिमाण आवै, ताकौं चौगुणा करि तीन लाख योजन घटाएं, चौथे अनवस्था कुंड का व्यास परिमाण आवै, ऐसें बधता-बधता व्यास परिमाण अंत का अनवस्था कुंड पर्यन्त जानना । तहां जो अंत का अनवस्था कुंड भया, तीहि विषें जेती सरिसों का परिमाण होइ, तितना जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण जानना । इहां शलाका कुंड विषें एक सरिसों गेरें जो एक अनवस्था कुंड होइ, तौ शलाका कुंड विषें एक, नव आदि अंक प्रमाण सरिसों गेरें केते अनवस्था कुंड होइ ? ऐसें त्रैराशिक करिये, तब प्रमाण राशि एक, फल राशि एक, इच्छा राशि एक नवादि अंक प्रमाण । तहां फल राशि करि इच्छा कौं गुणि प्रमाण का भाग दीए लब्ध राशि एक नवादि अंक प्रमाण हो है । बहुरि प्रतिशलाका कुंड विषें एक सरिसौं गेरें एक नवादि अंक प्रमाण अनवस्था कुंड होइ, तो प्रतिशलाका कुंड विषें एक नवादि अंक प्रमाण सरिसों गेरैं केते होइ ? ऐसें त्रैराशिक कीए प्रमाण १ फल १६≡ इच्छा १६≡ लब्धराशि एक नवादि अंकनि का वर्ग प्रमाण हो है । बहुरि महाशलाका कुंड विषें एक सरिसों गेरें, अनवस्था कुंड एक नवादि (अंकनि) का वर्ग प्रमाण होइ, तो महा-शलाका कुंड विषें एक नवादि अंक प्रमाण सरिसौं गेरें केते अनवस्था कुंड होइ ? ऐसें त्रैराशिक कीए, प्रमाण १, फल १६= वर्ग इच्छा १६= लब्धराशि एक नवादि अंकनि का घन प्रमाण हो है । सो इतना अनवस्था कुंड होइ है, ऐसा अनवस्था कुंडनि का प्रमाण जानना । बहुरि 'जघन्य परीतासंख्यात के ऊपरि एक-एक बधता क्रम करि एक घाटि उत्कृष्ट परीतासंख्यात पर्यन्त मध्य परीतासंख्यात के भेद जानने । बहुरि एक घाटि जघन्य युक्तासंख्यात परिमाण उत्कृष्ट परीतासंख्यात जानना ।

अब जघन्य युक्तासंख्यात का परिमाण कहिए है — जघन्य परीतासंख्यात का विरलन कीजिए । विरलन कहा ? जेता वाका परिमाण होइ, तितना ही एक-एक करि जुदा-जुदा स्थापन कीजिये । बहुरि एक-एक की जायगा एक-एक परीतासंख्यात मांडिए, पीछै सबनि कौं परस्पर गुणिए, पहिला जघन्य परीतासंख्यात कौं दूसरा जघन्य परीतासंख्यात करि गुणिए, जो परिमाण आवै, ताहि तीसरा जघन्य परीता-संख्यात करि गुणिये । बहुरि जो परिमाण आवै, तीनें चौथा करि गुणिए, ऐसें अंत

ताईं परस्पर गुणें जो परिमाण आवै, सो परिमाण जघन्य युक्तासंख्यात का जानना। याही कौं अंक संदृष्टि करि दिखाइए है –

जघन्य परीतासंख्यात का परिमाण च्यारि (४) याका विरलन कीया १, १, १, १। बहुरि एक-एक के स्थानक, सोहि दीया $\overset{४}{१}\ \overset{४}{१}\ \overset{४}{१}\ \overset{४}{१}$ परस्पर गुणन कीया, तब दोय सै छप्पन भया। अैसैं ही जानना। सो इस ही जघन्य युक्तासंख्यात का नाम आवली है, जातैं एक आवली के समय जघन्य युक्तासंख्यात परिमाण है। बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि उत्कृष्ट युक्तासंख्यात पर्यन्त मध्यम युक्तासंख्यात के भेद जानने। बहुरि एक घाटि जघन्य असंख्यातासंख्यात परिमाण उत्कृष्ट युक्तासंख्यात जानना।

अब जघन्य असंख्यातासंख्यात कहिए है – जघन्य युक्तासंख्यात कौं जघन्य युक्तासंख्यात करि एक बार परस्पर गुणें, जो परिमाण आवै, सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानना। याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात पर्यन्त मध्यम असंख्यातासंख्यात जानने। एक घाटि जघन्य परीतानंत प्रमाण उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात जानना।

अब जघन्य परीतानंत कहिए है – जघन्य असंख्यातासंख्यात परिमाण तीन राशि करना – एक शलाका राशि, एक विरलन राशि, एक देय राशि। तहां विरलन राशि का तौ विरलन करना, बखेरि करि जुदा-जुदा एक-एक रूप करना, अर एक-एक के ऊपरि एक-एक देय राशि धरना।

भावार्थ – यहु जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण स्थानकनि विषैं जघन्य असंख्यातासंख्यात जुदे-जुदे मांडने। बहुरि तिनिकौं परस्पर गुणिए, अैसैं करि उस शलाका राशि मैं स्यों एक घटाइ देना। बहुरि अैसें कीए जो परिमाण आया, तितने परिमाण दोय राशि करना, एक विरलन राशि, एक देय राशि। तहां विरलन राशि का विरलन करि एक-एक ऊपरि एक-एक देय राशि कौं स्थापन करि, परस्पर गुणिए। अैसें करि उस शलाका राशि मैं स्यों एक और घटाइ देना। बहुरि ऐसें कीए जो परिमाण आया, तितने प्रमाण विरलन-देय स्थापि, विरलन राशि का विरलन करि एक-एक प्रति देय राशि कौं देइ परस्पर गुणिये, तब शलाका राशिसु एक और काढि लेना, अैसैं करते-करते जब यहु पहिली बार किया शलाका राशि सर्व संपूर्ण होइ, तब तहां जो किछू परिमाण हुवा, सो यहु महाराशि असंख्यातासंख्यात का मध्य

भेद हैं, सो तितने-तितने परिमाण तीन राशि बहुरि करना – एक शलाका राशि, एक विरलन राशि, एक देय राशि । तहां विरलन राशि का विरलन करि एक-एक के स्थान के देय राशि का स्थापन करि परस्पर गुणीये, तब शलाका राशि में सू एक काढि लेना बहुरि जो परिमाण आया, ताका विरलन करि एक-एक प्रति तिस ही परिमाण को स्थापन करि परस्पर गुणिये, तब एक और शलाका राशि में सूं काढि लेना । अैसें करते-करते जब दूसरी बार भी किया हुआ शलाका राशि संपूर्ण होइ, तब अैसें करता जो परिमाण मध्यम असंख्यातासंख्यात का भेदरूप आया, तिस परिमाण तीन राशि स्थापन करनी – शलाका, विरलन, देय । तहां विरलन राशि कौं बखेरि एक-एक स्थानक विषें देय राशि कौं स्थापन करि परस्पर गुणिये, तब तीसरी शलाका राशि में सौं एक काढि लेना । बहुरि अैसें करतें जो परिमाण आया था, तिस परिमाण राशि का विरलन करि एक-एक स्थानक विषें तिस परिमाण ही का स्थापन करि परस्पर गुणिये, तब शलाका राशि में स्यों एक और काढि लेना । अैसें करते-करते जब तीसरी बार भी शलाका राशि संपूर्ण भया, तब शलाका त्रय निष्ठापन हुवा कहिये । आगैं भी जहां शलाका त्रय निष्ठापन कहियेगा, तहां अैसा ही विधान जानना । विशेष इतना जो शलाका, विरलन, देय का परिमाण वहां जैसा होइ, तैसा जानना । अब अैसें करते जो मध्यम असंख्यातासंख्यात का भेदरूप राशि उपज्या, तीहि विषें ये छह राशि मिलावना । लोक प्रमाण धर्म द्रव्य के प्रदेश, लोक प्रमाण अधर्म द्रव्य के प्रदेश, लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाण लोकाकाश के प्रदेश, तातैं असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवनि का परिमाण, तातैं असंख्यात लोकगुणा तो भी सामान्यपनैं असंख्यातलोक प्रमाण सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवनि का परिमाण – ये छहों राशि पूर्वोक्त प्रमाण विषें जोडने । जोडें जो परिमाण होइ, तीहि परिमाण शलाका, विरलन देय राशि करनी । पीछे अनुक्रम तें पूर्वोक्त प्रकार करि शलाका त्रय निष्ठापन करना अैसें करतें जो कोई महाराशि मध्य असंख्यातासंख्यात का भेदरूप भया, तीहि विषें च्यारि राशि और मिलावने । बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी दोय कालरूप कल्पकाल के संख्यात पल्यमात्र समय; बहुरि असंख्यात लोकमात्र अनुभाग बंध कौं कारणभूत जे परिणाम, तिनिके स्थान; बहुरि इनि तैं असंख्यात लोकगुणें तो भी असंख्यात लोकमात्र अनुभाग बंध कौं कारणभूत जे परिणाम, तिनिके स्थान; बहुरि इनितैं असंख्यात लोकगुणें तो भी असंख्यात लोकमात्र मन,

वचन, काय योगनि के अविभाग प्रतिच्छेद; असें ये च्यारि राशि पूर्वोक्त परिमाण विषे मिलावने । मिलाय जो परिमाण होइ, तीहि महाराशि प्रमाण शलाका, विरलन, देय राशि करि अनुक्रम तें पूर्वोक्त प्रकार शलाका त्रय निष्ठापन करना । असें करतें जो परिमाण होइ, सो जघन्य परीतानंत है । बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि उत्कृष्ट परीतानंत पर्यन्त मध्यम परीतानंत जानना । बहुरि एक घाटि जघन्य युक्तानंत परिमाण उत्कृष्ट परीतानंत जानना ।

अब जघन्य युक्तानंत कहिये है – जघन्य परीतानंत का विरलन करि-करि बखेरि एक-एक स्थान विषै एक-एक जघन्य परीतानंत का स्थापन करि परस्पर गुणें जो परिमाण आवै, सो जघन्य युक्तानंत जानना । सो यहु अभव्य राशि समान है । अभव्य जीव राशि जघन्य युक्तानंत परिमाण है । बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि उत्कृष्ट युक्तानंत पर्यन्त मध्यम युक्तानंत के भेद जानना । बहुरि एक घाटि जघन्य अनंतानन्त परिमाण उत्कृष्ट युक्तानन्त जानना ।

अब जघन्य अनंतानंत कहिये है – जघन्य युक्तानंत कौं जघन्य युक्तानंत करि एक ही बार गुणें जघन्य अनंतानंत होइ है । बहुरि याके ऊपरि एक-एक बधता एक घाटि केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनंतानंत पर्यन्त मध्यम अनंतानंत जानने । सो याके भेदनि कौं जानता संता असें विधान करें – जघन्य अनंतानंत परिमाण शलाका, विरलन, देयरूप तीन राशि करि अनुक्रम तें शलाका त्रय निष्ठापन पूर्वोक्त प्रकार करि करना । असें करतें जो मध्यम अनंतानंत भेदरूप परिमाण होइ, तीहि विषै ए छह राशि और मिलावना । जीव राशि के अनंतवे भाग सिद्ध राशि, बहुरि तातें अनंतगुणा असा पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति, त्रस राशि रहित संसारी जीव राशि मात्र निगोद राशि, बहुरि प्रत्येक वनस्पति सहित निगोद राशि प्रमाण वनस्पति राशि, बहुरि जीव राशि तें अनंतगुणा पुद्गल राशि, बहुरि यातें अनन्तानन्त गुणा व्यवहार काल के समयनि की राशि, बहुरि यातें अनंतानन्त गुणा अलोकाकाश के प्रदेशनि की राशि – असें छहों राशि के परिमाण पूर्व परिमाण विषै मिलावने । बहुरि मिलाए जो परिमाण होइ, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय करि क्रम तें पूर्ववत् शलाका त्रय निष्ठापन कीयें जो कोई मध्यम अनंतानंत का भेदरूप परिमाण पावै, तीहि विषै धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य के अगुरुलघु गुण का अविभाग प्रतिच्छेदनि का परिमाण अनंतानंत है, सो जोडिए । यों करतें जो महा

परिमाण होइ, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय करि क्रम तैं पूर्वोक्त विधि करि शलाका त्रय निष्ठापन कीयें जो कोई मध्यम अनंतानंत का भेदरूप महा परिमाण होइ, तिस परिमाण कौं केवलज्ञान शक्ति का अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूहरूप परिमाण विषैं घटाइ, पीछे ज्यूं का त्यूं मिलाइये, तब केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत होइ है।

इहां प्रश्न – जो पूर्वोक्त परिमाण कौं पहिलैं केवलज्ञान में सौं काढि, पीछै फेरि मिलाया सो कौन कारण ?

ताका समाधान – केवलज्ञान का परिमाण असा नाहीं जो पूर्वोक्त परिमाण के गुणनादि क्रम करि जाण्या जाय। अर उस परिमाण कौं केवलज्ञान में मिलाइये तौ केवलज्ञान तैं अधिक प्रमाण होइ, सो है नाहीं। बहुरि किछू न कहिए तौ गणित विषैं संबंध टूटै, तातैं पूर्वोक्त परिमाण कौं पहिलैं केवलज्ञान में सौं घटाइ, पीछै मिलाइ, केवलज्ञान मात्र उत्कृष्ट अनंतानंत कह्या है। असैं ये इकईस भेद संख्यामान के कहे।

अब संख्या के विशेषरूप जे चौदह धारा, तिनिका कथन कीजिए है – १. सर्व धारा, २. समधारा, ३. विषमधारा, ४. कृतिधारा, ५. अकृति धारा, ६. घनधारा, ७. अघनधारा, ८. कृति मात्रिकधारा, ९. अकृति मात्रिकधारा, १० घन मातृकधारा ११. अघन मातृकधारा, १२. द्विरूप वर्गधारा, १३. द्विरूपघनधारा, १४. द्विरूपघनाघनधारा – असैं ये चौदह धारा जाननी।

तहां कहे जे सर्व संख्यातादि भेद, ते एक आदि तैं होंहि असे जे सर्व संख्यात विशेषरूप सो सर्वधारा है।

अवशेष तेरह धारा याही विषैं उत्पन्न जाननी। या धारा का प्रथम स्थान एक प्रमाण, दूसरा स्थान दोय प्रमाण, तीसरा स्थान तीन प्रमाण – असैं एक-एक बधता केवलज्ञान पर्यन्त जानने। केवलज्ञान शब्द करि उत्कृष्ट अनंतानंत जानने। इस धारा विषैं सर्व ही संख्या के विशेष आये, तातैं याके सर्वस्थान केवलज्ञान परिमाण जानने।

बहुरि जिस विषैं समरूप संख्या के विशेष पाइये, सो समधारा है। याका आदि स्थान दोय, दूसरा स्थान च्यारि, तीसरा स्थान छह, असैं दोय-दोय बधता

केवलज्ञान पर्यंत जानने । याके सर्वस्थान केवलज्ञान का आधा परिमाण हैं । सर्वधारा विषैं सर्वसंख्यात के विशेष थे, तिनिमैं आधे तौ समरूप हैं, आधे विषमरूप हैं; तातैं याके स्थान केवलज्ञान का आधे प्रमाण कहे ।

बहुरि जिस विषैं विषमरूप संख्या विशेष पाइये, सो विषमधारा है । याका आदि स्थान एक, दूसरा स्थान तीन, तीसरा स्थान पांच, ऐसैं दोय-दोय बधता एक घाटि केवलज्ञान पर्यंत जानने । याके सर्वस्थान आधा केवलज्ञान प्रमाण हैं ।

बहुरि जिस विषैं वर्गरूप संख्या विशेष पाइये, सो कृतिधारा है । याका प्रथम स्थान एक, जातैं एक का वर्ग एक ही है । बहुरि दूसरा स्थान च्यारि, जातैं दोय का वर्ग च्यारि ही है । बहुरि तीसरा स्थान नव, जातैं तीनि का वर्ग नव है । बहुरि चौथा स्थान सोलह, जातैं च्यारि का वर्ग सोलह है । ऐसैं ही पंचादिक के वर्ग पचीस नैं आदि देकरि याके स्थान केवलज्ञान पर्यंत जानने । याके सर्वस्थान केवलज्ञान का वर्गमूल परिमाण जानने । जिस परिमाण का वर्ग कीयें केवलज्ञान का परिमाण होइ, इतने याके स्थान है ।

बहुरि जिस विषैं वर्गरूप संख्या विशेष न पाइये, सो अकृतिधारा है । सर्व धारा के स्थानकनि में स्यों कृतिधारा के स्थान दूरि कीए अवशेष सर्वस्थान इस धारा के जानने । याका पहिला स्थानक दोय, दूसरा तीन, तीसरा पांच, चौथा छह, (पांचवां सात, छठा आठ) इत्यादि एक घाटि केवलज्ञान पर्यंत जानने । याके सर्वस्थान केवलज्ञान का वर्गमूल करि हीन केवलज्ञान परिमाण जानने ।

बहुरि जिस विषैं घनरूप संख्या विशेष पाइये, सो घनधारा है । याका पहिला स्थान एक, जातैं एक का घन एक ही है । बहुरि दूसरा स्थान आठ, जातैं दोय का घन आठ ही है । बहुरि तीसरा स्थान सत्ताईस, जातैं तीन का घन सत्ताईस ही है । चौथा स्थान चौसठि, जातैं च्यारि का घन चौसठि ही है । ऐसैं पंचादिक का घन सवासौ नैं आदि देकरि याके स्थान केवलज्ञान के आसन्न घन पर्यंत जानने ।

केवलज्ञान का आसन्न घन कहा कहिये ?

सो अंकसंदृष्टि करि दिखाइये है -- केवलज्ञान का परिमाण पैंसठि हजार पांच से छत्तीस (६५५३६) । याका आधा कीजिए, तब घनधारा का स्थान होइ (३२७६८) । याका घनमूल बत्तीस (३२) । बहुरि याके ऊपरि तेतीस नैं आदि

देकरि चालीस पर्यंत घनमूल के स्थान हैं; जातैं चालीस का घन कीए चौंसठि हजार होइ, सो आसन्न घन जानना । जातैं इकतालीस का घन कीजिए, तौ अड़सठि हजार नव सै इकवीस होइ, सो केवलज्ञान के परिमाण सौं बधता होइ, सो संभवै नाहीं । तातैं केवलज्ञान के नीचैं जो परिमाण घनरूप होइ, ताकौं केवलज्ञान का आसन्न घन कहिए । इस आसन्न घन का जो घनमूल, ताका जो परिमाण, तितने इस धारा के स्थान जानने ।

कोउ कहै कि केवलज्ञान के अर्धपरिमाण कौं घनस्थान तुम कैसें जान्या ?

ताका समाधान – द्विरूप वर्गधारा के जे स्थान कहैंगे, तिनि विषैं पहिला, तीसरा, पांचवा नैं आदि देकरि जे विषम स्थान हैं, तिनिका तौ चौथा भाग परिमाण घनधारा का स्थान जानना । जैसैं द्विरूप वर्गधारा का पहिला स्थान च्यारि, ताका चौथा भाग एक, सो घनधारा का स्थान है । बहुरि तीसरा स्थान दोय सै छप्पन, ताका चौथा भाग चौसठि, सो घनधारा का स्थान है, जैसा सर्वत्र जानना । बहुरि जे दूसरा, चौथा, छठा नैं आदि देकरि समस्थान हैं, तिनिका आधा प्रमाण घनस्थान जानना । जैसैं दूसरा स्थान सोलह, ताका आधा आठ, सो घनधारा का स्थान है । चौथा स्थान पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस, ताका आधा बत्तीस हजार सात सै अड-सठि, सो भी घनस्थान हैं । यातैं यहु केवलज्ञान भी द्विरूप वर्गधारा के समस्थान विषैं है, तातैं याका आधा परिमाण कौं घनस्थान कह्या ।

बहुरि प्रश्न – जो केवलज्ञान कौं द्विरूप वर्गधारा के समस्थान विषैं कैसैं जान्या ?

ताका समाधान – केवलज्ञान की वर्गशलाका का भी परिमाण द्विरूप वर्ग-धारा के ही विषैं कह्या है अर द्विरूप वर्गधारा के जे स्थान हैं, तिनि विषैं प्रमाण समरूप ही है, तातैं जानिए है । जैसैं घनधारा कही ।

बहुरि जिस विषैं घनरूप संख्या विशेष न पाइए, सो अघनधारा है । सर्वधारा विषैं जे स्थान हैं, तिनि विषैं घनधारा के स्थान घटाए अवशेष सर्वस्थान इस धारा के जानने । याका प्रथम स्थान दोय, दूसरा स्थान तीन, इत्यादिक केवलज्ञान पर्यन्त जानना । याके सर्वस्थान घनधारा के स्थान का परिमाण करि हीन केवलज्ञान परिमाण जाननैं ।

बहुरि जिनिका वर्ग होइ असे संख्या विशेष जिस धारा विषै पाइए, सो कृति मातृकधारा है, सो एक तें आदि देकरि सर्व ही का वर्ग होइ है, परंतु याका अंतस्थान केवलज्ञान का वर्गमूल ही जानना। केवलज्ञान के वर्गमूल तें एक भी अधिक का जो वर्ग करिए तौ केवलज्ञान तैं अधिक का परिमाण होइ, तातैं याके स्थान एक सौं लगाइ एक-एक बधता केवलज्ञान के वर्गमूल पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान केवलज्ञान का वर्गमूल परिमाण जानने।

बहुरि जिनिका वर्ग न होइ असे संख्या जिस धारा विषै पाइए, सो अकृतिमातृक धारा है। सो एक अधिक केवलज्ञान का वर्गमूल कौं आदि देकरि एक-एक बधता केवलज्ञान पर्यंत जानना। इनका वर्ग न हो है। याके सर्वस्थान केवलज्ञान के वर्गमूल करि हीन केवलज्ञान मात्र जानने। अंकसंदृष्टि करि केवलज्ञान का प्रमाण सोलह, ताका वर्गमूल च्यारि, सो च्यारि पर्यंत का तौ वर्ग होय अर पंचम तैं आदि दे करि सोलह पर्यंत का वर्ग न होइ, जो कीजिये तो केवलज्ञान तैं अधिक परिमाण होइ, सो है नाहीं।

बहुरि जिनिका घन होइ सकै असे संख्या विशेष जिस धारा विषै पाइये सो घन मातृकधारा है, सो एक नैं आदि देकरि सर्व का घन होइ; परंतु याका अंत स्थान केवलज्ञान का जो आसन्न घन, ताका घनमूल परिमाण ही जानना। याके सर्व-स्थान केवलज्ञान के आसन्न घन का घनमूल समान जानने।

बहुरि जिनका घन न होइ सकै असे संख्या विशेष जिस धारा में पाइये, सो अघन मातृकधारा है; सो केवलज्ञान का एक अधिक आसन्न घनमूल तें लगाइ एक-एक बधता केवलज्ञान पर्यंत याके स्थान जानने। अंकसंदृष्टि करि केवलज्ञान पैंसठि-हजार पांच सै छत्तीस प्रमाण (६५५३६), याका आसन्न घन चौंसठि हजार (६४०००) ताका घनमूल चालीस (४०), सो चालीस पर्यंत का घन होइ, इकतालीस तैं लगाइ केवलज्ञान पर्यंत याका घन न होइ, जो कीजिये तौ केवलज्ञान तें अधिक परिमाण होइ, सो है नाहीं।

बहुरि द्विरूप का वर्ग सौं लगाइ पूर्व-पूर्व का वर्ग करतें जे संख्या विशेष होंइ, ते जिस धारा विषैं पाइये, सो द्विरूपवर्गधारा है। याका प्रथम स्थान दोय का वर्ग च्यारि, बहुरि च्यारि का वर्ग दूसरा सोलह, बहुरि याका वर्ग तीसरा स्थान छप्पन अधिक दोय सौ (२५६)। बहुरि याका वर्ग चौथा स्थान पणट्ठी, सो पैंसठि हजार

पांच सै छत्तीस (६५५३६) प्रमाण का नाम पणट्ठी कहिये है। बहुरि याका वर्ग पांचवां स्थान बादाल, सो बियालीस चौराणवै, छिनवै, बहत्तरि, छिनवै ये अंक लिखें जो प्रमाण होइ, ताकौं बादाल कहिये (४२ ९४ ९६ ७२ ९६)।

बहुरि याका वर्ग छठा स्थान एकट्ठी, सो एक, आठ, च्यारि-च्यारि, छह, सात, च्यारि-च्यारि, बिंदी, सात, तीन, सात, बिंदी, नव, पांच, पांच, एक, छह, एक, छह इनि अंकनि करि जो प्रमाण होइ ताकूं एकट्ठी कहिये है (१ ८ ४ ४ ६ ७ ४ ४ ० ७ ३ ७ ० ९ ५ ५ १ ६ १ ६)। बहुरि याका वर्ग सातवां स्थान असें ही पहला-पहला स्थाननि का वर्ग कीए एक-एक स्थान होइ। तहां संख्यात स्थान भए जघन्य परीतासंख्यात की वर्गशलाका होइ।

सो वर्गशलाका कहा कहिए ?

दोय के वर्ग तें लगाइ जितनी बार वर्ग कीए विवक्षित राशि होइ, तितनी ही विवक्षित राशि की वर्गशलाका जाननी। तातें द्विरूप वर्गधारा आदि तीन धारानि विषैं जितने स्थान भए जो राशि होइ, तीहि राशि की तितनी वर्गशलाका है। जैसें पणट्ठी की वर्ग शलाका च्यारि, बादाल की पांच, इत्यादि जाननीं। बहुरि जघन्य परीता-संख्यात की वर्गशलाका स्थान तें लगाइ संख्यात स्थान भएं, तब जघन्य परीता-संख्यात के अर्धच्छेदनि का परिमाण होइ।

सो अर्धच्छेद कहा कहिए ?

विवक्षित राशि का जेती बार आधा-आधा होइ, तितने तिस राशि के अर्धच्छेद जानने। जैसें सोलह कौं एक बार आधा कीये आठ होइ, दूसरा आधा कीये च्यारि होइ, तीसरा आधा कीये दोय होइ, चौथा आधा कीये एक होइ, असें च्यारि बार आधा भया, तातें सोलह का अर्धच्छेद च्यारि जानने। असें ही चौसठि के अर्धच्छेद छह होइ। असें सर्व के अर्धच्छेद जानने। बहुरि तिस जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेदरूप स्थान तें संख्यात वर्ग स्थान गये जघन्य परीतासंख्यात का वर्गमूल होइ, यातें एक स्थान गये इस वर्गमूल का वर्ग कीये जघन्य परीतासंख्यात होइ। बहुरि यातें संख्यात स्थान गये जघन्य युक्तासंख्यात होइ, सोई आवली का परिमाण है। इहां वर्गशलाकादिक न कहे, ताका कारण आगें कहियेगा। बहुरि यातें एक स्थान जाइये, याका एक बार वर्ग कीजिये, तब प्रतरावली होइ; जातें आवली के वर्ग ही कौं प्रतरावली कहिये है।

बहुरि इहांतैं असंख्यात स्थान जाइ अद्धापल्य का वर्ग शलाका राशि होइ है। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान जाइ, अद्धापल्य का अर्धच्छेद राशि होइ। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान जाइ अद्धापल्य का वर्गमूल होइ। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गये सूच्यंगुल होइ। बहुरि यातैं एक स्थान गये प्रतरांगुल होइ। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गये जगत् श्रेणी का घनमूल होइ। बहुरि यातैं असंख्यात संख्यात स्थान गये क्रम तैं जघन्य परीतानंत का वर्गशलाका राशि अर अर्द्धच्छेद राशि अर वर्गमूल होइ। यातैं एक स्थान गये जघन्य परीतानंत होइ। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गये जघन्य युक्तानंत होइ। बहुरि यातैं एक स्थान गये जघन्य अनंतानंत होइ। बहुरि यातैं अनंतानन्त अनंतानंत स्थान गये क्रम तैं जीव राशि का वर्गशलाका राशि अर अर्द्धच्छेद राशि अर वर्गमूल होइ। यातैं एक स्थान गये जीव राशि होइ। बहुरि अब इहां तैं आगें जे राशि कहिए है, तिनिका वर्गशलाका राशि, अर्धच्छेद राशि, वर्गमूल सबका असैं कहि लेना। सो जीवराशि तैं अनंतानंत वर्गस्थान गए पुद्गल परमाणुनि का परिमाण होइ। यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गए तीनि काल के समयनि का परिमाण होइ। यातैं अनंतानंत स्थान गये श्रेणीरूप आकाश के प्रदेशनि का परिमाण होइ, सो यहु लोक-अलोकरूप सब आकाश के लंबाईरूप प्रदेशनि का परिमाण है। यामैं चौडाई-ऊंचाई न लीनी। बहुरि यातैं एक स्थान गयें प्रतराकाश के प्रदेशनि का परिमाण है, सो यहु लोक-अलोकरूप सर्व आकाश के प्रदेशनि का लंबाईरूप वा चौडाईरूप प्रदेशनि का परिमाण है, यामैं ऊंचाई न लीनी। ऊंचाई सहित घनरूप सर्व आकाश के प्रदेशनि का प्रमाण द्विरूप घनधारा विषैं है; इस धारा विषैं नाहीं है। बहुरि यातैं अनंतानंत स्थान जाइ धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य के अगुरुलघु गुणनि का अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ। जिसका भाग न होइ असा कोई शक्ति का सूक्ष्म अंश, ताका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है। बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गये एक जीव के अगुरुलघु गुण के षट्स्थान पतित वृद्धि-हानि रूप अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ है। बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गये सूक्ष्म निगोदिया के जो लब्ध्यक्षर नामा जघन्य ज्ञान होइ है, ताके अविभाग प्रतिच्छेदनि का परिमाण होइ। बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गए असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंच के जो जघन्य सम्यक्त्व-रूप क्षायिक लब्धि हो है, ताके अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण होइ। बहुरि यातैं अनंतानंत स्थान गए केवलज्ञान का वर्गशलाका राशि होइ। बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गए केवलज्ञान का अर्धच्छेद राशि होइ। बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान

गये केवलज्ञान का अष्टम वर्गमूल होइ । बहुरि यातैं एक-एक स्थान गए क्रम तैं केवलज्ञान का सप्तम, षष्ठम, पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्गमूल होइ ।

जो विवक्षित राशि का वर्गमूल होइ, ताकौं प्रथम वर्गमूल कहिए । बहुरि उस प्रथम वर्गमूल का वर्गमूल कूं द्वितीय वर्गमूल कहिए । बहुरि तिस द्वितीय वर्गमूल का भी वर्गमूल होइ, ताकौं तृतीय वर्गमूल कहिए । असैं ही चतुर्थादिक वर्गमूल जानने । बहुरि उस प्रथम वर्गमूल तैं एक स्थान जाइए, ताका वर्ग कीजिए, तब गुण-पर्याय संयुक्त जे त्रिलोक के मध्यवर्ती त्रिलोक संबंधी जीवादिक पदार्थनि का समूह, ताका प्रकाशक जो केवलज्ञान सूर्य, ताकी प्रभा के प्रतिपक्षी कर्मनि के सर्वथा नाश तैं प्रकट भए समस्त अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूहरूप सर्वोत्कृष्ट भाग प्रमाण उपजै है, सोई उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि है । इहां ही इस धारा का अंत स्थान है । यह ही सर्वोत्कृष्ट परिमाण है । यातैं कोऊ अधिक परिमाण नाहीं । असैं यहु द्विरूप वर्गधारा कही । याके वर्गरूप सर्वस्थान केवलज्ञान की वर्गशलाका परिमाण जानने ।

अब इहां केतेइक नियम दिखाइए है – जो राशि विरलन देय क्रम करि निपजै, सो राशि जिस धारा विषैं कही होइ, तिस धारा विषैं ही तीहिं राशि की वर्गशलाका वा अर्धच्छेद न होइ । जैसैं विरलन राशि सोलह (१६), ताका विरलन करि एक-एक प्रति सोलहौं जायगा देय राशि जो सोलह सो स्थापि, परस्पर गुणन कीए एकट्ठी प्रमाण होइ, सो एकट्ठी प्रमाण राशि द्विरूप वर्गधारा विषैं पाईये है । याके अर्धच्छेद चौसठि (६४), वर्गशलाका छह, सो इस धारा में न पाइये, असैं ही सूच्यंगुल वा जगत्श्रेणी इत्यादिक का जानना । असा नियम इस द्विरूप वर्गधारा विषैं अर द्विरूप घनधारा अर द्विरूप घनाघनधारा विषैं जानना । तहांतैं सूच्यंगुलादिक द्विरूप वर्गधारा विषैं अपनी-अपनी देय राशि के स्थान तैं ऊपरि विरलन राशि के जेते अर्धच्छेद होंइ, तितने वर्गस्थान गये उपजे हैं । तहां सूच्यंगुल का विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेद प्रमाण है, देय राशि पल्य प्रमाण है । बहुरि जगच्छ्रेणी की विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भागमात्र जानना, देय राशि घनांगुलमात्र जानना । तहां अपना-अपना विरलन राशि का विरलन करि एक-एक बखेरि तहां एक-एक प्रति देय राशि कौं देइ परस्पर गुणें जो-जो राशि उपजै है, सो आगैं कथन करेंगे । बहुरि द्विरूप वर्गधारादिक तीनि धारानि विषैं पहला-पहला वर्गस्थान तैं ऊपरला-ऊपरला वर्गस्थान विषैं अर्धच्छेद-अर्धच्छेद तौ दूणे-दूणे जानने अर वर्गशलाका एक-एक अधिक जाननी । जैसैं दूसरा

वर्गस्थान सोलह, ताका अर्धच्छेद च्यारि अर तीसरा वर्गस्थान दोय सै छप्पन, ताका अर्धच्छेद आठ, असैं ही दूणे-दूणे जानने। बहुरि वर्गशलाका सोलह की दोय, दोय सै छप्पन की तीन असैं एक अधिक जाननी। बहुरि तींहि ऊपरला स्थानक के निकटवर्ती जेथवां ऊपरला स्थानक होइ, तेथवां अन्य धारा विषैं स्थान होइ, तौ तहां तिस पहिले स्थान तें अर्धच्छेद तिगुणे होंइ, जैसें द्विरूप वर्गधारा का द्वितीय स्थान सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, अर तातें ऊपरिला द्विरूप घनधारा का तीसरा स्थान च्यारि हजार छिनवै, ताके अर्धच्छेद बारह, असैं सर्वत्र जानना। बहुरि वर्गशलाका दोऊ की समान जाननी, जैसें दोय सै छप्पन की भी तीन वर्गशलाका, च्यारि हजार छिनवैं की भी तीन वर्गशलाका हो हैं। बहुरि राशि के जेते अर्धच्छेद होइ, तिनि अर्धच्छेदनि के जेते अर्धच्छेद होइ, तितनी राशि की वर्गशलाका जाननी। जैसें राशि का प्रमाण सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, याहू के अर्धच्छेद दोय, राशि सोलह, ताकी वर्गशलाका दोय हैं, असैं सर्वत्र जानना। बहुरि जेती वर्गशलाका होइ, तितनी जायगा दोय-दोय मांडि परस्पर गुणिए, तब अर्धच्छेदनि का परिमाण आवै। जैसें सोलह की वर्ग-शलाका दोय, सो दोय जायगा दोय-दोय मांडि परस्पर गुणिए, तब च्यारि होइ, सो सोलह के च्यारि अर्धच्छेद हैं, सो यहु नियम द्विरूप वर्गधारा विषैं ही है। बहुरि जेते अर्धच्छेद होंइ, तितना दुवा मांडि परस्पर गुणिए, तब राशि का परिमाण होइ। जैसें च्यारि अर्धच्छेद के च्यारि जायगा दुवा मांडि परस्पर गुणिए, तब जो राशि सोलह, तींहिका परिमाण आवै।

वर्गशलाका कहा ?

जेती बार वर्ग कीये राशि होइ, सो वर्गशलाका है। अथवा द्विरूप धारा विषैं अर्धच्छेदनि का अर्धच्छेद प्रमाण वर्गशलाका हो है।

बहुरि अर्धच्छेद कहा ?

राशि का जेता बार आधा-आधा होइ, सो अर्धच्छेद राशि है। इत्यादि यथा संभव जानना।

बहुरि द्विरूप का घन कौं आदि देकरि पहला-पहला वर्ग करते संख्या विशेष जिस धारा विषैं होइ, सो द्विरूप घनधारा है। सो दोय का घन आठ हो है, सो तो याका पहिला स्थान। बहुरि याका वर्ग चौसठि, सो दूसरा स्थान। बहुरि याका वर्ग च्यारि हजार छिनवैं, सो तीसरा स्थान, सो यहु सोलह का घन है। बहुरि

याका वर्ग दोय सै छप्पन का घन सो चौथा स्थान । बहुरि पराट्ठी का घन पांचवां स्थान । बादाल का घन छठा स्थान । असैं पहला-पहला स्थानक का वर्ग कीए एक-एक स्थान होइ, सो असैं संख्यात स्थान गए जघन्य परीतासंख्यात का घन होइ । यातैं संख्यात स्थान गए आवली का घन होइ । यातैं एक स्थान गए प्रतरावली का घन होइ । यातैं असंख्यात असंख्यात स्थान गए क्रम तैं पल्य की वर्गशलाका का घन अर अर्धच्छेद का घन अर वर्गमूल का घन होइ । यातैं एक स्थान गए पल्य का घन होइ । बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गए घनांगुल होइ। यातैं असंख्यात स्थान गए जगच्छे्रणी होइ । यातैं एक स्थान गए जगत्प्रतर होइ । यातैं अनंतानंत-अनंतानंत स्थान गए क्रम तैं जीवराशि की वर्गशलाका का घन अर अर्धच्छेद का घन अर वर्ग-मूल का घन होइ । यातैं एक स्थान गये जीवराशि का घन होइ । यातैं अनंतानंत स्थान गए श्रेणीरूप सर्व आकाश की वर्गशलाका का घन होइ । तातैं अनंतानंत वर्ग स्थान जाइ, ताही का अर्धच्छेद का घन होइ । तातैं अनंतानंत वर्गस्थान जाइ, ताही का प्रथम मूल का घन होइ । तातैं एक स्थान जाइ श्रेणी आकाश का घन होइ, सोई सर्व आकाश के प्रदेशनि का परिमाण है ।

बहुरि यातैं अनंतानंत स्थान गए केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल का घन होइ, सो याही कौं अंत स्थान जानना । प्रथम वर्गमूल अर द्वितीय वर्गमूल कौं परस्पर गुणें जो परिमाण होइ, सोई द्वितीय वर्गमूल का घन जानना । जैसैं सोलह का प्रथम वर्गमूल च्यारि, द्वितीय वर्गमूल दोय, याका परस्पर गुणन कीए आठ होइ, सोई द्वितीय वर्गमूल जो दोय, ताका घन भी आठ ही होइ, बहुरि द्वितीय वर्गमूल के अनंतरि वर्ग केवलज्ञान का प्रथम मूल, ताका घन कीए केवलज्ञान तें उलंघन होइ, सो केवलज्ञान तैं अधिक संख्या का अभाव है, तातें सोई अंत स्थान कह्या । असैं या धारा के सर्वस्थान दोय घाटि केवलज्ञान की वर्गशलाका मात्र जानने । द्विरूपवर्ग-धारा विषै जिस राशि का जहां वर्ग ग्रहण कीया, तहां तिसका घन इस धारा विषैं जानना । बहुरि दोय रूप का घन का जो घन, ताकौं आदि देकरि पहला-पहला स्थान का वर्ग करतें जो संख्या विशेष होइ, ते जिस धारा विषैं पाइये, सो द्विरूप घनाघन-धारा है । सो दोय का घन आठ, ताका घन पांच सै बारा, सो याका आदि स्थान जानना । बहुरि याका वर्ग दोय लाख बासठि हजार एक सौ चवालीस (२६२१४४), सो याका दूसरा स्थान जानना । असैं ही पहला-पहला स्थान का वर्ग करतें याके स्थान होंहि । असैं असंख्यात वर्ग स्थान गये लोकाकाश के प्रदेशनि का परिमाण

होइ । बहुरि यातैं असंख्यात वर्गस्थान गये अग्निकायिक जीवनि की गुणकार शलाका होंहि । जेती बार गुणन कीये अग्निकायिक जीवनि का परिमाण होइ, तितनी गुणकार शलाका जाननी । सो याके परिमाण दिखावने के निमित्त कहिये – लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण जुदा-जुदा तीन राशि करना शलाका, विरलन, देय । तहां विरलन राशि कौं एक-एक स्थान विषैं देय राशि कौं स्थापन करि परस्पर गुणन करना । अैसें कीये संतें शलाका राशि में स्यों एक काढि लेना । इहां जो राशि भया, ताकी गुणकार शलाका एक भई अर वर्गशलाका राशि वै असंख्यातवें भागमात्र हुई, जातैं विरलन राशि के अर्धच्छेद देय राशि के अर्धच्छेद के अर्धच्छेदनि विषैं जोड़ें विवक्षित राशि की वर्गशलाका का प्रमाण होइ है । बहुरि अर्धच्छेद राशि असंख्यात लोक प्रमाण भया, जातैं देय राशि के अर्धच्छेदनि करि विरलन राशि कौं गुणैं विवक्षित राशि का अर्धच्छेदनि का प्रमाण हो है । बहुरि उत्पन्न भया राशि सो असंख्यात लोक प्रमाण हो है । बहुरि यौं करतैं जो राशि भया, तीहि प्रमाण 'विरलन देय राशि करि विरलन राशि का विरलन करना, एक-एक प्रति देय राशि कौं देना, पीछैं परस्पर गुणन करना, तब शलाका राशि में स्यों एक और काढि लेना । इहां गुणकार शलाका दोय भई, अर वर्गशलाका राशि अर अर्धच्छेद राशि अर यो करतां जो राशि उत्पन्न भया, सो ये तीनों ही असंख्यात लोक प्रमाण भये । बहुरि जहां ताईं वह लोकमात्र शलाका राशि एक-एक काढने तैं पूर्ण होइ, तहां ताईं अैसें ही करना । अैसें करतैं जो राशि उपज्या, ताकी गुणकार शलाका तो लोकमात्र भई, और सर्व तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र भये । बहुरि जो यहु राशि का प्रमाण भया, तीहि प्रमाण जुदा-जुदा शलाका, विरलन, देय, अैसे तीन राशि स्थापि, तहां विरलन राशि कौं एक-एक बखेरि, एक-एक प्रति देय राशि कौं देइ, परस्पर गुणनि करि दूसरी बार स्थाप्या हुआ शलाका राशि तैं एक और काढि लेना । इहां जो राशि उपज्या, ताकी गुणकार शलाका एक अधिक लोकप्रमाण है, अवशेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र हैं । बहुरि जो राशि भया तीहि प्रमाण विरलन देय राशि स्थापि, विरलन राशि कौं बखेरि, एक-एक प्रति देय राशि कौं देइ, परस्पर गुणन कर दूसरा शलाका राशि तैं एक और काढि लेना, तब गुणकार शलाका दोय अधिक लोक प्रमाण भई । अवशेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र भई । बहुरि याही प्रकार दोय घाटि उत्कृष्ट संख्यात लोकमात्र गुणकार शलाका प्राप्त करि इन विषैं पूर्वोक्त दोय अधिक लोकमात्र गुणकार शलाका जोडिये । तब गुणकार शलाका भी असंख्यात लोकप्रमाण

भई, तब इहां तैं लगाइ गुणाकार शलाका, वर्गशलाका, अर्धच्छेद राशि, उत्पन्न भई राशि चारि (४)। ये च्यारौं विशेष करि हीनाधिक हैं। तथापि सामान्य-पनैं असंख्यात लोक असंख्यात लोकप्रमाण जानने। ऐसें क्रम तैं जाइ दूसरी बार स्थापी हुई शलाका राशि कौं भी एक-एक काढने तैं पूर्ण करै। बहुरि तहां उत्पन्न भया जो राशि, तीहि प्रमाण शलाका विरलन, देय जुदा-जुदा तीन राशि स्थापना। पूर्वोक्त प्रकार तैं इस तीसरी बार स्थाप्या हुवा शलाका राशि कौं भी पूर्ण करि बहुरि तहां जो राशि उत्पन्न भया, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, तीन राशि स्थापना। तहां जो पूर्व कही तीन गुणाकार शलाका राशि, तिनिका प्रमाण इस चौथी बार स्थाप्या हुवा शलाका राशि में स्यौं घटायें जो अवशेष प्रमाण रहै, सो पूर्वोक्त प्रकार करि एक-एक काढने तैं जब पूर्ण होइ, तब तहां जो उत्पन्न राशि होइ, तीहि प्रमाण अग्निकायिक जीवराशि है। ऐसें देखि—

'आउड्ढराशिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ'

ऐसा आचार्यनि करि कह्या है। याका अर्थ यहु — जो साढा तीन बार शलाका राशि करि लोक कौं परस्पर गुणैं अग्निकायिक जीवराशि हो है। या प्रकार अग्निकायिक जीवराशि की गुणकार शलाका तैं ऊपरि असंख्यात-असंख्यात वर्ग-स्थान जाइ ताका वर्गशलाका, अर्धच्छेद राशि अर प्रथम मूल होइ, ताकौं एक बार वर्गरूप कीयें तेजस्कायिक जीवनि का प्रमाण होइ है। बहुरि यातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ तेजस्कायिक की स्थिति की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल होइ है। यातैं एक स्थान जाइ तेजस्कायिक की स्थिति हो है, सो स्थिति कहा कहिये ? अन्य काय तैं आय करि तेजस्काय विषैं जीव उपज्या, तहां उत्कृष्टपनै जेते काल और काय न धरै, तेजस्काय ही के पर्यायनि कौं धार्‌या करै, तिस काल के समयनि का प्रमाण जानना।

बहुरि यातैं असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाइ अवधि संबंधी उत्कृष्ट क्षेत्र की वर्गशलाका, अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। ताकौं एक बार वर्गरूप कीयें, अवधि संबंधी उत्कृष्ट क्षेत्र हो है, सो कहा ?

सर्वावधि ज्ञान के जेता क्षेत्र पर्यंत जानने की शक्ति, ताके प्रदेशनि का प्रमाण हो है, सो यहु क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण है।

इहां कोऊ कहै अवधिज्ञान तो रूपी पदार्थनि कौं जानैं, सो रूपी पदार्थ एक लोक प्रमाण क्षेत्र विषैं ही हैं। इहां इतना क्षेत्र कैसे कह्या ?

ताका समाधान – जैसे अहमिंद्रनि कें सप्तम नरक पृथ्वी पर्यंत गमन शक्ति है, तथापि इच्छा बिना कदाचित् गमन न हो है। तैसें सर्वावधि विषें ऐसी शक्ति है – इतने क्षेत्र विषें जो रूपी पदार्थ होइ तौ तितने कौं जानें, परंतु तहां रूपी पदार्थ नाही, तातैं सो शक्ति व्यक्त न हो है।

बहुरि तातैं असंख्यात-असंख्यात स्थान जाइ स्थिति बंधाध्यवसाय स्थाननि की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। याकौं एक बार वर्गरूप कीये स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान हो है, ते कहा ?

सो कहिये है ज्ञानावरणादिक कर्मनि का ज्ञान कौं आवरना इत्यादिक स्वभाव करि संयुक्त रहने का जो काल, ताकौं स्थिति कहिये। तिसके बंध कौं कारणभूत जे परिणामनि के स्थान, तिनिका नाम स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान है।

बहुरि तातैं असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाइ अनुभागबंधाध्यवसाय स्थाननि की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। ताकौं एक बार वर्ग-रूप कीये अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान हो है। ते कहा ?

सो कहिये है – ज्ञानावरणादि कर्मनि का वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि स्थानरूप तिष्ठता जो अविभाग प्रतिच्छेदनि का समूहरूप अनुभाग, ताके बंध कौं कारणभूत जे परिणाम, तिनके स्थाननि का नाम अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान है। स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान अर अनुभागबंधाध्यवसाय स्थाननि का विशेष व्याख्यान आगै कर्मकांड के अंत अधिकार विषें लिखेंगे। बहुरि तातैं असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाइ निगोद शरीरनि की उत्कृष्ट संख्या का वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है।

यातैं एक स्थान जाइ निगोद शरीरनि की उत्कृष्ट संख्या हो है। स्कंध, अंडर आवास, पुलवी, देह - ए पांच असंख्यात लोक तें लगाइ असंख्यात लोक गुणे क्रम तैं हैं। तातैं पांच जायगा असंख्यात लोक मांडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ, तेती लोक विषें निगोद शरीरनि की उत्कृष्ट संख्या है। बहुरि तातैं असंख्यात लोक असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थान जाइ निगोद काय स्थिति की वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है, याका एक बार वर्ग कीए निगोद काय की स्थिति हो है, सो निगोद शरीररूप परिणमे जे पुद्गल स्कंध, ते उत्कृष्टपनें निगोद शरीरपना कौं जेते काल न

छोडैं, तिस काल के समयनि का प्रमाण जानना । इहां निगोद जीव निगोद पर्याय कौं छोडि अन्य पर्याय उत्कृष्टपनैं यावत् काल न धरै, तिस काल का ग्रहण न करना; जातैं सो काल अढाई पुद्गल परिवर्तन परिमाण है, सो अनंत है; तातैं ताका इहां ग्रहण नाहीं । बहुरि तातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ, उत्कृष्ट योग स्थाननि के अविभाग प्रतिच्छेदनि का वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है । याका एक बार वर्ग कीए एक-एक समान प्रमाणरूप चय करि अधिक असे जो जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योग स्थान हैं, तिनिविषैं जो उत्कृष्ट योग स्थान है, ताके अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण हो है । ते लोक प्रमाण जे एक जीव के प्रदेश, तिनिविषैं कर्म-नोकर्म पर्यायरूप परिणमने को योग्य जे तेइस वर्गणानि विषैं कार्माण वर्गणा अर आहार वर्गणा, तिनिकौं तिस कर्म-नोकर्म पर्यायरूप परिणमने विषैं प्रकृतिबंध अर प्रदेशबंध का कारणभूत जानने । बहुरि तातैं अनंतानंत वर्गस्थान जाइ केवलज्ञान का चौथा मूल का घन का घन हो है, सो केवलज्ञान का प्रथम मूल अर चतुर्थ मूल कौं परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ, तींहि मात्र है । जैसें अंकसंदृष्टि करि केवलज्ञान का प्रथम पणट्ठी (६५५३६), ताका प्रथम मूल दोय सै छप्पन, चतुर्थ मूल दोय, इनिकौं परस्पर गुणें पांच से बारह होई, चतुर्थ मूल दोय का घन आठ, ताका घन पांच सै बारह हो है, सो यहु द्विरूप घनाघनधारा का अंतस्थान है; यातैं अधिक का घनाघन कीए केवलज्ञान तैं उल्लंघन हो है, सो है नही । बहुत कहने करि कहा ? द्विरूप वर्गधारा विषैं जिस-जिस स्थान विषैं जिस-जिस राशि का वर्ग ग्रहण कीया, तिस-तिस राशि कौं तिस-तिस स्थान विषैं नव जायगा मांडि, परस्पर गुणें इस द्विरूप घनाघन धारा विषैं प्रमाण हो है । इस धारा के सर्वस्थान च्यारि घाटि केवलज्ञान का वर्गशलाका मात्र हैं । असैं इहां सर्वधारा अर द्विरूपवर्गादिक तीन धारानि का प्रयोजन जानि विशेष कथन कह्या ।

अब शेष सम, विषम, कृति, अकृति, कृतिमूल, अकृतिमूल, घन, अघन, घनमूल अघनमूल इन धारानि का विशेष प्रयोजन न जानि सामान्य कथन कीया, जो इनिका विशेष जान्या चाहैं ते त्रिलोकसार विषैं बृहद्धारा परिकर्म नाम ग्रंथ विषैं जानहु ।

अब उपमा मान आठ प्रकार का वर्णन करिए है। अथ एक,दोय गणना करि कहने कौं असमर्थ रूप असा जो राशि, ताका कोई उपमा करि प्रतिपादन, सो उपमा मान है । तिसरूप प्रमाण (तिस उपमा मान के) आठ प्रकार हैं । १. पल्य, २. सागर,

३. सूच्यंगुल, ४. प्रतरांगुल, ५. घनांगुल, ६. जगत श्रेणी, ७. जगत्प्रतर ८. जगद्घन । तहां पल्य तीन प्रकार है - व्यवहार पल्य, उद्धार पल्य, अद्धा पल्य । तहां पहिला पल्य करि बालनि की संख्या कहिए है । दूसरा करि द्वीप-समुद्रनि की संख्या वर्णिए है । तीसरा करि कर्मनि की वा देवादिकनि की स्थिति वर्णित है । अब परिभाषा का कथनपूर्वक तिनि पल्यनि का स्वरूप कहिए है ।

जो तीक्ष्ण शस्त्रनि करि भी छेदने भेदने मोडने कौ समर्थ न हूजे असा है, बहुरि जल-अग्नि आदिनि करि नाश कौं न प्राप्त हो है; बहुरि एक-एक तौ रस, वर्ण, गंध अर दोय स्पर्श अैसे पांच गुण संयुक्त है; बहुरि शब्दरूप स्कंध का कारण है, आप शब्द रहित है; बहुरि स्कंध रहित भया है, बहुरि आदि-मध्य-अंत जाका कह्या न जाइ अैसा है; बहुरि बहु प्रदेशनि के अभाव तैं अप्रदेशी है, बहुरि इंद्रियनि करि जानने योग्य नहीं है; बहुरि जाका विभाग न होइ अैसा है - अैसा जो द्रव्य, सो परमाणु कहिए। सो परमाणु अंतरंग बहिरंग कारणनि तें अपने वर्ण, रस,गंध, स्पर्शनि करि सदा काल पूरें कहिए जुडै अर गलै कहिए बिखरै, तब स्कंधवान आपकौं करै है; तातें पुद्गल अैसा नाम है ।

बहुरि तिनि अनंतानंत परमाणुनि करि जो स्कंध होइ, सो अवसन्नासन्न नाम धारक है । बहुरि तातें सन्नासन्न, तृटरेणु, त्रसरेणु, उत्तम भोगभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, रथरेणु, मध्यम भोगभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, जघन्य भोगभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, कर्मभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, लीख, सरिसौं, यव, अंगुल ए बारह पहिला पहिला तें क्रम करि आठ-आठ गुणे हैं ।

तहां अंगुल तीन प्रकार है उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, आत्मांगुल । तहां पूर्वोक्त क्रम करि उपज्या सो उत्सेधांगुल है । याकरि नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देवनि के शरीर का भवनवासी आदि च्यारि प्रकार देवनि के नगर अर मंदिर इत्यादिकनि का प्रमाण वर्णन करिए है । बहुरि तिस उत्सेधांगुल तें पांच सौ गुणा जो भरत क्षेत्र का अवसर्पिणी काल विषें पहला चक्रवर्ती का अंगुल है; सोई प्रमाणांगुल है । याकरि द्वीप, समुद्र, पर्वत, वेदी, नदी, कुंड, जगती, वर्ष इत्यादिकनि का प्रमाण वर्णिए है । बहुरि भरत,ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यनि का अपने-अपने वर्तमान काल विषें जो अंगुल सो आत्मांगुल है । याकरि झारी, कलश, आरसा, धनुष, ढोल, जूडा, शय्या, गाडा, हल,मूसल, शक्ति, शैल, सिंहासन, बाण, चमर, दुंदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यनि के मंदिर

वा नगर वा उद्यान इत्यादिकनि का प्रमाण वर्णिए है । अैसें जहाँ जैसा संभवै, तहाँ तैसा ही अंगुल करी निपज्या प्रमाण जानना ।

बहुरि छह अंगुलनि करि पद होइ है । बहुरि तातैं दोय पाद की एक बिलस्ति, दोय बिलस्ति का एक हाथ, दोय हाथ का बीख, दोय बीख का एक धनुष, बहुरि दोय हजार धनुषनि करि एक कोश, तिन च्यारि कोशनि करि एक योजन हो है । सो प्रमाणांगुलनि करि निपज्या अैसा एक योजन प्रमाण औंडा वा चौड़ा अैसा एक गर्त – खाड़ा करना ।

चौड़ा १ योजन औंडा १ योजन

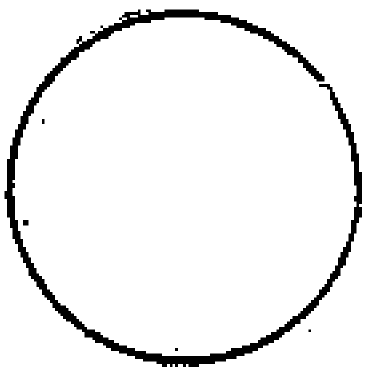

सो गर्त उत्तम भोगभूमि विषैं निपज्या जो जन्म तैं लगाइ एक आदि सात दिन पर्यंत ग्रहे जे मींढ़ा का युगल, तिनिकें बालनि का अग्रभाग, तिनिकी लंबाई चौडाईनि करि अत्यंत गाढा भूमि समान भरना, सिंचाऊ न भरना । केते बाल मये सो प्रमाण ल्याइये है —

विक्खंभवग्गदहगुण, करणी वट्टस्स परिरयो होदि ।
विक्खंभचउत्थभे, परिरयगुणिदे हवे गुणियं ।।

इस करण सूत्र कर गोल क्षेत्र का फल प्रथम ही ल्याइए है । या सूत्र का अर्थ – व्यास का वर्ग कौं दश गुणा कीए वृत्त क्षेत्र का करणिरूप परिधि हो है । जिस राशि का वर्गमूल ग्रहण करना होइ, तिस राशि कौं करण कहिए । बहुरि व्यास का चौथा भाग करि परिधि कौं गुणैं क्षेत्रफल हो है । सो इहां व्यास एक योजन, ताका वर्ग भी एक योजन, ताकौं दश गुणा कीए दश योजन प्रमाण करणिरूप परिधि होइ सो याका वर्गमूल ग्रहण करना । सो नव का मूल तीन अर अवशेष एक रह्या, ताकौं दूणा मूल का भाग देना, सो एक का छठा भाग भया । इनिकौं समच्छेद करि मिलाए उगणीस का छठा भाग प्रमाण परिधि भया ($\frac{१९}{६}$) याकौं व्यास का चौथा भाग पाव योजन ($\frac{१}{४}$), ताकरि गुणैं उगणीस का चौबीसवां भाग प्रमाण ($\frac{१९}{२४}$) क्षेत्रफल भया । बहुरि याकौं वेध एक योजन करि गुणै, उगणीस का चौबीसवां भाग प्रमाण ही घन क्षेत्रफल भया । अब इहाँ एक योजन के आठ हजार (८०००) धनुष, एक धनुष का छिनवै (९६) अंगुल, एक प्रमाण अंगुल के पांच सै (५००) उत्सेधांगुल,

आगै एक-एक के आठ-आठ यव, जू, लीख, कर्मभूमिवालों का बाल का अग्रभाग, जघन्य भोगभूमिवालो का बालाग्र, मध्यम भोगभूमिवालों का बालाग्र, उत्तम भोग भूमिवालों का बालाग्र होइ हैं। सो इहाँ घन राशि का गुणकार-भागहार घनरूप ही हो है। तातैं इन सबनि का घनरूप गुणकार करनै कौं उगणीस का चौबीसवां भाग मांडि आगै आठ हजार आदि तीन-तीन जायगा मांडि परस्पर गुणन करना। $\frac{१९}{२४}$

८००० । ८००० । ८००० । ९६ । ९६ ।९६ । ५०० । ५०० । ५०० । ८ । ८ ।
८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।
८ । ८ । सो राशि का गुणकार वा भागहार का अपवर्तनादि विधान करि गुणैं व्यवहार पल्य के सर्व बालनि के खंडनि का प्रमाण अंक अनुक्रम करि बांहीं तरफ तैं लगाइ पहले अठारह बिंदी अर पीछैं दोय, नव, एक, दोय, एक, पांच, नव, च्यारि, सात, सात, सात, एक, तीन, बिंदी, दोय, आठ, बिंदी, तीन, बिंदी, तीन, छह, दोय, पांच, च्यारि, तीन, एक, च्यारि ए अंक लिखनै ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० । इनि अंकनि करि च्यारि सै तेरा कोडाकोडि कोडाकोडि कोडाकोडि पैंतालिस लाख छब्बीस हजार तीन सै तीन कोडाकोड़ि कोडाकोडि कोडि आठ लाख बीस हजार तीन सै सत्रह कोडाकोडि कोडाकोडि सतहत्तरि लाख गुणचास हजार पांच सै बारा कोडा-कोडि कोडि उगणीस लाख बीस हजार कोडाकोडि प्रमाण हो है, इतने रोम खंड सो व्यवहार पल्य के जानने। बहुरि तिस एक-एक रोम खंड कौं सौ-सौ वर्ष गए काढिए, जितने काल विषैं वे सर्व रोम पूर्ण होइ, सो सर्व व्यवहार पल्य का काल जानना।

सो इहां एक वर्ष के दो अयन, एक अयन का तीन ऋतु, एक ऋतु का दोय मास, एक मास का तीस अहोरात्र, एक अहोरात्र के तीस मुहूर्त, एक मुहूर्त की संख्यात आवली, एक आवली के जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय, सो क्रम तैं गुणन कीयें तिस काल के समयनि का प्रमाण हो है।

बहुरि तिस एक-एक रोम के अग्रभाग का असंख्यात कोडि वर्ष के जेते समय होइ, तितने-तितने खंड कीए दूसरा उद्धार पल्य के रोम खंड होइ हैं। इहां याके समय भी इतने ही जानने। सो ए कितने हैं? सो ल्याइये है – विरलन राशि कौं देय राशि का अर्धच्छेदनि करि गुणैं उत्पन्न राशि के अर्धच्छेदनि का प्रमाण हो है। तातैं अद्धा-पल्य का अर्धच्छेद राशि कौं अद्धापल्य का अर्धच्छेद राशि ही करि गुणैं सूच्यंगुल का

अर्धच्छेद राशि हो है । बहुरि याकौं तिगुणी कीए घनांगुल का अर्धच्छेद राशि हो है। बहुरि याकरि अद्धापल्य का अर्धच्छेद राशि का असंख्यातवां भाग कौं गुणैं जगत् श्रेणी का अर्धच्छेद राशि हो है । यामैं तीन घटाए एक राजू के अर्धच्छेदनि के प्रमाण हो है । इहां एक अर्धच्छेद तो बीचि मेरु के मस्तक विषैं प्राप्त भया । तीहिं सहित लाख योजननि के संख्यात अर्धच्छेद भये एक योजन रहै । अर एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल होंइ, सो इनके संख्याते अर्धच्छेद भये एक अंगुल होय, सो ये सर्व मिलि संख्याते अर्धच्छेद भए, तिनिकरि अधिक एक सूच्यंगुल रही थी, ताके अर्धच्छेदनि का जो प्रमाण होइ, सो घटाइए, तब समस्त द्वीप-समुद्रनि की संख्या हो है । सो घटावना कैसैं होइ ? इहां तिगुणा सूच्यंगुल का अर्धच्छेद प्रमाण गुणकार है, सो इतने घटावने होइ, तहां अद्धापल्य के अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग प्रमाण मैं सौं एक घटाइए तौ इहां संख्यात अधिक सूच्यंगुल का अर्धच्छेद घटावना होइ, तौ कितना घटाइए ? ऐसैं त्रैराशिक करि किछू अधिक त्रिभाग घटाइए, ऐसैं साधिक एक का तीसरा भाग कर हीन पल्य के अर्धच्छेद का असंख्यातवां भाग कौं पल्य के अर्धच्छेद के वर्ग तैं तिगुणा प्रमाणकरि गुणैं समस्त द्वीप-समुद्रनि की संख्या हो है । सो इतने ए द्वीप-समुद्र अढाई उद्धार सागर प्रमाण हैं,तिनके पचीस कोडाकोडि पल्य भए, सो इतने पल्य की पूर्वोक्त संख्या होइ, तौ एक उद्धार पल्य की केती होइ ? ऐसैं त्रैराशिक कीए पूर्वोक्त द्वीप-समुद्रनि की संख्या कौं पचीस कोडाकोडि का भाग दीजिए, तहां जो प्रमाण आवै तितनी उद्धार पल्य के रोम खंडनि की संख्या जानना । बहुरि इनि एक-एक रोम खंडनि के असंख्यात वर्ष के जेते समय होंहि, तितने खंड कीए जेते होंइ, तितने अद्धापल्य के रोम खंड हैं, ताके समय भी इतने ही हैं । जातैं एक-एक समय विषैं एक-एक रोम खंड काढैं सर्व जेते कालकरि पूर्ण होंइ, सो अद्धा पल्य का काल है।

ते असंख्यात वर्ष के समय कितने हैं ?

सो कहिए है – उद्धार पल्य के सर्व रोम खंडनि का प्रत्येक असंख्यात वर्ष समय प्रमाण खंड कीए एक अद्धा पल्य प्रमाण होइ, तौ एक रोम खंडनि के खंडनि का केता प्रमाण होइ ? ऐसैं त्रैराशिक करि जितना लब्ध राशि का प्रमाण होइ, तितने एक उद्धार पल्य का रोम खंड के खंडनि का प्रमाण जानना । बहुरि अद्धा पल्य है, सो द्विरूप वर्गधारा में अपने अर्धच्छेद राशि तैं ऊपरि असंख्यात वर्गस्थान जाइ उपजै है । याकौं तिगुणा पल्य का अर्धच्छेद राशि का वर्ग कौं किंचिदून पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग करि गुणैं जो प्रमाण आवै, ताकौं पचीस कोडाकोडि

का भाग दीए जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीए जितने पावै, तितने असंख्यात वर्षनि के समय जानने । इस प्रमाण करि तिस उद्धार पल्य के रोम खंडनि कौं गुणें अद्धा पल्य के रोमनि की संख्या आवै है । ऐसें तीन प्रकार पल्य कहे । जैसें खास विषें अन्न भरिए, तैसें इहां गर्त विषें रोम भरि प्रमाण कह्या, तातैं याका नाम पल्योपम कह्या है ।

बहुरि इनिकौं प्रत्येक दश कोडाकोडि करि गुणैं अपने-अपने नाम का सागर होइ । दश कोडाकोडि व्यवहार पल्य करि व्यवहार सागर, उद्धार पल्य करि उद्धार सागर, अद्धा पल्य करि अद्धा सागर जानना ।

इहां लवण समुद्र की उपमा है, तातैं याका नाम सागरोपम है, सो याकी उत्पत्ति कहिए है – लवण समुद्र की छेहड की सूची पांच लाख योजन ५००००० (५ ल) आदिकी सूची एक लाख योजन (१०००००) इनिकौं मिलाय ६ ल आधा व्यास का प्रमाण लाख योजन करि गुणिये, तब ६ ल ल । बहुरि याके वर्ग कौं दशगुणा करिये, तब करणिरूप सूक्ष्म क्षेत्र होइ ६ ल ल ६ ल ल १० । याका वर्गमूल प्रमाण लवण समुद्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल है । बहुरि तिस करणिरूप लवण समुद्र के क्षेत्रफल कौं पल्य का गर्त एक योजन मात्र, ताका करणिरूप सूक्ष्म क्षेत्रफल एक योजन का वर्ग दशगुणा कौं योजन का चौथा भाग के वर्ग का भाग दीए जो होइ, तीहि प्रमाण है । ताका भाग देना ६ ल ल ६ ल ल १० । सो इहां दश करणि

१/४ १/४ १०

करि दश करणि का अपवर्तन करना । बहुरि भागहार का भागहार राशि का गुणकार होइ, इस न्याय करि भागहार दोय जायगा च्यारि करि राशि का दोय जायगा चवका का गुणकार करना २४ ल ल २४ ल ल, तब पल्य गर्तनि के प्रमाण का वर्ग होइ । याका वर्गमूल अहै सर्व गर्तनि का प्रमाण लाख गुणा चोबीस लाख प्रमाण हो है । याकौं हजार योजन का औंडापन करि गुणें सर्व लवण समुद्र विषें पल्यगर्त सारिखे गर्तनि का प्रमाण हो है – २४ लल १००० । याकौं अपने-अपने विवक्षित पल्य के रोम खंडनि करि गुणें गर्तनि के रोमनि का प्रमाण हो है । बहुरि छह रोम जितना क्षेत्र रोकें, तितने क्षेत्र का जल निकासने विषें पचीस समय व्यतीत होय, तौ सर्व रोमनि के क्षेत्र का जल निकासने में केते समय होय ? ऐसें त्रैराशिक करना । तहां प्रमाण राशि रोम छह (६), फल राशि समय पचीस (२५), इच्छा राशि सर्व

गर्तनि के रोमनि का प्रमाण । तहां फल करि इच्छा कौं गुणि प्रमाण का भाग दीए समयनि का प्रमाण आवै । बहुरि पूर्वोक्त अपना-अपना समयनि का प्रमाणकरि एक पल्य होय, तौ इतने इहां समय भए, तिनके केते पल्य होय ? ऐसें त्रैराशिक कीए, दश कोडाकोडि पल्यनि का प्रमाण हो है । तातें दश कोडाकोडि पल्यनि के समूह का नाम सागर कह्या है । बहुरि अद्धा पल्य का अर्धच्छेद राशि का विरलन करि एक-एक करि बखेरि एक-एक रूप प्रति अद्धा पल्य कौं देइ परस्पर गुणन कीए सूच्यंगुल उपजै है । एक प्रमाणांगुल का प्रमाण लंबा, एक प्रदेश प्रमाण चौड़ा-ऊंचा क्षेत्र का इतने प्रदेश जानने । जैसें पल्य का प्रमाण सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, तिनिका विरलन करि । १ । १ । १ । १ । एक-एक प्रति-प्रति पल्य सोलह कौं देइ, १६ । १६ । १६ । १६ ।
१ १ १ १

परस्पर गुणैं पणट्ठी प्रमाण (६५५३६) होइ, तैसें इहां जानना । बहुरि सूच्यंगुल का जो वर्ग सो प्रतरांगुल है । एक अंगुल चौडा, एक अंगुल लम्बा, एक प्रदेश ऊंचा क्षेत्र का इतना प्रदेशनि का प्रमाण है । जैसें पणट्ठी कौं पणट्ठी करि गुणैं बादाल होइ, तैसें इहां सूच्यंगुल कौं सूच्यंगुल करि गुणें प्रतरांगुल हो है । बहुरि सूच्यंगुल का घन, सो घनांगुल है । एक अंगुल चौडा, एक अंगुल लम्बा, एक अंगुल ऊंचा क्षेत्र का इतना प्रदेशनि का प्रमाण है । जैसें बादाल को पणट्ठी करि गुणें पणट्ठी का घन होई, तैसें प्रतरांगुल को सूच्यंगुल करि गुणें घनांगुल हो है । बहुरि अद्धापल्य के जेते अर्धच्छेद, तिनिका असंख्यातवां भाग का जो प्रमाण, ताकौं विरलनि करि एक-एक प्रति घनांगुल देय परस्पर गुणैं जगत्श्रेणी उपजै है । क्षेत्रखंडन विधान करि हीनाधिक कौं समान कीये, लोक का लम्बा श्रेणीबद्ध प्रदेशनि का प्रमाण इतना है । जातैं जगत्श्रेणी का सातवां भाग राजू है । सात राजू का घनप्रमाण लोक है । जैसें पल्य का अर्धच्छेद च्यारि, ताका असंख्यातवां भाग दोय, सो दोय जायगा पणट्ठी गुणा बादाल कौं मांडि परस्पर गुणें विवक्षित प्रमाण होइ, तैसें इहां भी जगत्श्रेणी का प्रमाण जानना । बहुरि जगत्श्रेणी का वर्ग, सो जगत्प्रतर है । क्षेत्रखंडन विधान करि हीनाधिक समान कीए लम्बा-चौड़ा लोक के प्रदेशनि का इतना प्रमाण है ।

भावार्थ यहु – यह जगत्श्रेणी कौं जगत्श्रेणी करि गुणें प्रतर हो है । बहुरि जगत्श्रेणी का घन सो लोक है । लम्बा, चौड़ा, ऊंचा, सर्व लोक के प्रदेशनि का प्रमाण इतना है ।

भावार्थ यहु – जगत्प्रतर कौं जगत्श्रेणी करि गुणें लोक का प्रमाण हो है ।

अब इनके अर्धच्छेद अर वर्गशलाकनि का प्रमाण कहिए है – तहां प्रथम अद्धा पल्य के अर्धच्छेद द्विरूप वर्गधारा विषैं अद्धा पल्य के स्थान तैं पहिले असंख्यात वर्ग स्थान नीचैं उतरि जो राशि भया, तीहि प्रमाण हैं। बहुरि अद्धा पल्य की वर्गशलाका तिसही द्विरूप वर्गधारा विषैं तिस पल्य ही के अर्धच्छेद स्थान तैं पहले असंख्यात वर्गस्थान नीचैं उतरि उपजी है। बहुरि सागरोपम के अर्धच्छेद सर्वधारा विषैं पाइए हैं, ते पल्य के अर्धच्छेदनि विषैं गुणकार जो दश कोडाकोडि, ताके संख्यात अर्धच्छेद जोडें जो प्रमाण होइ, तितने हैं। बहुरि ताकी वर्गशलाका इहां पल्य राशि तैं गुणकार संख्यात ही का है, तातैं न बनै है। बहुरि सूच्यंगुल है सो द्विरूप वर्गधारा विषैं प्राप्त है, सो यहु राशि विरलन देय का अनुक्रम करि उपज्या है, तातैं याके अर्धच्छेद अर वर्गशलाका सर्वधारा आदि यथासंभव धारानि विषैं प्राप्त हैं, द्विरूप वर्गधारा आदि तीन धारानि विषैं प्राप्त नाहीं हैं। तहां विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद, इनिकौं देय राशि पल्य, ताके अर्धच्छेदनि करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने तौ सूच्यंगुल के अर्धच्छेद हैं। बहुरि द्विरूप वर्गधारा विषैं पल्यरूप स्थान तैं ऊपरि सूच्यंगुल का विरलन राशि जो पल्य के अर्धच्छेद, ताके जेते अर्धच्छेद हैं तितने वर्गस्थान जाइ सूच्यंगुल स्थान उपजै हैं। तातैं पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण तैं सूच्यंगुल की वर्गशलाका का प्रमाण दूणा है। तातैं पल्य पर्यन्त एक बार पल्य की वर्गशलाका प्रमाण स्थान भए पीछैं पल्य के अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेदनि का जो प्रमाण होय, सोई पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण, सो पल्य तैं ऊपरि दूसरी बार पल्य की वर्गशलाका प्रमाण स्थान भए सूच्यंगुल हो है। तातैं दूणी पल्य की वर्गशलाका प्रमाण सूच्यंगुल की वर्गशलाका कही। अथवा विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेद, तिनिके जेते अर्धच्छेद, तिनिविषैं देय राशि पल्य, ताका अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेदनि कौं जोडें, सूच्यंगुल की वर्गशलाका हो है। सो पल्य के अर्धच्छेदनि का अर्धच्छेद प्रमाण पल्य की वर्गशलाका है। सो इहां भी दूणी भई, सो या प्रकार भी पल्य की वर्गशलाका तैं दूणी सूच्यंगुल की वर्गशलाका है। बहुरि प्रतरांगुल है, सो द्विरूप वर्गधारा विषैं प्राप्त है। ताकी वर्गशलाका अर्धच्छेद यथा योग्य धारानि विषैं प्राप्त जानने। तहां **'वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा-दुगुणा हवंति अद्धछिदा'** इस सूत्र करि वर्ग तैं ऊपरला वर्ग स्थान विषैं दूणा-दूणा अर्धच्छेद कहे, तातैं इहां सूच्यंगुल के अर्धच्छेदनि तैं दूणे प्रतरांगुल के अर्धच्छेद जानने। अथवा गुण्य अर गुणकार का अर्धच्छेद जोडें राशि का अर्धच्छेद होइ, तातैं इहां सूच्यंगुल गुण्य कौं सूच्यंगुल का गुणकार है, तातैं दोय सूच्यंगुल

के अर्धच्छेद मिलाए भी सूच्यंगुल के अर्धच्छेदनि तें दूणे प्रतरांगुल के अर्धच्छेद हो हैं। बहुरि **'वग्गसला रूवहिया'** इस सूत्र करि वर्गशलाका ऊपरला स्थान विषैं एक अधिक होइ, तातैं इहां सूच्यंगुल के अनंतर प्रतरांगुल का वर्गस्थान है, तातें सूच्यंगुल की वर्गशलाका तें एक अधिक प्रतरांगुल की वर्गशलाका है । बहुरि घनांगुल है, सो द्विरूप घनधारा विषैं प्राप्त है, सो यहु अन्य धारा विषैं उत्पन्न है, सो **'तिगुणा तिगुणा पर-ट्ठाणे'** इस सूत्र करि अन्य धारा का ऊपरला स्थान विषैं तिगुणा-तिगुणा अर्धच्छेद होहि, तातें सूच्यंगुल के अर्धच्छेदनि तें तिगुणे घनांगुल के अर्धच्छेद हैं । अथवा तीन जायगा सूच्यंगुल मांडि परस्पर गुणें, घनांगुल हो है । तातें गुण्य-गुणकार रूप तीन सूच्यंगुल, तिनका अर्धच्छेद जोडें भी घनांगुल के अर्धच्छेद तितने ही हो हैं । बहुरि **'परसम'** इस सूत्र करि अन्य धारा विषैं वर्गशलाका समान हो है । सो इहां द्विरूप वर्गधारा विषैं जेथवा स्थान विषैं सूच्यंगुल है, तेथवां ही स्थान विषैं द्विरूप घनधारा विषैं घनांगुल है । तातें जेती सूच्यंगुल की वर्गशलाका, तितनी ही घनांगुल की वर्गशलाका जानना । बहुरि जगत्श्रेणी है, सो द्विरूप घनधारा विषैं प्राप्त है; सो याके अर्ध-च्छेद वर्गशलाका अन्य धारा विषैं उपजै हैं । तहां **'विरलज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धछि-दीहिं संगुणिदे लद्धछेदा होंति'** इस सूत्र करि विरलनरूप राशि कौं देय राशि का अर्धच्छेदनि करि गुणें लब्ध राशि के अर्धच्छेद होहि । तातें इहां विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग, ताकौं देय राशि घनांगुल, ताके अर्धच्छेदनि करि गुणें जो प्रमाण होइ, तितने जगत् श्रेणी के अर्धच्छेद हैं । बहुरि दूणा जघन्य परीता-संख्यात का भाग अद्धा पल्य की वर्गशलाका कौं दीए जो प्रमाण होइ, तितना विर-लन राशि का अर्धच्छेद है । ताकौं देय राशि घनांगुल की वर्गशलाका विषैं जोडें जो प्रमाण होइ, तितनी जगत्श्रेणी की वर्गशलाका है । अथवा जगत्श्रेणी विषैं देय राशि घनांगुल, तीहिरूप द्विरूप घनधारा का स्थान तें ऊपरि विरलन राशि पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग, ताके जेते अर्धच्छेद होइ, तितने वर्गस्थान जाइ जगत्श्रेणीरूप स्थान उपजै है । तातैं भी जगत्श्रेणी की वर्गशलाका पूर्वोक्त प्रमाण जाननी ।

सो जगत्श्रेणी विषैं विरलन राशि का प्रमाण कितना है ?

सो कहिए है, अद्धा पल्य का जो अर्धच्छेद राशि ताका प्रथम वर्गमूल, द्वितीय वर्गमूल इत्यादि क्रम तें दूणा जघन्य परीतासंख्यात के जेते अर्धच्छेद होहि, तितने

वर्गमूल करने, सो द्विरूप वर्गधारा के स्थाननि विषैं पल्य का अर्धच्छेदरूप स्थान तैं नीचैं तितने स्थान आइ अंत विषैं जो वर्गमूलरूप स्थान होइ, ताके अर्धच्छेद दूणा जघन्य परीतासंख्यात का भाग पल्य की वर्गशलाका कों दीये जो प्रमाण होइ, तितने होंइ। बहुरि **'तम्मित्तदुगे गुणेरासी'** इस सूत्र करि अर्धच्छेदनि का जेता प्रमाण, तितने दुवे मांडि परस्पर गुणैं राशि होइ, सो इहां पल्य की वर्गशलाका का प्रमाण भाज्य है, सो तितने दुवे मांडि परस्पर गुणें तो पल्य का अर्धच्छेद राशि होय; अर दूणा जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण भागहार है, सो तितने दुवे मांडि परस्पर गुणें यथासंभव असंख्यात होइ। ऐसैं तिस अंत के मूल का प्रमाण पल्य के अर्धच्छेदनि के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानना, सोई इहां जगत्श्रेणी विषैं विरलन राशि है। बहुरि जगत्प्रतर है, सो द्विरूप घनधारा विषैं प्राप्त है, सो याके अर्धच्छेद वर्गशलाका अन्य धारानि विषैं प्राप्त जानने। तहां जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदनि तैं दूणे जगत्प्रतर के अर्धच्छेद हैं। **'वग्गसला रूवहिया'** इस सूत्र करि जगत्श्रेणी की वर्गशलाका तैं एक अधिक जगत् प्रतर की वर्गशलाका है। बहुरि घनरूप लोक, सो द्विरूप घनाघन धारा विषैं उपजै है। तहां **'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे'** इस सूत्र करि द्विरूप घनधारा विषैं प्राप्त जो जगत्-श्रेणी, ताके अर्धच्छेदनि तैं लोक के अर्धच्छेद तिगुणे जानने। अथवा तीन जायगा जगत्श्रेणी मांडि परस्पर गुणैं लोक होइ, सो गुण्य-गुणकार तीन जगत्श्रेणी के अर्ध-च्छेद जोडैं भी तितने ही लोक के अर्धच्छेद हो हैं। बहुरि **'परसम'** इस सूत्र करि जगत् श्रेणी की वर्गशलाका मात्र ही लोक की वर्गशलाका है। इहां प्रयोजनरूप गाथा सूत्र कहिये है। उक्तं च –

गुणयारद्धच्छेदा, गुणिज्जमाणस्स अद्धच्छेदजुदा।
लद्धस्सद्धच्छेदा, अहियस्सच्छेदणा णत्थि ॥

याका अर्थ – गुणकार के अर्धच्छेद गुण्यराशि के अर्धच्छेद सहित जोडैं लब्ध-राशि के अर्धच्छेद होंहि। जैसैं गुणकार आठ, ताके अर्धच्छेद तीन अर गुण्य सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, इनिकौं जोडैं लब्धराशि एक सौ अट्ठाईस के अर्धच्छेद सात हो हैं। ऐसैं ही गुणकार दश कोडाकोडि के संख्यात अर्धच्छेद गुण्यराशि पल्य, ताके अर्ध-च्छेदनि मैं जोडैं, लब्धराशि सागर के अर्धच्छेद हो हैं। बहुरि अधिक के छेद नाहीं है, काहेतैं सो कहिये है, अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्गशलाका होइ, सो इहां पल्य के अर्धच्छेदनि तैं संख्यात अर्धच्छेद सागर के अधिक कहे। सो इनि अधिक अर्धच्छेदनि के

अर्धच्छेद होंइ, परन्तु वर्गशलाकारूप प्रयोजन की सिद्धि नाहीं, तातैं अधिक के अर्धच्छेद नाहीं करने असा कह्या, याही तैं सागर की वर्गशलाका का अभाव है । उक्तं च –

भज्जस्सद्धछेदा, हारद्धछेदरगाहि परिहीणा ।
अद्धच्छेदसलागा, लद्धस्स हवंति सव्वत्थ ।।

अर्थ – भाज्यराशि के अर्धच्छेद भागहार के अर्धच्छेदनि करि हीन करिए, तब लब्धराशि की अर्धच्छेद शलाका सर्वत्र हो हैं । जैसैं एक सौ अट्ठाईस के भाज्य के अर्धच्छेद सात, इनमें भागहार आठ के तीन अर्धच्छेद घटाए लब्धराशि सोलह के च्यारि अर्धच्छेद हो हैं, असैं ही अन्यत्र जानना ।

विरलज्जमाणरासिं, दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु, सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि कौं देय राशि के अर्धच्छेदनि करि गुणैं उत्पन्न राशि के अर्धच्छेद सर्वत्र हो हैं । जैसैं विरलन राशि च्यारि, ताकौं देय राशि सोलह के अर्धच्छेद च्यारि करि (गुणैं) उत्पन्न राशि पणट्ठी के सोलह अर्धच्छेद हो हैं । असैं इहां भी पल्य अर्धच्छेद प्रमाण विरलन राशि कौं देय राशि पल्य, ताके अर्धच्छेदनि करि गुणैं उत्पन्न राशि सूच्यंगुल के अर्धच्छेद हो है । असैं ही अन्यत्र जानना ।

विरलिदरासिच्छेदा, दिण्णद्धच्छेदच्छेदसंमिलिदा ।
वग्गसलागपमाणं, होंति समुप्पण्णरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि के अर्धच्छेद देयराशि के अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेदनि करि सहित जोडैं उत्पन्न राशि की वर्गशलाका का प्रमाण हो है । जैसैं विरलन राशि च्यारि के अर्धच्छेद दोय अर देय राशि सोलह के अर्धच्छेद च्यारि, तिनिके अर्धच्छेद दोय, इनको मिलाए उत्पन्न राशि पणट्ठी की वर्गशलाका च्यारि हो हैं । असैं ही विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद, तिनिके अर्धच्छेद तिनिविषै देय राशि पल्य, ताके अर्धच्छेदनि के अर्धच्छेद जोडैं उत्पन्न राशि सूच्यंगुल के वर्गशलाका का प्रमाण हो हैं। असैं ही अन्यत्र जानना ।

दुगुणपरित्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला ।
विदंगुलवग्गसला, सहिया सेढिस्स वग्गसला ।।

अर्थ – दूणा जघन्य परीतासंख्यात का भाग श्रद्धापल्य की वर्गशलाका कौं दीए जो प्रमाण होइ, तीहिं करि संयुक्त घनांगुल की वर्गशलाका का जो प्रमाण, तितनी जगत्श्रेणी की वर्गशलाका हो है ।

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, गुणयारो लद्धरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि तैं जेते अधिक रूप होंइ, तिनिका परस्पर गुणन कीए लब्ध राशि का गुणकार होइ । जैसैं च्यारि अर्धच्छेदरूप विरलन राशि अर तीन अर्धच्छेद अधिक राशि, तहां विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण दुवा मांडि परस्पर गुणैं २×२×२×२ सोलह १६ लब्ध राशि होइ । अर अधिक राशि तीन अर्धच्छेद प्रमाण दुवा मांडि २×२×२ परस्पर गुणैं आठ गुणकार होय, सो लब्धि राशि कौं गुणकार करि गुणैं सात अर्धच्छेद जाका पाइए, असा एक सौ अट्ठाईस होइ । असैं ही पल्य के अर्धच्छेद विरलन राशि, सो इतनै दूवा मांडि परस्पर गुणैं लब्ध राशि पल्य होइ अर अधिक राशि संख्यात अर्धच्छेद, सो इतनै दुवे मांडि परस्पर गुणैं दश कोडाकोडि गुणकार होइ । सो पल्य कौं दश कोडाकोडि करि गुणैं सागर का प्रमाण हो है । असैं ही अन्यत्र जानना ।

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ।।

अर्थ – विरलन राशि तैं जेते हीनरूप होंइ, तिनिका परस्पर गुणन कीए उत्पन्न राशि का भागहार होइ । जैसैं विरलन राशि अर्धच्छेद सात अर हीनरूप अर्धच्छेद तीन, तहां विरलन राशिमात्र दुवा मांडि २×२×२×२×२×२×२ परस्पर गुणैं एक सौ अट्ठाईस उत्पन्न राशि होइ । बहुरि हीनरूप प्रमाण दुवा मांडि २×२×२ परस्पर गुणैं आठ भागहार राशि होइ, सो उत्पन्न राशि कौं भागहाररूप राशि का भाग दीए च्यारि अर्धच्छेद जाका पाइए असा सोलह हो हैं, असैं ही अन्यत्र जानना । असैं मान वर्णन कीया ।

सो असैं मान भेदनि करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का परिमाण कीजिए है; सो जहां द्रव्य का परिमाण होइ, तहां तितने पदार्थ जुदे-जुदे जानने ।

बहुरि जहां क्षेत्र का परिमाण होय, तहां तितने प्रदेश जानने ।

जहां काल का परिमाण होइ, तहां तितने समय जानने ।

जहां भाव का परिमाण होइ, तहां तितने अविभाग प्रतिच्छेद जानने ।

इहां दृष्टांत कहिए है – जैसैं हजार मनुष्य हैं, असा कहिए तहां वे हजार जुदे-जुदे जानने, तैसैं द्रव्य परिमाण विषै जुदे-जुदे पदार्थ जानने ।

बहुरि जैसैं यहु वस्त्र बीस हाथ है, तहां उस वस्त्र विषैं बीस अंश जुदे-जुदे नाहीं, परन्तु एक हाथ जितना क्षेत्र रोकै, ताकी कल्पना करि बीस हाथ कहिए हैं । तैसैं क्षेत्र परिमाण विषैं जितना क्षेत्र परमाणु रोकै, ताकौं प्रदेश कहिए, ताकी कल्पना करि क्षेत्र का परिमाण कहिए हैं ।

बहुरि जैसैं एक वर्ष के तीन सैं छ्यासठि दिन-रात्रि कहिए, तहां अखंडित काल प्रवाह विषैं अंश है नाहीं, परन्तु सूर्य के उदय-अस्त होने की अपेक्षा कल्पना करि कहिए हैं । तैसैं काल परिमाण विषैं जितने काल करि परमाणु मंद गति करि एक प्रदेश तैं दूसरे प्रदेश कौं जाइ, तीहि काल को समय कहिए । तीहि अपेक्षा कल्पना करि काल का परिमाण कहिए हैं ।

बहुरि जैसैं यहु सोला वानी का सोना है, तहां उस सोना विषैं सोला अंश है नाहीं, तथापि एक वान के सोना विषैं जैसे वरणादिक पाइए है; तिनकी अपेक्षा कल्पना करि कहिए हैं । तैसैं भाव परिणाम विषैं केवलज्ञानगम्य अति सूक्ष्म जाका दूसरा भाग न होइ, असा कोई शक्ति का अंश ताकौ अविभाग प्रतिच्छेद कहिए, ताकी कल्पना करि भाव का परिमाण कहिए । मुख्य परिमाण तौ असे जानना, विशेष जैसा विवक्षित होइ, सो जानना ।

बहुरि जहां क्षेत्र परिमाण विषैं आवली का परिमाण कहिए, तहां आवली के जेते समय होंइ, तितने तहां प्रदेश जानने ।

बहुरि काल परिमाण विषैं जहां लोक परिमाण कहे, तहां लोक के जितने प्रदेश होंइ, तितने समय जानने; इत्यादि असैं जानने । बहुरि जहां संख्यात, असंख्यात अनंत सामान्यपनैं कहे, तहां तिनिका भेद यथायोग्य जानना ।

सर्वभेद कहने में न आवै, ज्ञानगम्य है, तातैं कौन रीति सौं कहिए ?

परन्तु जैसैं लोक विषैं कहिए याके लाखां रुपैया छै, तहां असा जानिए, कोड्यो नाहीं, हजारों नाहीं, तैसैं हीनाधिक भाव करि स्थूलपणैं परिमाण जानना,

सूक्ष्मपणौं परिमाण ज्ञानगम्य है । या प्रकार इस ग्रन्थ विषैं जहां-तहां मान का प्रयोजन जानि मान वर्णन कीया है ।

अब पर्याप्ति प्ररूपणा का प्रारम्भ करता संता प्रथम ही दृष्टांतपूर्वक जीवनि के तिनि पर्याप्तिनि करि पूर्णता-अपूर्णता दिखावै है –

जह पुण्णापुण्णाइं, गिहघडवत्थादियाइं दव्वाइं ।
तह पुण्णिदरा जीवा, पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥११८॥[1]

यथा पूर्णापूर्णानि, गृहघटवस्त्रादिकानि द्रव्याणि ।
तथा पूर्णेतरा जीवाः, पर्याप्तेतरा मंतव्याः ॥११८॥

टीका – जैसैं लोक विषैं गृह, घट, वस्त्र इत्यादिक पदार्थ व्यंजन पर्यायरूप, ते पूर्ण अर अपूर्ण दीसैं हैं; जे अपने कार्यरूप शक्ति करि सम्पूर्ण भए, तिनिकौं पूर्ण कहिए । बहुरि जिनका आरंभ भया किछू भए किछू न भये ते अपने कार्यरूप शक्ति करि संपूर्ण न भए, तिनिकौं अपूर्ण कहिए ।

तैसैं पर्याप्त, अपर्याप्त नामा नामकर्म की प्रकृति के उदय करि संयुक्त जीव भी अपनी-अपनी पर्याप्तिनि करि पूर्ण अर अपूर्ण हो हैं । जो सर्व पर्याप्तिनि की शक्ति करि संपूर्ण होइ, सो पूर्ण कहिए । बहुरि जो सर्व पर्याप्तिनि की शक्ति करि पूर्ण न होइ, सो अपूर्ण कहिये ।

आगैं ते पर्याप्ति कौंन ? अर कौंनके केती पाइए ? सो विशेष कहै हैं –

आहार-सरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाण-भास-मणो ।
चत्तारि[1] पंच[2] छप्पि[3] य, एइंन्दिय-वियल-सण्णीणं[4] ॥११९॥

आहारशरीरेंद्रियाणि, पर्याप्तः आनप्राणभाषामनांसि ।
चतस्रः पंच षडपि च, एकेंद्रिय-विकल-संज्ञिनां ॥११९॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला, पुस्तक–१, पृष्ठ ३१६, सूत्र नं. ७४,७५
२. ,, ,, ,, ,, ,, ३१५ सूत्र नं. ७२,७३
३. ,, ,, ,, ,, ,, ३१३, ३१४ सूत्र नं. ७०,७१
४. द्रव्यसंग्रह गाथा नं. १२ की संस्कृत टीका में भी यह उद्धृत है ।

टीका — १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इंद्रिय पर्याप्ति, ४. आनपान कहिए श्वासोश्वास पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति, ६. मनः पर्याप्ति असैं छह पर्याप्ति हैं। इनिविषै एकेंद्रिय कैं तौ भाषा अर मन विना पहिली च्यारि पर्याप्ति पाइये हैं। बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री, असैनी पंचेंद्री इनि विकल चतुष्क कै मन विना पांच पर्याप्ति पाइए हैं। सैनी पंचेंद्रिय कैं छहौं पर्याप्ति पाइए हैं।

तहां औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इनिविषैं किस ही शरीररूप नाम कर्म की प्रकृति का उदय होने का प्रथम समय सौं लगाइ करि जो तीन शरीर वा छह पर्याप्तिरूप पर्याय परिणमने योग्य जे पुद्‌गलस्कंध, तिनिकौं खल-रस भागरूप परिणमावने की पर्याप्ति नामा नामकर्म के उदय तैं भई असी जो आत्मा के शक्ति निपजै, जैसैं तिल कौं पेलि करि खलि अर तेलरूप परिणमावै है, तैसैं केई पुद्‌गल नै तौ खलरूप परिणमावै, केई पुद्‌गल नै रसरूप परिणमावै हैं — असी शक्ति होने कौं आहार पर्याप्ति कहिए।

बहुरि खल-रस भागरूप परिणए पुद्‌गल, तिनिविषैं जिनकौं खलरूप परिणमाए थे, तिनिकौं तौ हाड-चर्म इत्यादि स्थिर अवयवरूप परिणमावै अर जिनिकौं रसरूप परिणमाए थे, तिनिकौं रुधिर-शुक्र इत्यादिक द्रव अवयवरूप परिणमावै — असी जो शक्ति होइ, ताकौं शरीर पर्याप्ति कहिए हैं।

बहुरि इंद्रियरूप मति, श्रुतज्ञान अर चक्षु, अचक्षु दर्शन का आवरण अर वीर्यान्तराय, इनिकै क्षयोपशम करि निपजी जो आत्मा कै यथायोग्य द्रव्येंद्रिय का स्थानरूप प्रदेशनि तैं वर्णादिक ग्रहणरूप उपयोग की शक्ति जाति नामा नामकर्म के उदय तैं निपजै, सो इंद्रिय पर्याप्ति कहिए हैं।

बहुरि तेवीस जाति का वर्गणानि विषैं आहार वर्गणारूप पुद्‌गल स्कंधनि की श्वासोश्वासरूप परिणमावने की शक्ति, श्वासोश्वास नामकर्म के उदय तैं निपजै, सो श्वासोश्वास पर्याप्ति कहिए।

बहुरि स्वर नामा नाम कर्म के उदय तैं भाषा वर्गणारूप पुद्‌गल स्कंधनि कौं सत्य, असत्य, उभय, अनुभय भाषारूप परिणमावने की शक्ति होइ, सो भाषा पर्याप्ति कहिए।

बहुरि मनोवर्गणारूप जे पुद्‌गल स्कंध, तिनिकौं अंगोपांग नामा नामकर्म का बल तैं द्रव्यमनरूप परिणमावने की शक्ति होय, तीहि द्रव्यमन का आधार तैं मन

का आवरण अर वीर्यान्तराय के क्षायोपशम विशेष करि गुण-दोष का विचार, अतीत का याद करना, अनागत विषैं याद रखना, इत्यादिकरूप भावमन के परिणमावने की शक्ति होइ, ताकौं मन:पर्याप्ति कहिए हैं। असैं छह पर्याप्ति जानना।

पज्जत्तीपट्ठवणं, जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं।
अन्तो मुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ॥१२०॥

पर्याप्तिप्रस्थापनं, युगपत्तु क्रमेण भवति निष्ठापनम्।
अंतर्मुहूर्तकालेन, अधिकक्रमास्तावदालापात् ॥१२०॥

टीका – जेते-जेते अपने पर्याप्ति होंइ, तिनि सबनि का प्रतिष्ठापन कहिए प्रारंभ, सो तो युगपत् शरीर नामा नामकर्म का उदय के पहिले ही समय हो है। बहुरि निष्ठापन कहिए तिनिकी संपूर्णता, सो अनुक्रम करि हो है। सो निष्ठापन का काल अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त करि अधिक है, तथापि तिनि सबनि का काल सामान्य आलाप करि अंतर्मुहूर्त ही कहिए, जातै अंतर्मुहूर्त के भेद बहुत हैं।

कैसें निष्ठापन का काल है ?

सो कहै हैं – आहार पर्याप्ति का निष्ठापन का काल सबनि तैं स्तोक है, तथापि अंतर्मुहूर्त मात्र है। बहुरि याकौं संख्यात का भाग दीए जो काल का परिमाण आवै, सो भी अंतर्मुहूर्त है। सो यहु अंतर्मुहूर्त उस आहार पर्याप्ति का अंतर्मुहूर्त में मिलायें जो परिमाण होइ, सो शरीर पर्याप्ति का निष्ठापन काल जानना। सो यहु भी अंतर्मुहूर्त ही जानना। बहुरि याहु का संख्यातवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही में मिलायें इंद्रिय पर्याप्ति का काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है। बहुरि याका संख्यातवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही में मिलाएं श्वासोश्वास पर्याप्ति काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है। असैं एकेंद्रिय पर्याप्ति कैं तौं ए च्यारि ही पर्याप्ति इस अनुक्रम करि संपूर्ण होइ हैं। बहुरि श्वासोश्वास पर्याप्ति काल का संख्यातवां भाग का प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही में मिलाए भाषा पर्याप्ति का काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है। असैं विकलेंद्रिय पर्याप्ति जीवनि कैं ए पांच पर्याप्ति इस अनुक्रम करि संपूर्ण होइ हैं। बहुरि भाषा पर्याप्ति काल का संख्यातवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त याही में मिलाए मन:पर्याप्ति का काल होइ, सो भी अंतर्मुहूर्त ही है। असैं संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्ति कैं छह पर्याप्ति इस अनुक्रम करि पूर्ण हो हैं। असैं इनिका निष्ठापन काल कह्या।

आगें पर्याप्ति, निर्वृत्ति अपर्याप्ति काल का विभाग कहै हैं —

पज्जत्तस्स य उदये, णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि ।
जाव शरीरमपुण्णं, णिव्वत्तिअपुण्णगो ताव ॥ १२१ ॥

पर्याप्तस्य च उदये, निजनिजपर्याप्तिनिष्ठितो भवति ।
यावत् शरीरमपूर्णं, निर्वृत्त्यपूर्णकस्तावत् ॥ १२१ ॥

टीका – पर्याप्ति नामा नामकर्म के उदय होते अपने-अपने एकेंद्रिय कें च्यारि, विकलेंद्रिय कें पांच, सैनी पंचेंद्रिय कें छह पर्याप्तिनि करि **'निष्ठिताः'** कहिए संपूर्ण शक्ति युक्त होंइ, तेई यावत् काल शरीर पर्याप्ति दूसरा, ताकरि पूर्ण न होंइ, तावत् काल एक समय घाटि शरीर पर्याप्ति संबंधी अंतर्मुहूर्त पर्यन्त निर्वृत्ति अपर्याप्ति कहिए । जातैं निर्वृत्ति कहिए शरीर पर्याप्ति की निष्पत्ति, तीहि करि जे अपर्याप्त कहिए संपूर्ण न भए, ते निर्वृत्ति अपर्याप्त कहिए है ।

आगें लब्धि अपर्याप्त का स्वरूप कहै हैं –

उदये दु अपुण्णस्स य, सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि ।
अन्तोमुहुत्तमरणं, लद्धिअपज्जत्तगो सो दु ॥ १२२ ॥

उदये तु अपूर्णस्य च, स्वकस्वकपर्याप्तिर्न निष्ठापयति ।
अन्तर्मुहूर्तमरणं, लब्ध्यपर्याप्तकः स तु ॥ १२२ ॥

टीका – अपर्याप्ति नामा नामकर्म के उदय होते संतैं, अपने-अपने एकेंद्रिय विकलेंद्रिय, सैनी जीव च्यारि, पांच, छह पर्याप्ति, तिनिकौं न **'निष्ठापयति'** कहिए सम्पूर्ण न करैं, उसास का अठारहवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त ही विषैं मरण पावैं, ते जीव लब्धि अपर्याप्त कहिए । जातैं लब्धि कहिए अपने-अपने पर्याप्तिनि की संपूर्णता की योग्यता, तींहि करि **'अपर्याप्त'** कहिए निष्पन्न न भए, ते लब्धि अपर्याप्त कहिए ।

आगें एकेंद्रियादिक संज्ञी पर्यन्त लब्धि अपर्याप्तक जीवनि का निरंतर जन्म वा मरण का कालप्रमाण कौं कहै हैं –

तिण्णिसया छत्तीसा, छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अन्तोमुहुत्तकाले, तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत्, षट्षष्टिसहस्रकानि मरणानि ।
अंतर्मुहूर्तकाले, तावंतश्चेव क्षुद्रभवाः ॥ १२३ ॥

टीका – क्षुद्रभव कहिए लब्धि अपर्याप्तक जीव, तिनिकौं जो बीचि विषैं पर्याप्तिपनौ विना पाया निरंतरपनैं उत्कृष्ट होंइ, तौ अंतर्मुहूर्त काल विषैं छयासठि हजार तीन सौ छत्तीस (६६३३६) मरण होंइ; बहुरि इतने ही भव कहिए जन्म होंइ ।

आगें ते जन्म-मरण एकेंद्रियादि जीवनि के केते-केते संभवैं अर तिनिके काल का प्रमाण कहा ? सो विशेष कहिए हैं –

सीदी सट्ठी तालं, वियले चउवीस होंति पंचक्खे ।
छावट्ठिं च सहस्सा, सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥१२४॥

अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशत्, विकले चतुर्विंशतिर्भवंति पंचाक्षे ।
षष्टिश्च सहस्राणि, शतं च द्वात्रिंशमेकाक्षे ॥ १२४ ॥

टीका – पूर्वैं कहे थे लब्धि अपर्याप्तकनि के निरंतर क्षुद्रभव, तिनिविषैं एकेंद्रियनि के छयासठि हजार एक सौ बत्तीस निरंतर क्षुद्रभव हो हैं; सो कहिए हैं – कोऊ एकेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक जीव, सो तिस क्षुद्रभव का प्रथम समय तैं लगाइ सांस के अठारहवें भाग अपनी आयु प्रमाण जीय करि मरै, बहुरि एकेंद्रिय भया तहां तितनी ही आयु कौं भोगि, मरि करि बहुरि एकेंद्रिय होइ । असैं निरंतर लब्धि अपर्याप्त करि क्षुद्रभव एकेंद्रिय के उत्कृष्ट होंइ तौ छयासठि हजार एक सौ बत्तीस होंइ, अधिक न होंइ । असैं ही लब्धि अपर्याप्तक बेइंद्रिय कै असी (८०) होइ । तेइंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक के साठि (६०) होंइ । चौइंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक कैं चालीस (४०) होंइ । पंचेंद्रिय लब्धि अपर्याप्त के चौबीस होई, तीहिविषैं भी मनुष्य के आठ (८) असैनी तिर्यंच के आठ, (८) सैनी तिर्यंच के आठ (८) असैं पंचेंद्रिय के चौबीस (२४) होंइ । असैं लब्धि अपर्याप्तकनि का निरंतर क्षुद्रभवनि का परिमाण कह्या ।

अब एकेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक के निरन्तर क्षुद्रभव कहे, तिनकी संख्या स्वामीनि की अपेक्षा कहे हैं –

पुढविदगागणिमारुद, साहारणथूलसुहमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य, एक्केक्के बार खं छक्कं ॥ १२५ ॥

पृथ्वीदकाग्निमारुतसाधारणस्थूलसूक्ष्मप्रत्येकाः ।
एतेषु अपूर्णेषु च एकैकस्मिन् द्वादश खं षट्कम् ।। १२५ ।।

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पति इनि – पांचों के सूक्ष्म-बादर करि दश भेद भये अर एक प्रत्येक वनस्पती – इनि ग्यारह लब्धि अपर्याप्तकनि विषैं एक-एक भेद विषैं बारह, बिंदी, छह इनि अंकनिकरि छह हजार बारह (६०१२) निरंतर क्षुद्रभव जानने । पूर्वै निरंतर क्षुद्रभव एकेंद्रिय के छ्यासठि हजार एक सौ बत्तीस कहे । तिनिकौं ग्यारह का भाग दीए एक-एक के छह हजार बारह क्षुद्र भवनि का प्रमाण आवै है। ऐसें लब्धि अपर्याप्त के निरंतर क्षुद्रभव कहे, तहां तिनकी संख्या वा काल का निर्णय करने कौं च्यारि प्रकार अपवर्तन त्रैराशिक करि दिखावै हैं । सो त्रैराशिक का स्वरूप ग्रंथ का पीठबंध विषैं कह्या था, सो जानना । सो यहां दिखाइये है – जो एक क्षुद्रभव का काल सांस का अठारहवां भाग होइ, तौ छ्या-सठि हजार तीन सौ छत्तीस निरंतर क्षुद्रभवनि का कितना काल होइ ? तहां प्रमाण राशि १, फलराशि एक का अठारहवां भाग $\frac{१}{१८}$ अर इच्छा राशि छ्यासठि हजार तीन सै छत्तीस (६६३३६), तहां फल कौं इच्छा करि गुणैं प्रमाण का भाग दिए लब्ध राशि विषैं छत्तीस सै पिच्यासी अर एक का त्रिभाग ३६८५$\frac{१}{३}$ इतना उस्वास भए; ऐसैं सब क्षुद्रभवनि का काल का परिमाण भया । यहां इतने प्रमाण अंतर्मुहूर्त्त जानना । जातैं ऐसा वचन है, उक्तम् च–

आढ्यानलसानुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तत्रिप्रमितैः ।
आहुर्मुहूर्तमंतर्मुहूर्तमष्टाष्टवर्जितैस्त्रिभागयुतैः ।।

याका अर्थ – सुखी, धनवान, आलस रहित, निरोगी मनुष्य का सैंतीस सै तेहत्तरि (३७७३) उस्वासनि का एक मुहूर्त; तहां अठ्यासी उस्वास अर एक उस्वास का तीसरा भाग (हीन) घटाए सर्व क्षुद्रभवनि का काल अंतर्मुहूर्त होइ । बहुरि उक्तम् च–

आयुरंतर्मुहूर्तः स्यादेषोस्याष्टादशांशकः ।
उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ।।

याका अर्थ – लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य तिर्यंचनि का आयु एक उस्वास का अठारहवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त मात्र है । सो ऐसें कह्या सांस का अठारहवां भाग

काल का एक क्षुद्रभव होइ, तौ छत्तीस सौ पिच्यासी अर एक का त्रिभाग प्रमाण उसासनि का कितना क्षुद्रभव होइ? इहां प्रमाण राशि १/१८, फलराशि १, इच्छाराशि ३६८५ १/३ यथोक्त करतें लब्ध राशि छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस (६६३३६) क्षुद्रभवनि का परिमाण आया। बहुरि जो छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्रभवनि का काल छत्तीस सौ पिच्यासी अर एक का त्रिभाग इतना उस्वास होइ, तौ एक क्षुद्रभवनि का कितना कालहोइ? इहां प्रमाण राशि ६६३३६, फलराशि ३६८५ १/३, इच्छा राशि १, यथोक्त करतां लब्ध राशि एक सांस का अठारहवां भाग १/१८ एक क्षुद्रभव का काल भया। बहुरि छत्तीस सौ पिच्यासी अर एक का त्रिभाग ३६८५ १/३ इतना सांस का छ्यासठि हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्रभव होंइ, तौ सांस का अठारहवां भाग का कितना क्षुद्रभव होइ? इहां प्रमाण राशि ३६८५ १/३, फल राशि ६६३३६, इच्छा राशि एक का अठारहवां भाग १/१८, यथोक्त करतां लब्ध राशि १ क्षुद्रभव हुआ। इहां सर्व फल राशि कौं इच्छा राशि करि गुणना, प्रमाण राशि का भाग देना, तब लब्ध राशि प्रमाण हो है। ऐसें एक क्षुद्रभव का काल समस्त क्षुद्रभव, समस्त क्षुद्रभव का काल इनिकौं क्रम तैं प्रमाण राशि करने तैं च्यारि प्रकार त्रैराशिक किया है। और भी जायगा जहां त्रैराशिक का वर्णन होइ, तहां ऐसैं ही यथासंभव जानना।

आगैं समुद्घातकेवली के अपर्याप्तपनै का संभव कहै हैं –

पज्जत्तसरीरस्स य, पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स।
जोगिस्स अपुण्णत्तं, अपुण्णजोगोत्ति णिद्दिट्ठं ॥१२६॥

पर्याप्तशरीरस्य च, पर्याप्त्युदयस्य काययोगस्य।
योगिनोऽपूर्णत्वमपूर्णयोगः इति निर्दिष्टम् ॥१२६॥

टीका – संपूर्ण परम औदारिक शरीर जाकै पाइए, बहुरि पर्याप्ति नामा नामकर्म का उदय करि संयुक्त, बहुरि काययोग का धारी – ऐसा जो सयोगकेवली भट्टारक, ताकै समुद्घात करतैं कपाट का करिवा विषैं अर संहार विषैं अपूर्ण काययोग कह्या है। जातैं तहां संज्ञी पर्याप्तवत् पर्याप्तिनि का आरंभ करि क्रम तैं निष्ठा-

हेट्ठिमछप्पुढवीणं, जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं ।
पुण्णिदरे णहि सम्मो, ण सासणो णारयापुण्णे ॥ १२८ ॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां, ज्योतिष्कवानभवनसर्वस्त्रीणाम् ।
पूर्णेतरस्मिन् नहि सम्यक्त्वं न सासनो नारकापूर्णे ॥ १२८ ॥

टीका – नरक गति विषै रत्नप्रभा विना छह पृथ्वी संबंधी नारकीनि कै अर ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी देवनि के अर सर्व ही स्त्री – देवांगना, मनुष्यणी, तिर्यंचनी, तिनिकै निर्वृत्ति अपर्याप्त दशा विषै सम्यक्त्व न पाइए । जातै तींहि दशा विषै सम्यक्त्व ग्रहण कौं योग्य काल नाहीं । अर सम्यक्त्व सहित मरै तिर्यंच मनुष्य, सो तहां उपजै नाहीं । बहुरि सम्यक्त्व तैं भ्रष्ट होइ जो जीव मिथ्यादृष्टि वा सासादन होइ, तौ तिनिका यथासंभव तहां नरकादि विषै उपजने का विरोध है नाहीं । बहुरि सर्व ही सातौं पृथ्वी के नारकी, तिनिकै निर्वृत्ति अपर्याप्त दशा विषै सासादन गुणस्थान न पाइए, ऐसा नियम जानना । जातैं नरक विषै उपज्या जीव कै तिस काल विषै सासादनपने का अभाव है ।

इति श्री आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसार इस **सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका** नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै **पर्याप्ति प्ररूपण** नामा **तीसरा अधिकार** पूर्ण भया ॥ ३ ॥

चौथा अधिकार : प्राण प्ररूपणा

अभिनंदन वंदौं सदा, त्रेसठि प्रकृति खिपाय ।
जगतनमतपद पाय, जिनधर्म कह्यो सुखदाय ॥

अथ प्राण प्ररूपणा कौं निरूपै हैं —

बाहिरपाणेहिं जहा, तहेव अब्भंतरेहिं पाणेहिं ।
पाणंति जेहिं जीवा, पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा ॥ १२६ ॥

बाह्यप्राणैर्यथा, तथैवाभ्यंतरैः प्राणैः ।
प्राणंति यैर्जीवाः, प्राणास्ते भवन्ति निर्दिष्टाः ॥ १२९ ॥

टीका –जिनि अभ्यंतर भाव प्राणनि करि जीव हैं, ते प्राणंति कहिए जीवै हैं; जीवन के व्यवहार योग्य हो हैं, कौनवत् ? जैसें बाह्य द्रव्य प्राणनि करि जीव जीवै है, जातैं यथा शब्द दृष्टांतवाचक है; तातैं जे आत्मा के भाव हैं, तेई प्राण हैं अैसा कह्या है । अैसे कहने ही करि प्राण शब्द का अर्थ का जानने का समर्थपणा हो है, तातैं तिस प्राण का लक्षण जुदा न कह्या है । तहां पुद्गल द्रव्य करि निपजे जे द्रव्य इंद्रियादिक, तिनके प्रवर्तनरूप तो द्रव्य प्राण हैं । बहुरि तिनिका कारणभूत ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय के क्षयोपशमादिक तैं प्रकट भए चैतन्य उपयोग के प्रवर्तनरूप भाव प्राण हैं ।

इहां प्रश्न – जो पर्याप्ति अर प्राण विषैं भेद कहा ?

ताका समाधान – पंच इंद्रियनि का आवरण का क्षयोपशम तैं निपजे अैसे पांच इंद्रिय प्राण हैं । बहुरि तिस क्षयोपशम तैं भया जो पदार्थनि के ग्रहण का समर्थपना, ताकरि जन्म का प्रथम समय तैं लगाइ अंतर्मुहूर्त ऊपरि निपजै अैसी इंद्रिय पर्याप्ति है । इहां कारण-कार्य का विशेष है ।

बहुरि मन सम्बन्धी ज्ञानावरण का क्षयोपशम का निकट तैं प्रगट भई अैसी मनोवर्गणा करि निपज्या द्रव्य मन करि निपजी जो जीव की शक्ति, सो अनुभया पदार्थ को ग्रहण करि उपजी, सो अंतर्मुहूर्त मनःपर्याप्ति काल के अन्ति संपूर्ण भई,

असी मन:पर्याप्ति है । बहुरि अनुभया पदार्थ का ग्रहण करना अर अनुभया पदार्थ का ग्रहण करने का योग्यपना का होना, सो मन:प्राण है ।

बहुरि नोकर्मरूप शरीर का संचयरूप शक्ति की जो संपूर्णता, सो जीव के योग्य काल विषें प्राप्त भई जो भाषा वर्गणा, तिनिकौं विशेष परिणमन की करणहारी, सो भाषा पर्याप्ति है ।

बहुरि स्वर नामा नामकर्म का उदय है सहकारी जाका, असी भाषा पर्याप्ति पूर्ण भए पीछें वचन का विशेषरूप उपयोगादिक का परिणमावना, तीहि स्वरूप वचन प्राण है ।

बहुरि कायवर्गणा का अवलंबन करि निपजी जो आत्मा के प्रदेशनि का समुच्चयरूप होने की शक्ति, सो कायबल प्राण है ।

बहुरि खल भाग, रस भागरूप परिणए नोकर्मरूप पुद्गलनि कौं हाड आदि स्थिररूप अर रुधिर आदि अस्थिररूप अवयव करि परिणमावने की शक्ति का संपूर्ण होना, सो जीव के शरीर पर्याप्ति है ।

बहुरि उस्वास-निस्वास के निकसने की शक्ति का निपजना, सो आनपान पर्याप्ति है । बहुरि सासोस्वास का परिणमन, सो सासोस्वास प्राण है । असें कारण-कार्यादि का विशेष करि पर्याप्ति अर प्राणनि विषें भेद जानना ।

आगें प्राण के भेदनि कौं कहै हैं –

पंचवि इंदियपाणा, मणवचकायेसु तिण्णि बलपाणा ।
आणापाणप्पाणा, आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥१३०॥

पंचापि इंद्रियप्राणाः, मनोवचःकायेषु त्रयो बलप्राणाः ।
आनपानप्राणा, आयुष्कप्राणेन भवंति दश प्राणाः ॥१३०॥

टीका – पांच इंद्रिय प्राण हैं – १. स्पर्शन, २. रसन, ३. घ्राण, ४. चक्षु, ५. श्रोत्र । बहुरि तीन बलप्राण हैं – १. मनोबल, २. वचनबल ३. कायबल । बहुरि एक आनपान कहिए सासोस्वास प्राण है । बहुरि एक आयु प्राण है । ऐसें प्राण दश हैं, अधिक नाहीं है ।

आगें तिनि द्रव्य-भाव प्राणनि का उपजने की सामग्री कौं कहै हैं –

वीरियजुदमदिखउवसमुत्था णोइंदियेंदियेसु बला ।
देहुदये कायाणा, वचीबला आउ आउदये ॥ १३१ ॥

वीर्ययुतमतिक्षयोपशमोत्था नोइन्द्रियेंद्रियेषु बलाः ।
देहोदए कायानौ, वचोबल आयुः आयुरुदये ॥१३१॥

टीका – स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र करि निपजे पांच इंद्रिय प्राण अर नो इंद्रिय करि निपज्या एक मनोबल प्राण, ए छहों तो मतिज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय, तिनके क्षयोपशम तैं हो हैं । बहुरि शरीर नामा नामकर्म के उदय होतें कायबल अर सासोस्वास प्राण हो हैं । बहुरि शरीर नामा नामकर्म का उदय होतें अर स्वर नामा कर्म का उदय होतें वचनबल प्राण हो है । बहुरि आयुकर्म का उदय होतें आयु प्राण हो है । अैसें प्राणनि के उपजने की सामग्री कही ।

आगें ए प्राण कौन-कौन के पाइए सो भेद कहै हैं –

इंदियकायाऊणि य, पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा ।
बीइंदियादिपुण्णे, वचीमणो सण्णिपुण्णेव ॥१३२॥

इन्द्रियकायायूंषि च, पूर्णापूर्णेषु पूर्णके आनः ।
द्वीन्द्रियादिपूर्णे, वचो मनः संज्ञिपूर्णे एव ॥ १३२ ॥

टीका – इंद्रिय प्राण, कायबल प्राण, आयु प्राण – ए तो तीन प्राण पर्याप्ति वा अपर्याप्ति दोऊ दशा विषैं समान पाइए है । बहुरि सासोस्वास प्राण पर्याप्ति दशा विषैं ही पाइए, जातैं ताका कारण उच्छ्वास निश्वास नामा नाम कर्म का उदय पर्याप्ति काल विषैं संभवैं है । बहुरि वचनबल प्राण बेइंद्रियादिक पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवनि कै पर्याप्ति दशा ही विषैं पाइए है, जातैं ताका कारणभूत स्वर नामा नामकर्म का उदय अन्यत्र न संभवै है । बहुरि मनबल प्राण सैनी पंचेंद्रिय के पर्याप्त दशा विषैं ही पाइए है, जातैं ताका कारण वीर्यान्तराय अर मन आवरण का क्षयोपशम, सो अन्यत्र न संभवै है ।

आगें एकेंद्रियादिक जीवनि के केते-केते प्राण पाइए, सो कहै हैं –

दस सण्णीणं पाणा, सेसेगूणंतिमस्स बेऊणा ।
पज्जत्तेसिदरेसु य, सत्त दुगे सेसगेगूणा ।। १३३ ।।

दश संज्ञिनां प्राणाः शेषैकोनमंतिमस्य द्व्यूनाः ।
पर्याप्तेष्वितरेषु च, सप्त द्विके शेषकैकोनाः ।।१३३।।

टीका – पहिलैं कह्या जो प्राणनि के स्वामीनि का नियम, ताही करि असें भेद पाइए है, सो कहिए है । सैनी पंचेंद्री पर्याप्त के तौ दश प्राण सर्व ही पाइए । पीछैं अवशेष असंज्ञी आदि द्वींद्रिय पर्यन्त पर्याप्त जीवनि के एक-एक घाटि प्राण पाइए । तहां असैनी पंचेंद्रिय के मन बिना नव प्राण पाइए । चौइंद्रिय के मन अर कर्ण इंद्रिय बिना आठ प्राण पाइए , तेइंद्रिय के मन, कर्ण, नेत्र इंद्रिय बिना सात प्राण पाइए । द्वीन्द्रिय के मन, कर्ण, नेत्र, नासिका बिना छह प्राण पाइए । बहुरि अंतिम एकेंद्रिय विषैं द्वीन्द्रिय के प्राणनि तैं दोय घटावना, सो मन, कर्ण, नेत्र, नासिका अर रसना इंद्रिय अर वचनबल, इनि बिना एकेंद्रिय के च्यारि ही प्राण पाइए हैं । असें ए प्राण पर्याप्त दशा की अपेक्षा कहे ।

अब इतर जो अपर्याप्त दशा, ताकी अपेक्षा कहिए हैं – सैनी वा असैनी पंचेंद्रिय के तौ सात-सात प्राण हैं । जातैं पर्याप्तकाल विषैं संभवै असे सासोस्वास, वचन बल, मनोबल ए तीन प्राण तहां न होंइ । बहुरि चौइंद्रिय कै श्रोत्र बिना छह पाइए, तेंद्री के नेत्र बिना पांच पाइए, बेंद्री के नासिका बिना च्यारि पाइए, एकेंद्री के रसना बिना तीन पाइए, असें प्राण पाइए हैं ।

इति श्री आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा इस भाषाटीका विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनि विषैं प्राण प्ररूपणा नामा चौथा अधिकार संपूर्ण भया ।। ४ ।।

पाँचवाँ अधिकार : संज्ञा प्ररूपणा

मंगलाचरण

गुण अनंत पाए सकल, रज रहस्य अरि कीर्ति ।
दोषरहित जगस्वामि सो, सुमति नमौं जुत प्रीति ॥

अथ संज्ञा प्ररूपणा कहै हैं —

इह जाहि बाहयावि य, जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
सेवंतावि य उभये, ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥ १३४ ॥

इह याभिर्बाधिता अपि च, जीवाः प्राप्नुवंति दारुणं दुःखं ।
सेवमाना अपि च, उभयस्मिन् ताश्चतस्रः संज्ञाः ॥ १३४ ॥

टीका – आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इनिके निमित्त तैं जो वांछा होइ, ते च्यारि संज्ञा कहिए । सो जिनि संज्ञानि करि बाधित, पीडित हुए जीव संसार विषैं विषयनि कौं सेवते भी इहलोक अर परलोक विषैं तिनि विषयनि की प्राप्ति वा अप्राप्ति होतैं दारुण भयानक महा दुःख कौं पावैं है, ते च्यारि संज्ञा जाननी। वांछा का नाम संज्ञा है । वांछा है, सो सर्व दुःख का कारण है ।

आगैं आहार संज्ञा उपजने के बाह्य, अभ्यंतर कारण कहै हैं –

आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोठाए ।
सादिदरुदीरणाए, हवदि हु आहारसण्णा हु ॥ १३५ ॥

आहारदर्शनेन च, तस्योपयोगेन अवमकोष्ठतया ।
सातेतरोदीरणया, भवति हि आहारसंज्ञा हि ॥ १३५ ॥

टीका – विशिष्ट अन्नादिक च्यारि प्रकार आहार का देखना, बहुरि आहार का यादि करना, कथा सुनना इत्यादिक उपयोग का होना, बहुरि कोठा जो उदर, ताका खाली होना क्षुधा होनी ए तौ बाह्य कारण है । बहुरि असाता वेदनीय कर्म का तीव्र उदय होना वा उदीरणा होनी अंतरंग कारण हैं । इनि कारणनि तैं आहार

संज्ञा हो है । आहार कहिए अन्नादिक, तीहिंविषैं संज्ञा कहिए वांछा, सो आहार संज्ञा जाननी ।

आगैं भय संज्ञा उपजनें के कारण कहै हैं –

अइभीमदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए ।
भयकम्मुदीरणाए, भयसण्णा जायदे चदुहिं ।।१३६।।

अतिभीमदर्शनेन, च, तस्योपयोगेन अवमसत्वेन ।
भयकर्मोदीरणया, भयसंज्ञा जायते चतुर्भिः ।।१३६।।

टीका – अतिभयकारी व्याघ्र आदि वा क्रूर मृगादिक वा भूतादिक का देखना वा उनकी कथादिक का सुनना, उनकौं यादि करना इत्यादिक उपयोग का होना, बहुरि अपनी हीन शक्ति का होना ए तौ बाह्य कारण हैं । बहुरि भय नामा नोकषाय-रूप मोह कर्म, ताका तीव्र उदय होना, यहु अंतरंग कारण है । इनि कारणनि करि भय संज्ञा हो है । भय करि भई जो भागि जाना, छिपि जाना इत्यादिक रूप वांछा, सो भय संज्ञा कहिए ।

आगैं मैथुन संज्ञा उपजने के कारण कहै हैं –

पणिदरसभोयणेण य, तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए, मेहुसण्णा हवदि एवं ।। १३७ ।।

प्रणीतरसभोजनेन च, तस्योपयोगे कुशीलसेवया ।
वेदस्योदीरणया, मैथुनसंज्ञा भवति एवं ।। १३७ ।।

टीका – वृष्य जो कामोत्पादक गरिष्ठ भोजन, ताका खाना अर काम कथा का सुनना अर भोगे हुवे काम विषयादिक का यादि करना इत्यादिकरूप उपयोग होना, बहुरि कुशीलवान कामी पुरुषनि करि सहित संगति करनी, गोष्ठी करनी ए तौ बाह्य कारण हैं । बहुरि स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदनि विषैं किसी ही वेदरूप नोकषाय की उदीरणा, सो अंतरंग करण है । इनि कारणनि तैं मैथुन संज्ञा हो है । मैथुन जो कामसेवन-रूप स्त्री-पुरुष का युगल सम्बन्धी कर्म, तीहिंविषैं वांछा, मैथुनसंज्ञा जाननी ।

आगैं परिग्रह संज्ञा उपजने के कारण कहै हैं –

उवयरणदंसणेण य, तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा ।। १३८ ।।

उपकरणदर्शनेन च, तस्योपयोगेन मूर्छितायै च ।
लोभस्योदीरणया परिग्रहे जायते संज्ञा ।। १३८ ।।

टीका – धन-धान्यादिक बाह्य परिग्रहरूप उपकरण सामग्री का देखना अर तीहि धनादिक की कथा का सुनना, यादि करना इत्यादिक उपयोग होना, मूछित जो लोभी, ताकै परिग्रह उपजावने विषै आसक्तता, ताका इस जीव सहित सम्बन्धी होना इत्यादिक बाह्य कारण हैं । बहुरि लोभ कषाय की उदीरणा, सो अंतरंग कारण है । इनि कारणनि करि परिग्रह संज्ञा हो है । परिग्रह जो धन-धान्यादिक, तिनिके उपजावने आदिरूप वांछा, सो परिग्रह संज्ञा जाननी ।

आगें ए संज्ञा कौनके पाइए, सो भेद कहै हैं –

णट्ठपमाए पढमा, सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा ।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि णहि कज्जे ।।१३९।।

नष्टप्रमादे प्रथमा, संज्ञा नहि तत्र कारणाभावात् ।
शेषाः कर्मास्तित्वेन उपचारेण संति नहि कार्ये ।।१३९।।

टीका – नष्ट भये हैं प्रमाद जिनिके, ऐसे जे अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती जीव, तिनिकैं प्रथम आहार संज्ञा नाहीं है । जातैं आहार संज्ञा का कारणभूत जो असाता वेदनीय की उदीरणा, ताकी व्युच्छित्ति प्रमत्त गुणस्थान ही विषै भई है; तातैं कारण के अभाव तैं कार्य का भी अभाव है । ऐसैं प्रमाद रहित जीवनि कैं पहिली संज्ञा नाहीं है । बहुरि इनि कैं जो अवशेष तीन संज्ञा हैं, सो भी उपचार मात्र हैं; जातैं उन संज्ञानि का कारणभूत जे कर्म, तिनि का उदय पाइए है; तीहि अपेक्षा है । बहुरि ते भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा अप्रमादी जीवनि के कार्यरूप नाहीं हैं ।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषा टीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषैं **संज्ञा प्ररूपणा** नाम **पंचम** अधिकार संपूर्ण भया ।।५।।

छठवां अधिकार : गति प्ररूपणा

पद्मप्रभ जिनकौं भजौं, जीति घाति सब कर्म ।
गुण समूह कुलिपाय जिनि, प्रगट कियो हितधर्म ॥

आगें अरहंतदेव कौं नमस्काररूप मंगलपूर्वक मार्गणा महा अधिकार प्ररूपण की प्रतिज्ञा करै हैं –

धम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबलं जिणं णमंसित्ता ।
मग्गणमहाहियारं, विविहहियारं भणिस्सामो ॥१४०॥

धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलं जिनं नमस्कृत्वा ।
मार्गणामहाधिकारं, विविधाधिकारं भणिष्यामः ॥१४०॥

टीका – हम जो ग्रंथकर्ता, ते नानाप्रकार का गति, इंद्रियादिक अधिकार संयुक्त जो मार्गणा का महा अधिकार ताहि कहैंगे, ऐसी आचार्य प्रतिज्ञा करी । कहा करिकैं ? जिन जो अर्हन्त भट्टारक, तिसहि नमस्कार करिकैं । कैसा है जिन भगवान ? रत्नत्रय स्वरूप धर्म, सोही भया धनुष, बहुरि ताका उपकारी जे ज्ञानादिक धर्म, ते ही भए गुण कहिये चिल्ला, बहुरि ताके आश्रयभूत जे चौदह मार्गणा, तेही भए मार्गण कहिए बाण, तिनिकरि हत्या है मोहनीय कर्मरूप अरि कहिये वैरी का बल जानैं, ऐसा जिन-देव है ।

आगें मार्गणा शब्द की निरुक्ति ने लिया लक्षण कहै हैं –

जाहि व जासु व जीवा, मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चोद्दस जाणे, सुयणाणे मग्गणा होंति ॥१४१॥[1]

याभिर्वा यासु वा, जीवा मृग्यंते यथा तथा दृष्टाः ।
ताश्चतुर्दश जानीहि, श्रुतज्ञाने मार्गणा भवंति ॥१४१॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १३३, गाथा ८४

टीका – जैसें श्रुतज्ञान विषें उपदेश्या तैसें ही जीव नामा पदार्थ, जिनकरि वा जिनिविषें जानिए, ते चौदह मार्गणा हैं। पूर्वं तौ सामान्यता करि गुणस्थान जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा इनिकरि त्रिलोक के मध्यवर्ती समस्त जीव लक्षण करि वा भेद करि विचारे।

बहुरि अब विशेषरूप गति-इंद्रियादि मार्गणानि करि तिन ही कौं विचारें हैं, अैसें हे शिष्य, तू जानि। गति आदि जे मार्गणा जब एक जीव कैं नारकादि पर्यायनि की विवक्षा लीजिए, तब तौ जिनि मार्गणानि करि जीव जानिए अैसें तृतीया विभक्ति करि कहिए। बहुरि जब एक द्रव्य प्रति पर्यायनि के अधिकरण की विवक्षा 'इनि विषें जीव पाइए है' अैसी लीजिए, तब जिनि मार्गणानि विषें जीव जानिए अैसें सप्तमी विभक्ति करि कहिए। जातें विवक्षा के वश तें कर्ता, कर्म इत्यादि कारकनि की प्रवृत्ति है ऐसा न्याय का सद्भाव है।

आगें तिनि चौदह मार्गणानि के नाम कहै हैं –

गइइंदियेसु काये, जोगे वेदे कसायणाणेय।
संजमदंसणलेस्सा-भविया-सम्मत्तसण्णि-आहारे ।।१४२।।

गतींद्रियेषु काये, योगे वेदे कषायज्ञाने च।
संयमदर्शनलेश्याभव्यतासम्यक्त्वसंज्ञ्याहारे ।। १४२ ।।

टीका – १. गति, २. इंद्रिय, ३. काय, ४. योग, ५. वेद, ६. कषाय, ७. ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १०. लेश्या, ११. भव्य, १२. सम्यक्त्व, १३. संज्ञी, १४. आहार अैसें ए गति आदि पद हैं। ते तृतीया विभक्ति वा सप्तमी विभक्ति का अंत लीए हैं। तातैं गति करि वा गति विषें इत्यादिक अैसें व्याख्यान करने। सो इनिकरि वा इनिविषें जीव मार्ग्यन्ते कहिए जानिये, ते चौदह मार्गणा जैसें अनुक्रम करि नाम हैं, तैसें कहैंगे।

आगें तिनिविषें आठ सांतर मार्गणा हैं, तिनिका स्वरूप, संख्या, निधान निरूपण के अर्थि गाथा तीन कहै हैं –

उवसमसुहमाहारे, वेगुव्वियमिस्स णरअपज्जत्ते।
सासणसम्मे मिस्से, सांतरगा मग्गणा अट्ठ ।। १४३ ।।

सत्तदिणाछम्मासा, वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं, वरमवरं एगसमयो दु ॥१४४॥

उपशमसूक्ष्माहारे, वैगूर्विकमिश्रनरापर्याप्ते ।
सासनसम्यक्त्वे मिश्रे, सांतरका मार्गणा अष्ट ॥१४३॥

सप्तदिनानि षण्मासा, वर्षपृथक्त्वं च द्वादश मुहूर्ताः ।
पल्यासंख्यं त्रयाणां, वरमवरमेकसमयस्तु ॥ १४४ ॥

टीका – नाना जीवनि की अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थान नैं छोडि, अन्य कोई गुणस्थान वा मार्गणास्थान में प्राप्त होइ, बहुरि उस ही विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थान कौं यावत् काल प्राप्त न होइ, तिसकाल का नाम अंतर है ।

सो उपशम सम्यग्दृष्टी जीवनि का लोक विषैं नाना जीव अपेक्षा अंतर सात दिन है । तीन लोक विषैं कोऊ जीव उपशम सम्यक्त्वी न होइ तो उत्कृष्टपनैं सात ताईं न होइ, पीछैं कोऊ होय ही होय । ऐसैं ही सब का अंतर जानना ।

बहुरि सूक्ष्म सांपराय संयमी, तिनिका उत्कृष्ट अंतर छह महीना है । पीछै कोऊ होय ही होय ।

बहुरि आहारक अर आहारकमिश्र काययोगवाले, तिनिका उत्कृष्ट अंतर वर्ष पृथक्त्व का है । तीन तैं ऊपर अर नव तैं नीचैं पृथक्त्व संज्ञा है, तातैं यहां तीन वर्ष के ऊपर अर नव वर्ष के नीचैं अंतर जानना । पीछैं कोई होय ही होय ।

बहुरि वैक्रियिकमिश्र काययोगवाले का उत्कृष्ट अंतर बारह मुहूर्त का है, पीछैं कोऊ होय ही होय ।

बहुरि लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य अर सासादन गुणस्थानवर्ती जीव अर मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव, इनि तीनों का अंतर एक-एक का पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र जानना, पीछैं कोई होय ही होय । ऐसैं ए सांतर मार्गणा आठ हैं । इनि सबनि का जघन्य अंतर एक समय जानना ।

पढमुवसमसहिदाए, विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा ।
विरदीए पण्णरसा, विरहिदकालो दु बोधव्वो ॥१४५॥

प्रथमोपशमसहितायाः, विरताविरतेश्चतुर्दश दिवसाः ।
विरतेः पंचदश, विरहितकालस्तु बोद्धव्यः ।। १४५ ।।

टीका – विरह काल कहिए उत्कृष्ट अंतर, सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व करि संयुक्त जे विरताविरत पंचम गुणस्थानवर्ती जीव, तिनिका चौदह दिन का जानना । बहुरि तिस प्रथमोपशम सम्यक्त्व संयुक्त षष्टमादि गुणस्थानवर्ती, तिनिका पंद्रह दिन जानना । वा दूसरा सिद्धान्त की अपेक्षा करि चौबीस दिन जानना । असें नाना जीव अपेक्षा अंतर कह्या । बहुरि इनि मार्गणानि का एक जीव अपेक्षा अन्तर अन्य ग्रन्थ के अनुसारि जानना ।

यहां प्रसंग पाइ कार्यकारी जानि, तत्त्वार्थसूत्र की टीका के अनुसारि काल अन्तर का कथन करिए है ।

तहां प्रथम काल का वर्णन दोय प्रकार – नाना जीव अपेक्षा अर एक जीव अपेक्षा ।

तहां विवक्षित गुणस्थाननि का वा मार्गणास्थाननि विषै संभवते गुणस्थाननि का सर्व जीवनि विषै कोई जीव कै जेता काल सद्भाव पाइए, सो नाना जीव अपेक्षा काल जानाना । अर तिनही का विवक्षित एक जीव कैं जेते काल सद्भाव पाइए, सो एक जीव अपेक्षा काल जानना ।

तिनिविषै प्रथम नाना जीव अपेक्षा काल कहिए है, सो सामान्य-विशेष करि दोय प्रकार । तहां गुणस्थाननि विषै कहिए सो सामान्य अर मार्गणा विषै कहिए सो विशेष जानना ।

तहां सामान्य करि मिथ्यादृष्टि, असंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, सयोग केवलनि का सर्व काल है । इनिका कबहू अभाव होता नाही । बहुरि सासादन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग । बहुरि मिश्र का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग । बहुरि च्यारों उपशम श्रेणी वालों का जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त । इहां जघन्य एक समय मरण अपेक्षा कह्या है । बहुरि च्यारों क्षपकश्रेणीवाले अर अयोग केवलीनि का जघन्य वा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र काल है ।

अब विशेष करि कहिए हैं। तहां गति मार्गणा विषैं सातों पृथ्वीनि के नारकीनि विषैं मिथ्यादृष्टयादि च्यारि गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। तिर्यञ्च गति विषैं मिथ्यादृष्टयादि पंच गुणस्थाननि विषैं सामान्यवत् काल है। मनुष्यगति विषैं सासादन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त अर मिश्र का जघन्य वा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अर अन्य सर्व गुणस्थाननि विषैं सामान्यवत् काल है। देवगति विषैं मिथ्यादृष्टयादि च्यारि गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा अर काय मार्गणा विषैं इंद्रिय-काय अपेक्षा सर्वकाल है। गुणस्थान अपेक्षा एकेंद्री, विकलेंद्री, अर पंच स्थावरनि विषैं मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल है। अर पंचेंद्रिय वा त्रस विषैं सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि योग मार्गणा विषैं तीनों योगनि मिथ्यादृष्टयादि सयोगी पर्यन्तनि का अर अयोगी का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – मिश्र का जघन्य काल एक समय ही है। अर क्षपकनि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र काल है।

बहुरि वेद मार्गणा विषैं तीन वेदनि विषैं अर वेदरहित विषैं मिथ्यादृष्टयादि अनिवृत्तिकरण पर्यन्तनि का वा (ऊपरि) सामान्यवत् काल है।

बहुरि कषाय मार्गणा विषैं च्यारि कषायनि विषैं मिथ्यादृष्टयादि अप्रमत्त पर्यंतनि का मनोयोगीवत् अर दोय उपशमक वा क्षपक अर केवल लोभयुत सूक्ष्मसांपराय अर अकषाय, इनिका सामान्यवत् काल है।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषैं तीन कुज्ञान, पांच सुज्ञाननि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि संयम मार्गणा विषैं सात भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषैं च्यारि भेदनि विषैं अपने-अपने स्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि लेश्या रहितनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि भव्य मार्गणा विषैं दोऊ भेदनि विषैं अपनें-अपनें गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषैं छह भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – औपशमिक सम्यक्त्व विषैं असंयत, देशसंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग अर प्रमत्त, अप्रमत्त का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषैं दोऊ भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि आहार मार्गणा विषैं आहारक विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगी पर्यन्तनि का सामान्यवत् काल है। अनाहारक विषैं मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल, सासादन असंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग, सयोगी का जघन्य तीन समय, उत्कृष्ट संख्यात समय, अयोगी का सामान्यवत् काल है।

अब एक जीव अपेक्षा काल कहिए हैं, तहां प्रथम सामान्य करि मिथ्यादृष्टि का काल विषैं तीन भंग – अनादि अनंत, अनादि सांत, सादि सांत। तहां सादि सांत काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र है। किंचित हीन का नाम देशोन जानना। बहुरि सासादन का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवली; मिश्र का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त; बहुरि असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर, संयतासंयत का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व; प्रमत्त-अप्रमत्त का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त; च्यारौं उपशम श्रेणीवालों का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त; च्यारौं क्षपक श्रेणीवाले वा अयोगिनि का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त; सयोगी का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व काल है।

अब विशेष करि कहिए है – गति मार्गणा विषैं सातौं पृथ्वीनि के नारकीनि विषैं मिथ्यादृष्टि का काल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट क्रम तें एक, तीन, सात, दश, सतरह, बाईस, तेतीस सागर। सासादन मिश्र का सामान्यवत्, असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन; मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट कालप्रमाण काल है।

तिर्यंचगति विषैं – मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र अनंत काल है। सासादन, मिश्र, संयतासंयत का सामान्यवत्, तहां असंयत का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्य काल है।

मनुष्यगति विषें – मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोटि पूर्व अधिक तीन पल्य। सासादन का, मिश्र का सामान्यवत्। असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य, अवशेषनि का सामान्यवत् काल है।

देवगति विषें – मिथ्यादृष्टि का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एकतीस सागर; सासादन, मिश्र का सामान्यवत्; असंयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तेतीस सागर काल हैं।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा विषें एकेंद्रिय का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि विकलत्रय का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष। पंचेंद्रिय विषें मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक हजार सागर। अवशेषनि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि काय मार्गणा विषें पृथ्वी, अप, तेज, वायु का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात लोक प्रमाण काल है। वनस्पतिकाय का एकेंद्रियवत् काल है।

त्रसकाय विषें मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर; अवशेषनि का सामान्यवत् काल है। इहां छह के ऊपरि नव के नीचे, ताका नाम पृथक्त्व जानना। अर उस्वास का अठारहवां भाग मात्र क्षुद्रभव जानना।

बहुरि योग मार्गणा विषें वचन, मन योग विषें मिथ्यादृष्टि, असंयत, संयतासंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त च्यारों उपशमक, क्षपक, सयोगिनि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त, सासादन-मिश्र का सामान्यवत् काल है। काय योग विषें मिथ्यादृष्टि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन, अवशेषनि का मनोयोगवत् काल है। अयोगि विषें सामान्यवत् काल है।

वेद मार्गणा विषें तीनों वेदनि विषें मिथ्यादृष्टि आदि अनिवृत्तिकरण पर्यंत अर अवेदीनि विषें सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – जो स्त्री वेद विषें मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल पृथक्त्व सौ पल्य प्रमाण अर असंयत का उत्कृष्ट काल देशोन पचावन पल्य है। बहुरि पुरुष वेद विषें मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल पृथक्त्व सौ सागर प्रमाण है। अर नपुंसक वेद विषें मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र अर असंयत का उत्कृष्ट काल देशोन तेतीस सागर काल है।

बहुरि कषाय मार्गणा विषैं च्यारों कषायनि विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि अप्रमत्त पर्यंत का मनोयोगवत् अर दोऊ उपशमक वा क्षपक वा सूक्ष्म लोभ अर अकषाय इनिका सामान्यवत् काल है।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषैं तीन कुज्ञाननि विषैं वा पांच सुज्ञाननि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – विभंग विषैं मिथ्यादृष्टि का काल देशोन तेतीस सागर है।

बहुरि संयम मार्गणा विषैं सात भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषैं च्यारि भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – चक्षुदर्शन विषैं मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल दोय हजार सागर है।

बहुरि लेश्या मार्गणा विषैं छह भेदनि विषैं वा अलेश्यानि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – कृष्ण, नील, कापोत विषैं मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल क्रम तैं साधिक तेतीस, सतरह, सात सागर अर असंयत का उत्कृष्ट काल क्रम तैं देशोन तेतीस, सतरह, सात सागर है। अर पीत-पद्म विषैं मिथ्यादृष्टि वा असंयत का उत्कृष्ट काल क्रम तैं दोय, अठारह सागर है। संयतासंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। बहुरि शुक्ल लेश्या विषैं मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर, संयतासंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है।

बहुरि भव्य मार्गणा विषैं भव्य विषैं मिथ्यादृष्टि का अनादि सांत वा सादि सांत काल है। तहां सादि सांत जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र है। अवशेषनि का सामान्यवत् काल है। अभव्य विषैं अनादि अनंत काल है।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषैं छहौं भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् काल है। विशेष इतना – उपशम सम्यक्त्व विषैं असंयत, संयतासंयत का जघन्य वा उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त मात्र है।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषैं संज्ञी विषैं मिथ्यादृष्टि आदि अनिवृत्तिकरण पर्यंत का पुरुष वेदवत्, अवशेषनि का सामान्यवत् काल है। असंज्ञी विषैं मिथ्यादृष्टि

जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल है। दोऊ व्यपदेशरहितनि विषैं सामान्यवत् काल है।

बहुरि आहार मार्गणा विषैं आहारक विषैं मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात कल्पकाल प्रमाण जो अंगुल का असंख्यातवां भाग, तीहि प्रमाण काल है। अवशेषनि का सामान्यवत् काल है। अनाहारक विषैं मिथ्यादृष्टि जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय। सासादन, असंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट दोय समय; सयोगी का जघन्य वा उत्कृष्ट तीन समय, अयोगी का सामान्यवत् काल है।

इहां मार्गणास्थाननि विषैं काल कह्या, तहां असा जानना – विवक्षित मार्गणा के भेद का काल विषैं विवक्षित, गुणस्थान का सद्भाव जेते काल पाइए, ताका वर्णन है। मार्गणा के भेद का वा तिस विषैं गुणस्थान का पलटना भए, तिस काल का अभाव हो है।

अब अंतर निरूपण करिए हैं – सो दोय प्रकार, नाना जीव अपेक्षा अर एक जीव अपेक्षा। तहां विवक्षित गुणस्थाननि विषैं वा गुणस्थान अपेक्षा लीए मार्गणास्थान विषैं कोई ही जीव जेते काल न पाइए, सो नाना जीव अपेक्षा अंतर जानना। बहुरि विवक्षित स्थान विषैं जो जीव वर्तै था, सोई जीव अन्य स्थान कौं प्राप्त होई करि बहुरि तिस ही स्थान को प्राप्त होई, तहां बीचि विषैं जेता काल का प्रमाण, सो एक जीव अपेक्षा अंतर जानना।

तहां प्रथम नाना जीव अपेक्षा कहिए है, सो सामान्य विशेष करि दोय प्रकार। तहां सामान्य करि मिथ्यादृष्टि, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, सयोगीनि का अंतर नाही है। सासादन का वा मिश्र का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र अंतर है। च्यारि उपशमकनि का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष अंतर है। च्यारि क्षपकनि का वा अयोगी का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास अंतर है।

बहुरि विशेष करि गति मार्गणा विषैं नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देवनि विषैं क्रम तैं मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि, पांच, चौदह, च्यारि गुणस्थाननि विषैं सामान्यवत् अंतर है।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा विषैं एकेंद्रिय विकलेन्द्रिय का अंतर नाहीं है । पंचेंद्रिय विषैं सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि काय मार्गणा विषैं पंच स्थावरनि का अंतर नाही है । त्रस विषैं सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि योग मार्गणा विषैं तीनों योगनि विषैं आदि के तेरह गुणस्थाननि का वा अयोगी का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि वेद मार्गणा विषैं तीनों वेदनि विषैं आदि के नव गुणस्थाननि वा अवेदीनि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना दोऊ क्षपकनि का उत्कृष्ट अंतर स्त्री-नपुंसक वेद विषैं पृथक्त्व वर्ष मात्र अर पुरुष वेद विषैं साधिक वर्ष प्रमाण है ।

बहुरि कषाय मार्गणा विषैं च्यारि कषायनि विषैं वा अकषायनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – दोय क्षपकनि का उत्कृष्ट अंतर साधिक वर्षमात्र है ।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषैं तीन कुज्ञान, पांच सुज्ञाननि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – अवधि, मनःपर्ययज्ञान विषैं क्षपकनि का उत्कृष्ट अंतर साधिक वर्षमात्र है ।

बहुरि संयम मार्गणा विषैं सात भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषैं च्यारि भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – अवधि दर्शन विषैं क्षपकनि का अंतर साधिक वर्षमात्र है ।

बहुरि लेश्या मार्गणा विषैं छहों भेदनि विषैं वा अलेश्या विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि भव्य मार्गणा विषैं दोय भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषैं छह भेदनि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत अंतर है । विशेष इतना – उपशम सम्यक्त्व विषैं असंयतादिक का जघन्य

अंतर एक समय है । अर उत्कृष्ट अंतर असंयत का सात दिन-राति, देश संयत का चौदह दिन-राति, प्रमत्त-अप्रमत्त का पंद्रह दिन-राति अंतर है ।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषें दोय भेदनि विषें वा दोऊ व्यपदेशरहितनि विषें अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि आहार मार्गणा विषें दोऊ भेदनि विषें अपने-अपने गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – अनाहारक विषें असंयत का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व मास ।

सयोगी का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्षमात्र अंतर है ।

अब एक जीव अपेक्षा अंतर कहिए है,

सो सामान्य-विशेष करि दोय प्रकार । तहाँ सामान्य करि मिथ्यादृष्टि का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन दूणां छयासठि सागर । बहुरि सासादन का जघन्य पल्य का असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन । बहुरि मिश्र, असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, च्यारि उपशमक, इनिका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन । बहुरि च्यारि क्षपक, सयोगी, अयोगी इनिका अंतर नाहीं है ।

बहुरि विशेष करि गति मार्गणा विषें नारक विषें मिथ्यादृष्टि आदि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत् । उत्कृष्ट अंतर सात पृथ्वीनि विषें क्रम तैं एक, तीन, सात, दश, सतरह, बाईस, तेतीस देशोन सागर जानना ।

बहुरि तिर्यञ्चनि विषें मिथ्यादृष्टआदि देशसंयत पर्यंतनि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट अंतर देशोन तीन पल्य है ।

बहुरि मनुष्य गति विषें मिथ्यादृष्टआदि च्यारि उपशमक पर्यंत जघन्य अंतर सामान्यवत् । उत्कृष्ट अंतर मिथ्यादृष्टि का तिर्यंचवत् । सासादन, मिश्र, असंयत का पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक तीन पल्य, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त । च्यारि उपशमक का पृथक्त्व कोडि पूर्व प्रमाण है । अर क्षपक, सयोगी, अयोगीनि का सामान्यवत् है ।

बहुरि देव विषें मिथ्यादृष्टयादि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत् । उत्कृष्ट अंतर देशोन इकतीस सागर है ।

बहुरि इंद्रिय मार्गणा विषैं एकेंद्रिय का जघन्य अंतर क्षुद्रभव, उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर । विकलेंद्रिय का जघन्य अंतर क्षुद्रभव, उत्कृष्ट अंतर असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है । यहु अंतर एकेंद्रियादिक पर्यायनि का कह्या है, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही है, ताका तहां अंतर है नाहीं । पंचेंद्रिय विषैं मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत्, उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक हजार सागर है । अवशेषनि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि काय मार्गणा विषैं पृथ्वी, अप, तेज, वायुकाय का जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन अर वनस्पति का जघन्य क्षुद्रभव, उत्कृष्ट असंख्यात लोक मात्र अंतर है । यहु अंतर पृथ्वीकायिकादि का कह्या है, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि है । ताका तहां अंतर है नाहीं ।

त्रसकायिक विषैं मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर अंतर है । अवशेषनि का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि योग मार्गणा विषैं मन,वचन, काय योगनि विषैं संभवते गुणस्थाननि का वा अयोगी का अंतर नाही, जातैं एक ही योग विषैं गुणस्थानांतर कौं प्राप्त होइ करि विवक्षित गुणस्थान विषैं प्राप्त होता नाहीं ।

बहुरि वेद मार्गणा विषैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदनि विषैं मिथ्यादृष्टि आदि दोऊ उपशमक पर्यंत जघन्य अंतर सामान्यवत् है । उत्कृष्ट अंतर स्त्रीवेद विषैं मिथ्यादृष्टि का देशोन पंचावन पल्य, औरनि का पृथक्त्व सौ पल्य पुरुषवेद विषैं मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, औरनि का पृथक्त्व सौ सागर । नपुंसकवेद विषैं मिथ्यादृष्टि का तेतीस सागर देशोन, औरनि का सामान्यवत् अंतर है । दोय क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है । बहुरि वेदरहितनि विषैं उपशम अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म सांपराय का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है, औरनि का अंतर नाही है ।

बहुरि कषाय मार्गणा विषैं क्रोध, मान, माया, लोभ विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि उपशम अनिवृत्तिकरण पर्यंत का मनोयोगवत्, दोय क्षपकनि का अर केवल लोभ विषैं सूक्ष्मसांपराय के उपशम वा क्षपक का अर अकषाय विषैं उपशांतकषायादि का अंतर नाही है ।

बहुरि ज्ञान मार्गणा विषैं कुमति, कुश्रुत, विभंग विषैं मिथ्यादृष्टि सासादन का अंतर नाहीं । मति, श्रुत, अवधि विषैं असंयत का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व । देश संयत का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक छचासठि सागर । प्रमत्त-अप्रमत्त का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर । च्यारि उपशमकनि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक छचासठि सागर । च्यारि क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है । बहुरि मनःपर्यय विषैं प्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यंतनि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – प्रमत्त-अप्रमत्त का अंतर्मुहूर्त, च्यारि उपशमकनि का देशोन कोडि पूर्व प्रमाण उत्कृष्ट अंतर है । बहुरि केवलज्ञान विषैं सयोगी, अयोगी का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि संयम मार्गणा विषैं सामायिक, छेदोपस्थापन विषैं प्रमत्त-अप्रमत्त का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है । दोऊ उपशमक का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व अर दोऊ क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है । परिहारविशुद्धि विषैं प्रमत्त-अप्रमत्त विषैं जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है । सूक्ष्मसांपराय विषैं उपशमक वा क्षपक का अर यथाख्यात विषैं उपशांत कषायादिक का अर संयतासंयत विषैं देश संयत का अंतर नाहीं है । असंयम विषैं मिथ्यादृष्टि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन तेतीस सागर । सासादन, मिश्र, असंयत का सामान्यवत् अंतर है ।

बहुरि दर्शन मार्गणा विषैं चक्षु, अचक्षुदर्शन विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि क्षीणकषाय पर्यन्तनि का सामान्यवत् अंतर है । विशेष इतना – चक्षुदर्शन विषैं सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का उत्कृष्ट अंतर देशोन दोय हजार सागर है । अवधिदर्शन विषैं अवधिज्ञानवत् अंतर है । केवलदर्शन विषैं सयोगी, अयोगी का अंतर नाहीं है ।

बहुरि लेश्या मार्गणा विषैं कृष्ण, नील, कापोत विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत् है । उत्कृष्ट अंतर क्रम तैं देशोन तेतीस, सतरह, अर सात सागर प्रमाण है । पीत, पद्म विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत्, उत्कृष्ट अंतर क्रम तैं साधिक दोय अर अठारह सागर है । देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त का अंतर नाहीं है । शुक्ल लेश्या विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनि का जघन्य अंतर सामान्यवत् है, उत्कृष्ट अंतर देशोन इकतीस सागर है । देशसंयत, प्रमत्त का अंतर नाहीं है । अप्रमत्त, तीन उपशमक का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है । उपशांत कषाय, च्यारि क्षपक, सयोगीनि का अंतर नाही है । अलेश्या विषैं अयोगीनि का अंतर नाही है ।

बहुरि भव्य मार्गणा विषैं भव्य विषैं सर्व गुणस्थाननि का सामान्यवत् अंतर है । अभव्य विषैं मिथ्यादृष्टि का अंतर नाहीं है ।

बहुरि सम्यक्त्व मार्गणा विषैं क्षायिक सम्यक्त्व विषैं असंयतादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंयत का देशोन कोडि पूर्व, औरनि का साधिक तेतीस सागर अंतर है । च्यारि क्षपक, सयोगी, अयोगी का अंतर नाहीं है । क्षायोपशमिक विषैं असंयतादि अप्रमत्त पर्यंतनि का जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंयत का देशोन कोडि पूर्व, देशसंयत का देशोन छ्यासठि सागर, प्रमत्त-अप्रमत्त का साधिक तेतीस सागर अंतर है । औपशमिक विषैं असंयतादि तीन उपशमक पर्यंतनि का जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्तमात्र है । उपशांत कषाय का अंतर नाहीं है । मिश्र, सासादन, मिथ्यादृष्टि विषैं अपने-अपने गुणस्थाननि का अंतर नाहीं है ।

बहुरि संज्ञी मार्गणा विषैं संज्ञी विषैं मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यन्तनि का जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ सागर, च्यारि क्षपकनि का सामान्यवत् अंतर है । असंज्ञी विषैं मिथ्यादृष्टि का अंतर नाहीं है । उभयरहित विषैं सयोगी, अयोगी का अंतर नाहीं है ।

बहुरि आहारक मार्गणा विषैं आहारक मिथ्यादृष्टि का सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनि का जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात कल्पकाल मात्र सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग अंतर है । च्यारि क्षपक सयोगीनि का अंतर नाहीं है । अनाहारक विषैं मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, सयोगी, अयोगी का अंतर नाहीं है ।

इहां मार्गणास्थान विषैं अंतर कह्या है, तहां ऐसा जानना – विवक्षित मार्गणा के भेद का काल विषैं विवक्षित गुणस्थान का अंतराल जेते काल पाइए, ताका वर्णन है । मार्गणा के भेद का पलटना भए अथवा मार्गणा के भेद का सद्भाव होतैं विवक्षित गुणस्थान का अंतराल भया था, ताकी बहुरि प्राप्ति भए, तिस अंतराल का अभाव हो है । ऐसैं प्रसंग पाइ काल का अर अंतर का कथन कीया है, सो जानना ।

आगैं इनि चौदह मार्गणानि विषैं गति मार्गणा का स्वरूप कौं कहै हैं —

गइउदयजपज्जाया, चउगइगमणस्स हेउ वा हु गई ।
णारयतिरिक्खमाणुस, देवगइ त्ति य हवे चदुधा ।।१४६।।

गत्युदयजपर्यायः, चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्वा हि गतिः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिरिति च भवेत् चतुर्धा ।।१४६।।

गम्यते कहिये गमन करिए, सो गति है ।

इहां तर्क – जो ऐसें कहैं गमन क्रियारूप परिणया जीव कौं पावने योग्य द्रव्यादिक कौं भी गति कहना संभवै ।

तहां समाधान – जो ऐसे नाहीं है, जो गतिनामा नामकर्म के उदय तैं जो जीव कैं पर्याय उत्पन्न होइ, तिसही कौं गति कहिए । सो गति च्यारि प्रकार – १. नारक गति २. तिर्यंच गति ३. मनुष्यगति ४. देव गति ए च्यारि गति हैं ।

आगैं नारक गति कौं निर्देश करै हैं –

ण रमंति जदो णिच्चं, दव्वे खेत्ते य काल-भावे य ।
अण्णोण्णेहिं य जह्मा, तह्मा ते णारया भणिया ।।[1] १४७।।

नरमंते यतो नित्यं, द्रव्य क्षेत्रे च कालभावे च ।
अन्योन्यैश्च यस्मात्तस्मात्ते नारता (का) भणिताः ।।१४७।।

टीका – जा कारण तैं जे जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषैं अथवा परस्पर में रमै नाहीं–जहां क्रीडा न करें, तहां नरक संबंधी अन्न-पानादिक वस्तु, सो द्रव्य कहिए । बहुरि तहांकी पृथ्वी सो क्षेत्र कहिए । बहुरि तिस गति संबंधी प्रथम समय तैं लगाइ अपनी आयु पर्यंत जो काल, सो काल कहिए । तिनि जीवनी कै चैतन्यरूप परिणाम, सो भाव कहिए । इनि च्यारोंनि विषैं जे कबहू रति न मानैं । बहुरि अन्य भव संबंधी वैर करि इस भव में उपजे क्रोधादिक, तिनिकरि नवीन-पुराणे नारकी परस्पर रमैं नाहिं है 'रति कहिए प्रीतिरूप कब हीं तातैं 'न रताः' कहिए नरत, तेई 'नारत' जानने । जातैं स्वार्थ विषैं अण् प्रत्यय का विधान है, तिनकी जो गति, सो नारतगति जानना । अथवा नरकविषैं उपजैं ते नारक, तिनिकी जो गति, सो नारक गति जाननी । अथवा हिंसादिक आचरण विषैं निरता कहिए प्रवर्तें, ऐसे जो निरत, तिनकी जो गति, सो निरतगति जाननी । अथवा नर कहिए प्राणी, तिनिकौं कायति कहिए पीडैं दुःख देइ,

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०३ गाथा १२६.

असे जे नरक कहिए पापकर्म, ताका अपत्य कहिए तीहि का उदय तैं निपजे जे नारक तिनकी जो गति, सो नारक गति जाननी । अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनि विषैं वा परस्पर रत कहिए प्रीतिरूप नाही हैं नरत, तिनकी जो गति सो नरतगति जाननी । निर्गत कहिए गया है अयः कहिए पुण्यकर्म, जिनितैं असे जे निरय, तिनिकी जो गति सो निरय गति जाननी । असे निरुक्ति करि नारकगति का लक्षण कह्या ।

आगैं तिर्यंचगति का स्वरूप कहै हैं –

तिरियंति कुडिलभावं, सुविउलसंण्ण णिगिट्ठिमण्णाणा ।
अच्चंतपावबहुला, तह्मा तेरिच्छया भणिया[1] ॥१४८॥

तिरोंचंति कुटिलभावं, सुविवृतसंज्ञा निकृष्टमज्ञानाः ।
अत्यंतपापबहुलास्तस्मात्तैरश्चिका भणिताः ॥१४८॥

टीका – जातैं जो जीव **सुविवृतसंज्ञाः** कहिए प्रकट है आहार नें आदि देकरि संज्ञा जिनकें असे हैं । बहुरि प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता इत्यादिक करि हीन हैं, तातैं निकृष्ट हैं । बहुरि हेयोपादेय का ज्ञान रहित है, तातैं अज्ञान हैं । बहुरि नित्यनिगोद की अपेक्षा अत्यंत पाप की है बहुलता जिनिकैं असे हैं, तातैं तिरोभाव जो कुटिलभाव, मायारूप परिणाम ताहि **अंचंति** कहिए प्राप्त होंइ, ते तिर्यंच कहे हैं । बहुरि तिर्यंच ही **तैरश्च** कहिए । इहां स्वार्थ विषै अण् प्रत्यय का विधान हो है । असे जो तिर्यक् पर्याय, सोही तिर्यग्गति है, असा कह्या है ।

आगैं मनुष्य गति का स्वरूप कहै हैं –

मण्णंति जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जह्मा ।
मण्णुब्भवा य सव्वे, तह्मा ते माणुसा भणिदा[2] ॥१४६॥

मन्यंते यतो नित्यं, मनसा निपुणा मनसोत्कटा यस्मात् ।
मनूद्भवाश्च सर्वे, तस्मात्ते मानुषा भणिताः ॥१४९॥

टीका – जातैं जे जीव नित्य ही **मन्यंते** कहिए हेयोपादेय के विशेष कौं जानैं हैं । अथवा **मनसा निपुणाः** कहिए अनेक शिल्पी आदि कलानि विषैं प्रवीण हैं । अथवा

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०३, गाथा १२६
२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०४, गाथा १३०

'मनसोत्कटाः' कहिए अवधारणा आदि दृढ उपयोग के धारी हैं। अथवा 'मनोरुद्भवाः' कहिए कुलकरादिक तैं निपजे है, तातैं ते जीव सर्व ही मनुष्य हैं, अैसें आगम विषें कहै हैं।

आगें तिर्यंच, मनुष्य गति के जीवनि का भेद दिखावैं हैं –

सामण्णा पंचिंदी, पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।
तिरिया णरा तहावि य, पंचिंदियभंगदो हीणा ॥१५०॥

सामान्याः पंचेंद्रियाः, पर्याप्ता योनिमत्यः अपर्याप्ताः।
तिर्यंचो नरास्तथापि च, पंचेंद्रियभंगतो हीनाः ॥१५०॥

टीका – तिर्यंच पांच प्रकार – १. सामान्य तिर्यंच २. पंचेंद्री तिर्यंच ३. पर्याप्त तिर्यंच ४. योनिमती तिर्यंच ५. अपर्याप्त तिर्यंच। तहां सर्व ही तिर्यंच भेदनि का समुदायरूप, सो तौ सामान्य तिर्यंच है। बहुरि जो एकेंद्रियादिक बिना केवल पंचेंद्री तिर्यंच, सो पंचेंद्री तिर्यंच है। बहुरि जो अपर्याप्त बिना केवल पर्याप्त तिर्यंच, सो पर्याप्त तिर्यंच है। बहुरि जो स्त्रीवेदरूप तिर्यंचणी, सो योनिमती तिर्यंच है। बहुरि जो लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच है, सो अपर्याप्त तिर्यंच है। अैसें तिर्यंच पंच प्रकार हैं।

बहुरि तैसें ही मनुष्य हैं। इतना विशेष – जो पंचेंद्रिय भेद करि हीन है, तातैं सामान्यादिरूप करि च्यारि प्रकार है। जातैं मनुष्य सर्व ही पंचेंद्री है, तातैं जुदा भेद तिर्यंचवत् न होइ। तातैं १. सामान्य मनुष्य २. पर्याप्त मनुष्य ३. योनिमती मनुष्य ४. अपर्याप्त मनुष्य ए च्यारि भेद मनुष्य के जानने।

तहां सर्व मनुष्य भेदनि का समुदायरूप, सो सामान्य मनुष्य है। केवल पर्याप्त मनुष्य, सो पर्याप्त मनुष्य है। स्त्रीवेदरूप मनुष्यणी, सो योनिमती मनुष्य है। लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य सो अपर्याप्त मनुष्य है।

आगें देवगति कौं कहै हैं –

दिव्वंति जदो णिच्चं, गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं।
भासंतदिव्वकाया, तह्मा ते वण्णिया देवा[1] ॥१५१॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०४, गाथा १३१

दीव्यंति यतो नित्यं, गुणैरष्टाभिर्दिव्यभावैः ।
भासमानदिव्यकायाः, तस्मात्ते वर्णिता देवाः ।।१५१।।

टीका – जातैं जे जीव नित्य ही दीव्यंति कहिए कुलाचल समुद्रादिकनि विषैं क्रीड़ा करैं हैं, हर्ष करैं हैं, मदनरूप हो हैं–कामरूप हो हैं। बहुरि अणिमा कौं आदि देकरि मनुष्य अगोचर दिव्यप्रभाव लीएं गुण, तिनिकरि प्रकाशमान हैं। बहुरि-धातु-मल रोगादिक दोष, तिनिकरि रहित है। देदीप्यमान, मनोहर शरीर जिनिका असे हैं। तातैं ते जीव देव हैं, असैं आगम विषैं कह्या है। असैं निरुक्तिपूर्वक लक्षण करि च्यारि गति कहीं।

यहां जे जीव सातौ नरकनि विषैं महा दुःख पीडित हैं, ते नारक जानने। बहुरि एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री, असंज्ञी पंचेंद्री पर्यंत सर्व ही अर जलचरादि पंचेंद्री ते सर्व तिर्यंच जानने। बहुरि आर्य, म्लेच्छ, भोगभूमि, कुभोगभूमि विषैं उत्पन्न मनुष्य जानने। भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी, वैमानिक भेद लीएं देव जानने।

आगैं संसार दशा का लक्षण रहित जो सिद्धगति ताहि कहै हैं –

जाइजरामरणभया, संजोगविजोगदुक्खसण्णाओ ।
रोगादिगा य जिस्से, ण संति सा होदि सिद्धगई[1] ।।१५२।।

जातिजरामरणभयाः, संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः ।
रोगादिकाश्च यस्यां, न संति सा भवति सिद्धगतिः ।।१५२।।

टीका – जन्म, जरा, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्टवियोग, दुख, संज्ञा, रोगादिक नानाप्रकार वेदना जिहिविषैं न होंइ सो समस्तकर्म का सर्वथा नाश तैं प्रकट भया सिद्ध पर्यायरूप लक्षण कौं धरैं, सो सिद्धगति जाननी। इस गति विषैं संसारीक भाव नाहीं, तातैं संसारीक गति की अपेक्षा गति मार्गणा च्यारि प्रकार ही कही।

मुक्तिगति की अपेक्षा तौहि मुक्तिगति का नाम कर्मोदयरूप लक्षण नाहीं है। तातैं याकी गतिमार्गणा विषैं विवक्षा नाही है।

आगैं गतिमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या कहैं हैं। तहां प्रथम ही नरक गति विषैं गाथा दोयकरि कहै हैं–

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०४, गाथा १३२

सामण्णा णेरइया, घणअंगुलबिदियमूलगुणसेढी ।
बिदियादि बारदसअड, छत्तिदुणिजपदहिदा सेढी ।।१५३।।

सामान्या नैरयिका, घनांगुलद्वितीयमूलगुण श्रेणी ।
द्वितीयादिः द्वादश दशाष्टषट्त्रिद्विनिजपदहिता श्रेणी ।।१५३।।

टीका – सामान्य सर्व सातौ ही पृथ्वी के मिले हुवे नारकी जगत श्रेणी कौं घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तिहि प्रमित हैं । इहां घनांगुल का वर्गमूल करि उस प्रथम वर्गमूल का दूसरी बार वर्गमूल कीजिए, सो घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल जानना । जैसें अंकसंदृष्टि करि घनांगुल का प्रमाण सोलह, ताका वर्गमूल च्यारि, ताका द्वितीय वर्गमूल दोय होय, ताकरि जगत श्रेणी का प्रमाण दोय से छप्पन कौं गुणें, पांचसें बारह होय; तैसें इहां यथार्थ परिमाण जानना । बहुरि दूसरी पृथ्वी के नारकी जगत श्रेणी का बारह्वां वर्गमूल, ताका भाग जगत श्रेणी कौं दीएं जो प्रमाण होइ, तीहि प्रमित हैं । इहां जगत श्रेणी का वर्ग-मूल करिए सो प्रथम मूल, बहुरि उसका वर्गमूल कीजिए, सो द्वितीय वर्गमूल, बहुरि उस द्वितीय वर्गमूल का वर्गमूल कीजिए सो तृतीय वर्गमूल, इत्यादिक असें ही इहां अन्य वर्गमूल जानना । बहुरि तीसरी पृथ्वी के नारकी जगत श्रेणी का दशवां वर्ग-मूल का भाग जगत श्रेणी कौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने जानने । बहुरि चौथी पृथ्वी के नारकी जगत श्रेणी का आठवां वर्गमूल का भाग जगत श्रेणी कौं दीएं जो परिमाण आवै, तितने जानने । बहुरि असें ही पांचवीं पृथ्वी, छठी पृथ्वी, सातवीं पृथ्वी के नारकी अनुक्रम तें जगत श्रेणी का छठा, तीसरा, दूसरा वर्गमूल का भाग जगत श्रेणी कौं दीएं, जो जो परिमाण आवै, तितने तितने जानने । जैसें दोय सै छप्पन का प्रथम वर्गमूल सोलह, द्वितीय वर्गमूल च्यारि, तृतीय वर्गमूल दोय, इनिका भाग क्रम तें दोय सैं छप्पन कौं दीएं सोलह, चौसठि, एक सौ अट्ठाईस होइं । तैसें इहां भी यथासंभव परिमाण जानना ।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं, रासिविहीणो दु सव्वरासी दु ।
पढमावणिह्मि रासी, णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो ।।१५४।।

अधस्तनषट्पृथ्वीनां, राशिविहीनस्तु सर्वराशिस्तु ।
प्रथमावनौ राशिः, नैरयिकाणां तु निर्दिष्टः ।।१५४।।

टीका – नीचली जे दूसरी वंशा पृथ्वी सौं लगाइ सातवीं पृथ्वी पर्यंत छह पृथ्वी के नारकीनि का जोड दीएं साधिक जगत श्रेणी का बारह्वां मूल करि भाजित जगत श्रेणी प्रमाण होइ सो पूर्वं सामान्य सर्वनारकीनि का परिमाण कह्या, तामैं घटाएं, जितने रहैं, तितने पहिली धम्मा पृथ्वी के नारकी जानने । इहां घटावनेरूप त्रैराशिक असें करना । सामान्य नारकीनि का प्रमाण विषैं जगच्छ्रेणी गुण्य है । बहुरि घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल गुणकार है, सो इस प्रमाण विषैं जगच्छ्रेणीमात्र घटावना होइ, तौ गुणकार का परिमाण में स्यों एक घटाइए तौ जो जगच्छ्रेणी का बारह्वां वर्गमूल करि भाजित साधिक जगच्छ्रेणीमात्र घटावना होइ, तौ गुणकार में स्यों कितना घटै, इहां प्रमाणराशि जगत श्रेणी, फलराशि एक, इच्छाराशि जगत श्रेणी का बारह्वां वर्गमूल करि भाजित जगत श्रेणी, सो इहां फल करि इच्छा कौं गुणें प्रमाण का भाग दीएं साधिक एक का बारह्वां भाग जगत श्रेणी के वर्गमूल का भाग आया । सो इतना घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल में स्यों घटाइ अवशेष करि जगत श्रेणी कौं गुणें, धर्मा पृथ्वी के नारकीनि का प्रमाण हो हैं ।

आगें तिर्यंच जीवां की संख्या दोय गाथा करि कहैं है—

संसारी पंचक्खा, तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो ।
सामण्णा पंचिंदी, पंचिंदियपुण्णतेरिक्खा ॥१५५॥

संसारिणः पंचाक्षाः, तत्पूर्णाः त्रिगतिहीनकाः क्रमशः ।
सामान्याः पंचेंद्रियाः, पंचेंद्रियपूर्णतैरश्चाः ॥१५५॥

टीका – संसारी जीवनि का जो परिमाण तींहिविषैं नारकी, मनुष्य, देव इनि तीनों गतिनि के जीवनि का परिमाण घटाएं, जो परिमाण रहै, तितने प्रमाण सर्व सामान्य तिर्यंच राशि जानने । बहुरि आगें इंद्रिय मार्गणाविषैं जो सामान्य पंचेंद्रिय जीवनि का परिमाण कहिएगा, तामैंसौं नारकी, मनुष्य, देवनि का परिमाण घटाएं, पंचेंद्रिय तिर्यंचनि का प्रमाण हो है ।

बहुरि आगें पर्याप्त पंचेंद्रियनि का प्रमाण कहिएगा, तामेंस्यों पर्याप्त नारकी, मनुष्य, देवनि का परिमाण घटाएं, पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचनि का परिमाण हो है ।

छस्सयजोयणकदिहदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं ।
पुण्णूणा पंचक्खा, तिरियअपज्जत्तपरिसंखा ॥१५६॥

षट्शतयोजनकृतिहतजगत्प्रतरं योनिमतीनां परिमाणं ।
पूर्णोनाः पंचाक्षाः, तिर्यगपर्याप्तपरिसंख्या ॥ १५६ ॥

टीका – छस्से योजन के वर्ग का भाग जगत प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण होइ, सो योनिमती द्रव्य तिर्यंचणीनि का परिमाण जानना । छस्सै योजन लंबा, छस्सै योजन चौड़ा, एक प्रदेश ऊंचा असा क्षेत्र विषै जितने आकाश प्रदेश होई, ताको भाग जगत प्रतर कौं देना, सो इनि योजननिकी प्रतरांगुल कीजिए, तब चौगुणा पणट्ठी कौं इक्यासी हजार कोडि करि गुणिए, इतने प्रतरांगुल होइ तिनिका भाग जगत प्रतर कौं दीजिए, तब एक भाग प्रमाण द्रव्य तिर्यंचणी जाननीं । बहुरि पंचेंद्रिय तिर्यंचनि का परिमाण विषै पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचनि का प्रमाण घटाएं, अवशेष अपर्याप्त पंचेंद्रियनि का परिमाण हो है ।

आगैं मनुष्य गति के जीवनि की संख्या तीन गाथानि करि कहै हैं–

सेढी सूईअंगुलआदिमतदियपदभाजिदेगूणा ।
सामण्णमणुसरासी, पंचमकदिघणसमा पुण्णा ॥१५७॥

श्रेणी सूच्यंगुलादिमतृतीयपदभाजितैकोना ।
सामान्यमनुष्यराशिः, पंचमकृतिघनसमाः पूर्णाः ॥१५७॥

टीका – जगतश्रेणी कौं सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल का भाग दीजिए, जो परिमाण आवै, ताकौं सूच्यंगुल का तृतीय वर्गमूल का भाग दीजिए, जो परिमाण आवै, तामैं एक घटाएं, जितने अवशेष रहैं, तितने सामान्य सर्व मनुष्य जानने । बहुरि द्विरूप वर्गधारा संबंधी पंचम वर्गस्थान बादाल है, ताका घन कीजिए; जितने होइ तितने पर्याप्त मनुष्य जानने । ते कितने हैं ?–

तल्लीनमधुगविमलं, धूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा होंति हु, माणुसपज्जत्तसंखंका ॥१५८॥

तल्लीनमधुगविमलं, धूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा भवंति हि, मानुषपर्याप्तसंख्यांकाः ॥१५८॥

टीका – इहां अक्षर संज्ञा करि वामभाग तैं अनुक्रम करि अंक कहै हैं । सो अक्षर संज्ञा करि अंक कहने का सूत्र उक्तं च कहिए है–आर्या–

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरञनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ॥

याका अर्थ – ककार कौ आदि देकरि नव अक्षर, तिनिकरि अनुक्रम तैं एक, दोय, तीन इत्यादिक अंक जानने । जैसें ककार लिख्या होइ, तहां एका जानना, खकार होइ तहां दूवा जानना । गकार लिख्या होइ तहां तीया जानना । जैसें ही झकार पर्यंत नव ताईं अंक जानने । क ख ग घ ङ च छ ज झ ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
बहुरि असें ही टकार नै आदि देकरि । नव अक्षरनि तैं एक, दोय, तीन आदि नव पर्यंत अंक जानने ट ठ ड ढ ण त थ द ध ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
बहुरि ऐसे ही पकारनै आदि देकरि पंच अक्षरनि तैं एक, दोय आदि पंच अंक जानने । प फ ब भ म ।
१ २ ३ ४ ५
बहुरि ऐसे ही यकार नैं आदि देकरि अष्ट अक्षरनि तैं एक आदि अष्ट पर्यंत अंक जानने । य र ल व श ष स ह ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
बहुरि जहां अकार आदि स्वर लिखे हों वा ञकार वा नकार लिख्या होइ, तहां बिंदी जानना । बहुरि अक्षर के जो मात्रा होइ तथा कोई ऊपरि अक्षर लिख्या होइ, तौ उसका कछू प्रयोजन नाहीं लेना । सो इस सूत्र अपेक्षा इहां अक्षर संज्ञा करि अंक कहे हैं । आगें भी श्रुतज्ञानादि का वर्णन विषैं ऐसे ही जानना । सो इहां त कहिए छह, ल कहिए तीन, लो कहिए तीन, न कहिए बिंदी, म कहिए पांच, घु कहिए नव, ग कहिए तीन, इत्यादि अनुक्रम तैं च्यारि, पांच, तीन, नव, पांच, सात, तीन, तीन, च्यारि, छह, दोय, च्यारि, एक, पांच, दोय, छह, एक, आठ, दोय, दोय, नव, सात ए अंक जानने । **'अंकानां वामतो गतिः'** तातैं ए अंक बाईं तरफ तैं लिखने । '७, ९२२८१६२, ५१४२६४३, ३७५९३५४, ३९५०३३६' सो ए सात कोडाकोडि कोडाकोडि बाणवैं लाख अठाईस हजार एक सौ बासठि कोडा कोडि कोडि इकावन लाख बियालीस हजार छ सौ तियालीस कोडाकोडि सैंतीस लाख गुणसठि हजार तीन सौ चौवन कोडि गुणतालीस लाख पचास हजार तीन सौ छत्तीस पर्याप्त मनुष्य जानने । इनिके अंक दाहिणी तरफ सौं अक्षर संज्ञा करि अन्यत्र भी कहे हैं –

साधूरराजकीर्तेरेणांको भारतीविलोलसमधीः ।
गुणवर्गधर्मनिगलितसंख्यावन्मानवेषु वर्णक्रमाः ।।

सो इहां सा कहिए सात, धू कहिए नव, र कहिए दोय, रा कहिए दोय, ज कहिए आठ, की कहिए एक, र्ते कहिए छह, इत्यादि दक्षिण भाग तैं अंक जानने ।

पज्जत्तमणुस्साणं, तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं ।
सामण्णा पुण्णूणा, मणुवअपज्जत्तगा होंति ।।१५६।।

पर्याप्तमनुष्याणां, त्रिचतुर्थो मानुषीणां परिमाणं ।
सामान्याः पूर्णोना, मानवा अपर्याप्तका भवंति ।।१५९।।

टीका – पर्याप्त मनुष्यनि का प्रमाण कह्या, ताका च्यारि भाग कीजिए, तामें तीन भाग प्रमाण मनुषिणी द्रव्य स्त्री जाननी । बहुरि सामान्य मनुष्य राशि में स्यों पर्याप्त मनुष्यनि का परिमाण घटाएं, अवशेष अपर्याप्त मनुष्यनि का परिमाण हो है । इहां **'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः'** इस सूत्र करि पैंतालीस लाख योजन व्यास धरैं मनुष्य लोक है । ताका **'विक्खंभवग्गदहगुण'** इत्यादि सूत्र करि एक कोडि बियालीस लाख तीस हजार दोय सै गुणचास योजन, एक कोश, सतरह सै छयासठि धनुष, पांच अंगुल प्रमाण परिधि हो है । बहुरि याकौं व्यास की चौथाई ग्यारह लाख पचीस हजार योजन करि गुणें, सोलह लाख नव सै तीन कोडि छह लाख चौवन हजार छ सै एक योजन अर एक लाख योजन का दोय सै छप्पन भाग विषै उगणीस भाग इतना क्षेत्रफल हो है । बहुरि याके अंगुल करने सो एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल हैं । सो वर्गराशि का गुणाकार वर्गरूप होइ, इस न्याय करि सात लाख अडसठि हजार का वर्ग करि तिस क्षेत्रफल कौं गुणैं नव हजार च्यारि सै बियालीस कोडाकोडि कोडि इक्यावन लाख च्यारि हजार नव सै अडसठि कोडाकोडि उगणीस लाख तियालीस हजार च्यारि सै कोडि प्रतरांगुल हैं । बहुरि ए प्रमाणांगुल हैं, सो इहां उत्सेधांगुल न करने, जातैं चौथा काल की आदि विषैं वा उत्सर्पिणी काल का तीसरा काल का अन्तविषैं वा विदेहादि क्षेत्र विषैं आत्मांगुल का भी प्रमाण प्रमाणांगुल के समान ही है । सो इनि प्रतरांगुलनि के प्रमाण तैं भी पर्याप्त मनुष्य संख्यात गुणे हैं । तथापि आकाश की अवगाहन की विचित्रता जानि संदेह न करना ।

आगें देवगति के जीवनि की संख्या च्यारि गाथानि करि कहै हैं –

तिण्णिसयजोयणाणं, बेसदछप्पण्णअंगुलाणं च ।
कदिहदपदरं वेंतर, जोइसियाणं च परिमाणं ॥१६०॥

त्रिशतयोजनानां, द्विशतषट्पंचाशदंगुलानां च ।
कृतिहतप्रतरं व्यंतरज्योतिष्काणां च परिमाणम् ॥१६०॥

टीका – तीन सै योजन के वर्ग का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण होइ, तितना व्यंतरनि का प्रमाण जानना । तीन सै योजन लंबा, तीन सै योजन चौड़ा, एक प्रदेश ऊंचा ऐसा क्षेत्र का जितने आकाश का प्रदेश होंइ, ताका भाग दीजिए, सो याका प्रतरांगुल कीएं, पैसठि हजार पांच सै छत्तीस कौं इक्यासी हजार कोडि गुणां करिए इतने प्रतरांगुल होंइ, तिनिका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं व्यंतरनि का प्रमाण होइ है ।

बहुरि दोय सै छप्पन अंगुल के वर्ग का भाग जगत्प्रतर कौं भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना ज्योतिषीनि का परिमाण जानना । दोय सै छप्पन अंगुल चौड़ा इतना ही लम्बा एक प्रदेश ऊंचा, असा क्षेत्र का जितना आकाश का प्रदेश होइ ताका भाग दीजिए, सो याका प्रतरांगुल पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस है । ताका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं ज्योतिषी देवनि का परिमाण हो है ।

घणअंगुलपढमपदं, तदियपदं सेढिसंगुणं कमसो ।
भवणे सोहम्मदुगे, देवाणं होदि परिमाणं ॥१६१॥

घनांगुलप्रथमपदं, तृतीयपदं श्रेणिसंगुणं क्रमशः ।
भवने सौधर्मद्विके, देवानां भवति परिमाणम् ॥१६१॥

टीका – घनांगुल का जो प्रथम वर्गमूल, तिहिनैं जगत्श्रेणी करि गुणैं, जो परिमाण होइ, तितने भवनवासीनि का परिमाण जानना ।

बहुरि घनांगुल का जो तृतीय वर्गमूल तिहिनैं जगत्श्रेणी करि गुणैं जो परिमाण होइ, तितने सौधर्म अर ईशान स्वर्ग का वासी देवनि का परिमाण जानना ।

तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूलभाजिदा सेढी ।
पल्लासंखेज्जदिमा, पत्तेयं आणदादिसुरा[1] ॥१६२॥

ततः एकादशनवसप्तपंचचतुर्निजमूलभाजिता श्रेणी ।
पल्यासंख्यातकाः, प्रत्येकमानतादिसुराः ॥ १६२ ॥

टीका – बहुरि तहां तै ऊपरि सनत्कुमार-माहेंद्र, बहुरि ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर, बहुरि लांतव – कापिष्ठ, शुक्र – महाशुक्र, बहुरि शतार – सहस्रार इनि पांच युगलनि विषै अनुक्रमतै जगत्श्रेणी का ग्यारहवां, नवमां, सातवां, पांचवां, चौथा जो वर्गमूल, तिनिका भाग जगत्श्रेणी कौं दीएं, जितना-जितना परिमाण आवै, तितना-तितना तहां के वासी देवनि का प्रमाण जानना ।

बहुरि ता ऊपरि आनत-प्राणत युगल, बहुरि आरण–अच्युत युगल, बहुरि तीन अधोग्रैवेयक, तीन मध्य ग्रैवेयक, तीन उपरिम ग्रैवेयक, बहुरि नव अनुदिश विमान, बहुरि सर्वार्थसिद्धि विमान बिना च्यारि अनुत्तर विमान इन एक-एक विषै देव पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानने ।

तिगुणा सत्तगुणा वा, सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो ।
सामण्णदेवरासी, जोइसियादो विसेसहिया ॥१६३॥

त्रिगुणा सप्तगुणा वा, सर्वार्था मानुषीप्रमाणतः ।
सामान्यदेवराशिः, ज्योतिष्कतो विशेषाधिकः ॥१६३॥

टीका – बहुरि सर्वार्थसिद्धि के वासी अहमिंद्र देव, मनुषिणीनि का जो परिमाण, पर्याप्त मनुष्यनि का च्यारि भाग में तीन भाग प्रमाण कह्या था, तातैं तिगुणा जानना । बहुरि कोई आचार्य का अभिप्रायतैं सात गुणा है । बहुरि ज्योतिषी देवनि का परिमाण विषैं भवनवासी, कल्पवासी, देवनि का प्रमाण करि साधिक असा ज्योतिषी देवनि के संख्यातवें भाग, जो व्यंतर राशि, सो जोड़ै, सर्व सामान्य देवनि का परिमाण हो है ।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका के अनुसारि इस सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषैं गतिप्ररूपणा नामा छठा अधिकार संपूर्ण भया ॥६॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ १७, गाथा १२ ।

सातवां अधिकार : इन्द्रिय-मार्गणा-प्ररूपणा

।। मंगलाचरण ।।

लोकालोकप्रकाशकर, जगत पूज्य श्रीमान ।
सप्तम तीर्थंकर नमौं, श्रीसुपार्श्व भगवान ।।

अथ इंद्रियमार्गणा का आरंभ करें हैं । तहां प्रथम इंद्रिय शब्द का निरुक्ति पूर्वक अर्थ कहै हैं --

अहमिंदा जह देवा, अविसेसं अहमहंति मण्णंता ।
ईसंति एक्कमेक्कं, इंदा इव इंदिये जाण [1] ।।१६४।।

अहमिंद्रा यथा देवा, अविशेषमहमहमिति मन्यमानाः ।
ईशते एकैकमिंद्रा, इव इंद्रियाणि जानीहि ।।१६४।।

टीका -- जैसें ग्रैवेयकादिक विषें उपजे, असे अहमिंद्र देव; ते चाकर ठाकुर के (सेवक स्वामी के) भेद रहित 'मैं ही मैं हौं' ऐसे मानते संते, जुदे-जुदे एक-एक होइ, आज्ञादिक करि पराधीनतातैं रहित होते संते, ईश्वरता कौं धरैं हैं । प्रभाव कौं धरैं हैं । स्वामीपनां कौं धरैं हैं । तैसें स्पर्शनादिक इंद्रिय भी अपने-अपने स्पर्शादिविषय विषैं ज्ञान उपजावने विषैं कोई किसी के आधीन नाहीं, जुदे-जुदे एक-एक इंद्रिय पर की अपेक्षा रहित ईश्वरता कौं धरैं हैं । प्रभाव कौं धरैं हैं । तातैं अहमिंद्रवत् इन्द्रिय हैं । असे समानतारूप निरुक्ति करि सिद्ध भया, असा इन्द्रिय शब्द का अर्थ कौं हे शिष्य ! तू जानि ।

आगें इन्द्रियनि के भेद स्वरूप कहै हैं---

मदिआवरणखओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्जबोहो वा ।
भाविंदियं तु दव्वं, देहुदयजदेहचिण्हं तु ।।१६५।।

मत्यावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धिर्हि तज्जबोधो वा ।
भावेंद्रियं तु द्रव्यं, देहोदयजदेहचिह्नं तु ।।१६५।।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ १३८, गाथा ८५ ।

टीका – इंद्रिय दोय प्रकार हैं – एक भावेंद्रिय, एक द्रव्येंद्रिय ।

तहां लब्धि-उपयोगरूप तौ भावेंद्रिय है । तहां मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तें भई जो विशुद्धता इंद्रियनि के जे विषय, तिनके जानने की शक्ति जीव कैं भई, सो ही है लक्षण जाका, सो लब्धि कहिए ।

बहुरि मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तें निपज्या ज्ञान, विषय जानने का प्रवर्तनरूप सो, उपयोग कहिए । जैसें किसी जीव कैं सुनने की शक्ति है । परंतु उपयोग कहीं और जायगां लगि रह्या है, सो बिना उपयोग किछू सुनैं नाहीं । बहुरि कोऊ जान्या चाहै है अर क्षयोपशम शक्ति नाहीं, तौ कैसें जानै ? तातें लब्धि अर उपयोग दोऊ मिलें विषय का ज्ञान होइ । तातें इनिकौं भावेंद्रिय कहिए ।

भाव कहिए चेतना परिणाम, तींहिस्वरूप जो इंद्रिय, सो भावेंद्रिय कहिए ।

जातें इंद्र जो आत्मा, ताका जो लिंग कहिए चिह्न, सो इंद्रिय है । अैसी निरुक्ति करि भी लब्धि-उपयोगरूप भावेंद्रिय का ही दृढपना हो है ।

बहुरि निर्वृत्ति अर उपकरण रूप द्रव्येंद्रिय है । तहां जिनि प्रदेशनि करि विषयनि कौं जानैं, सो निर्वृत्ति कहिए । बहुरि वाके सहकारी निकटवर्ती जे होंइ, तिनिकौं उपकरण कहिए । सो जातिनामा नामकर्म के उदय सहित शरीरनामा नामकर्म के उदयतें निपज्या जो निर्वृत्ति-उपकरणरूप देह का चिह्न, एकेंद्रियादिक का शरीर का यथायोग्य अपने-अपने ठिकानें आकार का प्रकट करनहारा पुद्गल द्रव्यस्वरूप इंद्रिय, सो द्रव्येंद्रिय है । अैसें इंद्रिय द्रव्य-भाव भेद करि दोय प्रकार है । तहां लब्धि-उपयोग भावेंद्रिय है ।

तहां विषय के ग्रहण करने की शक्ति, सो लब्धि है । अर विषय के ग्रहणरूप व्यापार, सो उपयोग है ।

अब इंद्रिय शब्द की निरुक्ति करि लक्षण कहै हैं—

'प्रत्यक्षनिरतानि इंद्रियाणि' अक्ष कहिए इन्द्रिय, सो अक्ष अक्ष प्रति जो प्रवर्तै, सो प्रत्यक्ष कहिए । अैसा प्रत्यक्षरूप विषय अथवा इंद्रिय ज्ञान तिहिं विषैं **निरतानि** कहिए व्यापार रूप प्रवर्तैं, ते इंद्रिय है ।

इहां तर्क – जो इस लक्षण विषें विशेष के अभाव तें तिन इंद्रियनि के संकर व्यतिकररूप करि प्रवृत्ति प्राप्त होय; जो परस्पर इंद्रियनि का स्वभाव मिलि जाय, सो संकर कहिए । अपने स्वभावतें जुदापना का होना, सो व्यतिकर कहिए ।

तहां समाधान – जो इहां **'प्रत्यक्षे नियमिते रतानि इंद्रियाणि'** अपने-अपने नियमरूप प्रत्यक्ष विषें जे रत, ते इंद्रिय हैं, असा लक्षण का प्रतिपादन है । तातें नियमरूप कहने करि अपना-अपना विशेष का ग्रहण भया । अथवा संकर व्यतिकर दोष निवारणे के अर्थि **'स्वविषयनिरतानि इंद्रियाणि'** स्वविषय कहिए अपना-अपना विषय, तिहि विषें **'नि'** कहिए निश्चय करि-निर्णय करि रतानि कहिए प्रवर्तें, ते इंद्रिय हैं, असा कहना ।

इहां तर्क – जो संशय, विपर्यय विषें निर्णयरूप रत नाहीं है । तातें इस लक्षण करि संशय, विपर्ययरूप विषय ग्रहण विषें आत्मा कें अतींद्रियपना होइ ।

तहां समाधान – जो रूढि के बल तें निर्णय विषें वा संशय विपर्यय विषें दोऊ जायगा तिस लक्षण की प्रवृत्ति का विरोध नाहीं । जैसें **'गच्छतीति गौः'** गमन करै, ताहि गौ कहिए; सो समभिरूढ-नय करि गमन करतें वा शयनादि करतें भी गौ कहिए । तैसें इहां भी जानना । अथवा **'स्ववृत्तिनिरतानि इंद्रियाणि'** स्ववृत्ति कहिए संशय, विपर्यय रूप वा निर्णयरूप अपना प्रवर्तन, तीहिं विषें **निरतानि** कहिये व्यापार रूप प्रवर्तें, ते इंद्रिय हैं; असा लक्षण कहना ।

इहां तर्क – जो असा लक्षण कीएं अपने विषय का ग्रहण रूप व्यापार विषें जब न प्रवर्तें, तीहिं अवस्था विषै अतींद्रियपना कहना होइ ।

तहां समाधान – असें नाहीं, जातें पूर्वे ही उत्तर दीया है । रूढि करि विषय-ग्रहण व्यापार होतें वा न होतें पूर्वोक्त लक्षण संभवै है । अथवा **'स्वार्थनिरतानि इंद्रियाणि'** अर्यते कहिए जानिए, सो अर्थ, सो अपने विषें वा विषयरूप अर्थ विषें जे निरत, ते इंद्रिय हैं । सो इस लक्षण विषें कोऊ दोष नाहीं; तातें इहां किछू तर्क रूप कहना ही नाहीं । अथवा **'इंदनात् इंद्रियाणि'** इंदनात् कहिए स्वामीपना तें इंद्रिय हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द इनिका जाननेरूप ज्ञान का आवरणभूत जे कर्म, तिनिका क्षयोपशमतें अपना-अपना विषय जाननेरूप स्वामित्व कौं धरैं द्रव्येंद्रिय है कारण जिनिका, ते इंद्रिय हैं । असा अर्थ जानना । **उक्तं च**—

यदिन्द्रस्यात्मनो लिंगं यदि वेंद्रेण कर्मणा ।
सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं चेति तदिंद्रियम् ।।

याका अर्थ – इन्द्र जो है आत्मा, ताका चिह्न, सो इन्द्रिय है। अथवा इन्द्र जो कर्म, ताकरि निपज्या वा सेया वा तैसें देख्या वा दीया, सो इन्द्रिय है।

मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथानेकप्रकारतः ।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ।।

याका अर्थ – जैसें मल संयुक्त मणि की व्यक्ति अनेक प्रकार तैं हो है। तैसें कर्म संयुक्त आत्मा की जानने रूप क्रिया अनेक प्रकारतैं होय है–ऐसैं इंद्रिय शब्द की निरुक्ति का अनेक प्रकार करि वर्णन कीया। बहुरि तिनि इंद्रियनि विषैं निर्वृत्ति दोय प्रकार – अभ्यंतर, बाह्य।

तहां जो निज-निज इंद्रियावरण की क्षयोपशमता की विशेषता लीएं आत्मा के प्रदेशनि का संस्थान, सो अभ्यंतर-निर्वृत्ति है।

बहुरि तिस ही क्षेत्र विषैं जो शरीर के प्रदेशनि का संस्थान, सो बाह्य-निर्वृत्ति है।

बहुरि उपकरण भी दोय प्रकार है – अभ्यंतर, बाह्य।

तहां इन्द्रिय पर्याप्ति करि आई जो नो-कर्म वर्गणा, तिनिका स्कंधरूप जो स्पर्शादिविषय ज्ञान कौं सहकारी होइ, सो तौ अभ्यंतर-उपकरण है। अर ताके आश्रयभूत जो चामडी आदि, सो बाह्य-उपकरण है। ऐसा विशेष जानना।

आगें इनि इन्द्रियनि करि संयुक्त जीवनि कौं कहै हैं –

फासरसगंधरूवे, सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं ।
इगिबितिचदुपंचिंदिय, जीवा णियभेयभिण्णा ओ[1] ।।१६६।।

स्पर्शरसगंधरूपे, शब्दे ज्ञानं च चिह्नकं येषाम् ।
एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवाः निजभेदभिन्ना ओः ।।१६६।।

---

१. 'ओ' इति शिष्यसंबोधनार्थं प्राकृते अव्ययम्। म. प्र.

टीका – जिनि जीवनि का स्पर्श विषैं ज्ञान है, असा चिह्न होइ, ते एकेंद्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श अर रस विषैं ज्ञान है, असा चिह्न होइ ते जीव द्वींद्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श, रस, गंध विषैं ज्ञान है, असा चिह्न होइ, ते जीव तेइन्द्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण विषैं ज्ञान है; असा चिह्न होइ, ते जीव चतुरिंद्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द विषैं ज्ञान है, असा चिह्न होइ, ते जीव पंचेंद्रिय हैं। ते सर्व जीव अपने-अपने भेद करि जुदे हैं – ऐसे जानने।

आगें एकेंद्रियादिक जीवनि के केती-केती इंद्री संभवै हैं, सो कहै हैं—

एइंदियस्स फुसणं, एक्कं वि य होदि सेसजीवाणं।
होंति कमउड्ढियाइं, जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं[1] ॥१६७॥

एकेंद्रियस्य स्पर्शनमेकमपि च भवति शेषजीवानां।
भवंति क्रमवर्धितानि, जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि ॥१६७॥

टीका – इंद्रिय पंच हैं। तिनि विषैं सर्व शरीर कौं स्पर्शन कहिए। जिह्वा कौं रसना कहिए, नासिका कौं घ्राण कहिए, नेत्र कौं चक्षु कहिए, कर्ण कौं श्रोत्र कहिए।

तहां एकेंद्रिय जीव के एक स्पर्शन इंद्री ही है। बहुरि अवशेष जीवनि कैं एक-एक बधता इन्द्रिय अनुक्रमतें जानने। सो बेइंद्री के रसना इंद्री बध्या, तेइंद्री के घ्राण इंद्री बध्या, चतुरिंद्रिय कें चक्षु इन्द्रिय बध्या, पंचेंद्रिय कैं श्रोत्र इंद्रिय बध्या। जातैं एक है इन्द्रिय जिनिकैं, ते जीव एकेंद्रिय हैं। दोय हैं इन्द्रिय जिनिकैं, ते द्वींद्रिय हैं। तीन हैं इन्द्रिय जिनिकैं, ते त्रींद्रिय हैं। च्यारि हैं इन्द्रिय जिनकैं, ते चतुरिंद्रिय हैं। पांच हैं इन्द्रिय जिनकैं, ते पंचेंद्रिय हैं। ऐसे निरुक्ति हो है।

आगैं स्पर्शनादि इन्द्रियनि के विषयभूत क्षेत्र का परिमाण कहै हैं –

धणुवीसडदसयकदी, जोयणछादालहीणतिसहस्सा।
अट्ठसहस्स धणूणं, विसया दुगुणा असण्णि त्ति ॥१६८॥

चतुर्विंशत्यष्टदशकशकृतिः योजनषट्चत्वारिंशद्धीनत्रिसहस्राणि।
अष्टसहस्रं धनुषां, विषया द्विगुणा असंज्ञीति ॥ १६८ ॥

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २६१, गाथा १४२।

टीका – एकेंद्रिय जीव कैं स्पर्शन इन्द्रिय के विषय का क्षेत्र, बीस की कृति (वर्ग) च्यारि सै धनुष प्रमाण जानना। बहुरि बेइन्द्रियादिक असैनी पंचेंद्रिय पर्यंत कै दूणा-दूणा जानना, सो द्वींद्रिय कैं आठ सै धनुष। त्रींद्रिय के सोला सै धनुष। चतुरिंद्रिय कैं बत्तीस सै धनुष। असैनी पंचेंद्रिय कैं चौसठि सै धनुष-स्पर्शन इन्द्रिय का विषय-क्षेत्र जानना। इतना-इतना क्षेत्र पर्यंत तिष्ठता जो स्पर्शनरूप विषय ताकौं जानैं।

बहुरि द्वींद्रिय जीव कैं रसना इन्द्रिय का विषय-क्षेत्र, आठ की कृति चौसठि धनुष प्रमाण जानना। आगें दूणां-दूणां, सो तेइन्द्रिय कैं एक सौ अठाईस धनुष। चतुरिंद्रिय कैं दोय सै छप्पन धनुष। असैनी पंचेंद्रिय कैं पांच सै बारा धनुष–रसना इंद्रिय का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण जानना।

बहुरि ते इन्द्रिय कै घ्राण इन्द्रिय का विषयभूत क्षेत्र दश की कृति, सौ धनुष प्रमाण जाना। आगें दूणां-दूणां सो, चौइंद्री कैं दोय सै धनुष। असैनी पंचेंद्रिय कैं च्यारि सै धनुष। घ्राण इन्द्रिय का विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण जानना।

बहुरि चौ इन्द्रिय कैं नेत्र इन्द्रिय का विषय क्षेत्र छियालीस चाटि तीन हजार योजन जानना। यातैं दूणां पांच हजार नौ सै आठ योजन असैनी पंचेंद्रिय कैं नेत्र इन्द्रिय का विषयभूत क्षेत्र जानना। बहुरि असैनी पंचेंद्रिय कैं श्रोत्र इन्द्रिय का विषय क्षेत्र का परिमाण आठ हजार धनुष प्रमाण जानना।

सण्णिस्स बार सोदे, तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स।
सत्तेतालसहस्सा बेसदतेसट्ठिमदिरेया ॥ १६६ ॥

संज्ञिनो द्वादश श्रोत्रे, त्रयाणां नव योजनानि चक्षुषः।
सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशतत्रिषष्ट्यतिरेकाणि ॥१६९॥

टीका – सैनी पंचेंद्रिय कैं स्पर्शन, रसना, घ्राण इनि तीनौ इन्द्रियनि का नव-नव योजन विषय क्षेत्र है। बहुरि नेत्र इन्द्रिय का विषय क्षेत्र सैतालीस हजार दोय सै तरेसठि योजन, बहुरि सात योजन का बीसवां भागकरि अधिक है। बहुरि श्रोत्र इन्द्रिय का विषयक्षेत्र बारह योजन है।

तिण्णिसयसट्ठिविरहिद, लक्खं दशमूलताडिदे मूलं ।
णवगुणिदे सट्ठिहिदे, चक्खुप्फासस्स अद्धाणं ॥१७०॥

त्रिशतषष्टिविरहितलक्षं दशमूलताडिते मूलम् ।
नवगुणिते षष्टिहृते, चक्षुःस्पर्शस्य अध्वा ॥१७०॥

टीका – सूर्य का चार (भ्रमण) क्षेत्र पांच सै बारा योजन चौड़ा है, तामैं एक सै अस्सी योजन तौ जंबूद्वीप विषैं है । अर तीन सै बत्तीस योजन लवण समुद्र विषैं है । सो जब सूर्य श्रावण मास कर्कसंक्रांति विषैं अभ्यंतर परिधि विषैं आवै, तब जंबूद्वीप का अन्त सौ एक सौ अस्सी योजन उरै भ्रमण करै है, सो इस अभ्यंतर परिधि का प्रमाण कहै हैं – लाख योजन जंबूद्वीप का व्यास में सौं दोनों तरफ का चार क्षेत्र का परिमाण तीन सै साठि योजन घटाया, तब निन्याणवै हजार छ सै च्यालीस योजन व्यास रह्या । याका परिधि के निमित्त 'विक्खंभवग्गदहगुण' इत्यादि सूत्र अनुसारि याका वर्ग करि ताकौं दश गुणा कहिए, पीछै जो परिमाण होइ, ताका वर्गमूल ग्रहण कीजिए, यौं करतैं तीन लाख पन्द्रह हजार निवासी योजन प्रमाण याका परिधि भया, सो दोय सूर्यनि की अपेक्षा साठि मुहूर्त में इतने क्षेत्र विषैं भ्रमण होइ, तौ अभ्यंतर परिधि विषैं दिन का प्रमाण अठारह मुहूर्त, सो मध्याह्न समय सूर्य मध्य आवै तब अयोध्या की बराबर होइ; तातैं नौ मुहूर्त मैं कितने क्षेत्र में भ्रमण होइ, ऐसैं त्रैराशिक करना । इहां प्रमाणराशि साठि (६०), फलराशि (३ १५,०८९), इच्छाराशि ६ स्थापि, उस परिधि के प्रमाण कौं नौ करि गुणें, साठि का भाग दीजिए, तहां लब्ध प्रमाण सैंतालीस हजार दोय सै त्रैसठि योजन अर सात योजन का बीसवां भाग इतना चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र जानना ।

भावार्थ याका यहु है – जो अयोध्या का चक्री अभ्यंतर परिधि विषैं तिष्ठता सूर्य कौं इहांतैं पूर्वोक्त प्रमाण योजन परै देखै है । तातैं इतना चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र कह्या हैं ।

एकेंद्रियादि पंचेंद्रिय जीवनि कैं स्पर्शनादि इन्द्रियनि के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र का यंत्र

इंद्रियनि के नाम	एकेंद्रिय	द्वींद्रिय	त्रींद्रिय	चतुरिंद्रिय		असंज्ञी पंचेंद्रिय		संज्ञी पंचेंद्रिय
०	धनुष	धनुष	धनुष	धनुष	योजन	धनुष	योजन	योजन
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	०	६४००	०	९
रसन	०	६४	१२८	२५६	०	५१२	०	९
घ्राण	०	०	१००	२००	०	४००	०	९
चक्षु	०	०	०	०	२९५४	०	५९०८	४७२६३ ७ प्रमाण २० योजन
श्रोत्र	०	०	०	०	०	८०००	०	१२

आगें इन्द्रियनि का आकार कहै हैं—

चक्खू सोदं घाणं, जिब्भायारं मसूरजवणाली ।
अतिमुत्तखुरप्पसमं, फासं तु अणेयसंठाणं ॥१७१॥

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारं मसूरयवनाल्यः ।
अतिमुक्तक्षुरप्रसमं, स्पर्शनं तु अनेकसंस्थानम् ॥१७१॥

टीका – चक्षु इंद्री तौ मसूर की दालि का आकार है । बहुरि श्रोत्र इन्द्री जव की जो नाली, तीहिके आकार है । बहुरि घ्राण इन्द्रिय अतिमुक्तक जो कदंब का फूल, ताके आकार है । बहुरि जिह्वा इन्द्रिय खुरपा के आकार है । बहुरि स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकार है, जातैं पृथ्वी आदि वा बेंद्री आदि जीवनि का शरीर का आकार अनेक प्रकार हैं । तातैं स्पर्शन इन्द्रिय का भी आकार अनेक प्रकार कह्या, जातैं स्पर्शन इन्द्रिय सर्व शरीर विषैं व्याप्त है ।

आगें निर्वृत्तिरूप द्रव्येंद्रिय स्पर्शनादिकनि का आकार कह्या, सो कितने-कितने क्षेत्र प्रदेश कौं रोकैं–असा अवगाहना का प्रमाण कहै हैं –

अंगुलअसंखभागं, संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं ।
तत्तो असंखगुणिदं, अंगुलसंखेज्जयं तत्तु ।।१७२।।

अंगुलासंख्यभागं, संख्यातगुणं ततो विशेषाधिकं ।
ततोऽसंख्यगुणितमंगुलसंख्यातं तत्तु ।। १७२ ।।

टीका – घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाश प्रदेशनि कौं चक्षु इन्द्रिय रोकै है । सो घनांगुल कौं पल्य का असंख्यातवां भाग करि तौ गुणीए अर एक अधिक पल्य का असंख्यातवां भाग का अर दोय वार संख्यात का अर पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये, जो प्रमाण आवै, तितना चक्षु इन्द्रिय की अवगाहना है । बहुरि यातैं संख्यातगुणा श्रोत्र इन्द्रिय की अवगाहना है । यहां इस गुणकार करि एक बार संख्यात के भागहार का अपवर्तन करना । बहुरि याकौ पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो परिमाण आवैं, तितना उस ही श्रोत्रइंद्रिय की अवगाहना विषैं मिलाए, घ्राण इन्द्रिय की अवगाहना होइ । सो इहां इस अधिक प्रमाण करि एक अधिक पल्य का असंख्यातवां भाग का भागहार अर पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार का अपवर्तन करना । बहुरि याकौं पल्य का असंख्यातवां भाग करि गुणीए, तब जिह्वा इन्द्रिय की अवगाहना होइ । इस गुणकार करि पल्य का असंख्यातवां भागहार का अपवर्तन करना । ऐसैं यहु जिह्वा इन्द्रिय की अवगाहना घनांगुल के संख्यातवे भाग मात्र जानना ।

आगें स्पर्शन इन्द्रिय के प्रदेशनि की अवगाहना का प्रमाण कहै हैं –

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि ।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ।।१७३।।

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अंगुलासंख्यभागं, जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ।।१७३।।

टीका – स्पर्शन इन्द्रिय की जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक के उपजनैं तैं तीसरा समय विषैं जो जघन्य शरीर का अवगाहना घनांगुल के

असंख्यातवें भाग मात्र ही है, सोइ है । बहुरि उत्कृष्ट अवगाहना स्वयंभू रमण समुद्र विषै महामच्छ का उत्कृष्ट शरीर संस्थान घनांगुल मात्र ही है, सो है –

आगैं इन्द्रियज्ञानवाले जीवनि कौं कहि । अब अतींद्रिय ज्ञानवाले जीवनि का निरूपण करैं हैं –

ण वि इंदियकरणजुदा, अवग्गहादीहिं गाहया अत्थे ।
णेव य इंदियसोक्खा, अणिंदियाणंतणाणसुहा[1] ॥१७४॥

नापि इंद्रियकरणयुता, अवग्रहादिभिः ग्राहकाः अर्थे ।
नैव च इंद्रियसौख्या, अनिंद्रियानंतज्ञानसुखाः ॥१७४॥

टीका – जे जीव नियम करि इन्द्रियनि के करण भोहैं टिमकारना आदि व्यापार, तिनिकरि संयुक्त नाहीं हैं; तातैं ही अवग्रहादिक क्षयोपशम ज्ञान करि पदार्थ का ग्रहण न करैं हैं । बहुरि इन्द्रियजनित विषय संबंध करि निपज्या सुख, तिहिंकरि संयुक्त नाहीं हैं, ते अर्हंत वा सिद्ध अतींद्रिय अनंत ज्ञान वा अतींद्रिय अनंत सुखकरि विराजमान जानने; जातैं तिनिका ज्ञान अर सुख सो शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि तैं उत्पन्न भया है ।

आगैं एकेंद्रियादि जीवनि की सामान्यपनैं संख्या कहै हैं –

थावरसंखपिपीलिय, भमरमणुस्सादिगा सभेदा जे ।
जुगवारमसंखेज्जा, णंताणंता णिगोदभवा ॥१७५॥

स्थावरशंखपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादिकाः सभेदा ये ।
युगवारमसंख्येया, अनंतानंता निगोदभवाः ॥१७५॥

टीका – स्थावर जो पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पती ए – पंच प्रकार तौ एकेंद्री । बहुरि संख, कौडी, लट इत्यादि बेंद्री । बहुरि कीडी, मकोडा इत्यादि तेंद्री । बहुरि भ्रमर, माखी, पतंग इत्यादि चौ इन्द्री । बहुरि मनुष्य, देव, नारकी अर जलचरादि तिर्यंच, ते पंचेंद्री । ए जुदे-जुदे एक-एक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं । बहुरि निगोदिया जो साधारण वनस्पती रूप एकेंद्री ते अनंतानंत हैं ।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २५१, गाथा १४० ।

आगें विशेष संख्या कहै हैं । तहां प्रथम ही एकेंद्रिय जीवनि की संख्या कहै हैं —

तसहीणो संसारी, एयक्खा ताण संखगा भागा ।
पुण्णाणं परिमाणं, संखेज्जदिमं अपुण्णाणं ।।१७६।।

त्रसहीनाः संसारिणः, एकाक्षाः तेषां संख्यका भागाः ।
पूर्णानां परिमाणं, संख्येयकमपूर्णानाम् ।। १७६ ।।

टीका – सर्व जीव-राशि प्रमाण मैं स्यौं सिद्धनि का प्रमाण घटाए, संसारी-राशि होइ । सोइ संसारी जीवनि का परिमाण मैं स्यौं त्रस जीवनि का परिमाण घटाएं, एकेंद्रिय जीवनि का परिमाण हो है । बहुरि तींहि एकेंद्रिय जीवनि का परिमाण कौं संख्यात का भाग दीजिये, तामैं एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त एकेंद्रियनि का परिमाण है । बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त एकेंद्रियनि का परिमाण है ।

आगैं एकेंद्रियनि के भेदनि की संख्या का विशेष कहै हैं –

बादरसुहमा तेसिं पुण्णापुण्णे त्ति छव्विहाणं पि ।
तक्कायमग्गणाये, भणिज्जमाणक्कमो णेयो ।।१७७।।

बादरसूक्ष्मास्तेषां, पूर्णापूर्ण इति षड्विधानामपि ।
तत्कायमार्गणायां, भणिष्यमाणक्रमो ज्ञेयः ।।१७७।।

टीका – सामान्य एकेंद्रिय राशि के बादर अर सूक्ष्म ए दोय भेद । बहुरि एक-एक भेद के पर्याप्त – अपर्याप्त ए दोय-दोय भेद – असैं च्यारि भए; तिनिका परिमाण आगें कायमार्गणा विषें कहिएगा, सो अनुक्रम जानना सो कहिए हैं । सामान्य पनै एकेंद्रिय का जो परिमाण, ताकौं असंख्यात लोक का भाग दीजिए, तामैं एक भाग प्रमाण तौ बादर एकेंद्रिय जानने । अर अवशेष बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म एकेंद्रिय जानने । बहुरि बादर एकेंद्रियनिकैं परिमाण कौं असंख्यात लोक का भाग दीजिए । तामैं एक भाग प्रमाण तौ पर्याप्त हैं । अर अवशेष बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त हैं । बहुरि सूक्ष्म एकेंद्रिय का परिमाण कौं संख्यात का भाग दीजिए, तामैं एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त हैं । बहुरि अवशेष भाग प्रमाण पर्याप्त हैं । बादर विषें तौ पर्याप्त थोरे हैं; अपर्याप्त घने हैं । बहुरि सूक्ष्म विषें पर्याप्त घने हैं, अपर्याप्त थोरे हैं; असा भेद जानना ।

आगें त्रस जीवनि की संख्या तीन गाथानि करि कहै हैं—

बितिचपमाणमसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं ।
हीणकमं पडिभागो, आवलियासंखभागो दु ॥१७८॥

द्वित्रिचतुः पंचमानमसंख्येनावहितप्रतरांगुलेनहितप्रतरम् ।
हीनक्रमं प्रतिभाग, आवलिकासंख्यभागस्तु ॥१७८॥

टीका — द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय – इनि सर्व त्रसनि का मिलाया हुवा प्रमाण, प्रतरांगुल कौं असंख्यात का भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं यों करतें जितना होइ, तितना जानना । इहां द्वींद्रिय राशि का प्रमाण सर्वतें अधिक है । बहुरि तातें त्रींद्रिय विशेष घाटि है । तातें चौंइंद्रिय विशेष घाटि है । तातें पंचेंद्रिय विशेष घाटि है, सो घाटि कितने-कितने हैं – असा विशेष का प्रमाण जानने के निमित्त भागहार अर भागहार का भागहार आवली का असंख्यातवां भाग मात्र जानना ।

सो भागहार का अनुक्रम कैसें है ? सो कहिये हैं—

बहुभागे समभागो, चउण्णमेदेसिमेक्कभागह्मि ।
उत्तकमो तत्थ वि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥१७९॥

बहुभागे समभागश्चतुर्णामेतेषामेकभागे ।
उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥१७९॥

टीका — त्रस जीवनि का जो परिमाण कह्या, तीहिंनें आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये । तामें एक भाग तौ जुदा राखिये अर जे अवशेष बहु भाग रहे, तिनिके च्यारि बट (बटवारा) कीजिये, सो एक-एक बट द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रियनि कौं बरोबरि दीजिये । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग कौं भाग दीजिये । तामें एक भाग तौ जुदा राखिए अर अवशेष बहुभाग द्वींद्रियनि कौं दीजिये । जातें सर्व विषें बहुत प्रमाण द्वींद्रिय का है । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था, ताकौं बहुरि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए । तामें एक भाग तौ जुदा राखिये, बहुरि अवशेष भाग ते-इंद्रियनि कौं दीजिए । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था, ताकौं बहुरि आवली

का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये । तामैं बहु भाग तौ चौइंद्रियनि कौं दीजिए। अर एक भाग पंचेंद्रिय कौं दीजिए । असैं दीएं हूवे परिमाण कहैं ते नीचैं स्थापिए । बहुरि पूर्वं जे बराबरि च्यारि बट किए थे, तिनिकौं ऊपरि स्थापिए । बहुरि अपने-अपने नीचें ऊपरि के परिमाण कौं मिलाएं, द्वींद्रियादि जीवनि का परिमाण हो है ।

तिबिपचपुण्णपमाणं, पदरंगुलसंखभागहिदपदरं ।
हीणकमं पुण्णूणा, बितिचपजीवा अपज्जत्ता ॥१८०॥

त्रिद्विपंचचतुः पूर्णप्रमाणं, प्रतरांगुलासंख्यभागहितप्रतरम् ।
हीनक्रमं पूर्णोना, द्वित्रिचतुः पंचजीवा अपर्याप्ताः ॥१८०॥

टीका – बहुरि पर्याप्त त्रसजीव प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितने हैं, तिनि विषैं घने तौ तेइंद्रिय हैं । तीहिस्यौं घाटि द्वींद्रिय हैं । तिहिस्यौं घाटि पंचेंद्रिय हैं । तिहिसौं घाटि चौइंद्रिय हैं, सो इहां भी पूर्वोक्त **'बहुभागे समभागो'** इत्यादि सूत्रोक्त प्रकार करि सामान्य पर्याप्त त्रस-राशि कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि अवशेष बहुभागनि के च्यारि समान भाग करि, एक-एक भाग तेंद्री, बेंद्री, पंचेंद्री, चौंद्रीनि कौं देना । बहुरि तिस एक भाग कौं भागहार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि, बहुभाग तेइंद्रियनि कौं देना । बहुरि तिस एक भाग कौं भागहार का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि, बहुभाग द्वींद्रियनि कौं देना । बहुरि तिस एक भाग कौं भागहार का भाग देइ, एक भाग जुदा राखि, बहुभाग पंचेंद्रियनि देना । अर एक भाग चौइंद्रियनि कौं देना । असैं अपना-अपना समभाग ऊपरि स्थापि, देय भाग नीचै स्थापि, जोडैं, तेंद्रीं आदि पर्याप्त जीवनि का प्रमाण हो है । बहुरि पूर्वैं जो सामान्यपनैं बेइंद्रिय आदि जीवनि का प्रमाण कह्या था, तामैं सौं इहां कह्या जो अपना-अपना पर्याप्त का परिमाण सो घटाय दीएं, अपना-अपना बेंद्री आदि पंचेंद्री पर्यंत अपर्याप्त जीवनि का परिमाण हो है । सो अपर्याप्तनि विषैं घने तौ बेइंद्रिय, तिहिस्यौं घाटि तेइंद्रिय, तिहिसौं घाटि चौइंद्रिय, तिहिसौं घाटि पंचेंद्रिय हैं—असैं इनिका परीमाण कह्या ।

आठवां अधिकार : काय-मार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

चंद्रप्रभ जिन कौं भजौं चंद्रकोटि सम जोति ।
जाकै केवल लब्धि नव समवसरण जुत होति ॥

अथ काय-मार्गणा कौं कहै हैं –

जाई अविणाभावी, तसथावरउदयजो हवे काओ ।
सो जिणमदह्मि भणिओ, पुढवीकायादिछब्भेओ ॥१८१॥

जात्यविनाभावित्रसस्थावरोदयजो भवेत्कायः ।
स जिनमते भणितः, पृथ्वीकायादिषड्भेदः ॥१८१॥

टीका – एकेंद्रियादिक जाति नामा नामकर्म का उदय सहित जो त्रस-स्थावर नामा नामकर्म का उदय करि निपज्या त्रस-स्थावर पर्याय जीव कैं होइ, सो काय कहिए । सो काय छह प्रकार जिनमत विषैं कह्या है । पृथ्वीकाय १, अपकाय २, तेजकाय ३, वायुकाय ४, वनस्पतीकाय ५, त्रसकाय ६–ए छह भेद जानना ।

कायते कहिए ए त्रस हैं, ए स्थावरहै, ऐसा कहिए, सो काय जानना । तहां जो भयादिक तैं उद्वेगरूप होइ भागना आदि क्रिया संयुक्त हो है, सो त्रस कहिए । बहुरि जो भयादिक आए स्थिति क्रिया युक्त होइ, सो स्थावर कहिए । अथवा चीयते कहिए पुद्गल स्कंधनि करि संचयरूप कीजिये, पुष्टता कौं प्राप्त कीजिए, सो काय औदारिकादि शरीर का नाम काय है । बहुरि काय विषैं तिष्ठता जो आत्मा की पर्याय, ताकौं भी उपचार करि काय कहिए । जातैं जीव विपाकी जो त्रस-स्थावर प्रकृति, तिनिकैं उदय तैं जो जीव की पर्याय होइ, सो काय है । ऐसा व्यवहार की सिद्धि है । बहुरि पुद्गलविपाकी शरीर नामा नाम कर्म की प्रकृति के उदय तैं भया शरीर, ताका इहां काय शब्द करि ग्रहण नाही है ।

आगें स्थावरकाय के पांच भेद कहै हैं –

पुढवी आऊतेऊ, वाऊ कम्मोदयेण तत्थेव ।
णियवण्णचउक्कजुदो, ताणं देहो हवे णियमा ॥१८२॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकर्मोदयेन तत्रैव ।
निजवर्णचतुष्कयुतस्तेषां देहो भवेन्नियमात् ॥१८२॥

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु विशेष धरै जो नाम कर्म की स्थावर प्रकृति के भेदरूप उत्तरोत्तर प्रकृति, ताके उदय करि जीवनि के तहां ही पृथिवी, अप, तेज, वायु रूप परिणये जे पुद्गलस्कंध, तिनि विषै अपने-अपने पृथिवी आदि रूप वर्णादिक चतुष्क संयुक्त शरीर नियम करि हो हैं । असें होतैं पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेज–कायिक, वातकायिक जीव हो हैं ।

तहां पृथिवी विशेष लीए स्थावर पर्याय जिनकै होइ, ते पृथिवीकायिक कहिये । अथवा पृथिवी है काय कहिये शरीर जिनका, ते पृथिवीकायिक कहिए । असें ही अपकायिक, तेजकायिक, वातकायिक जानने । तिर्यंच गति, एकेंद्री जाति औदारिक शरीर, स्थावर काय इत्यादिक नामकर्म की प्रकृतिनि के उदय अपेक्षा असी निरुक्ति संभवै है ।

बहुरि जो जीव पूर्व पर्याय कों छोडि, पृथ्वी विषै उपजने कौं सन्मुख भया होइ, सो विग्रह गति विषै अंतराल में यावत् रहै, तावत् वाकौं पृथ्वी जीव कहिये । जातैं इहां केवल पृथिवी का जीव ही है, शरीर नाहीं ।

बहुरि जो पृथिवीरूप शरीर कौं धरैं होइ, सो पृथिवीकायिक कहिए । जातैं वहां पृथिवी का शरीर वा जीव दोऊ पाइए है ।

बहुरि जीव तौ निकसि गया होइ, वाका शरीर ही होइ, ताकौं पृथिवीकाय कहिये । जातैं वहां केवल पृथिवी का शरीर ही पाइए है । असें तीन भेद जानने ।

बहुरि अन्य ग्रंथिनि विषैं च्यारि भेद कहे हैं । तहां ए तीनों भेद जिस विषै गर्भित होंइ, सो सामान्य रूप पृथिवी असा एक भेद जानना । जातैं पूर्वोक्त तीनों भेद पृथिवी के ही हैं । असें ही अप्जीव, अप्कायिक, अप्काय । बहुरि तेज:जीव, तेज:कायिक, तेज:काय । बहुरि वातजीव, वातकायिक, वातकायरूप तीन-तीन भेद जानने ।

**बादरसुहुमुदयेण य, बादरसुहुमा हवंति तद्देहा ।
घादसरीरं थूलं, अघाददेहं हवे सुहुमं ॥१८३॥**

**बादरसूक्ष्मोदयेन च, बादरसूक्ष्मा भवंति तद्देहाः ।
घातशरीरं स्थूलं, अघातदेहं भवेत्सूक्ष्मम् ॥१८३॥**

टीका – पूर्वं कहे जे पृथिवीकायिकादिक जीव, ते बादर नामा नाम कर्म की प्रकृति के उदय तैं बादर शरीर धरैं, बादर हो है । बहुरि सूक्ष्म नामा नामकर्म की प्रकृति के उदय तैं सूक्ष्म होइ । जातैं बादर, सूक्ष्म प्रकृति जीवविपाकी हैं । तिनके उदय करि जीव कौं बादर-सूक्ष्म कहिए । बहुरि उनका शरीर भी बादर सूक्ष्म ही हो है । तहां इंद्रिय विषय का संयोग करि निपज्या सुख-दुःख की ज्यों अन्य पदार्थ करि आपका घात होइ, रुकै वा आप करि और पदार्थ का घात होइ, रुकि जाय, असा घात शरीर ताको स्थूल वा बादर-शरीर कहिए । बहुरि जो किसी कौं घातै नाहीं वा आपका घात अन्य करि जाकैं न होइ, असा अघात-शरीर, सो सूक्ष्म-शरीर कहिए । बहुरि तिनि शरीरनि के धारक जे जीव, ते घात करि युक्त है शरीर जिनिका ते घातदेह तौ बादर जानने । बहुरि अघातरूप है देह जिनका, ते अघातदेह सूक्ष्म जानने । असैं शरीरनि कैं रुकना वा न रुकना संभवै है ।

**तद्देहमंगुलस्स, असंखभागस्स विंदमाणं तु ।
आधारे थूला ओ, सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ॥१८४॥**

तद्देहमंगुलस्यासंख्यभागस्य वृंदमानं तु ।
आधारे स्थूला ओ, सर्वत्र निरंतराः सूक्ष्माः ॥१८४॥

टीका – तिनि बादर वा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेज कायिक, वातकायिक जीवनि के शरीर घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । जातैं पूर्वं जीवसमासाधिकार विषैं अवगाहन का कथन कीया है । तहां सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक की जघन्य शरीर अवगाहना तैं लगाइ बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत बियालीस स्थान कहे, तिनि सबनि विषैं घनांगुल कौं पल्य के असंख्यातवां भाग का भागहार संभवै है । अथवा तहां ही **'बीपुण्णजहण्णोत्तिय असंखसंखं गुणं तत्तो'** इस सूत्र करि बियालीसवां स्थान कौं असंख्यात का गुणकार

कीएं अगले स्थान विषें संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना हो है। तातें तिस बियालीसवां स्थान विषें घनांगुल कौं असंख्यात का भागहार प्रकट ही सिद्धि भया। तहां सूक्ष्म अपर्याप्त वातकाय की जघन्य अवगाहना वा पृथ्वीकाय बादर पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण, तहां ही जीवसमासाधिकार विषें कह्या है, सो जानना। बहुरि 'आधारे थूलाओ' आधारे कहिए अन्य पुद्गलनि का आश्रय, तींहि विषें वर्तमान शरीर संयुक्त जे जीव, ते सर्व स्थूलः कहिए बादर जानने। यद्यपि आधार करि तिनके शरीर का बादर स्वभाव रुकना न हो है; तथापि नीचें गिरना रूप जो गमन, ताका रुकना हो है, सो तहां प्रतिघात संभवै है। तातें पूर्वोक्त घातरूप लक्षण ही बादर शरीरनि का दृढ भया।

बहुरि सर्वत्र लोक विषें, जल विषें वा स्थल विषें वा आकाश विषें निरंतर आधार की अपेक्षा रहित जिनकै शरीर पाइए, ते जीव सूक्ष्म हैं। जल-स्थल रूप आधार करि तिनिकैं शरीर के गमन का नीचें ऊपरि इत्यादि कहीं भी रुकना न हो है। अत्यंत सूक्ष्म परिणमन तें ते जीव सूक्ष्म कहिए हैं। अंतरयति कहिए अंतराल करै है, ऐसा जो अंतर कहिए आधार, तातैं रहित ते निरंतर कहिए। इस विशेषण करि भी पूर्वोक्त ही लक्षण दृढ भया। 'ओ' ऐसा संबोधन पद जानना। याका अर्थ यहु– जो हे शिष्य ! ऐसें तू जानि। बहुरि यद्यपि बादर अपर्याप्त वायुकायिकादि जीवनि की अवगाहना स्तोक है। बहुरि यातें सूक्ष्म पर्याप्त वायुकायिकादिक पृथ्वी-कायिक पर्यंत जीवनि की जघन्य वा उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यात गुणी है। तथापि सूक्ष्म नामकर्म के उदय की समर्थता तें अन्य पर्वतादिक तें भी तिनिका रुकना न हो है; निकसि जाय है। जैसें जल का बिंदु वस्त्रतें निकसि जाय; रुकै नाहीं, तैसें सूक्ष्म शरीर जानना।

बहुरि बादर नामकर्म के उदय के वश तें अन्यकरि रुकना हो है। जैसें सरिसौं वस्त्र तें निकसै नाहीं, तैसें बादर शरीर जानना।

बहुरि यद्यपि ऋद्धि कौं प्राप्त भए मुनि, देव इत्यादिक, तिनिका शरीर बादर है; तौ भी ते वज्र पर्वतादिक तैं रुकैं नाहीं; निकसि जांय हैं, सो यहु तपजनित अति-शय की महिमा है, जातें तप, विद्या, मणि, मंत्र, औषधि इनिकी शक्ति के अतिशय का महिमा अचिंत्य है, सो दीखै है। ऐसा ही द्रव्यत्व का स्वभाव है। बहुरि स्वभाव विषें किछू तर्क नाहीं। यहु समस्त वादी मानै हैं। सो इहां अतिशयवानों का ग्रहण

नाहीं । तातैं अतिशय रहित वस्तु का विचार विषैं पूर्वोक्त शास्त्र का उपदेश ही बादर सूक्ष्म जीवनि का सिद्ध भया ।

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति ।
पत्तेयं सामण्णं, पदिट्ठिदिदरे त्ति पत्तेयं ॥१८५॥

उदये तु वनस्पतिकर्मणश्च जीवा वनस्पतयो भवंति ।
प्रत्येकं सामान्यं, प्रतिष्ठितेतरे इति प्रत्येकं ॥१८५॥

टीका – वनस्पती रूप विशेष कौं धरैं स्थावर नामा नामकर्म की उत्तरोत्तर प्रकृति के उदय होतैं, जीव वनस्पतीकायिक हो हैं । ते दोय प्रकार – एक प्रत्येक शरीर, एक सामान्य कहिए साधारण शरीर । तहां एक प्रति नियम रूप होइ, एक जीव प्रति एक शरीर होइ, सो प्रत्येक-शरीर है । प्रत्येक है शरीर जिनिका, ते प्रत्येक-शरीर जीव जानने । बहुरि समान का भाव, सो सामान्य, सामान्य है शरीर जिनिका ते सामान्य-शरीर जीव हैं ।

भावार्थ- बहुत जीवनि का एक ही शरीर साधारण समानरूप होइ, सो साधारण-शरीर कहिए । ऐसा शरीर जिनिकैं होइ ते साधारणशरीर जानने । तहां प्रत्येक-शरीर के दोय भेद – एक प्रतिष्ठित, एक अप्रतिष्ठित । इहां गाथा विषैं इति शब्द प्रकारवाची जानना । तहां प्रत्येक वनस्पती के शरीर बादर निगोद जीवनि करि आश्रित संयुक्त होंइ, ते प्रतिष्ठित जानने । जे बादर निगोद के आश्रित होंइ, ते अप्रतिष्ठित जानने ।

मूलग्गपोरबीजा, कंदा तह खंदबीजबीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया, पत्तेयाणंतकाया य ॥१८६॥

मूलाग्रपर्वबीजाः, कंदास्तथा स्कंधबीजबीजरुहाः ।
सम्मूर्छिमाश्च भणिताः, प्रत्येकानंतकायाश्च ॥१८६॥

टीका – जिनिका मूल जो जड़, सोइ बीज होइ, ते आदा, हलद आदि मूल-बीज जानने । बहुरि जिनिका अग्र, जो अग्रभाग सो ही बीज होइ ते आर्यक आदि अग्रबीज जानने । बहुरि जिनिका पर्व जो पेली, सो ही बीज होइ, ते सांठा आदि पर्वबीज जानने । बहुरि कंद है, बीज जिनिका, ते पिंडालु, सूरण आदि कंदबीज

जानने। बहुरि स्कंध, जो पेड, सो ही है बीज जिनिका ते सालरि, पलास आदि स्कंध-बीज जानने। बहुरि जे बीज ही तें लगें ते गेहू, शालि आदि बीजरुह जानने। बहुरि जे मूल आदि निश्चित बीज की अपेक्षा तें रहित, आपै आप उपजैं ते सम्मूर्छिम कहिए, समंततैं भए पुद्गल स्कंध, तिनि विषैं उपजैं, अैसैं दोब आदि सम्मूर्छिम जानने।

अैसें ए कहे ते सर्व ही प्रत्येक वनस्पती हैं। ते अनंत जे निगोद जीव, तिनके 'कायः' कहिए शरीर जिनिविषैं पाइए अैसें 'अनंतकायाः' कहिए प्रतिष्ठित-प्रत्येक हैं। बहुरि चकार तैं अप्रतिष्ठित-प्रत्येक हैं। अैसैं प्रतिष्ठित कहिए साधारण शरीरनि करि आश्रित है, प्रत्येक शरीर जिनका ते प्रतिष्ठित-प्रत्येक-शरीर हैं। बहुरि तिनकरि आश्रित नाहीं हैं, प्रत्येक-शरीर जिनिका, ते अप्रतिष्ठित-प्रत्येक-शरीर हैं। अैसे ए मूलबीज आदि संमूर्छिम पर्यंत सर्व दोय-दोय अवस्था लीएं जानने। बहुरि कोऊ जानैगा कि इनिविषैं संमूर्छिम कै तौ संमूर्छिम जन्म होगा, अन्यकै गर्भादिक होगा, सो नाहीं है। ते सर्व ही प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीरी जीव संमूर्छिम ही हैं। बहुरि प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर की सर्वोत्कृष्ट भी अवगाहना घनांगुल के असंख्यात भाग मात्र ही है। तातैं पूर्वोक्त आदा आदि देकरि एक-एक स्कंध विषै असंख्यात प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पाइए हैं। कैसें? घनांगुल कौं दोय बार पल्य का असंख्यातवां भाग, अर नव बार संख्यात का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितनैं क्षेत्र विषैं जो एक प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर होइ, तो संख्यात घनांगुल प्रमाण आदा, मूला आदि स्कंध विषैं केते पाइए? अैसें त्रैराशिक कीएं, लब्ध राशि दोय बार पल्य का असंख्यातवां भाग, दश बार संख्यात मांडि, परस्पर गुणैं, जितना प्रमाण होइ, तितने एक-एक आदा आदि स्कंध विषैं प्रतिष्ठित प्रत्येक-शरीर पाइए हैं। बहुरि एक स्कंध विषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती जीवनि कैं शरीर यथासंभव असंख्यात भी होंइ, वा संख्यात भी होंइ। बहुरि जेते प्रत्येक शरीर हैं, तितने ही तहां वनस्पती जीव जानने; जातैं तहां एक-एक शरीर प्रति एक-एक ही जीव होने का नियम है।

बीजे जोणीभूदे, जीवो चंकमदि सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए ॥१८७॥

बीजे योनीभूते, जीवः चंक्रामति स वा अन्यो वा।
येऽपि च मूलादिकास्ते प्रत्येकाः प्रथमतायाम् ॥१८७॥

टीका – बीजे कहिए पूर्वै जे कहे, मूल कौं आदि देकरि, बीज पर्यंत बीजजीव उपजने का आधारभूत पुद्गल स्कंध, सो योनीभूते कहिए; जिस विषैं जीव उपजैं असी शक्ति संयुक्त होतें संतें जल वा कालादिक का निमित्त पाइ, सोई जीव वा और जीव आनि उपजैं हैं।

भावार्थ – पूर्वैं जो बीज विषैं जीव तिष्ठै था, सो जीव तौ निकसी गया अर उस बीज विषैं असी शक्ति रही जो इस विषैं जीव आनि उपजैं, तहां जलादिक का निमित्त होतें पूर्वैं जो जीव उस बीज कौं अपना प्रत्येक शरीर करि पीछैं अपना आयु के नाश तैं मरण पाइ निकसि गया था, सोई जीव बहुरि तिस ही अपने योग्य जो मूलादि बीज, तीहि विषैं आनि उपजै है। अथवा जो वह जीव और ठिकानै उपज्या होइ, तौ इस बीज विषैं अन्य कोई शरीरांतर विषैं तिष्ठता जीव अपना आयु के नाश तैं मरण पाइ, आनि उपजै है। किछु विरोध नाहीं।

जैसें गेहूं विषैं जीव था, सो निकसि गया। बहुरि याकौं बोया, तब उस ही विषैं सोई जीव वा अन्य जीव आनि उपज्या; सो यावत् काल जीव उपजने की शक्ति होइ तावत् काल योनीभूत कहिए। बहुरि जब ऊगने की शक्ति न होइ तब अयोनी-भूत कहिए, असा भेद जानना। बहुरि जे मूलनै आदि देकरि वनस्पति काय प्रत्येक रूप प्रसिद्धित प्रसिद्ध हैं। तेऊ प्रथम अवस्था विषैं जन्म के प्रथम समय तैं लगाइ अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत अप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहै हैं। पीछैं निगोदजीव जब आश्रय करैं हैं, तब सप्रतिष्ठित प्रत्येक होय हैं।

आगैं श्री माधवचंद्र नामा आचार्य त्रैविद्यदेव सो सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित जीवनि का विशेष लक्षण तीन गाथानि करि कहै हैं—

गूढसिरसंधिपव्वं, समभंगमहीरुहं (यं) च छिण्णरुहं।
साहारणं सरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥१८८॥

गूढशिरासंधिपर्व, समभंगमहीरुकं च छिन्नरुहम् ।।
साधारणं शरीरं, तद्विपरीतं च प्रत्येकम् ॥१८८॥

टीका – जिस प्रत्येक वनस्पती शरीर का सिरा, संधि, पर्व, गूढ होइ; बाह्य दीखै नाहीं, तहां सिरा तौ लंबी लकीरसी जैसैं कांकडी विषैं होइ। बहुरि संधि बीचि

में छेहा जैसें दाड्यौ वा नारंगी विषें हो है। बहुरि पर्व, गांठि जैसें सांठा विषें हो है, सो कच्ची अवस्था विषें जाकैं ए बाह्य दीखैं नाहीं, ऐसा वनस्पती बहुरि समभंग कहिए जाका टूक ग्रहण कीजिये, तो कोऊ तातू लगा न रहै, समान बराबरि टूटै असा। बहुरि अहीरुहं कहिए जाके विषें सूत सारिखा तातू न होइ अैसा। बहुरि छिन्नरुहं कहिए जो काट्या हुवा ऊगै अैसा वनस्पती सो साधारण है। इहां प्रतिष्ठित प्रत्येक साधारण जीवनि करि आश्रित की उपचार करि साधारण कह्या है। बहुरि तद्विपरीतं कहिये पूर्वोक्त गूढ, सिरा आदि लक्षण रहित नालियर, आम्रादि शरीर अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर जानना। गाथा विषें कह्या है जो चकार सो इस भेद कौं सूचै है।

मूले कंदे छल्ली, पवाल सालदलकुसुम फलबीजे।
समभंगे सदि णंता, असमे सदि होंति पत्तेया ॥१८६॥

मूले कंदे त्वक्प्रवालशालादलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सति नांता, असमे सति भवंति प्रत्येकाः ॥१८९॥

टीका – मूल कहिये जड़, कंद कहिये पेड़, छल्ली कहिए छालि, प्रवाल कहिए कोंपल, अंकुरा; शाला कहिए छोटी डाहली, शाखा कहिए बड़ी डाहली, दल कहिए पान, कुसुम कहिए फूल, फल कहिए फल, बीज कहिये जातैं फेरि उपजैं, सो बीज; सो ए समभंग होइ, तो अनंत कहिए; अनंतकायरूप प्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। बहुरि जो मूल आदि वनस्पती समभंग न होइ, सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। जीहि वनस्पति का मूल, कंद, छाल इत्यादिक समभंग होइ, सो प्रतिष्ठित प्रत्येक है। अर जाका समभंग न होइ सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। तोड्या थका तांतू कोई लग्या न रहै, बराबरि टूटै, सो समभंग कहिए।

कंदस्स व मूलस्स व, सालाखंदस्स वावि बहुलतरी।
छल्ली साणंतजिया, पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥१९०॥

कंदस्य वा मूलस्य वा, शालास्कंधस्य वापि बहुलतरी।
त्वक् सा अनंतजीवा, प्रत्येकजीवास्तु तनुकतरी ॥१९०॥

टीका – जिस वनस्पती का कंद की वा मूल की वा क्षुद्र शाखा की वा स्कंध की छालि मोटी होइ, सो अनंतकाय है। निगोद जीव सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक

है। बहुरि जिस वनस्पती का कंदादिक की छालि पतली होइ, सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है।

आगें श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती साधारण वनस्पती का स्वरूप सात गाथानि करि कहै हैं—

साहारणोदयेण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा।
ते पुण दुविहा जीवा, बादर सुहमा त्ति विण्णेया ॥१९१॥

साधारणोदयेन निगोदशरीरा भवंति सामान्याः।
ते पुनर्द्विविधा जीवा, बादर-सूक्ष्मा इति विज्ञेयाः ॥१९१॥

टीका – साधारण नामा नामकर्म की प्रकृति के उदय तें निगोद शरीर के धारक साधारण जीव हो हैं। नि – कहिये नियतज अनंते जीव, तिनिकौं गो कहिये एक ही क्षेत्र कौं, द कहिये देइ, सो निगोद शरीर जानना। सो जिनकै पाइए ते निगोदशरीरी हैं। बहुरि तेई सामान्य कहिये साधारण जीव हैं। बहुरि ते बादर अर सूक्ष्म असे भेद तैं दोय प्रकार पूर्वोक्त बादर सूक्ष्मपना लक्षण के धारक जानने।

साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं भणियं[1] ॥१९२॥

साधारणमाहारः, साधारणमानपानग्रहणं च।
साधारणजीवानां, साधारणलक्षणं भणितम् ॥१९२॥

टीका – साधारण नामा नामकर्म के उदय के वशवर्ती, जे साधारण जीव, तिनिके उपजते पहला समय विषै आहार पर्याप्ति हो है; सो साधारण कहिए अनंत जीवनि कैं युगपत एक काल हो है। सो आहार पर्याप्ति का कार्य यहु जो आहार वर्गणारूप जे पुद्गल स्कंध, तिनिकौं खल-रस भागरूप परिणमावै है। बहुरि तिनही आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि कौं शरीर के आकार परिणमावनेरूप है कार्य जाका, असा शरीर पर्याप्ति, सो भी तिनि जीवनि के साधारण हो है। बहुरि तिनही कौं स्पर्शन इंद्रिय के आकार परिणमावना है कार्य जाका, असा इन्द्रिय पर्याप्ति, सो भी साधारण हो है। बहुरि सासोस्वास ग्रहणरूप है कार्य जाका, असा आनपान

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७२, गाथा १४५

पर्याप्ति, सो भी साधारण हो है । बहुरि एक निगोद शरीर है, तीहि विषैं पूर्वै अनंत जीव थे । बहुरि दूसरा, तीसरा आदि समय विषैं नये अनंत जीव उस ही विषैं अन्य आनि उपजें, तौ तहां जैसें वे नये उपजे जे जीव आहार आदि पर्याप्ति कौं धरै हैं, तैसें ही पूर्वै पूर्वै समय विषैं उपजे थे जे अनंतानंत जीव, ते भी उन ही की साथि आहारादिक पर्याप्तिनि कौं धरै हैं सदृश युगपत् सर्व जीवनि के आहारादिक हो है । तातैं इनिकौं साधारण कहिये है । सो यह साधारण का लक्षण पूर्वाचार्यनि करि कह्या हूवा जानना ।

[१] जत्थेक्क मरइ जीवो, तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।
वक्कमइ जत्थ एक्को, वक्कमणं तत्थ णंताणं ॥१९३॥

यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र तु मरणं भवेदनंतानाम् ।
प्रक्रामति यत्र एकः, प्रक्रमणं तत्रानंतानाम् ॥१९३॥

टीका – एक निगोद शरीर विषैं जिस काल एक जीव अपना आयु के नाश तैं मरै, तिसही काल विषैं जिनकी आयु समान होइ, ऐसे अनंतानंत जीव युगपत् मरै हैं । बहुरि जिस काल विषैं एक जीव तहां उपजै है, उस ही काल विषैं उस ही जीव की साथि समान स्थिति के धारक अनंतानंत जीव उपजैं हैं, ऐसैं उपजना मरना का सम-कालपना कौं भी साधारण जीवनि का लक्षण कहिए है । बहुरि द्वितीयादि समयनि विषैं उपजे अनंतानंत जीवनि का भी अपना आयु का नाश होतैं साथि ही मरना जानना । ऐसैं एक निगोद शरीर विषैं समय-समय प्रति अनंतानंत जीव साथि ही मरै हैं; साथि ही उपजै हैं । निगोद शरीर ज्यों का त्यों रहै है; सो निगोद शरीर की उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात कोडाकोडी सागरमात्र है । सो असंख्यात लोकमात्र समय प्रमाण जानना । सो स्थिति यावत् पूर्ण न होइ तावत् ऐसैं ही जीवनि का उपजना, मरना हुवा करै है ।

इतना विशेष – जो कोई एक बादर निगोद शरीर विषैं वा एक सूक्ष्म निगोद शरीर विषैं अनंतानंत जीव केवल पर्याप्त ही उपजै हैं । तहां अपर्याप्त नाहीं उपजैं है । बहुरि कोई एक शरीर विषैं केवल अपर्याप्त ही उपजै हैं; तहां पर्याप्त नाहीं उपजै हैं । एक शरीर विषैं पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ नाहीं उपजैं है । जातैं तिन जीवनि के समान कर्म के उदय का नियम है ।

---

१. 'जत्थेवु मक्कमदि', इति षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७२, गाथा १४६ ।

बहुरि एक साधारण जीव कैं कर्म का ग्रहण शक्तिरूप लक्षण धरै, जो काय योग, ताकरि ग्रह्या हुवा, जो पुद्गल-पिंड, ताका उपकार कार्य, सो तिस शरीर विषैं तिष्ठते अनंतानंत अन्य जीवनि का अर तिस जीव का उपकारी हो है । बहुरि अनंतानंत साधारण जीवनि का जो काय योग रूप शक्ति, ताकरि ग्रहे हूये पुद्गलपिंडनि का कार्यरूप उपकार, सो कोई एक जीव का वा तिन अनंतानंत साधारण जीवनि का उपकारी समान एकै साथि-पनै हो है । बहुरि एक बादर निगोद शरीर विषैं वा सूक्ष्म निगोद शरीर विषैं क्रम तैं पर्याप्त बादर निगोद जीव वा सूक्ष्म निगोद जीव उपजैं हैं । तहां पहले समय अनंतानंत उपजैं हैं । बहुरि दूसरे समय तिनतैं असंख्यात गुणा घाटि उपजैं हैं । असैं ही आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल पर्यंत समय-समय प्रति निरंतर असंख्यात गुणा घाटि क्रमकरि जीव उपजै है । तातैं परैं जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल का अंतराल हो है । तहां कोऊ जीव न उपजै है । तहां पीछैं बहुरि जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल पर्यंत निरंतर असंख्यात गुणा घाटि क्रम करि तिस निगोद शरीर विषैं जीव उपजैं हैं । असैं अन्तर सहित वा निरंतर निगोद शरीर विषैं जीव उपजैं हैं । सो यावत् प्रथम समय विषैं उपज्या साधारण जीव का जघन्य निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था का काल अवशेष रहै, तावत् असैं ही उपजना होइ । बहुरि पीछैं तिनि प्रथमादि समयनि विषैं उपजे सर्व साधारण जीव, तिनिकैं आहार, शरीर, इंद्रिय, सासोस्वास, पर्याप्तिनि की संपूर्णता अपने-अपने योग्य काल विषैं होइ है ।

खंधा असंखलोगा, अंडरआवासपुलविदेहा वि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ, असंखलोगेण गुणिदकमा ।१९४।।

स्कंधा असंख्यलोकाः, अंडरावासपुलविदेहा अपि ।
अधस्तनयोनिका, असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ।।१९४।।

टीका – बादर निगोद जीवनि के शरीर की संख्या जानने निमित्त उदाहरण-पूर्वक यहु कथन करिए है । इस लोकाकाश विषैं स्कंध यथा योग्य असंख्यात लोक प्रमाण है । जे प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवनि के शरीर, तिनिकौं स्कंध कहिये हैं । सो यहु यथा योग्य असंख्यात करि लोक के प्रदेश गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर इस लोक विषैं जानने । बहुरि एक-एक स्कंध विषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर हैं ।

इहां प्रश्न – जो एक स्कंध विषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर कैसैं संभवै ?

ताका समाधान – यहु अवगाहन की समर्थता है । जैसैं जगत श्रेणी का घन प्रमाण लोक के प्रदेशनि विषैं अनंतानंत पुद्गल परमाणू पाइए । जैसैं जहां एक निगोद जीव का कार्माण स्कंध है, तहां ही अनंतानंत जीवनि के कार्माण शरीर पाइये है । तैसैं ही एक-एक स्कंध विषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर हैं । जे प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर के अवयवरूप विशेष हैं । जैसैं मनुष्य शरीर विषैं हस्तादिक हो हैं, तैसैं स्कंध विषैं अन्डर जानने । बहुरि एक-एक अन्डर विषैं असंख्यात लोक प्रमाण आवास पाइए है । ते आवास भी प्रतिष्ठित प्रत्येक के शरीर के अवयव रूप विशेष ही जानने । जैसैं हस्त विषैं अंगुरी आदि हो हैं । बहुरि एक-एक आवास विषैं असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं । ते पुणि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर के अवयव रूप विशेष ही जानने । जैसैं एक अंगुली विषैं रेखा आदि हो हैं । बहुरि एक-एक पुलवी विषैं असंख्यात लोक प्रमाण बादर निगोद के शरीर जानने । ऐसैं ए अंडरादिक अधस्तन योनि कहे । इनि विषैं अधस्तन जो पीछै कह्या भेद, ताकी संख्या की उत्पत्ति कौं कारण ऊपरि का भेद जानना । ऐसैं तहां एक स्कंध विषैं असंख्यात लोक प्रमाण अन्डर हैं, तौ असंख्यात लोक प्रमाण स्कंधन विषैं केते अंडर हैं ? ऐसैं त्रैराशिक करि लब्धराशि असंख्यात लोक गुणे असंख्यात लोक प्रमाण अंडर जानने । बहुरि ऐसैं ही आवासादि विषैं त्रैराशिक कीएं तिनतैं असंख्यात लोक गुणे आवास जानने । बहुरि तिनतैं असंख्यात लोक गुणे पुलवी जानने । बहुरि तिनतैं असंख्यात लोक गुणे बादर निगोद शरीर जानने । ते सर्व निगोद शरीर पांच जायगा असंख्यात लोक मांडि, परस्पर गुणैं, जेता प्रमाण होइ तितने जानने ।

जंबूदीवं भरहो, कोसलसागेदतग्घराइं वा ।
खंधंडरआवासा, पुलविसरीराणि दिट्ठंता ॥१९५॥

जंबूद्वीपो भरतः कोशल साकेततद्गृहाणि वा ।
स्कंधांडरावासाः, पुलविशरीराणि दृष्टांताः ॥१९५॥

टीका – स्कंधनि का दृष्टांत जंबूद्वीपादिक जानने । जैसैं मध्य लोक विषैं जंबूद्वीपादिक द्वीप हैं, तैसैं लोक विषैं स्कंध हैं । बहुरि अंडरनि का दृष्टांत भरतादि क्षेत्र जानने । जैसैं एक जंबूद्वीप विषैं भरतक्षेत्र आदि क्षेत्र पाइए; तैसैं स्कंध विषैं

अंडर जानने । बहुरि आवासनि का दृष्टांत कोशल आदि देश जानने । जैसें भरतक्षेत्र विषें कोशल देश आदि अनेक देश पाइए, तैसें अंडर विषें आवास जानने । बहुरि पुलवीनि का दृष्टांत अयोध्यादि नगर जानने । जैसें एक कोशलदेश विषें अयोध्या नगर आदि अनेक नगर पाइए, तैसें आवास विषें पुलवी जानने । बहुरि शरीरनि का दृष्टांत अयोध्या के गृहादिक जानने; जैसें अयोध्या विषें मंदरादिक पाइए, तैसें पुलवी विषें बादर निगोद शरीर जानने । बहुरि वा शब्द करि बहु दृष्टांत दीया । असें ही और कोऊ उचित दृष्टांत जानने ।

एगणिगोदसरीरे, जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहिं अणंतगुणा, सव्वेण वितीदकालेण[1] ।।१९६।।

एकनिगोदशरीरे, जीवा द्रव्यप्रमाणतो दृष्टाः ।
सिद्धैरनंतगुणाः सर्वेण व्यतीतकालेन ।।१९६।।

टीका – एक निगोद शरीर विषें वर्तमान निगोद जीव, ते द्रव्यप्रमाण, जो द्रव्य अपेक्षा संख्या, तातैं अनंतानंत है; सर्व जीव राशि कौं अनंत का भाग दीजिए, तामैं एक भाग प्रमाण सिद्ध हैं । सो अनादिकाल तैं जेते सिद्ध भए, तिनितैं अनंता गुणे हैं । बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण संसारी है । तिनके असंख्यातवें भाग प्रमाण एक निगोद शरीर विषें जीव विद्यमान हैं, ते अक्षयानंत प्रमाण हैं । असें परमागम विषें कहिए है ।

बहुरि तैसें ही अतीतकाल के समयनि तैं अनंत गुणे हैं । इस करि काल अपेक्षा एक शरीर विषें निगोदजीवनि की संख्या कही ।

बहुरि असें ही क्षेत्र, भाव अपेक्षा तिनकी संख्या आगम अनुसारि जोडिए । तहां क्षेत्र प्रमाण तैं सर्व आकाश के प्रदेशनि के अनंतवें भाग वा लोकाकाश के प्रदेशनि तैं अनंत गुणे जानने ।

भाव प्रमाण तैं केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि के अनंतवें भाग अर सर्वावधि ज्ञान गोचर जे भाव, तिनितैं अनंत गुणे जानने । असें एक निगोद शरीर विषें जीवनि का प्रमाण कह्या ।

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७३, गाथा १४७ तथा पृष्ठ ३९६ गाथा २१० तथा धवला पुस्तक ४, पृष्ठ ४७६ गाथा ४३.

इहां प्रश्न – जो छह महीना अर साठ समय के मांही छः सै आठ जीव कर्म नाश करि सिद्ध होइ, सो अैसें सिद्ध बधते जांहि संसारी घटते जांहि, तातैं तुम सदा काल सिद्धनि तें अनंत गुणे एक निगोद शरीर विषैं जीव कैसे कहो हो ? सर्व जीव राशि तें अनंत गुणां अनागत काल का समय समूह है। सो यथायोग्य अनंतवां भाग प्रमाण काल गए, संसारी-राशि का नाश अर सिद्ध-राशि का बहुत्व होइ, तातैं सर्वदा काल सिद्धनि तें निगोद शरीर विषैं निगोद जीवनि का प्रमाण अनंत गुणा संभवै नांही ?

ताका समाधान – कहै हैं – रे तर्किक भव्य! संसारी जीवनि का परिमाण अक्षयानंत है। सो केवली केवल ज्ञान दृष्टि करि अर श्रुतकेवली श्रुतज्ञान दृष्टि करि अैसें ही देखा है। सो यह सूक्ष्मता तर्क गोचर नांही; जातैं प्रत्यक्ष प्रमाण अर आगम प्रमाण करि विरुद्ध होइ, सो तर्क अप्रमाण है जैसे किसी ने कह्या अग्नि उष्ण नाहीं; जाते अग्नि है, सो पदार्थ है; जो जो पदार्थ है, सो सो उष्ण नाहीं; जैसें जल उष्ण नाहीं है; अैसी तर्क करी, परि यहु तर्क प्रत्यक्ष प्रमाण करि विरुद्ध है। अग्नि प्रत्यक्ष उष्ण है; तातैं यहु तर्क प्रमाण नाहीं। बहुरि किसीने कह्या धर्म है परलोक विषैं दुःखदायक है; जातैं धर्म है, सो पुरुषाश्रित है। जो जो पुरुषाश्रित है, सो सो परलोक विषैं दुःखदायक है, जैसें अधर्म है; अैसी तर्क करी, परि यहु तर्क आगम प्रमाण करि खंडित है। आगम विषैं धर्म परलोक विषैं सुख दायक कह्या है; तातैं प्रमाण नहीं। अैसें ही जे केवली प्रत्यक्ष अर आगमोक्त कथन तातैं विरुद्ध तेरी तर्क प्रमाण नाहीं।

इहां बहुरि तर्क करी–जो तर्क करि विरोधी आगम कैसें प्रमाण होइ ?

ताका समाधान–जो प्रत्यक्ष प्रमाण अर अन्य तर्क प्रमाण करि संभवता जो आगम, ताकैं अविरुद्धपणां करि प्रमाणपना हो है। सो सो अन्य तर्क कहा ? सो कहिए है-सर्व भव्य संसारी राशि अनंतकाल करि भी क्षय कौं प्राप्त न होइ; जातैं यहु राशि अक्षयानंत है। जो जो अक्षयानंत है, सो सो अनंतकाल करि भी क्षयकौं प्राप्त न होइ। जैसें तीन काल के समयनि का परिमाण कह्या कि इतनां है, परि कबहूं अंत नाहीं वा सर्वद्रव्यनि का अगुरुलघु के अविभाग प्रतिच्छेद के समूह का परिमाण कह्या, परि अंत नहीं। तैसें संसारी जीवनी का भी अक्षयानंत प्रमाण जानना। अैसा यहु अनुमान तें आया जो तर्क, सो प्रमाण है।

बहुरि प्रश्न–जो अनंतकाल करि भी क्षय न होना साध्य, सो अक्षयानंत के हेतु तैं दृढ कीया । तातैं इहां हेतु कै साध्यसमत्व भया ?

ताका समाधान–भव्यराशि का अक्षयानंतपना आप्त के आगम करि सिद्ध है । तातैं साध्यसमत्व का अभाव है । बहुत कहने करि कहा ? सर्व तत्त्वनि का वक्ता पुरुष जो है आप्त, ताकी सिद्धि होतैं तिस आप्त के वचनरूप जो आगम, ताकी सूक्ष्म, अंतरित, दूरि पदार्थनि विषै प्रमाणता की सिद्धि हो है । तातैं तिस आगमोक्त पदार्थनि विषै मेरा चित्त निस्संदेह रूप है । बहुत वादी होने करि कहा साध्य है ?

बहुरि आप्त की सिद्धि कैसे ?

सो कहिए है 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' ऐसा वेद का वचन करि, बहुरि **'प्रणम्य शंभुं'** इत्यादि नैयायिक वचन करि, बहुरि **'बुद्धो भवेयं'** इत्यादि बौद्ध वचन करि, बहुरि **मोक्षमार्गस्य नेतारं**, इत्यादि जैन वचन करि, बहुरि अन्य अपना-अपना मत का देवता का स्तवनरूप वचननि करि सामान्यपनैं सर्व मतनि विषैं आप्त मानैं है । बहुरि विशेषपनैं अर्हंत, वीतरागदेव स्याद्वादी ही आप्त है । ताका युक्ति करि साधन कीया है । सो विस्तार तैं स्याद्वादरूप जैन न्यायशास्त्र विषैं आप्त की सिद्धि जाननी । ऐसैं ही निश्चयरूप जहाँ खंडने वाला प्रमाण न संभवै है, तातैं आप्त अर आप्त करि प्ररूपित आगम की सिद्धि हो है । तातैं आप्त आगम करि प्ररूपित ज्यो मोक्षतत्त्व अर बंधतत्त्व सो अवश्य प्रमाण करना ऐसैं आगम प्रमाण तैं एक शरीर विषै निगोद जीवनि कै सिद्ध-राशि तैं अनंत गुणापनो संभवै है । बहुरि अक्षयानंत-पना भी सर्व मतवाले मानैं है । कोऊ ईश्वर विषै मानैं है । कोऊ स्वभाव विषैं मानैं है । तातैं कह्या हूवा कथन प्रमाण है ।।

अत्थि अणंता जीवा, जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकसुपउरा, णिगोदवासं ण मुंचंति[1] ।।१९७ ।।

संति अनंता जीवा, यैर्न प्राप्तस्त्रसानां परिणामः ।
भावकलंकसुप्रचुरा, निगोदवासं न मुंचंति ।। १९७ ।।

---

१. षट्खण्डागम धवला पुस्तक १, पृष्ठ २७३, गाथा १४८ षट्खण्डागम-धवला पुस्तक ४ पृष्ठ ४७७ गाथा ४२ किन्तु तत्र भावकलं-कंपउरा इति पाठः ।

टीका – इस गाथा विषैं नित्यनिगोद का लक्षण कह्या है। अनादि संसार विषैं निगोद पर्याय ही कौं भोगवते अनंते जीव नित्यनिगोद नाम धारक सदाकाल हैं। ते कैसे हैं ? जिनि करि त्रस जे बेइंद्रियादिक, तिनिका परिणाम जो पर्याय, सो कबहूं न पाया। बहुरि भाव जो निगोद पर्याय, तिहिनै कारणभूत जो कलंक कहिये कषायनि का उदय करि प्रगट भया अशुभ लेश्यारूप, तीहिं करि प्रचुरा कहिये अत्यंत संबंधरूप हैं। असैं ए नित्यनिगोद जीव कदाचित् निगोदवास कौं न छोडै हैं। याहीतैं निगोद पर्याय कैं आदि अंत रहितपनां जानि, अनंतानंत जीवनि कैं नित्य निगोदपना कह्या। नित्य विशेषण करि अनित्य निगोदिया चतुर्गति निगोदरूप आदि अंत निगोद पर्याय संयुक्त केई जीव हैं, असा सूचै है। जातैं **णिच्चचदुग्गदिणिगोद** इत्यादिक परमागम विषैं निगोद जीव दोय प्रकार कहै हैं।

भावार्थ – जे अनादि तैं निगोद पर्याय ही कौं धरैं हैं, ते नित्यनिगोद जीव हैं। बहुरि बीचि अन्य पर्याय पाय, बहुरि निगोद पर्याय धरैं, ते इतर निगोद जीव जानना। सो वे आदि अंत लीये हैं। बहुरि जिनिके प्रचुर भाव कलंक है, ते निगोद-वास कौं न छांडैं, सो इहां प्रचुर शब्द है, सो एकोदेश का अभावरूप है, सकल अर्थ का वाचक है; तातैं याकरि यहु जान्या, जिनकै भाव कलंक थोरा हो है, ते जीव कदाचित् नित्यनिगोद तैं निकसि, चतुर्गति में आवै हैं। सो छह महीना अर आठ समय मैं छः सै आठ जीव नित्यनिगोद मैं सौं निकसैं हैं, सो ही छह महीना आठ समय मैं छः सै आठ जीव संसार सौं निकसि करि मुक्ति पहुँचै हैं ॥ १९७ ॥

आगें त्रसकाय की प्ररूपणा दोय गाथा करि कहै हैं—

विहि तिहि चदुहिं पंचहिं, सहिया जे इंदिएहिं लोयह्मि।
ते तसकाया जीवा, णेया वीरोवदेसेण ॥१९८॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पंचभिः सहिता ये इंद्रियैर्लोके।
ते त्रसकाया जीवा, ज्ञेया वीरोपदेशेन ॥ १९८ ॥

टीका – दोय इंद्री स्पर्शन–रसन, तिनि करि संयुक्त द्वींद्रिय, बहुरि तीन इंद्रिय स्पर्शन–रसन–घ्राण, तिनि करि संयुक्त त्रींद्रिय, बहुरि च्यारि इंद्रिय स्पर्शन–रसन घ्राण–चक्षु, इनि करि संयुक्त चतुरिंद्रिय बहुरि पांच इंद्रिय स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्र, इनि करि संयुक्त पचेंद्रिय, ए कहे जे जीव, ते त्रसकाय जानने। असैं श्री वर्धमान

तीर्थंकर परमदेव के उपदेश तें परंपराय क्रम करि चल्या आया संप्रदाय करि शास्त्र का अर्थ धरि करि हमहूं कहे हैं; ते जानने ।।

उववादमारणंतिय, परिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसणालिबाहिरह्मि य, णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।। १९९ ।।

उपपादमारणांतिकपरिणतत्रसमुज्झित्वा शेषत्रसाः ।
त्रसनालीबाह्ये च, न संतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।। १९९ ।।

टीका – विवक्षित पर्याय का पहला समय विषैं पर्याय की प्राप्ति, सो उपपाद कहिए । बहुरि मरण जो प्राण त्याग अर अंत जो पर्याय का अंत जाकै होइ, सो मरणांतकाल, वर्तमान पर्याय के आयु का अंत अंतर्मुहूर्त मात्र जानना । तीहि मरणांतकाल विषैं उपज्या, सो मारणांतिकसमुद्घात कहिए । आगामी पर्याय के उपजने का स्थान पर्यंत आत्मप्रदेशनि का फैलना, सो मारणांतिकसमुद्घात जानना । असा उपपादरूप परिणम्या अर मारणांतिक समुद्घातरूप परिणम्या अर चकार तैं केवल समुद्घात रूप परिणम्या जो त्रस, तीहि बिना स्थाननि विषैं अवशेष स्वस्थान-स्वस्थान अर विहारवत्स्वस्थान अर अवशेष पांच समुद्घातरूप परिणमे सर्व ही त्रस-जीव, त्रसनाली बारै जो लोक क्षेत्र, तीहि विषैं न पाइए हैं; असा जिन जे अर्हंतादिक, तिनिकरि कह्या है । तातैं जैसैं नाली होइ, तैसैं त्रस रहने का स्थान, सो त्रसनाली जाननी । त्रस नाली इस लोक के मध्यभाग विषैं चौदह राजू ऊंची, एक राजू चौड़ी-लंबी सार्थक नाम धारक जाननी । त्रस जीव त्रसनाली विषैं ही हैं । बहुरि जो जीव त्रसनाली के बाह्य वातवलय विषैं तिष्ठता स्थावर था, उसनैं त्रस का आयु बांधा । बहुरि सो पूर्व वायुकायिक स्थावर पर्याय कौं छोडि, आगला विग्रहगति का प्रथम समय विषैं त्रस नामा नामकर्म का उदय अपेक्षा करि त्रसनाली के बाह्य त्रस हूवा, तातै उपपादवाले त्रस का अस्तित्व त्रसनाली बाह्य कह्या । बहुरि कोई जीव त्रसनाली के माहिं त्रस हैं, बहुरि त्रसनाली बाहिर तनुवातवलय संबंधी वायुकायिक स्थावर का बंध किया था । सो आयु का अंतर्मुहूर्त अवशेष रहै, तब आत्मप्रदेशनि का फैलाव जहां का बंध किया था, तिस स्थानक त्रसनाली के बाह्य तनुवातवलय पर्यन्त गमन करै । तातै मारणांतिक समुद्घातवाले त्रस का अस्तित्व त्रसनाली बाह्य कह्या ।

बहुरि केवली दंड-कपाटादि आकार करि त्रसनाली बाह्य अपने प्रदेशनि का फैलावनरूप समुद्घात करै हैं । तातै केवलसमुद्घात वाले त्रस का अस्तित्व त्रसनाली

बाह्य कह्या । इनि बिना और त्रस का अस्तित्व त्रसनाली बाह्य नाहीं है; असा अभिप्राय शास्त्र के कर्ता का जानना ।

आगें वनस्पतीवत् अन्य भी जीवनि कौं प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठितपना का भेद दिखावें हैं—

पुढवीआदिचउण्हं, केवलिआहारदेवणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदा णिगोदहिं, पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥२००॥

पृथिव्यादिचतुर्णां, केवल्याहारदेवनिरयांगानि ।
अप्रतिष्ठितानि निगोदैः, प्रतिष्ठितांगा भवंति शेषाः ॥२००॥

टीका – पृथ्वी आदि चारि प्रकार जीव पृथ्वी – अप – तेज – वायु इनि का शरीर, बहुरि केवली का शरीर, बहुरि आहारक शरीर, बहुरि देवनि का शरीर, बहुरि नारकीनि का शरीर ए सर्व निगोद शरीरनि करि अप्रतिष्ठित हैं; आश्रित नाहीं । इनि विषैं निगोद शरीर न पाइए है । बहुरि अवशेष रहे जे जीव, तिनि के शरीर प्रतिष्ठित जानने । इनि विषैं निगोद शरीर पाइए है । तातैं अवशेष सर्व निगोद शरीरनि करि प्रतिष्ठित हैं, आश्रित हैं । तहां सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, तिर्यंच अर पूर्वं कहे तिनि बिना अवशेष मनुष्य इनि सबनि कै शरीर विषैं निगोद पाइए हैं ।

आगें स्थावरकायिक, त्रसकायिक जीवनि के शरीर का आकार कहैं हैं—

मसुरंबुबिंदुसूई–कलावधयसण्णिहो हवे देहो ।
पुढवीआदिचउण्हं, तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

मसूरांबुबिंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवेद्देहः ।
पृथिव्यादिचतुर्णां, तरुत्रसकाया अनेकविधाः ॥ २०१ ॥

टीका – पृथिवीकायिक जीवनि का शरीर मसूर अन्न समान गोल आकार धरैं है । बहुरि अपकायिक जीवनि का शरीर जल की बूंद के समान गोल आकार धरैं है । बहुरि अग्निकायिक जीवनि का शरीर सुईनि का समूह के समान लंबा अर ऊर्ध्व विषैं चौड़ा बहुमुखरूप आकार धरैं है । बहुरि वातकायिक जीवनि का शरीर

ध्वजा समान लंबा, चौकोर आकार धरैं है। असें इनिके आकार कहे। तथापि इनिकी अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवैं भागमात्र है; तातैं जुदे-जुदे दीसैं नाहीं। जो पृथ्वी आदि इंद्रियगोचर है, सो घने शरीरनि का समुदाय है, असा जानना। बहुरि तरु, जे वनस्पतीकायिक अर द्वींद्रियादिक त्रसकायिक, इनि के शरीर अनेक प्रकार आकार धरैं हैं, नियम नाहीं। ते घनांगुल का असंख्यातवां भाग तैं लगाइ, संख्यात घनांगुल पर्यंत अवगाहना धरैं हैं; असैं जानना।

आगैं काय मार्गणा के कथन के अनंतर काय सहित संसारी जीवनि का दृष्टांतपूर्वक व्यवहार कहैं हैं—

जह भारवहो पुरिसो, वहइ भरं गेहिऊण कावलियं।
एमेव वहइ जीवो, कम्मभरं कायकावलियं ॥ २०२ ॥

यथा भारवहः पुरुषो, वहति भारं गृहीत्वा कावटिकम्।
एवमेव वहति जीवः, कर्मभारं कायकावटिकम् ॥ २०२ ॥

टीका – लोक विषैं जैसैं बोझ का वहनहारा कोऊ पुरुष, कावडिया सो कावडि में भर्या जो बोझ-भार, ताहि लेकरि विवक्षित स्थानक पहुंचावैं है। तैसैं ही यहु संसारी जीव, औदारिक आदि नोकर्मशरीर विषैं भर्या हूवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म का भार, ताहि लेकरि नानाप्रकार योनिस्थानकनि कौं प्राप्त करै है। बहुरि जैसैं सोई पुरुष कावडि का भार कौं गेरि, कोई एक इष्ट स्थानक विषैं विश्राम करि तिस भार करि निपज्या दुःख के वियोग करि सुखी होइ तिष्ठै है। तैसैं कोई भव्य, जीव, कालादि लब्धिनि करि अंगीकार कीनीं जो सम्यग्दर्शनादि सामिग्री, तींहि करि युक्त होता संता, संसारी कावडि का विषैं भर्या कर्म भार कौ छांडि, तिस भार करि निपज्या नाना प्रकार दुःख-पीड़ा का वियोग करि, इस लोक का अग्रभाग विषैं सुखी होई तिष्ठै है। असा हित उपदेश रूप आचार्य का अभिप्राय है।

आगैं दृष्टांतपूर्वक कायमार्गणा रहित जे सिद्ध, तिनिका उपाय सहित स्वरूप कौं कहैं हैं —

१. — षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १ पृष्ठ सं. १४०, गाथा ८७।

जह कंचणमग्गि-गयं, मुंचइ किट्टेण कालियाए य ।
तह कायबंध-मुक्का, अकाइया झाण-जोगेण[1] ॥२०३॥

यथा कांचनमग्निगतं, मुच्यते किट्टेन कालिकया च ।
तथा कायबंधमुक्ता, अकायिका-ध्यानयोगेन ॥२०३॥

टीका – जैसें लोक विषै मल युक्त सोना, सो अग्नि कौं प्राप्त संता, अंतरंग पारा आदि की भावना करि संवार्‌या हुवा बाह्य मल तौ कीटिका अर अंतरंग मल श्वेतादि रूप अन्य वर्ण, ताकरि रहित हो है । देदीप्यमान सोलहबान निज स्वरूप की लब्धि कौं पाइ, सर्व जननि करि सराहिए है । तैसें ध्यानयोग जो धर्म्म ध्यान, शुक्ल ध्यान रूप भावना, ताकरि अर बहिरंग तपरूपी अग्नि का संस्कार करि, निकट भव्य जीव हैं, ते भी औदारिक, तैजस शरीर सहित कार्माण शरीर का संबंध रूप करि मुक्त होइ । अकायिका: कहिए शरीर रहित सिद्ध परमेष्ठी, ते अनंत ज्ञानादि स्वरूप की उपलब्धि कौं पाइ; लोकाग्र विषै सर्व इन्द्रादि लोक करि स्तुति, नमस्कार, पूजनादि करि सराहिए है । काय जिनिकैं पाइए ते कायिक, शरीरधारक संसारी जानने । तिनतैं विपरीत काय रहित अकायिक मुक्त जीव जानने ।

आगें श्री माधवचंद्र त्रैविद्यदेव ग्यारह गाथा सूत्रनि करि पृथिवीकायिक आदि जीवनि की संख्या कहैं हैं—

आउड्ढरासिवारं, लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ ।
भूजलवाऊ अहिया, पडिभागोऽसंखलोगो दु ॥२०४॥

सार्धत्रयराशिवारं, लोके अन्योन्यसंगुणे तेजः ।
भूजलवायवः अधिकाः, प्रतिभागोऽसंख्यलोकस्तु ॥२०४॥

टीका – जगत्श्रेणी घन प्रमाण लोक के प्रदेश, तीहिं प्रमाण शलाका, विरलन, देय—ए तीनि राशि करि तहां विरलनराशि का विरलन करि, एक-एक जुदा-जुदा बखेरि, तहां एक-एक प्रति देयराशि कौं स्थापि, वर्गितसंवर्ग करना । जाका वर्ग कीया, ताका समंतपनै वर्ग करना । सो इहां परस्पर गुणने का नाम वर्गितसंवर्ग

---

1. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २६८, गाथा १४४ ।

है । ताहि करि शलाकाराशि मैं स्यों एक घटावना । बहुरि असें करतें जो राशि उपज्या, ताहि विरलन करि एक-एक प्रति सोई राशि देइ, वर्गितसंवर्ग करि शलाकाराशि में सौं एक और घटावना । असैं लोक प्रमाण शलाका राशि यावत् पूर्ण होइ तावत् करना । असैं करतें जो राशि उपज्या, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देयराशि, स्थापि, विरलनराशि का विरलन करि, एक-एक प्रति देयराशि कौं देइ, वर्गितसंवर्ग करि दूसरी बार स्थाप्या हूवा, शलाकाराशि मैं सौ एक घटावना । बहुरि तहां उपज्या हूवा राशि का विरलन करि, एक-एक प्रति सोई राशि स्थापि, वर्गितसंवर्ग करि, तिस शलाकाराशि मैं सौ एक और घटावना । असैं दूसरी बार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि कौं भी समाप्त करि, तहां अंत विषैं जो महाराशि भया, तीहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, स्थापि; विरलनराशि का विरलन करि, एक-एक प्रति देयराशि कौ देइ, वर्गितसंवर्ग करि, तीसरी बार स्थाप्या शलाकाराशि तैं एक घटावना । बहुरि तहां जो राशि भया, ताका विरलन करि, एक-एक प्रति सोई राशि देइ, वर्गितसंवर्ग करि, तिस शलाकाराशि तैं एक और काढ़ना । असैं तीसरी बार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि कौं समाप्त करि, तहां अंत विषैं उपज्या महाराशि, तिहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, स्थापि; विरलनराशि कौं बखेरि, एक-एक प्रति देयराशि कौं देइ वर्गितसंवर्ग करि, चौथी बार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि तैं एक काढ़ना । बहुरि तहां जो राशि भया, ताकौं विरलन करि, एक-एक प्रति तिस ही कौं देइ, वर्गितसंवर्ग करि, तिस शलाकाराशि मैं सौं एक और काढ़ना । असैं ही क्रम करि पहिली बार, दूसरी बार, तीसरी बार जो स्थापे शलाकाराशि, तिनिकौं जोड़ै, जो प्रमाण होइ, तितने चौथी बार स्थाप्या हूवा शलाकाराशि मैं सौं घटाएं, अवशेष जितना प्रमाण रह्या, तिनकौं एक-एक घटावने करि, पूर्ण होतैं अंत विषैं जो महाराशि उपज्या, तीहि प्रमाण तेजस्कायिक जीवराशि है । इस राशि का परस्पर गुणकार शलाकाराशि, वर्ग शलाकाराशि, अर्द्धच्छेद राशि तिनिका प्रमाण वा अल्पबहुत्व पूर्वे द्विरूप घनाघन धारा का कथन करतें कह्या है; तैसें इहां भी जानना । असैं सामान्यपणैं साढा तीन बार वा विशेषपणैं किंचित् घाटि, च्यारि शलाकाराशि, पूर्ण जैसें होइ, तैसें लोक का परस्पर गुणन कीएं, जो राशि होइ, तितने अग्निकायिक जीवराशि का प्रमाण है । बहुरि इनि तें पृथ्वीकायिक के जीव अधिक हैं । इनि तें अपकाय के जीव अधिक हैं । इनितें वातकाय के जीव अधिक हैं । इहां अधिक कितने हैं ? असा जानने के निमित्त भागहार असंख्यात लोक

प्रमाण जानना । सो कहिए है- असंख्यात लोकमात्र अग्निकायिक जीवनि का परिमाण ताकौं यथायोग्य छोटा असंख्यात् लोक का भाग दीएं, जेता परिमाण आवै, तितने अग्निकायिक के जीवनि का परिमाण विषैं मिलायें, पृथ्वीकायिक जीवनि का परिमाण हो है । बहुरि इस पृथ्वीकायिक राशि कौं असंख्यात् लोक का भाग दीएं, जेता परिमाण आवै, तितने पृथ्वीकायिक राशि विषैं मिलायें, तितना अपकायिक जीवनि का परिमाण हो है । बहुरि अपकायिक राशि कौं असंख्यात लोक का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना अपकायिक राशि विषैं मिलाएं, वातकायिक जीवनि का परिमाण हो है; असैं अधिक-अधिक जानने ।

अपदिट्ठिदपत्तेया, असंखलोगप्पमाणया होंति ।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण, असंखलोगेण संगुणिदा ॥२०५॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येका, असंख्यलोकप्रमाणका भवंति ।
ततः प्रतिष्ठिताः पुनः, असंख्यलोकेन संगुणिताः ॥२०५॥

टीका – अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीकायिक जीव यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण हैं । बहुरि इनि कौं असंख्यात लोक करि गुणैं, जो परिमाण होइ, तितने प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीकायिक जीव जानने । दोऊनि कौं मिलाएं सामान्य प्रत्येक वनस्पतीकायिक जीवनि का प्रमाण हो है ।

तसरासिपुढविआदी, चउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।
साहारणजीवाणं, परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

त्रसराशिपृथिव्यादि चतुष्कप्रत्येकहीनसंसारी ।
साधारणजीवानां, परिमाणं भवति जिनदिष्टम् ॥२०६॥

टीका – आगें कहिए है - आवली का असंख्यातवां भाग करि भाजित प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो होइ, तितना त्रसराशि का प्रमाण अर पृथ्वी-अप-तेज-वायु इनि च्यारिनि का मिल्या हूवा साधिक चौगुणा तेजकायिक राशि प्रमाण, बहुरि इस प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती का मिल्या हूवा परिमाण, असैं इनि तीन राशिनि कौं संसारी जीवनि का परिमाण में घटाएं, जो अवशेष रहैं, तितना साधारण वनस्पती, जे निगोद जीव, तिनिका परिमाण अनंतानंत जानना; असा जिनदेव ने कह्या ।

समसगअसंखभागो, बादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहुमपमाणं, पडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥२०७॥

स्वकस्वकासंख्यभागो, बादरकायानां भवति परिमाणम् ।
शेषाः सूक्ष्मप्रमाणं, प्रतिभागः पूर्वनिर्दिष्टः ॥ २०७ ॥

टीका – पृथिवी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पतीकायिकनि का जो पूर्वे परिमाण कह्या, तिस अपने-अपने परिमाण कौं असंख्यात का भाग देना । तहां एक भाग प्रमाण तौ अपना-अपना बादर कायकनि का प्रमाण है । अवशेष बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म कायकनि का प्रमाण है । पृथ्वीकायिक के परिमाण कौं असंख्यात का भाग दीजिए । तहां एक भाग प्रमाण बादर पृथ्वीकायकनि का परिमाण है । अवशेष बहुभाग परिमाण सूक्ष्म पृथ्वीकायिकनि का परिमाण है । ऐसें ही सब का जानना । इहां भी भागहार का परिमाण पूर्वे कह्या था, असंख्यात लोक प्रमाण सोई है । तातें इहां भी अग्निकायादिक विषै पूर्वोक्त प्रकार अधिक-अधिकपना जानना ।

सुहुमेसु संखभागं, संखा भागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो, पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥२०८॥

सूक्ष्मेषु संख्यभागः, संख्या भागा अपूर्णका इतरे ।
यस्मादपूर्णाद्धातः, पूर्णाद्धा संख्यगुणितक्रमाः ॥२०८॥

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु, साधारण वनस्पती, इनिका पूर्वे जो सूक्ष्म जीवनि का परिमाण कह्या, तीहि विषै अपने-अपने सूक्ष्म जीवनि का परिमाण कौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त हैं । बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त हैं । सूक्ष्म जीवनि विषै अपर्याप्त राशि तैं पर्याप्त राशि का प्रमाण बहुत जानना । सो कारण कहै हैं; जातैं अपर्याप्त अवस्था का काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । इस काल तैं पर्याप्त अवस्था का काल संख्यातगुणा है, सो दिखाइए है । कोमल पृथ्वीकायिक का उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है । बहुरि कठिन पृथ्वी कायिक का बाईस हजार वर्ष प्रमाण है । जलकायिक का सात हजार वर्ष प्रमाण है । तेजकायिक का तीन दिन प्रमाण है । वातकायिक का तीन हजार वर्ष प्रमाण है । वनस्पती कायिक का दश हजार वर्ष प्रमाण है ।

इहां प्रसंग पाय विकलत्रय विषैं बेंद्री का बारा वर्ष, तेंद्री का गुणचास दिन, चौंद्री का छह महिना प्रमाण है । असें उत्कृष्ट आयु, बल का परिमाण कह्या । तीहि विषैं अंतर्मुहूर्त काल विषैं तौ अपर्याप्त अवस्था है । अवशेष काल विषैं पर्याप्त अवस्था है । तातैं अपर्याप्त अवस्था का काल तैं पर्याप्त अवस्था का काल संख्यातगुणा जानना । तहां पृथ्वी कायिक का पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ कालनि विषैं जो सर्व सूक्ष्म जीव पाइए तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्त काल विषैं केते पाइए ? असें प्रमाण राशि पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ कालनि के समयनि का समुदाय, फलराशि सूक्ष्म जीवनि का प्रमाण, इच्छाराशि अपर्याप्त काल का समयनि का प्रमाण, तहां फल करि इच्छा कौं गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, लब्धराशि का परिमाण आवै; तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त जीव जानने । बहुरि प्रमाण राशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छाराशि पर्याप्त काल कीएं लब्धराशि का जो परिमाण आवै, तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनि का परिमाण जानना । ताही तैं संख्यात का भाग दीएं, एक भाग प्रमाण अपर्याप्त कहे । अवशेष (बहु) भाग प्रमाण पर्याप्त कहे हैं । असें ही सूक्ष्म अपकायिक, तेजकायिक, वातकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक विषैं अपना-अपना सर्व काल कौं प्रमाणराशि करि, अपने-अपने प्रमाण कौं फलराशि करि पर्याप्त वा अपर्याप्त काल कौं इच्छाराशि करि लब्धराशि प्रमाण पर्याप्त वा अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना । इहां पर्याप्त वा अपर्याप्त काल की अपेक्षा जीवनि का परिमाण सिद्ध हूवा है ।

पल्लासंखेज्जवहिद, पदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे ।
जलभूणिपबादरया, पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा ॥२०६॥

पल्यासंख्यावहितप्रतरांगुलभाजिते जगत्प्रतरे ।
जलभूनिपबादरकाः, पूर्णा आवल्यसंख्यभाजितक्रमाः ॥२०९॥

टीका – पल्य के असंख्यातवां भाग का भाग प्रतरांगुल कौं दीयें, जो परिमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर अपकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना । बहुरि इस राशि कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना । बहुरि इस राशि कौं भी आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त

जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि इस राशि कौं भी आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना।

इहां 'णि' इस आदि अक्षर तैं निगोद शब्द करि प्रतिष्ठित प्रत्येक जानने; जातैं साधारण का कथन आगैं प्रगट कहै हैं —

विंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं।
पज्जत्ताण पमाणं, तेहिं विहीणा अपज्जत्ता ॥२१०॥

वृंदावलिलोकानामसंख्यं संख्यं च तेजोवायूनाम्।
पर्याप्तानां प्रमाणं, तैर्विहीना अपर्याप्ताः ॥२१०॥

टीका – आवली के जेते समय हैं; तिनिका घन कीएं, जो प्रमाण होइ, ताकौं वृंदावली कहिए। ताकौं असंख्यात का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि लोक कौं संख्यात का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना बादर वातकायिक पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। सूक्ष्म जीवनि का प्रमाण पूर्वै कह्या है, तातैं इहां बादर ही ग्रहण करने।

बहुरि पूर्वै जो पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीरूप बादर जीवनि का परिमाण कह्या था; तीहिं विषै अपना-अपना पर्याप्त जीवनि का परिमाण घटाए, अवशेष रहै, तितने-तितने बादर अपर्याप्त जीव जानने।

साहारणबादरेसु, असंखं भागं असंखगा भागा।
पुण्णाणमपुण्णाणं, परिमाण होदि अणुकमसो ॥२११॥

साधारणबादरेषु असंख्यं भागं संख्यका भागाः।
पूर्णानामपूर्णानां, परिमाणं भवत्यनुक्रमशः ॥२११॥

टीका – बादर साधारण वनस्पती का जो परिमाण कह्या था, ताकौं असंख्यात का भाग दीजिए। तहां एक भाग प्रमाण तौ बादर निगोद पर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। बहुरि अवशेष असंख्यात बहुभाग प्रमाण बादर निगोद अपर्याप्त जीवनि का प्रमाण जानना। ऐसैं अनुक्रम तैं इहां काल की अपेक्षा अल्प-बहुत

नाहीं कह्या है । बादरनि विषैं पर्याप्तपना दुर्लभ है । तातैं पर्याप्त थोरे; अपर्याप्त घने हैं; ऐसा आचार्यनि का अनुक्रम जानि कथन कीया है । ऐसा आचार्यनि का अभिप्राय जानना ।

आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं ।
कमसो तसतप्पुण्णा, पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥२१२॥

आवल्यसंख्यसंख्येनावहितप्रतरांगुलेन हितप्रतरम् ।
क्रमशस्त्रसतत्पूर्णाः पूर्णोनत्रसा अपूर्णा हि ॥२१२॥

टीका – आवली का असंख्यातवां भाग का भाग प्रतरांगुल कौं दीएं, जो परिमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितना सर्व त्रसराशि का प्रमाण जानना । बहुरि संख्यात का भाग प्रतरांगुल कौं दीएं, जो परिमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितना पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण जानना । बहुरि सामान्य त्रस जीवनि का परिमाण मैं स्यौं पर्याप्त त्रसनि का परिमाण घटाएं, जो परिमाण अवशेष रहै, तितना अपर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण जानना । इहां भी पर्याप्तपना दुर्लभ है । तातैं पर्याप्त त्रस थोरे हैं, अपर्याप्त त्रस बहुत हैं; ऐसा जानना ।

आगैं बादर अग्निकायिक आदि छह प्रकार जीवनि का परिमाण का विशेष निर्णय करने के निमित्त दोय गाथा कहै हैं –

आवलिअसंखभागेणवहिदपल्लूणसायरद्धछिदा ।
बादरतेपणिभूजलवादाणं चरिमसायरं पुण्णं ॥२१३॥

आवल्यसंख्यभागेनावहितपल्योनसागरार्धच्छेदाः ।
बादरतेपनिभूजलवातानां चरमः सागरः पूर्णः ॥२१३॥

टीका – बादर अग्निकायिक, अप्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती, पृथ्वी, अप, वायु इन छहौं राशि के अर्धच्छेदों का परिमाण प्रथम कहिए है । अर्धच्छेद का स्वरूप पूर्वै धारानि का कथन विषैं कह्या ही था, सो इहां एक बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग पल्य कौं दीएं, जो एक भाग का परिमाण आवै, तितना सागर में सो घटाइए, तब बादर अग्निकायिक जीवनि का जो परिमाण, ताके अर्ध-

च्छेदनि का परिमाण होइ । बहुरि दोय बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग पल्य कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितनां सागर में सों घटाइएं, तब बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशि के अर्धच्छेदनि का परिमाण होइ । बहुरि तीन बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग पल्य कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितनां सागर में सों घटाइए, तब बादर प्रतिष्ठित प्रत्येकराशि के अर्धच्छेदनि का परिमाण होइ । बहुरि च्यारि बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग पल्य कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितनां सागर में सों घटाएं, पृथ्वीकायिक राशि के अर्धच्छेदनि का परिमाण होइ । बहुरि पांच बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग पल्य कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितनां सागर में सों घटाएं, अप्रकायिक राशि के अर्धच्छेदनि का परिमाण होइ । बहुरि वातकायिक राशि के अर्धच्छेदनि का परिमाण संपूर्ण सागर प्रमाण जानना । जातें सूत्र विषें असा कह्या है 'अंत विषें संपूर्ण सागर है' ।

ते वि विसेसेणहिया, पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण ।
तम्हा ते रासीओ, असंखलोगेण गुणिदकमा ॥२१४॥

तेऽपि विशेषेणाधिकाः, पल्यासंख्यातभागमात्रेण ।
तस्मात्ते राशयोऽसंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥२१४॥

टीका – जा कारण तें जे अर्धच्छेद राशि, ते बादर तेजकायिक राशि के अर्धच्छेद राशि तें लगाइ, अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनि के अर्धच्छेद पांचौ आवली के असंख्यातवें भाग मात्र अपना-अपना एक-एक विशेष करि क्रम तें अधिक हैं । तहां अग्निकायिक राशिनि के अर्धच्छेदनि तें अप्रतिष्ठित प्रत्येकराशि के अर्धच्छेद पल्य कौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणिएं अर दोय बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, जो प्रमाण होइ, तितने अधिक हैं । बहुरि अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशि के अर्धच्छेदनि तें प्रतिष्ठित प्रत्येक राशि के अर्धच्छेद पल्य कौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणिए अर तीन बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने अधिक हैं । बहुरि प्रतिष्ठित प्रत्येक राशि के अर्धच्छेदनि तें बादर पृथ्वीकायिक राशि के अर्धच्छेद पल्य कौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणिए अर च्यारि बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, जो प्रमाण होइ, तितने अधिक हैं । बहुरि बादर पृथ्वी-

कायिक राशि के अर्धच्छेदनि तैं बादर अप्कायिक राशि के अर्धच्छेद पल्य कौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणिए, अर पांच बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए; जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि बादर जलकायिक राशि के अर्धच्छेदनि तैं बादर वातकायिक राशि के अर्धच्छेद पल्य कौं एक करि गुणिए, अर पांच बार आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए; जो प्रमाण आवै, तितने अधिक हैं; असैं अधिक-अधिक अर्धच्छेद जानने।

अब इस कथन कौं अंकसंदृष्टि करि प्रगट दिखाइए है। पल्य का प्रमाण पैंसठि हजार पांच सैं छत्तीस (६५,५३६) आवली का असंख्यातवां भाग का प्रमाण आठ, सागर का प्रमाण छह लाख पचपन हजार तीन सैं साठि (६,५५,३६०) तहां एक बार, दोय बार, तीन बार, च्यारि बार, पांच बार, आठ का भाग पणट्ठी कौं दीएं, इक्यासी सैं बाणवै, एक हजार चौबीस, एक सौ अठाईस, सोलह, दोय (८१९२। १०२४।१२८।१६।२) इतने पाइए। सो ए क्रम तैं आठ-आठ गुणे घाटि हैं। बहुरि इतने-इतने छह लाख पचावन हजार तीन सै साठि विषैं घटाएं; अंत विषैं संपूर्ण हैं। तातैं किछू भी न घटाएं, अग्निकायिकादि राशि के अर्धच्छेदनि का प्रमाण होइ। ६४७१६८। ६५४३३६। ६५५२३२। ६५५३४४। ६५५३५८। ६५५३६०। इहां अधिक प्रमाण ल्यावने कौं पणट्ठी कौं सात करि गुणैं, दोय, तीन, च्यारि, पांच बार आठ का भाग दीएं अंत विषैं एक करि गुणि, पांच बार आठ का भाग दीएं, इकहत्तरिसै अड़सठ, आठ सैं छिनवै, एक सौ बारह, चौदह, दोय (७१६८। ८९६। ११२। १४। २) अनुक्रम तैं अधिक का प्रमाण आवै है। असैं ही पूर्वोक्त कथन का भावार्थ जानना।

बहुरि इहां जितना-जितना अर्धच्छेदनि का अधिक का प्रमाण कह्या, तितना तितना दूवा मांडि परस्पर गुणैं, जो-जो यथासंभव असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होइ, तीहि तीहि करि गुण्या हूवा अनुक्रम तैं अग्निकायिकादि तैं अप्रतिष्ठित प्रत्येकादि राशि जानने। जातैं असैं सूत्र पूर्वे गणित कथन विषैं कह्या है –

> **विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि।**
> **तेसिं अण्णोण्णहदी, गुणयारो लद्धरासिस्स ॥**

इस सूत्र के अभिप्राय तैं जेते-जेते पूर्व राशि के अर्धच्छेदनि तैं उत्तर राशि के अर्धच्छेद अधिक कहे, तितने-तितने दूवे मांडि, परस्पर गुणैं, जो-जो प्रमाण होइ,

तितने-तितने प्रमाण करि, पूर्वराशि कौं गुणें, उत्तर राशि का प्रमाण होइ । सो इहां सामान्यपनें गुणकार का प्रमाण सर्वत्र असंख्यात लोकमात्र है । इहां पूर्वोक्त प्रमाण दूवानि कौ परस्पर गुणें असंख्यात लोक कैसे होइ ? सो इस कथन कौ प्रकट अंकसंदृष्टि करि अर अर्थसंदृष्टि करि दिखाइए है । जैसें सोलह दूवानि कौं परस्पर गुणें, पणट्ठी होइ, तौ चौसठि दूवानि कौं परस्पर गुणें, कितने होइ, ऐसें त्रैराशिक करिएं । तहां प्रमाणराशि विषें देयराशि दोय विरलनराशि सोलह,फलराशि पणट्ठी (६५५३६) इच्छाराशि विषें देयराशि दोय विरलनराशि चौसठि ।

अब इहां लब्धराशि का प्रमाण ल्यावने कौं करण सूत्र कहै हैं –

दिण्णच्छेदेणवहिद-इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे ।
लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

देयच्छेदेनावहितेष्टच्छेदैः प्रकृतविरलनं भाजिते ।
लब्धमितेष्टराश्यन्योन्यहत्या भवति प्रकृतधनम् ॥२१५॥

टीका – देयराशि के अर्धच्छेद का प्रमाण करि, जे फलराशि के अर्धच्छेद प्रमाणराशि विषें विरलनराशि रूप कहे, तिनिका भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तीहि करि इच्छाराशि रूप प्रकृतराशि विषें जो विरलनराशि का प्रमाण कह्या, ताकौं भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना जायगा फलराशिरूप जो इष्टराशि, ताकौं मांडि परस्पर गुणें, जो प्रमाण आवै, तितना लब्धराशिरूप प्रकृतिधन का प्रमाण हो है । सो इहां देयराशि दोय, ताका अर्धच्छेद एक, तीहिंका जे फलराशि पणट्ठी के अर्धच्छेद प्रमाणराशि विषें विरलनराशिरूप कहे सोलह, तिनिकौं भाग दीएं, सोलह ही पाएं । इनिका साध्यभूत राशि का इच्छाराशि विषें कह्या, जो विरलनराशि चौसठि, ताकौं भाग दीएं, च्यारि पाएं । सो च्यारि जायगा फलराशिरूप पणट्ठी मांडि ६५५३६ । ६५५३६ । ६५५३६ । ६५५३६ । परस्पर गुणें, लब्धराशि एकट्ठी प्रमाण हो है । ऐसें ही यथार्थ कथन जानना ।

जो पूर्वें गणित कथन विषें लोक के अर्धच्छेदनि का जेता परिमाण कह्या है, तितने दूवे मांडि परस्पर गुणें; लोक होइ, तौ इहां अग्निकायिक राशि के अर्धच्छेद प्रमाण दूवे मांडि, परस्पर गुणें कितने लोक होंहि ? ऐसें त्रैराशिक करि इहां प्रमाणराशि विषें देयराशि दोय, विरलनराशि लोक का अर्धच्छेदराशि, अर फलराशि

लोक अर इच्छाराशि विषैं देयराशि दोय, विरलनराशि अग्निकायिकराशि के अर्धच्छेद प्रमाण जानना । तहां लब्धराशि ल्यावने कौं देयराशि दोय, ताका अर्धच्छेद एक, ताका भाग फलराशि (जो) लोक, ताका अर्धच्छेदरूप प्रमाणराशि विषैं विरलनराशि है, ताकौं भाग दीएं लोक का अर्धच्छेद मात्र पाए । याका साध्यभूत अग्निकायिक राशि का अर्धच्छेदरूप जो इच्छाराशि, ताविषैं विरलनराशि अग्निकायिक राशि के अर्धच्छेद, तिनकौं भाग दीएं, जो प्रमाण आया, सो किछू घाटि संख्यात पल्य कौं लोक का अर्धच्छेदराशि का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ तितना यहु प्रमाण आया । सो इतने लोक मांडि, परस्पर गुणैं, जो असंख्यात लोक मात्र परिमाण भया, सोई लब्धिराशिरूप बादर अग्निकायिकराशि का प्रमाण इहां जानना । इहां किंचि-दून संख्यात पल्य प्रमाण लोकनि कौं परस्पर गुणें, जो महत असंख्यात लोक मात्र परिमाण आया, सो तौ भाज्यराशि जानना । अर लोक का अर्धच्छेद प्रमाण लोकनि कौं परस्पर गुणैं, जो छोटा असंख्यात लोकमात्र परिमाण आया, सो भाग-हार जानना । भागहार का भाग भाज्य कौं दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना बादर अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण जानना । बहुरि इहां अग्निकायिकराशि विषैं जो भागहार कह्या, सो अगले अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनि विषैं जो भागहार का प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार कीएं आवैं, तिनि सबनि तैं असंख्यात लोक गुणा जानना । जातैं सागर मैं स्यौं जो-जो राशि घटाया, सो-सो क्रमतैं आवली का असंख्यातवां भाग गुणा घाटि । तातैं प्रमाणराशि फलराशि पूर्वोक्तवत् स्थापि अर इच्छाराशि विषैं विरलनराशि अपने-अपने अर्धच्छेद प्रमाण स्थापि, पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशि करि अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशि भी सामान्यपनैं असंख्यात लोकमात्र हैं । तथापि उत्तर उत्तरराशि असंख्यात लोक गुणा जानना । भागहार जहां घटता होइ, तहां राशि बधता होइ, सो इहां भागहार असंख्यात लोक गुणा घटता क्रमतैं भया; तातैं राशि असंख्यात लोक गुणा भया । इहां असंख्यात लोक वा आवली का असंख्यातवां भाग की संदृष्टि स्थापि अर्थसंदृष्टि का स्थापन है । सो आगैं संदृष्टि अधिकार विषैं लिखेंगे ।

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम संस्कृतटीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नामा इस भाषा टीका विषैं जीवकांड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषैं कायप्ररूपणा नामा आठवां अधिकार संपूर्ण भया ।।८।।

नववां अधिकार : योग-मार्गणा-प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

कुंदकुसुमसम दंतजुत, पुष्पदंत जिनराय ।
वंदौं ज्योति अनंतमय, पुष्पदंतवतकाय ॥१॥

आगैं शास्त्रकर्ता योगमार्गणा का निरूपण करैं हैं । तहां प्रथम ही योग का सामान्य लक्षण कहैं हैं –

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स ।
जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो ॥२१६॥

पुद्गलविपाकिदेहोदयेन मनोवचनकाययुक्तस्य ।
जीवस्य या हि शक्तिः, कर्मागमकारणं योगः ॥२१६॥

टीका – संसारी जीव कैं कर्म, जो ज्ञानावरणादिक-कर्म अर उपलक्षण तैं औदारिकादिक नोकर्म, तिनि का आगम कहिए कर्म–नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनि का कर्म–नोकर्मरूप परिणमना, ताकौं कारणभूत जो शक्ति बहुरि उस शक्ति का धारी जो आत्मा, ताके प्रदेशनि का चंचलरूप होना, सो योग कहिए है ।

कैसा है जीव ? पुद्गलविपाकी जो यथासंभव अंगोपांग नाम प्रकृति वा देह जो शरीर नाम प्रकृति ताका उदय जो फल देना रूप परिणमना, ताकरि मन वा भाषा वा शरीररूप जे पर्याप्ति, तिनिकौं धरैं हैं ।

मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, कायवर्गणा का अवलंबन करि संयुक्त है । इहां अंगोपांग वा शरीर नामा नामकर्म के उदय तैं शरीर, भाषा, मनःपर्याप्तिरूप परिणम्या काय, भाषा, मन वर्गणा का अवलंबन युक्त आत्मा, ताकौं लोकमात्र सर्व प्रदेशनि विषैं प्राप्त जो पुद्गलस्कंधनि कौं कर्म-नोकर्मरूप परिणमावने कौं कारणभूत शक्ति-समर्थता; सो भाव-योग है ।

बहुरि उस शक्ति का धारी आत्मा के प्रदेशनि विषैं किछू चलनरूप सकंप होना सो द्रव्य-योग है ।

इहां यहु अर्थ जानना जैसें अग्नि के संयोग करि लोहे के जलावने की शक्ति हो है। तैसें अंगोपांग शरीर नामा नामकर्म के उदय करि मनो वर्गणा वा भाषा वर्गणा का आए पुद्गल स्कंध अर आहार वर्गणा का आए नोकर्म पुद्गल स्कंध, तिनि का संबंधकरि जीव के प्रदेशनि के कर्म-नोकर्म ग्रहण की शक्ति-समर्थता हो है।

आगें योगनि का विशेष लक्षण कहैं हैं-

मणवयणाण पउत्ती, सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।
तण्णामं होदि तदा, तेहिं दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मनोवचनयोः प्रवृत्तयः, सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु।
तन्नाम भवति तदा, तैस्तु योगाद्धि तद्योगाः ॥२१७॥

टीका – सत्य, असत्य, उभय, अनुभय रूप जे पदार्थ, तिनि विषैं जो मन, वचन की प्रवृत्ति होइ, उनके जानने कौं वा कहने कौं जीव की प्रयत्नरूप प्रवृति होइ, सो सत्यादिक पदार्थ का संबंध तैं, सो सत्य, असत्य, उभय, अनुभय है, विशेषण जिनि का, ऐसे च्यारि प्रकार मनोयोग अर च्यारि प्रकार वचनयोग जानने। तहां यथार्थ जैसा का तैसा सांचा ज्ञानगोचर जो पदार्थ होइ, ताकौं सत्य कहिए। जैसें जल का जानना के गोचर जल होइ जातैं स्नान-पानादिक जल संबंधी क्रिया उसतैं सिद्ध हो है; तातैं सत्य कहिए।

बहुरि अयथार्थ अन्यथारूप पदार्थ जो मिथ्याज्ञान के गोचर होइ, ताकौं असत्य कहिए। जैसें जल का जानना के गोचर भाडली (मृगजल) होइ; जातैं स्नान-पानादिक जल संबंधी क्रिया भाडली स्यों सिद्ध न हो हैं; तातैं असत्य कहिए।

बहुरि यथार्थ वा अयथार्थ रूप पदार्थ जो उभय ज्ञान गोचर होइ, ताकौं उभय कहिए। जैसें कमंडलु विषैं घट का ज्ञान होइ, जातैं घट की ज्यौं जलधारणादि क्रिया कमंडलु स्यों सिद्ध हो है; तातैं सत्य है। बहुरि घटका-सा आकार नाहीं है; तातैं असत्य है; ऐसें यहु उभय जानना।

बहुरि जो यथार्थ अयथार्थ का निर्णय करि रहित पदार्थ, जो अनुभय ज्ञान गोचर होइ, ताकौं अनुभय कहिए। सत्य-असत्यरूप कहने योग्य नाहीं, जैसें यहु किछू प्रतिभासै है, ऐसें सामान्यरूप पदार्थ प्रतिभास्या, तहां उस पदार्थ करि कौन

क्रिया सिद्ध ही है, ऐसा विशेष निर्णय न भया, तातैं सत्य भी न कह्या जाय, बहुरि सामान्यपनैं प्रतिभास्या तातैं असत्य भी न कह्या जाय तातैं याकौं अनुभय कहिए ।

ऐसें च्यारि प्रकार पदार्थनि विषें मन की वा वचन की प्रवृत्ति होइ सो च्यारि प्रकार मनोयोग वा च्यारि प्रकार वचनयोग जानने ।

इहां घट विषें घट कौ विकल्प, सो सत्य, अर घट विषें पट का विकल्प, सो असत्य, अर कुंडी विषें जलधारण करि घट का विकल्प, सो उभय अर संबोधन आदि विषें हे देवदत्त ! इत्यादि विकल्प सो अनुभय जानना ।

आगें सत्य पदार्थ हैं गोचर जाकैं, ऐसा मनोयोग सो सत्य मनोयोग; इत्यादिक विशेष लक्षण च्यारि गाथानि करि कहैं हैं -

सब्भावमणो सच्चो, जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसोत्तिन त्ति [1] ॥२१८॥

सद्भावमनः सत्यं, यो योगः स तु सत्यमनोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा, जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥२१८॥

टीका - 'सद्भावः' कहिए सत्पदार्थ ही है गोचर जाका, ऐसा जो मन सत्य पदार्थ के ज्ञान उपजावनेकी शक्ति लीएं भाव-मन होइ, तींहि सत्यमन करि निपज्या जो चेष्टा प्रवर्त्तन रूप योग, सो सत्यमनोयोग कहिये ।

बहुरि ऐसें ही विपरीत असत्य पदार्थरूप विषय के ज्ञान उपजावने की शक्ति रूप जो भाव-मन, ताकरि जो चेष्टा प्रवर्तन रूप योग होइ, सो असत्यमनोयोग कहिए ।

बहुरि युगपत् सत्य-असत्य रूप पदार्थ के ज्ञान उपजावने की शक्तिरूप जो भाव-मन, ताकरि जो प्रवर्तन रूप योग होइ, सो उभयमनोयोग कहिये-ऐसें हे भव्य ! तू जानि ।

ण य सच्चमोसजुत्तो, जो दु मणो सो असच्चमोसमणो ।
जो जोगो तेण हवे, असच्चमोसो दु मणजोगो [2] ॥२१९॥

१-षट्खंडागम-धवला पुस्तक १, पृ. सं. २६३, गा. सं. १५३ । कुछ पाठभेद-सब्भावो सच्चमणो, तव्विवरीदो, सच्चमोसं ति ।

२ - षट्खंडागम - धवला पुस्तक-१ पृष्ठ सं. २०४, गा. सं. १५७ ।

न च सत्यमृषायुक्तं, यत्तु मनस्तदसत्यमृषामनः ।
यो योगस्तेन भवेत्, असत्यमृषा तु मनोयोगः ॥२१९॥

टीका – जो मन सत्य अर मृषा कहिए असत्य, तींहि करि युक्त न होइ बहुरि सत्य असत्य का निर्णय करि रहित जो अनुभय पदार्थ, ताके ज्ञान उपजावने की शक्तिरूप जो भाव मन, तींहि करि निपज्या जो प्रवर्तनरूप योग, सो सत्य-असत्य रहित अनुभय मनोयोग कहिए । असैं च्यारि प्रकार मनोयोग कह्या ॥२१९॥

दसविहसच्चे वयणे, जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसो त्ति[1] ॥२२०॥

दशविधसत्ये वचने, यो योगः स तु सत्यवचोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा, जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥२२०॥

टीका – सत्य अर्थ का कहनहारा सो सत्य वचन है । जनपद नै आदि देकरि दस प्रकार सत्यरूप जो पदार्थ, तींहि विषैं वचनप्रवृत्ति करने कौं समर्थ, स्वरनामा नामकर्म के उदय तैं भया भाषा पर्याप्ति करि निपज्या, जो भाषा वर्गणा आलंबन लीएं, आत्मा के प्रदेशनि विषैं शक्तिरूप भाववचन करि उत्पन्न भया जो प्रवृत्तिरूप विशेष, सो सत्यवचन योग कहिए ।

बहुरि तींहिस्यों विपरीत असत्य पदार्थ विषैं वचनप्रवृत्ति कौं कारण जो भाव वचन, तींहि करि जो प्रवर्तनरूप योग होइ, सो असत्य वचन कहिए ।

बहुरि कमंडलु विषैं यहु घट है इत्यादिक सत्य-असत्य पदार्थ विषैं वचन प्रवृत्ति कौं कारण जो भाव वचन, तींहि करि जो प्रवर्तनरूप योग होइ, सो उभय वचन योग कहिए; असैं हे भव्य ! तू जानि ।

जो णेव सच्चमोसो, सो जाण असच्चमोसवचिजोगो ।
अमणाणं जा भासा, सण्णीणामंतणी आदी[2] ॥२२१॥

यो नैव सत्यमृषा, स जानीहि असत्यमृषावचोयोगः ।
अमनसां या भाषा, संज्ञिनामामंत्रण्यादिः ॥२२१॥

1. – षट्खंडागम-धवला पुस्तक १, पृ. २८८, गा. सं. १५८.
2. – षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृ. २८८, गा. सं. १५९.

टीका – जो सत्य असत्यरूप न होइ, असा पदार्थ विषै वचनप्रवृत्ति कौं कारण जो भाव वचन, तीहि करि जो प्रवर्तनरूप योग होइ, सो सत्य असत्य निर्णय रहित अनुभय वचन योग जानना । ताका उदाहरण – उत्तर गाथा सूत्र करि कहैं हैं । जो बेइंद्रियादिक असैनी पंचेंद्रिय पर्यंत जीवनि कैं केवल अनक्षररूप भाषा है, सो सर्व अनुभय वचन योग जानना । वा सैनी पंचेंद्रिय जीवनि के आगे कहिए है, जो आमंत्रणी आदि अक्षररूप भाषा, सो सर्व अनुभय वचन योग जानना ।

आगै जनपद आदि दस प्रकार सत्य कौं उदाहरण पूर्वक तीनि गाथानि करि कहै हैं –

जणवदसम्मदिठवणा, णामे रूवे पडुच्चववहारे ।
संभावणे य भावे, उवमाए दसविहं सच्चं ॥२२२॥

जनपदसम्मतिस्थापनानाम्नि रूपे प्रतीत्यव्यवहारयोः ।
संभावनायां च भावे, उपमायां दशविधं सत्यम् ॥२२२॥

टीका – जनपद विषैं, संवृति वा सम्मति विषैं, स्थापना विषैं, नाम विषैं, रूप विषैं, प्रतीत्य विषैं, व्यवहार विषैं, संभावना विषैं, भाव विषैं, उपमा विषैं असैं दस स्थाननि विषैं दस प्रकार सत्य जानना ।

भत्तं देवी चंदप्पह, पडिमा तह य होदि जिणदत्तो ।
सेदो दिग्घो रज्झदि, कूरो त्ति य जं हवे वयणं ॥२२३॥

भक्तं देवी चंद्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्तः ।
श्वेतो दीर्घो रध्यते, कूरमिति च यद्भवेद्वचनम् ॥२२३॥

टीका – दस प्रकार सत्य कह्या, ताका उदाहरण अनुक्रम तैं कहिए हैं ।

देशनि विषैं, व्यवहारी मनुष्यनि विषैं प्रवृत्तिरूप वचन सो जनपद सत्य कहिए । जैसें ओदन कौं महाराष्ट्र देश विषैं भातु वा भेटु कहिए । अंध्रदेश विषैं वंटक वा मुकूडु कहिए । कर्णाट देश विषैं कूलु कहिए । द्रविड देश विषैं चोरु कहिए, इत्यादिक जानना ।

बहुरि जो संवृति कहिए कल्पना वा सम्मति कहिए बहुत जीवनि करि तैसैं ही मानना सर्व देशनि विषैं समान रूढिरूप नाम, सो संवृति सत्य कहिए वा इस

ताकौं अप्रतीतिसत्य कहिए । जैसैं किसी विषैं पटरानीपना न पाइए अर वाका नाम देवी कहिए ।

बहुरि जो अन्य विषैं अन्य का स्थापन करि, तिस मुख्य वस्तु का नाम कहना; सो स्थापनासत्य कहिए । जैसैं रत्नादिक करि निर्मापित चंद्रप्रभ तीर्थंकर की प्रतिमा कौं चंद्रप्रभ कहिए ।

बहुरि देशादिक की अपेक्षा भातु इत्यादिक नाम सत्य है । तैसैं अन्य अपेक्षा रहित केवल व्यवहार निमित्त जिसका जो नाम होइ, सो कहना, सो नामसत्य कहिए । जैसैं किसी का नाम जिनदत्त है; सो जिन भगवान करि दीया होइ, ताकौं जिनदत्त कहिए; सो इहां दानक्रिया की अपेक्षा बिना ही जिनदत्त नाम कहिए ।

बहुरि जो पुद्गल के अनेक गुण होत संतैं रूप की मुख्यता लीएं वचन कहिए सो रूपसत्य कहिए । जैसैं यहु पुरुष सफेद है; असा कहिए । तहां वाके केशादिक श्याम वा रसादिक अन्य गुण वाकै पाइए है; परि उनकी मुख्यता न करी ।

बहुरि जो विवक्षित वस्तु तैं अन्य वस्तु की अपेक्षा करि तिस विवक्षित वस्तु कौं हीनाधिक मान वचन कहिए; सो प्रतीत्यसत्य कहिए । याही का नाम आपेक्षिक सत्य है । जैसैं यहु दीर्घ है असा कहिए, सो तहां किसी छोटे की अपेक्षा याकौं दीर्घ कह्या बहुरि यहु ही यातैं दीर्घ की अपेक्षा छोटा है; परन्तु वाकी विवक्षा न लीन्ही । असैं ही स्थूल सूक्ष्मादिक कहना, सो प्रतीत्यसत्य जानना ।

बहुरि जो नैगमादि नय की अपेक्षा प्रधानता लीएं वचन कहिए, सो व्यवहार-सत्य जानना । जैसैं नैगम नय की प्रधानता करि असा कहिए कि 'भात पचै है' सो भात तौ पचैं पीछै होगा; अब तौ चावल ही हैं । तथापि थोरे ही काल में भात होना है; तातैं नैगम नय की विवक्षा करि भात पर्याय परिणमने योग्य द्रव्य अपेक्षा सत्य कहिए । आदि शब्द करि संग्रहनयादिक का भी व्यवहार विधान जानना ।

नयनि का व्यवहार की अपेक्षा जैसैं सर्व पदार्थ सत्त्व रूप हैं वा असत्त्व रूप हैं इत्यादिक वचनं सो व्यवहारसत्य है । नैगमादि नय तैं संग्रह नयादिक का व्यवहार हो है, जातैं याकौं व्यवहारसत्य कहिए ।

सक्को जंबूदीवं, पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च ।
पल्लोवमं च कमसो, जणपदसच्चादिदिट्ठंता ॥२२४॥

शक्रो जंबूद्वीपं, परिवर्तयति पापवर्जवचनं च ।
पल्योपमं च क्रमशो, जनपदसत्यादिदृष्टांताः ॥२२४॥

टीका – असंभवपरिहार पूर्वक वस्तु के स्वभाव का विधानरूप लक्षण धरै; जो संभावना तींहि रूप वचन सो संभावना सत्य कहिए । जैसें इंद्र जंबूद्वीप पलटावने कौं समर्थ है, असा कहिए । तहाँ जंबूद्वीप कौं पलटाने की शक्ति संभवै नाहीं । ताका परिहार करि केवल वामैं असी शक्ति ही पाइए है; असा जंबूद्वीप पलटावने की क्रिया की अपेक्षा रहित वचन सो सत्य है । जैसें बीज विषैं अंकूरा उपजावने की शक्ति है, सो यहु क्रिया की अपेक्षा लीएं वचन है । जातैं असंभव का परिहार करि वस्तु स्वभाव का विधानरूप जो संभावना, ताके नियम करि क्रिया की सापेक्षता नाहीं है । जातैं क्रिया है, सो अनेक बाह्य कारण मिलैं उपजै है ।

बहुरि अतींद्रिय जो पदार्थ, तिनि विषैं सिद्धांत के अनुसारि विधि निषेध का संकल्परूप जो परिणाम, सो भाव कहिए । तींहि नै लीएं जो वचन, सो भावसत्य कहिए । जैसें जो सूकि गया होंइ वा अग्नि करि पच्या होंइ वा घरटी, कोल्हू इत्यादिक यंत्रकरि छिन्न कीया होंइ अथवा खटाई वा लूण करि मिश्रित हूवा होंइ वा भस्मीभूत हूवा होंइ वस्तु, ताकौं प्रासुक कहिए । याके सेवन तैं पापबंध नाहीं । इत्यादिक पापवर्जनरूप वचन, सो भावसत्य कहिए । यद्यपि इनि वस्तुनि विषैं इंद्रिय अगोचर सूक्ष्म जीव पाइए हैं; तथापि आगम प्रमाण तैं प्रासुक अप्रासुक का संकल्परूप भाव के आश्रित असा वचन सो सत्य है; जातैं समस्त अतींद्रिय पदार्थ के ज्ञानीनि करि कह्या हुवा वचन सत्य है । चकार करि असा ही और भावसत्य जानना ।

बहुरि जो किसी प्रसिद्ध पदार्थ की समानता किसी पदार्थ कौं कहिए सो उपमा है । तींहि रूप वचन सो उपमासत्य कहिए । जैसें उपमा प्रमाण विषैं पल्योपम कह्या, तहाँ धान भरणे का जो खास (गोदाम) ताकौं पल्य कहिए, ताकी उपमा जाकौं होइ असी संख्या कौं पल्योपम कह्या; सो इहाँ उपमासत्य है । असंख्याता-संख्यात रोम खंडनि के आश्रयभूत वा तींहि प्रमाण समयनि के आश्रयभूत जो संख्या

विशेष, ताके कोइ प्रकार खाडा विषैं रोम भरने करि, पल्य की समानता का आश्रय करि, पल्योपम कहिए है । चकार करि सागर आदि उपमासत्य के विशेष जानने ।

ऐसैं अनुक्रम तैं जनपदादिक सत्य के भोजनादिक उदाहरण क्रम तैं कहे ।

आगैं अनुभय वचन के आमंत्रणी आदि भेदनि के निरूपण के निमित्त दोय गाथा कहैं हैं –

आमंतणि आणवणी, याचणिया पुच्छणी य पण्णवणी ।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥२२५॥

आमंत्रणी आज्ञापनी, याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी ।
प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोम्नी च ॥२२५॥

टीका – 'हे देवदत्त ! तू आव' इत्यादि बुलावनेरूप जो भाषा, सो आमंत्रणी कहिए । बहुरि 'तू इस कार्य कौं करि' इत्यादि कार्य करवाने की आज्ञारूप जो भाषा सो आज्ञापनी कहिए । बहुरि 'तू मोकौं यहु वस्तु देहु' इत्यादि मांगनेरूप जो भाषा सो याचनी कहिए । बहुरि 'यहु कहां है ?' इत्यादि प्रश्नरूप जो भाषा सो आपृच्छनी कहिए । बहुरि 'हे स्वामी मेरी यहु वीनती है' इत्यादि किंकर की स्वामी सौं वीनतीरूप जो भाषा, सो प्रज्ञापनी कहिए । बहुरि 'मैं इस वस्तु का त्याग कीया' इत्यादि त्यागरूप जो भाषा, सो प्रत्याख्यानी कहिए । बहुरि जैसें 'यहु बुगलों की पंकति है कि ध्वजा है' इत्यादि संदेहरूप जो भाषा, सो संशयवचनी कहिए । बहुरि जैसें 'यहु है तैसें मोकौं भी होना' इत्यादि इच्छानुसारि जो भाषा, सो इच्छानुवचनी कहिए ।

णवमी अणक्खरगदा, असच्चमोसा हवंति भासाओ ।
सोदाराणं जह्मा, वत्तावत्तं संसंजणया ॥२२६॥

नवमी अनक्षरगता, असत्यमृषा भवंति भाषाः ।
श्रोतॄणां यस्मात् व्यक्ताव्यक्तांशसंज्ञायिकाः ॥२२६॥

टीका – आठ भाषा तौ आगै कहीं अर नवमी अनक्षररूप बेइंद्रियादिक असैनी जीवनि कैं जो भाषा हो है, अपने-अपने समस्यारूप संकेत की प्रकट करणहारी; सो

अनुभय भाषा जाननी । ऐसें सत्य असत्य लक्षण रहित आमंत्रणी आदि अनुभय भाषा जाननी । इनि विषें सत्य असत्य का निर्णय नाहीं, सो कारण कहैं हैं । जातैं ऐसें वचननि का सुननेवाला के सामान्यपना करि तौ अर्थ का अवयव प्रगट हूवा, तातैं असत्य न कही जाइ । बहुरि विशेषपना करि अर्थ का अवयव प्रगट न हूवा तातैं सत्य भी न कह्या जाय, तातैं अनुभय कहिए । जैसें कही 'तू आव' सो इहां सभी सुननेवाला नै सामान्यपनें जान्या कि बुलाया है, परंतु वह आवैगा कि न आवैगा ऐसा विशेष निर्णय तौ उस वचन में नाहीं । तातैं इसकौं अनुभय कहिए । ऐसें सब का जानना । अन्य भी अनुभय वचन के भेद हैं । तथापि इन भेदनि विषें गर्भित जानने । अथवा ऐसें ही उपलक्षण तें ऐसी ही व्यक्त अव्यक्त वस्तु का अंश की जनावनहारी और भी अनुभय भाषा जुदी जाननी ।

इहां कोऊ कहैगा कि अनक्षर भाषा का तौ सामान्यपना भी व्यक्त नाहीं हो है, याकौं अनुभय वचन कैसें कहिए ?

ताकौं उत्तर – कि अनक्षर भाषावाले जीवनि का संकेतरूप वचन हो है । तिस तें उनका वचन करि उनके सुख-दुख आदि का अवलंबन करि हर्षादिक रूप अभिप्राय जानिए है । तातैं अनक्षर शब्द विषें भी सामान्यपना की व्यक्तता संभवै है ।

आगें ए मन वचन योग के भेद कहे, तिनिका कारण कहैं हैं—

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मनोवचनयोर्मूलनिमित्तं खलु पूर्णदेहोदयस्तु ।
मृषोभययोर्मूलनिमित्तं खलु भवत्यावरणम् ॥२२७॥

टीका – सत्यमनोयोग वा अनुभयमनोयोग बहुरि सत्यवचनयोग वा अनुभयवचनयोग, इनिका मुख्य कारण पर्याप्त नामा नामकर्म का उदय अर शरीर नामा नामकर्म का उदय जानना । जातैं सामान्य है, सो विशेष बिना न हो है । तातैं मन वचन का सामान्य ग्रहण हूवा, तहां उस ही का विशेष जो है, सत्य अर अनुभय, ताका ग्रहण सहज ही सिद्ध भया । अथवा असत्य-उभय का आगें

निकट ही कथन है । तातैं इहां अवशेष रहे सत्य-अनुभय, तिनि का ही ग्रहण करना। बहुरि आवरण का मंद उदय होतें असत्यपना की उत्पत्ति नाहीं हो है । तातैं असत्य वा उभय मनोयोग अर वचनयोग का मुख्य कारण आवरण का तीव्र अनुभाग का उदय जानना । इसहू विषै इतना विशेष है, तीव्रतर आवरण के अनुभाग का उदय असत्य मन-वचन कौं कारण है । अर तीव्र आवरण के अनुभाग का उदय उभय मन-वचन कौं कारण है ।

इहां कोऊ कहै कि असत्य वा उभय मन-वचन का कारण दर्शन वा चारित्र मोह का उदय क्यों न कहौ ?

ताका समाधान – कि असत्य अर उभय मन, वचन, योग मिथ्यादृष्टीवत् असंयत सम्यग्दृष्टी कैं वा संयमी कैं भी पाइए । तातैं तू कहै सो बनै नाहीं । तातैं सर्वत्र मिथ्यादृष्टी आदि जीवनि के सत्य-असत्य योग का कारण मंद वा तीव्र आवरण के अनुभाग का उदय जानना । केवली कैं सत्य-अनुभय योग का सद्भाव सर्व आवरण के अभाव तैं जानना । अयोग केवली कैं शरीर नामा नामकर्म का उदय नाहीं । तातैं सत्य अर अनुभय योग का भी सद्भाव नाहीं है ।

इहां प्रश्न उपजै है कि–केवली कैं दिव्यध्वनि है, ताकैं सत्य-वचनपना वा अनुभय वचनपना कैसें सिद्धि हो है ?

ताका समाधान–केवली कैं दिव्यध्वनि हो है; सो होते ही तौ अनक्षर हो है; सो सुनने वालों के कर्णप्रदेश कौं यावत् प्राप्त न होइ तावत् काल पर्यंत अनक्षर ही है । तातैं अनुभय वचन कहिए । बहुरि जब सुनने वालों के कर्ण विषै प्राप्त हो है; तब अक्षर रूप होइ, यथार्थ वचन का अभिप्राय रूप संशयादिक कौं दूर करै है । तातैं सत्य वचन कहिए । केवली का अतिशय करि पुद्गल वर्गणा तैसें ही परिणमि जांय है ।

आगै सयोग केवली कैं मनोयोग कैसें संभवै है ? सो दोय गाथानि करि कहैं हैं –

मणसहियाणं वयणं, दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि ।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्मि ॥२२८॥

मनःसहितानां वचनं, दृष्टं तत्पूर्वमिति सयोगे ।
उक्तो मन उपचारेणेंद्रियज्ञानेन हीने ॥२२८॥

टीका – इन्द्रिय ज्ञान जो मतिज्ञान, तीहि करि रहित ऐसा जु सयोग केवली, तीहि विषैं मुख्यपनें तौ मनो योग है नाहीं, उपचारतें है । सो उपचार विषैं निमित्त का प्रयोजन है; सो निमित्त इहां यहु जानना – जैसैं हम आदि छद्मस्थ जीव मन करि संयुक्त, तिनिकै मनोयोग पूर्वक अक्षर, पद, वाक्य, स्वरूप वचनव्यापार देखिए है । तातैं केवली कैं भी मनोयोग पूर्वक वचन योग कह्या ।

इहां प्रश्न – कि छद्मस्थ हम आदि अतिशय रहित पुरुषनि विषैं जो स्वभाव देखिए; सो सातिशय भगवान केवली विषैं कैसैं कल्पिए ?

ताका समाधान – सादृश्यपना नाहीं है; इस ही वास्ते छद्मस्थ कै मनोयोग मुख्य कह्या । अर केवली कै कल्पनामात्र उपचाररूप मनोयोग कह्या है ।

सो इस कहने का भी प्रयोजन कहैं हैं—

अंगोवंगुदयादो, दव्वमणट्ठं जिणंदचंदह्मि ।
मणवग्गणखंधाणं, आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

अंगोपांगोदयात्, द्रव्यमनोऽर्थं जिनेंद्रचंद्रे ।
मनोवर्गणास्कंधानामागमनात् तु मनोयोगः ॥२२९॥

टीका – जिन है इंद्र कहिए स्वामी जिनिका, ऐसैं जो सम्यग्दृष्टी, तिनिकैं चंद्रमा समान संसार-आताप अर अज्ञान अंधकार का नाश करनहारा, ऐसा जो सयोगी जिन, तीहि विषैं अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय तैं द्रव्यमन फूल्या आठ पांखडी का कमल के आकार हृदय स्थानक के मध्य पाईए है । ताके परिणमने कौं कारणभूत मन वर्गणा का आगमन तैं द्रव्य मन का परिणमन है । तातैं प्राप्तिरूप प्रयोजन तैं पूर्वोक्त निमित्त तैं मुख्यपनै भावमनोयोग का अभाव है । तथापि मन-योग उपचार मात्र कह्या है । अथवा पूर्व गाथा विषैं कह्या था; आत्मप्रदेशनि कैं कर्म नोकर्म का ग्रहणरूप शक्ति, सो भावमनोयोग, बहुरि याहीं तैं उत्पन्न भया मनोवर्गणारूप पुद्गलनि का मनरूप परिणमना, सो द्रव्यमनोयोग, सो इस गाथा सूत्र करि संभवै है । तातैं केवली के मनोयोग कह्या है । तु शब्द करि केवली कैं

पूर्वोक्त उपचार कह्या, तिसके प्रयोजनभूत सर्व जीवनि की दया, तत्त्वार्थ का उपदेश शुक्लध्यानादि सर्व जानने ।

आगें काययोग का निरूपण प्रारंभै है । तहां प्रथम ही काय योग का भेद औदारिक काययोग, ताकौं निरुक्तिपूर्वक कहै हैं –

पुरुमहदुदारुरालं, एयठ्ठो संविजाण तम्हि भवं ।
औरालियं तमु (त्तिउ)च्चइ औरालियकायजोगो सो[1] ॥२३०॥

पुरुमहदुदारमुरालमेकार्थः संविजानीहि तस्मिन्भवम् ।
औदारिकं तदुच्यते औरालिककाययोगः सः ॥२३०॥

टीका – पुरु वा महत् वा उदार वा उराल वा स्थूल ए एकार्थ हैं । सो स्वार्थ विषैं ठण् प्रत्यय तें जो उदार होइ वा उराल होइ, सो औदारिक कहिए वा औरालिक भी कहिए अथवा भव अर्थ विषैं ठण् प्रत्यय तें जो उदार विषैं वा उराल विषैं उत्पन्न होइ, सो औदारिक कहिए वा औरालिक भी कहिए । बहुरि संचयरूप पुद्गलपिंड, सो औदारिक काय कहिए । औदारिक शरीर नामा नामकर्म के उदय तें निपज्या औदारिक शरीर के आकार स्थूल पुद्गलनि का परिणमन, सो औदारिक काय जानना । वैक्रियिक आदि शरीर सूक्ष्म परिणमैं है, तिनिकी अपेक्षा यहु स्थूल है; तातैं औदारिक कहिए है ।

इहां प्रश्न – उपजै है कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि जीवनि कैं स्थूलपना नाहीं है; तिनिकी औदारिक शरीर कैसें कहिए है ?

ताका समाधान – इन हूतें वैक्रियिकादिक शरीर सूक्ष्म परिणमैं है, तातैं तिनकी अपेक्षा स्थूलपना आया । अथवा परमागम विषैं असी रूढि है; तातैं समभिरूढि करि सूक्ष्म जीवनि कैं औदारिक शरीर कह्या; सो औदारिक शरीर के निमित्त आत्मप्रदेशनि कैं कर्म-नोकर्म ग्रहण की शक्ति, सो औदारिक काय योग कहिए है । अथवा औदारिक वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि कौं औदारिक शरीररूप परिणमावने कौं कारण, जो आत्मप्रदेशनि का चंचलपना, सो औदारिक काययोग हे भव्य ! तू जानि । अथवा औदारिक काय सोई औदारिककाय योग है । इहां कारण

---

१ – षट्खंडागम धवला पुस्तक १, पृ. २९३ गाथा स. १६० पाठभेद–तं विजाण तिवुत्तं ।

विषैं कार्य का उपचार जानना । इहां उपचार है सो निमित्त अर प्रयोजन धरै है। तहां औदारिक काय तें जो योग भया, सो औदारिक काय योग कहिए; सो यहु तौ निमित्त । बहुरि तिस योग तैं ग्रहे पुद्गलनि का कर्म-नोकर्मरूप परिणमन, सो प्रयोजन संभवै है । तातैं निमित्त अर प्रयोजन की अपेक्षा उपचार कह्या है ।

आगैं औदारिक मिश्रकाययोग कौं कहैं हैं –

ओरालिय उत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो, ओरालियमिस्सजोगो सो[1] ॥२३१॥

औरालिकमुक्तार्थं, विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगः, औरालिकमिश्रयोगः सः ॥२३१॥

टीका – पूर्वोक्त लक्षण लीएं जो औदारिक शरीर, सो यावत् काल अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण न होइ, अपर्याप्त होइ, तावत् काल औदारिक मिश्र नाम अनेक कैं मिलनैं का है; सो इहां अपर्याप्त काल संबंधी तीन समयनि विषैं संभवता जो कार्माणयोग, ताकी उत्कृष्ट कार्माण वर्गणा करि संयुक्त है; तातैं मिश्र नाम है । अथवा परमागम विषैं ऐसैं ही रूढि है । जो अपर्याप्त शरीर कौं मिश्र कहिए, सो तींहि औदारिक मिश्र करि सहित संप्रयोग कहिए, ताके अर्थि प्रवर्त्या जो आत्मा कैं कर्म–नोकर्म ग्रहणे की शक्ति धरैं प्रदेशनि का चंचलपना; सो योग है । सो शरीर पर्याप्ति की पूर्णता के अभाव तैं औदारिक वर्गणा स्कंधनि कौं संपूर्ण शरीररूप परिणमावने कौं असमर्थ है । ऐसा औदारिक मिश्र काययोग तू जानि ।

आगैं वैक्रियिक काय योग कौं कहैं हैं—

विविहगुणइड्ढिजुत्तं, विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं ।
तिस्से भवं च णेयं, वेगुव्वियकायजोगो सो[2] ॥२३२॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं, विक्रियं वा हि भवति विगूर्वम् ।
तस्मिन् भवं च ज्ञेयं, वैगूर्विककाययोगः सः ॥२३२॥

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १ पृष्ठ २९२, गा. सं. १६१.

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९३, गाथा १६२ ।

बहुरि जो अपने शरीर ही कौं अनेक विकाररूप करै, सो अपृथक् विक्रिया कहिए ।

आगै वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहैं हैं—

वेगुव्वियउत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपयोगो, वेगुव्वियमिस्सजोगो सो [1] ॥२३४॥

वैगूर्विकमुक्तार्थं, विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगो, वैगूर्विकमिश्रयोगः सः ॥२३४॥

टीका – पूर्वोक्त लक्षण ने लीएं जो वैगूर्विक वा वैक्रियिक शरीर, सो यावत् काल अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण न होइ-शरीर पर्याप्ति की संपूर्णता का अभाव करि वैक्रियिक काययोग उपजावने कौं असमर्थ होइ, तावत् काल वैक्रियिक मिश्र कहिए । मिश्रपना इहां भी औदारिक मिश्रवत् जानना । तीहि वैक्रियिक मिश्र करि सहित संप्रयोग कहिए कर्म-नोकर्म ग्रहण की शक्ति कौं प्राप्त अपर्याप्त कालमात्र आत्मा के प्रदेशनि का चंचल होना; सो वैक्रियिक मिश्र काययोग कहिए । अपर्याप्त योग का नाम मिश्र योग जानना ।

आगै आहारक काययोग कौं पांच गाथानि करि कहैं हैं—

आहारस्सुदएण य, पमत्तविरदस्स होदि आहारं ।
असंजमपरिहरणट्ठं, संदेहविणासणट्ठं च ॥२३५॥

आहारस्योदयेन च, प्रमत्तविरतस्य भवति आहारकम् ।
असंयमपरिहरणार्थं, संदेहविनाशनार्थं च ॥२३५॥

टीका – प्रमत्त विरति षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनि, ताकै आहारक शरीर नामा नामकर्म के उदय तैं आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि का आहारक शरीररूप परिणमने करि आहारक शरीर हो है । सो किसै अर्थि हो है ? अढाई द्वीप विषै तीर्थयात्रादिक निमित्त वा असंयम दूरि करने के निमित्त वा ऋद्धियुक्त होतैं

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९४, गाथा १६३ ।

भी श्रुतज्ञानावरण, वीर्यांतराय का क्षयोपशम की मंदता होतें कोऊ धर्म्यध्यान का विरोधी शास्त्र का अर्थ विषै संदेह उपजै ताके दूरि करने के निमित्त आहारक शरीर उपजै है।

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे ।
परखेत्ते संवित्ते, जिणजिणघरवंदणट्ठं च ॥२३६॥

निजक्षेत्रे केवलिद्विकविरहे निष्क्रमणप्रभृतिकल्याणे ।
परक्षेत्रे संवृत्ते, जिनजिनगृहवंदनार्थं च ॥२३६॥

टीका – निज क्षेत्र जहां अपनी गमनशक्ति होइ, तहां केवली श्रुतकेवली न पाइए। बहुरि परक्षेत्र, जहां अपने औदारिक शरीर की गमन शक्ति न होइ, तहां केवली श्रुतकेवली होंइ अथवा तहां तपज्ञान निर्वाण कल्याणक होंइ, तौ तहां असंयम दूर करने के निमित्त वा संदेह दूर करने के निमित्त वा जिन अर जिन-मंदिर तिन की वंदना करने के निमित्त, गमन करने कौं उद्यमी भया, जो प्रमत्त संयमी, ताकैं आहारक शरीर हो है।

उत्तमअंगम्हि हवे, धादुविहीणं सुहं असंहणणं ।
सुहसंठाणं धवलं, हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥२३७॥

उत्तमांगे भवेत्, धातुविहीनं शुभमसंहननम् ।
शुभसंस्थानं धवलं हस्तप्रमाणं प्रशस्तोदयं ॥२३७॥

टीका – सो आहारक शरीर कैसा हो है ? रसादिक सप्त धातु करि रहित हो है। बहुरि शुभ नामकर्म के उदय तैं प्रशस्त अवयव का धारी शुभ हो है। बहुरि संहनन जो हाडों का बंधान तींहि करि रहित हो है। बहुरि शुभ जो सम चतुरस्रसंस्थान वा अंगोपांग का आकार, ताका धारक हो है। बहुरि चंद्रकांतमणि समान श्वेत वर्ण हो है। बहुरि एक हस्त प्रमाण हो है। इहां चौबीस व्यवहारां-गुल प्रमाण एक हस्त जानना। बहुरि प्रशस्त जो आहारक शरीर बंधनादिक पुण्य-रूप प्रकृति, तिनि का है उदय जाकैं, असा हो है। असा आहारक शरीर उत्तमांग जो है मुनि का मस्तक, तहां उत्पन्न हो है।

अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे ।
पज्जत्तीसंपुण्णे, मरणं पि कदाचि संभवई ॥२३८॥

अव्याघाति अंतर्मुहूर्तकालस्थिती जघन्येतरे ।
पर्याप्तिसंपूर्णायां, मरणमपि कदाचित् संभवति ॥२३८॥

टीका – सो आहारक शरीर अव्याबाध है; वैक्रियिक शरीर की ज्यों कोई वज्र पर्वतादिक करि रुकि सकै नाहीं । आप किसी कौं रोकै नाहीं । बहुरि जाकी जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण स्थिति है; ऐसा है । बहुरि जब आहारक शरीर पर्याप्ति पूर्ण होइ, तब कदाचित् कोई आहारक काययोग का धारी प्रमत्त मुनि का आहारक काययोग का काल विषै अपने आयु के क्षय तैं मरण भी संभवै है ।

आहरदि अणेण मुणी, सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं, तह्मा आहारगो जोगो[1] ॥२३९॥

आहारत्यनेन मुनिः, सूक्ष्मानर्थान् स्वस्य संदेहे ।
गत्वा केवलिपार्श्वं तस्मादाहारको योगः ॥२३९॥

टीका – आहारक ऋद्धि करि संयुक्त प्रमत्त मुनि, सो पदार्थनि विषै आप के संदेह होतैं, ताके दूरि करने के अर्थि केवली के चरण के निकट जाइ, आप तैं अन्य जो केवली, तीहिकरि जो सूक्ष्म यथार्थ अर्थ कौं आहरति कहिए ग्रहण करै; सो आहारक कहिए । आहारस्वरूप होइ, ताकौं आहारक कहिए । सो ताकैं तो शरीर पर्याप्ति पूर्ण होतैं, आहार वर्गणानि करि आहारक शरीर योग्य पुद्गल स्कंधनि के ग्रहण करने की शक्ति धरै; आत्मप्रदेशनि का चंचलपना; सो आहारक काययोग जानना ।

आगै आहारक मिश्र काययोग कौं कहैं हैं—

आहारयमुत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो, आहारयमिस्सजोगो सो[2] ॥२४०॥

---

१ षट्खण्डागम - धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९६ गाथा १६४ ।

२. षट्खण्डागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ २९६, गाथा १६५ ।

आहारकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगः आहारकमिश्रयोगः सः ॥२४०॥

टीका – पूर्वोक्त लक्षण लीएं आहारक शरीर, सो यावत् काल अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण न होइ, आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनि का आहारक शरीररूप परिणमावने कौं असमर्थ होइ, तावत् काल आहारक मिश्र कहिए । इहां पूर्वे जो औदारिक शरीररूप वर्गणा है, ताके मिलाप तैं मिश्रपना जानना । तीहि आहारक मिश्र करि सहित जो संप्रयोग कहिए अपूर्ण शक्तियुक्त आत्मा के प्रदेशनि का चंचलपना, सो आहारक मिश्रकाययोग हे भव्य ! तू जानि ।

आगे कार्माण काय योग कौं कहैं हैं—

कम्मेव य कम्मभवं, कम्मइयं जो दु तेण संजोगो ।
कम्मइयकाययोगो, इगिविगतिगसमयकालेसु[1] ॥२४१॥

कर्मैव च कर्मभवं, कार्मणं यस्तु तेन संयोगः ।
कार्मणकाययोगः, एकद्विकत्रिकसमयकालेषु ॥२४१॥

टीका – कर्म कहिए ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल स्कंध, सोइ कार्माण शरीर जानना । अथवा कर्म जो कार्माण शरीर नामा नामकर्म, ताके उदय करि भया, सो कार्माण शरीर कहिए । तीहि कार्माण स्कंध सहित वर्तमान जो **संप्रयोगः** कहिए आत्मा के कर्मग्रहणशक्ति धरैं प्रदेशनि का चंचलपना, सो कार्माणकाय योग है । सो विग्रह गति विषैं एक समय वा दोय समय वा तीन समय काल प्रमाण हो है । अर केवल समुद्घात विषैं प्रतरद्विक अर लोक पूर्ण इनि तीन समयनि विषैं हो है । और काल विषैं कार्माण योग न हो है । याही तैं यहु जान्या, जो कार्माण बिना और जे योग कहे, ते रुकै नाहीं, तौ अंतर्मुहूर्त पर्यंत एक योग का परिणमन उत्कृष्ट रहै; पीछैं और योग होइ । बहुरि जो अन्य करि रुकै, तौ एक समयकौं आदि देकरि अंतर्मुहूर्त पर्यंत एक योग का परिणमन यथासंभव जानना । सो एक जीव की अपेक्षा तौ ऐसैं है । अर नाना जीव की अपेक्षा 'उपसम सुहुम' इत्यादि गाथानि करि आठ सांतर मार्गणा बिना अन्य मार्गणानि का सर्व काल सद्भाव कह्या ही है ।

---

1. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २६७, गाथा १६६ ।

आगैं योगनि की प्रवृत्ति का विधान दिखावैं हैं—

वेगुव्विय-आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्हि ।
जोगोवि एक्ककाले, एक्केव य होदि णियमेण ॥२४२॥

वैगूर्विकाहारकक्रिया न समं प्रमत्तविरते ।
योगोऽपि एककाले, एक एव च भवति नियमेन ॥२४२॥

टीका – प्रमत्त विरत षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनि कैं समकाल विषैं युगपत् वैक्रियिक काययोग की क्रिया अर आहारक योग की क्रिया नाहीं । असा नाहीं कि एक ही काल विषैं आहारक शरीर कौं धारि, गमनागमनादि कार्य कौं करैं अर विक्रिया ऋद्धि कौं धारि, विक्रिया संबंधी कार्य कौं भी करैं, दोऊ में स्यौं एक ही होइ । यातैं यहु जान्या कि गणधरादिकनि कैं और ऋद्धि युगपत् प्रवर्तें तौ विरुद्ध नाहीं । बहुरि तैसैं ही अपने योग्य अंतर्मुहूर्त मात्र एक काल विषैं एक जीव कैं युगपत् एक ही योग होइ, दोय वा तीन योग युगपत् न होइ, यहु नियम है । जो एक योग का काल विषैं अन्य योग संबंधी गमनादि क्रिया की प्रवृत्ति देखिए है, सो पूर्वैं जो योग भया था, ताके संस्कार तैं हो है । जैसैं कुंभार पहिले चाक दंड करि फेर्या था, पीछे कुंभार उस चाक कौं छोडि अन्य कार्य कौं लाग्या; वह चाक संस्कार के बल तैं केतेक काल आप ही फिर्या करै; संस्कार मिटि जाय, तब फिरै नाहीं । तैसैं आत्मा पहिले जिस योगरूप परिणया था, सो उसको छोडि अन्य योगरूप परिणया, वह योग संस्कार के बल तैं आप ही प्रवर्तै है । संस्कार मिटैं जैसैं छोड्या हूवा बाण गिरै, तैसैं प्रवर्तना मिटै है । तातैं संस्कार तैं एक काल विषैं अनेक योगनि की प्रवृत्ति जानना । बहुरि प्रमत्तविरति कैं संस्कार की अपेक्षा भी एक काल वैक्रियिक वा आहारक योग की प्रवृत्ति न हो है । असैं आचार्य करि वर्णन किया है; सो जानना ।

आगैं योग रहित आत्मा के स्वरूप कौं कहै हैं—

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा, अणोवमाणंतबलकलिया[1] ॥२४३॥

येषां न संति योगाः, शुभाशुभाः पुण्यपापसंजनकाः ।
ते भवंति अयोगिजिनाः, अनुपमानंतबलकलिताः ॥२४३॥

---

1. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ २८२, गाथा १५५ ।

टीका – जिन आत्मनि के पुण्य पापरूप कर्म प्रकृति के बंध कौं उपजावन हारे शुभरूप वा अशुभरूप मन, वचन, काय के योग न होंहि ते अयोगी जिन, चौदह्वां अंत गुणस्थानवर्ती वा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ।

कोऊ जानेगा कि योगनि के अभाव तें उनके बल का अभाव है । जैसें हम सारिखे जीवनि कें योगनि के आश्रयभूत बल देखिए है ।

तहां कहिए हैं । कैसे हैं-सिद्ध ? **'अनुपमानंतबलकलिताः'** कहिए जिनके बल कौं हम सारिखे जीवनि का बल की उपमा न बनै है । बहुरि केवलज्ञानवत् अक्षयानंत अविभाग प्रतिच्छेद लीएं है, ऐसा बल–वीर्य, जो सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय का युगपत् ग्रहणे की समर्थता, तींहि करि व्याप्त है । तींहि स्वभाव परिणए हैं । योगनि का बल कर्माधीन है । तातें प्रमाण लीएं है; अनंत नाहीं । परमात्मा का बल केवलज्ञानादिवत् आत्मस्वभावरूप है । तातैं प्रमाण रहित अनंत है; ऐसा जानना ।

आगै शरीर का कर्म अर नोकर्म भेद दिखावै हैं –

ओरालियवेगुव्विय, आहारयतेजणामकम्मुदये ।
चउणोकम्मसरीरा, कम्मेव य होदि कम्मइयं ।।२४४।।

औरालिकवैगूर्विकाहारकतेजोनामकर्मोदये ।
चतुर्नोकर्मशरीराणि, कर्मैव च भवति कार्मणम् ।।२४४।।

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजसरूप जो नामकर्म की प्रकृति तिनके उदय तैं जे ए औदारिक आदि च्यारि शरीर होइ, ते नोकर्म शरीर जानने । **नो** शब्द का दोय अर्थ है, एक तौ निषेधरूप अर एक ईषत् स्तोकरूप । सो इहां कार्माण की ज्यों ए च्यारि शरीर आत्मा के गुण कौं घातै नाहीं वा गत्यादिकरूप पराधीन न करि सकै । तातैं कर्म तें विपरीत लक्षण धरने करि इनिकौं अकर्म शरीर कहिए । वा कर्म शरीर के ए सहकारी है । तातैं ईषत् कर्म शरीर कहिए । ऐसें इनिकौं नोकर्म शरीर कहै । जैसें मन कौं नो-इंद्रिय कहिए हैं; तैसें नोकर्म जानने । बहुरि कार्माण शरीर नामा नामकर्म के उदय तैं ज्ञानावरणादिक कर्म स्कंधरूप कर्म, सोई कर्म शरीर जानना ।

आगे जे ए औदारिकादिक शरीर कहै, तिनिका समयप्रबद्धादिक की संख्या दोय गाथानि करि कहिए हैं –

परमाणूहिं अणंतहिं, वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु ।
ताहिं अणंतहिं णियमा, समयपबद्धो हवे एक्को ।।२४५।।

परमाणुभिरनंतैः वर्गणासंज्ञा हि भवत्येका हि ।
ताभिरनंतैर्नियमात्, समयप्रबद्धो भवेदेकः ।।२४५।।

टीका – सिद्धराशि के अनंतवे भाग अर अभव्यराशि स्यौं अनंतगुणा असा जो मध्य अनंतानंत का भेद, तीहि प्रमाण पुद्गल परमाणूनि करि जो एक स्कंध होइ, सो वर्गणा, असा नाम जानना । संख्यात वा असंख्यात परमाणूनि करि वर्गणा न हो है । जातैं यद्यपि आगैं पुद्गल वर्गणा के तेईस भेद कहैंगे । तहां अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा आदि भेद हैं । तथापि इहां औदारिक आदि शरीरनि का प्रकरण विषैं आहारवर्गणा वा तैजसवर्गणा वा कार्माणवर्गणा का ही ग्रहण जानना । बहुरि सिद्धनि के अनंतवे भाग वा अभव्यनि तैं अनंतगुणी असी मध्य अनंतानंत प्रमाण वर्गणा, तिनि करि एक समयप्रबद्ध हो है । समय विषैं वा समय करि यहु जीव कर्म-नोकर्मरूप पूर्वोक्त प्रमाण वर्गणानि का समूहरूप स्कंध करि संबंध करै है । तातैं याकौं समयप्रबद्ध कहिए है । असा वर्गणा का वा समय-प्रबद्ध का भेद स्याद्वादमत विषैं है; अन्यमत विषैं नाहीं । यहु विशेष नियम शब्द करि जानना ।

इहां कोऊ प्रश्न करै कि एक ही प्रमाण कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग वा अभव्यराशि तैं अनंतगुणा असैं दोय प्रकार कह्या, सो कौन कारण ?

ताका समाधान – कि सिद्धराशि का अनंतवां भाग के अनंत भेद हैं । तहां अभव्यराशि तैं अनंतगुणा जो सिद्धराशि का अनंतवां भाग होइ, सो इहां प्रमाण जानना । असैं अल्प-बहुत्व करि तिस प्रमाण का विशेष जानने के अर्थि दोय प्रकार कह्या है । अन्य किछू प्रयोजन नाहीं ।

ताणं समयपबद्धा, सेडिअसंखेज्जभागगुणिदकमा ।
णंतेण य तेजदुगा, परं परं होदि सुहमं खु ।।२४६।।

तेषां समयप्रबद्धाः, श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः ।
अनंतेन च तेजोद्विकाः, परं परं भवति सूक्ष्मं खलु ॥२४६॥

टीका – तिन पंच शरीरनि के समयप्रबद्ध सर्व ही परस्पर समान नाहीं है । उत्तरोत्तर अधिक परमाणूनि का समूह लीएं हैं; सो कहिए हैं । परमाणूनि का प्रमाण करि औदारिक शरीर का समयप्रबद्ध सर्व तैं स्तोक है । यातैं श्रेणी का असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण वैक्रियिक का समयप्रबद्ध है । बहुरि यातैं भी श्रेणिका असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण आहारक का समयप्रबद्ध है । अैसें आहारक पर्यंत जगतश्रेणी का असंख्यातवां भाग कौं गुणकार की विवक्षा जाननी । तातैं परैं आहारक के समयप्रबद्ध तैं अनंतगुणा परमाणू प्रमाण तैजस का समयप्रबद्ध है । बहुरि यातैं भी अनंतगुणा परमाणू प्रमाण कार्माण का समय प्रबद्ध है । इहां '**अनंतेन तेजोद्विकं**' इस करि तैजसकार्माण विषैं अनंतानंत गुणा प्रमाण जानना ।

बहुरि इहां कोऊ आशंका करै कि जो उत्तरोत्तर अधिक-अधिक परमाणू कहे, तो उत्तरोत्तर स्थूलता भी होयगी ?

तहां कहिए है–**परं परं सूक्ष्मं भवति** कहिए उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं । औदारिक तैं वैक्रियिक सूक्ष्म है । वैक्रियिक तैं आहारक सूक्ष्म है । आहारक तैं तैजस सूक्ष्म है । तैजस तैं कार्माण सूक्ष्म है । यद्यपि परमाणू तौ अधिक अधिक हैं, तथापि स्कंध का बंधन में विशेष हैं । तातैं उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं । जैसें कपास के पिंड तैं लोह के पिंड मैं अधिकपना होतैं भी कपास के पिंड तैं लोह का पिंड क्षेत्र थोरा रोकैं; तैसें जानना ।

आगै औदारिकादिक शरीरनि का समयप्रबद्ध अर वर्गणा, ते कितने-कितने क्षेत्र विषैं रहै ? अैसा अवगाहना भेदनि कौं कहैं हैं –

ओगाहणाणि ताणं, समयपबद्धाण वग्गणाणं च ।
अंगुलअसंखभागा, उवरुवरिमसंखगुणहीणा ॥२४७॥

अवगाहनानि तेषां, समयप्रबद्धानां वर्गणानां च ।
अंगुलासंख्यभागा, उपर्युपरि असंख्यगुणहीनानि ॥२४७॥

टीका -- तिनि औदारिकादिक शरीर संबंधी समयप्रबद्ध वा वर्गणा, तिनिका अवगाहनाक्षेत्र घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र है । तथापि ऊपरि-ऊपरि असंख्यात-गुणा घाटि क्रम तें जानना । सोई कहिए है – औदारिक शरीर के समयप्रबद्धनि-का अवगाहनाक्षेत्र सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का भाग घनांगुल कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितना जानना । बहुरि याकौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये तब औदारिक शरीर की वर्गणा के अवगाहना क्षेत्र का प्रमाण होइ । बहुरि यातैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण, जो असंख्यात, तिहि असंख्यात-गुणा घटता क्रम तें वैक्रियिकादि शरीर के समयप्रबद्ध का वा वर्गणा की अवगाहना का परिमाण हो है । वैक्रियिक शरीर का समयप्रबद्ध की अवगाहना कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणिए, औदारिक समयप्रबद्ध की अवगाहना हो है । वैक्रि-यिक शरीर की वर्गणा की अवगाहना कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, औदारिक की वर्गणा की अवगाहना हो है । असैं ही वैक्रियिक तें आहारक की, आहारक तें तैजस की, तैजस तें कार्माण की समयप्रबद्ध वा वर्गणा की अवगाहना असंख्यातगुणी क्रम तें घाटि जाननी ।

इस ही अर्थ कौं श्री माधवचंद्र त्रैविद्य देव कहैं हैं –

तस्समयबद्धवग्गणओगाहो सूइअंगुलासंख-
भागहिदबिंदअंगुलमुवरुवरिं तेन भजिदकमा ॥२४८॥

तत्समयबद्धवर्गणावगाहः सूच्यंगुलासंख्य-
भागहितवृंदांगुलमुपर्यु परि तेन भजितक्रमाः ॥२४८॥

टीका – तिनि सयमप्रबद्ध वा वर्गणा की अवगाहना का परिमाण सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का भाग घनांगुल कौं दीएं जो परिमाण होइ, तितना जानना । बहुरि ऊपरि-ऊपरि पूर्व-पूर्व तें सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जानने । गुणहानि का अर भाग देने का एक अर्थ है । सो वैक्रियिक का समयप्रबद्ध वर्गणा की अवगाहना कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणै, औदारिक का समयप्रबद्ध वर्गणा की अवगाहना होइ । अथवा औदारिक का समयप्रबद्ध वर्गणा की अवगाहना कौं सूच्यं-गुल का असंख्यातवां भाग का भाग दीयें वैक्रियिक शरीर का समयप्रबद्ध वर्गणा का परिमाण होइ । दोऊ एकार्थ हैं; असैं ही सब का जानना ।

आगें विस्रसोपचय का स्वरूप कहैं हैं –

जीवादो णंतगुणा, पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया ।
जीवेण य समवेदा, एक्केक्कं पडिसमाणा हु ।।२४९।।

जीवतोऽनंतगुणाः प्रतिपरमाणौ विस्रसोपचयाः ।
जीवेन च समवेता एकैकं प्रति समानाः हि ।।२४९।।

टीका – कर्म वा नोकर्म के जितने परमाणु हैं, तिनि एक-एक परमाणूनि प्रति जीवराशि तें अनंतानंत गुणा विस्रसोपचयरूप परमाणू जीव के प्रदेशनि स्यों एक क्षेत्रावगाही हैं । विस्रसा कहिए अपने ही स्वभाव करि आत्मा के परिणाम विना ही उपचीयंते कहिए कर्म–नोकर्म रूप विना परिणए अैसे कर्म–नोकर्म रूप स्कंध, तीहिं विषैं स्निग्ध-रूक्ष गुण का विशेष करि मिलि, एक स्कंधरूप होंहि; ते विस्रसोपचय कहिए; अैसा निरुक्ति करि ही याका लक्षण आया; तातैं जुदा लक्षण न कह्या । विस्रसोपचयरूप परमाणू कर्म–नोकर्मरूप होने को योग्य हैं । उन ही कर्म नोकर्म के स्कंध विषैं एकक्षेत्रावगाही होइ संबंधरूप परिणमि करि एक स्कंधरूप हो हैं । वर्तमान कर्म नोकर्मरूप परिणए हैं नाहीं; अैसैं विस्रसोपचयरूप परमाणू जानने । ते कितने हैं ? सो कहिए हैं—

जो एक कर्म वा नोकर्म संबंधी परमाणू के जीवराशि तैं अनंत गुणे विस्रसोपचयरूप परमाणू होंइ, तौ किछू घाटि ड्योढ गुणहानि का प्रमाण करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सर्वसत्त्वरूप कर्म वा नोकर्म के परमाणूनि के केते विस्रसोपचय परमाणू होंहि; अैसें त्रैराशिक करना । इहां प्रमाणराशि एक, फलराशि अनंतगुणा जीवराशि, इच्छाराशि किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध । तहां इच्छा कौं फलराशि करि गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, लब्धराशिमात्र आत्मा के प्रदेशनि विषैं तिष्ठते सर्व विस्रसोपचय परमाणूनि का प्रमाण जानना । बहुरि इस विस्रसोपचय परमाणूनि का परिमाण विषैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र कर्म–नोकर्मरूप परमाणूनि का परिमाण कौं मिलाएं, विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म का सत्त्व हो है ।

आगैं कर्म–नोकर्मनि का उत्कृष्ट संचय का स्वरूप वा स्थान वा लक्षण प्ररूपैं हैं—

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे, सगसगउक्कस्ससंचओ होदि ।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं ॥२५०॥

उत्कृष्टस्थितिचरमे, स्वकस्वकोत्कृष्टसंचयो भवति ।
पंचदेहानां वरयोगादिस्वसामग्रीसहितानाम् ॥२५०॥

टीका – उत्कृष्ट योग आदि अपने-अपने उत्कृष्ट बंध होने की सामग्री करि सहित जे जीव, तिनिकैं औदारिकादिक पंच शरीरनि का उत्कृष्ट संचय जो उत्कृष्टपनें परमाणूनि का संबंध, सो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति का अंत समय विषैं हो है । तहां स्थिति के पहले समय तैं लगाइ एक-एक समय विषैं एक-एक समयप्रबद्ध बंधै । बहुरि आगैं कहिए हैं, तिसप्रकार एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक की निर्जरा होइ, अवशेष संचयरूप होतें संतें अंत समय विषैं किछू घाटि, ड्योढगुणहानि करि समयप्रबद्ध कौं गुणैं, जो परिमाण होइ, तितना उत्कृष्ट पनैं सत्त्व हो है ।

आगैं श्री माधवचंद्र त्रैविद्य देव उत्कृष्ट संचय होने की सामग्री कहैं हैं—

आवासया हु भवअद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य ।
ओकट्टुक्कट्टणया, छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ॥२५१॥

आवश्यकानि हि भवाद्धा आयुष्यं योगसंक्लेशौ च ।
अपकर्षणोत्कर्षणके, षट् चैते गुणितकर्मांशे ॥२५१॥

टीका – गुणितकर्मांश कहिए उत्कृष्ट संचय जाकैं होइ, ऐसा जो जीव, तीहि विषैं उत्कृष्ट संचय कौं कारण ए छह अवश्य होइ । तातैं उत्कृष्ट संचय करने वाले जीव कैं ए छह आवश्यक कहिए । १. भवाद्धा, २. आयुर्बल, ३. योग, ४. संक्लेश, ५. अपकर्षण, ६. उत्कर्षण ए छह जानने । इनिका स्वरूप विस्तार लीएं आगे कहिएगा ।

अब पंच शरीरनि का बंध, उदय, सत्त्वादिक विषैं परमाणूनि का प्रमाण का विशेष जानने कौं स्थिति आदि कहिए है । तहां औदारिकादिक पंच शरीरनि की उत्कृष्ट स्थिति का परिमाण कहैं हैं—

पल्लतियं उवहीणं, तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं ।
छावट्ठी कम्मट्ठिदि, बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं ॥२५२॥

पल्यत्रयमुदधीनां, त्रयस्त्रिंशदंतर्मुहूर्त उदधीनाम् ।
षट्षष्टिः कर्मस्थिति, बंधोत्कृष्टस्थितिस्तेषाम् ॥२५२॥

टीका – तिनि औदारिक आदि पंच शरीरनि की बंधरूप उत्कृष्ट स्थिति विषें औदारिक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है । वैक्रियिक शरीर की तेतीस सागर है । आहारक शरीर की अंतर्मुहूर्त है । तैजस शरीर की छयासठि सागर है । कार्माण की स्थितिबंध विषें जो उत्कृष्ट कर्म की स्थिति सो जाननी । सो सामान्यपनै सत्तर कोडाकोडी सागर है । विशेषपनैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय की तीस कोडाकोडी; मोहनीय की सत्तर कोडाकोडी; नाम-गोत्र की बीस कोडाकोडी; आयु की तेतीस सागर प्रमाण जाननी । ऐसैं पंच शरीरनि की उत्कृष्ट स्थिति कही ।

अब इहां यथार्थ ज्ञान के निमित्त अंकसंदृष्टि करि दृष्टांत कहिए है –

जैसें समयप्रबद्ध का परिमाण तरेसठि सै (६३००) परमाणू स्थिति अडतालीस समय होइ, तैसें इहां पंच शरीरनि की समयप्रबद्ध के परमाणूनि का परिमाण अर स्थिति के जेते समय होंहि, तिनि का परमाणू का परिमाण पूर्वोक्त जानना ।

आगैं इनि पंचशरीरनि की उत्कृष्ट स्थितिनि विषैं गुणहानि आयाम का परिमाण कहैं हैं –

अंतोमुहुत्तमेत्तं, गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं ।
पल्लासंखेज्जदिमं, गुणहाणी तेजकम्माणं ॥२५३॥

अंतर्मुहूर्तमात्रा, गुणहानिर्भवति आदिमत्रिकानां ।
पल्यासंख्यात भागा गुणहानिस्तेजः कर्मणोः ॥२५३॥

टीका – पूर्व-पूर्व गुणहानि तैं उत्तर-उत्तर गुणहानि विषैं गुणहानि का वा निषेकनि का द्रव्य दूणा-दूणा घटता होइ है । तातैं गुणहानि नाम जानना । सो जैसें अडतालीस समय की स्थिति विषैं आठ-आठ समय प्रमाण एक-एक गुणहानि का आयाम हो हैं । तैसें आदि के तीन शरीर औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तिनकी तो उत्कृष्ट स्थिति संबंधी गुणहानि यथायोग्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । अपने-अपने योग्य अंतर्मुहूर्त के जेते

समय होंइ, तितना गुणहानि का आयाम जानना । आयाम नाम लंबाई का है । सो इहां समय-समय संबंधी निषेक क्रम तें होंइ । तातें आयाम असी संज्ञा कही । बहुरि तैजसकार्माण की उत्कृष्ट स्थिति संबंधी गुणहानि अपने-अपने योग्य पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तहां पल्य की जो वर्गशलाका, ताके जेते अर्धच्छेद होंइ, तितने पल्य के अर्धच्छेदनि में घटाएं, जो अवशेष रहै; ताकौं असंख्यात करि गुणें, जो परिणाम होइ, तितनी तैजस की सर्व नानागुणहानि है । इस परिमाण का भाग तैजस शरीर की उत्कृष्ट स्थिति संख्यात पल्य प्रमाण है । ताकौं दीएं जो परिमाण आवै, तीहि प्रमाण पल्य के असंख्यात वें भागमात्र तैजस शरीर की गुणहानि का आयाम है । बहुरि पल्य की वर्गशलाका के जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिकौं पल्य के अर्धच्छेदनि में घटाएं जो अवशेष रहै, तितनी कार्माण की सर्वनानागुणहानि है । इस परिमाण का भाग कार्माण की उत्कृष्ट स्थिति संख्यातपल्यप्रमाण है । ताकौं दीएं जो परिमाण आवें, तीहि प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भागमात्र कार्माण शरीर की गुणहानि का आयाम है । असें गुणहानि आयाम कह्या ।

बहुरि जैसें आठ समय की एक गुणहानि होइ, तौ अडतालीस समय की केती गुणहानि होंइ ? असें त्रैराशिक कीएं सर्वस्थिति विषें नानागुणहानि का प्रमाण छह आवै । तैसें जो औदारिक शरीर की एक अंतर्मुहूर्तमात्र एकगुणहानि शलाका है । सो तीन पल्य की नानागुणहानि कितनी है ? असें त्रैराशिक करिए । तहां प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्त के समय, फलराशि एक, इच्छाराशि तीन पल्य के समय तहां फलराशि करि इच्छा राशि कौं गुणि, प्रमाण राशि का भाग दीएं, लब्ध प्रमाण तीन पल्य कौं अंतर्मुहूर्त का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना आया, सो उत्कृष्ट औदारिक शरीर की स्थिति विषें नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

असें ही वैक्रियिक शरीर विषें प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि तेतीस सागर कीयें तेतीस सागर कौं अंतर्मुहूर्त का भाग दीयें, जो प्रमाण आवै, तितना नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

बहुरि आहारक शरीर विषें प्रमाणराशि छोटा अंतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि बड़ा अंतर्मुहूर्त कीएं, अंतर्मुहूर्त कौं स्वयोग्य छोटा अंतर्मुहूर्त का भाग दीएं जो परिमाण आवै, तितना नानागुणहानि शलाका का प्रमाण जानना ।

बहुरि तैजस शरीर विषैं प्रमाणराशि पूर्वोक्त गुणहानि आयाम, फलराशि एक, इच्छाराशि छयासठ सागर कीएं पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद करि हीन पल्य का अर्धच्छेदनि तैं असंख्यात गुणा नानागुणहानि का प्रमाण हो है ।

बहुरि कार्माण शरीर विषै प्रमाणराशि पूर्वोक्त गुणहानि आयाम, फलराशि एक, इच्छाराशि मोह की अपेक्षा सत्तरि कोडाकोडि सागर कीएं पल्य की वर्ग शलाका का अर्धच्छेद करि हीन पल्य का अर्धच्छेदमात्र नानागुणहानि का प्रमाण जानना ।

अब औदारिक आदि शरीरनि का गुणहानि आयाम साधिए हैं– जैसें जो छह नानागुणहानि का अडतालीस समय प्रमाणस्थिति आयाम होइ, तौ एकगुणहानि का कितना आयाम होइ ? ऐसें त्रैराशिक करिये । इहां प्रमाणराशि छह, फलराशि अडतालीस, इच्छाराशि एक भया । तहां लब्ध राशिमात्र एकगुणहानि आयाम का प्रमाण आठ आया, तैसें अपना-अपना नानागुणहानि प्रमाण का अपना-अपना स्थिति प्रमाण आयाम होइ, तौ एकगुणहानि का केता आयाम होइ ? ऐसें त्रैराशिक करिए । तहां लब्धराशि मात्र गुणहानि का आयाम हो है ।

तहां औदारिक विषें प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य, फलराशि तीन पल्य इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि अंतर्मुहूर्त हो है ।

बहुरि वैक्रियिक विषैं प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्त करि भाजित तेतीस सागर, फलराशि तेतीस सागर इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि अंतर्मुहूर्त हो है ।

बहुरि आहारक विषैं प्रमाणराशि संख्यात, फलराशि अंतर्मुहूर्त, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि छोटा अंतर्मुहूर्त हो है ।

बहुरि तैजस विषैं प्रमाणराशि पल्य की वर्ग शलाका का अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेदनि तैं असंख्यातगुणा, फल छयासठि सागर, इच्छा एक कीएं लब्ध राशि संख्यात पल्य कौं पल्य की वर्गशालाका का अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेदनि तैं असंख्यात गुणे प्रमाण का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै;, तितना जानना ।

बहुरि कार्माण विषैं प्रमाणराशि पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेद मात्र, फलराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर इच्छाराशि एक

कीए लब्धराशि संख्यात पल्य कौं पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेदनि करि हीन पल्य के अर्धच्छेदराशि का भाग दीए, जितना आवे तितना जानना । असैं लब्धराशि मात्र एकगुणहानि का आयाम जानना । इतने-इतने समयनि के समूह का नाम एकगुणहानि है । सर्व स्थिति विषैं जेती गुणहानि पाइए, तिस प्रमाण का नाम नानागुणहानि है; असा इहां भावार्थ जानना ।

बहुरि नानागुणहानि का जेता प्रमाण तितने दूवे मांडि, परस्पर गुणैं, जितना प्रमाण होइ, सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना । जैसैं नानागुणहानि का प्रमाण छह सो छह का विरलन करि एक-एक जायगा दोय के अंक मांडि, परस्पर गुणैं चौसठि होंइ; सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण जानना । तैसैं ही औदारिक आदि शरीरनि की स्थिति विषैं जो-जो नानागुणहानि का प्रमाण कह्या, ताका विरलन करि एक-एक बखेरि अर एक-एक जायगा दोय-दोय देइ, परस्पर गुणैं, अपना-अपना अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण हो है । तहां लोक के जेते अर्धच्छेद हैं; तितने दूवेनि कौं परस्पर गुणैं, लोक होइ । तौ इहां नानागुणहानि प्रमाण दूवे मांडि, परस्पर गुणैं, केते लोक होंइ ? असे त्रैराशिक करना । तहां लब्धराशि ल्यावने के अर्थि सूत्र कहिए है—

दिण्णच्छेदेणवहिद, इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे ।
लद्धमिदइट्ठरासी, ण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ।।२१४।।

असा कायमार्गणा विषैं सूत्र कह्या था, ताकरि इहां देयराशि दोय, ताका अर्धच्छेद एक ताका भाग इष्टच्छेद लोक के अर्धच्छेद कौं दीएं, इतने ही रहे, इनि लोक के अर्धच्छेदनि के प्रमाण का भाग औदारिक शरीर की स्थिति संबंधी नानागुणहानि के प्रमाण कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने इष्टराशिरूप लोक मांडि, परस्पर गुणैं, जो लब्धि प्रमाण होइ, तितना औदारिक शरीर की स्थिति विषैं अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण असंख्यातलोकमात्र हो है । बहुरि तैसैं ही वैक्रियिक शरीर विषैं नानागुणहानि का प्रमाण कौं लोक का अर्धच्छेद राशि का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने लोक मांडि परस्पर गुणैं, वैक्रियिक शरीर की स्थिति विषैं अन्योन्याभ्यस्त विषैं राशि हो है । सो यहु औदारिक शरीर की स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि तैं असंख्यात लोक गुणा जानना । काहे तैं ? जातैं अंतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य तैं अंतर्मुहूर्त करि भाजित तेतीस सागर कौं एक सौ दश कोडाकोडी का गुणकार संभवै

है। सो यहां एक बादि एक सौ दश कोडाकोडी गुणा जो औदारिक शरीर की नाना-गुणहानि का प्रमाण, तितना औदारिक शरीर की नानागुणहानि का प्रमाण तैं वैक्रियिक शरीर की नानागुणहानि का प्रमाण अधिक भया सो –

विरलनरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, गुणयारो लद्धरासिस्स ।।

इस सूत्र करि इस अधिक प्रमाणमात्र दूवे मांडि, परस्पर गुणें, जो असंख्यात-लोकमात्र परिमाण आया, सोई औदारिक का अन्योन्याभ्यस्तराशि तें वैक्रियिक का अन्योन्याभ्यस्तराशि विषै गुणकार जानना । अथवा जो अंतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य प्रमाण औदारिक शरीर संबंधी नानागुणहानि का अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यात लोकमात्र होइ, तौ एक सौ दश कोडाकोडि गुणा अंतर्मुहूर्त करि भाजित तीन पल्य प्रमाण वैक्रियिक शरीर की नानागुणहानि का अन्योन्याभ्यस्तराशि कितनी होई ? असा त्रैराशिक कीए '**दिण्णच्छेदेणवहिद**' इत्यादि सूत्र करि एक सौ दश कोडाकोडि बार औदारिक शरीर संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि मांडि, परस्पर गुणें, वैक्रियिक शरीर संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि हो है । तातें भी औदारिक संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि तें वैक्रियिक संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि विषै असंख्यातलोक का गुणकार सिद्ध भया ।

बहुरि आहारक शरीर की नानागुणहानि संख्यात है, सो संख्यात का विरलन करि एक-एक प्रति दोय देइ, परस्पर गुणें, यथायोग्य संख्यात होइ; सो आहारक शरीर का अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना ।

बहुरि तैजस शरीर की स्थिति संबंधी नानागुणहानि शलाका कार्माण शरीर की स्थिति संबंधी नानागुणहानि शलाका तैं असंख्यात गुणी है, सो पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद पल्य अर्धच्छेदनि में घटाएं, जो प्रमाण होइ, तातैं असंख्यात-गुणी जाननी । सो इहां सुगमता के अर्थि, याकौं पल्य का अर्धच्छेदराशि का भाग देना तहां पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेदराशि कौं असंख्यात करि गुणिए, अर पल्य का अर्धच्छेदराशि का भाग दीजिए, इतना घटावने योग्य जो ऋणराशि, ताकौं जुदा राखिए, अवशेष ऋण रहित राशि पल्य का अर्धच्छेदराशि कौं असंख्यातगुणा दीजिए पल्य का अर्धच्छेदराशि का भाग दीजिए, इतना रह्या, सो इहां भाज्यराशि विषै अर भागहारराशि विषै पल्य का अर्धच्छेदराशि कौं समान जानि, अपवर्तन

करना । अवशेष गुणकाररूप असंख्यात रहि गया, सो इस असंख्यात का जेता प्रमाण होइ तितना ही पल्य मांडि, परस्पर गुणन करना, जातैं असंख्यातगुणा पल्य का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणैं, जेता प्रमाण होइ, तितना ही पल्य का अर्धच्छेद राशि का भाग दीएं, अवशेष गुणकार मात्र असंख्यात रह्या, तितना पल्य मांडि, परस्पर गुणें प्रमाण हो है । जैसें पल्य का प्रमाण सोलह, ताके अर्धच्छेद च्यारि, असंख्यात का प्रमाण तीन, सो तीनि करि च्यारि कौं गुणैं, बारह होइ । सो बारह जायगा दूवा मांडि, परस्पर गुणैं, च्यारि हजार छिनवै होइ । सोई बारह कौं च्यारि का भाग दीएं, गुणकार मात्र तीन रह्या, सो तीन जायगा सोलह मांडि, परस्पर-गुणें, च्यारि हजार छिनवै होइ । तातैं सुगमता के अर्थि पूर्वोक्त राशि कौं पल्य का अर्धच्छेद राशि का भाग देइ, लब्धिराशि असंख्यात प्रमाण पल्य मांडि, परस्पर गुणन कीया । सो इहां यहु गुणकाररूप असंख्यात है । सो पल्य का अर्धच्छेदनि के असंख्यातवें भाग मात्र जानना । पल्य का अर्धच्छेदराशि समान जानना । जो पल्य का अर्धच्छेद समान यहु असंख्यात होइ, तौ इतने पल्य मांडि, परस्पर गुणें, तैजस शरीर की स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि सूच्यंगुल प्रमाण होइ; सो है नाहीं; तातैं शास्त्र विषैं क्षेत्र प्रमाण करि सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र काल प्रमाण करि असंख्यात कल्पकाल मात्र तैजस शरीर की स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण कह्या है । तातैं पल्य का अर्धच्छेद का असंख्यातवां भाग मात्र असंख्यात का विरलन करि एक-एक प्रति पल्य कौं देइ, परस्पर गुणें, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र प्रमाण हो है । सो द्विरूप वर्गधारा विषैं पल्यराशिरूप स्थान तैं ऊपरि इहां विरलन-राशिरूप असंख्यात के जेते अर्धच्छेद होंहि, तितने वर्गस्थान गए यहु राशि हो है । बहुरि –

विरलनरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ।।

इस सूत्र के अभिप्राय तैं जो ऋणरूप राशि जुदा स्थाप्या था, ताका अपवर्तन कीएं, एक का असंख्यातवां भाग भया । याकौं पल्य करि गुणें, पल्य का असंख्यातवां भाग भया, जातैं असंख्यात गुणा पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणें, भी इतना ही प्रमाण है । तातैं सुगमता के अर्थि इहां पल्य का अर्धच्छेद राशि का भाग देइ, एक का असंख्यातवां भाग पाया, ताकरि पल्य का

गुणन कीया है । सो असैं करतैं जो पल्य का असंख्यातवां भाग भया, ताका भाग पूर्वोक्त सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग कौं देना । सो भाग दीएं भी आलाप करि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग ही रह्या । सोई तैजस शरीर की स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना । बहुरि कार्माण शरीर की स्थिति सम्बन्धी नानागुणहानि शलाका पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद करि हीनपल्य का अर्धच्छेद प्रमाण है । इसका विरलन करि, एक-एक प्रति दोय देइ परस्पर गुणें, ताका अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्य की वर्गशलाका का भाग पल्य कौं दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । जातैं इहां पल्य का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणें, पल्य होइ, सो तौ भाज्य भया । अर **'विरलनरासीदो पुणजेत्तिय मेत्ताणि हीणरूवाणि'** इत्यादि सूत्र करि हीनराशिरूप पल्य की वर्गशलाका का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणें पल्य की वर्गशलाका होइ; सो भागहार जानना । बहुरि जैसैं गुणहानि आयाम आठ, ताकौं दूणा कीएं दोगुणहानि का प्रमाण सोलह हो है । तैसैं औदारिक आदि शरीरनि का जो-जो गुणहानि आयाम का प्रमाण है, ताकौं दूणा कीएं, अपनी-अपनी दोगुणहानि हो है । याही का दूसरा नाम निषेकहार जानना ।

असैं द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दोगुणहानि का कथन करि, अवस्थिति के समय सम्बन्धी परमाणूनि का प्रमाणरूप निषेकनि का कथन करिए हैं ।

तहां प्रथम अंक संदृष्टि करि दृष्टांत कहिए है । द्रव्य तरेसठि सै (६३००) स्थिति अडतालीस (४८), गुणहानि आयाम आठ (८), नानागुणहानि छह (६), दोगुणहानि सोलह (१६), अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि (६४) ।

तहां औदारिक आदि शरीरनि के समय प्रबद्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप च्यारि प्रकार बंध धरै हैं ।

तहां प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध योग तैं हो हैं, स्थितिबंध, अनुभागबंध कषाय तैं हो हैं । तहां विवक्षित कोई एक समय विषैं बंध्या कार्माण का समय प्रबद्ध की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरि कोडाकोडि सागर की बंधी; तिस स्थिति के पहले समय तैं लगाय सात हजार वर्ष पर्यंत तौ आबाधाकाल है । तहां कोई निर्जरा न होइ । तातैं इहाँ कोई निषेक रचना नाहीं । अवशेष स्थिति का प्रथम समय तैं लगाइ अंत समय पर्यंत अपना-अपना काल प्रमाण स्थिति धरैं, जे परमाणूनि के पुंज, ते निषेक कहिए । तिनकी रचना अंकसंदृष्टि करि प्रथम दिखाइए है ।

विवक्षित एक समय विषं बध्या कार्माण का समयप्रबद्ध, ताका परमाणूनि का प्रमाण रूप द्रव्य तरेसठि सै है । तहां –

रूऊरणण्णोण्णब्भवहिदवव्वं तु चरिम गुणवव्वं ।
होदि तदो दुगुण कमा आदिमगुणहाणि दव्वोत्ति ।।

इस सूत्र अनुसारि एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि का भाग सर्वद्रव्य कौं दीएं अंत की गुणहानि का द्रव्य होइ । तातैं दूणा-दूणा प्रथमगुणहानि पर्यंत द्रव्य जानना । सो इहां अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि में स्यों एक घटाइ, अवशेष ६३ का भाग सर्वद्रव्य ६३०० कौं दीएं, सौ (१००) पाएं, सोई नानागुणहानि छह, तिनि-विषै अंत की छठी गुणहानि का द्रव्य जानना । तातैं दूणा-दूणा प्रथम गुणहानि पर्यंत द्रव्य जानना । असैं होतैं एक घाटि नानागुणहानि शलाका प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणैं, जो अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण होइ, ताकरि अंत की गुण-हानि के द्रव्य कौं गुणैं, प्रथमगुणहानि का द्रव्य हो है । सो एक घाटि नानागुण-हानि पांच, तीह प्रमाण दूवा मांडि, परस्पर गुणैं बत्तीस होइ, सोई अन्योन्याभ्यस्त-राशि चौसठि का आधाप्रमाण, ताकरी अंतगुणहानि का द्रव्य सौ कौं गुणैं प्रथम-गुणहानि का द्रव्य बत्तीस सैं हो है । सर्व गुणहानि का द्रव्य अंत तैं लगाइ आदि पर्यंत एक सैं, दोय सै, च्यारि सै, आठ सै, सोलह सैं, बत्तीस सैं प्रमाण जानना । बहुरि तहां प्रथम गुणहानि का द्रव्य बत्तीस सै । तहां '**अद्धाणेण सव्वधणे, खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि**' इस सूत्र करि 'अध्वान' जो गुणहानि आयाम प्रमाण गच्छ, ताका स्वकीय गुणहानि संबंधी द्रव्य कौं भाग दीएं, मध्य समय संबंधी मध्यधन आवै है । सो इहां बत्तीस सैं कौं गच्छ आठ का भाग दीएं (मध्यधन) च्यारि सैं हो है । बहुरि "**रूऊण अद्धाण अद्धेणूणेणिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदेपचयं**" इस सूत्र के अनुसारि एक घाटि गच्छ का आधा प्रमाण करि हीन जो निषेकहार कहिए दो गुणहानि, ताकरि मध्यधन कौं भाजित कीएं, चय का प्रमाण आवै है । स्थान-स्थान प्रति जितना-जितना बधै वा घटै ताका नाम चय जानना । सो इहां एक घाटि गच्छ सात, ताका आधा साढा तीन, सो निषेकहार सोलह में घटाएं, साढा बारह ताका भाग मध्यधन च्यारि सैं कौं दीएं, बत्तीस पाए । सोई प्रथम गुणहानि विषैं चय का प्रमाण जानना । बहुरि इस चय कौं निषेकहार, जो दोगुणहानि, ताकरि गुणें प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक होइ, सो इहां बत्तीस कौं सोलह करि गुणैं, प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक पांच सैं बारह प्रमाणरूप हो है ।

भावार्थ – जो तरेसठि सै परमाणू का समय प्रबद्ध बंध्या था, ताकी स्थिति विषैं आबाधाकाल भए पीछैं, पहले समय तिन परमाणूनि विषैं पांच सै बारह परमाणू निर्जरे हैं । असैं अन्य समय संबंधी निषेकनि विषैं उक्त प्रमाण परमाणूनि कौं निर्जरा होने का क्रम जानना । बहुरि 'तत्तोविसेसहीणकमं' तातैं ऊपरि-ऊपरि तिस गुणहानि के अंत निषेक पर्यंत एक-एक चय घटता अनुक्रम जानना । तहां प्रथम निषेक तैं एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटैं, एक अधिक गुणहानि आयाम करि गुणित चय प्रमाण अंत निषेक हो है । सो इहां द्वितीयादि निषेकनि के विषैं बत्तीस-बत्तीस घटावना । तहां एक घाटि गच्छ सात, तीहि प्रमाण चय के भये दोय सै चौबीस, सो इतने प्रथम निषेकनि तैं घटैं, अंत निषेक विषैं दोय सै अठ्यासी प्रमाण हो है । सो एक अधिक गुणहानि नव, ताकरि चय बत्तीस कौं गुणैं भी दोय सै अठ्यासी हो है । असैं प्रथम गुणहानि विषैं निषेक रचना जाननी । ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८ ।

बहुरि असैं ही द्वितीय गुणहानि का द्रव्य सोलह सै, ताकौं गुणहानि आयामरूप गच्छ का भाग दीएं, मध्यधन दोय सै होइ; याकौं एक घाटि गुणहानि आयाम का आधा प्रमाण करि हीन निषेकहार साढा बारह, ताका भाग दीएं, द्वितीय गुणहानि विषैं चय का प्रमाण सोलह होइ । बहुरि याकौं दो गुणहानि सोलह करि गुणैं, द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक दोय सै छप्पन प्रमाण हो है । ऊपरि-ऊपरि द्वितीयादि निषेक, अपना एक-एक चय करि घटता जानना । तहां एक घाटि गच्छ प्रमाण चय घटैं, एक अधिक गुणहानि आयाम करि गुणित, अपना चय प्रमाण अंत का निषेक एक सौ चवालीस प्रमाण हो है । बहुरि तृतीय गुणहानि विषैं द्रव्य आठ सै कौं गुणहानि का भाग दीएं, मध्यमधन सौ (१००), याकौं एक घाटि गुणहानि का आधा करि हीन दोगुणहानि का भाग दीएं, चय का प्रमाण आठ, याकौं दोगुणहानि करि गुणि प्रथम निषेक एक सौ अट्ठाईस, यातैं ऊपरि अपना एक-एक चय घटता होइ, एक घाटि गच्छ प्रमाण चय घटैं, एक अधिक गुणहानि आयाम करि, गुणित स्वकीय चयमात्र अंतनिषेक बहत्तरि हो है ।

असैं ही इस क्रम करि चतुर्थ आदि गुणहानि विषैं प्राप्त होइ, अंत गुणहानि विषैं द्रव्य सौ (१००), ताकौं पूर्वोक्त प्रकार गुणहानि का भाग दीएं मध्यधन साढा बारह, याकौं एक घाटि गुणहानि का आधा प्रमाण करि हीन दोगुणहानि का भाग

दीएं, चय का प्रमाण एक, याकौं दोगुणहानि करि गुणें, प्रथम निषेक का प्रमाण सोलह, तातें ऊपरि अपना एक-एक चय घटता होइ । एक घाटि गच्छ प्रमाण चय घटें, एक अधिक गुणहानि करि गुणित स्वकीय चय मात्र स्थिति के अंतनिषेक का प्रमाण नव हो है । असें द्वितीयादिक अंतगुणहानि पर्यंत विषैं द्रव्यादिक हैं । ते गुणकाररूप हानि का अनुक्रम लीएं है । तातें गुणहानि असा नाम सार्थक जानना ।

इहां तर्क – जो प्रथम गुणहानि विषैं तौ पूर्व गुणहानि के अभाव तें गुणहानिपना नाही ?

ताका समाधान – कि मुख्यपनें ताका गुणहानि नाम नाहीं है । तथापि ऊपरि की गुणहानि कौं गुणहानिपना कौं कारणभूत जो चय, ताका हीन होने का सद्भाव पाईए है । तातें उपचार करि प्रथम कौं भी गुणहानि कहिए । गुणकार रूप घटता, जहां परिमाण होइ, ताका नाम गुणहानि जानना । असें एक-एक समय प्रबद्ध की सर्वगुणहानिनि विषैं प्राप्त सर्वनिषेकनि की रचना जाननी । बहुरि असें प्रथमादि गुणहानिनि के द्रव्य वा चय वा निषेक ऊपरि-ऊपरि गुणहानि विषैं आधे-आधे जानने । इतना विशेष यहु जानना–जो अपना-अपना गुणहानि का अंत निषेक विषैं अपना-अपना एक चय घटाएं, ऊपरि-ऊपरि का गुणहानि का प्रथम निषेक होइ, जैसें प्रथम गुणहानि का अंत निषेक दोय सै अठ्यासी विषैं अपना चय बत्तीस घटाएं, द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक दोय सौ छप्पन हो है । असें ही अन्यत्र जानना ।

❀ अंक संदृष्टि करि निषेक की रचना ❀

	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि	षष्ठम गुणहानि
	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

ऐसें उत्कृष्ट स्थिति अपेक्षा कार्माण का अंक संदृष्टि करि वर्णन किया। अब यथार्थ वर्णन करिए हैं –

कार्माण का समयप्रबद्ध विषें जो पूर्वोक्त परमाणूनि का प्रमाण, सो द्रव्य जानना। ताकौं पूर्वोक्त प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि विषें एक घटाइ, अवशेष का भाग दीएं, अंत गुणहानि का द्रव्य हो है। यातैं प्रथम गुणहानि पर्यंत दूना-दूना द्रव्य जानना। तहां अन्योन्याभ्यस्तराशि का आधा प्रमाण करि, अंतगुणहानि के द्रव्य कौं गुणें, प्रथम गुणहानि का द्रव्य हो है। याकौं पूर्वोक्त गुणहानि आयामप्रमाण का भाग दीएं, मध्यमधन होइ है। याकौं एक घाटि गुणहानि आयाम का आधा प्रमाण करि हीन दूना गुणहानि के प्रमाण का भाग दीएं, प्रथम गुणहानि संबंधी चय हो है। याकौं दो गुणहानि करि गुणें, प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक हो है। बहुरि तातैं अपना-अपना अंत निषेक पर्यंत एक-एक चय घटता होइ। एक घाटि गुणहानि आयाम मात्र चय घटैं, एक अधिक गुणहानि करि गुणित अपना चय प्रमाण अंत निषेक हो है। याही प्रकार द्वितीयादि गुणहानि विषें अपना-अपना द्रव्य की निषेक रचना जाननी। तहां अंत गुणहानि विषें द्रव्य का गुणहानि आयाम का भाग दीएं, मध्य धन होइ। याकौं एक घाटि गुणहानि का आधा करि हीन दो गुणहानि का भाग दीएं, चय होइ। याकौं दो गुणहानि करि गुणें, प्रथम निषेक होइ। तातैं ऊपरि अपना एक-एक चय घटता होइ। एक घाटि गुणहानि आयाम मात्र चय घटैं, एक अधिक गुणहानि करि अपना चय कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तिह प्रमित अंत निषेक हो है। ऐसें कार्माण शरीर की सर्वोत्कृष्ट स्थिति विषें प्राप्त एक समयप्रबद्ध संबंधी समस्त गुणहानि की रचना जाननी। ऐसें प्रथमादि गुणहानि तें द्वितीयादि गुणहानि के द्रव्य वा चय वा निषेक क्रम तें आधे-आधे जानने। आबाधा रहित स्थिति विषें गुणहानि आयाम का जेता प्रमाण तितना समय पर्यंत तो प्रथम गुणहानि जाननी। तहां विवक्षित समयप्रबद्ध के प्रथम समय विषें जेते परमाणू निर्जरैं, तिनिके समूह का नाम प्रथम निषेक जानना। दूसरे समय जेते परमाणू निर्जरैं, तिनके समूह का नाम द्वितीय निषेक जानना। ऐसें प्रथम गुणहानि का अंत पर्यंत जानना। पीछे ताके अनंतर समय तैं लगाइ गुणहानि आयाम मात्र समय पर्यंत द्वितीय गुणहानि जाननी। तहां भी प्रथमादि समयनि विषें जेते परमाणू निर्जरैं, तिनिकै समूह का नाम प्रथमादि निषेक जानने। ऐसें क्रम तैं स्थिति के अंत समय विषें जेते परमाणू निर्जरैं, तिनिके समूह का नाम अंत गुणहानि का अंत निषेक जानना।

बहुरि जैसें कार्माणशरीर का वर्णन कीया; तैसें ही औदारिक आदि तैजस पर्यंत नोकर्मशरीर के समयप्रबद्धनि की पूर्वोक्त अपना-अपना स्थिति, गुणहानि, नाना गुणहानि, दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण आदि करि, इहां आबाधाकाल है नाहीं; तातें अपनी-अपनी स्थिति का प्रथम समय ही तें लगाय निषेक रचना करनी। जातें औदारिक आदि शरीरनि का तैसें ही आगें वर्णन कीजिये है।

आगें औदारिक आदि के समयप्रबद्धनि का बंध, उदय, सत्त्व, अवस्था विषें द्रव्य का प्रमाण लिखे हैं –

एक्कं समयपबद्धं, बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं ॥२५४॥

एकं समयप्रबद्धं, बध्नाति एकमुदेति चरमे।
गुणहानीनां द्व्यर्धं, समयप्रबद्धं भवेत् सत्त्वम् ॥२५४॥

टीका – औदारिक आदि शरीरनि विषें तैजस अर कार्माण इनि दोऊनि का जीव कैं अनादि तें निरंतर संबंध है। तातें इनिका सदाकाल उदय अर सत्त्व संभवै है। तातें जीव मिथ्यादर्शन आदि परिणाम के निमित्त तें समय-समय प्रति तैजस संबंधी अर कार्माण संबंधी एक-एक समयप्रबद्ध कौं बांधै है। पुद्गलवर्गणानि कौं तैजस शरीर रूप अर ज्ञानावरणादिरूप आठ प्रकार कर्मरूप परिणमावै है। बहुरि इनि दोऊ शरीरनि का समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध उदयरूप हो है। अपना फल देनेरूप परिणतिरूप परिणाम करि फल देइ, तैजस शरीरपना कौं वा कार्माण शरीरपना कौं छोडि गलै है; निर्जरै है। बहुरि विवक्षित समयप्रबद्ध की स्थिति का अंत निषेक संबंधी समय विषें किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है। इतने परमाणू सत्तारूप एकठे हो हैं। सर्वदा संबंध तें परमार्थ करि इनि दोऊनि का सत्त्वद्रव्य, समय-समय प्रति सदा ही इतना संभवै है।

बहुरि औदारिक, वैक्रियिक शरीरनि के समय प्रबद्धनि विषें विशेष है; सो कहिए हैं। तिनि औदारिक वा वैक्रियिक शरीरनि के ग्रहण का प्रथम समय तें लगाइ अपने आयु का अंत समय पर्यंत शरीर नामा नामकर्म के उदय संयुक्त जीव, सो समय-समय प्रति एक-एक तिस शरीर के समय प्रबद्ध कौं बांधै है। पुद्गलवर्गणानि

कौं तिस शरीररूप परिणमावै है । उदय कितना है ? सो कहै हैं - शरीर ग्रहण का प्रथम समय विषै बंध्या जो समयप्रबद्ध, ताका पहला निषेक उदय हो है ।

इहां प्रश्न - जो गाथा विषैं समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का उदय कह्या है । इहां एक निषेक का उदय कैसे कहो हो ?

ताका समाधान - कि निषेक है सो समयप्रबद्ध का एकदेश है । ताकौं उपचार करि समयप्रबद्ध कहिए हैं । बहुरि दूसरा समय विषैं पहिले समय बंध्या था जो समयप्रबद्ध, ताका तो दूसरा निषेक अर दूसरे समय बंध्या जो समयप्रबद्ध ताका पहिला निषेक, ऐसें दोय निषेक उदय हो हैं । बहुरि ऐसें ही तीसरा आदि समय विषै एक-एक बधता निषेक उदय हो है । ऐसें क्रम करि अंत समय विषैं उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् द्वयर्धगुण हानि करि गुरिणत समयप्रबद्ध प्रमाण हो है । बहुरि आहारक शरीर का तिस शरीर ग्रहण का समय प्रथम तैं लगाय अपना अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति का अंत समय विषैं किंचिदून द्वयर्धगुणहानि करि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण द्रव्य का उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् हो है इतना विशेष जानना । इहां समय-समय प्रति बंधै सो समयप्रबद्ध कहिए । तातैं समय-समय प्रति समयप्रबद्ध का बंधना तौ संभवै अर समयप्रबद्ध का उदय अर किंचिदून द्वयर्धगुण-हानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सत्त्व कैसें हो है, सो वर्णन इहां ही आगै करेंगे ।

आगें औदारिक, वैक्रियिक शरीरनि विषैं विशेष कहै हैं—

णवरि य दुसरीराणं, गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो ।
गुणहाणीण दिवड्ढं, संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

नवरि च द्विशरीरयोर्गलितावशेषायुर्मात्रस्थितिबंधः ।
गुणहानीनां द्वयर्धं, संचयमुदयं च चरमे ॥२५५॥

टीका - औदारिक, वैक्रियिक शरीरनि का शरीर ग्रहण का प्रथम समय तैं लगाइ अपनी स्थिति का अंत समय पर्यंत बंधैं हैं, जे समयप्रबद्ध तिनि का स्थिति-बंध गलितावशेष आयुमात्र जानना । जितना अपना आयु प्रमाण होइ, तीहि विषैं जो व्यतीत भया, सो गलित कहिए । अवशेष रह्या सो गलितावशेष आयु कहिए है; तीहि प्रमाण जानना । सोई कहिए हैं-शरीर ग्रहण का प्रथम समय विषैं जो समय

प्रबद्ध बंध्या, ताका स्थितिबंध संपूर्ण अपना आयुमात्र हो है । बहुरि दूसरे समय जो समयप्रबद्ध बंध्या, ताका स्थितिबंध एक समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है । बहुरि तीसरे समय बंध्या जो समयप्रबद्ध, ताका स्थितिबंध दोय समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है । असें ही चौथा आदि उत्तरोत्तर समयनि विषैं बंधे जे समयप्रबद्ध तिनिका स्थितिबंध एक-एक समय घटता होता अंत समय विषैं बंध्या हुवा समय-प्रबद्ध का स्थितिबंध, एक समयमात्र हो है । जातैं प्रथम समय तैं लगाइ अंत समय पर्यंत बंधे जे समयप्रबद्ध, तिनकी अपने आयु का अंत कौं उलंघि स्थिति न संभवै है । असैं जिस-जिस समयप्रबद्ध की जितनी-जितनी स्थिति होइ, तिस-तिस समयप्रबद्ध कौ तितनी-तितनी स्थितिमात्र निषेक रचना जाननी । अंत विषैं एक समय की स्थिति समयप्रबद्ध की कही । तहां एक निषेक संपूर्ण समयप्रबद्धमात्र जानना । बहुरि अंत समय विषैं गलितावशेष समयप्रबद्ध किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्र सत्वरूप एकठे हो हैं । जे समयप्रबद्ध बंधे, तिनि के निषेक पूर्वै गले, निर्जरारूप भए, तिनितैं अवशेष निषेकरूप जे समयप्रबद्ध रहे, तिनिकौं गलितावशेष कहिए । ते सर्व एकठे होइ किछू घाटि ड्योढ गुणहानिमात्र समयप्रबद्ध सत्तारूप एकठे अंत समय विषैं होहि हैं । बहुरि तींहि अंत समय विषैं ही तिनि सबनि का उदय हो है । आयु के अंत भए पीछै ते रहैं नाहीं । तातैं तींहि समय सर्व निर्जरैं हैं; असैं देव-नारकीनि कैं तौ वैक्रियिक शरीर का अर मनुष्य-तिर्यंचनि कै औदारिक शरीर का अंत समय विषैं किंचिदून द्वयर्धगुणहानिमात्र समयप्रबद्धनि का सत्त्व और उदय युगपत् जानना ।

आगैं किस स्थान विषैं सामग्रीरूप कैसी आवश्यक संयुक्त जीव विषैं उत्कृष्ट संचय हो है; सो कहै हैं—

ओरालियवरसंचं, देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स ।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

औरालिकवरसंचयं, देवोत्तरकुरूपजातजीवस्य ।
तिर्यग्मनुष्यस्य भवेत्, चरमद्विचरमे त्रिपल्यस्थितिकस्य ॥२५६॥

टीका – औदारिक आदि शरीरनि की जहां जीव कैं उत्कृष्टपनैं बहुत परमाणू एकठे होइ; तहां उत्कृष्ट संचय कहिए । तहां जो जीव तीन पल्य आयु धरैं, देवकुरु वा उत्तरकुरु भोगभूमि का तिर्यंच वा मनुष्य होइ उपज्या; तहां उपजने

के पहिले समय तिस जीव कौं तहां योग्य जो उत्कृष्ट योग, ताकरि आहार ग्रहण कीया; बहुरि ताकौं योग्य जो उत्कृष्ट योग की वृद्धि, ताकरि वर्धमान भया, बहुरि सो जीव उत्कृष्ट योग स्थाननि कौं बहुत बार ग्रहण करै है; अर जघन्य योगस्थाननि कौं बहुत बार ग्रहण न करै है, तिस जीव कौं योग्य उत्कृष्ट[1] योगस्थान, तिनिकौं बहुत बार प्राप्त होइ है; अर तिस जीव कौं योग्य जघन्य योगस्थान, तिनिकौं बहुत बार प्राप्त न हो है। बहुरि अवस्तन स्थितिनि के निषेक का जघन्य पद करै है। याका अर्थ यहु—जो ऊपरि के निषेक संबंधी जे परमाणू, तिन थोरे परमाणूनि कौं अपकर्षण करि, स्थिति घटाइ, नीचले निषेकनि विषें निक्षेपण करै है; मिलावै है। बहुरि उपरितन स्थिति के निषेकनि का उत्कृष्टपद करै है। याका अर्थ यहु—जो नीचले निषेकनि विषें तिष्ठते परमाणू, तिनि बहुत परमाणूनि का उत्कर्षण करि, स्थिति कौं बधाइ, ऊपरि के निषेकनि विषें निक्षेपण करै है; मिलावै है। बहुरि अंतर विषें गमनविकुवरणा कौं न करै है; अंतर विषें नखच्छेद न करै है। याका अर्थ मेरे जानने में नीकें न आया है। तातैं स्पष्ट नाहीं लिख्या है; बुद्धिमान जानियो। बहुरि तिस जीव के आयु विषें वचनयोग का काल स्तोक होइ, मनोयोग का काल स्तोक होइ। बहुरि वचनयोग स्तोक बार होइ। मनोयोग स्तोक बार होइ।

भावार्थ – काययोग का प्रवर्तन बहुत बार होइ, बहुत काल होइ। असैं आयु का अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं; आगैं कर्मकाण्ड विषें योगयवमध्य रचना कहैंगे। ताका ऊपरला भाग विषें जो योगस्थान पाइए है। तहां अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत तिष्ठ्या पीछें आगें जो जीव यवमध्य रचना कहैंगे; तहां अंत की गुणहानि संबंधी जो योगस्थान, तहां आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल पर्यंत तिष्ठ्या। बहुरि आयु का द्विचरम समय विषें अर अंत समय विषें उत्कृष्ट योगस्थान कौं प्राप्त भया। तहां तिस जीव कें तिन अंत के दोऊ समयनि विषें औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय हो है। बहुरि वैक्रियिक शरीर का भी वैसें ही कहना। विशेष इतना जो अंतर विषें नखच्छेद न करै है, यहु विशेषण न संभवै है।

वेगुव्वियवरसंचं, बावीससमुद्द आरणदुगम्हि।
जह्मा वरजोगस्स य, वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा ॥२५७॥

१ – अ, ख, ग इन तीन प्रति में यहां अनुत्कृष्ट शब्द मिलता है।

वैगूर्विकवरसंचयं, द्वाविंशतिसमुद्र आरणद्विके ।
यस्माद्वरयोगस्य च, वारा अन्यत्र नहि बहुकाः ॥२५७॥

टीका – वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय, सो आरण-अच्युत दोय स्वर्गनि के ऊपरला पटल संबंधी बाईस सागर आयु संयुक्त देव, तिन विषैं संभवै है । अन्यत्र नीचले, ऊपरले पटलनि विषैं वा सर्व नारकीनि विषैं न संभवै है; जातैं आरण-अच्युत बिना अन्यत्र वैक्रियिक शरीररूप योग का बहुत बार प्रवर्तन न हो है । चकार तैं तिस योग्य अन्य सामग्री, सो भी अन्यत्र बहुत बार न संभवै है ।

आगैं तैजस शरीर अर कार्माण शरीरनि का उत्कृष्ट संचयस्थान का विशेष कहैं हैं –

तेजासरीरजेट्ठं, सत्तमचरिमम्हि बिदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य, णिरये बहुवारभमिदस्स ॥२५८॥

तैजसशरीरज्येष्ठं, सप्तमचरमे द्वितीयवारस्य ।
कार्मणस्यापि तत्रैव च, निरये बहुवारभ्रमितस्य ॥२५८॥

टीका – तैजसशरीर का भी उत्कृष्ट संचय औदारिकशरीरवत् जानना । विशेष इतना जो सातवीं नरक पृथ्वी विषैं दूसरी बार जो जीव उपज्या होइ । सातवीं पृथ्वी विषैं उपजि, मरि, तिर्यंच होइ, फेरि सातवीं पृथ्वी विषैं उपज्या होइ; तिस ही जीवकैं हो है ।

बहुरि आहारक शरीर का भी उत्कृष्ट संचय औदारिकशरीरवत् जानना । विशेष इतना जो आहारक शरीर कौं उपजावनहारा प्रमत्तसंयमी ही कैं हो है ।

बहुरि कार्माणशरीर का उत्कृष्ट संचय सो सातवीं नरक पृथ्वी विषैं नारकिन विषैं जो जीव बहु बार भ्रम्या होइ, तिस ही कैं होइ है । किस प्रकार हो है ? सो कहैं हैं–कोई जीव बादर पृथ्वी कायनि विषैं अंतर्मुहूर्त घाटि, पृथक्त्व कोडिपूर्व करि अधिक दोय हजार सागर हीन कर्म की स्थिति कौं प्राप्त भया । तहां तिस बादर पृथ्वीकाय संबंधी अपर्याप्त पर्याय थोरे धरै, पर्याप्त पर्याय बहुत धरै, तिनिका एकट्ठा किया हुवा पर्याप्त काल बहुत भया । अपर्याप्त काल थोरा भया । ऐसैं इनिकौं पालता संता जब-जब आयु बांधै, तब-तब जघन्य योग करि बांधै, बहु यथायोग्य उत्कृष्ट योग

करि आहार ग्रहण करे । अर उत्कृष्ट योगनि की वृद्धि करि बंधै । बहुरि यथायोग्य उत्कृष्ट योगनि कौं बहुत बार प्राप्त होइ, जघन्य योगस्थाननि कौं बहुत बार प्राप्त न होइ । बहुरि संक्लेश परिणामरूप परिणया यथायोग्य मंदकषायरूप विशुद्धता करि विशुद्ध होइ, पूर्वोक्त प्रकार अधस्तन स्थितिनि के निषेक का जघन्यपद करैं । उपरितन स्थितिनि के निषेक का उत्कृष्ट पद करैं है । असैं भ्रमण करि, बादर त्रसपर्याय विषैं उपज्या, तहां भ्रमता तिस जीव कैं पर्याप्त पर्याय थोरे, अपर्याप्त पर्याय बहुत भए, तिनिका एकठा कीया पर्याप्तिकाल बहुत भया । अपर्याप्तकाल थोरा भया । असैं भ्रमण करि पीछला पर्याय का ग्रहण विषैं सातवीं नरक पृथ्वी के नारक जे बिले, तिनि विषैं उपज्या । तहां तिस पर्याय के ग्रहण का प्रथम समय विषैं यथा-योग्य उत्कृष्ट योग करि आहार ग्रहण कीया । बहुरि उत्कृष्ट योगवृद्धि करि बध्या । बहुरि थोरा अंतर्मुहूर्त काल करि सर्व पर्याप्ति पूर्ण कीए । बहुरि तिस नरक विषैं तेतीस सागर काल पर्यंत योग आवश्यक अर संक्लेश आवश्यक कौं प्राप्त भया । असैं भ्रमण करि आयु का स्तोक काल अवशेष रहैं, योगयवमध्य रचना का ऊपरला भागरूप योगस्थान विषैं अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत तिष्ठि, अर पीछैं जीव यवमध्य रचना की अंत गुणहानिरूप योगस्थान विषैं आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल पर्यंत तिष्ठि आयु का अंत तैं तीसरा, दूसरा समयनि विषैं उत्कृष्ट संक्लेश कौं पाइ; अंत समय विषैं उत्कृष्ट योगस्थान कौं पाइ, तिस पर्याय का अंत समय विषैं जीव तिष्ठ्या ताकैं कार्माण शरीर का उत्कृष्ट संचय होइ है । असैं औदारिक आदि शरीरनि का का उत्कृष्ट संचय होने की सामग्री का विशेष कह्या ।

भावार्थ – पूर्वैं उत्कृष्ट संचय होने विषैं छह आवश्यक कहे थे; ते इहां यथासंभव जानि लेना । पर्याय संबंधी काल तौ **भवाद्धा** है । अर आयु का प्रमाण सो **आयुष्य** है । यथासंभव योगस्थान होना, सो **योग** है । तीव्र कषाय होना सो **संक्लेश** है । ऊपरले निषेकनि के परमाणू नीचले निषेकनि विषैं मिलावना, सो **अपकर्षण** है । नीचले निषेकनि का परमाणू ऊपरि के निषेकनि विषैं मिलावना; सो **उत्कर्षण** है । असैं ए छह आवश्यक यथासंभव जानने ।

बहुरि **एक प्रश्न उपजै** है कि एक समय विषैं जीव करि बांध्या जो एक समयप्रबद्ध, ताके आबाधा रहित अपनी स्थिति का प्रथम समय तैं लगाइ, अंत समय पर्यंत समय-समय प्रति एक-एक निषेक उदय आवै है । पूर्वैं गाथा विषैं समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का उदय का आवना कैसैं कह्या है ?

ताकां समाधान – जो समय-समय प्रति बंधे समय प्रबद्धनि का एक-एक निषेक एकठे होइ, विवक्षित एक समय विषैं समय प्रबद्धमात्र हो है।

कैसें ? सो कहिए है – अनादिबंध का निमित्त करि बंध्या विवक्षित समयप्रबद्ध, ताका जिस काल विषैं अंत निषेक उदय हो है; तिस काल विषैं, ताके अनंतरि बंध्या समयप्रबद्ध का अंत तैं दूसरा निषेक उदय हो है। ताके अनंतरि बंध्या समयप्रबद्ध का अंत तैं तीसरा निषेक उदय हो है। ऐसें चौथा आदि समयनि विषैं बंध, समयप्रबद्धनि का अंत तैं चौथा आदि निषेकनि का उदय क्रम करि आबाधाकाल रहित विवक्षित स्थिति के जेते समय तितने स्थान जाय, अंत विषैं जो समयप्रबद्ध बंध्या, ताका आदि निषेक उदय हो है। ऐसें सबनि कौं जोडैं, विवक्षित एक समय विषैं एक समयप्रबद्ध उदय आवै है।

अंकसंदृष्टि करि जैसें जिन समयप्रबद्धनि के सर्व निषेक गलि गए, तिनिका तौ उदय है ही नाहीं। बहुरि जिस समयप्रबद्ध के सैंतालीस निषेक पूर्वे गले, ताका अंत नव का निषेक वर्तमान समय विषैं उदय आवै है। बहुरि जाके छियालीस निषेक पूर्वैं गले, ताका दश का निषेक उदय हो है। ऐसैं ही क्रम तैं जाका एकहू निषेक पूर्वैं न गल्या, ताका प्रथम पांच सै बारा का निषेक उदय हो है। ऐसैं वर्तमान कोई एक समय विषैं सर्व उदय रूप निषेक। ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६। १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२। ३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४। ७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८। १४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६। २८८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२। ऐसें इनिकौं जोडैं संपूर्ण समय प्रबद्धमात्र प्रमाण हो है।

ॐ आगामी काल विषैं जैसें नवीन समयप्रबद्ध के निषेकनि का उदय का सद्भाव होता जाइगा, तैसें पुराणे समयप्रबद्ध के निषेकनि के उदय का अभाव होता जायगा। जैसें आगामी समय विषैं नवीन समयप्रबद्ध का पांच सै बारा का निषेक उदय आवैगा; तहां वर्तमान समय विषैं जिस समयप्रबद्ध का पांच सै बारा का निषेक उदय था, ताका पांच सै बारा का निषेक का अभाव होइ, दूसरा च्यारि सै असी का निषेक उदय होगा। बहुरि जिस समयप्रबद्ध का वर्तमान समय विषैं च्यारि सै असी का निषेक उदय था, ताका तिस निषेक का अभाव होइ, च्यारि सै अडतालीस के निषेक का उदय होगा। ऐसैं क्रम तैं जिस समयप्रबद्ध का वर्तमान समय विषैं नव

का निषेक उदय था, ताका आगामी समय विषैं सर्व अभाव होगा । ऐसें ही क्रम समय प्रति जानना । तातैं समय-समय प्रति एक-एक समयप्रबद्ध का एक-एक निषेक मिलि, एक-एक समयप्रबद्ध का उदय हो है । बहुरि गलैं पीछैं अवशेष रहैं, सर्व निषेक, तिनिकौं जोड़ैं, किंचित् ऊन द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है । कैसें ? सो कहिए हैं – जिस समयप्रबद्ध का एकहू निषेक गल्या नाहीं, ताके सर्व निषेक नीचैं पंक्ति विषैं लिखिए । बहुरि ताके ऊपरि जिस समयप्रबद्ध का एक निषेक गल्या होइ, ताके आदि निषेक बिना अवशेष निषेक पंक्ति विषैं लिखिए । बहुरि ताके ऊपर जिस समय प्रबद्ध के दोय निषेक गले होंइ, ताके आदि के दोय निषेक बिना अवशेष निषेक पंक्ति विषैं लिखिए । ऐसें ही ऊपरि-ऊपरि एक-एक निषेक घटता लिखि, सर्व के ऊपरि जिस समय प्रबद्ध के अन्य निषेक गलि, एक अवशेष रह्या होइ, ताका अंत निषेक लिखना । ऐसें करते त्रिकोण रचना हो है ।

षष्ठम गुणहानि	पंचम गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	तृतीय गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	प्रथम गुणहानि
९	११८	३३६	७७२	१६४४	३३८८
१९	१३८	३७६	८५२	१८०४	३७०८
३०	१६०	४२०	९४०	१९८०	४०६०
४२	१८४	४६८	१०३६	२१७२	४४४४
५५	२१०	५२०	११४०	२३८०	४८६०
६९	२३८	५७६	१२५२	२६०४	५३०८
८४	२६८	६३६	१३७२	२८४४	५७८८
१००	३००	७००	१५००	३१००	६३००
जोड़ ४०८	१६१६	४०३२	८८६४	१८५२८	३७८५६

अंकसंदृष्टि करि जैसें नीचै ही नीचैं अड़तालीस निषेक लिखे, ताके ऊपर पांच सै बारा का बिना सैंतालीस निषेक लिखे । ताके ऊपरि पांच सै बारा अर च्यारि सै असी का बिना छियालीस निषेक लिखे । ऐसें ही क्रम तैं ऊपरि ही ऊपरि नव का निषेक लिख्या; ऐसें लिखते त्रिकूटी रचना हो है । तातैं इस त्रिकोण यंत्र का जोड़ा हूवा सर्व द्रव्य, प्रमाण सत्त्व द्रव्य जानना । सो कितना हो है ? सो कहिए है – किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण हो है । पूर्वैं जो गुणहानि

आयाम का प्रमाण कह्या, तामैं आधा गुणहानि आयाम का प्रमाण मिलाए, ड्यर्ध-गुणहानि हो है। तामैं किछू घाटि संख्यात गुणी पल्य की वर्गशलाका करि अधिक जो गुणहानि का अठारहवां भाग का प्रमाण सो घटावना, घटाएं जो प्रमाण होइ, ताका नाम इहां किंचिदून ड्यर्धगुणहानि जानना। ताकरि समयप्रबद्ध के विषैं जो परमाणूनि का प्रमाण कह्या, ताकौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, सोइ त्रिकोण यंत्र विषैं प्राप्त सर्व निषेकनि के परमाणू जोडैं, प्रमाण हो है। जैसैं अंक संदृष्टि करि कीया हूवा त्रिकोणयंत्र, ताकी सर्वपंक्ति के अंकनि कौं जोडैं, इकहत्तरी हजार तीन सैं च्यारि हो हैं। अर गुणहानि आयाम आठ, तामैं आधा गुणहानि आयाम च्यारि मिलाए, ड्यर्धगुणहानि का प्रमाण बारह होइ, ताकरि समयप्रबद्ध तरेसठि सौ कौं गुणैं, पिचहत्तरि हजार छ सैं होइ। इहां त्रिकोण यंत्र का जोड़ घटता भया। तातैं किंचिदून ड्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व कह्या। तहां ड्यर्धगुणहानि विषैं ऊनका प्रमाण दार्ष्टांत विषैं महत्प्रमाण है; तातैं पूर्वोक्त जानना।

इहां अंकसंदृष्टि दृष्टांत विषैं गुणहानि का अठारहवां भाग करि गुणित समयप्रबद्ध का प्रमाण अठाईस सैं, तामैं गुणहानि आठ, नानागुणहानि छै करि गुणित समयप्रबद्ध का तरेसठिवां भाग, अडतालीस सैं, तामैं किंचित् अधिक आधा समयप्रबद्ध का प्रमाण तेतीस सैं च्यारि घटाइ, अवशेष चौदह सैं छिनवे जोडैं, बियालीस सैं छिनवे भए, सो ड्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध विषैं घटाएं, त्रिकोण यंत्र का जोड हो है।

बहुरि इस त्रिकोण यंत्र का जोड इतना कैसैं भया? सो जोड देने का विधान हीन-हीन संकलन करि वा अधिक-अधिक संकलन करि वा अनुलोम-विलोम संकलन करि तीन प्रकार कह्या है। तहां घटता-घटता प्रमाण लीएं निषेकनि का क्रम तैं जोडना, सो हीन-हीन संकलन कहिए। बधता-बधता प्रमाण लीएं निषेकनि का क्रम तैं जोडना, सो अधिक-अधिक संकलन कहिए। हीन प्रमाण लीएं वा अधिक प्रमाण लीएं निषेकनि का जैसैं होइ तैसैं जोड़ना, सो अनुलोम-विलोम संकलन कहिए सो ऐसैं जोड़ देने का विधान आगैं संदृष्टि अधिकार विषैं लिखैंगे; तहां जानना। इहां जोड विषैं संदृष्टि समझने में न आवती; तातैं नाहीं लिख्या है। ऐसैं आयु बिना कर्मप्रकृतिनि का समय-समय प्रति बंध, उदय, सत्त्व का लक्षण कह्या।

बहुरि आयु का अन्यथा लक्षण है, जातें आयु का अपकर्षण कालनि विषें वा असंक्षेप अंत काल विषें ही बंध हो है । बहुरि आबाधा काल पूर्व भव विषें व्यतीत हो है । तातें आयु की जितनी स्थिति, तितनी ही निषेकनि की रचना जाननी । आबाधाकाल घटावना नाहीं । बहुरि आयुकर्म का उत्कृष्ट संचय कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी जलचर जीव कैं हो है । तहां कर्मभूमियां मनुष्य कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी यथायोग्य संक्लेश वा उत्कृष्ट योग करि पर भव संबंधी कोटिपूर्व वर्ष का आयु जलचर विषें उपजने का बांध्या, सो आगें कहिएगी योग यवमध्य रचना, ताका ऊपरि स्थान विषें अंतर्मुहूर्त तिष्ठ्या, बहुरि अंत जीव गुणहानि का स्थान विषें आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल तिष्ठ्या, क्रम तें काल गमाइ, कोडिपूर्व आयु का धारी जलचर विषें उपज्या । अंतर्मुहूर्त करि सर्व पर्याप्तनि करि पर्याप्त भया । अंतर्मुहूर्त करि बहुरि परभव संबंधी जलचर विषें उपजने का कोडिपूर्व आयु कौं बांधे है । तहां दीर्घ आयु का बंध काल करि यथायोग्य संक्लेश करि उत्कृष्ट योग करि उत्कृष्ट योग करि बांधें है । सो योग यवरचना का अंत स्थानवर्ती जीव बहुत बार साता कौं काल करि युक्त होता अपने काल विषें पर भव संबंधी आयु कौं घटावें, ताकें आयु-वेदना द्रव्य का प्रमाण उत्कृष्ट हो है; सो द्रव्य रचना संस्कृत टीका तें जाननी । या प्रकार औदारिक आदि शरीरनि का बंध, उदय, सत्त्व विशेष जानने के अर्थि वर्णन कीया ।

आगें श्री माधवचंद्र त्रैविद्यदेव बारह गाथानि करि योग मार्गणा विषें जीवनि की संख्या कहै हैं –

बादरपुण्णा तेऊ, सगरासीए असंखभागमिदा ।
विक्किरियसत्तिजुत्ता, पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥२५९॥

बादरपूर्णाः, तैजसाः, स्वकराशेरसंख्यभागमिताः ।
विक्रियाशक्तियुक्ताः, पल्यासंख्याता वायवः ॥२५९॥

टीका – बादर पर्याप्त तेजकायिक जीव, तिनि विषें उन ही जीवनि का जो पूर्वं परिमाण आवली के घन का असंख्यातवां भागमात्र कह्या था, तिस राशि कौं असंख्यात का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने जीव विक्रिया शक्ति करि संयुक्त जानने ।

बहुरि बादर पर्याप्त वातकायिक जीव लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण कहे थे । तिनि विषैं पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण जीव, विक्रिया शक्ति युक्त जानने । जातै 'बादरतेऊवाऊपंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति' इस गाथा करि बादर पर्याप्त अग्निकायिक अर पवनकायिक जीवनि कैं वैक्रियिक योग का सद्भाव कह्या है ।

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।
वेगुव्वियपंचक्खा, भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥२६०॥

पल्यासंख्याताहतवृंदांगुलगुणित श्रेणिमात्रा हि ।
वैगूर्विकपंचाक्षा, भोगभुमाः पृथक् विगूर्वंति ॥२६०॥

टीका – पल्य का असंख्यातवां भाग करि घनांगुल कौं गुणैं, जो परिमाण होइ, ताकरि जगच्छ्रेणी गुणें, जो परिमाण आवै, तितने वैक्रियिक योग के धारक पर्याप्त पंचेंद्री तिर्यंच वा मनुष्य जानने । तहां भोगभूमि विषैं उपजे तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमि विषैं चक्रवर्ती ए पृथक् विक्रिया कौं भी करै हैं । इनि बिना सर्व कर्मभूमियानि कैं अपृथक् विक्रिया ही है ।

जो मूलशरीर तैं जुदा शरीरादि करना, सो पृथक् विक्रिया जाननी ।

अपने शरीर ही कौं अनेकरूप करना, सो अपृथक् विक्रिया जाननी ।

देवेहिं सादिरेया, तिजोगिणो तेहिं हीण तसपुण्णा ।
वियजोगिणो तदूणा, संसारी एक्कजोगा हु ॥२६१॥

देवैः सातिरेकाः, त्रियोगिनस्तैर्हीनाः त्रसपूर्णाः ।
द्वियोगिनस्तदूना, संसारिणः एकयोगा हि ॥२६१॥

टीका – देवनि का जो परिमाण साधिक ज्योतिष्कराशि मात्र कह्या था; तींहि विषैं घनांगुल का द्वितीय मूल करि गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण नारकी अर संख्यात पणट्ठी प्रतरांगुल करि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच अर बादाल का घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य इनिकौं मिलाएं, जो परिमाण होइ, तितने त्रियोगी जानने । इनिकैं मन, वचन, काय तीनों योग पाइए हैं ।

बहुरि जो पूर्वै पर्याप्त त्रस जीवनि का प्रमाण कह्या था, तामैं त्रियोगी जीवनि का परिमाण घटाएं, जो अवशेष परिमाण रहै; तितने द्वियोगी जीव जानने। इनिकैं वचन, काय दोय ही योग पाइए है।

बहुरि संसारी जीवनि का जो परिमाण, तामैं द्वियोगी अर त्रियोगी जीवनि का परिमाण घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै, तितने जीव एक योगी जानने। इनि कैं एक काययोग ही पाइए है; ऐसैं प्रगट जानना।

अंतोमुहुत्तमेत्ता, चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं, चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा ॥२६२॥

अंतर्मुहूर्तमात्राः, चतुर्मनोयोगाः क्रमेण संख्यगुणाः।
तद्योगः सामान्यं, चतुर्वचोयोगाः ततस्तु संख्यगुणाः ॥२६२॥

टीका – च्यारि प्रकार मनोयोग प्रत्येक अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति लीएं हैं। तथापि अनुक्रम तें संख्यात गुणे जानने। सोई कहिए हैं – सत्य मनोयोग का काल सबतै थोरा है; सो भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण है; ताकी संदृष्टि–एक अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा काल असत्य मनोयोग का है, ताकी संदृष्टि–च्यारि अंतर्मुहूर्त। इहां संख्यात की सहनानी च्यारि जाननी। बहुरि यातैं संख्यात गुणा उभय मनोयोग का काल है; ताकी संदृष्टि – सोलह अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा अनुभय मनोयोग का काल है; ताकी संदृष्टि–चौसठि अंतर्मुहूर्त। ऐसैं च्यारि मनोयोग का काल का जोड दीएं जो परिमाण हूवा, सो सामान्य मनोयोग का काल है; तिहि की संदृष्टि – पिच्यासी अंतर्मुहूर्त। बहुरि सामान्य मनोयोग का काल तैं संख्यातगुणा च्यारि वचनयोग काल है। तथापि क्रम तैं संख्यातगुणा है; तौ भी प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र ही है। तहां सामान्य मनोयोग का कालतैं संख्यातगुणा सत्य वचनयोग का काल है; ताकी संदृष्टि–चौगुणा पिच्यासी (४×८५) अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यात गुणा असत्य वचनयोग का काल है – ताकी संदृष्टि सोलहगुणा पिच्यासी (१६×८५) अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा उभय वचनयोग का काल है – ताकी संदृष्टि–चौसठिगुणा पिच्यासी (६४×८५) अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यात गुणा अनुभय वचनयोग का काल है; ताकी दृष्टि–दोय सै छप्पन गुणा पिच्यासी (२५६×८५) अंतर्मुहूर्त।

तज्जोगो सामण्णं, काओ संखाहदो तिजोगमिदं ।
सव्वसमासविभजिदं, सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ॥२६३॥

तद्योगः सामान्यं, कायः संख्याहतः त्रियोगिमितम् ।
सर्वसमासविभक्तं, स्वकस्वकगुणसंगुणे तु स्वकराशिः ॥२६३॥

टीका – बहुरि जो च्यार्यों वचन योगनि का काल कह्या, ताका जोड दीएं, जो परिमाण होइ, सो सामान्य वचन योग का काल है; ताकी संदृष्टि तीन सै चालीस गुणा पिच्यासी (३४० × ८५) अंतर्मुहूर्त । यातें संख्यात गुणा काल काययोग का जानना । ताकी संदृष्टि तेरह सै साठि गुणा पिच्यासी (१३६० × ८५) अंतर्मुहूर्त । असें इनि तीनों योगनि के काल का जोड दीएं, सतरह सै एक गुणा पिच्यासी (१७०१ × ८५) अंतर्मुहूर्त प्रमाण भया । ताके जेते समय होंहि, तिस प्रमाण करि त्रियोग कहिए । पूर्वै जो त्रियोगी जीवनि का परिमाण कह्या था, ताकौं भाग दीजिए जो एक भाग का परिमाण आवै, ताकौं सत्यमनोयोग के काल के जेते समय, तिन-करि गुणें, जो परिमाण आवै, तितने सत्य मनोयोगी जीव जानने । बहुरि तहीं कौं असत्य मनोयोग काल के जेते समय, तिन करि गुणें, जो परिमाण आवै, तितने असत्य मनोयोगी जीव जानने । असें ही काययोग पर्यंत सर्व का परिमाण जानना । इहां सर्वत्र त्रैराशिक करना । तहां जो सर्व योगनि का काल विषैं पूर्वोक्त त्रियोगी सर्व जीव पाइए, तौ विवक्षित योग के काल विषैं केते जीव पाइए ? असें तीनो योगनि का जोड दिएं जो काल भया, सो प्रमाण राशि, त्रियोगी जीवनि का परिमाण फल राशि, अर जिस योग की विवक्षा होइ तिसका काल इच्छा राशि, असें करि कैं फल-राशि कौं इच्छाराशि करि गुणि प्रमाणराशि का भाग दीएं, जो-जो परिमाण आवै, तितने-तितने जीव विवक्षित योग के धारक जानने ।

बहुरि द्वियोगी जीवनि विषैं वचनयोग का काल अंतर्मुहूर्त मात्र, ताकी संदृष्टि । एक अंतर्मुहूर्त, यातैं संख्यातगुणा काययोग का काल, ताकी संदृष्टि च्यारि अंत-र्मुहूर्त, इनि दोऊनि के काल कौं जोड, जो प्रमाण होइ, ताका भाग द्वियोगी जीव राशि कौं दीएं, जो एक भाग का परिमाण होइ, ताकौं अपना-अपना काल करि गुणें, अपना-अपना राशि हो है । तहां किछू घाटि त्रसराशि के प्रमाण कौं संदृष्टि अपेक्षा पांच करि भाग देइ, एक करि गुणें, द्वियोगीनि विषैं वचन योगीनि का

प्रमाण हो है । पांच का भाग देइ, च्यारि करि गुणें द्वियोगीनि विषैं काययोगीनि का प्रमाण हो है ।

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता ।
कम्मोरालियमिस्सय, ओरालियजोगिणो जीवा ॥२६४॥

कार्मणौदारिकमिश्रकौरालाद्धासु संचितानंताः ।
कार्मणौरालिकमिश्रकौरालिकयोगिनो जीवाः ॥२६४॥

टीका – कार्माण काययोग, औदारिकमिश्र काययोग, औदारिक काययोग इनि के कालनि विषैं संचित कहिए एकठे भए, जे कार्माण काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, औदारिक काययोगी जीव, ते प्रत्येक जुदे-जुदे अनंतानंत जानने; सोई कहिए है ।

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी ।
सगगुणगुणिदे थोवो, असंखसंखाहदो कमसो ॥२६५॥

समयत्रयसंख्यावलिसंख्यगुणावलिसमासहितराशिम् ।
स्वकगुणगुणिते स्तोकः, असंख्यसंख्याहतः क्रमशः ॥२६५॥

टीक – कार्मण काययोग का काल तीन समय है, जातैं विग्रह गति विषैं अनाहारक तीनि समयनि विषैं कार्माण काय योग ही संभवै है । बहुरि औदारिक मिश्र काययोग का काल संख्यात आवली प्रमाण है; जातैं अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्त अवस्था विषैं औदारिकमिश्र का काल है । बहुरि तातैं संख्यातगुणा औदारिक काययोग का काल है; जातैं तिनि दोऊ कालनि बिना अवशेष सर्व औदारिक योग का ही काल है; सो इनि सर्व कालनि का जोड दीएं जो समयनि का परिमाण भया, ताकौं द्विसंयोगी त्रिसंयोगी राशि करि हीन संसारी जीव राशिमात्र एक योगी जीव राशि के परिमाण कौं भाग दीएं जो एक भाग विषैं परिमाण आवै, तीहिं कौं कार्माण काल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तितने कार्माण काययोगी हैं । अर तिस ही एक भाग कौं औदारिक मिश्र काल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तितने औदारिक मिश्र योगी जानने । बहुरि तिस ही एक भाग कौं औदारिक के काल करि गुणें, जो परिमाण होइ, तितने औदारिक काययोगी जानने ।

इहां कार्माण काययोगी तौ सब तैं स्तोक हैं । इनि तैं असंख्यात गुणें औदारिकमिश्र काययोगी हैं । इन तैं संख्यातगुणे औदारिक काययोगी हैं । इहां भी जो तीनू काययोग के काल विषैं सर्व एक योगी जीव पाइए, तौ कार्माण शरीर आदि विवक्षित के काल विषैं केते पाइए ? असैं त्रैराशिक हो हैं । तहां तीनों काययोगनि का काल सो प्रमाणराशि, एक योगी जीवनि का परिमाण सो फलराशि, कार्मणादिक विवक्षित का काल सो इच्छाराशि, फलराशि कौं इच्छाराशि करि गुणें, प्रमाण राशि का भाग दीएं, जो-जो प्रमाण पावैं, तितने-तितने विवक्षित योग के धारक जीव जानने । क्रमशः इस शब्द करि आचार्य ने कह्या है कि धवल नामा प्रथम सिद्धांत के अनुसारि यह कथन कीया है । या करि अपना उद्धतता का परिहार प्रगट कीया है ।

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे ।
आवलिअसंखभागो, संखेज्जावलिपमा कमसो ॥२६६॥

सोपक्रमानुपक्रमकालः संख्यातवर्षस्थितिवाने ।
आवल्यसंख्यभागः, संख्यातावलिप्रमः क्रमशः ॥२६६॥

टीका – वैक्रियिक मिश्र अर वैक्रियिक काययोग के धारक जे जीव, तिनकी संख्या च्यारि गाथानि करि कहैं हैं । संख्यात वर्ष की है स्थिति जिनकी असैं जे मुख्यता करि दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति के धारकवान कहिए व्यंतर देव, तिनि विषैं उनकी स्थिति के दोय भाग हैं; एक सोपक्रम काल, एक अनुपक्रम काल ।

तहां उपक्रम कहिए उत्पत्ति, तीहि सहित जो काल, सो सोपक्रम काल कहिए । सो आवली के असंख्यातवें भागमात्र है; जो व्यंतर देव उपजिबो ही करैं, बीचि कोई समय अंतर नहीं पडै, तौ आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल पर्यंत उपजिबो करैं ।

बहुरि जो उत्पत्ति रहित काल होइ; सो अनुपक्रम काल कहिए । सो संख्यात आवली प्रमाण है । बारह मुहूर्तमात्र जानना । जो कोई ही व्यंतर देव न उपजै, तौ बारह मुहूर्त पर्यंत न उपजै, पीछैं कोई उपजै ही उपजै; असैं अनुक्रम तैं काल जानने ।

तहिं सव्वे सुद्धसला, सोवक्कमकालदो दु संखगुणा ।
तत्तो संखगुणूणा, अपुण्णकालम्हि सुद्धसला ॥२६७॥

तस्मिन् सर्वाः शुद्धशलाकाः, सोपक्रमकालतस्तु संख्यगुणाः ।
ततः संख्यगुणोना, अपूर्णकाले शुद्धशलाकाः ॥२६७॥

टीका – तींहि दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति विषै सर्व पर्याप्त वा अपर्याप्त काल संबंधी अनुपक्रम काल रहित कौं केवल शुद्ध उपक्रम काल की शलाका कहिए । जेती बार संभवै तेता प्रमाण, सो उपक्रम काल तैं संख्यात गुणी है । बहुरि अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका तातैं संख्यात गुणी घाटि हैं, जो जघन्य स्थिति विषैं शुद्ध उपक्रम शलाका का परिमाण कह्या था, ताके संख्यातवें भाग अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका जानना । सोई दिखाइए है—

सोपक्रम–अनुपक्रम काल दोऊ कालनि की मिलाई हुई एक शलाका होइ, तौ दश हजार वर्ष प्रमाण स्थिति की केती शलाका होइ ? असैं त्रैराशिक करिए । तहां सोपक्रम अर अनुपक्रम काल कौं मिलाए, आवली का असंख्यातवां भाग अधिक संख्यात आवली प्रमाण तौ प्रमाणराशि भया, अर फलराशि एक शलाका, अर इच्छाराशि दश हजार वर्ष, तहां फल करि इच्छाराशि कौं गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, किंचिदून संख्यातगुणा संख्यात प्रमाण मिश्र शलाका हो है । जघन्य स्थिति विषै एती बार उपक्रम वा अनुपक्रम का काल वर्तै है । बहुरि प्रमाणराशि शलाका एक, फलराशि उपक्रम काल आवली का असंख्यातवां भाग, इच्छाराशि मिश्रशलाका किंचिदून संख्यात गुणा संख्यात कीएं, तींहि जघन्य स्थिति प्रमाण काल विषैं शुद्ध उपक्रम शलाका का काल का परिमाण किंचिदून संख्यात गुणा संख्यात गुणित आवली का असंख्यातवां भागमात्र हो है । बहुरि प्रमाण जघन्य स्थिति, फल शुद्ध उपक्रम शलाका का काल, इच्छा अपर्याप्त कीएं, अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल संख्यात गुणा आवली का असंख्यातवां भागमात्र होइ । अथवा अन्य प्रकार कहैं हैं – प्रमाण एक शुद्ध उपक्रम शलाका का काल, फल एक शलाका, इच्छा सर्व शुद्ध उपक्रम काल करिएं पर्याप्त–अपर्याप्त सर्व काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका किंचिदून संख्यात गुणी संख्यात जाननी । बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल शुद्ध उपक्रम शलाका का काल आवली का असंख्यातवां भागमात्र, इच्छा सर्व शुद्ध शलाका किंचिदून संख्यात गुणित संख्यात करिएं, लब्धराशि विषैं सर्व जघन्य स्थिति संबंधी

शुद्ध उपक्रम काल आवली का असंख्यातवां भाग कौं किंचिदून संख्यात गुणा संख्यात करि गुणें, जेता प्रमाण आवै, तितना ही है। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक शलाका काल आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल, इच्छा अपर्याप्त काल संबंधी शलाका संख्यात करिए, तहां लब्धिराशि विषै अपर्याप्तकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल संख्यात गुणा आवली का असंख्यातवां भागमात्र हो है। इहां दोय प्रकार वर्णन किया; तहां दोऊ जायगा जघन्य उपजने का अंतर एक समय है; ताकौं विचारि शुद्ध उपक्रम शलाका साधी है; असा जानना। अनुपक्रम काल करि रहित जो उपक्रम काल; सो शुद्ध उपक्रम काल जानना।

तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहिं।
सुद्धसलागाहिं गुणे, वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥२६८॥

तं शुद्धशलाकाहितनिजराशिमपूर्णकाललब्धाभिः।
शुद्धशलाकाभिर्गुणे, व्यंतरवैगूर्वमिश्रा हि ॥२६८॥

टीका – तीहिं जघन्य स्थिति प्रमाण सर्व काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का परिमाण, किंचिदून संख्यातगुणा संख्यात करि गुणित आवली का असंख्यातवां भागमात्र कह्या; ताका भाग व्यंतर देवनि का जो पूर्वं परिमाण कह्या था, ताकौं दीजिए, जो परिमाण आवै, ताकौं अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का प्रमाण संख्यात गुणा आवली का असंख्यातवां भागमात्र, ताकरि गुणें, जो परिमाण आवै, तितने वैक्रियिक मिश्र योग के धारक व्यंतर देव जानने। सो ए व्यंतर देवनि का जो पूर्वं परिमाण कह्या था, ताके संख्यातवें भाग वैक्रियिक मिश्र योग के धारक व्यंतर देव हैं। संख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति के धारक व्यंतर घने उपजै हैं; तातैं उन ही की मुख्यताकरि इहां परिमाण कह्या है।

तहिं सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा, वेगुव्वियकायजोगा हु ॥२६९॥

तस्मिन् शेषदेवनारकमिश्रयुते सर्वमिश्रवैगूर्वम्।
सुरनिरयकाययोगा, वैगूर्विककाययोगा हि ॥२६९॥

टीका – तीहिं वैक्रियिक मिश्र काययोग के धारक व्यंतर देवनि का परिमाण विषै अवशेष जे भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिक देव अर सर्व नारकी वैक्रियिक मिश्र

योग के धारक, तिनिका परिणाम मिलाएं, सर्व वैक्रियिकमिश्र काययोग के धारक जीवनि का परिमाण हो है । व्यंतर देवां बिना अन्य देव वा नारकी, तिनकैं अनुपक्रम काल जो न उपजने का काल, सो बहुत है । तातैं सबनि तैं वैक्रियिकमिश्र योग के धारक व्यंतर देव बहुत हैं । इस वास्तैं औरनि कौं इन विषैं मिलाय करि परिमाण कह्या । बहुरि काययोग के धारक देव अर नारकी, तिनिका परिमाण मिलाएं वैक्रियिक काययोग के धारक जीवनि का परिमाण हो है । पूर्वं जो त्रियोगी जीवनि का परिमाण विषैं काययोगी जीवनि का परिमाण कह्या था, तामैं स्यों तिर्यंच, मनुष्य संबंधी औदारिक, आहारक काययोग के धारक जीवनि का परिमाण घटाएं, जो परिमाण रहै; तितने वैक्रियिक काययोग के धारक जीव जानने । मिश्र योग के धारक जीव एक काययोगी ही हैं; सो उनका परिमाण एक योगीनि का प्रमाण विषैं गर्भित जानना ।

आहारकायजोगा, चउवण्णं होंति एकसमयम्हि ।
आहारमिस्सजोगा, सत्तावीसा दु उक्कस्सं ॥२७०॥

आहारकाययोगाः, चतुर्पंचाशत् भवंति एकसमये ।
आहारमिश्रयोगाः, सप्तविंशतिस्तूत्कृष्टम् ॥२७०॥

टीका – उत्कृष्टपनैं एक समय विषैं युगपत् आहारक काययोग के धारक चौवन (५४) हो हैं । बहुरि आहारक मिश्र काययोग के धारक सत्ताईस (२७) हो हैं । उत्कृष्टपनैं अर एक समय विषैं असैं ए दोय विशेषण मध्य दीपक समान हैं । जैसैं बीचि धर्‌या हुआ दीपक दोऊ तरफ प्रकाश करै है; तैसैं इनि दोऊ विशेषणनि तैं जो पूर्वं गति आदि विषैं जीवनि की संख्या कहि आए, अर आगैं वेदादिक विषैं जीवनि की संख्या कहिएगी; सो सब उत्कृष्टपनैं युगपत् अपेक्षा जाननी । जो उत्कृष्टपनैं समय विषैं युगपत् होंइ, तो उक्त संख्या प्रमाण जीव होंहि । उक्त संख्या तैं हीन होंइ तौ होंइ, परन्तु अधिक कदाचित् न होंइ । ऐसी विवक्षातैं इहां कथन जानना । बहुरि जघन्यपने तैं वा नाना काल की अपेक्षा संख्या का विशेष अन्य जैनागम तैं जानना असैं योगमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या कही है ।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि **सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका** नामा भाषा टीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनि विषैं **योग प्ररूपणा** है नाम जाका असा **नवमा** अधिकार सम्पूर्ण भया ॥९॥

दसवां अधिकार : वेद-मार्गणा-प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

दूरि करत भव ताप सब, शीतल जाके बैन ।
तीन भवननायक नमौं, शीतल जिन सुखदैन ॥

आगैं शास्त्र का कर्ता आचार्य छह गाथानि करि वेदमार्गणा कौं प्ररूपै हैं –

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे ।
णामोदयेण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा ॥ २७१ ॥

पुरुषस्त्री षंढवेदोदयेन पुरुषस्त्रीषंढाः भावे ।
नामोदयेन द्रव्ये, प्रायेण समाः क्वचिद् विषमाः ॥२७१॥

टीका – चारित्र मोहनीय का भेद नोकषाय, तींहरूप पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नामा प्रकृति, तिनिके उदय तैं भाव जो चैतन्य उपयोग, तींहि विषैं पुरुष, स्त्री, नपुंसकरूप जीव हो है । बहुरि निर्माण नामा नामकर्म के उदय करि संयुक्त अंगोपांग का विशेषरूप नामकर्म की प्रकृति के उदय तैं, द्रव्य जो पुद्गलीक पर्याय, तींहिविषैं पुरुष, स्त्री, नपुंसक रूप शरीर हो है । सो ही कहिए है–पुरुषवेद के उदयतैं स्त्री का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञा का धारी जीव, सो भाव पुरुष हो है । बहुरि स्त्री वेद के उदय तैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञा का धारक जीव, सो भाव स्त्री हो है । बहुरि नपुंसकवेद के उदय तैं पुरुष अर स्त्री दोऊनि का युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञा का धारक जीव, सो भाव नपुंसक हो है ।

बहुरि निर्माण नामकर्म का उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकार का विशेष लीएं, अंगोपांग नामा नामकर्म का उदय तैं मूछ, डाढी, लिंगादिक चिह्न संयुक्त शरीर का धारक जीव, सो पर्याय का प्रथम समय तैं लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ।

बहुरि निर्माण नाम का उदय संयुक्त स्त्री वेदरूप आकार का विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामकर्म के उदयतैं रोम रहित मुख, स्तन, योनि इत्यादि चिह्न संयुक्त

शरीर का धारक जीव, सो पर्याय का प्रथम समय तैं लगाइ अंत समय पर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है ।

बहुरि निर्माण नामा नामकर्म का उदय तैं संयुक्त नपुंसक वेदरूप आकार का विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामप्रकृति के उदय तैं मूछ, डाढी इत्यादि वा स्तन, योनि इत्यादिक दोऊ चिह्न रहित शरीर का धारक जीव, सो पर्याय का प्रथम समय तैं लगाइ अंत समय पर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है ।

सो प्रायेण कहिए बहुलता करि तौ समान वेद हो है । जैसा द्रव्यवेद होइ तैसा ही भाव वेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है, द्रव्यवेद अन्य होइ, भाव वेद अन्य होइ । तहां देव अर नारकी अर भोग भूमियां तिर्यंच, मनुष्य इनिकें तौ जैसा द्रव्य वेद है, तैसा ही भाव वेद है । बहुरि कर्मभूमियां तिर्यंच अर मनुष्य विषें कोई जीवनि कें तौ जैसा द्रव्य वेद हो है, तैसा ही भाव वेद है, बहुरि केई जीवनि कें द्रव्य वेद अन्य हो है अर भाव वेद अन्य हो है । द्रव्य तैं पुरुष है अर भाव तैं पुरुष का अभिलाषरूप स्त्री वेदी है । वा स्त्री अर पुरुष दोऊनि का अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है । असें ही द्रव्य तैं स्त्रीवेदी है अर भाव तैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है । वा दोऊनि का अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है । बहुरि द्रव्य तैं नपुंसक वेदी है । भाव तैं स्त्री का अभिलाषरूप पुरुष वेदी है । वा पुरुष का अभिलाषरूप स्त्री वेदी है । असा विशेष जानना, जातैं आगम विषें नवमा गुणस्थान का सवेद भाग पर्यंत भाव तैं तीन वेद हैं । अर द्रव्य तैं एक पुरुष वेद ही है, असा कथन कह्या है ।

वेदस्सुदीरणाए, परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो ।
संमोहेण ण जाणदि, जीवो हि गुणं व दोषं वा ।।२७२।।

वेदस्योदीरणायां, परिणामस्य च भवेत्संमोहः ।
संमोहेन न जानाति, जीवो हि गुणं वा दोषं वा ।।२७२।।

टीका – मोहनीय कर्म की नोकषायरूप वेद नामा प्रकृति, ताका उदीरणा वा उदय, तींहि करि आत्मा के परिणामनि कौं रागादिरूप मैथुन है नाम जाका असा सम्मोह कहिए चित्त विक्षेप, सो उपजै है । तहां बिना ही काल आएं कर्म का फल निपजै, सो उदीरणा कहिए । काल आएं फल निपजै, सो उदय कहिए । बहुरि उस सम्मोह के उपजने तैं जीव गुण कौं वा दोष कौं न जानै, असा अविवेक रूप

अनर्थ वेद के उदय तें भया सम्मोह तें ही है । तातें ज्ञानी जीव कौं परमागम भावना का बल करि यथार्थ स्वरूपानुभवन आदि भाव तें ब्रह्मचर्य अंगीकार करना योग्य है; असा आचार्य का अभिप्राय है ।

पुरुगुणभोगे सेदे, करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु उत्तमे य जह्मा, तह्मा सो वण्णिओ पुरिसो[1] ॥२७३॥

पुरुगुणभोगे शेते, करोति लोके पुरुगुणं कर्म ।
पुरूत्तमे च यस्मात्, तस्मात् स वर्णितः पुरुषः ॥२७३॥

टीका – जातें जो जीव **पुरुगुण** जो उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञानादिक, तीहिं विषै **शेते** कहिए स्वामी होइ प्रवर्तै ।

बहुरि पुरुभोग जो उत्कृष्ट इंद्रादिक का भोग, तीहिं विषै शेते कहिए भोक्ता होय प्रवर्तै ।

बहुरि पुरुगुण कर्म जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ, तीहिनैं शेते कहिए करे ।

बहुरि पुरु जो उत्तम परमेष्ठी का पद तीहिं विषै शेते कहिए तिष्ठै । तातैं सो द्रव्य भाव लक्षण संयुक्त द्रव्य – भाव तें पुरुष कह्या है । पुरुष शब्द की निरुक्ति करि वर्णन कीया है ।

धातुनि के अनेक अर्थ हैं । तातें शीङ् स्वप्ने इस धातु का स्वामी होना, भोगवना, करना, तिष्ठना असें अर्थ कहे, विरोध न उपजावैं है । बहुरि इहां पृषोदर शब्द की ज्यों अक्षर विपर्यास जानने । तालवी, शकार का, मूर्धनी षकार करना । अथवा 'पुरोऽग्रकर्मणि' इस धातु तें निपज्या पुरुष शब्द जानना ।

छादयदि सयं दोसे, णयदो छाददि परं वि दोसेण ।
छादणसीला जह्मा, तह्मा सा वण्णिया इत्थी[2] ॥२७४॥

छादयति स्वकं दोषैः नयतः छादयति परमपि दोषेण ।
छादनशीला यस्मात् तस्मात् सा वर्णिता स्त्री ॥२७४॥

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४३, गाथा १७१ ।

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४३, गाथा १७० ।

टीका – जातैं जो स्वयं कहिए आपकौं दोषैः कहिए मिथ्यात्व अज्ञान, असंयम, क्रोधादिक, तिनि करि स्तृणाति कहिए आच्छादित करै है । बहुरि नाही केवल आप ही कौं आच्छादित करै है; जातैं पर जु है पुरुषवेदी जीव, ताहि कोमल वचन कटाक्ष सहित विलोकन, सानुकूल प्रवर्तन इत्यादि प्रवीणतारूप व्यापारनि तैं अपने वश करि दोष जे हैं हिंसादिक पाप, तिनि करि स्तृणाति कहिए आच्छादै है; असा आच्छादन रूप ही है स्वभाव जाका तातैं, सो द्रव्य भाव करि स्त्री असा नाम कह्या है । असी स्त्री शब्द की निरुक्ति करि वर्णन कीया ।

यद्यपि तीर्थंकर की माता आदि सम्यग्दृष्टिणी स्त्रीनि विषै दोष नाहीं, तथापि वे स्त्री थोरी अर पूर्वोक्त दोष करि संयुक्त स्त्री घनी । तातैं प्रचुर व्यवहार अपेक्षा असा लक्षण आचार्य ने स्त्री का कह्या ।

णेवित्थी णेव पुमं, णउंसओ उहय-लिंग-विदिरित्तो ।
इट्ठावग्गिसमाणग-वेदणगरुओ कलुस-चित्तो[1] ।।२७५।।

नैव स्त्री नैव पुमान्, नपुंसक उभयलिंगव्यतिरिक्तः ।
इष्टापाकाग्निसमानकवेदनागुरुकः कलुषचित्तः ।।२७५।।

टीका – जो जीव पूर्वोक्त पुरुष वा स्त्रीनि के लक्षण के अभाव तैं पुरुष नाहीं वा स्त्री नाहीं; तातैं दोऊ ही वेदनि के डाढी, मूंछ वा स्तन, योनि इत्यादि चिह्न, तिनिकरि रहित है । बहुरि इष्ट का पाक जो ईंट पचावने का पंजावा, ताकी अग्नि समान तीव्र काम पीडा करि गरवा भर्‌या है । बहुरि स्त्री वा पुरुष दोऊनि का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञा करि मैला है चित्त जाका, असा जीव नपुंसक है ऐसा आगम विषैं कह्या है । यहु नपुंसक शब्द की निरुक्ति करि वर्णन कीया । स्त्री पुरुष का अभिलाषरूप तीव्र कामवेदना लक्षण धरैं, भावनपुंसक है; असा तात्पर्य जानना ।।२७५।।

तिणकारिसिट्ठपागग्गि-सरिस-परिणाम-वेयणुम्मुक्का ।
अवगय-वेदा जीवा, सग-संभवणंत-वरसोक्खा[2] ।।२७६।।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४४ गाथा सं. १७२
पाठभेद – उहय – उभय, इट्ठावग्गि – इट्ठावाग, वेदण – वेयण ।
२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३४४, गाथा १७३ ।
पाठभेद – कारिस सहिट्ट–वागग्गि ।

तृणकारीषेष्टपाकाग्निसदृशपरिणामवेदनोन्मुक्ताः ।
अपगतवेदा जीवाः, स्वकसंभवानंतवरसौख्याः ।।२७६।।

टीका – पुरुष वेदी का परिणाम, तिणाकी अग्नि समान है । स्त्री वेदी का परिणाम कारीष का अग्नि समान है । नपुंसक वेद का परिणाम पंजावाकी अग्नि समान है । औसें तीनों ही जाति के परिणामनि की जो पीडा, तींहि करि जे रहित भए हैं; औसे भाववेद अपेक्षा अनिवृत्तिकरण का अपगत वेदभाग तें लगाय, अयोगी पर्यंत अर द्रव्य भाव वेद अपेक्षा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ।

कोऊ जानैगा जहां काम सेवन नाहीं; तहां सुख भी नाहीं ?

ताकौं कहैं हैं–कैसे हैं ते अवेदी ? अपने ज्ञान दर्शन लक्षण विराजमान आत्मतत्त्व तें उत्पन्न भया जो अनाकुल अतींद्रिय अनंत सर्वोत्कृष्ट सुख, ताके भोक्ता हैं । यद्यपि नवमा गुणस्थान के अवेद भाग ही तें वेद उदय तें उत्पन्न कामवेदनारूप संक्लेश का अभाव है । तथापि मुख्यपनैं सिद्धनि ही कैं आत्मीक सुख का सद्भाव दिखाइ वर्णन कीया । परमार्थ तें वेदनि का अभाव भए पीछैं ज्ञानोपयोग की स्वस्थतारूप आत्म जनित आनन्द यथायोग्य सबनि कैं पाइये है ।

आगैं श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव वेद मार्गणा विषैं जीवनि की संख्या पांच गाथानि करि कहैं हैं –

जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरुसा य सण्णिणो जीवा ।
तत्तेउपम्मलेस्सा, संखगुणूणा कमेणेदे ।।२७७।।

ज्योतिष्कवानयोनितिर्यक्पुरुषाश्च संज्ञिनो जीवाः ।
तत्तेजः पद्मलेश्याः, संख्यगुणोनाः क्रमेणैते ।।२७७।।

टीका – पैंसठि हजार पांच सैं छत्तीस प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितने ज्योतिषी हैं । तातैं संख्यात गुणे घाटि व्यंतर हैं । संख्यात गुणे घाटि कहो वा संख्यातवां भाग कहो दोऊ एकार्थ हैं । बहुरि तातैं संख्यात गुणे घाटि योनिमती तिर्यंच हैं । तिर्यंच गति विषैं द्रव्य स्त्री इतनी हैं । बहुरि तातैं संख्यात गुणे घाटि द्रव्य पुरुष वेदी तिर्यंच हैं । बहुरि तातैं संख्यात गुणे घाटि सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं । बहुरि तातैं संख्यात गुणा घाटि पीत लेश्या का धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं ।

बहुरि तीह स्यों संख्यात गुणा घाटि पद्म-लेश्या का धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच है। ऐसें ए सब संख्यात गुणा घाटि कह्या।

इगिपुरिसे बत्तीसं, देवी तज्जोगभजिददेवोघे ।
सगगुणगारेण गुणे, पुरुसा महिला य देवेसु ॥२७८॥

एकपुरुषे द्वात्रिंशद्देव्यः तद्योगभक्तदेवौघे ।
स्वकगुणाकारेण गुणे, पुरुषा महिलाश्च देवेषु ॥२७८॥

टीका – देवगति विषैं एक पुरुष के बत्तीस देवांगना होंइ। कोई ही देव कैं बत्तीस सौं घाटि देवांगना नाहीं। अर इंद्रादिकनि के देवांगना तिनतैं संख्यात गुणी बहुत हैं। तथापि जिनके बहुत देवांगना हैं, ऐसे देव तौ थोरे हैं। अर बत्तीस देवांगना जिनके हैं; ऐसैं प्रकीर्णकादिक देव घने तिनतैं असंख्यात गुणे हैं। तातैं एक एक देव कैं बत्तीस-बत्तीस देवांगना की विवक्षा करि अधिक की न करि कही। सो बत्तीस देवांगना अर एक देव मिलाएं तैतीस भए, सो पूर्वैं जो देवनि का परिमाण कह्या था, ताकौं तैंतीस का भाग दीएं जो एक भाग का परिमाण आवै, ताकौं एक करि गुणें तितना ही रह्या, सो इतने तौ देवगति विषैं पुरुष जानने। अर याकौं बत्तीस गुणां कीएं जो परिमाण होइ, तितनी देवांगना जाननीं।

भावार्थ – देवराशि का तेतीस भाग में एक भाग प्रमाण देव है, बत्तीस भाग प्रमाण देवांगना हैं।

देवेहिं सादिरेया, पुरिसा देवीहिं साहिया इत्थी ।
तेहिं विहीण सवेदो, रासी संढाण परिमाणं ॥२७९॥

देवैः सातिरेकाः, पुरुषाः देवीभिः साधिकाः स्त्रियः ।
तैर्विहीनः सवेदो, राशिः षंढानां परिमाणम् ॥२७९॥

टीका – पुरुष वेदी देवनि का जो परिमाण कह्या, तींहि विषैं पुरुष वेदी तिर्यंच, मनुष्यनि का परिमाण मिलाएं, सर्व पुरुष वेदी जीवनि का परिमाण हो है। बहुरि देवांगना का जो परिमाण कह्या तीहिं विषैं तिर्यंचणी वा मनुष्यणी का परिमाण मिलाएं सर्व स्त्रीवेदी जीवनि का परिमाण हो है। बहुरि नवमा गुणस्थान का वेद रहित भाग तैं लगाइ अयोग केवली पर्यंत जीवनि का संख्या रहित सर्व

संसारी जीवनि का परिमाण में स्यों पुरुष वेदी अर स्त्री वेदी जीवनि का परिमाण घटाएं जो अवशेष प्रमाण रहै; तितने नपुंसकवेदी जीव जानने ।

गब्भण पुइत्थिसण्णी, सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा ।
कुरुजा असण्णिगब्भजणपुइत्थीवाणजोइसिया ॥२८०॥

थोवा तिसु संखगुणा, तत्तो आवलिअसंखभागगुणा ।
पल्लासंखेज्जगुणा, तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥२८१॥

गर्भनपुंस्त्रीसंज्ञिनः, सम्मूर्छनसंज्ञिपूर्णका इतरे ।
कुरुजा असंज्ञिगर्भजनपुंस्त्रीवानज्योतिष्काः ॥२८०॥

स्तोकाः त्रिषु संख्यगुणाः, तत आवल्यसंख्यभागगुणाः ।
पल्यासंख्येयगुणाः, ततः सर्वत्र संख्यगुणाः ॥२८१॥

टीका – सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदी, बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुष वेदी, बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज स्त्री वेदी, बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त नपुंसक वेदी, बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेंद्री अपर्याप्त नपुंसक वेदी, बहुरि भोग-भूमियां गर्भज सैनी पंचेंद्री पर्याप्त पुरुष वेदी वा स्त्री वेदी, बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदी, बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुष वेदी, बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज स्त्री वेदी, बहुरि व्यंतरदेव, अर ज्योतिषदेव-ए ग्यारा जीवराशि अनुक्रम तैं ऊपरि-ऊपरि लिखनी ।

पूर्वं जो ग्यारा राशि कहे, तिनि विषै नीचली राशि सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदी सो सर्व तैं स्तोक है । आठ बार संख्यात अर आवली का असंख्यातवां भाग अर पल्य का असंख्यातवां भाग अर पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस प्रतरांगुल, इनिका भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो परिमाण आवै, तितने जानने ।

बहुरि याके ऊपरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुष वेदी स्यों लगाइ, तीन राशि अनुक्रम तैं संख्यात गुणा जानना ।

बहुरि चौथी राशि तैं पंचम राशि संमूर्छन सैनी पंचेंद्री अपर्याप्त नपुंसक वेदी आवली का असंख्यातवां भाग गुणा जानना ।

बहुरि इस पंचम राशि तैं षष्ठराशि पल्य का असंख्यातवां भाग गुणा जानना ।

बहुरि यातै असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदी स्यों लगाइ, ज्योतिषी पर्यंत सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादशम राशि अनुक्रम तैं संख्यात गुणा जानना । ऐसैं वेद मार्गणा विषैं जीवनि की संख्या कही ।

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ
की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका
नामा भाषा टीका के विषैं जीवकांड विषैं प्ररूपित जे बीसप्ररूपणा
तिनि विषैं वेदमार्गणा प्ररूपणा नामा दशमां
अधिकार समाप्त भया ।

ग्यारहवां अधिकार : कषाय-मार्गणा-प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

पावन जाको श्रेयमग, मत जाको श्रियकार ।
आश्रय श्री श्रेयांस को, करहु श्रेय मम सार ॥

आगें शास्त्रकर्ता आचार्य चौदह गाथानि करि कषाय मार्गणा का निरूपण करें हैं –

सुहदुक्खसुबहुसस्सं, कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारदूरमेरं, तेण कसाओ त्ति णं बेंति[1] ॥२८२॥

सुखदुःखसुबहुसस्यं, कर्मक्षेत्रं कृषति जीवस्य ।
संसारदूरमर्यादं, तेन कषाय इतीमं ब्रुवंति ॥२८२॥

टीका – जा कारण करि संसारी जीव कें कर्म जो हैं ज्ञानावरणादिक मूल, उत्तर-उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप शुभ-अशुभ कर्म, सोई भया क्षेत्र कहिए, अन्न उपजने का आधार भूत स्थान, ताहि कृषति कहिए हलादिक तें जैसें खेत कौं सवारिए, तैसें जो संवारे है, फल निपजावने योग्य करै है, तीहिं कारण करि क्रोधादि जीव के परिणाम कषाय हैं, ऐसा श्रीवर्धमान भट्टारक के गौतम गणधरादिक कहैं हैं । तातैं महाधवल* द्वितीय नाम कषायप्राभृत आदि विषैं गणधर सूत्र के अनुसारि जैसैं कषायनि का स्वरूप, संख्या, शक्ति, अवस्था, फल आदि कहे हैं । तैसें ही मैं कहोंगा । अपनी रुचिपूर्वक रचना न करौंगा । ऐसा आचार्य का अभिप्राय जानना ।

कैसा है कर्मक्षेत्र ? इंद्रियनि का विषय संबंध तैं उत्पन्न भया हर्ष परिणाम-रूप नानाप्रकार सुख अर शारीरिक, मानसिक पीडा रूप नाना प्रकार दुख सोई बहुसस्य कहिए बहुत प्रकार अन्न, सो जीहिं विषैं उपज्या है ऐसा है ।

बहुरि कैसा है कर्मक्षेत्र ? अनादि अनंत पंच परावर्तन रूप संसार है, मर्यादा सीमा जाकी ऐसा है ।

---

1 षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृ. १४१, गा. सं. ९०.

* यह जयधवल द्वितीय नाम कषायप्राभृत है ।

भावार्थ -- जैसें किसी का किंकर पालती सो खेत विषें बोया हूवा बीज, जैसें बहुत फल कौं प्राप्त होइ वा बहुत सींव पर्यंत होइ, तैसें हलादिक तैं धरती का फाडना इत्यादिक कृषिकर्म कौं करै है।

तैसें संसारी जीव का किंकर क्रोधादि कषाय नामा पालती, सो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग रूप कर्म का बंध, सो ही भया खेत, तीहि विषें मिथ्यात्वादिक परिणाम रूप बीज, जैसें कालादिक की सामग्री पाइ, अनेक प्रकार सुख-दुःख रूप बहुत फल कौं प्राप्त होइ वा अनंत संसार पर्यंत फल कौं प्राप्त होइ। तैसें कार्य कौं करै, तातैं इन क्रोधादिकनि का कषाय ऐसा नाम कह्या, '**कृषि विलेखने**' इस धातु का अर्थ करि कषाय शब्द का निरुक्तिपूर्वक निरूपण आचार्य करि कीया है।

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खाद-चरणपरिणामे ।
घादंति वा कषाया, चउसोलअसंखलोगमिदा ॥२८३॥

सम्यक्त्वदेशसकलचरित्रयथाख्यातचरणपरिणामान् ।
घातयंति वा कषायाः, चतुः षोडशासंख्यलोकमिताः ॥२८३॥

टीका -- अथवा '**कषंतीति कषायाः**' जे हतैं, घात करैं, तिनिकौं कषाय कहिए। सो ए क्रोधादिक हैं, ते सम्यक्त्व वा देश चारित्र वा यथाख्यात चारित्र रूप आत्मा के विशुद्ध परिणामनि कौं घातैं हैं। तातैं इनिका कषाय ऐसा नाम है। यहु कषाय शब्द का दूसरा अर्थ अपेक्षा लक्षण कह्या।

तहां अनंतानुबंधी क्रोधादिक हैं, ते तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्व कौं घातैं हैं, जातैं अनंत संसार का कारण मिथ्यात्व वा अनंत संसार अवस्थारूप काल, ताहि **अनुबध्नंति** कहिए संबंधरूप करैं; तिनकौं अनंतानुबंधी कहिए।

बहुरि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक कहे, ते अणुव्रतरूप देश चारित्र कौं घातैं हैं, जातैं अप्रत्याख्यान कहिए ईषत् प्रत्याख्यान किंचित् त्यागरूप अणुव्रत, ताकौं **आवृण्वंति** कहिए आवरैं, नष्ट करैं; ताकौं अप्रत्याख्यानावरण कहिए।

बहुरि प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक हैं; ते महाव्रतरूप सकल चारित्र कौं घातैं हैं; जातैं प्रत्याख्यान कहिए सकल त्यागरूप महाव्रत, ताकौं **आवृण्वंति** कहिए आवरैं, नष्ट करैं, ताकौं प्रत्याख्यानावरण कहिए।

बहुरि संज्वलन क्रोधादिक हैं, ते सकल कषाय का अभावरूप यथाख्यात चारित्र कौं घातें हैं, जातें 'सं' कहिए समीचीन, निर्मल यथाख्यात चारित्र, ताकौं **'ज्वलंति'** कहिए दहन करें, तिनकौं संज्वलन कहिए। इस निरुक्ति तें संज्वलन का उदय होतें संतें भी सामायिकादि अन्य चारित्र होने का अविरोध सिद्ध हो है।

असा यह कषाय सामान्यपनें एक प्रकार है। विशेषपनें अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन भेद तें च्यारि प्रकार है। बहुरि इनके एक-एक के क्रोध, मान, माया, लोभ करि च्यारि-च्यारि भेद कीजिए तब सोलह प्रकार हो हैं। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ असे सोलह भेद भए।

बहुरि उदय स्थानकों के विशेष की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण है, जातें कषायनि का कारणभूत जो चारित्रमोह, ताकि प्रकृति के भेद असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

सिल-पुढवि-भेद-धूली-जल-राइ-समाणओ हवे कोहो।
णारय-तिरिय-णरामर-गईसु उप्पायओ कमसो [१] ॥२८४॥

शिलापृथ्वीभेदधूलिजलराशिसमानको भवेत् क्रोधः।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥२८४॥

टीका—शिला भेद, पृथ्वी भेद, धूलि रेखा, जल रेखा समान क्रोध कषाय सो अनुक्रम तें नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गति विषें जीव कौं उपजावन हारा है। सोई कहिए हैं—

जैसें शिला, जो पाषाण का भेद खंड होना, सो बहुत घने-काल गए बिना मिलै नाहीं; तैसें बहुत घने काल गए बिना क्षमारूप मिलन कौं न प्राप्त होइ, असा जो उत्कृष्ट शक्ति लीए क्रोध, सो जीव कौं नरक गति विषें उपजावै है।

बहुरि जैसें पृथ्वी का भेद-खंड होना, सो घने काल गएं बिना मिलै नाहीं, तैसें घने काल गए बिना, जो क्षमारूप मिलने कौं न प्राप्त होइ असा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं क्रोध, सो जीव कौं तिर्यंच गति विषें उपजावै है।

---

१ षट्खंडागम—धवला पुस्तक १, पृ. ३५२, गा. सं. १७४.

बहुरि जैसें भूमि विषैं करी हुई लीक, सो थोरा काल गएं बिना मिलै नाहीं, तैसैं थोरा काल गए बिना जो क्षमारूप मिलन कौं प्राप्त न होइ, असा अजघन्य शक्ति लिएं क्रोध, सो जीव कौं मनुष्य गति विषैं उपजावै है ।

बहुरि जैसें जल विषैं करी हुई लीक, बहुत थोरा काल गएं बिना मिलै नाही, तैसैं बहुत थोरा काल गएं बिना जो क्षमारूप मिलन कौ प्राप्त न होइ; असा जो जघन्य शक्ति लीएं क्रोध, सो जीव कौं देव गति विषैं उपजावै है । तिस-तिस उत्कृष्टादि शक्ति युक्त क्रोधरूप परिणम्या जीव, सो तिस-तिस नरक आदि गति विषैं उपजने कौं कारण आयु-गति आनुपूर्वी आदि प्रकृतिनि कौं बांधै है; असा अर्थ जानना ।

इहां राजि शब्द रेखा वाचक जानना; पंक्ति वाचक न जानना । बहुरि इहां शिला भेद आदि उपमान अर उत्कृष्ट शक्ति आदि क्रोधादिक उपमेय, ताका समानपना अतिघना कालादि गएं बिना मिलना न होने की अपेक्षा जानना ।

सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्ते, णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारय-तिरिय-णरामर-गईसु उप्पायओ कमसो[1] ॥२८५॥

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजभेदेनानुहरन् मानः ।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥२८५॥

टीका – शैल, अस्थि, काष्ठ, बेंत समान जो अपने भेदनि करि उपमीयमान च्यारि प्रकार मान कषाय, सो क्रम तैं नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गति विषैं जीव कौं उपजावै है । सो कहिए है –

जैसैं शैल जो पाषाण सो बहुत घने काल बिना नमावने योग्य न होइ; तैसैं बहुत घने काल बिना जो विनयरूप नमन कौं प्राप्त न होइ, असा जो उत्कृष्ट शक्ति लीएं मान, सो जीवनि कौं नरक गति विषैं उपजावै है ।

बहुरि जैसें अस्थि जो हाड, सो घने काल बिना नमावने योग्य न होइ; तैसें घने काल बिना जो विनयरूप नमन कौं प्राप्त न होइ । असा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं मान, सो जीव कौं तिर्यंच गति विषैं उपजावै है ।

---

१ षट्खंडागम धवला पुस्तक १, पृ० ३५२, गा० सं० १७५

बहुरि जैसें काठ थोरा काल बिना नमावने योग्य न होइ, तैसें थोरा काल बिना जो विनयरूप नमन कौं प्राप्त न होइ। असा जो अजघन्य शक्ति लीएं मान, सो जीव कौं मनुष्य गति विषैं उप जावै है।

बहुरि जैसें बेंत की लकडी बहुत थोरे काल बिना नमावने योग्य न होइ, तैसें बहुत थोरा काल बिना जो विनयरूप नमन कौ प्राप्त न होइ। असा जो जघन्य शक्ति लीएं मान, सो जीव कौ देव गति विषैं उपजावै है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार प्रकृति बंध होना वा उपमा, उपमेय का समानपना जानना।

वेणूवमूलोरब्भ-सिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे।
सरिसी माया णारय-तिरिय-णरामर-गईसु खिवदि जियं[1] ॥२८६॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगेण गोमूत्रेण च क्षुरप्रेण।
सदृशी माया नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्षिपति जीवम् ॥२८६॥

टीका – वेणूयमूल, उरभ्रकशृंग, गोमूत्र, क्षुर समान माया ठिगनेरूप परिणति, सो क्रम तें नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गति विषैं जीव कौं उपजावै है। सोई कहिए हैं –

जैसें वेणूयमूल, जो बांस की जड की गांठ सो बहुत घने काल बिना सरल न होइ, तैसें बहुत घने काल बिना जो सरल न होइ, असा जो उत्कृष्ट शक्ति कौं लीएं माया, सो जीव कौं नरक गति विषैं उपजावै है।

बहुरि जैसें उरभ्रकशृंग, जो मीढे का सींग, सो घने काल बिना सरल न होइ, तैसें घने काल बिना जो सरल न होइ, असा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं माया, सो जीव कौं तिर्यंच गति विषैं उपजावै है।

बहुरि जैसें गोमूत्र, जो गायमूत्र की धारा, सो थोरा काल बिना सरल न होइ, तैसें थोरा काल बिना सरल न होइ, असी अजघन्य शक्ति लीएं माया, सो जीव कौं मनुष्य गति विषैं उपजावै है।

बहुरि जैसें खुर, जो पृथ्वी ऊपरि वृषभादिक का खोज, सो बहुत थोरा काल बिना सरल न होइ, तैसें बहुत थोरा काला बिना जो सरल न होइ, असी जो जघन्य शक्ति लीएं माया, सो जीव कौं देव गति विषैं उपजावै है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार प्रकृति बन्ध होना वा उपमा उपमेय का समानपना जानना।

---

१ – षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृ ३५२ गाथा सं. १७६।

किमिराय-चक्क-तणु-मल-हरिद्द-राएण सरिसओ लोहो ।
णारय-तिरिक्ख-माणुस-देवेसुप्पायओ कमसो[1] ॥२८७॥

क्रिमिरागचक्रतनुमलहरिद्रारागेण सदृशो लोभः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवेषु उत्पादकः क्रमशः ॥२८७॥

टीका – क्रिमिराग, चक्रमल, तनुमल, हरिद्राराग समान जो लोभ विषयाभिलाषरूप परिणाम, सो क्रम तैं नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गति विषैं उपजावै है। सोई कहिए है –

जैसें क्रिमिराग कहिए किरमिची रंग, सो बहुत घने काल गये बिना नष्ट न होइ, तैसें जो बहुत घने काल बिना नष्ट न होइ, असा जो उत्कृष्ट शक्ति लीएं लोभ, सो जीव कौं नरक गति विषैं उपजावै है।

बहुरि जैसें चक्रमल जो पहिये का मैल, सो घने काल बिना नष्ट न होइ, तैसें घने काल बिना नष्ट न होइ, असा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं लोभ, सो जीवकौं तिर्यंच गति विषैं उपजावै है।

बहुरि जैसें तनुमल, जो शरीर का मैल, सो थोरा काल बिना नष्ट न होइ, तैसें थोरा काल बिना नष्ट न होइ असा जो अजघन्य शक्ति लीएं लोभ, सो जीव कौं मनुष्य गति विषैं उपजावै है।

बहुरि जैसें हरिद्राराग कहिए हलद का रंग सो बहुत थोरा काल बिना नष्ट न होइ, तैसें बहुत थोरे काल बिना नष्ट न होइ, असा जो जघन्य शक्ति लीएं लोभ, सो जीव कौं देव गति विषैं उपजावै है। असें जिन-जिन कषायनि तैं जो-जो गति का उपजना कह्या, तिन-तिन कषायनि तैं तिस ही तिस गति संबंधी आयु वा आनुपूर्वी इत्यादिक का बंध जानना।

णारय-तिरिक्ख-णर-सुर-गईसु उप्पण्णपढमकालम्हि ।
कोहो माया माणो, लोहुदओ अणियमो वाऽपि ॥२८८॥

नारकतिर्यग्नरसुरगतिषूत्पन्नप्रथमकाले ।
क्रोधो माया मानो, लोभोदयः अनियमो वाऽपि ॥२८८॥

---
1. – षट्खंडागम-धवला, पुस्तक १, पृ. ३५२, गा. सं. १७७.

टीका – नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव विषें उत्पन्न भया, जीव कैं पहिला समय विषें क्रम तें क्रोध, मान, माया लोभ का उदय हो है । नारकी उपजै तहां उपजते ही पहले समय क्रोध कषाय का उदय होइ । असें तिर्यंच कैं माया का, मनुष्य कैं मान का, देव कैं लोभ का उदय जानना । सो असा नियम कषायप्राभृत दूसरा सिद्धांत का कर्ता यतिवृषभ नामा आचार्य, ताके अभिप्राय करि जानना ।

बहुरि महाकर्म प्रकृति प्राभृत प्रथम सिद्धांत का कर्ता भूतबलि नामा आचार्य, ताके अभिप्राय करि पूर्वोक्त नियम नाहीं । जिस तिस कोई एक कषाय का उदय हो है । असें दोऊ आचार्यनि का अभिप्राय विषें हमारें संदेह है; सो इस भरत क्षेत्र विषें केवली श्रुतकेवली नाहीं; वा समीपवर्ती आचार्यनि कैं उन आचार्यनि तें अधिक ज्ञान का धारक नाहीं; तातें जो विदेह विषें गये तीर्थंकरादिक के निकटि शास्त्रार्थ विषें संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय का दूर होने करि निर्णय होइ, तब एक अर्थ का निश्चय होइ तातैं हमौने दोऊ कथन कीए हैं ।

अप्पपरोभय-बाधण बंधासंजम-णिमित्त-कोहादी ।
जेसिं णत्थि कसाया, अमला अकसाइणो जीवा[1] ॥२८९॥

आत्मपरोभयबाधनबंधासंयमनिमित्तक्रोधादयः ।
येषां न संति कषाया, अमला अकषायिणो जीवाः ॥२८९॥

टीका – आपकौं व परकौं वा दोऊ कौं बंधन के वा बाधा के वा असंयम के कारणभूत असें जु क्रोधादिक कषाय वा पुरुष वेदादिरूप नोकषाय, ते जिनके न पाइये, ते द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म मल करि रहित सिद्ध भगवान अकषायी जानने । उपशांत कषाय से लेकर च्यारि गुणस्थानवर्ती जीव भी अकषाय निर्मल हैं । तिनकैं गुणस्थान प्ररूपणा ही करि अकषायपना की सिद्धि जाननी । तहां कोऊ जीव कैं तौ क्रोधादि कषाय असें हो हैं, जिनतैं आप तें आप को बांधै, आप ही आप के मस्तकादिक का घात करै । आप ही आप कैं हिंसादि रूप असंयम परिणाम करै । बहुरि कोई जीव कैं क्रोधादि कषाय असें हो हैं, जिनतैं और जीवनि कौं बांधै, मारैं, उनकैं असंयम परिणाम करावै । बहुरि कोई जीव कैं क्रोधादि कषाय असें हो हैं; जिनतैं आप का वा और जीवनि का बांधना, घात करना, असंयम होना होइ, सो असें ए कषाय अनर्थ के मूल हैं ।

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृ० ३५३, गाथा सं० १७८.

कोहादिकसायाणं, चउचउदसवीस होंति पदसंखा ।
सत्तीलेस्साआउगबंधाबंधगदभेदेहिं ॥२९०॥

क्रोधादिकषायाणां, चत्वारः चतुर्दश विंशतिः भवंति पदसंख्याः ।
शक्तिलेश्यायुष्कबंधाबंधगतभेदैः ॥२९०॥

टीका – क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय, तिनकी शक्ति स्थान के भेद करि च्यारि संख्या है । लेश्या स्थान के भेद करि चौदह संख्या है । आयुर्बल के बंधने के अबंधने के स्थान भेद करि बीस संख्या है ।

ते स्थान आगें कहिए हैं –

सिल-सेल-वेणुमूल-किमिरायादी कमेण चत्तारि ।
कोहादिकसायाणं, सत्ति पडि होंति णियमेण ॥२९१॥

शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि क्रमेण चत्वारि ।
क्रोधादिकषायाणां, शक्ति प्रति भवंति नियमेन ॥२९१॥

टीका – क्रोधादिक जे कषाय, तिनिकैं शक्ति कहिए अपना फल देनें की सामर्थ्य, ताकी अपेक्षा तैं निश्चय करि च्यारि स्थान हैं । ते अनुक्रम तैं तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, अनुभागरूप वा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य अनुभाग रूप जानने । तहां शिलाभेद, शैल, वेणुमूल, क्रिमिराग ए तौ उत्कृष्ट शक्ति के उदाहरण जानने । आदि शब्द तैं पूर्वोक्त अनुत्कृष्टादि शक्ति के उदाहरण दृष्टांतमात्र कहे हैं, ते सर्व जानने । ए दृष्टांत प्रगट व्यवहार का अवधारण करि हैं । अर परमागम का व्यवहारी आचार्यनि करि मंदबुद्धी शिष्य समझावने के अर्थि व्यवहार रूप कीएं हैं । जातैं दृष्टांत के बल करि ही मंदबुद्धी समझै हैं । तातैं दृष्टांत की मुख्यता करि जे दृष्टांत के नाम, तेई शक्तिनि के नाम प्रसिद्ध कीए हैं ।

किण्हं सिलासमाणे, किण्हादी छक्कमेण भूमिम्हि ।
छक्कादी सुक्को त्ति य, धूलिम्मि जलम्मि सुक्केक्का ॥२९२॥

कृष्णा शिलासमाने, कृष्णादयः षट् क्रमेण भूमौ ।
षट्कादिः शुक्लेति च धूलौ जले शुक्लैका ॥२९२॥

टीका – शिला भेद समान जो क्रोध का उत्कृष्ट शक्ति स्थान, तींहि विषैं एक कृष्ण लेश्या ही है। यद्यपि इस उत्कृष्ट शक्ति स्थान विषैं षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण कषायनि के उदय स्थान हैं। बहुरि तथापि ते सर्व-स्थान कृष्णलेश्या ही के हैं, कृष्णलेश्या ही के उत्कृष्ट, मध्यम, भेदरूप जानने।

षट्स्थान पतित संक्लेश–हानि का स्वरूप अैसा जानना – जैसे कषायनि के अविभाग प्रतिच्छेद पहिलैं थे, तिनसौं घाटि होने लगे ते अनंत भागहानि, असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि, असंख्यात गुणहानि, अनंत गुणहानि रूप घटे। अैसें तीव्र कषाय घटने का नाम षट्स्थान पतित संक्लेश हानि कहिए। कषायनि के अविभाग प्रतिच्छेद अनंत हैं। तिनकी अपेक्षा षट्स्थान पतित हानि संभवै है। अर स्थान भेद असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं। नियम शब्द करि, ताका अंत स्थान विषैं उत्कृष्ट शक्ति की व्युच्छित्ति हो है। बहुरि भूमि भेद समान क्रोध का अनुत्कृष्ट शक्ति स्थान, तींहि विषैं अनुक्रम तैं छहों लेश्या पाइए हैं। सो कहिए है – भूमि भेद समान क्रोध का अनुत्कृष्ट शक्तिस्थान का पहिला उदय स्थान तैं लगाइ, षट्स्थान पतित संक्लेशहानि लीएं, असंख्यात लोक प्रमाण उदय स्थानकनि विषैं तौ केवल कृष्णलेश्या ही है। कृष्ण लेश्या ही का मध्य भेद पाइए है; जातैं अन्य लेश्या का लक्षण तहां नाहीं।

बहुरि इहां तैं आगैं षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि को लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं मध्यम कृष्णलेश्या, उत्कृष्ट नील लेश्या पाइए है। जातैं इहां तिनि दोऊ लेश्यानि का लक्षण संभवै है। बहुरि इनि तैं आगैं षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदय स्थानकनि विषैं मध्यम कृष्णलेश्या, मध्यम नील लेश्या, उत्कृष्ट कपोत लेश्या पाइए है; जातैं इहां तिनि तीनों लेश्यानि के लक्षण संभवै हैं। बहुरि इनितैं आगैं षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनि विषैं मध्यम कृष्णलेश्या, मध्यम नील लेश्या, मध्यम कपोत [लेश्या, मध्यम पीत लेश्या अर जघन्य पद्म लेश्या, जघन्य पीत लेश्या पाइए है;]❀ जातैं इहां तिनि च्यार्यो [पांचौं] लेश्यानि के लक्षण संभवै है। बहुरि इनतैं षट्-स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनि विषैं, मध्यम कृष्ण, नील, कपोत, पीत लेश्या अर जघन्य पद्म लेश्या पाइए है, जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानि का लक्षण संभवै है। बहुरि इनितैं षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं

❀ 'ख' प्रति में इतना और दिया गया है।

असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं मध्यम कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म लेश्या अर जघन्य शुक्ल लेश्या पाइए है । जातैं इहां तिनि छहौ लेश्यानि का लक्षण संभवै है । ऐसैं क्रोध का अनुत्कृष्ट शक्तिस्थान का जे स्थान भेद, तिनि विषैं क्रम तैं छहौ लेश्या के स्थानक आवैं । इहां अंतस्थान विषैं उत्कृष्टशक्ति की व्युच्छित्ति हुई । बहुरि धूली रेखा समान क्रोध का अजघन्य शक्तिस्थान, ताके स्थानकनि विषैं छह लेश्या तैं एक एक घाटि शुक्ल लेश्या पर्यंत लेश्या पाइए है । सोई कहिए है – धूली रेखा समान क्रोध का प्रथम स्थान तैं लगाइ, षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि को लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं जघन्य कृष्ण लेश्या, मध्यम नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या पाइए हैं; जातै इहां छहों लेश्यानि के लक्षण संभवै है । इहां अंतस्थान विषैं कृष्णलेश्या का विच्छेद हुवा । बहुरि इहां तैं आगैं इस ही शक्ति का षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं जघन्य नील लेश्या, मध्यम कपोत, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या पाइए है । जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानि का लक्षण संभवै है । इहां अंतस्थानकनि विषैं नील लेश्या का विच्छेद हुवा ।

बहुरि इहां तैं आगैं षट्स्थान पतित संक्लेश-हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं जघन्य कपोत लेश्या मध्यम पीत, पद्म, शुक्ल, लेश्या पाइए है; जातैं इहां तिनि च्यारि लेश्यानि के लक्षण संभवैं है । इहां अंतस्थान विषैं कपोत लेश्या का विच्छेद हुवा । ऐसैं संक्लेश परिणामनि की हानि होते संते जो मंदकषायरूप परिणाम भया, ताकौं विशुद्ध परिणाम कहिए । ताके अनंते अविभाग प्रतिच्छेद हैं; सो तिनकी अनंत भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि, अनंतगुण वृद्धिरूप जो वृद्धि, सो षट्स्थान पतित विशुद्धवृद्धि कहिए, सो उस च्यारि लेश्या का स्थान तैं आगैं षट्स्थान पतित विशुद्धवृद्धि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं उत्कृष्ट पीत लेश्या, मध्यम पद्म, शुक्ल लेश्या पाइए है; जातैं इहां तीन तिनि लेश्यानि ही का लक्षण संभवै है । इहां अंतस्थानकनि विषैं पीतलेश्या का विच्छेद हुवा ।

बहुरि इहां तैं षट्स्थान पतित विशुद्ध वृद्धि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषैं उत्कृष्ट पद्मलेश्या, मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए है । जातैं इहां तिनि दोय ही लेश्यानि के लक्षण संभवै है । इहां अंतस्थान विषैं पद्मलेश्या का विच्छेद हुवा ।

बहुरि इहां तैं षट्स्थान पतित विशुद्धि वृद्धि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषें मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए है; जातें इहां तिस ही लेश्या के लक्षण पाइए है। असैं धूली रेखा समान क्रोध का अजघन्य शक्तिस्थान के जे उदयरूप स्थानक, तिनि विषें लेश्या कही। इहां अंतस्थान विषें अजघन्य शक्ति की व्युच्छित्ति भई। बहुरि इहां तैं आगें जल रेखा समान क्रोध का जघन्य शक्तिस्थान, ताके षट्स्थान पतित विशुद्धि वृद्धि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनि विषें मध्यम शुक्ललेश्या पाइए है। बहुरि याही के अंतस्थान विषें उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या पाइए है; असैं च्यारि प्रकार शक्तियुक्त क्रोध विषें लेश्या अपेक्षा चौदह स्थानक कहे। उत्कृष्ट शक्ति स्थान विषें एक, अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानकनि विषें छह, अजघन्य शक्तिस्थानक विषें छह, जघन्य शक्तिस्थानक विषें एक असैं चौदह कहे।

इहां किसी कैं भ्रम होइगा कि ए च्यारि शक्तिस्थानक कहे, इन ही का अनंतानुबंधी आदि नाम है ?

सो नाहीं, जो तैसें कहिए तौ षष्ठगुणस्थान विषैं संज्वलन ही है; तहां एक शुक्ललेश्या ही संभवै; जातैं इहां जघन्य शक्तिस्थान विषें एक शुक्ल लेश्या ही कही है; सो षष्ठ गुणस्थान विषें तौ लेश्या तीन हैं। तातैं अनंतानुबंधी इत्यादि भेद सम्यक्त्वादि घातने की अपेक्षा हैं; ते अन्य जानने। बहुरि ये शक्तिस्थान के भेद तीव्र, मंद अपेक्षा हैं; ते अन्य जानने। सो जैसें ए क्रोध के चौदह स्थान लेश्या अपेक्षा कहे, तैसें ही उत्कृष्टादिक शक्तिस्थानकनि विषें मान के वा माया के वा लोभ के भी जानने।

सेलगकिण्हे सुण्णं, णिरयं च य भूगएगबिट्ठाणे।
णिरयं इगिबितिआऊ, तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥२९३॥

शैलगकृष्णे शून्यं, निरयं च च भूगैकद्विस्थाने।
निरयमेकद्वित्र्यायुस्त्रिस्थाने चत्वारि शेषपदे ॥२९३॥

टीका – शिला भेद समान उत्कृष्ट क्रोध का शक्तिस्थान विषें असंख्यात-लोक प्रमाण उदयस्थान कहे; तिनि विषें केई स्थान असैं हैं जिनिविषें कोऊ आयु बंधै नाहीं। सो यंत्र विषें तहां शून्य लिखना। जातें जहां अति तीव्र कषाय होइ, तहां आयु का बंध होइ नाहीं। बहुरि तहां ही ऊपरि के कई स्थान थोरे कषाय

लीएं हैं। तिनिविषें एक नरकायु ही बंधै है, सो इहां एक का अंक लिखना। बहुरि तातैं अनंतगुण घटता संक्लेश लीएं पृथ्वी भेद समान कषाय विषैं के जे कृष्णलेश्या के स्थान हैं वा कृष्ण वा नील दोय लेश्या के जे स्थान हैं; तिनिविषें एक नरक आयु ही बंधै है। सो तिनि दोय स्थाननि विषैं एक-एक का अंक लिखना। बहुरि तिस ही विषैं केइ अगले स्थान कृष्ण, नील, कपोत तीन लेश्या के हैं, सो तिनिविषैं केई स्थाननि विषैं तौ एक नरकायु ही का बंध हो है। बहुरि केई अगले स्थाननि विषैं नरक वा तिर्यंच दोय आयु बंधैं हैं। बहुरि केई अगले स्थाननि विषैं नरक, तिर्यंच मनुष्य तीन आयु बंधै हैं। सो तीन लेश्या के स्थान विषैं एक, दोय, तीन का अंक लिखना। बहुरि तिस ही पृथ्वी के भेद समान शक्तिस्थान विषैं केई कृष्ण नील, कपोत, पीत इनि च्यारि लेश्या के स्थान है। केइक कृष्णादि पद्म लेश्या पर्यंत पंच के स्थान है। केइक कृष्णादिक शुक्ल लेश्या पर्यंत षट्लेश्या के स्थान हैं। सो इन तीनू ही जायगा नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव संबंधी च्यार्यो ही आयु बंधै हैं, सो तीनों जायगा च्यारि-च्यारि का अंक लिखना।

धूलिगछक्कट्ठाणे, चउराऊतिगदुगं च उवरिल्लं।
पणचदुठाणे देवं, देवं सुण्णं च तिट्ठाणे ॥२९४॥

धूलिगषट्कस्थाने, चतुराय्ंषि त्रिकद्विकं चोपरितनम्।
पंचचतुर्थस्थाने देवं देवं शून्यं च तृतीयस्थाने ॥२९४॥

टीका – बहुरि पूर्वोक्त स्थान तैं अनंतानंतगुणा घाटि संक्लेश लीएं धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषैं केई कृष्णादि शुक्ललेश्या पर्यंत, षटलेश्या के स्थान हैं। तिनि विषैं केई स्थाननि विषैं तौ नरकादिक च्यार्यो आयु बंधे हैं। केई अगले स्थाननि विषैं नरकायु बिना तीन आयु ही बंधे हैं। केई अगले स्थाननि विषैं मनुष्य, देव दोय ही आयु बंधै हैं। सो तहां च्यारि, तीन, दोय के अंक लिखने। बहुरि तिस ही धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषैं केई कृष्ण लेश्या बिना पंच लेश्या के स्थान हैं। केई कृष्ण नील बिना च्यारि लेश्या के स्थान हैं। इनि दोऊ जायगा एक देवायु ही बंधै हैं। सो दोऊ जायगा एक-एक का अंक लिखना। बहुरि तिस ही धूलि रेखा समान-शक्तिस्थान विषैं केई पीतादि तीन शुभलेश्या संबंधी स्थान हैं। तिनिविषैं केई स्थाननि विषैं तौ एक देवायु ही बंधै हैं, तहां एक का अंक लिखना। बहुरि केई

अगले स्थान तीव्र विशुद्धता को लीएं हैं, तहां किसी ही आयु का बंध न हो है, सो तहां शून्य लिखना ।

सुण्णं दुगइगिठाणे, जलम्हि सुण्णं असंखभजिदकमा ।
चउ-चोदस-वीसपदा, असंखलोगा हु पत्तेयं ॥२९५॥

शून्यं द्विकैकस्थाने, जले शून्यमसंख्यभजितक्रमाः ।
चतुश्चतुर्दशविंशतिपदा असंख्यलोका हि प्रत्येकम् ॥२९५॥

टीका – बहुरि तिस ही धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषैं केई स्थान पद्म, शुक्ल दोय लेश्या संबंधी हैं । केई स्थान एक शुक्ल लेश्या संबंधी हैं । सो इनि दोऊ ही जायगा किसी ही आयु का बंध नाहीं; सो दोऊ जायगा शून्य लिखना । बहुरि तातैं अनंतगुणी घटती विशुद्धता लीएं जल रेखा समान शक्तिस्थान के सर्व स्थान केवल शुक्ल लेश्या संबंधी हैं । तिनि विषैं किसी ही आयु का बंध नाहीं हो है । सो तहां शून्य लिखना । जातैं अति तीव्र विशुद्धता आयु के बंध का कारण नाहीं हैं; ऐसैं कषायनि के शक्तिस्थान च्यारि कहे । अर लेश्या स्थान चौदह कहे । अर आयु के बंधने के वा न बंधने के स्थान बीस कहे । ते सर्व ही स्थान असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण जानने । परन्तु उत्कृष्ट स्थान तैं लगाइ जघन्य स्थान पर्यंत असंख्यात गुणे घाटि जानने । असंख्यात के भेद घने हैं । तातैं सामान्यपनैं सर्व ही असंख्यात लोक प्रमाण कहे । सोई कहिए है – सर्व कषायनि के उदयस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं । तिनिकौं यथा योग्य असंख्यात लोक का भाग दीजिए, तिनिविषैं एक भाग बिना अवशेष बहुभाग प्रमाण शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्ति संबंधी उदय स्थान हैं । ते भी असंख्यात लोक प्रमाण बहुरि जो वह एक भाग अवशेष रह्या, ताकौं असंख्यात लोक का भाग दीएं एक भाग बिना अवशेष बहुभाग प्रमाण पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्ट शक्ति संबंधी उदयस्थान हैं । ते भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं । बहुरि जो एक भाग अवशेष रह्या, ताकौं असंख्यात लोक का भाग दीएं, एक का भाग बिना अवशेष भाग प्रमाण धूलि रेखा समान अजघन्य शक्तिस्थान संबंधी उदयस्थान हैं । ते भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं । बहुरि अवशेष एक भाग रह्या, तीहि प्रमाण जल रेखा समान जघन्य शक्ति संबंधी उदय स्थान हैं; ते भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं ।

असैं च्यारि शक्तिस्थान विषैं उदयस्थान का प्रमाण कह्या । अब चौदह लेश्या स्थाननि विषैं उदयस्थाननि का प्रमाण कहिए है – पहिलैं कृष्ण लेश्या स्थाननि विषैं जेते शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्तिस्थान विषैं उदयस्थान हैं । ते-ते सर्व तिस उत्कृष्ट शक्ति कौं प्राप्त कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट स्थान तैं लगाइ यथा-योग्य कृष्ण लेश्या के मध्य स्थान पर्यंत षट्स्थानपतित संक्लेश-हानि लीएं, असंख्यात-लोकमात्रस्थान हैं; ते उत्कृष्ट शक्ति के स्थान समान जानने ।

बहुरि इनि तैं असंख्यात गुणे घाटि पृथ्वी भेद समान शक्तिस्थान विषैं प्राप्त कृष्ण लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं, जातैं ते स्थान पृथ्वी भेद समान शक्ति स्थान विषैं जेते उदय स्थान हैं, तिनिकौं यथा योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं एक भाग बिना बहुभाग मात्र हैं ।

बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्ण, नील दोय लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण तैं तिस अवशेष एक भाग कौं यथा योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र हैं । एक भाग बिना अवशेष भाग मात्र प्रमाण की बहुभाग संज्ञा जाननी ।

बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्ण, नील, कपोत तीन लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं; ते तिस अवशेष एक भाग कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग का दीएं, बहुभाग मात्र हैं ।

बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि च्यारि लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते अवशेष एक भाग कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीयें बहुभाग मात्र हैं ।

बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्णादि पंच लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते अवशेष एक भाग कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनितैं असंख्यात लोक गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि छह लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते तिस अवशेष एक भाग मात्र हैं । इहां पूर्व स्थान तैं बहुभागरूप असंख्यात लोकमात्र गुणकार घट्या; तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि धूलि रेखा समान शक्तिस्थान विषैं प्राप्त कृष्णादि छह लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण

हैं । ते धूलि रेखा समान शक्तिस्थान संबंधी सर्व स्थाननि के प्रमाण कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं, एकभाग बिना बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्ण रहित पंच लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते तिस अवशेष एक भाग कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील रहित च्यारि लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते तिस अवशेष एकभाग कौं योग्य असंख्यातलोक का भाग दीएं बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही तीन शुभ लेश्या के स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं । ते अवशेष एक भाग कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, पीत रहित दोय शुभ लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते तिस एक भाग को योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही केवल शुक्ल लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते तिस अवशेष एकभाग मात्र जानने । इहां बहुभाग रूप असंख्यात लोक मात्र गुणकार घट्या; तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि जल रेखा समान शक्ति विषैं प्राप्त सर्व शुक्ल लेश्या के स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं । ते जल रेखा शक्ति विषैं प्राप्त स्थाननि का प्रमाणमात्र है । इहां धूलि रेखा समान शक्ति के सर्व स्थाननि विषैं जे केवल शुक्ल लेश्या के स्थान कहे, तहां भागहार अधिक हैं । परन्तु गुणकारभूत असंख्यात लोक का तहां बहुभाग है । इहां एक भाग है । तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है । अब आयु के बंध-अबन्ध के बीस स्थान, तिनि विषैं उदय स्थाननि का प्रमाण कहिए है –

प्रथम शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्ति विषैं प्राप्त कृष्ण लेश्या के स्थान, तिनि विषैं कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट स्थान तैं लगाइ, असंख्यात लोक प्रमाण आयु के अबन्ध स्थान हैं । ते उत्कृष्ट शक्ति विषैं प्राप्त सर्व स्थाननि का प्रमाण कौं असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र हैं । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही नरकायु बन्धने कौं कारण असंख्यात लोक प्रमाण स्थान हैं । ते तिस अवशेष एक भाग मात्र हैं । पूर्वैं बहुभाग इहां एक भाग तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है । बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्ट शक्ति विषैं प्राप्त कृष्ण लेश्या के पूर्वोक्त सर्व स्थान, ते नरकायु बन्ध कौं कारण असंख्यात लोक

प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही कृष्णनील लेश्या के पूर्वोक्त सर्व स्थान ते नरकायु बन्ध कौं कारण असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि तीनि लेश्या के स्थाननि विषें नरकायु बन्ध कौं कारण स्थान, ते तिन कृष्णादि तीन लेश्या स्थाननि के प्रमाण कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं बहुभाग मात्र असंख्यात लोकप्रमाण हैं। बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि तीन लेश्या के स्थाननि विषैं नरक, तिर्यंच आयु के बन्ध कौं कारण स्थान, ते तिस अवशेष एक भाग कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां कृष्णादि तीन लेश्या के स्थाननि विषैं नरक, तिर्यंच, मनुष्य आयुबन्ध के कारण स्थान, ते अवशेष एक भाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण है। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि च्यारि लेश्या के स्थान, सर्व ही च्यार्यों आयुबन्ध के कारण, ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि पंच लेश्या के स्थान, सर्व ही च्यार्यों आयुबन्ध के कारण, ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि छहौ लेश्या के स्थान सर्व ही च्यार्यों आयुबन्ध के कारण, ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। पूर्व स्थान विषैं गुणकार बहुभाग था; इहां एक भाग रह्या, तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि, धूलि रेखा समान शक्ति विषैं प्राप्त षट्लेश्या स्थाननि विषैं च्यार्यों आयुबन्ध के कारण स्थान, ते तिन अजघन्य शक्ति विषैं प्राप्त षट्लेश्या स्थाननि के प्रमाण कौं असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही षट्लेश्या के स्थाननि विषैं नरक बिना तीन आयुबन्ध के कारण स्थान, ते तिस अवशेष एकभाग कौं असंख्यात का भाग दीएं, बहुभागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही षट्लेश्या के स्थान विषैं मनुष्य देवायु बन्ध के कारण स्थान, ते तिस अवशेष एकभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इहां पूर्वै बहुभाग थे, इहां एक भाग है। तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्ण बिना पंच लेश्या के स्थान सर्व ही देवायु के बन्ध के कारण हैं। ते असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त कृष्ण, नील रहित च्यारि लेश्या के

स्थान सर्व ही देवायु बन्ध कौं कारण हैं। ते असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही शुभ तीन लेश्या के स्थाननि विषैं देवायु बन्ध कौं कारण स्थान, ते तिस अजघन्य शक्ति विषैं प्राप्त त्रिलेश्या स्थाननि का प्रमाण कौं योग्य असंख्यात लोक का भाग दीएं, बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही शुभ तीन लेश्या के स्थाननि विषैं किसी ही आयु बन्ध कौं कारण नाहीं; ऐसैं स्थान तिस अवशेष एक भागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त पद्म शुक्ल दोय लेश्या के स्थान सर्व ही आयु बन्ध कौं कारण नाहीं। ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। यातैं पूर्व स्थान विषैं भागहार असंख्यात गुणा घटता है। तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, तहां ही पूर्वोक्त शुक्ल लेश्या के स्थान सर्व ही आयुबन्ध कौं कारण नाहीं। ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। पूर्वं बहुभाग का गुणकार था, इहां एक भाग का गुणकार भया। तातैं असंख्यात गुणा घटता कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि, पूर्वोक्त जल रेखा समान शक्ति विषैं प्राप्त शुक्ल लेश्या के स्थान, सर्व ही किसी ही आयु बन्ध कौं कारण नाहीं। ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। पूर्व स्थान विषैं जे भागहार कहे, तिनतैं तिस ही भागहार का गुणकार असंख्यात गुणा है; तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। ऐसैं च्यारि पद चौदह पद बीस पद क्रम तैं असंख्यात गुणा घाटि कहे, तथापि असंख्यात के बहुभेद हैं। तातैं सामान्यपनैं सबनि कौं असंख्यात लोक प्रमाण कहे। विशेषपनैं यथासंभव असंख्यात का प्रमाण जानना। ऐसैं ही भागहार विषैं भी यथासंभव असंख्यात का प्रमाण जानना।

आगैं श्री माधवचंद्र त्रैविद्यदेव, तीन गाथानि करि कषाय-मार्गणा विषैं जीवनि की संख्या कहै हैं —

पुह पुह कसायकालो, णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो।
लोहादी संखगुणो, देवेसु य कोहपहुदीदो ॥२९६॥

पृथक् पृथक् कषायकालः, निरये अंतर्मुहूर्तपरिमाणः।
लोभादिः संख्यगुणः देवेषु च क्रोधप्रभृतितः ॥२९६॥

कषायनि के शक्तिस्थान च्यारि, लेश्यास्थान चौदह, आयुबंधाबंधस्थान बीस, तिनिका यंत्र ।

शक्तिस्थान ४	शिलाभेद समान १		पृथ्वी भेद समान १								धूलिरेखासमान १									जलरेखा समान १
लेश्यास्थान १४	१ कृष्ण		१ कृष्ण	२ कृष्णादि	३ कृष्णादि			४ कृष्णादि	५ कृष्णादि	६ कृष्णादि	६ कृष्णादि			५ कृष्ण बिना	४ कृष्ण नील बिना	३ पीतादि		२ पद्म शुक्ल	१ शुक्ल	१ शुक्ल
आयुबंधाबंध स्थान २०	० अबंध	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	२ नरकतिर्यंचायु	३ नरकतिर्यंचमनुष्यायु	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व सर्व	३ मनुष्यदेवायुतिर्यंचायु	२ मनुष्यदेवायु	१ देवायु	१ देवायु	१ देवायु	० अबंध	० अबंध	० अबंध	० अबंध

टीका – नरक गति विषें नारकीनि कैं लोभादि कषायनि का उदय काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । तथापि पूर्व-पूर्व कषाय तैं पिछले-पिछले कषाय का काल संख्यात गुणा है । अंतर्मुहूर्त के भेद घने, तातैं हीनाधिक होतैं भी अंतर्मुहूर्त ही कहिए । सोई कहिए हैं – सर्व तैं स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण लोभ कषाय का काल है । यातैं संख्यात गुणा माया कषाय का काल है । यातैं संख्यात गुणा मान कषाय का काल है । यातैं संख्यात गुणा क्रोध कषाय का काल है ।

बहुरि देव गति विषैं क्रोधादि कषायनि का काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र है । तथापि उत्तरोत्तर संख्यात गुणा है । सोई कहिए है – स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण तौ क्रोध कषाय का काल है । तातैं संख्यात गुणा मान कषाय का काल है । तातैं संख्यात गुणा माया कषाय का काल है । तातैं संख्यात गुणा लोभ कषाय का काल है ।

भावार्थ – नरक गति विषैं क्रोध कषायरूप परिणति बहुतर हो है । और कषायनिरूप क्रम तैं स्तोक रहै है ।

देव गति विषैं लोभ कषायरूप परिणति बहुतर रहै हैं । और कषायनिरूप क्रम तैं स्तोक-स्तोक रहै है ।

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणो वि संगुणिदे ।
सगसगगुणगारेहिं य, सगसगरासीण परिमाणं ।।२९७।।

सर्वसमासेनावहितस्वकस्वकराशौ पुनरपि संगुणिते ।
स्वकस्वकगुणकारैश्च, स्वकस्वकराशीनां परिमाणम् ।।२९७।।

टीका – सर्व च्यार्यों कषायनि का जो काल कह्या, ताके जेते समय होंहि, तिनिका समास कहिए, जोड दीएं, जो परिमाण आवै, ताका भाग अपनी-अपनी गति संबंधी जीवनि के प्रमाण कौं दीएं, जो एक भाग विषैं प्रमाण होइ, ताहि अपना-अपना कषाय के काल का समयनि के प्रमाणरूप गुणकार करि गुणैं, जो-जो परिमाण होइ, सोई अपना-अपना क्रोधादिक कषाय संयुक्त जीवनि का परिमाण जानना । अपि शब्द समुच्चय वाचक है; तातैं नरक गति वा देव गति विषैं ऐसैं ही करना । सोई दिखाइए है –च्यार्यों कषायनि का काल के समयनि का जोड दीएं,

जो परिमाण होइ, तितने काल विषै जो नरक गति विषै जीवनि का जो परिमाण कह्या, तितने सर्व जीव पाइए, तौ लोभ कषाय के काल का समयनि का जो परिमाण होइ है, तितने काल विषै केते जीव पाइए ? असैं त्रैराशिक कीएं, प्रमाणराशि सर्वकषायनि का काल, फलराशि सर्व नारकराशि, इच्छाराशि लोभकषाय का काल तहां प्रमाणराशि का भाग फलराशि कौं देंइ, इच्छाराशि करि गुणैं जो लब्धराशि का परिमाण आवै, तितने जीव लोभकषाय वाले नरक गति विषै जानने । बहुरि असैं ही प्रमाणराशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छाराशि मायादि कषायनि का काल कीएं, लब्धराशि मात्र अनुक्रमतैं मायावाले, मानवाले, क्रोधवाले जीवनि का परिमाण नरक गति विषै जानना ।

इहां दृष्टांत – जैसें लोभ का काल का प्रमाण एक (१), माया का च्यारि (४), मान का सोलह (१६), क्रोध का चौसठि (६४) सब का जोड दीएं पिच्यासी भए । नारकी जीवनि का परिमाण सतरा सै (१७००), ताहि पिच्यासी का भाग दीएं, पाए बीस (२०), ताकौं एक करि गुणैं बीस (२०) हुवा, सो लोभ कषायवालों का परिमाण है । च्यारि करि गुणैं असी (८०) भए सो मायावालों का परिमाण है । सोला करि गुणैं तीन सौ बीस (३२०) हुवा सो, मानवालों का परिमाण है चौसठि करि गुणैं बार सै असी (१२८०) भए सो, क्रोधवालों का परिमाण है; असैं दृष्टांत करि यथोक्त नरक गति विषै जीव कहे । असैं ही देव गति विषै जेता जीवनि का परिमाण है, ताहि सर्व कषायनि के काल का जोड्या हुवा समयनि का परिमाण का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, ताहि अनुक्रमतैं क्रोध, मान, माया, लोभ का काल का परिमाण करि गुणैं, अनुक्रमतैं क्रोधवाले, मानवाले, मायावाले, लोभवाले जीवनि का परिमाण देव गति विषै जानना ।

णरतिरिय लोह-माया-कोहो माणो बिइंदियादिव्व ।
आवलिअसंखभज्जा, सगकालं वा समासेज्ज ॥२९८॥

नरतिरश्चोः लोभमायाक्रोधो मानो द्वींद्रियादिवत् ।
आवल्यसंख्यभाज्याः, स्वककालं वा समासाद्य ॥२९८॥

टीका – मनुष्य-तिर्यंच गति विषै लोभ, माया, क्रोध, मानवाले जीवनि की संख्या पूर्वैं इंद्रिय-मार्गणा का अधिकार विषैं जैसें बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री विषै

जीवनि की संख्या 'बहु भागे समभागो' इत्यादि गाथा करि कही थी । तैसें इहां भी संख्या का साधन करना । सोई कहिये है – मनुष्यगति विषें जो जीवनि का परिमाण है, तामैं कषाय रहित मनुष्यनि का प्रमाण घटाएं, जो अवशेष रहै, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, तहां एक भाग जुदा राखि, अवशेष बहुभाग का प्रमाण रह्या, ताके च्यारि भाग करि च्यार्यो कषायनि के स्थाननि विषें समान देने । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहे, तिनिकौं लोभ कषाय के स्थान समान भाग विषें जो प्रमाण था, तामैं जोडैं, जो परिमाण होइ, तितने लोभकषाय वाले मनुष्य जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहे, तिनिकौं माया कषाय के स्थान समान भाग विषें जो परिमाण था, तामैं मिलाएं, जो परिमाण होइ, तितने मायाकषाय वाले मनुष्य जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहै, तिनिकौं क्रोधकषाय के स्थान समान भाग विषें जो परिमाण था, तिस विषें मिलाएं, क्रोधकषाय वाले मनुष्यनि का परिमाण होइ । बहुरि तिस अवशेष एक भाग का जेता परिमाण होइ, ताकौं मानकषाय के स्थान समान भाग विषें जो परिमाण था, तामैं मिलाएं, मानकषाय वाले मनुष्यनि का परिमाण होइ, ऐसें ही तिर्यंच गति विषें जानना । विशेष इतना जो वहां मनुष्य गति के जीवनि का परिमाण विषें भाग दीया था । इहां तिर्यंच गति के जीवनि का जो देव, नारक, मनुष्यराशि करि हीन सर्व संसारी जीवराशि मात्र परिमाण, ताकौं भाग देना; अन्य सर्व विधान तैसें ही जानना । ऐसें कषायनि विषें तिर्यंच जीवनि का परिमाण जानिए । अथवा अपना-अपना कषायनि का काल की अपेक्षा जीवनि की संख्या जानिए; सो दिखाइए है । च्यार्यो कषायनि का काल के समयनि का जो अंतर्मुहूर्त मात्र परिमाण है, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए । तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष के च्यारि भाग करि, च्यारो जायगा समान दीजिए । बहुरि अवशेष एक भाग कौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहे, तिनिकौं समान भाग विषें जो परिमाण था, तामैं मिलाए, लोभकषाय के काल का परिमाण होइ । बहुरि तिस अवशेष एक भाग को तैसें भाग देइ, एक भाग बिना अवशेष बहुभाग समान भाग का प्रमाण विषें मिलाएं, माया का काल होइ । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौं तैसें भाग

देइ, एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग समान भाग संबंधी परिमाण विषैं मिलाएं क्रोध का काल होइ। बहुरि जो अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं समान भाग संबंधी परिमाण विषैं मिलाएं, मानकषाय का काल होइ।

अब इहां त्रैराशिक करना – जो च्यारि कषायनि के काल का परिमाण विषैं सर्व मनुष्य पाइए, तौ लोभ कषाय का काल विषैं केते मनुष्य पाइए ?

इहां प्रमाणराशि च्यारों कषायनि का समुच्चयरूप काल का परिमाण अर फलराशि मनुष्य गति के जीवनि का परिमाण अर इच्छाराशि लोभ कषाय के काल का परिमाण। तहां फलराशि कौं इच्छाराशि करि गुणिए, प्रमाण राशि का भाग दीएं, जो लब्धराशि का प्रमाण आवै, तितने लोभकषायवाले मनुष्य जानने। ऐसें ही प्रमाण फलराशि पूर्वोक्त कीएं, माया क्रोध मान काल कौं इच्छाराशि कीएं, लब्धराशि मात्र मायावाले वा क्रोधवाले वा मानवाले मनुष्यनि की संख्या जाननी। बहुरि याही प्रकार तिर्यंच गति विषैं भी लोभवाले, मायावाले, क्रोधवाले, मानवाले जीवनि की संख्या का साधन करना। विशेष इतना जो उहां फलराशि मनुष्यनि का परिमाण था, इहां फलराशि तिर्यंच जीवनि का परिमाण जानना। अन्य विधान तैसें ही करना। ऐसें कषायमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या है।

इति आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह
ग्रन्थ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका
नाम भाषाटीका विषैं जीवकांड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा
तिनि विषैं कषायमार्गणा प्ररूपणा नाम ग्यारमा
अधिकार सम्पूर्ण भया ॥११॥

बारहवां अधिकार : ज्ञानमार्गणाधिकार

मंगलाचरण

वंदौ वासव पूज्यपद, वास पूज्य जिन सोय ।
गर्भादिक में पूज्य जो, रत्न द्रव्य तैं होय ।।

आगैं श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ज्ञान मार्गणा का प्रारंभ करैं हैं । तहां प्रथम ही निरुक्ति लीएं, ज्ञान का सामान्य लक्षण कहैं हैं –

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे[1] ।
पच्चक्खं च परोक्खं, अणेण णाणे त्ति णं बेंति ।।२९९।।

जानाति त्रिकालविषयान्, द्रव्यगुणान् पर्यायांश्च बहुभेदान् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षमनेन ज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ।।२९९।।

टीका – त्रिकाल संबंधी हुए, हो है, होहिंगे असैं जीवादि द्रव्य वा ज्ञानादि गुण वा स्थावरादि पर्याय नाना प्रकार हैं । तहां जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ए द्रव्य हैं । बहुरि ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, सुख, वीर्य आदि वा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि वा गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व आदि गुण हैं । बहुरि स्थावर, त्रस आदि वा अणु, स्कंधपना आदि वा अन्य अर्थ, व्यंजन आदि भेद लीएं अनेक पर्याय हैं । तिनकौं प्रत्यक्ष वा परोक्ष जीव नामा पदार्थ, इस करि जानैं है, तातैं याकौं ज्ञान कहिए । 'ज्ञायते अनेनेति ज्ञानं' असी ज्ञान शब्द की निरुक्ति जाननी । इहां जाननरूप क्रिया का आत्मा कर्ता, तहां करणस्वरूप ज्ञान, अपने विषयभूत अर्थनि का जाननहारा जीव का गुण है – असैं अरहंतादिक कहैं हैं । असाधारण कारण का नाम करण है । बहुरि यहु सम्यग्ज्ञान है; सोई प्रत्यक्ष वा परोक्षरूप प्रमाण है । जो ज्ञान अपने विषय कौं स्पष्ट विशद जानैं, ताकौं प्रत्यक्ष कहिए । जो अपने विषय कौं अस्पष्ट - अविशद जानैं, ताकौं परोक्ष कहिए । सो इस प्रमाण का स्वरूप वा संख्या वा विषय वा फल वा लक्षण बहुरि ताके अन्यथा वाद

---

१ षट्खंडागम धवला पुस्तक १, गाथा सं. ९१, पृष्ठ १४५ ।
पाठभेद–तिकालविसए–तिकालसहित–णाणे णाणं ।

कौं निराकरण वा स्याद्वाद मत के प्रमाण का स्थापन विशेषपनें जैन के तर्कशास्त्र हैं, तिनि विषैं विचारना ।

इहां अहेतुवादरूप आगम विषैं हेतुवाद का अधिकार नाहीं । तातैं सविशेष नें कह्या । हेतु करि जहां अर्थ कौं दृढ कीजिए ताका नाम हेतुवाद है, सो न्यायशास्त्रनि विषैं हेतुवाद है । इहां तो जिनागम अनुसारि वस्तु का स्वरूप कहने का अधिकार जानना ।

आगें ज्ञान के भेद कहैं हैं -

पंचेव हुंति णाणा, मदि-सुद-ओही-मणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो, केवलणाणं हवे खइयं ॥३००॥

पंचैव भवंति ज्ञानानि, मतिश्रुतावधिमनश्च केवलम् ।
क्षायोपशमिकानि चत्वारि, केवलज्ञानं भवेत् क्षायिकम् ॥३००॥

टीका - मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, केवल ए सम्यग्ज्ञान पंच ही हैं; हीन अधिक नाहीं । यद्यपि संग्रहनयरूप द्रव्यार्थिक नय करि सामान्यपनें ज्ञान एक ही है । तथापि पर्यायार्थिक नय करि विशेष कीएं पंच भेद ही हैं । तिनि विषैं मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय ए च्यारि ज्ञान क्षायोपशमिक हैं ।

जातैं मतिज्ञानावरणादिक कर्म वा वीर्यान्तराय कर्म, ताके अनुभाग के जे सर्वघातिया स्पर्धक हैं; तिनिका उदय नाहीं, सोई क्षय जानना । बहुरि जे उदय अवस्था कौं न प्राप्त भए, ते सत्तारूप तिष्ठैं हैं, सोई उपशम जानना । उपशम वा क्षय करि उपजै, ताकौं क्षयोपशम कहिए अथवा क्षयोपशम है प्रयोजन जिनिका, ते क्षायोपशमिक कहिए । यद्यपि क्षायोपशमिक विषैं तिस आवरण के देशघातिया स्पर्धकनि का उदय पाइए है । तथापि वह तिस ज्ञान का घात करने कौं समर्थ नाहीं है; तातैं ताकी मुख्यता न करी ।

याका उदाहरण कहिए है - अवधिज्ञानावरण कर्म सामान्यपनें देशघाती है । तथापि अनुभाग का विशेष कीएं, याके केई स्पर्धक सर्वघाती हैं; केई स्पर्धक देशघाती हैं । तहां जिनिकैं अवधिज्ञान किछू भी नाहीं, तिनिकैं सर्वघाती स्पर्धकनि का उदय जानना । बहुरि जिनिकै अवधिज्ञान पाइए है अर आवरण उदय पाइए है; तहां

देशघाती स्पर्धकनि का उदय जानना। बहुरि केवलज्ञान क्षायिक ही है, जातैं केवलज्ञानावरण, वीर्यांतराय का सर्वथा नाश करि केवलज्ञान प्रकट हो है। क्षय होतैं उपज्या वा क्षय है प्रयोजन जाका, ताकौं क्षायिक कहिए। यद्यपि सावरण अवस्था विषैं आत्मा कैं शक्तिरूप केवलज्ञान है, तथापि व्यक्तरूप आवरण के नाश करि ही है, तातैं व्यक्तता की अपेक्षा केवलज्ञान क्षायिक कह्या; जातैं व्यक्त भएं ही कार्य सिद्धि संभवै है।

आगैं मिथ्याज्ञान उपजने का कारण वा स्वरूप वा स्वामित्व वा भेद कहैं हैं–

अण्णाणतियं होदि हु, सण्णाणतियं खु मिच्छ अणउदये।
णवरि विभागं णाणं, पंचिंदियसण्णिपुण्णेव ॥३०१॥

अज्ञानत्रिकं भवति खलु, सज्ज्ञानत्रिकं खलु मिथ्यात्वानोदये।
नवरि विभंगं ज्ञानं, पंचेंद्रियसंज्ञिपूर्णे एव ॥३०१॥

टीका – जे सम्यग्दृष्टी कैं मति, श्रुति, अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान हैं; संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त वा निर्वृत्ति अपर्याप्त जीव कैं विशेष ग्रहणरूप ज्ञेयाकार सहित उपयोग रूप है लक्षण जिनिका असैं हैं; तेई तीनों मिथ्यात्व वा अनंतानुबंधी कोई कषाय के उदय होतैं तत्त्वार्थ का अश्रद्धान रूप परिणया जीव कैं तीनों मिथ्याज्ञान हो हैं। कुमति, कुश्रुति, विभंग ए नाम हो हैं। **णवरि** असा प्राकृत भाषा विषैं विशेष अर्थ कौं लीएं अव्यय जानना। सो विशेष यहु – जो अवधि ज्ञान का विपर्ययरूप होना सोई विभंग कहिए। सो विभंग अज्ञान सैनी पंचेंद्री पर्याप्त ही कैं हो है। याही तैं कुमति, कुश्रुति, एकेंद्रिय आदि पर्याप्त अपर्याप्त सर्व मिथ्यादृष्टी जीवनि कैं अर सासादन गुणस्थानवर्ती सर्व जीवनि कैं संभवै है।

आगैं सम्यग्दृष्टि नामा तीसरा गुणस्थान विषैं ज्ञान का स्वरूप कहैं हैं –

मिस्सुदये सम्मिस्सं, अण्णाणतियेण णाणतियमेव।
संजमविसेससहिए, मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥३०२॥

मिश्रोदये संमिश्रं, अज्ञानत्रयेण ज्ञानत्रयमेव।
संयमविशेषसहिते, मनःपर्ययज्ञानमुद्दिष्टम् ॥३०२॥

टीका – मिश्र कहिए सम्यग्मिथ्यात्व नामा मोहनीय कर्म की प्रकृति, ताके उदय होतैं, तीनों अज्ञान करि मिल्या तीनों सम्यग्ज्ञान इहां हो हैं; जातें जुदा कीया जाता नाहीं, तातैं सम्यग्मिथ्यामति, सम्यग्मिथ्याश्रुत, सम्यग्मिथ्या अवधि अैसैं इहां नाम हो हैं। जैसें इहां एक काल विषैं सम्यग्रूप वा मिथ्यारूप मिल्या हुवा श्रद्धान पाइए है। तैसैं ही ज्ञानरूप वा अज्ञानरूप मिल्या हुवा ज्ञान पाइए है। इहां न तौ केवल सम्यग्ज्ञान ही है, न केवल मिथ्याज्ञान है, मिथ्याज्ञान करि मिल्या सम्यग्ज्ञान-रूप मिश्र जानने।

बहुरि मनःपर्यय ज्ञान विशेष संयम का धारक छठा गुणस्थान तैं बारहवां गुणस्थान पर्यंत सात गुणस्थानवर्ती तप विशेष करि वृद्धिरूप विशुद्धताके धारी महामुनि, तिन ही कैं पाइए है; जातैं अन्य देशसंयतादि विषैं तैसा तप का विशेष न संभवै है।

आगैं मिथ्याज्ञान का विशेष लक्षण तीन गाथानि करि कहैं हैं –

विस-जंत-कूड-पंजर-बंधादिसु विणुवएस-करणेण।
जा खलु पवट्टए मइ, मइ-अण्णाणं त्ति णं बेंति ॥२०३॥[1]

विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु विनोपदेशकरणेन।
या खलु प्रवर्तते मतिः, मत्यज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥२०३॥

टीका – परस्पर वस्तु का संयोग करि मारने की शक्ति जिस विषैं होइ अैसा तैल, कर्पूरादिक वस्तु, सो विष कहिए।

बहुरि सिंह, व्याघ्रादि क्रूर जीवनि के धारन के अर्थि जाकैं अभ्यंतर छैला आदि रखिए। अर जिस विषैं तिस क्रूर जीव कौं पाव धरते ही किवाड़ जुड़ि जाय, अैसा सूत्र की कल करि संयुक्त होइ, काष्ठादिक करि रच्या हुवा हो है, सो यन्त्र कहिए।

बहुरि माछला, काछिवा, मूसा, कोल इत्यादिक जीवनि कै पकड़ने के निमित्त काष्ठादिकमय बनै, सो कूट कहिए।

बहुरि तीतर, लवा, हिरण इत्यादि जीवनि के पकड़ने के निमित्त फंद कौं लीएं जो डोरि का जाल बनै, सो पींजर कहिए।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १७६, पृष्ठ ३६० ।

बहुरि हाथी, ऊंट आदि के पकड़ने निमित्त खाड़ा के ऊपरि गांठि का विशेष लीएं जेवरा की रचनारूप विशेष, सो बंध कहिए ।

आदि शब्द करि गंडोलनि का पांख लगने निमित्त ऊंचे दंड के ऊपरि चिगटास लगावनर, सो बंध वा हरिणादिक का सींग कैं अग्रभाग सूत्र की गांठि देना इत्यादि विशेष जानने । असें जीवनि के मारणे, बांधने के कारणरूप कार्यनि विषैं अन्य के उपदेश विना ही स्वयमेव बुद्धि प्रवर्तै; सो कुमति ज्ञान कहिए ।

उपदेश तें प्रवर्तै तो कुश्रुत ज्ञान हो जाइ । तातें विना ही उपदेश असा विचाररूप विकल्प लीएं हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह का कारण आर्तरौद्र ध्यान कौं कारण शल्य, दंड, गारव आदि अशुभोपयोगों का कारण जो मन, इंद्रिय करि विशेष ग्रहणरूप मिथ्याज्ञान प्रवर्तै; सो मति अज्ञान सर्वज्ञदेव कहैं हैं ।

आभीयमासुरक्खं, भारह-रामायणादि-उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया, सुय-अण्णाणं त्ति णं बेंति ।।३०४।।[1]

आभीतमासुरक्षं भारतरामायणाद्युपदेशाः ।
तुच्छा असाधनीयाः श्रुताज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ।।३०४।।

टीका – आभीताः कहिए (समंतपनै) भयवान, जे चौरादिक, तिनिका शास्त्र सो आभीत हैं । बहुरि असु जे प्राण, तिनिकी चौरादिक तें रक्षा जिनि तें होइ, असे कोटपाल, राजादिक, तिनिका जो शास्त्र सो असुरक्ष है । बहुरि कौरव पांडवों का युद्धादिक वा एक भार्या के पंच भर्ता इत्यादिक विपरीत कथन जिस विषैं पाइए, असा शास्त्र सो भारत है । बहुरि रामचंद्र कैं बानरों की सेना, रावण राक्षस है, तिनिका परस्पर युद्ध होना इत्यादिक अपनी इच्छा करि रच्या हुवा शास्त्र, सो रामायण है । आदि शब्द तें जो एकांतवाद करि दूषित अपनी इच्छा के अनुसारि रच्या हुवा शास्त्र, जिनिविषैं हिंसारूप यज्ञादिक गृहस्थ का कर्म है; जटा धारण, त्रिदंड धारणादिरूप तपस्वी का कर्म है, सोलह पदार्थ हैं; वा छह पदार्थ हैं; वा भावन, विधि, नियोग, भूत ए च्यारि हैं; वा पचीस तत्त्व हैं; वा अद्वैत ब्रह्म का स्वरूप है वा सर्व शून्य है इत्यादि वर्णन पाइए है; ते शास्त्र 'तुच्छाः' कहिए परमार्थ

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८०, पृष्ठ ३६० ।

तैं रहित हैं। बहुरि 'असाधनीया:' कहिए प्रमाण करने योग्य नाहीं। याही तैं संत पुरुषनि कौं आदरने योग्य नाहीं। असैं शास्त्राभ्यासनि तैं भया जो श्रुतज्ञान की सी आभासा लीएं कुज्ञान, सो श्रुत अज्ञान कहिए। जातैं प्रमाणीक इष्ट अर्थ तैं विपरीत अर्थ याका विषय हो है। इहां मति, श्रुत अज्ञान का वर्णन उपदेश लीएं किया है।

अर सामान्यपनैं तौ स्व-पर भेदविज्ञान रहित इंद्रिय, मन जनित जानना, सो सर्व कुमति, कुश्रुत है।

विवरीयमोहिणाणं, खओवसमियं च कम्मबीजं च।
वेभंगो त्ति पउच्चइ, समत्तणाणीण समयम्हि ॥३०५॥[१]

विपरीतमवधिज्ञानं, क्षायोपशमिकं च कर्मबीजं च।
विभंग इति प्रोच्यते, समाप्तज्ञानिनां समये ॥३०५॥

टीका – मिथ्यादृष्टी जीवनि कै अवधिज्ञानावरण, वीर्यांतराय के क्षयोपशम तैं उत्पन्न भया; असा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लीएं रूपी पदार्थ है विषय जाका, असा आप्त, आगम, पदार्थनि विषैं विपरीत का ग्राहक, सो विभंग नाम पावै है। वि कहिए विशिष्ट जो अवधिज्ञान, ताका भंग कहिए विपरीत भाव, सो विभंग कहिए; सो तिर्यंच-मनुष्य गति विषैं तौ तीव्र कायक्लेशरूप द्रव्य संयमादिक करि उपजै है; सो गुणप्रत्यय हो है।

बहुरि देवनरक गति विषैं भवप्रत्यय हो है। सो सब ही विभंगज्ञान मिथ्यात्वादि कर्मबंध का बीज कहिए कारण है। चकार तैं कदाचित् नारकादिक गति विषैं पूर्वभव सम्बन्धी दुराचार के दुःख फल कौं जानि, कहीं सम्यग्दर्शनज्ञानरूप धर्म का भी बीज हो है; असा विभंगज्ञान, समाप्तज्ञानी - जो संपूर्ण ज्ञानी केवली, तिनिके मत विषैं कह्या है।

आगैं स्वरूप वा उपजने का कारण वा भेद वा विषय, इनिका आश्रय करि मतिज्ञान का निरूपण नव गाथानि करि कहैं हैं –

अहिमुह-णियमिय-बोहणमाभिणिबोहियमणिंदि-इंदियजं।
[३] **अवगहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं ॥३०६॥**[२]

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८१, पृष्ठ ३६१।

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८२, पृष्ठ ३६१।

३. पाठभेद – बहु ओग्गहाईणा खलुकय-छत्तीस-ति-सय-भेयं।

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं ।
अवग्रहेहावायधारणका भवंति प्रत्येकं ॥३०६॥

टीका – स्थूल, वर्तमान जिस क्षेत्र विषैं इंद्रिय-मन की प्रवृत्ति होइ, तहां तिष्ठता असा जो इंद्रिय - मन के ग्रहण योग्य पदार्थ, सो अभिमुख कहिए । बहुरि इस इंद्रिय का यहु ही विषय है, असा नियमरूप जो पदार्थ, सो नियमित कहिए, असें पदार्थ का जो जानना, सो अभिनिबोध कहिए । **अभि** कहिए अभिमुख अर **'नि'** कहिए नियमित जो अर्थ, ताका **निबोध** कहिए जानना, असा अभिनिबोध, सोई आभिनिबोधिक है । इहां स्वार्थ विषैं ठण् प्रत्यय आया है । सो यहु आभिनिबोधिक मतिज्ञान का नाम जानना । इंद्रियनि कैं स्थूल रूप स्पर्शादिक अपने विषय के ज्ञान उपजावने की शक्ति है । बहुरि सूक्ष्म, अंतरित, दूर पदार्थ के ज्ञान उपजावने की शक्ति नाहीं है । तहां सूक्ष्म पदार्थ तौ परमाणु आदिक, अंतरित पदार्थ अतीत अनागत काल संबंधी, दूर पदार्थ मेरु गिरि, स्वर्ग, नरक, पटल आदि दूर क्षेत्रवर्ती जानने । असैं मतिज्ञान का स्वरूप कह्या है ।

सो मतिज्ञान कैसा है ?

अनिंद्रिय जो मन, अर इंद्रिय स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इनि करि उपजै है । मतिज्ञान उपजने के कारण इंद्रिय अरु मन हैं । कारण के भेद तें कार्य विषैं भी भेद कहिए, तातैं मतिज्ञान छह प्रकार है । तहां एक-एक के च्यारि-च्यारि भेद हैं – अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा । सो मन तैं वा स्पर्शन तैं वा रसना तैं वा घ्राण तैं वा चक्षु तैं वा श्रोत्र तैं ए अवग्रहादि च्यारि-च्यारि उत्पन्न होइ, तातैं चौबीस भेद भए ।

अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा का लक्षण शास्त्रकर्ता आगैं स्वयमेव कहैंगे ।

वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे ।
कमसो ते वावरिदा, पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

व्यंजनार्थावग्रहभेदौ, हि भवतः प्राप्ताप्राप्तार्थे ।
क्रमशस्तौ व्यापृतौ, प्रथमो नहि चक्षुर्मनसोः ॥३०७॥

टीका – मतिज्ञान का विषय दोय प्रकार एक व्यंजन, एक अर्थ । तहां जो विषय इंद्रियनि करि प्राप्त होइ, स्पर्शित होइ, सो व्यंजन कहिए । जो प्राप्त न होइ, सो अर्थ कहिए । तिनिका विशेष ग्रहणरूप व्यंजनावग्रह अर अर्थावग्रह भेद प्रवर्तें हैं ।

इहां प्रश्न – जो तत्त्वार्थ सूत्र की टीका विषें तौ अर्थ असा कीया है – जो व्यंजन नाम अव्यक्त शब्दादिक का है, इहां प्राप्त अर्थ कौं व्यंजन कह्या सो कैसें है ?

ताका समाधान – व्यंजन शब्द के दोऊ अर्थ हो हैं । **विगतं अंजनं व्यंजनं'** दूरि भया है अंजन कहिए व्यक्त भाव जाकैं, सो व्यंजन कहिए । सो तत्त्वार्थ सूत्र की टीका विषें तौ इस अर्थ का मुख्य ग्रहण कीया है । अर **'व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं'** जो प्राप्त होइ ताकौं व्यंजन कहिए । सो इहां यहु अर्थ मुख्य ग्रहण कीया है । जातैं अंजु धातु गति, व्यक्ति, म्रक्षण अर्थ विषें प्रवर्तें है । तातैं व्यक्ति अर्थ का अर म्रक्षण अर्थ का ग्रहण करने तैं कर्णादिक इंद्रियनि करि शब्दादिक अर्थ प्राप्त हूवे भी यावत् व्यक्त न होइ, तावत् व्यंजनावग्रह है, व्यक्त भएं अर्थावग्रह हो है । जैसें नवा माटी का शरावा, जल की बूंदनि करि सींचिए, तहां एक दोय बार आदि जल की बूंद परैं व्यक्त न होइ; शोषित होइ जाय; बहुत बार जल की बूंद परैं, व्यक्त होइ, तैसें कर्णादिक करि प्राप्त हुवा जो शब्दादिक, तिनिका यावत् व्यक्तरूप ज्ञान न होइ, जो मैंने शब्द सुन्या, असा व्यक्त ज्ञान न होइ, तावत् व्यंजनावग्रह कहिए । बहुरि बहुत समय पर्यंत इंद्रिय अर विषय का संयोग रहैं; व्यक्तरूप ज्ञान भएं अर्थावग्रह कहिए । बहुरि नेत्र इंद्रिय अर मन, ए दूरही तें पदार्थ कौं जानें हैं; तातें इनि दोऊनि कैं व्यंजनावग्रह नाहीं; अर्थावग्रह ही है ।

इहां प्रश्न – जैसें कर्णादिक करि दूरि तें शब्दादिक जानिए है, तैसें ही नेत्र करि वर्ण जानिए है, वाकौं प्राप्त कह्या, अर याकौं अप्राप्त कह्या सो कैसें है ?

ताका समाधान – दूरि जो शब्द हो है, ताकौं यहु नाहीं जानै है । जो दूरि भया शब्द, ताके निमित्त तैं आकाश विषैं जे अनेक स्कंध तिष्ठै हैं । ते शब्दरूप परिणए हैं । तहां कर्ण इंद्रिय के समीपवर्ती भी स्कंध शब्दरूप परिणए हैं, सो तिनिका कर्ण इंद्रिय करि स्पर्श भया है; तब शब्द का ज्ञान हो है । असें ही दूरि तिष्ठता सुगंध, दुर्गंध वस्तु के निमित्त तैं पुद्गल स्कंध तत्काल तद्रूप परिणवै हैं । तहां जो नासिका इंद्रिय के समीपवर्ती स्कंध परिणए हैं; तिनिके स्पर्श तैं गंध का ज्ञान हो है । असें ही अग्न्यादिक के निमित्त तैं पुद्गल स्कंध उष्णादिरूप परिणवै हैं; तहां जो

स्पर्शन इंद्रिय के समीपवर्ती स्कंध परिणए हैं; तिनिके स्पर्श तैं स्पर्श ज्ञान हो है। असें ही आम्लादि वस्तु के निमित्त तें स्कंध तद्रूप परिणवे हैं, तहां रसना इंद्रिय के समीपवर्ती जो स्कंध परिणए, तिनिके संयोग तें रस का ज्ञान हो है। बहुरि यहु श्रुत ज्ञान के बल करि, जाके निमित्त तैं शब्द आदि भए ताकौं जानि, असा मानें है कि मैं दूरवर्ती वस्तु को जान्या, असें दूरवर्ती वस्तु के जानने विषें भी प्राप्त होना सिद्ध भया। अर समीपवर्ती कौं तो प्राप्त होकर जानें ही है। इहां शब्दादिक परमाणु अर कर्णादिक इंद्रिय परस्पर प्राप्त होइ, अर यावत् जीव कें व्यक्त ज्ञान न होइ तावत् व्यंजनावग्रह है, व्यक्तज्ञान भए अर्थावग्रह हो है। बहुरि मन अर नेत्र दूर ही तैं जानें हैं, असा नाहीं; जो शब्दादिक की ज्यों जानें है, तातें पदार्थ तौ दूरि तिष्ठै है ही, जब इन नें ग्रहे, तब व्यक्त ही ग्रहै; तातें व्यंजनावग्रह इनि दोऊनि कें नाहीं; अर्थावग्रह ही है। उक्तं च–

पुट्ठं सुणेदि सद्दं, अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं।
गंधं रसं च फासं, बद्धं पुट्ठं वियाणादि ॥१॥

बहुरि नैयायिकमतवाले असा कहैं हैं – मन अर नेत्र भी प्राप्त होइ करि ही वस्तु कौं जानें हैं। ताका निराकरण जैनन्याय के शास्त्रनि विषें अनेक प्रकार कीया है। बहुरि व्यंजन जो अव्यक्त शब्दादिक, तिनि विषें स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र इंद्रियनि करि केवल अवग्रह ही हो है; ईहादिक न हो हैं। जातें ईहादिक तौ एक-देश वा सर्वदेश व्यक्त भए ही हो हैं। व्यंजन नाम अव्यक्त का है; तातें च्यारि इंद्रियनि करि व्यंजनावग्रह के च्यारि भेद हैं।

विसयाणं विसईणं, संजोगाणंतरं हवे णियमा।
अवगहणाणं गहिदे, विसेसकंखा हवे ईहा ॥३०८॥

विषयाणां विषयिणां, संयोगानंतरं भवेन्नियमात्।
अवग्रहज्ञानं गृहीते, विशेषाकांक्षा भवेदीहा ॥३०८॥

टीका – विषय जो शब्दादिक पदार्थ अर विषयी जे कर्णादिक इंद्रियां, इनिका जो संयोग कहिये योग्य क्षेत्र विषें तिष्ठनेरूप संबंध, ताकौं होतें संतें ताके अनंतर ही वस्तु का सत्तामात्र निर्विकल्प ग्रहण जो यहु है, इतना प्रकाशरूप, सो दर्शन नियम-

कारि हो है। ताके अनन्तर पीछें हो देख्या जो पदार्थ ताके वर्ण संस्थानादि विशेष ग्रहणरूप अवग्रह नामा ज्ञान हो है।

इहां प्रश्न – जो गाथा विषें तौ पहिलें दर्शन न कह्या, तुम कैसें कहो हो ?

ताका समाधान – जो अन्य ग्रंथनि में कह्या है–'**अक्षार्थयोगे सत्तालोकोर्थाकारविकल्पधीरवग्रहः**' इंद्रिय अर विषय के संयोग होतें प्रथम सत्तावलोकन मात्र दर्शन हो है, पीछें पदार्थ का आकार विशेष जाननेरूप अवग्रह हो है – ऐसा अकलंकाचार्य करि कह्या है। बहुरि '**दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं हवेदि णियमेण**' छद्मस्थ जीवनि के नियम तें दर्शन पूर्वक ही ज्ञान हो है ऐसा नेमिचंद्राचार्यने द्रव्य - संग्रह नामा ग्रंथ में कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थ सूत्र की टीकावाले नें ऐसा ही कह्या है; तातें इहां ज्ञानाधिकार विषें दर्शन का कथन न कीया तौ भी अन्य ग्रंथनि तें ऐसें ही जानना। सो अवग्रह करि तौ इतना ग्रहण भया।

जो यहु श्वेत वस्तु है, बहुरि श्वेत तौ बुगलनि की पंक्ति भी हो है, ध्वजा रूप भी हो है; परि बुगलेनि की पंकतिरूप विषय कौं अवलंबि यहु बुगलेनि की पंकति ही होसी वा ध्वजारूप विषय कौं अवलंबि यहु ध्वजा होसी ऐसा विशेष वांछारूप जो ज्ञान, ताकौं ईहा कहिए। बहुरि बुगलनि की यहु पंकति ही होसी कि ध्वजा होसी ऐसा संशयरूप ज्ञान का नाम ईहा नाहीं है। वा बुगलनि पंकति विषें यहु ध्वजा होसी ऐसा विपर्यय ज्ञान का नाम ईहा नाहीं है; जातें इहां सम्यग्ज्ञान का अधिकार है। सम्यग्ज्ञान प्रमाण है। अर संशय, विपर्यय है, सो मिथ्याज्ञान है। तातें संशय विपर्यय का नाम ईहा नाहीं। जो वस्तु है, ताका यथार्थरूप ऐसा ज्ञान करना कि यहु अमुक ही वस्तु होसी; ऐसें होसीरूप जो प्रतीति, ताका नाम ईहा है। अवग्रह तें ईहा विषें विशेष ग्रहण भया; तातें याके वाके विषें मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम का तारतम्य करि भेद जानना।

ईहणकरणेण जदा, सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।
कालांतरे वि णिण्णिद-वत्थु-समरणस्स कारणं तुरियं ॥३०९॥

ईहनकरणेन यदा, सुनिर्णयो भवति स अवायस्तु।
कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणस्य कारणं तुर्यम् ॥३०९॥

टीका – ईहा के करने करि ताके पीछैं जिस वस्तु की ईहा भई थी, ताका भले प्रकार निर्णय रूप जो ज्ञान, ताकौं अवाय कहिए ।

जैसैं पांखनि का हलावना आदि चिह्न करि यहु निश्चय कीया जो बुगलनि की पंकति ही है, निश्चयकरि और किछू नाहीं; असा निर्णय का नाम अवाय है । तु शब्द करि पूर्वैं जो ईहा विषैं वांछित वस्तु था, ताही का भले प्रकार निर्णय, सो अवाय है । बहुरि जो वस्तु किछू और है; अर और ही वस्तु का निश्चय करि लीया है, तो वाका नाम अवाय नाहीं, वह मिथ्याज्ञान है ।

बहुरि तहां पीछैं बार-बार निश्चयरूप अभ्यास तैं उपज्या जो संस्कार, तीहि स्वरूप होइ, केते इक काल कौं व्यतीत भएं भी यादि आवने कौं कारणभूत जो ज्ञान सो धारणा नाम चौथा ज्ञान का भेद ही है । असैं ही सर्व इंद्रिय वा मन संबंधी अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा भेद जानने ।

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।
तत्थेक्केक्के जादे, छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥३१०॥

बहु बहुविधं च क्षिप्रानिःसृतनुक्तं ध्रुवं च इतरच्च ।
तत्रैकैकस्मिन् जाते, षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदं तु ॥३१०॥

टीका – अर्थरूप वा व्यंजनरूप जो मतिज्ञान का विषय, ताके बारह भेद हैं – बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव, ए छह । बहुरि इतर जे छहौं इनके प्रतिपक्षी एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त, अध्रुव ए छह; असैं बारह भेद जानने । सो व्यंजनावग्रह के च्यारि इंद्रियनि करि च्यारि भेद भए, अर अर्थ के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा तैं पंच इंद्रिय छठा मन करि चौबीस भेद भएं । मिलाएं ते अठाईस भेद भएं । सो व्यंजन रूप बहु विषय का च्यारि इंद्रियनि करि अवग्रह हो है । सो च्यारि भेद तौ ए भएं । अर अर्थ रूप बहु विषय का पंच इंद्रिय, छठा मन करि पूर्ण अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा हो हैं । तातैं चौबीस भएं । असैं एक, बहु विषय संबंधी अठाईस भेद भएं । असैं ही बहुविध आदि भेदनि विषैं अठाईस-अठाईस भेद हो हैं । सब कौं मिलाएं बारह विषयनि विषैं मतिज्ञान के तीन सै छत्तीस (३३६) भेद हो हैं । जो एक विषय विषैं अठाईस मतिज्ञान के भेद होइ तौ बारह विषयनि

विषें केते होंहि; असें त्रैराशिक कीएं, लब्धराशि मात्र तीन सै छत्तीस मतिज्ञान के भेद हो हैं ।

बहुवत्तिजादिगहणे, बहुबहुविहमियरमियरगहणम्हि ।
सगणामादो सिद्धा, खिप्पादी सेदरा य तहा ॥३११॥

बहुव्यक्तिजातिग्रहणे, बहुबहुविधमितरदितरग्रहणे ।
स्वकनामतः सिद्धाः, क्षिप्रादयः सेतराश्च तथा ॥३११॥

टीका – जहां बहुत व्यक्ति का ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ, ताके विषय कौं बहु कहिए । बहुरि जहां बहुजाति का ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ, ताके विषय कौं बहुविध कहिए । बहुरि असें ही इतर का ग्रहण विषें जहां एक व्यक्ति का ग्रहण रूप मति-ज्ञान होइ, ताके विषय कौं एक कहिए । बहुरि जहां एक जाति का ग्रहणरूप मति-ज्ञान होइ, ताके विषय कौं एकविध कहिए ।

इहां उदाहरण दिखाइए हैं – जैसें खांडी गऊ, सांवली गऊ, मूंडी गऊ इत्यादिक अनेक गऊनि की व्यक्ति कौं बहु कहिए । बहुरि गऊ, भैंस, घोडे इत्यादि अनेक जाति कौं बहुविध कहिए । बहुरि एक खांडी गऊ असी गऊ की एक व्यक्ति कौं एक कहिए । बहुरि खांडी, मूंडी, सांवली गऊ है; असी एक जाति कौं एकविध कहिए । एक जाति विषें अनेक व्यक्ति पाइए हैं । असें बारह भेदनि विषें च्यारि तौ कहे ।

बहुरि अवशेष क्षिप्रादिक च्यारि अर इनिके प्रतिपक्षी च्यारि, ते अपने नाम ही तैं प्रसिद्ध हैं । सोही कहिए है – क्षिप्र शीघ्र कौं कहिए । जैसें शीघ्र पडती जल-धारा वा जलप्रवाह । बहुरि अनिसृत, गूढ कौं कहिए; जैसें जल विषें मगन हूवा हाथी । बहुरि अनुक्त, बिना कहे कौं कहिए, जैसें बिना ही कहे किछू अभिप्राय ही तैं जानने में आवै । बहुरि ध्रुव अचल कौं वा बहुत काल स्थायी कौं कहिए; जैसें पर्वतादिक । बहुरि अक्षिप्र, ढीले कौं कहिए । जैसें मंद चालता घोटकादिक । बहुरि निसृत, प्रगट कौं कहिए; जैसें जल तैं निकस्या हूवा हाथी । बहुरि उक्त, कहे कौं कहिए, जैसें काहूनें कह्या यहु घट है । बहुरि अध्रुव, चंचल वा विनाशीक कौं कहिए; जैसें क्षणस्थायी बिजुरी आदि । असें बारह प्रकार मतिज्ञान के विषय हैं ।

भावार्थ – जाकौं जानिए यहु शीघ्र प्रवर्तै है; सो क्षिप्र कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यह गूढ है, सो अनिसृत कहिए । बहुरि जाकौं बिना कहैं जानिए; सो अनुक्त कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यहु ध्रुव है; सो ध्रुव कहिए इत्यादिक मतिज्ञान के विषय हैं । इनिकौं मतिज्ञान करि जानिए है ।

वत्थुस्स पदेसादो, वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा ।
सयलं वा अवलंबिय, अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ॥३१२॥

वस्तुनः प्रदेशात्, वस्तुग्रहणं तु वस्तुदेशं वा ।
सकलं वा अवलंब्य, अनिसृतमन्यवस्तुगतिः ॥३१२॥

टीका – किसी वस्तु का प्रदेश कहिए, एकोदेश अंश प्रगट है । तातें जो वह एकोदेश अंश जिस वस्तु बिना न होइ, असें अप्रगट वस्तु का ग्रहण कीजिए; सो अनिसृतज्ञान है । अथवा एक किसी वस्तु का एकोदेश अंश कौं वा सर्वांग वस्तु हीं कौं अवलंबि करि, ग्रहण करि अन्य कोई अप्रकट वस्तु का ग्रहण करना; सो भी अनिसृत ज्ञान है । इनिके उदाहरण आगैं कहैं हैं —

पुक्खरगहणे काले, हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा ।
वत्थुंतरचंदस्स य, धेणुस्स य बोहणं च हवे ॥३१३॥

पुष्करग्रहणे काले, हस्तिनश्च वदनगवयग्रहणे वा ।
वस्त्वंतरचंद्रस्य च, धेनोश्च बोधनं च भवेत् ॥३१३॥

टीका – पुष्कर कहिए जल तैं बाहिर प्रगट दीसती असी जल विषैं डूब्या हूवा हस्ती की सूंडि, ताकौं जानने तैं असी प्रतीति हो है कि इस जल विषैं हस्ती मगन है; जातैं हस्ती बिना सूंडि न हो है । जिस बिना जो न होइ, ताकौं तिसका साधन कहिए; जैसैं अग्नि बिना धूम नाहीं, तातैं अग्नि साध्य है, धूम साधन है । सो साधन तैं साध्य का जानना, सो अनुमान प्रमाण है । इहां सूंडि साधन, हस्ती साध्य है । सूंडि तैं हस्ती का ज्ञान भया, तातैं इहां अनुमान प्रमाण आया । बहुरि किसी स्त्री का मुख देखा, सो मुख का ग्रहण समय विषैं चन्द्रमा का स्मरण भया; आगैं चन्द्रमा देख्या था, स्त्री के मुख की अर चन्द्रमा की सदृशता है, सो स्त्री का मुख देखितैं ही चन्द्रमा यादि आया, सो चन्द्रमा, तिस काल विषैं प्रकट न था, ताकौं

ज्ञान भया, सो यहु स्मृति प्रमाण है। अथवा चन्द्रमा समान स्त्री का मुख है; सो स्त्री का मुख देखतें चन्द्रमा का ज्ञान भया। तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान प्रमाण भी कहिये। असें ही वन विषें गवय नामा तिर्यंचकौं देख्या; तहां असा यादि आया कि गऊ के सदृश गवय हो है; तातैं यहु स्मृति प्रमाण है। अथवा गऊ समान गवय हो है। सो गऊ का ज्ञान गवय कौं देखते ही भया, तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान भी कहिए। वा कहिए जैसें ए उदाहरण कहे तैसें और भी जानने। जैसें रसोई विषें अग्नि होते संतें धूवां हो है, अर द्रह विषें अग्नि नाहीं, तातैं धूवां भी नाहीं। तातैं सर्व देश काल विषें अग्नि अर धूवां कैं अन्यथा अनुपपत्ति भाव है। अन्यथा कहिए अग्नि न होइ तौ अनुपपत्ति कहिए धूवां भी न होइ; सो असा अन्यथा अनुपपत्ति का ज्ञान, सो तर्क नामा प्रमाण भी मतिज्ञान है।

या प्रकार अनुमान स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क ए च्यारों परोक्ष प्रमाण अनिसृत है विषय जाका, असा मतिज्ञान के भेद जानने।

पांचवां आगम नामा परोक्ष प्रमाण श्रुतज्ञान का भेद जानना। एकोदेशपनैं भी विशदता, स्पष्टता इनिके जानने विषें नाहीं। तातैं इनिकौं परोक्ष प्रमाण कहे; और इनके बिना जो पांच इन्द्रियनि करि बहु, बहुविध आदि जानिए हैं, ते सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानने; जातैं इनिके जाननें मैं एकोदेश विशदता, निर्मलता, स्पष्टता, पाइए है। व्यवहार विषें भी असें कहिए है जो मैं नेत्रनि स्यौं प्रत्यक्ष देख्या।

बहुरि इस मतिज्ञान विषें पारमार्थिक प्रत्यक्षपना है नाहीं; जातैं अपने विषय कौं तारतम्य रूप संपूर्ण स्पष्ट न जानैं। पूर्वे आचार्यनि करि प्रत्यक्ष का लक्षण विशद वा स्पष्ट ही कह्या है। असें ए सर्व मतिज्ञान के भेद जाननें; ते भेद प्रमाण हैं; जातैं ए सर्व सम्यग्ज्ञान हैं। बहुरि "**सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं**" असा सिद्धांत विषैं कह्या है।

एक्कचउक्कं चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा।
इगिछव्वारसगुणिदे, मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥३१४॥

एकचतुष्कं चतुर्विंशत्यष्टाविंशतिश्च त्रिःप्रति कृत्वा।
एकषट्द्वादशगुणिते, मतिज्ञाने भवंति स्थानानि ॥३१४॥

टीका – मतिज्ञान सामान्य अपेक्षा करि तौ एक है, अर अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा की अपेक्षा च्यारि है। बहुरि पांच इंद्रिय, छठा मन करि अर अवग्रह, ईहा,

अवाय, धारणा की अपेक्षा चौबीस है। बहुरि व्यंजन अर अर्थ का भेद कीएं अठाईस है; सो एक, च्यारि, चौबीस, अठाईस (१।४।२४।२८)। इन च्यार्यो को जुदे-जुदे तीन जायगा मांडिए। तहां एक जायगा तौ सामान्यपनैं अपने-अपने विषय कौं जानैं हैं, असा विषय संबंधी एक भेद करि गुणिए, तब तौ एक, च्यारि, चौबीस, अठाईस ही भेद भएं। बहुरि दूसरी जायगा बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव ए छह प्रकार विषय के भेद करि गुणिए, तब छह (६), चौबीस (२४), के एक सौ चवालीस (१४४), एक सौ अडसठि (१६८) असें मतिज्ञान के आधे विषय भेदनि की अपेक्षा भेद भएं। बहुरि तीसरी जायगा उनके प्रतिपक्षी सहित बारह विषय भेदनि करि गुणिए, तहां बारह (१२), अडतालीस (४८), दोय सै अठ्यासी (२८८), तीन सै छत्तीस (३३६) सर्व विषय भेदनि की अपेक्षा मतिज्ञान के भेद भएं। असें विवक्षाभेद करि मतिज्ञान के स्थान दिखाएं।

आगे श्रुतज्ञान की प्ररूपणा का आरंभ करता संता प्रथम ही श्रुतज्ञान का सामान्य-लक्षण कहैं हैं –

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभंतं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं, णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥३१५॥[1]

अर्थादर्थांतरमुपलभमानं भणंति श्रुतज्ञानम् ।
आभिनिबोधिकपूर्वं, नियमेनेह शब्दजं प्रमुखम् ॥३१५॥

टीका – मतिज्ञान करि निश्चय कीया जो पदार्थ, तिसकौं अवलंबि करि, तिसही पदार्थ के सम्बन्ध कौं लीएं, अन्य कोई पदार्थ, ताकौं जो जानैं, सो श्रुतज्ञान है। सो श्रुतज्ञानावरण, वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम तैं उपजै है; असें मुनीश्वर कहे हैं।

कैसा है श्रुतज्ञान ?

आभिनिबोधिक जो मतिज्ञान, सो है पहिलैं जाके, पहिलैं मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम तैं मतिज्ञान होइ, पीछैं मतिज्ञान करि जो पदार्थ जान्या, ताका अवलंबन करि अन्य कोई पदार्थ का जानना होइ; सोई श्रुतज्ञान है। असा नियम जानना।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा १८३, पृष्ठ ३६१।

पहिलैं मतिज्ञान भए बिना, सर्वथा श्रुतज्ञान न होइ । तींहि श्रुतज्ञान के दोय भेद हैं । एक अक्षरात्मक, एक अनक्षरात्मक । इनि विषैं शब्दजं कहिए अक्षर, पद, छंदादि-रूप शब्द तैं उत्पन्न भया, जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, सो प्रमुख कहिए मुख्य-प्रधान है; जातैं देना, लेना, शास्त्र पढना इत्यादिक सर्व व्यवहारनि का मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । बहुरि लिंग जो चिह्न, तातैं उत्पन्न भया, असा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो एकेंद्रिय तैं लगाइ पंचेंद्रिय पर्यंत सर्व जीवनि कैं है । तथापि यातैं किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं; तातैं प्रधान नाहीं ।

बहुरि **"श्रूयते इति श्रुतः शब्दः तदुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतं"** सुणिए ताकौं शब्द कहिए । शब्द तैं भया जो अर्थज्ञान, ताकौं श्रुतज्ञान कहिए । इस में भी अर्थ विषैं अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही प्रधान आया । अथवा श्रुत असा रूढि शब्द है, सो मतिज्ञान पूर्वक अर्थांतर का जानने रूप ज्ञान का विशेष, तींहि अर्थ विषैं प्रवर्तै है । जैसैं कुशल शब्द का अर्थ तौ यहु जो कुश कहिए डाभ ताकौं लाति कहिये दे, सो कुशल । परंतु रूढ़ि तैं प्रवीण पुरुष का नाम कुशल है । तैसैं यहु श्रुत शब्द जानना ।

तहां **'जीवः अस्ति'** असा शब्द कह्या । तहां कर्ण इन्द्रिय रूप मतिज्ञान करि **जीवः अस्ति** असे शब्द कौं ग्रह्या । बहुरि तींहि ज्ञान करि 'जीव नामा पदार्थ है' असा जो ज्ञान भया, सो श्रुतज्ञान है । शब्द अर अर्थ के वाच्य-वाचक संबंध है । अर्थ वाच्य है, शब्द वाचक है । अर्थ है सो उस शब्द करि कहने योग्य है । शब्द उस अर्थ का कहन हारा है । सो इहां **'जीवः अस्ति'** असैं शब्द का जानना तौ मति-ज्ञान है । अर उसके निमित्त तैं जीव नामा पदार्थ का अस्तित्व जानना, सो श्रुतज्ञान है । असैं ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना । अक्षरात्मक जो शब्द, तातैं उत्पन्न भया जो ज्ञान, ताकौं भी अक्षरात्मक कह्या ।

इहां कार्य विषैं कारण का उपचार किया है । परमार्थ तैं ज्ञान कोई अक्षर-रूप है नाहीं । बहुरि जैसैं शीतल पवन का स्पर्श भया, तहां शीतल पवन का जानना, तौ मतिज्ञान है । बहुरि तिस ज्ञान करि वायु की प्रकृति वाले को यहु शीतल पवन अनिष्ट है; असा जानना, सो श्रुतिज्ञान है । सो यहु अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । अक्षर के निमित्त तैं भया नाहीं । असैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना ।

आगें श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक अनक्षरात्मक भेदनि कौं दिखावैं हैं—

लोगाणमसंखमिदा, अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा ।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥३१६॥

लोकानामसंख्यमितानि, अनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि ।
द्विरूपषष्ठवर्गप्रमाणं रूपोनमक्षरगं ॥३१६॥

टीका – अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के भेद पर्याय अर पर्यायसमास, तीहिं विषैं जघन्य सौं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण ज्ञान के भेद हो हैं । ते भेद असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धि कौं लीए हैं । बहुरि अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है, सो द्विरूप वर्गधारा विषैं जो एकट्ठी नामा छठा स्थानक कह्या, तामैं एक घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितने अपुनरुक्त अक्षर हैं । तिनकी अपेक्षा संख्यात भेद लीएं है । विवक्षित अर्थ कौं प्रकट करने निमित्त बार बार जिन अक्षरनि कौं कहिए; असैं पुनरुक्त अक्षरनि का प्रमाण अधिक संभवै है । सो कथन आगें होइगा ।

आगें श्रुतज्ञान का अन्य प्रकार करि भेद कहने के निमित्त दोय गाथा कहैं हैं —

पज्जायक्खरपदसंघादं[1] पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य, पाहुडयं वत्थुपुव्वं च ॥३१७॥

तेसिं च समासेहि य, वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं ।
आवरणस्स वि भेदा, तत्तियमेत्ता हवंति त्ति ॥३१८॥[2]

पर्यायाक्षरपदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च, च प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥३१७॥

तेषां च समासैश्च, विंशविधं वा हि भवति श्रुतज्ञानम् ।
आवरणस्यापि भेदाः, तावन्मात्रा भवंति इति ॥३१८॥

टीका – १. पर्याय, २. अक्षर, ३. पद, ४. संघात, ५. प्रतिपत्तिक, ६. अनुयोग, ७. प्राभृत-प्राभृत, ८. प्राभृत, ९. वस्तु, १०. पूर्व दश तौ ए कहे ।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २१ की टीका ।

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २१ की टीका ।

ते पर्याय आदिक दश भेद कहे, तिनके समासनि करि दश भेद भए, मिलि-करि श्रुतज्ञान के बीस भेद भएं। ते कहिए हैं – १. पर्याय, २. पर्यायसमास, ३. अक्षर, ४. अक्षरसमास, ५. पद, ६. पदसमास, ७. संघात, ८. संघातसमास, ९. प्रतिपत्तिक, १०. प्रतिपत्तिकसमास, ११. अनुयोग, १२. अनुयोगसमास, १३. प्राभृतक–प्राभृतक, १४. प्राभृतक–प्राभृतकसमास, १५. प्राभृत, १६. प्राभृत-समास, १७. वस्तु, १८. वस्तुसमास, १९. पूर्व २०. पूर्वसमास ऐसें बीस भेद हैं।

इहां अक्षरादि गोचर जो अर्थ, ताके जाननेरूप जो भाव श्रुतज्ञान, ताकी मुख्यता जाननी। बहुरि जातैं श्रुतज्ञानावरण के भी तितने ही बीस भेद हैं; तातैं श्रुतज्ञान के भी बीस भेद ही कहे हैं।

आगे पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञान का भेद, ताका निरूपण के अर्थि च्यारि गाथा कहैं हैं—

णवरि विसेसं जाणे, सुहमजहण्णं तु पज्जयं णाणं।
पज्जायावरणं पुण, तदणंतरणाणभेदम्हि ॥३१९॥

नवरि विशेषं जानीहि, सूक्ष्मजघन्यं तु पर्यायं ज्ञानम्।
पर्यायावरणं पुनः, तदनंतरज्ञानभेदे ॥३१९॥

टीका – यहु नवीन विशेष जानहु, जो पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञान का भेद, सो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त संबंधी सर्व तें जघन्य श्रुतज्ञान जानना। बहुरि पर्याय श्रुतज्ञान का आवरण, सो पर्याय श्रुतज्ञान कौं नाहीं आवरै है। याके अनंतरि जो पर्याय ज्ञान तैं अनंत भाग वृद्धि लीएं पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद, तींहि विषै पर्याय ज्ञान का आवरण है; जातैं उदय आया जो पर्याय ज्ञान, आवरण के समय प्रबद्ध का उदयरूप निषेक, ताकैं सर्वघाती स्पर्धकनि का उदय नाहीं, सो क्षय है; अर तेई सर्वघाती स्पर्धक, जे अगिले निषेक संबंधी सत्ता में तिष्ठै हैं, तिनिका उपशम है। अर देशघाती स्पर्धकनि का उदय है; सो ऐसा पर्याय ज्ञानावरण का क्षयोपशम सदा पाइए तातैं; पर्याय ज्ञान का आवरण करि पर्याय ज्ञान आवरै नाहीं। पर्याय-समासज्ञान का प्रथमभेद ही आवरै है। जो पर्याय ज्ञान भी आवरै तौ ज्ञान का अभाव होइ, ज्ञान गुण का अभाव भए, गुणी (ऐसे) जीव द्रव्य का भी अभाव होइ, सो ऐसैं होइ नाहीं; तातैं पर्यायज्ञान निरावरण ही है।

अनुभाग रचना विषैं भी स्थापित कीया जो सिद्धराशि का अनंतवां भाग-मात्र श्रुतज्ञानावरण का द्रव्य, जो परमाणूनि का समूह, सो द्रव्य के अनुभाग की क्रम तैं हानि-वृद्धि करि संयुक्त है । बहुरि नानागुणहानि स्पर्धक वर्गणारूप भेद लीएं हैं, तिस द्रव्य विषैं सर्व तैं थोरा उदयरूप अनुभाग जाका क्षीण भया, असा जो सर्वघाती स्पर्धक, तिसही कौं पर्याय ज्ञान का आवरण कह्या है; तितने आवरण का सदा काल उदय न होइ; तातैं भी पर्याय ज्ञान निरावरण ही है ।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
हवदि हु सव्वजहण्णं, णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥३२०॥[1]

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
भवति हि सर्वजघन्यं, नित्योद्घाटं निरावरणम् ॥३२०॥

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव का जन्म होतैं पहिला समय विषैं सर्व तैं जघन्य शक्ति कौं लीएं पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है; सो निरावरण है । इतने ज्ञान का कबहूं आच्छादन न होइ । याहीतैं नित्योद्घाटं कहिए सदाकाल प्रकट प्रकाशमान है । सो यहु गाथा पूर्वाचार्यनि करि प्रसिद्ध है । इहां अपना कह्या व्याख्यान की दृढता के निमित्त उदाहरणरूप लिखी है ।

सुहमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण ।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥३२१॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकेषु स्वकसंभवेषु भ्रमित्वा ।
चरमापूर्णत्रिवक्राणां आदिमवक्रस्थिते एव भवेत् ॥३२१॥

टीका – सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव, सो अपने विषैं संभवते जे छह हजार बारह बार क्षुद्रभव, तिनि विषैं भ्रमण करि अंत का लब्धि अपर्याप्तकरूप क्षुद्र-भव विषैं तीन वक्रता लीएं, जो विग्रह गति, ताकरि जन्म धर्या होइ, ताके विग्रह गति में पहिली वक्रता संबंधी समय विषैं तिष्ठता जीव ही कैं सर्व तैं जघन्य पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है । बहुरि तिसही कैं स्पर्शन इंद्रिय संबंधी जघन्य मतिज्ञान हो है ।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २१ की टीका ।

बहुरि तिसही कैं अचक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम तैं उपज्या जघन्य अचक्षुदर्शन भी हो है। सो इहां बहुत क्षुद्रभवरूप पर्याय के धरने तैं उत्पन्न भया बहुत संक्लेश, ताके बधने करि आवरण का अति तीव्र अनुभाग का उदय हो है। तातैं क्षुद्रभवनि का अंत क्षुद्रभवनि विषैं पर्यायज्ञान कह्या है। बहुरि द्वितीयादि समयनि विषैं ज्ञान बंधता संभवै है; तातैं तीनि वक्र विषैं प्रथम वक्र का समय ही विषैं पर्यायज्ञान कह्या है।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
फासिंदियमदिपुव्वं, सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥३२२॥[1]

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
स्पर्शनेंद्रियमतिपूर्वं श्रुतज्ञानं लब्ध्यक्षरकं ॥३२२॥

टीका — सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव कैं उपजने का पहिला समय विषैं सर्व तैं जघन्य स्पर्शन इंद्रिय संबंधी मतिज्ञानपूर्वक लब्धि अक्षर है, दूसरा नाम जाका, ऐसा पर्याय ज्ञान हो है। लब्धि कहिए श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम, वा जानन शक्ति, ताकरि अक्षर कहिए अविनाशी, सो ऐसा पर्यायज्ञान ही है; जातैं इतना क्षयोपशम सदाकाल विद्यमान रहै है।

आगैं दश गाथानि करि पर्यायसमास ज्ञान कौं प्ररूपैं हैं।

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए ।
संखमसंखमणंतं, गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥३२३॥[2]

अवरोपरि अनंतमसंख्यं संख्यं च भागवृद्धयः ।
संख्यमसंख्यमनंतं, गुणवृद्धयो भवंति हि क्रमेण ॥३२३॥

टीका — सर्व तैं जघन्य पर्याय नामा ज्ञान, ताके ऊपरि आगैं अनुक्रम तैं आगैं कहिए है। तिस परिपाटी करि १. अनंत भागवृद्धि, २. असंख्यात भागवृद्धि, ३. संख्यात भागवृद्धि, ४. संख्यात गुणवृद्धि, ५. असंख्यात गुणवृद्धि, ६. अनंतगुण वृद्धि, ७. ए षट्स्थान पतित वृद्धि हो हैं।

---

१ षट्खंडागम — धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।
२. षट्खंडागम — धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।

इहां कोऊ कहै कि सर्व जघन्य ज्ञान कौं अनंत का भाग कैसें संभवै ?

ताका समाधान—जो द्विरूपवर्गधारा विषें अनंतानंत वर्गस्थान भए पीछैं, क्रम तें जीवराशि, पुद्गल राशि, काल समयराशि, श्रेणी आकाशराशि हो है। तिनिके ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान भएं सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक संबंधी जघन्य ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण हो है। जाका भाग न होइ ऐसे ज्ञान शक्ति के अंश, तिनिका ऐसा परिमाण है। तातैं तिनिकी अपेक्षा अनंत का भागहार संभवै है।

जीवाणं च य रासी, असंखलोगा वरं खु संखेज्जं।
भागगुणम्हि य कमसो, अवट्ठिदा होंति छट्ठाणे ॥३२४॥

जीवानां च च राशिः असंख्यलोका वरं खलु संख्यातम्।
भागगुणयोश्च क्रमशः अवस्थिता भवंति षट्स्थाने ॥३२४॥

टीका – इहां अनंतभाग आदिक छह स्थानकनि विषें ए छह संदृष्टि अवस्थित कहिए; नियमरूप जाननी। अनंत विषें तौ जीवराशि के सर्व जीवनि का परिमाण सो जानना। असंख्यात विषें असंख्यात लोक जो असंख्यात गुणा लोकाकाश के प्रदेशनि का परिमाण सो जानना। संख्यात विषें उत्कृष्ट संख्यात जो उत्कृष्ट संख्यात का परिणाम सो जानना। सोई तीनों प्रमाण भाग वृद्धि विषें जानना। ये ही गुणवृद्धि विषें जानना। भागवृद्धि विषें इनि प्रमाणनि का भाग पूर्वस्थान कौं दीएं, जो परिणाम आवै, तितने पूर्वस्थान विषें मिलाएं, उत्तरस्थान होइ। गुणवृद्धि विषें इनि प्रमाणनि करि पूर्वस्थान कौं गुणें, उत्तरस्थान हो है।

उव्वंकं चउरंकं, पणछस्सत्तंक अट्ठअंकं च।
छव्वड्ढीणं सण्णा, कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं ॥३२५॥

उर्वंकश्चतुरंकः पंचषट्सप्तांकः अष्टांकश्च।
षड्वृद्धीनां संज्ञा, क्रमशः संदृष्टिकरणार्थम् ॥३२५॥

टीका – बहुरि लघुसंदृष्टि करने के निमित्त अनंत भाग वृद्धि आदि छह वृद्धिनि की अन्यसंज्ञा संदृष्टि सो कहै हैं – तहां अनंत भागवृद्धि की उर्वंक कहिए उकार उ, असंख्यात भागवृद्धि की च्यारि का अंक (४), संख्यात भागवृद्धि की पांचका अंक (५), संख्यात गुणवृद्धि की छह का अंक (६), असंख्यात गुणवृद्धि की

सात का अंक (७), अनंत गुणवृद्धि की आठ का अंक (८), ऐसें ए सहनानी जाननी ।

अंगुलअसंखभागे, पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी ।
एक्कं वारं होदि हु, पुणो पुणो चरिम उड्ढि त्ती ॥३२६॥

अंगुलासंख्यातभागे, पूर्वगवृद्धिगतेतु परवृद्धिः ।
एकं वारं भवति हि, पुनः पुनः चरमवृद्धिरिति ॥३२६॥

टीका – पूर्ववृद्धि जो पहिली पहिली वृद्धि, सो सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ; तब एक एक बार परवृद्धि कहिए पिछली पिछली वृद्धि होइ; असें बार बार अंत की वृद्धि, जो अनंतगुण वृद्धि तीहिं पर्यंत हो है; असा जानना ।

अब याका अर्थ यंत्र द्वार करि दिखाइए है । तहां यंत्र विषें अनंतभागादिक की उकार आदि संदृष्टि कही थी, सो लिखिए है ।

पर्याय समास ज्ञान विषें वृद्धि का यंत्र

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

बहुरि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण बार की जायगा दोय बार लिखिए है । सो इहां पर्याय नाम श्रुतज्ञान का भेद, तातें अनंत भाग वृद्धि लिएं पर्याय समास नामा श्रुतज्ञान का प्रथम भेद हो है । बहुरि इस प्रथम भेद तें अनंत भागवृद्धि लीएं पर्याय समास का दूसरा भेद हो है । असें सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ, तब एक बार असंख्यात भागवृद्धि होइ । इहां अनंत भाग-वृद्धि पहिलें कही थी, तातें पूर्व कहिए । अर असंख्यात भागवृद्धि याके पीछें कही थी, तातें याकौं पर कहिए । सो इहां यंत्र विषें प्रथम पंक्ति का प्रथम कोष्ठ विषें दोय बार उकार लिख्या; सो तो सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भाग-

वृद्धि की सहनानी जाननी । अर ताके आगै च्यारि का अंक लिख्या; सो एक बार असंख्यात भागवृद्धि की सहनानी जाननी । बहुरि इहां तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि भए पीछैं दूसरा एक बार असंख्यात भागवृद्धि होइ । असैं ही अनुक्रम तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भागवृद्धि हो है । तातैं यंत्र विषै प्रथम पंक्ति का दूसरा कोठा विषै प्रथम कोठावत् दोय उकार, एक च्यारि का अंक लिख्या । दूसरी बार लिखने तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग बार जानि लेना ।

बहुरि इहां तैं आगैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ, तब एक बार संख्यात भागवृद्धि होइ । यातैं प्रथम पंक्ति का तीसरा कोठा विषैं दोय उकार अर एक पांच का अंक लिख्या । अब इहां तैं जैसैं पूर्वं अनंत भागवृद्धि लीए, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भागवृद्धि होइ; पीछैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ, तब एक बार संख्यात भागवृद्धि भई, तैसें ही याही अनुक्रम तैं दूसरा संख्यात भागवृद्धि भई । बहुरि याही अनुक्रम तैं तीसरा भई, असैं संख्यात भागवृद्धि भी सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण बार हो है । तातैं इहां यंत्र विषैं प्रथम पंक्ति विषैं जैसैं तीन कोठे किये थे, तैसैं अंगुल का असंख्यातवां भाग की सहनानी के अर्थि दूसरा तीन कोठे उस ही पंक्ति विषैं कीए । इहां असंख्यात भागवृद्धि कौं पूर्व कहिए, संख्यात भागवृद्धि कौं पर कहिए । बहुरि इहां तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ, एक बार असंख्यात भागवृद्धि होइ' असैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण असंख्यात भागवृद्धि होइ; सो याकी सहनानी के अर्थि यंत्र विषैं दोय उकार अर च्यारि का अंक करि संयुक्त दोय कोठे कीए । बहुरि यातैं आगैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण अनंत भाग-वृद्धि होइ करि एक बार संख्यात गुणवृद्धि होइ; सो याकी सहनानी के अर्थि प्रथम पंक्ति का नवमा कोठा विषैं दोय उकार अर छह का अंक लिख्या । बहुरि जैसैं प्रथम पंक्ति विषैं अनुक्रम कह्या, तैसैं ही आदि तैं लेकरि सर्व अनुक्रम दूसरा भया । तब एक बार दूसरा संख्यात गुणवृद्धि भई । असैं ही अनुक्रम तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण संख्यात गुणवृद्धि हो है; सो सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण तैसैं होने की सहनानी के अर्थि यंत्र विषैं जैसी प्रथम पंक्ति थी, तैसैं ही वाके नीचैं दूसरी पंक्ति लिखी । बहुरि इहां तैं जैसैं प्रथम पंक्ति विषैं अनुक्रम कह्या था, तैसैं अनुक्रम तैं बहुरि वृद्धि भई । विशेष इतना जो उहां पीछैं ही पीछैं एक बार संख्यात

गुणवृद्धि भई थी, इहां पीछें ही पीछें एक बार असंख्यात गुणवृद्धि भई। याही तें यंत्र विषें तीसरी पंक्ति प्रथम पंक्ति सारिखी लिखी। नवमा कोठा मैं उहां तौ दोय उकार अर छह का अंक लिख्या था, इहां तीसरी पंक्ति विषें नवमा कोठा विषें दोय उकार अर सप्त का अंक लिख्या। इहां और सर्व कहिए अर असंख्यात गुणवृद्धि पर कहिए। बहुरि इहातैं जैसें तीनों ही पंक्ति विषें आदि तें लेकरि अनुक्रम तें वृद्धि भई, तैसें ही अनुक्रम तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। तब असंख्यात गुण-वृद्धि भी सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ निबरै, सो इहां यंत्र विषें सूच्यं-गुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण तैसें ही होने की सहनानी के अर्थि जैसें तीन पंक्ति करीं थीं, तैसें ही दूसरी पंक्ति लिखी, ऐसें छह पंक्ति भई।

अब इहां तें आगें जैसें आदि तें लेकरि अनुक्रम तैं तीनों पंक्ति विषें वृद्धि कही थी, तैसें ही तैसें अनुक्रम तें फेरि सर्ववृद्धि भई। विशेष इतना जो तीसरी पंक्ति का अंत विषें जहां असंख्यात गुणवृद्धि कही थी, सो इहां तीसरी पंक्ति का अंत विषें एक बार अनंत गुणवृद्धि हो है। याही तें यंत्र विषें भी पहिली, दूसरी, तीसरी सारिखी तीन पंक्ति और लिखी। उहां तीसरी पंक्ति का नवमां कोठा विषें दोय उकार सप्त का अंक लिख्या था। इहां तीसरी पंक्ति का नवमां कोठा विषें दोय उकार अर आठ का अंक लिख्या; सो इहां अनंत गुणवृद्धि कौं पर कहिए; अन्य सर्व पूर्व कहिए। याके आगें कोई वृद्धि रही नाहीं; तातें याकौं पूर्व संज्ञा न होइ, याही तें यहु अनंत गुणवृद्धि एक बार ही हो है। सो इस अनंत गुणवृद्धि कौं होत संतें जो प्रमाण भया, सोई नवीन षट्स्थानपतित वृद्धि का पहिला स्थानक जानना। ऐसें पर्यायसमास ज्ञान विषें असंख्यात लोक मात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धि हो है।

अब याका कथन प्रकट कर दिखाइए है–द्विरूप वर्गधारा विषें जीवराशि तें अनंतानंत गुणां जघन्य पर्याय नामा ज्ञान की अपेक्षा अपने विषय कौं प्रकाशनेरूप शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं, सो इस प्रमाण कौं जीवराशि प्रमाण अनंत का भाग दीएं जो परिमाण आवै, ताकौं उस जघन्य ज्ञान विषें मिलाएं, पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद हो है। इहां एक बार अनंत भागवृद्धि भई। बहुरि इस पर्याय-समास ज्ञान का प्रथम भेद कौं जीवराशि प्रमाण अनंत का भाग दिएं, जो परिमाण आवै, तितना उस पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद विषें मिलाएं, पर्यायसमास ज्ञान का दूसरा भेद हो है। इहां दूसरा अनंत भागवृद्धि भई। बहुरि उस दूसरे भेद कौं

अनंत का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना उस दूसरा भेद विषैं मिलाएं, पर्याय-समास ज्ञान का तीसरा भेद हो है । इहां तीसरा अनंत भागवृद्धि भई । बहुरि उस तीसरे भेद को अनंत का भाग दीएं जो परिमाण आया, तितना उस तीसरा भेद विषैं मिलाएं, पर्यायसमास ज्ञान का चौथा भेद हो है । इहां चौथा अनंत भागवृद्धि भई । इसही अनुक्रम तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि हुवा थका पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया, ताकौं एक बार असंख्यात लोक प्रमाण जो असंख्यात, ताका भाग दिएं जो परिमाण आवै, तितना उस ही भेद विषैं मिलाएं, एक बार असंख्यात भागवृद्धि लीएं पर्यायसमास ज्ञान का भेद हो है । बहुरि याकौं अनंत का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितना इस ही विषैं मिलाएं, पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया । इहां तैं बहुरि अनंत भागवृद्धि का प्रारम्भ हुवा, सो ऐसैं ही सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि भए जो पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया, ताकौं फेरि असंख्यात का भाग दीएं जो परिमाण आया, ताकौं उस ही भेद विषैं मिलाएं, दूसरा असंख्यात भागवृद्धि लीएं पर्यायसमास ज्ञान का भेद हो है ।

ऐसैं अनुक्रम तैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भागवृद्धि भी पूर्ण होइ । तहां जो पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया । ताकौं बहुरि अनंत का भाग दीएं, जो परिमाण भया, ताकौं तिस ही में मिलाएं, पर्यायसमास ज्ञान का भेद होइ । तब इहां अनंत भागवृद्धि का प्रारम्भ हुवा, सो सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि पूर्ण होइ, तब जो पर्यायसमास ज्ञान का भेद भया, ताकौं उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं, जो परिमाण होइ, ताकौं उस ही विषैं मिलाएं, पहिले संख्यात भागवृद्धि लीएं, पर्यायसमास का भेद हो है । यातैं आगें फेरि अनंत भाग-वृद्धि का प्रारम्भ हुवा सो ऐसैं ही पूर्व यंत्रद्वार करि जो अनुक्रम कह्या है, तिस अनुक्रम के अनुसारि वृद्धि जानि लेनी । इतना जानि लेना; जिस भेद तैं आगैं अनंत भागवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौं जीवराशि प्रमाण अनंत का भाग दीएं, जो परिणाम आवै तितना तिस ही भेद विषैं मिलाएं उस तैं अनंतरवर्ती भेद होइ । बहुरि जिस भेद तैं आगैं असंख्यात भागवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौं असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, ताकौं तिस ही भेद विषैं मिलाएं, उस भेद तैं अनंतरवर्ती भेद हो है । बहुरि जिस भेद तैं आगैं असंख्यात[1] भागवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौं उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण संख्यात का भाग दीएं जो परिमाण आवैं, तितना तिस ही भेद विषैं मिलाएं, उस भेद तैं आगिला भेद होइ । बहुरि जिस भेद तैं आगैं

संख्यात गुणवृद्धि होइ, तहां तिस भेद कौं उत्कृष्ट संख्यात करि गुणिए, तब उस भेद तैं अनंतरवर्ती भेद होइ। बहुरि जिस भेद तैं आगैं असंख्यात गुणवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौं असंख्यातलोक करि गुणिए, तब उस भेद तैं आगिला भेद होइ। बहुरि जिस भेद तैं आगैं अनंत गुणवृद्धि होइ, तहां तिस ही भेद कौं जीवराशि का प्रमाण अनंत करि गुणिए, तब तिस भेद तैं आगिला भेद होइ। ऐसैं षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम जानना।

इहां जो संख्या कही है, सो सर्व संख्या ज्ञान का अविभाग प्रतिच्छेदनि की जाननी। अरु जो इहां भेद कहे हैं, तिनका भावार्थ यहु है – जो जीव कैं कै तौ पर्याय ज्ञान ही होइ और उसतैं बधती ज्ञान होइ तौ पर्यायसमास का प्रथम भेद ही होय; ऐसा नाहीं कि पर्यायज्ञान तैं एक, दोय आदि अविभाग प्रतिच्छेद बधता भी किसी जीव के ज्ञान होइ अर उस पर्यायसमास के प्रथम भेद तैं बधता ज्ञान होइ तौ पर्यायसमास ज्ञान का दूसरा भेद ही होइ। ऐसैं अन्यत्र भी जानना।

अब इहां अनंत भागवृद्धिरूप सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान कहे, तिनिका जघन्य स्थान तैं लगाइ, उत्कृष्ट स्थान पर्यंत स्थापन का विधान कहिए है।

तहां प्रथम संज्ञा कहिए है – विवक्षित मूलस्थान कौं विवक्षित भागहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौं प्रक्षेपक कहिए। तिस प्रमाण कौं तिस ही भागहार का भाग दीएं जो प्रमाण आवै, ताकौं प्रक्षेपकप्रक्षेपक कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौं पिशुलि कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै ताकौं पिशुलिपिशुलि कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहार का भाग दियें, जो प्रमाण आवै, ताकौं चूर्णि कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौं चूर्णिचूर्णि कहिए। ऐसैं ही पूर्व प्रमाण कौं विवक्षित भागहार का भाग दीएं द्वितीयादि चूर्णिचूर्णि कहिए।

अब इहां दृष्टांतरूप अंक संदृष्टि करि प्रथम कथन दिखाइए है – विवक्षित जघन्य पर्यायज्ञान का प्रमाण, पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस (६५५३६)। विवक्षित भागहार अनंत का प्रमाण च्यारि (४), तहां पूर्वोक्त क्रम तैं भागहार का भाग दीएं, प्रक्षेपक का प्रमाण सोलह हजार तीन सै चौरासी (१६३८४)। प्रक्षेपकप्रक्षेपक का प्रमाण च्यारि हजार छिनवै (४०९६)। पिशुलिका प्रमाण एक हजार चौईस

(१०२४)। पिशुलिपिशुलि का प्रमाण दोय सै छप्पन (२५६)। चूर्णि का प्रमाण चौसठि (६४)। चूर्णिचूर्णि का प्रमाण सोलह (१६) अैसें द्वितीयादि चूर्णि-चूर्णि का प्रमाण च्यारि आदि जानने।

अब इहां ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि, नीचें एक बार प्रक्षेपक १६३८४ स्थापि, जोडें, पर्यायसमास के प्रथम भेद का इक्यासी हजार नवसै बीस (८१९२०) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य (६५५३६) स्थापि, नीचें दोय प्रक्षेपक (१६३८४। १६३८४) एक प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापि, जोडें पर्यायसमास के द्वितीय भेद का एक लाख दोय हजार च्यारि सै (१०२४००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि, नीचें तीन प्रक्षेपक (१६३८४।१६३८४ १६३८४) तीन प्रक्षेपकप्रक्षेपक एक पिशुलि स्थापि, जोडें, तीसरे भेद का एक लाख अठाईस हजार (१२८०००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचें नीचें च्यारि प्रक्षेपक, छह प्रक्षेपकप्रक्षेपक, च्यारि पिशुलि, एक पिशुलिपिशुलि स्थापि, जोडें, चौथे भेद का एक लाख साठि हजार (१६००००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचें नीचें पांच प्रक्षेपक दश प्रक्षेपकप्रक्षेपक, दश पिशुलि पांच पिशुलिपिशुलि, एक चूर्णि स्थापि, जोडें, पांचवें भेद का दोय लाख (२,०००००) प्रमाण हो है।

बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचें नीचें छह प्रक्षेपक, पंचदश प्रक्षेपक प्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पंद्रह पिशुलिपिशुलि, छह चूर्णि, एक चूर्णिचूर्णि स्थापि, जोडें, छठे स्थान का दोय लाख पचास हजार (२५००००) प्रमाण हो है। अैसें ही क्रम तें सर्व स्थाननि विषें ऊपरि तौ जघन्य स्थापन करना। ताके नीचें नीचें जितना गच्छ का प्रमाण तितने प्रक्षेपक स्थापन करने। इहां जेथवां स्थान होइ, तिस स्थान विषें तितना गच्छ जानना। जैसें छठा स्थान विषें गच्छ का प्रमाण छह होइ। बहुरि तिनके नीचे एक घाटि गच्छ का एक बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापने। बहुरि तिनके नीचें दोय घाटि गच्छ का दोय बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने पिशुलि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचें तीन घाटि

गच्छ का तीन बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने पिशुलिपिशुलि स्थापने करने । बहुरि तिनके नीचें च्यारि घाटि गच्छ का च्यारि बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने चूर्णि स्थापन करने । बहुरि तिनके नीचें पांच घाटि गच्छ का पांच बार संकलन धन का जेता प्रमाण, तितने चूर्णिचूर्णि स्थापन करने । असैं ही नीचें नीचें छह आदि घाटि गच्छ का छह आदि बार संकलन धन का जेता जेता प्रमाण, तितने तितने द्वितीयादि चूर्णिचूर्णि स्थापन करने । असैं स्थापन करि, जोड़ें, पर्याय-समास ज्ञान के भेद विषैं प्रमाण आवै है ।

अब इहां एक बार दोय बार आदि संकलन धन कहे, तिनिका स्वरूप इहां ही आगैं वर्णन करैंगे । असैं अंकसंदृष्टि करि वर्णन कीया । अब यथार्थ वर्णन करिए है–

पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद विषैं पर्यायज्ञान तैं जितने बधैं तितने जुदे कीएं, पर्यायज्ञान के जेते अविभाग प्रतिच्छेद हैं, तींहि प्रमाण मूल विवक्षित जानना । यहु जघन्य ज्ञान है । तातैं इस प्रमाण का नाम जघन्य स्थाप्या । बहुरि इस जघन्य कौं जीवराशि मात्र अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताका नाम प्रक्षेपक जानना । इस प्रक्षेपक कौं जीवराशि मात्र अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, सो प्रक्षेपकप्रक्षेपक जानना । असैं ही क्रम तैं जीवराशि मात्र अनंत का भाग दीएं, जो जो प्रमाण आवै, सो सो क्रम तैं पिशुलि अर पिशुलिपिशुलि अर चूर्णि अर चूर्णिचूर्णि अर द्वितीय चूर्णिचूर्णि आदि जानने । सो पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद विषैं ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचैं ताकी वृद्धि का एक प्रक्षेपक स्थापना । बहुरि दूसरा भेद विषैं ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचैं नीचैं ताकी वृद्धि के दोय प्रक्षेपक, एक प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापने । बहुरि तीसरा भेद विषैं ऊपरि जघन्य स्थापि, नीचैं नीचैं ताकी वृद्धि के तीन प्रक्षेपक, तीन प्रक्षेपकप्रक्षेपक, एक पिशुलि स्थापने । बहुरि चौथा भेद विषैं जघन्य ऊपरि स्थापि, ताके नीचैं नीचैं ताके वृद्धि के च्यारि प्रक्षेपक, छह प्रक्षेपकप्रक्षेपक, च्यारि पिशुलि, एक पिशुलिपिशुलि स्थापने । बहुरि पांचवां भेद विषैं जघन्य ऊपरि स्थापि, ताके नीचैं नीचैं पांच प्रक्षेपक, दश प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, दश पिशुलि, पांच पिशुलिपिशुलि, एक चूर्णि स्थापने । बहुरि छठा भेद विषैं ऊपरि जघन्य स्थापि, ताके नीचें नीचें ताकी वृद्धि के छह प्रक्षेपक, पंद्रह प्रक्षेपक प्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पंद्रह पिशुलिपिशुलि, छह चूर्णि, एक चूर्णिचूर्णि स्थापने । असैं ही सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र जे अनंत भागवृद्धि संयुक्त पर्यायसमास ज्ञान के स्थान, तिनि विषैं अपने - अपने जघन्य के नीचैं नीचैं प्रक्षेपक गच्छमात्र

स्थापने । प्रक्षेपकप्रक्षेपक एक घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र स्थापने । पिशुलि दोय घाटि गच्छ का, दोय बार संकलन धनमात्र स्थापने । पिशुलिपिशुलि तीन घाटि गच्छ का, तीन बार संकलन धनमात्र स्थापने । चूर्णि च्यारि घाटि गच्छ का च्यारि बार संकलन धनमात्र स्थापने । चूर्णिचूर्णि पांच घाटि गच्छ का, पांच बार संकलन धनमात्र स्थापने । असें ही क्रम तें एक एक घाटि गच्छ का एक एक अधिक बार संकलन मात्र चूर्णिचूर्णि ही अंत पर्यंत जाननें । तहां अनंत भाग-वृद्धि युक्त स्थाननि विषें अंत का जो स्थान, तीहि विषें जघन्य तौ ऊपरि स्थापना । ताके नीचें नीचें सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रक्षेपक स्थापने । एक घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का एक बार संकलन धनमात्र प्रक्षेपकप्रक्षेपक स्थापने । दोय घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का दोय बार संकलन धनमात्र पिशुलि स्थापने । तीन घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का तीन बार संकलन धनमात्र पिशुलिपिशुलि स्थापने । च्यारि घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का, च्यारि बार संकलन धनमात्र चूर्णि स्थापने । पांच घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का पांच बार संकलन धनमात्र चूर्णिचूर्णि स्थापने । याही प्रकार नीचैं नीचैं चूर्णिचूर्णि छह आदि घाटि, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का छह आदि बार संकलन धनमात्र स्थापने । तहां द्विचरम चूर्णिचूर्णि दोय का दोय घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग बार संकलन धनमात्र स्थापन करने । बहुरि अंत का चूर्णिचूर्णि एक का एक घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग बार संकलन धन-मात्र स्थापन करना । परमार्थ तें अंत चूर्णिचूर्णि का संकलन धन नाहीं है; जातें द्वितीयादि स्थान का अभाव है । याही जायगा (एक ही जायगा) अंत चूर्णिचूर्णि का स्थापन करना । असें वृद्धि का अनुक्रम जानना । बहुरि इहां षट्स्थान प्रकरण विषें अनंत भागवृद्धि युक्त स्थाननि के कहे जे भेद, तिनि विषें सर्वत्र प्रक्षेपक तो गच्छ-मात्र है; जेथवा भेद होइ तितने तहां प्रक्षेपक स्थापने; तातें सुगम है ।

बहुरि प्रक्षेपकप्रक्षेपक आदिकनि का प्रमाण एक बार, दोय बार आदि संकलन धन का विधान जाने बिना जान्या न जाय; तातें सो संकलन धन का विधान कहिए हैं –

जितनें का संकलन धन कह्या होय, तितनी जायगा असें अंक स्थापि, जोडनें । जैसें छठा स्थान विषें दोय घाटि गच्छ का संकलन धन कह्या, तहां च्यारि जायगा या प्रकार अंक स्थापि, जोडने । कैसें अंक स्थापि जोडिये ? सो कहिये हैं – जितने का

करना होय, तितनी जायगा एक आदि एक एक बधता अंक मांडि, जोडैं, एक बार संकलन धन हो है। बहुरि एक बार संकलन धन विधान विषै जो पहिलें अंक लिख्या था, सोई इहां दोय बार संकलन विषै पहिलें लिखिए। अर उहां एक बार संकलन का दूसरा स्थान विषै जो अंक था, ताकौं याका पहिला स्थान विषै जोडैं, जो प्रमाण होइ, सो दूसरा स्थान विषै लिखिये। अर उहां तीसरा स्थान विषै जो अंक था, ताकौं याका दूसरा स्थान विषै जोडैं; जो होइ, सो तीसरा स्थान विषैं लिखिये। ऐसैं क्रमतैं लिखि, जोडैं, दोय बार संकलन धन हो है। बहुरि इस दोय बार संकलन धन विषै जो पहिले अंक लिख्या; सोई इहां लिखिये। अर इस प्रथम स्थान में दोय बार संकलन का दूसरा स्थान का अंक जोडै; दूसरा स्थान होइ। यामैं वाका तीसरे स्थान का अंक जोडैं, याका तीसरा स्थान होइ। ऐसैं क्रम तैं जितने का करना होइ, तितना जायगा लिखि जोडैं। तीन बार संकलन धन होइ। याही प्रकार च्यारि बार आदि संकलन धनका विधान जानना।

इहां उदाहरण कहिये है। जैसैं पर्यायसमास का छठा भेद विषैं पांच का एक बार संकलन (धन) करना। तहां पांच जायगा क्रम तैं एक, दोय, तीन, च्यारि, पांच का अंक मांडि, जोडैं; पंद्रह होइ। सो इतने प्रक्षेपकप्रक्षेपक जानना। बहुरि च्यारि का दोय बार संकलन (धन) करना। तहां च्यारि जायगा क्रम तैं एक, तीन, छह, दश मांडि जो बीस होइ; सो इतने इतने पिशुलि जानने। बहुरि तीन का तीन बार संकलन (धन) करना तहां तीन जायगा क्रम तैं एक, च्यारि, दश मांडि जोडैं, पंद्रह होइ; सो इतने पिशुलिपिशुलि जानने। बहुरि दोय का च्यारि बार संकलन करना। तहां दोय जायगा एक, पांच, मांडि जोडैं, छह होइ। सो इतने चूर्णि जानने। बहुरि एक का पांच जायगा संकलन (धन) करना तहां एक जायगा एक ही है; तातैं ये चूर्णिचूर्णि एक ही जानना। ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना। अब ऐसैं ये अंक मांडि जोडैं, एक बार संकलनादि विषैं जो प्रमाण होइ, ताके ल्यावने कौं करणसूत्र कहिये है।

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः।
रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतो वित्तं ॥१॥

जितने का संकलन धन करना होइ, तिस प्रमाण इहां गच्छ जानना। तामैं एक घटाइ, अवशेष कौं उत्तर जो क्रम तैं जितनी जितनी बार बधता संकलन कह्या

होइ, ताकरि गुणिए; जो प्रमाण होइ; ताकौं जितनी बार संकलन कह्या, तामैं एक जोडि, जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीजिए; जो लब्ध होइ, तामैं मुख जो पहिला स्थान का प्रमाण सो जोड़िए; जो प्रमाण होइ, ताकौं जितनी बार संकलन कह्या होइ, तितनी जायगा गच्छ तैं लगाइ, एक एक बधता अंक मांडि, परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, सो तौ भाज्य । अर एक तैं लगाइ एक एक बधता अंक मांडि, परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, सो भागहार । तहां भाज्य कौं भागहार का भाग दीएं, जो लब्धराशि होइ, ताकरि गुणिए, असैं करतैं समस्त विवक्षित बार संकलन धन आवै है ।

इहां उदाहरण कहिए है – जैसे छठा पर्यायसमास का भेद विषैं च्यारि घाटि गच्छ का जो दोय, ताका च्यारि बार संकलन धनमात्र चूर्णि कहिए । सो इहां गच्छ दोय, तामैं एक घटाएं, एक याकौं एक बारादि संकलन धन रचना अपेक्षा दोय बार आदि संकलन की रचना उपजै है । सो एक एक बार बधता संकलन भया, तातैं उत्तर का प्रमाण एक, ताकरि गुणैं भी एक ही भया । याकौं इहां च्यारि बार संकलन कह्या; सो च्यारि में एक मिलाएं, पांच भया, तिनिका भाग दीएं एक का पांचवां भाग भया । यामैं मुख जो आदिका प्रमाण एक सो समच्छेद करि मिलाएं, छह का पांचवां भाग भया । बहुरि इहां च्यारि बार कह्या है । सो तामैं एक आदि एक एक बधता, च्यारि पर्यंत अंक मांडि (१।२।३।४) परस्पर गुणैं, चौबीस (२४) भये; सो भागहार, अर गच्छ दोय का प्रमाण तैं लगाइ एक एक बधता अंक मांडि, (२।३।४।५) परस्पर गुणें एक सौ बीस (१२०) भाज्य, सो भाज्य कौं भागहार का भाग दीयें, लब्धिराशि पांच, ताकरि पूर्वोक्त छह का पांचवां भाग कौं गुणें छह भये । सोई दोय का च्यारि बार संकलन धन जानना । असैं ही तीन का तीन बार संकलन धन पीछे गच्छ तीन, एक घटाये दोय उत्तर, एक करि गुणे भी दोय, इहां तीन बार संकलन है । तातैं एक अधिक बार प्रमाण च्यारि, ताका भाग दीये आधा, यामैं मुख एक जोडें ड्योढ भया । बहुरि एक आदि बार प्रमाण पर्यंत एक एक अधिक अंक (१।२।३) परस्पर गुणें, भागहार छह अर गच्छ आदि एक एक अधिक अंक (३।४।५) परस्पर गुणें, भाज्य साठि भाज्य कौं भागहार का भाग दीए, पाये दश, इनिकरि पूर्वोक्त ड्योढ कौं गुणें, छठा भेद विषैं तीन घाटि गच्छ का तीन बार संकलन धनमात्र पिशुलिपिशुलि पंद्रह हो है । असैं सर्वत्र विवक्षित संकलन धन ल्यावने ।

बहुरि संस्कृत टीकाकार केशववर्णी अपने अभिप्राय करि तिनि प्रक्षेपक प्रक्षेपकादिक का प्रमाण ल्यावने निमित्त दोय गाथारूप करण सूत्र कहैं हैं –

तिरियपदे रूऊणे, तदिट्ठहेट्ठिल्लसंकलणवारा ।
कोट्ठधणस्साणयणे, पभवं इट्ठूणउड्ढपदसंखा ।।१।।

अनंत भागवृद्धि युक्त स्थाननि विषें जेथवां स्थान विवक्षित होइ, तीहि प्रमाण तिर्यग् गच्छ कहिये । तामें एक घटाएं, ताके नीचें संकलन बार का प्रमाण हो है ।

इहां उदाहरण – जैसें छठा स्थान विषें गच्छ का प्रमाण छह में एक घटाएं, ताके नीचें पांच संकलन बार हो है । प्रक्षेपक सम्बन्धी कोठा के नीचें एक बार, दोय बार, तीन, च्यारि बार, पांच बार, संकलन, प्रक्षेपकप्रक्षेपक आदि के एक एक कोठानि विषें संभवें हैं; असें ही अन्यत्र जानना । बहुरि विवक्षित कोठानि का संकलन धन ल्यावने के अर्थि जेथवां भेद होइ, तीहि प्रमाण जो ऊर्ध्व गच्छ, तीहि विषें जेती बार विवक्षित संकलन होइ, तितना घटायें, अवशेष मात्र प्रभव कहिये आदि जानना ।

तत्तोरूवहियकमे, गुणगारा होंति उड्ढगच्छो त्ति ।
इगिरूवमादिरूवोत्तरहारा होंति पभवो त्ति ।।२।।

अर्थ – तिस आदि तें लगाइ, एक-एक बधता ऊर्ध्वगच्छ का प्रमाण पर्यंत, अनुक्रम करि विवक्षित के गुणकार होंहि । बहुरि तिनिके नीचैं एक तें लगाइ, एक एक बधता, उलटा क्रम करि प्रभव जो आदि, ताका भी नीचा पर्यंत तिनिके भागहार होंहि । गुणकारनि कौं परस्पर गुणैं, जो प्रमाण होइ, ताकौं भागहारनि कौं परस्पर गुणैं, जो प्रमाण होइ, ताका भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितने तहां प्रक्षेपक–प्रक्षेपक आदि संबंधी कोठा विषैं वृद्धि का प्रमाण आवै है ।

इहां उदाहरण कहिए है – अनंत भागवृद्धि युक्त स्थान विषें विवक्षित छठा स्थान विषें एक घाटि तिर्यगच्छ प्रमाण एक बार आदि पांच संकलन स्थान हैं । तिनि विषें च्यारि बार संकलन[1] संबंधी कोठानि विषें प्रमाण ल्याइए है । विवक्षित संकलन बार च्यारि, तिनिका इहां छठा भेद विवक्षित है । तातें ऊर्ध्वगच्छ छह, तामें घटाएं, अवशेष दोय रहे; सो आदि जानना । इस आदि दोय तें लगाइ, एक एक अधिक ऊर्ध्वगच्छ छह पर्यंत तौ क्रम करि गुणकार होइ । अर तिनके नीचैं उलटे क्रम करि आदि पर्यंत एक आदि एक एक अधिक भागहार होइ; सो इहां च्यारि बार

१. ध प्रति में संकलन संकलन शब्द है ।

संकलन का कोठा विषें चूरिण है । चूरिण का प्रमाण जघन्य का पांच बार अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, सो तितना है । तिस प्रमाण के दोय, तीन, च्यारि, पांच, छह तौ क्रम तें गुणकार होइ; अर पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक भागहार होइ । तहां गुणकारनि करि चूर्णि कौं गुणें भागहारनि का भाग दीएं, यथायोग्य अपवर्तन कीए, छह गुणां, चूरिणमात्र तिस कोठा विषें प्रमाण आवै है ।

भावार्थ – असा जो दोय, तीन, च्यारि, पांच का गुणकार अर भागहार का तौ अपवर्तन भया । छह कौं एक का भागहार रह्या, तातैं छह गुणां चूर्णिमात्र तहां प्रमाण है । बहुरि असैं ही अनंत भागवृद्धि युक्त अंत भेद विषें यहु स्थान सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का जो प्रमाण तेथवां है । तातैं तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र है । तामैं एक घटाएं, अवशेष एक बार आदि संकलन के बार है । तिनिविषैं विवक्षित च्यारि बार संकलन का कोठा विषें प्रमाण ल्याइए है । विवक्षित संकलन बार च्यारि, ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र मैं स्यों घटाएं, अवशेष मात्र आदि है । यातैं एक एक बधता क्रम करि ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग पर्यंत तौ गुणकार होइ । अर उलटे क्रम करि एक आदि एक एक बधता पांच पर्यंत भागहार होइ, सो च्यारि बार संकलन का कोठा विषें चूरिण है । तातैं चूरिण कौं तिनि गुणकारनि करि गुणें भागहारनि का भाग दीएं, लब्धमात्र तिस कोठा विषें वृद्धि का प्रमाण है । इहां गुणकार भागहार समान नाहीं; तातैं अपवर्तन होइ सकता नाहीं । इहां लब्धराशि का प्रमाण अवधिज्ञान गोचर जानना । बहुरि तिसही अनंत भागवृद्धि युक्त अंत का भेद विषें विवक्षित द्विचरम चूर्णिचूरिण का दोय घाटि, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र बार संकलन धन का प्रमाण ल्याइए है । इहां भी तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र है । तामैं एक घटाएं, एक बार आदि संकलन के बार हो हैं । तहां विवक्षित संकलन बार दोय घाटि, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र, सो ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र मैं घटाएं, अवशेष दोय रहे; सो आदि जानना । इसतैं लगाइ एक एक बधता ऊर्ध्वगच्छ पर्यंत गुणकार अनुक्रम करि हो है । अर एक आदि एक एक बधता अपने इष्ट बार का प्रमाण तैं एक अधिक पर्यंत उलटे क्रम करि भागहार हो है । इहां दोय आदि एक घाटि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग पर्यंत अंक गुणकार वा भागहार विषें समान है । तातैं तिनिका अपवर्तन कीया । अवशेष सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का गुणकार रह्या । एक का भागहार रह्या । इहां इस कोठा

विषैं द्विचरम चूर्णिचूर्णि है; ताका प्रमाण जघन्य कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवा भागमात्र बार भाग दीएं; जो प्रमाण आवै, तितना जानना। याकौं पूर्वोक्त गुणकार करि गुणें एक का भाग दीएं, तिस कोठा संबंधी प्रमाण आवै है। बहुरि अैसें ही अंत का चूर्णिचूर्णि विषैं संकलन है ही नाहीं; जातैं अंत का चूर्णिचूर्णि एक ही है। सो जघन्य कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र बार अनंत का भाग दीएं अंत चूर्णिचूर्णि का प्रमाण हो है। ताकौं एक करि गुणें भी तितना ही तिस कोठा विषैं वृद्धि का प्रमाण जानना। अैसें सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र अनंतभाग वृद्धि युक्त स्थान होइ; तब एक असंख्यात भागवृद्धि युक्त स्थान हो है। इहां ऊर्वंक जो अनंत भागवृद्धि युक्त अंत स्थान, ताकौं चतुरंक जो असंख्यात का भाग दीयें, जो एक भाग का प्रमाण आवै, तितनां तिस ही पूर्वस्थान विषैं जोड्या, सो इहां जघन्य ज्ञान साधिक कहिये; किछू अधिक भया। अंकसंदृष्टि का दृष्टांत विषैं स्तोक प्रमाण है। तातैं जघन्य तौ गुणकार भया। यथार्थ विषैं महत् प्रमाण है; तातैं अैसें वृद्धि होतैं भी साधिकपना ही भया है। अब जैसें जघन्य ज्ञान कौं मूल स्थापि, जैसें अनंत-भागवृद्धिस्थान प्रक्षेपकादि विशेष लीये कहे थे; तैसें इहांतैं आगें इस साधिक जघन्य कौं मूल स्थापि, अनंत भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र जानने। अैसें ही पूर्वोक्त यन्त्र द्वार करि जैसें अनुक्रम दिखाया, तैसें अनंत गुणवृद्धि पर्यंत क्रम जानना। तहां भाग वृद्धि विषैं प्रक्षेपकादिक वृद्धि का विशेष जानना; सो जिस स्थान तें आगें भागवृद्धि होइ; ताकौं मूल स्थापन करना। ताकौं एक बार जिस प्रमाण की भागवृद्धि होइ, ताका एक बार भाग दीए, प्रक्षेपक हो है। दोय बार भाग दियें प्रक्षेपकप्रक्षेपक हो है। तीन बार आदि भाग दीयें, पिशुलि आदिक हो है; अैसा विधान जानना। अैसें सर्वत्र षट्स्थान पतित वृद्धि का अनुक्रम जानना।

आदिमछट्ठाणह्मि य, पंच य वड्ढी हवंति सेसेसु।
छव्वड्ढीओ होंति हु, सरिसा सव्वत्थ पदसंखा ॥३२७॥

आदिमषट्स्थाने च, पंच च वृद्धयो भवंति शेषेषु।
षड्वृद्धयो भवंति हि, सदृशा सर्वत्र पदसंख्या ॥३२७॥

टीका – इस पर्यायसमास ज्ञान विषैं असंख्यात लोक मात्र बार षट्स्थान संभवै है। तिनिविषैं पहिली बार तो पांच स्थान पतितवृद्धि हो है। जातैं जो पीछैं ही पीछैं अनंतगुण वृद्धिरूप भेद भया, ताकौं दूसरी बार षट्स्थानपतित वृद्धि का

आदि स्थान कह्या है । बहुरि जैसें पहिले षट्स्थानपतित वृद्धि का क्रम कह्या, ताकौं पूर्ण करि दूसरा तैसें ही फेरि षट्स्थानपतित वृद्धि होइ अैसें ही तीसरा होइ । इत्यादि असंख्यात लोक वार षट्स्थान हो है । तिनिविषैं छहौ वृद्धि पाइये है । अनंत गुण-वृद्धि रूप तौ पहिला ही स्थान होइ । पीछैं क्रमतैं पांच वृद्धि, अंत की अनंत भाग-वृद्धि पर्यंत होइ । बहुरि जो अनंत भागादिक सर्व वृद्धि कहीं, तिन सबनि का स्थान प्रमाण सदृश सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र जानना । तातैं जो वृद्धि हो है; सो अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण वार हो है ।

छट्ठाणाणं आदी, अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं ।
जम्हा जहण्णणाणं, अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ॥३२८॥

षट्स्थानानामादिरष्टांकं भवति चरममुर्वंकम् ।
यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांकं भवति जिनद(दि)ष्टं ॥३२८॥

टीका – षट्स्थानपतित वृद्धिरूप स्थाननि विषैं **अष्टांक** कहिये; अनंतगुण-वृद्धि सो आदि है । बहुरि **उर्वंक** कहिये अनंत भागवृद्धि; सो अंतस्थान है ।

भावार्थ – पूर्वै जो यंत्रद्वार करि वृद्धि का विधान कह्या, सो सर्व विधान होइ निवरैं, तब एक बार षट्स्थानपतित वृद्धि भई कहिए । विशेष इतना जो नवमी पंकतिका का नवमां कोठा विषैं दोय उकार अर एक आठ का अंक लिख्या है; सो ताका अर्थ यहु जो सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भाग वृद्धि होइ करि एक बार अनंतगुण वृद्धि हो है । सो यहु अनंतगुण वृद्धि रूप जो भेद सो नवीन षट्स्थानपतित वृद्धि का आरम्भ कीया । ताका आदि का स्थान जानना । इसतैं लगाइ प्रथम कोठादिक संबंधी जो रचना कही थी, तीहि अनुक्रमतैं षट्स्थान-पतित वृद्धि हो है । तहां उस ही नवमी पंकति का नवमां कोठा विषैं आठ का अंक के पहिली जो उकार लिखा था, ताका अर्थ यहु जो सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र बार अनंत भागवृद्धि भई, तिनिविषैं अंत की अनंत भागवृद्धि लीएं, जो स्थान सोई; इस षट्स्थानपतित वृद्धि का अंत स्थान जानना । याहीतैं षट्स्थान पतित वृद्धि का आदि स्थान अष्टांक कह्या अर अंतस्थानक उर्वंक कह्या है । बहुरि पहिली बार अनंतगुण वृद्धि बिना पंच वृद्धि कही, अर पीछैं छहौ वृद्धि कही हैं ।

यहां प्रश्न – जो पहिली बार आदि स्थान जघन्य ज्ञान है । ताकौं अष्टांक रूप अनंत गुणवृद्धि संभवै भी है कि नाहीं ?

ताका समाधान – जो द्विरूप वर्ग धारा विषैं इस जघन्य ज्ञान तैं पहिला स्थान एक जीव के अगुरुलघुगुणनि के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण है; तातैं जघन्यज्ञान अनंतगुणा है । तातैं पहिलीबार भी आदि स्थान जो जघन्यज्ञान, तीहि विषैं अनंत गुणवृद्धि अन्य अपेक्षा संभवै है । बहुरि ज्ञान ही की अपेक्षा संभवै नाहीं; तातैं पहिली बार पंच वृद्धि ही कही संभवै है । ऐसें जिनदेवने कह्या है; वा देख्या है । बहुरि अंत का षट्स्थान विषै भी आदि अष्टांक, अंत ऊर्वक हैं । तातैं आगैं अष्टांक जो अनंत गुणवृद्धिरूप स्थान, सो अर्थ अक्षर ज्ञान है; सो आगैं कहेंगे; सो जानना ।

एक्कं खलु अट्ठंकं, सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा ।
रूवहियकंडएण य, गुणिदकमा जाव उव्वंकं ॥३२९॥

एकं खलु अष्टांकं सप्तांकं कांडकं ततोऽधः ।
रूपाधिककांडकेन च, गुणितक्रमा यावदुर्वंकम् ॥३२९॥

टीका – एक बार जो षट्स्थान होइ, तीहि विषैं अष्टांक कहिए अनंत गुणवृद्धि सो तो एकबार ही हो है । जातैं 'अंगुल असंख भागं' इत्यादि सूत्र अनुसार अष्टांक के परे कोई वृद्धि नाहीं । तातैं याके पूर्वपना का अभावतैं बार बार पलटने का अभाव है । बहुरि सप्तांक कहिए असंख्यात गुणवृद्धि; सो कांडकं कहिए सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र हो है । बहुरि ताके नीचैं षडंक कहिए संख्यात गुणवृद्धि, पंचांक कहिए संख्यात भाग वृद्धि, चतुरंक कहिए असंख्यात भागवृद्धि, ऊर्वक कहिए अनंत-भागवृद्धि, ए च्यार्यो एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणित अनुक्रम तैं जाननीं । इहां यावत् ऊर्वंकं इस वचन करि उर्वक पर्यंत अनुक्रम की मर्यादा कही है । सोई कहिए है – असंख्यात गुणवृद्धि का प्रमाण सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग-प्रमाण कह्या है । ताकौं एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, जो परिमाण होइ, तितनी बार संख्यात गुणवृद्धि हो है । बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं जो परिमाण होइ तितनी बार संख्यात भागवृद्धि हो है । बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं जो परिमाण होइ तितनी बार असंख्यात भागवृद्धि हो है । बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं जो परिणाम होइ तितनी बार अनंत

भागवृद्धि हो है । असें एक बार षट्स्थान पतित वृद्धि होने विषै पूर्वोक्त प्रमाण लीएं एक एक वृद्धि हो है । दूसरी बार आदि विषै पहिलै अष्टांक हो है । ताकै आगै ऊर्वंक हो है । तातैं एक ही अष्टांक है; असा कह्या है ।

सव्वसमासो णियमा, रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स ।
विंदस्स य संवग्गो, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३३०॥

सर्वसमासो नियमात्, रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य ।
वृंदस्य च संवर्गो, भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३३०॥

टीका – पूर्वै जो छहौं वृद्धिनि का परिमाण कह्या, तींहि सर्व का जोड दीएं, रूपाधिक कांडक कहिये । एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग ताका वर्ग अर घन, ताका संवर्ग कीएं संतै, जो प्रमाण होइ, तितना हो है । असा जिनदेवनि कह्या है ।

भावार्थ – एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग कौं दोय जायगा मांडि, परस्पर गुणन कीये, जो परिमाण होय, सो तौ रूपाधिक कांडक का वर्ग कहिए । बहुरि एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग कौं तीन जायगा मांडि, परस्पर गुणन कीएं, जो परिमाण होइ, ताकौं रूपाधिक कांडक का घन कहिए । बहुरि इस वर्ग कौं अर घन कौं परस्पर गुणन कीएं, जो परिमाण होइ, अथवा एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग कौं पांच जायगा मांडि, परस्पर गुणन कीएं, जो परिमाण होइ, तितनी बार एक षट्स्थान [पतित][1] वृद्धि विषै अनंत भागादिक वृद्धि हो है । जैसें अंक संदृष्टि करि पूर्वै यंत्र विषै आठ का अंक एक बार लिख्या, अर सात का अंक दोय बार लिख्या; मिलि तीन भए । बहुरि छह का अंक छह बार लिख्या, मिलि तीन का वर्ग नव भया । बहुरि पंच का अंक अठारह बार लिख्या, मिलि तीन का घन सत्ताईस भया । बहुरि च्यारि का अंक चौवन बार लिख्या, मिलि तीन करि गुणित तीन का घन इक्यासी भया । बहुरि ऊर्वंक एक सौ बासठि बार लिख्या, मिलि-करि तीन का वर्ग करि गुणित, तीन का घन दोय सै तियालीस हूवा । तैसें ही अनंत-गुणवृद्धि एक बार विषै कांडकमात्र असंख्यात गुणवृद्धि जोडें, एक अधिक ही कांडक हो है । बहुरि तींहि अपने प्रमाण एक रूप के अर संख्यात गुणवृद्धि का कांडक प्रमाण के समान गुण्यपणौ देखि, जोडैं, रूपाधिक कांडक का वर्ग हो है । बहुरि तिहिं

१. 'पतित' शब्द किसी प्रति में नहीं मिलता ।

अपने प्रमाण एक कैं अर संख्यात भागवृद्धि का कांडक प्रमाण कैं समान गुण्यपनौं देखि, जोडैं, रूपाधिक कांडक का घन हो है । बहुरि तिहि अपने प्रमाण एक कैं अर असंख्यात भागवृद्धि का कांडक प्रमाण कैं समान गुण्यपनौं देखि,जोडैं, रूपाधिक कांडक का (वर्गकरि)[1] गुणित रूपाधिक कांडक का घन हो हैं । बहुरि तीहि अपने प्रमाण एक कैं अर अनंत भागवृद्धि का प्रमाण कैं समान गुण्य पनौं देखि जोडै, रूपाधिक कांडक का वर्ग करि गुणित रूपाधिक कांडक का घन प्रमाण हो है । इहां अंकसंदृष्टि विषै कांडक का प्रमाण दोय जानना । यथार्थ विषै सूच्यगुल का असंख्यातवां भागमात्र जानना । बहुरि अंकसंदृष्टि विषै जैसै अष्टांक, सप्तांक मिलि, तीन भए । बहुरि इस प्रमाण लीएं एक तौ यहु अर कांडकमात्र दोय षडंक मिलि, तीन भए । ए तीन तौ गुणकार अर पूर्वोक्त तीन गुण्य सो गुणकार करि गुण्य कौं गुणें, तीन का वर्ग भया । तैसें ही अनंत गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि कौं मिल्या हूवा अपना प्रमाण रूपाधिक कांडक, तिहि मात्र एक तौ यहु अर कांडकमात्र संख्यात गुणवृद्धि, सो मिलि रूपाधिक कांडकमात्र गुणकार हूवा । याकरि पूर्वोक्त रूपाधिक कांडकमात्र गुण्य कौं गुणें, रूपाधिक कांडक का वर्ग हो है; जैसें ही अन्य विषै भी जानि लेना । जैसें जो यहु सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग का वर्ग करि ताहीका घन कौं गुणें, जो प्रमाण हो है; सो असंख्यात घनांगुलमात्र हो है । वा संख्यात घनांगुलमात्र हो है । वा घनांगुलमात्र हो है । वा घनांगुल के संख्यातवें भाग मात्र हो है । वा घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र हो है । सो हम जान्या नाहीं; सर्वज्ञदेव यथार्थ जान्या है; सो प्रमाण है ।

उक्कस्ससंखमेत्तं, तत्तिचउत्थेक्कदालछप्पण्णं ।
सत्तदसमं च भागं, गंतूण य लद्धिअक्खरं दुगुणं ॥३३१॥

उत्कृष्टसंख्यातमात्रं, तत्त्रिचतुर्थैकचत्वारिंशत्षट्पंचाशम् ।
सप्तदशमं च भागं, गत्वा च लब्ध्यक्षरं द्विगुणम् ॥३३१॥

टीका – एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यात भाग करि गुण्या हूवा अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण तौ अनंत भागवृद्धि स्थान होइ । अर अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भागवृद्धि स्थान होइ तब एक बार संख्यात भागवृद्धि हो है । तहां पूर्ववृद्धि होतें जो साधिक जघन्यज्ञान भया, ताकौं एक अधिक

१. 'वर्गकरि' शब्द किसी प्रति में नहीं मिलता ।

उत्कृष्ट संख्यात करि गुणिये अर उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीजिये, तितने मात्र भया। बहुरि आगें पूर्वोक्त अनुक्रम लीयें अनंत असंख्यात भागवृद्धि सहित संख्यात भागवृद्धि के स्थान उत्कृष्ट संख्यात मात्र होइ। तहां प्रक्षेपक संबंधी वृद्धि का प्रमाण जोड़ें, लब्ध्यक्षर जो सर्व तैं जघन्य पर्याय नामा ज्ञान, सो साधिक द्विगुणा हो है। कैसें ? सो कहिये है —

पूर्ववृद्धि भयें जो साधिक जघन्यज्ञान भया, सो मूल स्थाप्या। बहुरि इहां संख्यात भागवृद्धि की विवक्षा है। तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीयें, प्रक्षेपक हो है। बहुरि गच्छमात्र प्रक्षेपक वृद्धि होइ, सो इहां उत्कृष्ट संख्यात मात्र संख्यातवृद्धि के स्थान भये हैं। तातैं उत्कृष्ट संख्यातमात्र प्रक्षेपक बधावने। तहां मूल साधिक जघन्य ज्ञान तो जुदा राखना। अर तिस साधिक जघन्य ज्ञान कौं उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीयें, प्रक्षेपक हो है। अर इहां उत्कृष्ट संख्यातमात्र प्रक्षेपक है। तातैं उत्कृष्ट संख्यात ही का गुणकार भया, सो गुणकार भागहार का अपवर्तन कीयें, साधिक जघन्य रह्या। याकौं जुदा राख्या हूवा साधिक जघन्य विषें जोड़ें, जघन्यज्ञान साधिक दूणां हो है। बहुरि 'तस्सि चउत्थं' कहिये पूर्वोक्त संख्यात भागवृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थान, तिनिकौं च्यारि का भाग देइ, तिन विषें तीन भाग प्रमाण स्थान भये। तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक - प्रक्षेपक, इनि दोऊ वृद्धिनि कौं साधिक जघन्य विषें जोड़ें, लब्ध्यक्षर ज्ञान साधिक दूणां हो है। कैसें सो कहिये है — इहां पूर्ववृद्धि भयें जो साधिक जघन्य ज्ञान भया, ताकौं दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दियें, प्रक्षेपक - प्रक्षेपक हो है। सो एक घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र प्रक्षेपक - प्रक्षेपकनि की वृद्धि इहां करनी। तहां पूर्वोक्त केशववर्णी करि कह्या करण सूत्र के अनुसार तिस प्रक्षेपक - प्रक्षेपक कौं एक घाटि उत्कृष्ट संख्यात का तीन चौथा भाग करि अर उत्कृष्ट संख्यात का तीन चौथा भाग करि गुणन करना। अर दोय का एक का भाग देना। साधिक जघन्य ज्ञान की सहनानी असी है। ज असें कीएं साधिक जघन्य कौं एक घाटि, तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यात का अर तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यात का गुणकार भया। अर दोय बार उत्कृष्ट संख्यातका अर च्यारि, दोय, च्यारि, एक का भागहार भया। तहां एक घाटि संबंधी ऋणराशि साधिक जघन्य कौं तीन का गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यात का अर बत्तीस का भागहार कीएं हो है। ताकौं जुदा राखि, अवशेष का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं नव का गुणकार, बत्तीस का भागहार मात्र प्रमाण भया। इहां दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का गुणकार

अर भागहार का अपवर्तन कीया । गुणकार तीन तीन परस्पर गुणें, नव का गुणकार भया । च्यारि, दोय, च्यारि, एक भागहारनि कौं परस्पर गुणें, बत्तीस का भागहार भया । जातैं दोय, तीन, आदि राशि गुणकार भागहार विषैं होय । तहां परस्पर गुणें, जेता प्रमाण होइ, तितना गुणकार वा भागहार तहां जानना । ऐसें ही अन्यत्र भी समझना । बहुरि यामैं एक गुणकार साधिक जघन्य का बत्तीसवां भागमात्र है । ताकौं जुदा स्थापि, अवशेष साधिक जघन्य कौं आठ का गुणकार, बत्तीस का भागहार रह्या, ताका अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य का चौथा भाग भया । बहुरि प्रक्षेपक गच्छ प्रमाण है; सो साधिक जघन्य कौं एक बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं प्रक्षेपक होइ । ताकौं उत्कृष्ट संख्यात का तीन चौथा भाग करि गुणना; तहां उत्कृष्ट संख्यात गुणकार भागहार का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य का तीन चौथा भागमात्र प्रमाण भया । यामैं पूर्वोक्त एक चौथा भाग जोडें, साधिक जघन्य मात्र वृद्धि का प्रमाण भया । यामैं मूल साधिक जघन्य जोडें, लब्ध्यक्षर दूणा हो है । इहां प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी ऋणराशि धनराशि तैं संख्यात गुणा घाटि है । तातैं साधिक जघन्य का बत्तीसवां भागमात्र धनराशिविषैं ऋणराशि घटावने कौं किंचित् ऊन करि अवशेष पूर्वोक्त विषैं जोडें, साधिक दूणा हो है । बहुरि **'एक्कदालछप्पण्णं'** कहिये, पूर्वोक्त संख्यात भागवृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थाननि कौं छप्पन का भाग देइ, तिनि विषैं इकतालीस भागमात्र स्थान भये । तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी वृद्धि जोडें, लब्ध्यक्षर दूणा हो है । कैसें ?

सो कहिये है – साधिक जघन्य कौं उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं, प्रक्षेपक होइ, सो प्रक्षेपक गच्छमात्र है । तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यात इकतालीस छप्पनवां भाग करि गुणें, उत्कृष्ट संख्यात का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं इकतालीस का गुणकार छप्पन भागहार हो है । बहुरि प्रक्षेपक - प्रक्षेपक एक घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र है । सो पूर्वोक्त सूत्र के अनुसारि साधिक जघन्य कौं दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं प्रक्षेपक प्रक्षेपक होइ । ताकौं एक घाटि इकतालीस गुणा उत्कृष्ट संख्यात अर इकतालीस गुणा उत्कृष्ट संख्यात का गुणकार अर छप्पन, दोय छप्पन, एक का भागहार भया । इहां एक घाटि संबन्धी ऋण साधिक जघन्य कौं इकतालीस का गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यात एक सौ बारा छप्पन का भागहार मात्र जुदा स्थापि, अवशेष विषैं दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं सोला सै इक्यासी का गुणकार अर

एक सौ बारा गुणा छप्पन का भागहार हो है । इहां गुणकार विषैं इकतालीस इकतालीस परस्पर गुणें, सोलह सै इक्यासी भये हैं । बहुरि भागहार विषैं छप्पन कौं दोय करि गुणें, एक सौ बारह भये । अगले छप्पन कौं एक करि गुणें, छप्पन भये जानने । बहुरि इहां गुणकार मैं एक जुदा स्थापिये, ताका साधिक जघन्य कौं एक सौ बारह गुणा छप्पन का भागहार मात्र धन जानना । अवशेष साधिक जघन्य कौं सोलह सै अस्सी का गुणकार एक सौ बारा गुणां छप्पन का भागहार रह्या । तहां एक सौ बारह करि अपवर्तन कीयें साधिक जघन्य कौं पंद्रह का गुणकार छप्पन का भागहार भया । यामैं प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण जघन्य कौं इकतालीस का गुणकार अर छप्पन का भागहार मात्र मिलाएं अपवर्तन कीए, साधिक जघन्य मात्र वृद्धि का प्रमाण भया । यामैं मूल साधिक जघन्य जोडैं, लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणां हो है । इहां प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी पूर्वोक्त धन तैं ऋण संख्यात गुणा घाटि है । तातैं किंचित् ऊन कीया, जो धन राशि, ताकौं अधिक कीए साधिक दूणा हो है । बहुरि **'सत्त दशमं च भागं'** वा कहिए अथवा संख्यात (भाग) वृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानकनि कौं दश का भाग दीजिये । तहां सात भाग मात्र स्थान भए । तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक - प्रक्षेपक अर पिशुलि नामा तीन वृद्धि जोडैं, साधिक जघन्य ज्ञान दूणा हो है । कैसें ?

सो कहिए है – साधिक जघन्य कौं एक बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीयें प्रक्षेपक हो है । सो गच्छ मात्र है । तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यात का सात दशवां भाग करि गुणें, उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं, साधिक जघन्य कौं सात का गुणकार अर दश का भागहार हो है । बहुरि प्रक्षेपक - प्रक्षेपक एक घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र हो है । सो साधिक जघन्य कौं दोय बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं, प्रक्षेपक - प्रक्षेपक होइ, ताकौं पूर्व सूत्र के अनुसारि एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात का अर सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात का तौ गुणकार अर दश दोय अर दश एक का भागहार भया । बहुरि पिशुलि दोय घाटि गच्छ का अर दोय बार संकलन धनमात्र हो है । सो साधिक जघन्य कौं तीन बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग दीएं पिशुलि हो है । ताकौं पूर्व सूत्र के अनुसारि दोय घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात अर एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात सातगुणा उत्कृष्ट संख्यात का तौ गुणकार अर दश तीन, दश दोय, दश एक का भागहार भया । इनि विषैं पिशुलि का गुणकार विषैं दोय घटाया था, तीहिं संबंधी प्रथम ऋण का प्रमाण साधिक

जघन्य कौं दोय का अर एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात का अर सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात का गुणकार बहुरि दोय बार[1] उत्कृष्ट संख्यात का अर छह का अर तीन बार दश का भागहार कीएं हो है । ताकौं जुदा स्थापि, अवशेष का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं एक घाटि सात गुणा उत्कृष्ट संख्यात का अर गुणचास का तौ गुणकार भया । बहुरि उत्कृष्ट संख्यात छह हजार का भागहार हो है । इहां गुणकार विषैं एक घाटि है; तींहि संबंधी द्वितीय ऋण का प्रमाण साधिक जघन्य कौं गुणचास का गुणकार बहुरि उत्कृष्ट संख्यात अर छह हजार का भागहार कीएं हो है । ताकौं जुदा स्थापि, अवशेष का अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं तीन सैं तियालीस का गुणकार अर छह हजार का भागहार हो है । इहां गुणकार मैं तेरह घटाइ, जुदा स्थापिए । तहां साधिक जघन्य कौं तेरह का गुणकार अर छह हजार का भागहार जानना । अवशेष साधिक जघन्य कौं तीन सैं तीस का गुणकार अर छह हजार का भागहार रह्या । तहां तीस करि अपवर्तन कीएं साधिक जघन्य कौं ग्यारह का गुणकार, दश गुणा बीस का भागहार भया; सो एक जायगा स्थापिए । बहुरि इहां तेरह गुणकार मैं स्यों काढि जुदे स्थापि थे, तींहि संबंधी प्रमाण तैं प्रथम, द्वितीय ऋण संबंधी प्रमाण संख्यातगुणा घाटि है । तातैं किंचित् ऊन करि साधिक जघन्य किंचिदून तेरह गुणा कौं छह हजार का भाग दीएं, इतना घन अवशेष रह्या, सो जुदा स्थापिए । बहुरि प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी गुणकार विषैं एक घटाया था, तिंहि संबंधी ऋण का प्रमाण साधिक जघन्य कौं सात का गुणकार, बहुरि उत्कृष्ट संख्यात अर दोय सैं का भागहार कीएं हो है । ताकौं जुदा स्थापि, अवशेष पूर्वोक्त प्रमाण साधिक जघन्य कौं उत्कृष्ट संख्यात का गुणकार अर दोय बार सात का गुणकार, अर उत्कृष्ट संख्यात दश दोय दश एक का भागहार, ताका अपवर्तन वा परस्पर गुणन कीएं, साधिक जघन्य कौं गुणचास का गुणकार दोय सैं का भागहार भया । यामैं पूर्वोक्त पिशुलि संबंधी ग्यारह गुणकार मिलाएं, साधिक जघन्य कौं साठि का गुणकार दोय सैं का भागहार भया । इहां बीस करि अपवर्तन कीएं, साधिक जघन्य कौं तीन का गुणकार, दश का भागहार भया । यामैं प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण साधिक जघन्य कौं सात का गुणकार, दश का भागहार जोडैं, दश करि अपवर्तन कीएं, वृद्धि का प्रमाण साधिक जघन्य हो है । यामैं मूल साधिक जघन्य जोडैं, लब्ध्यक्षर दूणा हो है । बहुरि पूर्वैं पिशुलि संबंधी ऋण रहित घन विषैं किंचिदून तेरह

---

१. ब, ग प्रति में 'तीनबार' मिलता है ।

का गुणकार था; तिस विषैं प्रक्षेपक - प्रक्षेपक संबंधी ऋण संख्यात गुणा घाटि है। ताकौं घटावने के अर्थि बहुरि किंचित् ऊन कीएं, जो साधिक जघन्य कौं दोय बार किंचिदून तेरह का गुणकार अर छह हजार का भागहार भया। सो इतना प्रमाण पूर्वोक्त दूणा लब्ध्यक्षर विषैं जोडैं, साधिक दूणा हो है। असें प्रथम तौ संख्यात भागवृद्धि युक्त जे स्थान, तिनि विषैं उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थाननि का सात दशवां भाग प्रमाण स्थान पिशुलि वृद्धि पर्यंत भए लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि तिसही का इकतालीस छप्पनवां भाग प्रमाण स्थान प्रक्षेपक- प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं, लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि आगें भी संख्यात (भाग) वृद्धि का पहिला स्थान तैं लगाइ उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थाननि का तीन चौथा भाग मात्र स्थान प्रक्षेपक – प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं, लब्ध्याक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि तैसें ही संख्यात वृद्धि का पहिला स्थान तें लगाइ, उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थान प्रक्षेपक वृद्धिपर्यंत भएं, लब्ध्यक्षरज्ञान दूणा हो है।

इहां प्रश्न – जो साधिक जघन्य ज्ञान दूणा भया सो साधिक जघन्य ज्ञान सौ पर्यायसमास ज्ञान का मध्य भेद है, इहां लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा कैसे कह्या है ?

ताका समाधान – जो उपचार करि पर्यायसमास ज्ञान के भेद कौं भी लब्ध्यक्षर कहिए। जातैं मुख्यपनैं लब्ध्यक्षर है नाम जाका, असा जो पर्याय ज्ञान, ताका समीपवर्ती है।

भावार्थ – इहां असा जो लब्ध्यक्षर नाम तें इहां पर्यायसमास का यथासंभव मध्यभेद का ग्रहण करना। बहुरि चकार करि गरवा कहिए असें स्थान प्रति प्राप्त होइ, लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है, असा अर्थ जानना।

एवं असंखलोगा, अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
ते पज्जायसमासा, अक्खरगं उवरि वोच्छामि ॥३३२॥[1]

एवमसंख्यलोकाः, अनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि।
ते पर्यायसमासा अक्षरगमुपरि वक्ष्यामि ॥३३२॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका।

टीका – याप्रकार अनक्षरात्मक जो पर्यायसमास ज्ञान के भेद, तिनि विषैं षट्स्थान (पतित) वृद्धि असंख्यातलोकमात्र बिरियां हो है । सो ही कहिए है - जो एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग का वर्ग करि तिस ही के घन कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने भेदनि विषैं एक बार षट्स्थान होइ, तौ असंख्यात लोक प्रमाण पर्यायसमास ज्ञान के भेदनि विषैं केती बार षट्स्थान होइ; ऐसैं त्रैराशिक करना । तहां प्रमाणराशि एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग का वर्ग करि गुणित, ताहीका घनप्रमाण अर फलराशि एक, इच्छाराशि असंख्यात लोक पर्याय-समास के स्थानमात्र, तहां फल करि इच्छा कौं गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, जेता लब्धराशि का प्रमाण आवै, तितनी बार सर्व भेदनि विषैं षट्स्थान पतित वृद्धि हो है । सो भी असंख्यात लोक मात्र हो है । जातैं असंख्यात के भेद घने हैं । तातैं हीनाधिक होतैं भी असंख्यात लोक ही कहिए । याप्रकार असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान वृद्धि करि वर्धमान जघन्य ज्ञान तैं अनंत भागवृद्धि लीएं प्रथम स्थान तैं लगाइ, अंत का षट्स्थान विषैं अंत का अनंत भागवृद्धि लीएं, स्थान पर्यंत जेते ज्ञान के भेद, ते ते सर्व पर्यायसमास ज्ञान के भेद जानने ।

अब इहांतैं आगैं अक्षरात्मक श्रुतज्ञान को कहै हैं –

चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं ।
अत्थक्खरं तु णाणं, होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३३३॥[1]

चरमोर्वंकेणावहितार्थाक्षरगुणितचरमोर्वंकम् ।
अर्थाक्षरं तु ज्ञानं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३३३॥

टीका – पर्याय समास ज्ञान विषैं असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान कहे । तिनिविषैं वृद्धि कौं कारण संख्यात, असंख्यात, अनंत ते अवस्थित हैं; नियमरूप प्रमाण धरैं हैं । संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र, असंख्यात का असंख्यात लोक मात्र, अनंत का प्रमाण जीवराशि मात्र जानना । बहुरि अंत का षट्स्थान विषैं अंत का उर्वंक जो अनंतभागवृद्धि, ताकौं लीएं पर्याय समास ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट भेद, तातैं आगैं अष्टांक कहिए, अनंत गुणवृद्धि संयुक्त जो ज्ञान का स्थान, सो अर्थाक्षर श्रुतज्ञान है । पूर्वै अष्टांक का प्रमाण नियमरूप जीवराशि मात्र गुणा था, इहां अष्टांक का

---

1. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका ।

प्रमाण, सो न जानना, अन्य जानना । सोई कहिए है - असंख्यात लोक मात्र षट्स्थाननि विषें जो अंत का षट्स्थान, ताका अंत का ऊर्वंक वृद्धि लीएं जो सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान ताकौं एक बार अष्टांक करि गुणें, अर्थाक्षर ज्ञान हो है । तातैं याकौं अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान कहिए ।

सो अष्टांक कितने प्रमाण लीएं हो है; सो कहिए है - श्रुत केवलज्ञान एक घाटि, एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षरनि का समूह रूप है । ताकौं एक घाटि, एकट्ठी का भाग दीएं, एक अक्षर का प्रमाण आवै है । तहां जेता ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण है; ताकौं सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान का भेदरूप ऊर्वंक के अविभाग प्रतिच्छेदनि के प्रमाण का भाग दीएं जेता प्रमाण आवै, सोई इहां अष्टांक का प्रमाण जानना । तातैं अब तिस अर्थाक्षर ज्ञान की उत्पत्ति कौं कारण, जो अंत का ऊर्वंक, ताकरि भाजित जो अर्थाक्षर, तीहि प्रमाण अष्टांक करि गुण्य, जो अंत का ऊर्वंक, ताकौं गुणें; अर्थाक्षर ज्ञान हो है । यह कथन युक्त है । असा जिनदेव कह्या है । बहुरि यह कथन अंत विषें धर्या हूवा दीपक समान जानना । तातैं असें ही पूर्वें भी चतुरंक आदि अष्टांक पर्यंत षट् स्थाननि के भागवृद्धि युक्त वा गुणवृद्धि युक्त जे स्थान हैं, ते सर्व अपना अपना पूर्व ऊर्वंक युक्त स्थान का भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितने प्रमाण करि तिस पूर्वस्थान तैं गुणित जानने । असें श्रुत केवलज्ञान का संख्यातवां भाग मात्र अर्थाक्षर श्रुतज्ञान जानना । अर्थ का ग्राहक अक्षर तैं उत्पन्न भया जो ज्ञान, सो अर्थाक्षर ज्ञान कहिए । अथवा अर्यते कहिए जानिए, सो अर्थ, अर द्रव्य करि न विनशै सो अक्षर । जो अर्थ सोई अक्षर, ताका जो ज्ञान, सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये । अथवा अर्यते कहिये श्रुतकेवलज्ञान का संख्यातवां भाग करि जाका निश्चय कीजिये; असा एक अक्षर, ताका ज्ञान, सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये ।

अथवा अक्षर तीन प्रकार है --- लब्धि अक्षर, निर्वृत्ति अक्षर, स्थापना अक्षर । तहां पर्यायज्ञानावरण आदि श्रुतकेवलज्ञानावरण पर्यंत के क्षयोपशम तैं उत्पन्न भई जो पदार्थ जानने की शक्ति, सो लब्धिरूप भाव इंद्रिय, तीहिं स्वरूप जो अक्षर कहिये अविनाश, सो लब्धि - अक्षर कहिये । जातैं अक्षर ज्ञान उपजने कौं कारण है । बहुरि कंठ, होठ, तालवा आदि अक्षर बुलावने के स्थान अर होठनि का परस्पर मिलना, सो स्पृष्टता ताकौं आदि देकरि प्रयत्न, तीहि करि उत्पन्न भया शब्द-

रूप अकारादि स्वर अर ककारादिक व्यंजन अर संयोगी अक्षर, सो निर्वृत्ति अक्षर कहिये । बहुरि पुस्तकादि विषैं निज देश की प्रवृत्ति के अनुसारि अकारादिकनि का आकार करि लिखिए सो स्थापना अक्षर कहिये । इस प्रकार जो एक अक्षर, ताकौं सुनने तैं भया जो अर्थ का ज्ञान, सो अक्षर श्रुतज्ञान है; असा जिनदेवने कह्या है । उन ही के अनुसारि मैं भी कुछ कह्या है ।

आगें श्री माधवचंद्र त्रैविद्यदेव शास्त्र के विषय का प्रमाण कहैं हैं —

पण्णवणिज्जा भावा, अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं ।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो ॥३३४॥

प्रज्ञापनीया भावा, अनंतभागस्तु अनभिलाप्यानाम् ।
प्रज्ञापनीयानां पुनः, अनंतभागः श्रुतनिबद्धः ॥३३४॥

टीका – अनभिलाप्यानां कहिए वचन गोचर नाहीं, केवलज्ञान ही के गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ, तिनके अनंतवें भागमात्र जीवादिक अर्थ, ते **प्रज्ञापनीयाः** कहिए तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि करि कहने में आवें असे हैं । बहुरि तीर्थंकर की दिव्यध्वनि करि पदार्थ कहने में आवै हैं तिनके अनंतवें भागमात्र द्वादशांग श्रुतविषैं व्याख्यान कीजिए है । जो श्रुतकेवली कौं भी गोचर नाहीं; असा पदार्थ कहने की शक्ति दिव्यध्वनि विषैं पाइए है । बहुरि जो दिव्यध्वनि करि न कह्या जाय, तिस अर्थ कौं जानने की शक्ति केवलज्ञान विषैं पाइए है । असा जानना ।

आगें दोय गाथानि करि अक्षर समास कौं प्ररूपैं हैं —

एयक्खरादु उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जे खलु उड्ढे, पदणामं होदि सुदणाणं ॥३३५॥ [1]

एकाक्षरात्तुपरि, एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्येये खलु वृद्धे, पदनाम भवति श्रुतज्ञानम् ॥३३५॥

टीका – एक अक्षर तें उपज्या जो ज्ञान, ताके ऊपरि पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धि का अनुक्रम बिना एक एक अक्षर बधता सो दोय अक्षर, तीन अक्षर, च्यारि अक्षर इत्यादिक एक घाटि पद का अक्षर पर्यंत अक्षर समुदाय का सुनने करि उपजैं असैं अक्षर समास के भेद संख्यात जानने । ते दोय घाटि पद के अक्षर जेते होंइ

1. – षट्खंडागम-धवला, पुस्तक ६, पृष्ठ २२ की टीका ।

तितने हैं। बहुरि इसके अनंतरि उत्कृष्ट अक्षर समास के विषै एक अक्षर बधतें पद-नामा श्रुतज्ञान हो है।

सोलस-सय-चउतीसा, कोडी तियसीदिलक्खयं चेव।
सत्तसहस्साट्ठसया, अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥३३६॥[१]

षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षकं चैव।
सप्तसहस्राण्यष्टशतानि अष्टाशीतिश्च पदवर्णाः ॥३३६॥

टीका – पद तीन प्रकार है – अर्थपद, प्रमाणपद, मध्यमपद।

तहां जिहि अक्षर समूह करि विवक्षित अर्थ जानिये, सो तौ अर्थपद कहिये। जैसें कह्या कि **'गामभ्याज शुक्लां दंडेन'** इहां इस शब्द के च्यारि पद हैं – १. गां, २. अभ्याज, ३. शुक्लां, ४. दंडेन। ये च्यारि पद भए। अर्थ याका यहु - जो गाय कौं घेरि, सुफेद कौं दंड करि। असें कह्या कि **'अग्निमानय'** इहां दोय पद भए। अग्नि, आनय। अर्थ यहु जो – अग्नि को ल्याव। असें विवक्षित अर्थ के अर्थी एक, दोय आदि अक्षरनि का समूह, ताकौं अर्थपद कहिये।

बहुरि प्रमाण जो संख्या, तिहिंनें लीएं, जो पद कहिये अक्षर समूह, ताकौं प्रमाण पद कहिये। जैसें अनुष्टुप छंद के च्यारि पद, तहां एक पद के आठ अक्षर होंइ। **'नमः श्रीवर्द्धमानाय'** यहु एक पद भया। याका अर्थ यहु जो श्रीवर्धमान स्वामी के अर्थि नमस्कार होहु; असें प्रमाणपद जानना।

बहुरि सोलासें चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसैं अठ्यासी (१६३४८३०७८८८) गाथा विषें कहे अपुनरुक्त अक्षर, तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनिविषें अर्थ पद अर प्रमाण पद तौ हीन - अधिक अक्षरनि का प्रमाण कौं लीएं, लोकव्यवहार करि ग्रहण कीएं हैं। तातैं लोकोत्तर परमागम विषें गाथा विषें कही जो संख्या, तीहिं विषें वर्तमान जो मध्यमपद, ताहीका ग्रहण जानना।

आगैं संघात नामा श्रुतज्ञान कौं प्ररूपैं हैं –

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २३ की टीका।

एयपदादो उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जसहस्सपदे, उड्ढे संघादणाम सुदं ॥३३७॥[1]

एकपदादुपरि, एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्यातसहस्रपदे, वृद्धे संघातनाम श्रुतम् ॥३३७॥

टीका – एक पद के ऊपरि एक एक अक्षर बधतैं - बधतैं एक पद का अक्षर प्रमाण पदसमास के भेद भएं, पदज्ञान दूणा भया । बहुरि इसतैं एक- एक अक्षर बधतैं बधतैं पदका अक्षर प्रमाण पदसमास के भेद भएं, पदज्ञान तिगुणा भया । ऐसैं ही एक एक अक्षर की बधवारी लीएं पद का अक्षर प्रमाण पदसमास ज्ञान के भेद होत संतैं चौगुणा पंचगुणा आदि संख्यात हजार करि गुण्या हूवा पद का प्रमाण में एक अक्षर घटाइयें; तहां पर्यंत पदसमास के भेद जानने । पदसमास ज्ञान का उत्कृष्ट भेद विषें सोई एक अक्षर मिलायें, संघात नामा श्रुतज्ञान हो है । सो च्यारि गति विषें एक गति के स्वरूप का निरूपणहारे जो मध्यमपद, तिनिका समूहरूप संघात नामा श्रुतज्ञान के सुनने तें जो अर्थज्ञान भया, ताकौं संघात श्रुतज्ञान कहिये ।

आगें प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान के स्वरूप कौं कहै हैं –

एक्कदर-गदि-णिरूवय-संघादसुदादु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे, संघादे उड्ढम्हि पडिवत्ती ॥३३८॥

एकतरगतिनिरूपकसंघातश्रुतादुपरि पूर्वं वा ।
वर्णे संख्येये, संघाते वृद्धे प्रतिपत्तिः ॥३३८॥

टीका – एक गति का निरूपण करणहारा जो संघात नामा श्रुतज्ञान, ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकार करि एक एक अक्षर की बधवारी लीयें, एक एक पद की वृद्धि करि संख्यात हजार पद का समूहरूप संघात श्रुत होइ । बहुरि इस ही अनुक्रम तें संख्यात हजार संघात श्रुत होइ । तिहि में स्यों एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत संघात समास के भेद जानना । बहुरि अंत का संघात समास श्रुतज्ञान का उत्कृष्ट भेद विषें वह[2] अक्षर मिलाइये, तब प्रतिपत्तिक नामा श्रुतज्ञान हो है । सो नरकादि च्यारि गति

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २३ की टीका ।
२. ब, घ, प्रति में 'वह' शब्द मिलता है ।

का स्वरूप विस्तार पनैं निरूपण करनहारा जो प्रतिपत्तिक ग्रंथ, ताके सुनने तें जो अर्थज्ञान भया, ताकौं प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहिए।

आगें अनुयोग श्रुतज्ञान कौं प्ररूपैं हैं –

चउगइ-सरूवरूवय-पडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे, पडिवत्तीउड्ढम्हि अणियोगं ॥३३९॥[1]

चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तितस्तु उपरि पूर्वं वा।
वर्णे संख्याते, प्रतिपत्तिवृद्धे अनुयोगं ॥३३९॥

टीका – च्यारि गति के स्वरूप का निरूपण करणहारा प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान के ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षर की वृद्धि लीयें संख्यात हजार पदनि का समुदायरूप संख्यात हजार संघात अर संख्यात हजार संघातनि का समूह प्रतिपत्तिक, सो ऐसें प्रतिपत्तिक संख्यात हजार होइ; तिनिविषें एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञान के भेद भए। बहुरि तिसका अंत भेद विषें वह एक अक्षर मिलायें, अनुयोग नामा श्रुतज्ञान भया, सो चौदै मार्गणा के स्वरूप का प्रतिपादक अनुयोग नामा श्रुत, ताके सुनने तें जो अर्थज्ञान भया, ताकौं अनुयोग नामा श्रुतज्ञान कहिए।

आगें प्राभृतप्राभृतक श्रुतज्ञान कौं दोय गाथानि करि कहै हैं –

चोद्दस-मग्गण-संजुद-अणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे।
चउरादी-अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥३४०॥[2]

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगादुपरि वर्धिते वर्णे।
चतुराद्यनुयोगे द्विकवारं प्राभृतं भवति ॥३४०॥

टीका – चौदहै मार्गणा करि संयुक्त जो अनुयोग, ताके ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षर की वृद्धि करि संयुक्त पद-संघात प्रतिपत्तिक, इनिकौं पूर्वोक्त अनुक्रम तैं वृद्धि होतें च्यारि आदि अनुयोगनि की वृद्धि विषें एक अक्षर घटाइये। तहां पर्यंत अनुयोग समास के भेद भए। बहुरि तिसका अंत भेद विषें वह एक अक्षर मिलायें, प्राभृत प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है।

---

१ षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २४ की टीका।
२ षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २४ की टीका।

अहियारो पाहुडयं, एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।
पाहुडपाहुडणामं, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥३४१॥

अधिकारः प्राभृतमेकार्थः प्राभृतस्याधिकारः ।
प्राभृतप्राभृतनामा, भवति इति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥३४१॥

टीका – आगें कहियेगा, जो वस्तु नामा श्रुतज्ञान, ताका जो एक अधिकार, ताहीका नाम प्राभृत कहिये । बहुरि जो उस प्राभृतक का एक अधिकार, ताका नाम प्राभृतक प्राभृतक कहिये; असें जिनदेवनें कह्या है ।

आगें प्राभृतक का स्वरूप कहैं हैं –

दुगवारपाहुडादो, उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ।
दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥३४२॥[1]

द्विकवारप्राभृतादुपरि वर्णे क्रमेण चतुर्विंशतौ ।
द्विकवारप्राभृते संवृद्धे खलु भवति प्राभृतकम् ॥३४२॥

टीका – द्विकवार प्राभृतक जो प्राभृतक - प्राभृतक, ताके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रम तैं एक एक अक्षर की वृद्धि लीयें चौबीस प्राभृतक - प्राभृतकनि की वृद्धि विषैं एक अक्षर घटाइये, तहां पर्यंत प्राभृतक - प्राभृतक समास के भेद जानने । बहुरि ताका अंत भेद विषैं एक अक्षर मिलायें; प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है ।

भावार्थ – एक एक प्राभृतक नामा अधिकार विषैं चौबीस-चौबीस प्राभृतक-प्राभृतक नामा अधिकार हो है ।

आगें वस्तु नामा श्रुतज्ञान कौं प्ररूपै हैं –

वीसं वीसं पाहुड-अहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी, कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥३४३॥[2]

विंशतौ विंशतौ प्राभृताधिकारे एको वस्त्वधिकारः ।
एकैकवर्णवृद्धिः, क्रमेण सर्वत्र ज्ञातव्या ॥३४३॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २४ की टीका ।

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २५ की टीका ।

टीका – तिहिं प्राभृतक के ऊपर पूर्वोक्त अनुक्रम तैं एक एक अक्षर की वृद्धि लै लीएं, पदादिक की वृद्धि करि संयुक्त बीस प्राभृतक की वृद्धि होतैं संतै, वामैं एक अक्षर घटाइये, तहां पर्यंत प्राभृतक समास के भेद जानने । बहुरि ताका अंत भेद विषैं वह एक अक्षर मिलायें, वस्तु नामा अधिकार हो है ।

भावार्थ – पूर्व संबंधी एक एक वस्तु नामा अधिकार विषैं बीस बीस प्राभृतक पाइये हैं । बहुरि सर्वत्र अक्षर समास का प्रथम भेद तैं लगाइ पूर्वसमास का उत्कृष्ट भेद पर्यंत अनुक्रम तैं एक एक अक्षर बढावना । बहुरि पद का बढावना, बहुरि समास का बढावना इत्यादिक परिपाटी करि यथासंभव वृद्धि सबनि विषैं जानना; सो सूत्र के अनुसारि व्याख्यान टीका विषैं करते ही आये हैं ।

आगैं तीन गाथानि करि पूर्व नामा श्रुतज्ञान कौं कहैं हैं –

दसचोदसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च ।
वीसं तीसं पण्णारसं च, दस चदुसु वत्थूणं ।।३४४।।

दश चतुर्दशाष्ट अष्टादशकं द्वादश च द्वादश षोडश च ।
विंशतिः त्रिंशत् पंचदश च, दश चतुर्षु वस्तूनाम् ।।३४४।।

टीका – तिहिं वस्तु श्रुत के ऊपरि एक एक अक्षर की वृद्धि लीएं, अनुक्रम तैं पदादिक की वृद्धि करि संयुक्त क्रम तैं दश आदि वस्तुनि की वृद्धि होत संतै, उनमैं सौं एक एक अक्षर घटावनै पर्यंत वस्तु समास के भेद जानने । बहुरि तिनके अंत भेदनि विषैं अनुक्रम तैं एक एक अक्षर मिलाएं, चौदह पूर्व नामा श्रुतज्ञान होइ । तहां आगैं कहिए हैं ।

उत्पाद नामा पूर्व आदि चौदह पूर्व, तिनिविषैं अनुक्रम तैं दश (१०), चौदह (१४), आठ (८), अठारह (१८), बारह (१२), बारह (१२), सोलह (१६), बीस (२०), तीस (३०), पंद्रह (१५), दश (१०), दश (१०), दश (१०); दश (१०) वस्तु नामा अधिकार पाइए हैं ।

---

१ – षट्खंडागम–धवला पुस्तक ६, पृष्ठ २५ की टीका ।

उप्पाय-पुव्वगाणिय-विरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे, आदाकम्मप्पवादे य ॥३४५॥

पच्चक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे, कमसोथ तिलोयबिंदुसारे य ॥३४६॥

उत्पादपूर्वाग्रायणीयवीर्यप्रवादास्तिनास्तिकप्रवादानि ।
ज्ञानसत्यप्रवादे, आत्मकर्मप्रवादे च ॥३४५॥

प्रत्याख्यानं वीर्यानुवादकल्याणप्राणवादानि च ।
क्रियाविशालपूर्वं, क्रमशः अथ त्रिलोकबिंदुसारं च ॥३४६॥

टीका – चौदह पूर्वनि के नाम अनुक्रम तैं असैं जानने । १. उत्पाद, २. आग्रायणीय, ३. वीर्यप्रवाद, ४. अस्ति नास्ति प्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यानप्रवाद, १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याणवाद, १२. प्राणवाद, १३. क्रियाविशाल, १४. त्रिलोकबिंदुसार ये चौदह पूर्वनि के नाम जानने ।

इनिकै लक्षण आगैं कहेंगे – इहां असैं जानना पूर्वोक्त वस्तुश्रुतज्ञान के ऊपरि क्रम तैं एक एक अक्षर की वृद्धि लीएं, पदादिक की वृद्धि होतैं, दश वस्तु प्रमाण में स्यों एक अक्षर घटाइए, तहां पर्यंत वस्तु समास ज्ञान के भेद हैं । ताके अंत भेद विषैं वह एक अक्षर मिलाएं, उत्पाद पूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है ।

बहुरि उत्पाद पूर्व श्रुतज्ञान के ऊपरि एक-एक अक्षर-अक्षर की वृद्धि लीयें, पदादि की वृद्धि संयुक्त चौदह वस्तु होंहि ।

तामैं एक अक्षर घटाइये, तहां पर्यंत उत्पादपूर्व समास के भेद जानने । ताके अंत भेद विषैं वह एक अक्षर अधैं, अग्रायणीय पूर्व नामा श्रुतज्ञान हो हैं । असैं ही क्रम तैं आगें आगें आठ आदि वस्तु की वृद्धि होतैं, तहां एक अक्षर घटावने पर्यंत तिस तिस पूर्व समास के भेद जानने । तिस तिस का अंत भेद विषैं सो सो एक अक्षर मिलाएं, वीर्य प्रवाद आदि पूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है । अंत का त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व आगें ताका समास के भेद नाहीं है । जातैं याके आगें श्रुतज्ञान के भेद का अभाव है ।

आगें चौदह पूर्वनि विषें वस्तुनामा अधिकारनि की वा प्राभृतनामा अधिकारनि की संख्या कहै हैं —

पणणउदिसया वत्थू, पाहुडया तियसहस्सणवयसया ।
एदेसु चोद्दसेसु वि, पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥३४७॥

पंचनवतिशतानि वस्तूनि, प्राभृतकानि त्रिसहस्रनवशतानि ।
एतेषु चतुर्दशस्वपि, पूर्वेषु भवंति मिलितानि ॥३४७॥

टीका – जो उत्पाद आदि त्रिलोकबिंदुसार पर्यंत चौदह पूर्व, तिनिविषैं मिलाए हुवे, दश आदि वस्तु नामा अधिकार सर्व एक सौ पिच्याणवै (१९५) हो हैं । बहुरि एक एक वस्तु विषैं बीस बीस प्राभृतक कहे, ते सर्व प्राभृतक नामा अधिकार तीन हजार नव सै (३९००) जानने ।

आगे पूर्व कहे जे श्रुतज्ञान के बीस भेद, तिनिका उपसंहार दोय गाथानि करि कहै हैं —

अत्थक्खरं च पदसंघातं, पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य, पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥३४८॥

कमवण्णुत्तरवड्ढिय, ताण समासा य अक्खरगदाणि ।
णाणवियप्पे वीसं, गंथे बारस य चोद्दसयं ॥३४९॥

अर्थाक्षरं च पदसंघातं, प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च च, प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥३४८॥

क्रमवर्णोत्तरवर्धिते, तेषां समासाश्च अक्षरगताः ।
ज्ञानविकल्पे विंशतिः, ग्रंथे द्वादश च चतुर्दशकम् ॥३४९॥

टीका – अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतकप्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु, पूर्व ए नव भेद बहुरि एक एक अक्षर की वृद्धि आदि यथासंभव वृद्धि लीए इन ही अक्षरादिकनि के समास तिनि करि नव भेद, ऐसैं सर्व मिलि करि अठारह भेद, अक्षरात्मक द्रव्यश्रुत के हैं । अर ज्ञान की अपेक्षा इन ही द्रव्यश्रुतनि के सुनने तैं जो ज्ञान भया, सो उस ज्ञान के भी अठारह भेद

कहिए । बहुरि अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के पर्याय अर पर्यायसमास ए दोय भेद मिलाएं; सर्व श्रुतज्ञान के बीस भेद भए । बहुरि ग्रंथ जो शास्त्र, ताकी विवक्षा करिए तौ आचारांग आदि द्वादश अंग अर उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व अर चकारतें सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक, तिनिस्वरूप द्रव्यश्रुत जानना । ताके सुनने तें जो ज्ञान भया, सो भाव श्रुतज्ञान जानना । पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिकमय तौ द्रव्यश्रुत है । ताके सुनने तें जो श्रुतज्ञान का पर्यायरूप ज्ञान भया, सो भावश्रुत है ।

अब जो पर्याय आदि भेद कहे, तिनि शब्दनि की निरुक्ति व्याकरण अनुसारि कहिए हैं । **परीयंते** कहिए सर्व जीव जाकरि व्याप्त हैं सो पर्याय कहिए । पर्यायज्ञान बिना कोऊ जीव नाहीं । केवल ज्ञानीनि के भी पर्यायज्ञान संभवै है । जैसें किसी कें कोटि धन पाइए है, तो वाकै एक धन तौ सहज ही वामें आया तैसें महाज्ञान विषैं स्तोकज्ञान गर्भित भया जानना ।

बहुरि **अक्ष** कहिए कर्णइंद्रिय, ताकौं अपना स्वरूप कौं राति कहिए ज्ञान द्वार करि दे है, तातें अक्षर कहिए ।

बहुरि **पद्यते** कहिए जाकरि आत्मा अर्थ कौं प्राप्त होइ, ताकौं पद कहिए ।

बहुरि **सं** कहिए संक्षेप तैं, **हन्यते, गम्यते** कहिए जानिए एक गति का स्वरूप जिहि करि, सो संघात कहिए ।

बहुरि **प्रतिपद्यंते** कहिए विस्तार तैं जानिए हैं, च्यारि गति जाकरि, सो प्रतिपत्ति कहिए । नामसंज्ञा विषैं **क** प्रत्यय तैं प्रतिपत्तिक कहिए ।

बहुरि **अनु** कहिए गुणस्थाननि के अनुसारि, **युज्यंते** कहिए संबंधरूप जीव जा विषैं कहिए है, सो अनुयोग कहिए ।

बहुरि **प्रकर्षेण** कहिए नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव । अथवा निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, अथवा सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव, अल्पबहुत्व इत्यादि विशेषकरि **आभृतं** कहिए परिपूर्ण होइ, ऐसा जो वस्तु का अधिकार, सो प्राभृत कहिए । अर जाकी प्राभृत संज्ञा होइ, सो प्राभृतक कहिए । बहुरि प्राभृतक का जो अधिकार, सो प्राभृतकप्राभृतक कहिए ।

बहुरि **वसंति** कहिए पूर्वरूपी समुद्रका अर्थ, जिस विषैं एकोदेशपनैं पाइए, सो पूर्व का अधिकार वस्तु कहिए।

बहुरि **पूरयति** कहिए शास्त्र के अर्थ कौं पोषैं, सो पूर्व कहिए। असैं दश भेदनि की निरुक्ति कही।

बहुरि **सं** कहिए संग्रह करि पर्याय आदि पूर्व पर्यंत भेदनि कौं अंगीकार करि **अस्यंते** कहिए प्राप्त करिए, भेद करिए, ते समास कहिए।

पर्याय ज्ञान तैं जे पीछैं भेद, तिनकौं पर्याय समास कहिए।

अक्षर ज्ञान तैं जे पीछैं भेद, तिनकौं अक्षर समास कहिए। असैं ही दश भेद जानने।

असैं पूर्व चौदह अर वस्तु एक सौ पिच्याणवैं अर प्राभृतक तीन हजार नव सैं अर प्राभृतक - प्राभृतक तिराणवै हजार छह सैं अर अनुयोग तीन लाख चौहत्तरि हजार च्यारि सैं अर प्रतिपत्तिक अर संघात अर पद क्रम तैं संख्यात हजार गुणे अर एक पद के अक्षर सोलह सौ चौंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठ सैं अठ्यासी अर समस्त श्रुत के अक्षर एक घाटि एकट्ठी प्रमाण, इनिकौं पद के अक्षरनि का भाग दीएं, जो लब्धराशि होइ सो द्वादशांग के पदों का प्रमाण जानना।

अब शेष अक्षर हैं, ते अंगबाह्य श्रुत के जानने।

तहां प्रथम द्वादशांग के पदनि की संख्या कहैं हैं —

बारुत्तरसयकोडी, तेसीदी तह्य होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा, पंचेव पदाणि अंगाणं ॥३५०॥

द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिस्तथा च भवंति लक्षाणाम्।
अष्टापंचाशत्सहस्राणि, पंचैव पदानि अंगानाम् ॥३५०॥

टीका — एक सौ बारह क्रोडि तियासी लाख अठावन हजार पांच पद (११२,८३,५८,००५) सर्व द्वादशांग के जानने। **अंग्यते** कहिए मध्यम पदनि करि जो लखिये, सो अंग कहिए। अथवा सर्व श्रुत का जो एक एक आचारांगादिक रूप अवयव, सो अंग कहिए। असैं अंग शब्द की निरुक्ति है।

आगें जो अंगबाह्य प्रकीर्णक, तिनिके अक्षरनि की संख्या कहै हैं -

अडकोडिएयलक्खा, अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ।
पण्णत्तरि वण्णाओ, पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५१॥

अष्टकोट्येकलक्षाणि, अष्टसहस्राणि च एकशतकं च ।
पंचसप्ततिः वर्णाः, प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥३५१॥

टीका - बहुरि सामायिकादिक प्रकीर्णकनि के अक्षर आठ कोडि एक लाख आठ हजार एक सौ पिचहत्तरि (८०१०८१७५) जानने ।

आगें इस अर्थ के निर्णय करने के अर्थि च्यारि गाथानि करि अक्षरनि की प्रक्रिया कहै हैं -

तेत्तीस वेंजणाइं, सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारि य जोगवहा, चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥३५२॥

त्रयस्त्रिंशत् व्यंजनानि, सप्तविंशतिः स्वरास्तथा भणिताः ।
चत्वारश्च योगवहाः, चतुःषष्टिः मूलवर्णाः ॥३५२॥

टीका - भो कहिये, हो भव्य ! तेतीस (३३) तौ व्यंजन अक्षर हैं । आधी मात्रा जाके बोलने के काल विषैं होइ, ताकौं व्यंजन कहिये - क्, ख्, ग्, घ्, ङ् । च्, छ्, ज्, झ्, ञ् । ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् । त्, थ्, द्, ध्, न् । प्, फ्, ब्, भ्, म् । य्, र्, ल्, व् । श्, ष्, स्, ह् ए तेतीस व्यंजन अक्षर हैं ।

बहुरि सत्ताईस स्वर अक्षर हैं । अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ ए नव अक्षर, इनिके एक - एक के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तीन भेदनि करि गुणैं सत्ताईस भेद हो हैं । जैसे - अ, आ, आ३ । इ, ई, ई ३ । उ, ऊ, ऊ ३ । ऋ, ॠ, ॠ ३ । लृ, ॡ, ॡ ३ । ए, ए, ए ३ । ऐ, ऐ, ऐ ३ । ओ, ओ, ओ ३ । औ, औ, औ ३ । ए सत्ताईस स्वर हैं । जाकी एक मात्रा होय ताकौं ह्रस्व कहिये । जाकी दोय मात्रा होइ, ताकौं दीर्घ कहिए । जाकी तीन मात्रा होइ ताकौं प्लुत कहिए ।

बहुरि च्यारि योगवाह अक्षर हैं । अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तहां अं ऐसा अक्षर अनुस्वार है । अः ऐसा अक्षर विसर्ग है । कः ऐसा अक्षर जिह्वामूलीय है । पः ऐसा अक्षर उपध्मानीय है । ए चौसठि मूल अक्षर अनादिनि-

धन परमागम विषैं प्रसिद्ध हैं । सिद्धो वर्णः समाम्नायः' इति वचनात् । व्यज्यते कहिए अर्थ, जिनिकरि प्रकट करिए ते व्यंजन कहिए । स्वरंति कहिए अर्थ कौं कहैं ते स्वर कहिए । योगं कहिए अक्षर के संयोग को वहंति कहिए प्राप्त होंइ ते, योगवाह कहिए । मूल कहिए (और) अक्षर के संयोग रहित संयोगी अक्षर उपजने कौं कारण ये चौसठि मूलवर्ण हैं । इस अर्थ करि द्वितीयादि अक्षर के संयोग रहित चौसठि अक्षर हैं । इनिविषैं दोय आदि अक्षर मिलें संयोगी हो है । जैसें क्कार व्यंजन, अकार स्वर मिलिकरि क ऐसा अक्षर हो है । आकार के मिलने तैं का ऐसा अक्षर हो है । इत्यादि संयोगी अक्षर उपजने कौं कारण चौसठि मूल अक्षर जानने ।

इहां प्रश्न – जो व्याकरण विषैं ए, ऐ, ओ, औ इनिकौं ह्रस्व न कहे है । इहां ए भी ह्रस्व कैसें कहे ?

ताका समाधान – जो संस्कृत भाषा विषैं ह्रस्वरूप ए, ऐ, ओ, औ नाहीं हो है तातैं न कहे । प्राकृत भाषा विषैं वा देशांतर की भाषा विषैं ए, ऐ, ओ, औ, ये अक्षर भी ह्रस्व हो हैं, तातैं इहां कहे हैं ।

बहुरि एक दीर्घ लृ कार संस्कृत भाषा विषैं नाहीं है; तथापि अनुकरण विषैं देशांतर की भाषा विषैं हो है; तातैं इहां कह्या है ।

चउसट्ठिपदं विरलिय, दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ।
रूऊणं च कुए पुण, सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥३५३॥

चतुःषष्टिपदं विरलयित्वा, द्विकं च दत्वा संगुणं कृत्वा ।
रूपोने च कृते पुनः, श्रुतज्ञानस्याक्षराणि भवंति ॥३५३॥

टीका – मूल अक्षर प्रमाण चौसठि स्थान, तिनिका विरलन करिये, बरोबरि पंक्तिरूप एक -एक जुदा चौसठि जायगा मांडिए । तहां एक २ के स्थान दोय दोय का अंक २ मांडिये, पीछें उनकौं परस्पर गुणन करिये, दोय दून्यों च्यारि (४) च्यारि दून्यो आठ (८) आठ दून्यो सोलह (१६) ऐसें चौसठि पर्यंत गुणन कीये, जो एकट्ठी प्रमाण आवै, तामैं एक घटाइये, इतने अक्षर सर्व द्रव्य श्रुत के जानने ते ये अक्षर अपुनरुक्त जानने जातैं जो वाक्य का अर्थ की प्रतीति के निमित्त उन ही कहै अक्षरनि कौं बारंबार कहे, तौ उनका किछू संख्या का नियम है नाहीं ।

तिनि अपुनरुक्त अक्षरनि का प्रमाण कितना है ? सो कहैं हैं –

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्ण-सत्त-तिय-सत्ता ।
सुण्णं णव पण पंच य, एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥३५४॥

एकाष्ट च च च षट्सप्तकं च च च शून्यसप्तत्रिकसप्त ।
शून्यं नव पंच पंच च एकं षट्कैककश्च पंचकं च ॥३५४॥

टीका – एक, आठ, च्यारि, च्यारि, छह, सात, च्यारि, च्यारि, बिंदी, सात, तीन, सात, बिंदी, नव, पांच, पांच, एक, छह, एक, पंच इतने अंक क्रम तैं लिखैं, जो प्रमाण होइ, तितने अक्षर सर्व श्रुत के जानने । १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने अक्षर हैं । द्विरूप वर्गधारा का छठा वर्गस्थान एकट्ठी प्रमाण है । तामैं एक घटायें, ऐसें एक आदि पंच पर्यंत बीस अंक रूप प्रमाण हो है । बहुरि इहां विशेष कहिये है । एक अक्षर, एक संयोगी, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि चौसठि संयोगी पर्यंत जानने । तिनकी उत्पत्ति का अनुक्रम दिखाइये है । यहां कहे मूलवर्ण चौसठि, तिनकौं बराबरि पंक्ति करि लिखिये ।

बहुरि तहां केवल क वर्ण विषैं तौ एक प्रत्येक भंग ही हैं । द्विसंयोगी आदि नाहीं हैं ।

बहुरि ख वर्ण सहित विषैं प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी एक ऐसें दोय भंग हैं ।

बहुरि ग वर्ण सहित विषैं प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी दोय, त्रिसंयोगी एक ऐसें च्यारि भंग हैं ।

बहुरि घ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी तीन, त्रिसंयोगी तीन चतुः संयोगी एक ऐसें आठ भंग जानना ।

बहुरि ङ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी च्यारि, त्रिसंयोगी छह, चतुः संयोगी च्यारि, पंच संयोगी एक ऐसें सोलह भंग हैं ।

बहुरि च वर्ण सहित विषैं प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी, चतुः संयोगी, पंच संयोगी, षट् संयोगी, क्रम तैं पांच, दश, दश, पांच, एक ऐसें बत्तीस भंग हैं ।

बहुरि छ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त संयोगी भंग क्रम तैं एक, छह, पंद्रह, बीस, पंद्रह, छह, एक ऐसें चौसठि भंग हैं ।

बहुरि ज वर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट संयोगी भंग क्रम तें एक, सात, इकईस, पैंतीस, पैंतीस, इकईस, सात, एक ऐसें एक सै अट्ठाईस भंग हैं।

बहुरि झ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक, द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, संयोगी भंग क्रम तें एक, आठ, अट्ठाईस, छप्पन, सत्तरि, छप्पन, अठाईस, आठ, एक ऐसें दोय सै छप्पन भंग हैं।

बहुरि ञ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश संयोगी भंग क्रम तें एक, नव, छत्तीस, चौरासी, एक सै छब्बीस, एक सै छब्बीस, चौरासी, छत्तीस, नव, एक ऐसें पांच सै बारह भंग हैं।

इस ही अनुक्रमकरि चौसठि स्थाननि विषैं प्रत्येक आदि भंग पूर्व पूर्व स्थान तें उत्तर उत्तर स्थान विषैं दूणे दूणे हो हैं।

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	००० चौसठि ६४ पर्यंत
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी
जोड	२	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसंयोगी
	जोड	४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोगी
		जोड	८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोगी
			जोड	१६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोगी
				जोड	३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोगी
					जोड	६४	१	८	३६	अष्टसंयोगी
						जोड	१२८	१	९	नवसंयोगी
							जोड	२५६	१	दशसंयोगी
								जोड	५१२	००

इहां प्रत्येक भंगनि का स्वरूप कहा ? सो कहिये है--जुदे जुदे ग्रहणरूप प्रत्येक भंग हैं, ते एक ही प्रकार हैं। जैसें दशवां ञ वर्ण की विवक्षा विषैं ञ वर्ण कौं जुदा ग्रहण करिये यहु एक ही प्रत्येक भंग का विधान जानना। बहुरि दोय, तीन आदि अक्षरनि के संयोग तैं जे भंग होंइ, तिनकौं द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि कहिये। ते अनेक प्रकार हो हैं। जैसें दशवां ञ वर्ण की विवक्षा विषैं दोय अक्षरनि का संयोग-- क् ञ्। ख् ञ्। ग् ञ्। घ् ञ्। ङ् ञ्। च् ञ्। छ् ञ्। ज् ञ्। झ् ञ्। ऐसें नव प्रकार हो हैं।

बहुरि तीनि अक्षरनि का संयोग क् ख् ञ्। क् ग् ञ्। क् घ् ञ्। क् ङ् ञ्। क् च् ञ्। क् छ् ञ्। क् ज् ञ्। क् झ् ञ्। ख् ग् ञ्। ख् घ् ञ्। ख् ङ् ञ्। ख् च् ञ्। ख् छ् ञ्। ख् ज् ञ्। ख् झ् ञ्। ग् घ् ञ्। ग् ङ् ञ्। ग् च् ञ्। ग् छ् ञ्। ग् ज् ञ्। ग् झ् ञ्। घ् ङ् ञ्। घ् च् ञ्। घ् छ् ञ्। घ् ज् ञ्। घ् झ् ञ्। ङ् च् ञ्। ङ् छ् ञ्। ङ् ज् ञ्। ङ् झ् ञ्। च् छ् ञ्। च् ज् ञ्। च् झ् ञ्। छ् ज् ञ्। छ् झ् ञ्। ज् झ् ञ्। ऐसें छत्तीस प्रकार भंग हो है। ऐसें ही अन्य जानने।

बहुरि जितने की विवक्षा होइ, तितनां संयोगी भंग एक ही प्रकार हो है। जैसें दश अक्षरनि की विवक्षा विषैं दश अक्षरनि का संयोग रूप दश संयोगी भंग एक ही हो है। ऐसें भंगनि का स्वरूप जानना।

इहां श्री अभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती के चरणनि का प्रसाद करि केशववर्णी संस्कृत टीकाकार सो तिन एक दोय संयोगी आदि भंगनि की संख्या का साधन विषैं करण सूत्र कहै हैं--

पत्तेयभंगमेगं, बे संजोगं विरूवपदमेत्तं ।
तियसंजोगादिपमा, रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं ।।

विवक्षित स्थान विषैं सर्वत्र प्रत्येक भंग एक एक ही है। बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छ प्रमाण है। इहां जेथवां स्थान विवक्षित होइ, तीहिं प्रमाण गच्छ जानना। बहुरि त्रिसंयोगी आदि भंगनि का क्रम तैं एक अधिक बार हीन गच्छ का संकलन धनमात्र प्रमाण है।

भावार्थ – यहु-जो त्रिसंयोगी, चतुःसंयोगी आदि विषैं एक बार, दोय बार आदि संकलन करना। बहुरि जेती बार संकलन होइ, तातैं एक अधिक प्रमाण कौं

विवक्षित गच्छ में घटाएं, अवशेष जेता प्रमाण रहै, तितने का तहां संकलन करना । जैसें दशवां स्थान की विवक्षा विषैं त्रिसंयोगी भंग ल्यावने कौं एक बार संकलन अर एक बार कौं प्रमाण एक, तातैं एक अधिक दोय, सो गच्छ दश में घटाएं आठ होइ । ऐसैं आठ का एक बार संकलन धनमात्र तहां त्रिसंयोगी भंग जानना । ऐसैं ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि संकलन धन ल्यावने कौं पूर्वं केशववर्णी करि उक्त करण सूत्र कहे थे–

तत्तो रूवहियकमे, गुणगारा होंति उड्ढगच्छो त्ति ।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवो त्ति ।।

इन सूत्रनि के अनुसारि विवक्षित संकलन धन ल्यावना । अब ऐसैं करण सूत्र कैं अनुसार उदाहरण दिखाइए है । विवक्षित दशमां ञ वर्ण, तहां प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी एक घाटि गच्छमात्र नव, त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छमात्र आठ, ताका एक बार संकलन धनमात्र सो संकलन धन के साधन करण सूत्र के अनुसारि आठ, नव कौं दोय, एक का भाग दीएं छत्तीस हो हैं । जातैं आठ, नव कौं परस्पर गुणें, बहत्तरि भाज्य, दोय, एक कौं परस्पर गुणें भागहार दोय, भागहार का भाग भाज्य कौं दीएं छत्तीस भए । ऐसैं ही चतुःसंयोगी भंग तीन घाटि गच्छ का दोय बार संकलन धनमात्र है । तहां सात, आठ, नव कौं तीन, दोय, एक का भाग दीएं, चौरासी हो हैं ।

बहुरि पंच संयोगी च्यारि घाटि गच्छ का तीन बार संकलन धनमात्र है । तहां छह, सात, आठ, नव कौं च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं एक सै छब्बीस हो हैं ।

बहुरि छह संयोगी पांच घाटि गच्छ का च्यारि बार संकलन धनमात्र है । तहां पांच, छह, सात, आठ, नव कौं पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं एक सै छब्बीस हो हैं ।

बहुरि सप्त संयोगी छह घाटि गच्छ का पांच बार संकलन धनमात्र है । तहां च्यारि, पांच, छह, सात, आठ, नव कौं छह, पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं चौरासी हो हैं ।

बहुरि आठ संयोगी सात घाटि गच्छ का छह बार संकलन धनमात्र है । तहां तीन, च्यारि, पांच, छह, सात, आठ, नव कौं सात, छह, पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं छत्तीस हो है ।

बहुरि नव संयोगी आठ घाटि गच्छ का सात बार संकलन धनमात्र है। तहां दोय, तीन, च्यारि, पांच, छह, सात, आठ, नव कौं आठ, सात, छह, पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं नव हो हैं। बहुरि दश संयोगी नव घाटि गच्छ का आठ बार संकलन धनमात्र है। इहां परमार्थ तैं संकलन नाहीं। जातैं एक का सर्व बार संकलन एक ही हो है; जातैं एक है; ऐसें सबनि का जोड दीएं दशवां स्थान विषै पांच सै बारह भंग भएं। ऐसैं ही सर्व स्थाननि विषैं ल्यावना। तहां अंत का चौसठिवां स्थान विषैं प्रत्येक भंग एक; बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छमात्र तरेसठि, बहुरि त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छ का एक बार संकलन धनमात्र तहां बासठि, तरेसठि कौं दोय, एक का भाग दीएं, उगणीस सै तरेपन हो हैं।

बहुरि चतुःसंयोगी तीन घाटि गच्छ का दोय बार संकलन धनमात्र, तहां इकसठि, बासठि, तरेसठि कौं तीन, दोय, एक का भाग दीएं, गुणतालीस हजार सात सै ग्यारह भंग हो हैं।

बहुरि पंच संयोगी च्यारि घाटि गच्छ का तीन बार संकलन धनमात्र, तहां साठि, इकसठि, बासठि, तरेसठि कौं च्यारि, तीन, दोय, एक का भाग दीएं पांच लाख पिच्याणवै हजार छ सै पैंसठि हो हैं। ऐसैं ही षट् संयोगी आदि भंग पांच आदि एक एक बधता घाटि गच्छ का तीन आदि एक एक बधता बार संकलन धनमात्र जानने। तहां पूर्वोक्त तैं गुणसठि, अठावन आदि भाज्य विषैं अर पांच, छह आदि भागहारनि विषैं अधिक अधिक मांडि, भाज्य कौं भागहार का भाग दीएं, जेता जेता प्रमाण आवै, तितना तितना तहां तहां षट्संयोगी आदि भंग जानने। तहां तरेसठि संयोगी भंग बासठि घाटि गच्छ दोय, ताका एकसठि बार संकलन धनमात्र तहां दोय, तीन आदि एक एक बधता तरेसठि पर्यंत कौं बासठि, इकसठि आदि एक एक घटता एक पर्यंत का भाग दीएं, यथा संभव अपवर्तन कीएं तरेसठि भंग हो हैं। बहुरि चौसठि संयोगी भंग एक ही है। ऐसें चौसठिवां स्थान विषैं प्रत्येक आदि चौसठि संयोगी पर्यंत भंगनि कौं जोडें, एकट्ठी का आधा प्रमाणमात्र भंग होइ। ऐसैं एक आदि एक एक अधिक चौसठि पर्यन्त अक्षरनि के स्थाननि विषैं **'पत्तेयभंगमेगं'** इत्यादि करण सूत्रनि करि भंग हो है।

अथवा गुणस्थानाधिकार विषैं प्रमादनि का व्याख्यान करते अक्ष संचार विधान कह्या था, तिस विधान करि भी ऐसैं ही भंग हो हैं। ते भंग क्रम तैं एक,

दोय, चारि, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठि, एक सै अठाईस, दोय सै छप्पन, पांच सै बारह एक हजार चौबीस, दोय हजार अडतालिस, च्यारि हजार छिनवै, आठ हजार एक सै बानवै, सोलह हजार तीन से चौरासी, बत्तीस हजार सात सै अडसठि, पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस, एक लाख इकतीस हजार बहत्तरि, दोय लाख बासठि हजार एक सै चवालीस, पांच लाख चौबीस हजार दोय सै अठासी, दश लाख अडतालीस हजार पांच सै छिहत्तरि, बीस लाख सित्ताणवै हजार एक सै बावन, इकतालीस लाख चौराणवै हजार तीन सै दोय, तियासी लाख अठासी हजार छ सै चारि, एक कोडि सडसठिलाख तेहत्तरि हजार दोय सै आठ इत्यादि दूणे दूणे हो हैं। अंत स्थान तैं चौथा, तीसरा, दूसरा अन्तस्थान विषैं एकट्ठी का सोलहवां, आठवां, चौथा, दूसरा, भागमात्र भए, तिन सबनि कौं जोडैं, **'चउसट्ठिपदं विरलिय'** इत्यादि सूत्रोक्त एक घाटि एकट्ठी मात्र भंग हो है। अथवा **'अन्तधणं गुणगुणियं' 'आदि विहीणं रूऊणुत्तर-भजियं'** इस करण सूत्र करि अन्त धन एकट्ठी का आधा ताकौं गुणकार दोय करि गुणें, एकट्ठी, तामैं एक घटाएं, एक घाटि एकट्ठी एक घाटी गुणकार एक, ताका भाग दीएं भी इतने ही सर्व भंग हो हैं। ऐसैं सर्वश्रुत संबंधी समस्त अक्षरनि की संख्या एक घाटि एकट्ठी प्रमाण जानना।

इहां जैसैं अ, आ, आ, इ, ई, ई इनि छह अक्षरनि विषैं प्रत्येक भंग छह, द्वि संयोगी पंद्रह, त्रि संयोगी बीस, चतुः संयोगी पंद्रह, पंच संयोगी छह, छह संयोगी एक मिलि तरेसठि भंग होंइ। छह जायगा दूवा मांडि, परस्पर गुणे एक घटाय तरेसठि हो हैं। तैसैं चौसठि मूल अक्षरनि विषैं पूर्वं एक एक स्थान विषैं एक एक प्रत्येक भंग मिलि, चौसठि भए। ऐसैं ही सर्व स्थानकनि के द्वि संयोगी, त्रि संयोगी आदि भंग मांडि, जितने जितने होंइ, तितने तितने द्वि संयोगी, त्रि संयोगी आदि भंग जानने। सबनि कौं जोडैं, एक घाटि एकट्ठी प्रमाण हो हैं। सोई चौसठि जायगा दोय का अंक मांडि, परस्पर गुणैं, तहां एक घटाएं, एक घाटि एकट्ठी प्रमाण श्रुतज्ञान के अक्षर जानने।

मज्झिम-पदक्खरवहिदवण्णा ते अंगपुव्वगपदाणि।
सेसक्खरसंखा ओ, पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५५॥

मध्यमपदाक्षरावहितवर्णास्ते अंगपूर्वगपदानि।
शेषाक्षरसंख्या अहो, प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥३५५॥

टीका – एक घाटि एकट्ठी प्रमाण समस्त श्रुत के अक्षर कहे तिनिकौं परमागम विषैं प्रसिद्ध जो मध्यम पद, ताके अक्षरनि का प्रमाण सोला सै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठ सै अठ्यासी, ताका भाग दीए, जो पदनि का प्रमाण आवै तितने तौ अंगपूर्व संबंधी मध्यम पद जानने । बहुरि अवशेष जे अक्षर रहे, ते प्रकीर्णकों के जानने । सो एक सौ बारह कोडि तियासी लाख अठावन हजार पांच इतने तौ अंग प्रविष्ट श्रुत का पदनि का प्रमाण आया । अवशेष आठ कोडि एक लाख आठ हजार एक सै पिचहत्तरि अक्षर रहे, ते अंगबाह्य प्रकीर्णक के जानने । असैं अंगप्रविष्ट, अंगबाह्य दोय प्रकार श्रुत के पदनि का वा अक्षरनि का प्रमाण हे भव्य ! तू जानि ।

आगैं श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव तेरह गाथानि करि अंगपूर्वनि के पदनि की संख्या प्ररूपै हैं –

आयारे सुद्दयडे, ठाणे समवायणामगे अंगे ।
तत्तो विक्खापण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥३५६॥

आचारे सूत्रकृते, स्थाने समवायनामके अंगे ।
ततो व्याख्याप्रज्ञप्तौ नाथस्य धर्मकथायाम् ॥३५६॥

टीका – द्रव्य श्रुत की अपेक्षा सार्थक निरुक्ति लीएं, अंगपूर्व के पदनि की संख्या कहिए है । जातैं भावश्रुत विषैं निरुक्त्यादिक संभवै नाहीं । तहां द्वादश अंगनि विषैं प्रथम ही आचारांग है । जातैं परमागम जो है, सो मोक्ष के निमित्त है । याही तैं मोक्षाभिलाषी याकौं आदरे हैं । तहां मोक्ष का कारण संवर, निर्जरा, तिनिका कारण पंचाचारादि सकल चारित्र है । तातैं तिस चारित्र का प्रतिपादक शास्त्र पहिलैं कहना सिद्ध भया । तीहि कारण तैं च्यारि ज्ञान सप्त ऋद्धि के धारक गणधर देवनि करि तीर्थंकर के मुखकमल तैं उत्पन्न जो सर्व भाषामय दिव्यध्वनि, ताके सुनने तैं जो अर्थ अवधारण किया, तिनिकरि शिष्य प्रति शिष्यनि के अनुग्रह निमित्त द्वादशांगरूप श्रुत रचना करी ।

तीहि विषैं पहिलैं आचारांग कह्या । सो **आचरन्ति** कहिए समस्तपनैं मोक्ष मार्ग कौं आराधै हैं, याकरि सो आचार, तिहि आचारांग विषैं असा कथन है – जो कैसें चलिए ? कैसें खडे रहिये ? कैसें बैठिये ? कैसें सोइए ? कैसें बोलिए ? कैसें

खाइए ? कैसें पाप कर्म न बंधें ? इत्यादि गणधर प्रश्न के अनुसार यतन तें चलिये, यतन तें खडे रहिये, यतन तैं बैठिए, यतन तैं सोइए, यतन तें बोलिए, यतन तें खाइये असैं पापकर्म न बंधें इत्यादि उत्तर वचन लीयें मुनीश्वरनि का समस्त आचरण इस आचारांग विषें वर्णन कीजिये है ।

बहुरि सूत्रयति कहिए संक्षेप तें अर्थ कौं सूचै, कहै, असा जो परमागम, सो सूत्र ताके अर्थकृतं कहिये कारणभूत ज्ञान का विनय आदि निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रिया विशेष, सो जिसविषें वर्णन कीजिए है । अथवा सूत्र करि कीया धर्मक्रियारूप वा स्वमत - परमत का स्वरूप क्रिया रूप विशेष, सो जिस विषें वर्णन कीजिये, सो सूत्रकृत नामा दूसरा अंग है ।

बहुरि तिष्ठन्ति कहिए एक आदि एक एक बधता स्थान जिस विषें पाइये, सो स्थान नामा तीसरा अंग है । तहां असा वर्णन है । संग्रह नय करि आत्मा एक है; व्यवहार नय करि संसारी अर मुक्त दोय भेद संयुक्त है । बहुरि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इनि तीन लक्षणनि करि संयुक्त है । बहुरि कर्म के वश तें च्यारि गति विषें भ्रमै है । तातें चतुःसंक्रमण युक्त है । बहुरि औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक भेद करि पंचस्वभाव करि प्रधान है । बहुरि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व, अधः भेद करि छह गमन करि संयुक्त है । संसारी जीव विग्रह गति विषें विदिशा में गमन न करै, श्रेणीबद्ध छहौ दिशा विषें गमन करे है । बहुरि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति - नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्य इत्यादि सप्त भंगी विषें उपयुक्त है । बहुरि आठ प्रकार कर्म का आश्रव करि संयुक्त है । बहुरि जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप ये नव पदार्थ हैं विषय जाके ऐसा नवार्थ है । बहुरि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय भेद तें दश स्थान हैं । इत्यादि जीव कौं प्ररूपै है । बहुरि पुद्गल सामान्य अपेक्षा एक है; विशेष करि अणु स्कन्ध के भेद तें दोय प्रकार हैं, इत्यादि पुद्गल कौं प्ररूपै है । असैं एकने आदि देकरि एक एक बधता स्थान इस अंग विषें वर्णिये है ।

बहुरि 'सं' कहिए समानता करि अवेयंते कहिये जीवादि पदार्थ जिसविषें जानिये, सो समवायांग चौथा जानना । इस विषें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा समानता प्ररूपै हैं ।

तहां द्रव्य करि धर्मास्तिकाय अर अधर्मास्तिकाय समान हैं । संसारी जीवनि करि संसारी जीव समान हैं । मुक्त जीव करि मुक्त जीव समान हैं; इत्यादिक द्रव्य समवाय हैं ।

बहुरि क्षेत्र करि प्रथम नरक का प्रथम पाथडे का सीमंत नामा इंद्रकबिला अर अढाई द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्र, प्रथम स्वर्ग का प्रथम पटल का ऋजु नामा इंद्रक विमान अर सिद्धशिला, सिद्धक्षेत्र ये समान हैं । बहुरि सातवां नरक का अवधि स्थान नामा इंद्रक बिला अर जंबूद्वीप अर सर्वार्थसिद्धि विमान ये समान हैं इत्यादि क्षेत्र समवाय है ।

बहुरि काल करि एक समय, एक समय समान है । आवली आवली समान है । प्रथम पृथ्वी के नारकी, भवनवासी, व्यंतर इनिकी जघन्य आयु समान है । बहुरि सातवीं पृथ्वी के नारकी, सर्वार्थसिद्धि के देव इनिकी उत्कृष्ट आयु समान है, इत्यादिक कालसमवाय है ।

बहुरि भाव करि केवलज्ञान, केवलदर्शन समान हैं । इत्यादि भावसमवाय है ऐसैं इत्यादि समानता इस अंग विषैं वर्णिये हैं ।

बहुरि 'वि' कहिये विशेष करि बहुत प्रकार, **आख्या** कहिये गणधर के कीये प्रश्न, **प्रज्ञाप्यंते** कहिये जानिये, जिसविषैं ऐसा व्याख्याप्रज्ञप्ति नामा पांचवां अंग जानना । इस विषैं ऐसा कथन है कि – जीव अस्ति है कि जीव नास्ति है, कि जीव एक है कि जीव अनेक है; कि जीव नित्य है कि जीव अनित्य है; कि जीव वक्तव्य है कि अवक्तव्य है इत्यादि साठि हजार प्रश्न गणधर देव तीर्थंकर के निकट कीये । ताका वर्णन इस अंगविषैं है ।

बहुरि **नाथ** कहिये तीन लोक का स्वामी, तीर्थंकर, परम भट्टारक, तिनके धर्म की कथा जिस विषैं होइ ऐसा नाथधर्मकथा नाम छठा अंग है । इसविषैं जीवादि पदार्थनि का स्वभाव वर्णन करिए है । बहुरि घातियाकर्म के नाश तैं उत्पन्न भया केवलज्ञान, उस ही के साथि तीर्थंकर नामा पुण्य प्रकृति के उदय तैं जाकैं महिमा प्रकट भयी; ऐसा तीर्थंकर कैं पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, अर्धरात्रि इनि च्यारि कालनि विषैं छह छह घडी पर्यन्त बारह सभा के मध्य सहज ही दिव्यध्वनि होय है । बहुरि गण-धर, इंद्र, चक्रवर्ति इनके प्रश्न करने तैं और काल विषैं भी दिव्यध्वनि हो है । ऐसा दिव्यध्वनि निकटवर्ती श्रोतृजननि कौं उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार वा रत्नत्रय स्वरूप

धर्म कहै है । इत्यादि इस अंग विषैं कथन है । अथवा इस ही छठा अंग का दूसरा नाम ज्ञातृधर्मकथा है । सो याका अर्थ यहु है - ज्ञाता जो गणधर देव, जानने की है इच्छा जाकैं, ताका प्रश्न के अनुसारि उत्तर रूप जो धर्मकथा, ताकौं ज्ञातृधर्मकथा कहिए । जे अस्ति, नास्ति इत्यादिकरूप प्रश्न गणधरदेव कीये, तिनिका उत्तर इस अंग विषैं वर्णन करिये है । अथवा ज्ञाता जे तीर्थंकर, गणधर, इंद्र, चक्रवर्त्यादिक, तिनिकी धर्म संबंधी कथा इसविषैं पाइये है । तातैं भी ज्ञातृधर्मकथा अैसा नाम का धारी छठा अंग जानना ।

तो वासयअज्झयणे, अंतयडे णुत्तरोववाददसे ।
पण्हाणं वायरणे, विवायसुत्ते य पदसंखा ॥३५७॥

तत उपासकाध्ययने, अंतकृते अनुत्तरौपपाददशे ।
प्रश्नानां व्याकरणे, विपाकसूत्रे च पदसंख्या ॥३५७॥

टीका – बहुरि तहां पीछैं **उपासंते** कहिये आहारादि दान करि वा पूजनादि करि संघ कौं सेवैं; अैसे जे श्रावक, तिनिकौं उपासक कहिये । ते **'अधीयंते'** कहिये पढ़ैं, सो उपासकाध्ययन नामा सातवां अंग है । इस विषैं दर्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरति, रात्रिभक्तविरति, ब्रह्मचर्य, आरंभनिवृत्त, परिग्रहनिवृत्त, अनुमतिविरत, उद्दिष्टविरत ये गृहस्थ की ग्यारह प्रतिमा वा व्रत, शील, आचार क्रिया, मंत्रादिक इनिका विस्तार करि प्ररूपण है ।

बहुरि एक एक तीर्थंकर का तीर्थकाल विषैं दश दश मुनीश्वर तीव्र चारि प्रकार का उपसर्ग सहि, इंद्रादिक करी करि हुई पूजा आदि प्रातिहार्यरूप प्रभावना पाइ, पापकर्म का नाश करि संसार का जो अंत, ताहि करते भये, तिनिकौं अंतकृत् कहिये तिनिका कथन जिस अंग में होइ ताकौं अंतकृद्दशांग आठवां अंग कहिये । तहां श्री वर्धमान स्वामी के वारैं नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलिक, विष्कविल, किष्कंविल, पालंवष्ट, पुत्र ये दश भये । अैसें ही वृषभादिक एक एक तीर्थंकर के वारैं दश दश अंतकृत् केवली हों हैं । तिनिका कथन इस अंग विषैं है ।

बहुरि उपपाद है प्रयोजन जिनिका अैसें औपपादिक कहिये ।

बहुरि अनुत्तर कहिये विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, सर्वार्थ सिद्धि इनि विमाननि विषैं जे औपपादिक होंहि उपजैं, तिनिकौं अनुत्तरौपपादिक कहिये । सो

एक एक तीर्थंकर के बारें दश दश महामुनि दारुण उपसर्ग सहि करि, बड़ी पूजा पाइ, समाधि करि प्राण छोड़ि, विजयादिक अनुत्तर विमाननि विषें उपजें । तिनिकी कथा जिस अंग विषें होइ, सो अनुत्तरौपपादिक दशांग नामा नवमा अंग जानना । तहां श्रीवर्धमान स्वामी के बारें – ऋजुदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, नंद, नंदन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलातीपुत्र ये दश भये । असें ही दश दश अन्य तीर्थंकर के समय भी भये हैं । तिनि सबनि का कथन इस अंग विषें है ।

बहुरि प्रश्न कहिये बूझनहारा पुरुष, जो बूझै सो व्याक्रियते कहिये, जिस-विषें वर्णन करिये, सो प्रश्न व्याकरण नामा दशवां अंग जानना । इसविषें जो कोई बूझनेवाला गई वस्तु कौं, वा मूठी की वस्तु कौं, वा चिंता वा धनधान्य लाभ, अलाभ सुख, दुःख, जीवना, मरणा, जीति, हारि इत्यादिक प्रश्न बूझै; अतीत, अनागत, वर्तमानकाल संबंधी, ताकौं यथार्थ कहने का उपायरूप व्याख्यान इस अंग विषें है । अथवा शिष्य कौं प्रश्न के अनुसार आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेजिनी, निर्वेजिनी ये च्यारि कथा भी प्रश्नव्याकरण अंग विषें प्रकट कीजिये है ।

तहां तीर्थंकरादिक का चरित्ररूप प्रथमानुयोग, लोक का वर्णन रूप करणा-नुयोग, श्रावक मुनिधर्म का कथनरूप चरणानुयोग, पंचास्तिकायादिक का कथनरूप द्रव्यानुयोग, इनिका कथन अर परमत की शंका दूरि करिए, सो आक्षेपिणी कथा ।

बहुरि प्रमाण - नय रूप युक्ति, तीहिं करि न्याय के बल तैं सर्वथा एकांतवादी आदि परमतनि करि कह्या अर्थ, ताका खंडन करना, सो विक्षेपिणी कथा ।

बहुरि रत्नत्रयरूपधर्म अर तीर्थंकरादि पद की ईश्वरता वा ज्ञान, सुख, वीर्यादिकरूप धर्म का फल, ताके अनुराग कौं कारण सो संवेजिनी कथा ।

बहुरि संसार, देह, भोग के राग तैं जीव नारकादि विषें दरिद्र, अपमान, पीडा, दुःख भोगवै है । इत्यादिक विराग होने कौं कारणरूप जो कथा, सो निर्वेजिनी कथा कहिये । सो असी भी कथा प्रश्नव्याकरण अंग विषें पाइए है ।

बहुरि विपाक जो कर्म का उदय, ताकौं सूत्रयति कहिये कहै, सो विपाक सूत्र-नामा ग्यारमां अंग जानना । इसविषें कर्मनि का फल देने रूप जो परिणमन, सोई उदय कहिये । ताका तीव्र, मंद, मध्यम, अनुभाग करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा वर्णन पाइए है ।

असें आचार नें आदि देकरि विपाक सूत्र पर्यंत ग्यारह अंग, तिनिके पदनि की संख्या कहिए है ।

अट्ठारस छत्तीसं, बादालं अडकडी अड वि छप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीसं, चोद्दालं सोलससहस्सा ॥३५८॥

इगि-दुग-पंचेयारं, तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिलक्खमेया, कोडी य विवागसुत्तम्हि ॥३५९॥

अष्टादश षट्त्रिंशत्, द्वाचत्वारिंशत् अष्टकृतिः अष्टद्विषट्पंचाशत् ।
सप्ततिः अष्टाविंशतिः, चतुश्चत्वारिंशत् षोडश सहस्राणि ॥३५८॥

एकद्विपंचैकादशत्रयोविंशतिद्वित्रिनवतिलक्षं चतुर्थादिषु ।
चतुरशीतिलक्षमेका, कोटिश्च विपाकसूत्रे ॥३५९॥

टीका – प्रथम गाथा विषें अठारह आदि हजार कहे । बहुरि दूसरी गाथा विषें चौथा अंग आदि अंगनिविषें एकादिक लाख सहित हजार कहे । अर विपाकसूत्र का जुदा वर्णन कीया । अब इनि गाथानि के अनुसारि एकादश अंगनि की पदनि की संख्या कहिये है । आचारांग विषें पद अठारह हजार (१८०००), सूत्रकृतांग विषें पद छत्तीस हजार (३६०००), स्थानांग विषें बियालीस, हजार (४२०००), समवायांग विषें एक लाख अर आठ की कृति चौंसठि हजार (१६४०००), व्याख्याप्रज्ञप्ति विषें दोय लाख अट्ठाईस हजार (२२८०००), ज्ञातृकथा अंग विषें पांच लाख छप्पन हजार, (५५६०००), उपासकाध्ययन अंग विषें ग्यारह लाख सत्तरि हजार (११७००००), अंतकृतदशांग विषें तेईस लाख अट्ठाईस हजार (२३२८०००), अनुत्तरौपपादक दशांग विषें बाणवै लाख चवालीस हजार (९२४४०००), प्रश्न व्याकरण अंग विषें तिराणवै लाख सोलह हजार (९३१६०००), विपाकसूत्र अंग विषें एक कोडि चौरासी लाख (१८४०००००) असें एकादश अंगनि विषें पदनि की संख्या जाननी ।

वापणनरनोनानं, एयारंगे जुदी हु वादम्हि ।
कनजतजमताननमं, जनकनजयसीम वाहिरे वण्णा ॥३६०॥

वापणनरनोनानं, एकादशांगे युतिः हि वादे ।
कनजतजमताननमं जनकनजयसीम बाह्ये वर्णाः ॥३६०॥

टीका — इहां वा आगें अक्षर संज्ञा करि अंकनि कौं कहैं हैं। सो याका सूत्र पूर्वं गतिमार्गणा का वर्णन विषें पर्याप्त मनुष्यनि की संख्या कही है। तहां कह्या है '**कटपयपुरस्थवर्णैः**' इत्यादि सूत्र कह्या है। तिस ही तैं अक्षर संज्ञा करि अंक जानना। **क** कारादिक नव अक्षरनि करि एक, दोय आदि क्रम तैं नव अंक जानने। **ट** कारादि नव अक्षरनि करि नव अंक जानने। **प** कारादि पंच अक्षरनि करि पंच अंक जानने। **य** कारादि आठ अक्षरनि करि आठ अंक जानने। **ञ** कार **ङ** कार **न** कार इनिकरि बिंदी जानिये, असा कहि आए हैं। सो इहां **वापरणनरनोनानं** इनि अक्षरनि करि चारि, एक, पांच, बिंदी, दोय, बिंदी, बिंदी, बिंदी ए अंक जानना। ताके चारि कोडि पंद्रह लाख दोय हजार (४१५०२०००) पद सर्व एकादश अंगनि का जोड दीयें भये।

बहुरि दृष्टिवाद नाम बारहवां अंग, ता विषैं '**कनजतजमताननमं**' कहिये एक, बिंदी, आठ, छह, आठ, पांच, छह, बिंदी, बिंदी, पांच इनि अंकनि करि एक सै आठ कोडि अडसठि लाख छप्पन हजार पांच (१०८६८५६००५) पद हैं सो कहिये। मिथ्यादर्शन, तिनिका है अनुवाद कहिये निराकरण जिस विषैं असा दृष्टिवाद नामा अंग बारहवां जानना।

तहां मिथ्यादर्शन संबंधी कुवादी तीन सै तरेसठि हैं। तिनि विषैं कौत्कल, कांठेविद्धि, कौशिक हरि, श्मश्रु मांथपिक रोमश, हारीत, मुंड, आश्वलायन इत्यादि क्रियावादी हैं, सो इनिके एकसौ अस्सी (१८०) कुवाद हैं।

बहुरि मारीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाड्वलि, माठर, मौद्गलायन इत्यादि अक्रियावादी हैं, तिनिके चौरासी (८४) कुवाद हैं।

बहुरि साकल्य, वाल्कलि, कुसुत्ति, सात्यमुग्रीनारायण, कठ, माध्यंदिन, मौद, पैप्पलाद, वादरायण, स्विष्ठिक्य, दैत्यकायन, वसु, जैमिन्य, इत्यादि ए अज्ञानवादी हैं। इनिके सडसठि (६७) कुवाद हैं।

बहुरि वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मिकि, रोमहर्षिणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, उपमन्यु, ऐंद्रदत्त, अगस्ति इत्यादिक ए विनयवादी हैं। इनिके कुवाद बत्तीस (३२) हैं।

सब मिलाएं तीन सै तरेसठि कुवाद भये, इनिका वर्णन भावाधिकार विषैं कहैंगे। इहां प्रवृत्ति विषैं इनि कुवादनि के जे जे अधिकारी, तिनिके नाम कहे हैं।

बहुरि अंग बाह्य जो सामायिकादिक, तिनि विषै 'जनकनजयसीम' कहिए आठ, बिंदी, एक, बिंदी, आठ, एक, सात, पांच अंक तिनिके आठ कोडि एक लाख आठ हजार एक सै पिचत्तरि (८०१०८१७५) अक्षर जानने ।

चंद-रवि-जंबुदीवय-दीवसमुद्दय-वियाहपण्णत्ती ।
परियम्मं पंचविहं, सुत्तं पढमाणि जोगमदो ॥३६१॥

पुव्वं जल-थल-माया-आगासय-रूवगयमिमा पंच ।
भेदा हु चूलियाए, तेसु पमाणं इणं कमसो ॥३६२॥

चंद्ररविजंबूद्वीपकद्वीपसमुद्रकव्याख्याप्रज्ञप्तयः ।
परिकर्म पंचविधं, सूत्रं प्रथमानुयोगमतः ॥३६१॥

पूर्वं जलस्थलमायाकाशकरूपगता इमे पंच ।
भेदा हि चूलिकायाः, तेषु प्रमाणमिदं क्रमशः ॥३६२॥

टीका — दृष्टिवाद नामा बारहवां अंग के पंच अधिकार हैं – परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका ए पंच अधिकार हैं; तिनि विषैं **परितः** कहिए सर्वांग तैं कर्माणि कहिये जिन तें गुणकार भागहारादि रूप गणित होइ, असें करणसूत्र, ते जिस विषैं पाइए, सो परिकर्म कहिये; सो परिकर्म पांच प्रकार हैं – चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति ।

तहां चंद्रप्रज्ञप्ति – चंद्रमा का विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमनविशेष, वृद्धि, हानि, सारा, आधा, चौथाई ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि सूर्यप्रज्ञप्ति – सूर्य का आयु मंडल, परिवार, ऋद्धि, गमन का प्रमाण ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति – जंबूद्वीपसंबंधी मेरुगिरि, कुलाचल, द्रह, क्षेत्र, वेदी, वनखंड, व्यंतरनि के मंदिर, नदी इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति – असंख्यात द्वीप समुद्र संबंधी स्वरूप वा तहां तिष्ठते ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासीनि के आवास तहां अकृत्रिम जिन मंदिर, तिनकौं प्ररूपै है । बहुरि व्याख्याप्रज्ञप्ति – रूपी, अरूपी, जीव, अजीव आदि पदार्थनि का वा भव्य अभव्य आदि प्रमाण करि निरूपण करै है । असैं परिकर्म के पंच भेद हैं ।

बहुरि **सूत्रपति** कहिये मिथ्यादर्शन के भेदनि कौं सूचै, बतावै, ताकौं सूत्र कहिये । तिस विषै जीव अबंधक ही है; अकर्ता है; निर्गुण है; अभोक्ता है; स्व-प्रकाशक ही है; परप्रकाशक ही है; अस्तिरूप ही है; नास्तिरूप ही है इत्यादि क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद, विनयवाद, तिनके तीन सै तरेसठि भेद, तिनिका पूर्व पक्षपने करि वर्णन करिये है ।

बहुरि प्रथम कहिए मिथ्यादृष्टी अव्रती, विशेष ज्ञानरहित, ताकौं उपदेश देने निमित्त जो प्रवृत्त भया अधिकार – अनुयोग; कहिए सो प्रथमानुयोग कहिए । तिहि विषै चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ति, नव बलभद्र, नव नारायण, नव प्रति-नारायण इनि तरेसठि शलाका पुरुषनि का पुराण वर्णन कीया है ।

बहुरि पूर्वगत चौदह प्रकार, सो आगै विस्तार नैं लीएं कहैंगे ।

बहुरि चूलिका के पंच भेद जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता, आकाश-गता ए पंच भेद हैं ।

तिनि विषैं **जलगता चूलिका** तौ जल का स्तंभन करना, जल विषैं गमन करना, अग्नि का स्तंभन करना, अग्नि का भक्षण करना, अग्नि विषैं प्रवेश करना इत्यादि क्रिया के कारण भूत मंत्र, तंत्र, तपश्चरणादि प्ररूपै है । बहुरि **स्थल-गता चूलिका** मेरुपर्वत, भूमि इत्यादि विषैं प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक प्ररूपै है । बहुरि **मायागता चूलिका** मायामई इन्द्रजाल विक्रिया के कारण भूत मंत्र, तंत्र, तपश्चरणादि प्ररूपै है । बहुरि **रूपगता चूलिका** सिंह, हाथी, घोड़ा, वृषभ, हरिण इत्यादि नाना प्रकार रूप पलटि करि धरना; ताके कारण मंत्र, तंत्र, तपश्चरणादि प्ररूपै है । वा चित्राम, काठ, लेपादिक का लक्षण प्ररूपै है । वा धातु रसायन कौं प्ररूपै है । बहुरि **आकाशगता चूलिका** – आकाश विषैं गमन आदि कौं कारण भूत मंत्र, तंत्रादि प्ररूपै है । ऐसैं चूलिका के पांच भेद जानने ।

ए चंद्रप्रज्ञप्ति आदि देकर भेद कहे । तिनिके पदनि का प्रमाण आगे कहिए है, सो हे भव्य तू जानि ।

गतनम मनगं गोरम, मरगत जवगातं नोननं जजलक्खा ।
मननन धममननोननमामं रनधजधरानन जलादी ॥३६३॥

याजकनामेनानन्नमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे ।
कानवधिवाचनानन्नमेसो पुण चूलियाजोगो ।।३६४।।

गतनम मनगं गोरम, मरगत जवगातनोम्मनं जजलक्षाणि ।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादिसु ।।३६३।।

याजकनामेनानन्नमेतानि पदानि भवंति परिकर्मणि ।
कानवधिवाचनानन्नमेषः पुनः चूलिकायोगः ।।३६४।।

टीका — इहां 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्रोक्त विधान तैं अक्षर संज्ञा करि अंक कहै हैं; सो अंकनि करि जो प्रमाण भया, सोई इहां कहिए है । एक एक अक्षर तैं एक एक अंक जानि लेना; सो 'गतनमनोननं' कहिये छत्तीस लाख पांच हजार (३६०५०००) पद चंद्रप्रज्ञप्ति विषै हैं ।

बहुरि 'मनगनोननं' कहिए पांच लाख तीन हजार (५०३०००) पद सूर्य-प्रज्ञप्ति विषै हैं ।

बहुरि 'गोरमनोननं' कहिये तीन लाख पचीस हजार (३२५०००) पद जंबू-द्वीप प्रज्ञप्ति विषै हैं ।

बहुरि 'मरगतनोननं' कहिये बावन लाख छत्तीस हजार (५२३६०००) पद द्वीपसागर प्रज्ञप्ति विषै हैं ।

बहुरि 'जवगातनोननं' कहिये चौरासी लाख छत्तीस हजार (८४३६०००) पद व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग के हैं ।

बहुरि 'जजलरक्षा' कहिए अठ्यासी लाख (८८०००००) पद सूत्र नामा भेद विषै हैं ।

बहुरि मननन कहिए पांच हजार (५०००) पद प्रथमानुयोग विषै है ।

बहुरि धममननोननामं कहिए पिच्याणवै कोडि पचास लाख पांच (९५५०००००५) पद पूर्वगत विषै हैं । चौदह पूर्वनि के इतने पद हैं ।

बहुरि रनधजधरानन कहिए दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोय सै (२०९८९२००) पद जलगता आदि चूलिका तिन विषै एक एक के इतनें इतनें पद

जानने । जलगता पद (२०९८९२००), स्थलगता २०९८९२००, मायागता २०९८९२००, आकाशगता २०९८९२००, रूपगता २०९८९२०० ऐसें पद जानने ।

बहुरि 'याजकनामेनाननं' कहिए एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार (१८१०५०००) पद चंद्रप्रज्ञप्ति आदि पांच प्रकार परिकर्म का जोड़ दीये हो हैं ।

बहुरि 'कानवधिवाचनाननं' कहिए दश कोडि गुणचास लाख छियालीस हजार (१०४९४६०००) पद पांच प्रकार चूलिका का जोड़ दीयें हो हैं ।

इहां ग कार तें तीन का अंक, ज कार तें छह का अंक, म कार तें पांच का अंक, र कार तें दोय का अंक, न कार तें बिंदी, इत्यादि अक्षर संज्ञा करि अंक संज्ञा कहे हैं । क कार तें लेय ग कार तीसरा अक्षर है; तातें तीन का अंक कह्या । बहुरि च कार तें ज कार छठा अक्षर है; तातें छह का अंक कह्या । प कार तें म कार पांचवां अक्षर है; तातें पांच का अंक कह्या । य कार तें र कार दूसरा अक्षर है; तातें दोय का अंक कह्या है । न कार तें बिंदी कही है । इत्यादि यहां अक्षर संज्ञा तें अंक जानने ।

पण्णट्ठदाल पणतीस, तीस पण्णास पण्ण तेरसदं ।
णउदी दुदाल पुव्वे, पणवण्णा तेरससयाइं ॥३६५॥

छस्सय पण्णासाइं, चउसयपण्णास छसयपणुवीसा ।
बिहि लक्खेहि दु गुणिया, पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥

पंचाशदष्टचत्वारिंशत् पंचत्रिंशत् त्रिशत् पंचाशत् पंचाशत्त्रयोदशशतं ।
नवतिः द्वाचत्वारिंशत् पूर्वे पंचपंचाशत् त्रयोदशशतानि ॥३६५॥

षट्शतपंचाशानि, चतुः शतपंचाशत् षट्शतपंचविंशतिः ।
द्वाभ्यां लक्षाभ्यां तु गुणितानि पंचमं रूपोनं षट्युतानि षष्ठे ॥३६६॥

टीका – उत्पाद आदि चौदह पूर्वनि विषैं पदनि की संख्या कहिए है । तहां वस्तु का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, आदि अनेक धर्म, तिसका पूरक, सो **उत्पादनामा प्रथम पूर्व** है । इस विषैं जीवादि वस्तुनि का नाना प्रकार नय विवक्षा करि क्रमवर्ती युगपत् अनेक धर्म करि भये, जे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, ते तीनों तीन काल अपेक्षा नव

धर्म भये । सो उन धर्मरूप परिणया वस्तु, सो भी नव प्रकार हो है । उपज्या, उपजै है, उपजैगा । नष्ट भया, नष्ट हो है, नष्ट होयगा । स्थिर भया, स्थिर है, स्थिर होयगा । ऐसें नव प्रकार द्रव्य भया । इन एक एक का नव नव उत्पन्नपना आदि धर्म जानने । ऐसें इक्यासी भेद लीयें द्रव्य का वर्णन है । याके दोय लाख तें पचासकौं गुणिये, ऐसा एक कोडि (१००००००००) पद जानने ।

बहुरि अग्र कहिये, द्वादशांग विषें प्रधानभूत जो वस्तु, ताका अयन कहिये ज्ञान, सो ही है प्रयोजन जाका, ऐसा **अग्रायणीय नामा दूसरा पूर्व** है । इस विषें सात सै सुनय अर दुर्नय, तिनिका अर सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य इत्यादि का वर्णन है । याके दोय लाख तें अडतालीस कौं गुणिये, ऐसें छिनवै लाख (९६०००००) पद हैं ।

बहुरि वीर्य कहिये जीवादिक वस्तु की शक्ति – समर्थता, ताका है अनुप्रवाद कहिये वर्णन, जिस विषें ऐसा **वीर्यानुवाद नामा तीसरा पूर्व** है । इस विषें आत्मा का वीर्य, पर का वीर्य, दोऊ का वीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्य इत्यादिक द्रव्य गुण पर्यायनि का शक्तिरूप वीर्य तिसका व्याख्यान है । याकौं दोय लाख तें पैंतीस कौं गुणिये ऐसें सत्तरि लाख (७००००००) पद हैं ।

बहुरि अस्ति, नास्ति आदि जे धर्म तिनिका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इस विषें ऐसा **अस्ति नास्ति प्रवाद नामा चौथा पूर्व** है । इस विषें जीवादि वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि संयुक्त हैं । तातैं स्यात् अस्ति है । बहुरि पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषें यह नाहीं है; तातैं स्यान्नास्ति है । बहुरि अनुक्रम तैं स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा स्यात् अस्ति - नास्ति है । बहुरि युगपत् स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा द्रव्य कहने में न आवे, तातैं स्यात् अवक्तव्य है । बहुरि स्व द्रव्य, क्षेत्र काल भाव करि द्रव्य अस्ति रूप है । बहुरि युगपत् स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि कहने में आवै; तातैं स्यात् अस्ति अवक्तव्य है । बहुरि पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि द्रव्य नास्तिरूप है । बहुरि युगपत् स्व – पर द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव करि द्रव्य कहने में न आवै; तातैं स्यात्नास्तिअवक्तव्य है । बहुरि अनुक्रम तैं स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा द्रव्य अस्ति नास्ति रूप है । अर युगपत् स्व पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अवक्तव्य है; तातैं स्यात् अस्ति – नास्ति अवक्तव्य है । ऐसें जिस प्रकार अस्ति नास्ति अपेक्षा सप्त भेद कहे हैं । तैसें एक-अनेक

धर्म अपेक्षा सप्त भंग हो हैं । अभेद अपेक्षा स्यात् एक है । भेद अपेक्षा स्यात् अनेक हैं । क्रम तैं अभेद भेद अपेक्षा स्यात् एक - अनेक है । युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् अवक्तव्य है । अभेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद-भेद अपेक्षा स्यात एक अवक्तव्य है । भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् अनेक अवक्तव्य है । क्रम तैं अभेद – भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद – भेद अपेक्षा स्यात् एक – अनेक अवक्तव्य है । ऐसें ही नित्य अनित्य नै आदि दे अनंत धर्मनि के सप्त भंग हैं । तहां प्रत्येक भंग तीन अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य, अर द्विसंयोगी भंग तीन अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अर त्रिसंयोगी एक अस्ति – नास्ति – अवक्तव्य । इनि सप्त भंगनि का समुदाय सो सप्तभंगी सो प्रश्न के वश तैं एक ही वस्तु विषैं अविरोधपनै संभवती नाना प्रकार नयनि की मुख्यता, गौणता करि प्ररूपण कीजिए है । इहां सर्वथा नियमरूप एकांत का अभाव लीए कथंचित् ऐसा है अर्थ जाका सो स्यात् शब्द जानना । इस अंग के दोय लाख तैं तीस कौं गुणिए सो साठि लाख (६००००००) पद हैं ।

बहुरि ज्ञाननि का है प्रवाद कहिए प्ररूपण, जिस विषैं ऐसा **ज्ञानप्रवाद नामा पांचमां पूर्व** है । इस विषै मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय, केवल ए पांच सम्यग्ज्ञान अर कुमति, कुश्रुति, विभंग ए तीन कुज्ञान इनिका स्वरूप, संख्या वा विषय वा फल इत्यादि अपेक्षा प्रमाण अप्रमाणता रूप भेद वर्णन कीजिए है । याके दोय लाख तैं पचास कौं गुणैं, एक कोटि होइ तिन में स्यों एक घटाइए ऐसैं एक घाटि कोडि (९९९९९९९) पद हैं । गाथा विषै **पंचम ऊणा** ऐसा कहा है । तातैं पांचमां अंग में एक घटाया अन्य संख्या गाथा अनुसारि कहिए ही है ।

बहुरि सत्य का है प्रवाद कहिए प्ररूपण इस विषैं ऐसा **सत्यप्रवाद नामा छठा पूर्व** है । इस विषैं वचन गुप्ति – बहुरि वचन संस्कार के कारण, बहुरि वचन के प्रयोग, बहुरि बारह प्रकार भाषा, बहुरि बोलनेवाले जीवों के भेद, बहुरि बहुत प्रकार मृषा वचन, बहुरि दशप्रकर सत्य वचन इत्यादि वर्णन है । तहां असत्य न बोलना वा मौन धरना सो सत्य वचन गुप्ति कहिए ।

बहुरि वचन संस्कार के कारण दोय एक तौ स्थान, एक प्रयत्न । तहां जिनि स्थाननि तैं अक्षर बोलैं, जांहि ते स्थान आठ हैं – हृदय, कंठ, मस्तक, जिह्वा का मूल, दंत, नासिका, होठ, तालवा । जैसैं अ कार, क वर्ग, ह कार, विसर्ग इनिका कंठ स्थान है ऐसें अक्षरनि के स्थान जानने ।

बहुरि जिस प्रकार अक्षर कहे जांहि, ते प्रयत्न पांच हैं – स्पृष्टता, ईषत् स्पृष्टता, विवृतता, ईषद्विवृतता, संवृतता । तहां अंग का अंग तैं स्पर्श भए, अक्षर बोलिए सो स्पृष्टता । किछू थोरा स्पर्श भए बोलिए, सो ईषत्स्पृष्टता अंग कौं उघाडि बोलिए, सो विवृतता किछू थोरा उघाडि बोलिए, सो ईषद्विवृतता अंग तें अंग कौं ढांकि बोलिए; सो संवृतता । जैसें प कारादिक होठ से होठ का स्पर्श भएं ही उच्चारण होइ; असैं प्रयत्न जानने ।

बहुरि वचन प्रयोग दोय प्रकार शिष्टरूप भला वचन, दुष्टरूप बुरा वचन ।

बहुरि भाषा बारह प्रकार, तहां इसनै असा कीया है; असा अनिष्ट वचन कहना; सो अभ्याख्यान कहिए । बहुरि जातैं परस्पर विरोध होइ; सो कलह वचन । बहुरि पर का दोष प्रकट करना; सो पैशून्य वचन । बहुरि धर्म अर्थ काम मोक्ष का संबंध रहित वचन, सो असंबद्ध प्रलाप वचन । बहुरि इन्द्रिय विषयनि विषैं रति का उपजावन हारा वचन; सो रति वचन । बहुरि विषयनि विषैं अरति का उपजावन हारा वचन; सो अरति वचन । बहुरि परिग्रह का उपजावनै, राखनै की आसक्तता का कारण वचन; सो उपधि वचन । बहुरि व्यवहार विषै ठिगनेरूप वचन, सो निकृति वचन । बहुरि तप ज्ञानादिक विषैं अविनय का कारण वचन; सो अप्रणति वचन । बहुरि चोरी का कारणरूप वचन, सो मोष वचन । बहुरि भले मार्ग का उपदेशरूप वचन, सो सम्यग्दर्शन वचन । बहुरि मिथ्या मार्ग का उपदेशरूप वचन, सो मिथ्यादर्शन वचन । असैं बारह भाषा हैं ।

बहुरि बेइंद्रिय आदि सैनी पंचेन्द्रिय पर्यंत वचन बोलने वाले वक्तानि के भेद हैं । बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावादिक करि मृषा जो असत्य वचन; सो बहुत प्रकार है । बहुरि जनपदादि दश प्रकार सत्य वचन पूर्वे योग मार्गणा विषैं कहि आए हैं; असा असा कथन इस पूर्व विषैं है । याके दोय लाख तैं पचास कौं गुणिए अर छज्जुदा छहू इस वचन करि छह मिलाइए असै एक कोटि छह (१००००००६) पद हैं ।

बहुरि आत्मा का प्रवाद कहिए प्ररूपण है, इस विषैं असा आत्मप्रवाद नामा सातमां पूर्व है । इस विषैं गाथा –

जीवो कत्ता य वेत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो ।
वेदो विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो ॥

सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो ।
असंकुडो य खेत्तण्हू, अंतरप्पा तहेव य ।।

इत्यादि आत्मस्वरूप का कथन है; इनका अर्थ लिखिए है ।

जीवति कहिये जीवै है, व्यवहार करि दश प्राणनि कौं, निश्चय करि ज्ञान दर्शन सम्यक्त्वरूप चैतन्य प्राणनि कौं धारै है । अर पूर्वं जीया, आगें जीवेगा; तातैं आत्मा को जीव कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि शुभाशुभ कर्म कौं अर निश्चय करि चैतन्य प्राणनि कौं करै है, तातैं कर्ता कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि सत्य असत्य वचन बोलै है; तातैं वक्ता है । निश्चय करि वक्ता नाहीं है ।

बहुरि दोऊ नयनि करि जे प्राण कहे, ते याकैं पाइए हैं । तातैं प्राणी कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि शुभ अशुभ कर्म के फल कौं अर निश्चय करि निज स्वरूप कौं भोगवै है; तातैं भोक्ता कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलनि कौं पूरै है अर गालै है; तातैं पुद्गल कहिए । निश्चय करि आत्मा पुद्गल है नाहीं ।

बहुरि दोऊ नयनि करि लोकालोक संबंधी त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयनि कौं 'वेत्ति' कहिए जानै है, तातैं वेदक कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि अपने देह कौं वा केवल समुद्घात करि सर्व लोक कौं अर निश्चय करि ज्ञान तैं सर्व लोकालोक कौं वेवेष्टि कहिए व्यापै है, तातैं विष्णु कहिए ।

बहुरि यद्यपि व्यवहार करि कर्म के वशतैं संसार विषैं परिणवै है; तथापि निश्चय करि स्वयं आप ही आप विषैं ज्ञान - दर्शन स्वरूप ही करि भवति कहिए परिणवै है; तातैं स्वयंभू कहिए ।

बहुरि व्यवहार करि औदारिक आदिक शरीर, याकैं हैं; तातैं शरीरी कहिये, निश्चय करि शरीरी नाहीं है ।

बहुरि व्यवहार करि मनुष्यादि पर्यायरूप परिणवै है; तातैं मानव कहिए। उपलक्षण तैं नारकी वा तिर्यंच वा देव कहिए। निश्चय करि मनु कहिए ज्ञान, तीहि विषैं भवः कहिए सत्तारूप है; तातैं मानव कहिए।

बहुरि व्यवहार करि कुटुंब, मित्रादि परिग्रह विषैं सजति कहिये आसक्त होइ प्रवर्तै है; तातैं सक्ता कहिए। निश्चयकरि सक्ता नाहीं है।

बहुरि व्यवहार करि संसार विषैं नाना योनि विषैं जायते कहिए उपजै है, तातैं जंतु कहिये। निश्चय करि जंतु नाहीं है।

बहुरि व्यवहार करि मान कहिए अहंकार, सो याकै है; तातैं मानी कहिए। निश्चयकरि मानी नाहीं है।

बहुरि व्यवहार करि माया जो कपटाई; सो याकै है; तातैं मायावी कहिए। निश्चय करि मायावी नाहीं है।

बहुरि व्यवहारकरि मन, वचन, काय क्रियारूप योग याकै है; तातैं योगी कहिए। निश्चय करि योगी नाहीं है।

बहुरि व्यवहार करि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना करि प्रदेशनि कौ संकोचै है; तातैं संकुट है। बहुरि केवलिसमुद्घात करि सर्व लोक विषैं व्यापै है; तातैं असंकुट है। निश्चय करि प्रदेशनि का संकोच विस्तार रहित किंचित् ऊन चरम शरीर प्रमाण है; तातैं संकुट, असंकुट नाहीं है।

बहुरि दोऊ नय करि क्षेत्र, जो लोकालोक, ताहि जानाति (ज्ञ) कहिए जानै है; तातैं क्षेत्रज्ञ कहिए।

बहुरि व्यवहार करि अष्ट कर्मनि के अभ्यंतर प्रवर्तै है। अर निश्चय करि चैतन्य स्वभाव के अभ्यंतर प्रवर्तै है; तातैं अंतरात्मा कहिए।

चकार तैं व्यवहार करि कर्म - नोकर्म रूप मूर्तीक द्रव्य के संबंध तैं मूर्तीक है; निश्चय करि अमूर्तीक है। इत्यादिक आत्मा के स्वभाव जानने। इनिका व्याख्यान इस पूर्व विषैं है। याके दोय लाख तैं तेरह सै कौं गुणिए ऐसे छब्बीस कोडि (२६०००००००) पद हैं।

बहुरि कर्म का है प्रवाद कहिए प्ररूपण, इसविषैं ऐसा **कर्मप्रवाद नामा आठमां पूर्व** है। इसविषैं मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति, उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप भेद लीएं बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता रूप अवस्था कौं धरैं ज्ञानावरणादिक कर्म, तिनिके स्वरूप कौं वा समवधान, ईर्यापथ, तपस्या, अधःकर्म इत्यादिक क्रियारूप कर्मनि कौं प्ररूपिए है। याके दोय लाख तैं निवै कौं गुणिए, ऐसे एक कोडि अस्सी लाख (१८००००००) पद हैं।

बहुरि **प्रत्याख्यायते** कहिए निषेधिए है पाप जाकरि, ऐसा **प्रत्याख्यान नामा नवमां पूर्व** है। इसविषैं नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा जीवनि का संहनन वा बल इत्यादिक के अनुसार करि काल मर्यादा लीए वा यावज्जीव प्रत्याख्यान कहिए सकल पाप सहित वस्तु का त्याग; उपवास की विधि, ताकी भावना, पांच समिति, तीन गुप्ति इत्यादि वर्णन कीजिए है। याके दोय लाख तैं बियालीस कौं गुणिए, ऐसे चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं।

बहुरि विद्यानि का है अनुवाद कहिए अनुक्रमतैं वर्णन इस विषैं ऐसा **विद्यानुवाद नामा दशमां पूर्व** है। इसविषैं सात सै अंगुष्ठ, प्रसेन आदि अल्पविद्या अर पांच सै रोहिणी आदि महाविद्या, तिनका स्वरूप, समर्थता, साधनभूत मंत्र, यंत्र, पूजा, विधान, सिद्ध भये पीछे उन विद्यानि का फल बहुरि अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न ए आठ महानिमित्त इत्यादि प्ररूपिए। सो याके दोय लाख तैं पचावन कौं गुणिए ऐसे एक कोड दश लाख (११००००००) पद हैं।

बहुरि कल्याणनि का है वाद कहिए प्ररूपण जाविषैं ऐसा **कल्याणवाद नामा ग्यारह्वां पूर्व** है। इस विषैं तीर्थंकर, चक्रवर्ति, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण इनके गर्भ आदिक कल्याण कहिए महा उच्छव बहुरि तिसके कारणभूत षोडश भावना, तपश्चरण आदिक क्रिया। बहुरि चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र इनिका गमन-विशेष, ग्रहण, शकुन, फल इत्यादि विशेष वर्णन कीजिए हैं। याके दोय लाख तैं तेरह सै कौं गुणिए ऐसे छब्बीस कोडि (२६००००००००) पद हैं।

बहुरि प्राणनि का है आवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा **प्राणावाद नामा बारह्वां पूर्व** है। इसविषैं चिकित्सा आदि आठ प्रकार वैद्यक, अर भूतादि व्याधि दूर करने कौं कारण मंत्रादिक वा विष दूरि करणहारा जो जांगुलिक, ताका कर्म वा

इला, पिंगला, सुषमणा, इत्यादि स्वरोदय रूप बहुत प्रकार कारणरूप सासोस्वास का भेद; बहुरि दश प्राणनि कौं उपकारी वा अनुपकारी वस्तु गत्यादिक के अनुसारि वर्णन कीजिए है; सो जाके दोय लाख तें छह सै पचास कौं गुणिए, ऐसे तेरह कोडि (१३००००००००) पद हैं।

बहुरि क्रिया करि विशाल कहिए विस्तीर्ण, शोभायमान असा **क्रियाविशाल नामा तेरह्वां पूर्व** है। इसविषैं संगीत, शास्त्र, छंद, अलंकारादि शास्त्र, बहत्तरि कला, चौसठि स्त्री का गुण शिल्प आदि चातुर्यता, गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शनादि एक सै आठ क्रिया, देववंदना आदि पचीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिक प्ररूपिए हैं। याके दोय लाख तैं च्यारि सै पचास कौं गुणिए असे नव कोडि (९००००००००)पद हैं।

बहुरि त्रिलोकनि का बिंदु कहिए अवयव अर सार सो प्ररूपिए है, याविषैं असा **त्रिलोकबिंदुसार नामा चौदह्वां पूर्व** है। इसविषैं तीन लोक का स्वरूप अर छब्बीस परिकर्म, आठ व्यवहार, च्यारि बीज इत्यादि गणित अर मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष का कारणभूत क्रिया, मोक्ष का सुख इत्यादि वर्णन कीजिए है। याके दोय लाख तैं छह सै पचीस कौं गुणिए, असे बारह कोडि पचास लाख (१२५००००००)पद हैं।

असैं चौदह पूर्वनि के पदनि की संख्या हो है। इहां दोय लाख का गुणकार का विधान करि गाथा विषैं संख्या कही थी; तातैं टीका विषैं भी तैसै ही कही है।

सामाइय चउवीसत्थयं, तदो वंदणा पडिक्कमणं।
वेणइयं किदियम्मं, दसवेयालं च उत्तरज्झयणं ॥३६७॥

कप्पववहार-कप्पाकप्पिय-महकप्पियं च पुंडरियं।
महपुंडरीयणिसिहियमिवि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥३६८॥

सामायिकं चतुर्विशस्तवं, ततो वंदना प्रतिक्रमणं।
वैनयिकं कृतिकर्म, दशवैकालिकं च उत्तराध्ययनं ॥३६७॥

कल्प्यव्यवहार – कल्प्याकल्प्य – महाकल्प्यं च पुंडरीकं।
महापुंडरीकं निषिद्धिका इति चतुर्दशांगबाह्यं ॥३६८॥

टीका – बहुरि प्रकीर्णक नामा अंगबाह्य द्रव्यश्रुत, सो चौदह प्रकार है। सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुंडरीक, महापुंडरीक, निषिद्धिका।

तहां सं कहिए एकत्वपनैं करि आयः कहिए आगमन पर द्रव्यनि तैं निवृत्ति होइ, उपयोग की आत्मा विषैं प्रवृत्ति 'यहु मैं ज्ञाता द्रष्टा हौं' असैं आत्मा विषैं उपयोग सो सामायिक कहिए। जातैं एक ही आत्मा सो जानने योग्य है; तातैं ज्ञेय है। अर जाननें हारा है, तातैं ज्ञायक है। तातें आप कौं ज्ञाता द्रष्टा अनुभवै है।

अथवा सम कहिए राग-द्वेष रहित मध्यस्थ आत्मा, तिस विषैं आयः कहिए उपयोग की प्रवृत्ति; सो सामायिक कहिए, समाय है प्रयोजन जाका सो सामायिक कहिए। नित्य नैमित्तिक रूप क्रिया विशेष, तिस सामायिक का प्रतिपादक शास्त्र सो भी सामायिक कहिए।

सो नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेद करि सामायिक छह प्रकार है।

तहां इष्ट - अनिष्ट नाम विषैं राग द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तु का सामायिक असा नाम धरना, सो नाम सामायिक है।

बहुरि मनोहर वा अमनोहर जो स्त्री - पुरुषादिक का आकार लीए काठ, लेप, चित्रामादि रूप स्थापना तिन विषैं राग - द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तु विषैं यहु सामायिक है; असा स्थापना करि स्थाप्यो हूवा वस्तु, सो स्थापनासामायिक है। बहुरि इष्ट - अनिष्ट, चेतन - अचेतन द्रव्य विषैं राग - द्वेष न करना। अथवा जो सामायिक शास्त्र कौं जानै हैं अर वाका उपयोग सामायिक विषैं नाहीं है, सो जीव वा उस सामायिक शास्त्र के जाननेवाले का शरीरादिक, सो द्रव्य सामायिक है।

बहुरि ग्राम, नगर, वनादिक इष्ट अनिष्ट क्षेत्र, तिन विषैं राग द्वेष न करना, सो क्षेत्र सामायिक है।

बहुरि वसंत आदि ऋतु अर शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, दिन, वार, नक्षत्र इत्यादि इष्ट - अनिष्ट काल के विशेष, तिनिविषैं राग - द्वेष न करना, सो काल सामायिक है।

बहुरि भाव, जो जीवादिक तत्त्व विषैं उपयोगरूप पर्याय, ताके मिथ्यात्वकषायरूप संक्लेशपना की निवृत्ति अथवा सामायिक शास्त्र कौं जानै है अर उस ही विषैं उपयोग जाका है, सो जीव अथवा सामायिक पर्यायरूप परिणमन, सो भावसामायिक है ।

ऐसैं **सामायिक नामा प्रकीर्णक कह्या है ।**

बहुरि जिस काल विषैं जिनका प्रवर्तन होइ, तिस काल विषैं तिन ही चौबीस तीर्थंकरनि का नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव का आश्रय करि पंच कल्याणक, चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्य शरीर, समवसरणसभा, धर्मोपदेश देना इत्यादि तीर्थंकरपने की महिमा का स्तवन, सो **चतुर्विंशतिस्तव** कहिए । ताका प्रतिपादक शास्त्र, सो **चतुर्विंशतिस्तव नामा प्रकीर्णक** है ।

बहुरि एक तीर्थंकर का अवलंबन करि प्रतिमा, चैत्यालय इत्यादिक की स्तुति, सो वंदना कहिए । याका प्रतिपादक शास्त्र, **सो वंदना प्रकीर्णक कहिए ।**

बहुरि **प्रतिक्रम्यते** कहिए प्रमाद करि कीया है दैवसिक आदि दोष, तिनिका निराकरण जाकरि कीजिए, सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक कहिए । सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक सात प्रकार है – दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक उत्तमार्थ ।

तहां संध्यासमय दिन विषैं कीया दोष, जाकरि निवारिए, सो दैवसिक है । बहुरि प्रभातसमय रात्रि विषैं कीया दोष जाकरि निवारिए, सो रात्रिक है । बहुरि पंद्रह्व दिन, पक्ष विषैं कीया दोष जाकरि निवारिए, सो पाक्षिक कहिए । बहुरि चौथे महीने च्यारिमास विषैं कीए दोष जाकरि निवारिए, सो चातुर्मासिक कहिए । बहुरि वर्षवें दिन एकवर्ष विषैं कीए दोष जाकरि निवारिए, सो सांवत्सरिक कहिए । बहुरि गमन कर तैं निपज्या दोष जाकरि निवारिए; सो ऐर्यापथिक कहिए । बहुरि सर्व पर्याय संबंधी दोष जाकरि निवारिए; सो उत्तमार्थ है । ऐसैं सात प्रकार प्रतिक्रमण जानना ।

सो भरतादि क्षेत्र अर दुःषमादिकाल, छह संहनन करि संयुक्त स्थिर वा अस्थिर पुरुषनि के भेद, तिनकी अपेक्षा प्रतिक्रमण का प्रतिपादक शास्त्र, सो **प्रतिक्रमण नामा प्रकीर्णक कहिए ।**

बहुरि विनय है प्रयोजन जाका, सो **वैनयिक नामा प्रकीर्णक** कहिए। इस-विषैं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, उपचार संबंधी पंच प्रकार विनय के विधान का प्ररूपण है।

बहुरि कृति कहिये क्रिया, ताका कर्म कहिए विधान, इसविषैं प्ररूपिए है; सो **कृतिकर्म नामा प्रकीर्णक** कहिए। इसविषैं अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि नव देवतानि की वंदना के निमित्त आप आधीन होना; सो आत्माधीनता अर गिरंद भ्रमणरूप तीन प्रदक्षिणा अर पृथ्वी तैं अंग नवाइ दोय नमस्कार अर शिर नवाइ च्यारि नमस्कार अर हाथ जोड़ि फेरनरूप बारह आवर्त इत्यादि नित्य - नैमित्तिक क्रिया का विधान निरूपिए है।

बहुरि विशेष रूप जे काल, ते विकाल कहिए। तिनिकौं होतैं जो होय सो वैकालिक, सो दश वैकालिक इस विषैं प्ररूपिए है, असा **दशवैकालिक नामा प्रकीर्णक** है। इस विषैं मुनिका आचार अर आहार की शुद्धता अर लक्षण प्ररूपिए है।

बहुरि उत्तर जिस विषैं **अधीयंते** कहिए पढिए; सो **उत्तराध्ययन नामा प्रकीर्णक** है। इस विषैं च्यारि प्रकार उपसर्ग, बाईस परिषह, इनिके सहने का विधान वा तिनिका फल अर इस प्रश्न का यहु उत्तर असैं उत्तर विधान प्ररूपिए है।

बहुरि कल्प्य कहिए योग्य आचरण, सो **व्यवह्रियते अस्मिन्** कहिए प्रवृत्ति-रूप कीजिए जाविषैं असा **कल्प्यव्यवहार नामा प्रकीर्णक** है। इस विषैं मुनीश्वरनि के योग्य आचरणनि का विधान अर अयोग्य का सेवन होतैं प्रायश्चित्त प्ररूपिए है।

बहुरि **कल्प्य** कहिए योग्य अर **अकल्प्य** कहिए अयोग्य प्ररूपिए हैं जाविषैं, असा **कल्प्याकल्प्य नामा प्रकीर्णक** है। इसविषैं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा साधुनि कौं यहु योग्य है, यहु अयोग्य है; असा भेद प्ररूपिए है।

बहुरि **महतां** कहिए महान् पुरुषनि कैं कल्प्य कहिए योग्य, असा आचरण जाविषैं प्ररूपिए है, सो **महाकल्प्य नामा प्रकीर्णक** है। इसविषैं जिनकल्पी महामुनिनि के उत्कृष्ट संहनन योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषैं प्रवर्तैं तिनकैं प्रतिमायोग वा आतापनयोग, अभ्रावकाश, वृक्षतल रूप त्रिकाल योग इत्यादि आचरण प्ररूपिए है। अर स्थविरकल्पीनि की दीक्षा, शिक्षा, संघ का पोषण, यथायोग्य शरीर का समा-

धाम; सो आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तम अर्थ स्थान कौं प्राप्त उत्तम आराधना, इनिका विशेष प्ररूपिए है ।

बहुरि पुंडरीक नामा प्रकीर्णक भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी इनि विषैं उपजने कौं कारण अैसा दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यक्त्व, संयम इत्यादि विधान प्ररूपिये है । वा तहां उपजने तैं जो विभवादि पाइए, सो प्ररूपिये है ।

बहुरि महान् जो पुंडरीक, सो महापुंडरीक नामा प्रकीर्णक है । सो महर्धिक जे इंद्र, प्रतींद्र, अहमिंद्रादिक, तिनविषैं उपजने कौं कारण अैसे विशेष तपश्चरणादि, तिनिकौं प्ररूपै है ।

बहुरि निषेधनं कहिए प्रमाद करि कीया दोष का निराकरण; सो निषिद्धि कहिए संज्ञा विषैं क प्रत्ययकरि निषिद्धिका नाम भया, सो अैसा निषिद्धिका नाम प्रकीर्णक प्रायश्चित्त शास्त्र है । इस विषैं प्रमादतैं कीया दोष का विशुद्धता के निमित्त अनेक प्रकार प्रायश्चित्त प्ररूपिए हैं । याका निसतिका अैसा भी नाम है ।

अैसैं अंगबाह्य श्रुतज्ञान चौदह प्रकार कह्या । याके अक्षरनि का प्रमाण पूर्वैं कह्या ही है ।

आगैं श्रुतज्ञान की महिमा कहै हैं –

सुदकेवलं च णाणं, दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो ।
सुदणाणं तु परोक्खं, पच्चक्खं केवलं णाणं ॥३६९॥

श्रुतकेवलं च ज्ञानं, द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात् ।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं, प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानं ॥३६९॥

टीका – श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान दोऊ समस्त वस्तुनि के द्रव्य, गुण, पर्याय जानने की अपेक्षा समान हैं । इतना विशेष श्रुतज्ञान परोक्ष है; केवलज्ञान प्रत्यक्ष है ।

भावार्थ — जैसैं केवलज्ञान का अपरिमित विषय है; तैसैं श्रुतज्ञान का अपरिमित विषय है । शास्त्र तैं सर्वनि का जानने की शक्ति है; परि श्रुतज्ञान सर्वोत्कृष्ट

भी होइ; तौ भी सर्व पदार्थनि विषैं परोक्ष कहिए अविशद, अस्पष्ट ही है। जातैं अमूर्तिक पदार्थनि विषैं वा सूक्ष्म अर्थ-पर्यायनि विषैं वा अन्य सूक्ष्म अंशनि विषैं विशदता करि प्रवृत्ति श्रुतज्ञान की न हो है। बहुरि जे मूर्तिक व्यंजनपर्याय वा अन्य स्थूल अंश इस ज्ञान के विषय हैं। तिनि विषैं भी अवधिज्ञानादि की नाईं प्रत्यक्ष रूप न प्रवर्तै है। तातैं श्रुतज्ञान परोक्ष है।

बहुरि केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहिए विशद अर स्पष्टरूप मूर्तिक – अमूर्तिक पदार्थ, स्थूल – सूक्ष्म पदार्थ, तिनि विषैं प्रवर्तै है, जातैं समस्त आवरण अर वीर्यांतराय के क्षय तैं प्रकट हो है; तातैं प्रत्यक्ष है। अक्ष कहिए आत्मा, तिहिं प्रति निश्चित होइ, कोई पर द्रव्य की अपेक्षा न चाहे, सो प्रत्यक्ष कहिए। प्रत्यक्ष का लक्षण विशद वा स्पष्ट है। जहां अपनें विषय के जानने मैं कसर न होइ, ताकौं विशद वा स्पष्ट कहिए।

बहुरि उपात्त वा अनुपात्तरूप पर द्रव्य की सापेक्षा कौं लीए जो होइ, सो परोक्ष कहिये। याका लक्षण अविशद – अस्पष्ट जानना। मन, नेत्र अनुपात्त है; अन्य चारि इंद्री उपात्त हैं।

ऐसैं श्रुतज्ञान केवलज्ञान विषैं प्रत्यक्ष, परोक्ष लक्षण भेद तैं भेद है। बहुरि विषय अपेक्षा समानता है। सोई समंतभद्राचार्य देवागम स्तोत्र विषैं कह्या है–

स्याद्वादकेवलज्ञाने, सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥

याका अर्थ — स्याद्वाद तौ श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान ए दोऊ सर्व तत्त्व के प्रकाशी हैं, परन्तु प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तैं भेद पाइए है। इनि दोऊ प्रमाणनि विषैं अन्यतम जो एक, सो अवस्तु है। एक का अभाव मानें दोऊनि का अभाव - विनाश जानना।

आगें शास्त्रकर्ता पैंसठि गाथानि करि अवधिज्ञान कौं प्ररूपै हैं–

अवहीयदि त्ति ओही, सीमाणाणे त्ति वण्णियं समये।
भवगुणपच्चयविहियं, जमोहिणाणे त्ति णं बेंति[1] ॥३७०॥[2]

---

१. पाठभेद— जमोहि तमोहि।

२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, गाथा सं. १८४; पृष्ठ ३६१।

अवधीयत इत्यवधिः सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये ।
भवगुणप्रत्ययविधिकं, यदवधिज्ञानमिति ब्रुवंति ॥३७०॥

टीका — अवधीयते कहिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि परिमाण जाका कीजिए, सो अवधिज्ञान जानना । जैसे मति, श्रुत, केवलज्ञान का विषय द्रव्य, क्षेत्रादि करि अपरिमित है; तैसें अवधिज्ञान का विषय अपरिमित नाहीं । श्रुतज्ञान करि भी शास्त्र के बल तें अलोक वा अनन्तकाल आदि जानें । अवधिज्ञान करि जेता द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रमाण आगे कहैंगे; तितना ही प्रत्यक्ष जानें । तातें सीमा जो द्रव्य क्षेत्रादि की मर्यादा, ताकौं लीए है विषय जाका, ऐसा जो ज्ञान, सो अवधिज्ञान है; ऐसें सर्वज्ञदेव सिद्धांत विषें कहे हैं ।

सो अवधिज्ञान दोय प्रकार कह्या है । एक भवप्रत्यय, एक गुणप्रत्यय । तहां भव जो नारकादिक पर्याय, ताके निमित्त तें होइ; सो भवप्रत्यय कहिए, जो नारकादि पर्याय धारै ताके अवधिज्ञान होइ ही होइ; तातें इस अवधिज्ञान कौं भवप्रत्यय कहिए । बहुरि गुणप्रत्यय कहिए सम्यग्दर्शनादि रूप, सो है निमित्त जाका; सो गुणप्रत्यय कहिए । मनुष्य, तिर्यंच सर्व ही कें अवधिज्ञान नाहीं; जाकें सम्यग्दर्शनादिक की विशुद्धता होइ, ताकें अवधिज्ञान होइ; तातें इस अवधिज्ञान कौं गुणप्रत्यय कहिए ।

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थे वि सव्वअंगुत्थो ।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिह्णभवो ॥३७१॥

भवप्रत्ययकं सुरनारकाणां तीर्थेऽपि सर्वांगोत्थम् ।
गुणप्रत्ययकं नरतिरश्चां शंखादिचिह्नभवम् ॥३७१॥

टीका — तहां भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवनि कें, नारकीनि कें अर चरम शरीरी तीर्थंकर देवनि कें पाइए है । सो यहु भवप्रत्यय अवधिज्ञान **'सर्वांगोत्थं'** कहिए सर्व आत्मा के प्रदेशनि विषें तिष्ठता अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय कर्म, ताके क्षयोपशम तें उत्पन्न हो है ।

बहुरि गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है, सो पर्याप्त मनुष्य अर सैनी पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच, इनिके संभवै है । सो यहु गुणप्रत्यय अवधिज्ञान **'शंखादिचिन्हभवम्'** कहिए

नाभि के ऊपरि शंख, कमल, वज्र, सांथिया, माछला, कलस इत्यादिक का आकार रूप जहां शरीर विषैं भले लक्षण होंइ; तहां संबंधी जे आत्मा के प्रदेश, तिनि विषैं तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण कर्म अर वीर्यांतराय कर्म, तिनिके क्षयोपशम तैं उत्पन्न हो है ।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान विषैं भी सम्यग्दर्शनादि गुण का सद्भाव है, तथापि उन गुणों की अपेक्षा नाहीं करने तैं भवप्रत्यय कह्या अर गुणप्रत्यय विषैं मनुष्य तिर्यंच भव का सद्भाव है; तथापि उन पर्यायनि की अपेक्षा नाहीं करने तैं गुणप्रत्यय कह्या है ।

गुणपच्चइगो छद्धा, अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही, सव्वोहि त्ति य तिधा ओही ॥३७२॥

गुणप्रत्ययकः षोढा, अनुगावस्थितप्रवर्धमानेतरे ।
देशावधिः परमावधिः, सर्वावधिरिति च त्रिधा अवधिः ॥३७२॥

टीका – जो गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है, सो छह प्रकार है – अनुगामी, अवस्थित, वर्धमान, अर इतर कहिए अननुगामी, अनवस्थित, हीयमान ऐसें छह प्रकार हैं।

तहां जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीव के साथि ही गमन करैं; ताकौं अनुगामी कहिए । ताके तीन भेद – क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी, उभयानुगामी । तहां जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्र विषैं उपज्या था, तिस क्षेत्र को छोड़ि, जीव और क्षेत्र विषैं बिहार कीया, तहां भी वह अवधिज्ञान साथि ही रह्या, विनष्ट न हुवा और पर्याय धरि विनष्ट होइ, सो क्षेत्रानुगामी कहिए । बहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्याय विषैं उपज्या था, तिस पर्याय कौं छोडि, जीव और पर्याय कौं धर्‍या तहां भी वह अवधिज्ञान साथि ही रह्या, सो भवानुगामी कहिए । बहुरि जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्र वा पर्याय विषैं उपज्या था, तातैं जीव अन्य भरतादि क्षेत्र विषैं गमन कीया वा अन्य देवादि पर्याय धर्‍या, तहां साथि ही रहै, सो उभयानुगामी कहिए ।

बहुरि जो अवधिज्ञान अपनैं स्वामी जीव की साथि गमन न करैं, सो अननुगामी कहिए । याके तीन भेद क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी । तहां जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्र विषैं उपज्या होइ, तिस क्षेत्र विषैं तौ जीव और पर्याय धरौ वा

मति धरौ वह अवधिज्ञान साथि ही रहै है। अर उस क्षेत्र तैं जीव और कोई भरत, ऐरावत, विदेहादि क्षेत्रनि विषैं गमन करै, तौ वह ज्ञान अपने उपजने का क्षेत्र ही विषैं विनष्ट होइ, सो क्षेत्राननुगामी कहिए। बहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्याय विषैं उपज्या होइ, तिस पर्याय विषैं तौ जीव और क्षेत्र विषैं तौ गमन करौ वा मति करौ वह अवधिज्ञान साथि रहै अर उस पर्याय तैं अन्य कोई देव मनुष्य आदि पर्याय धरै तौ अपने उपजने का पर्याय विषैं विनष्ट होइ, सो भवाननुगामी कहिये। बहुरि जो अवधिज्ञान और क्षेत्र विषैं वा और पर्याय विषैं जीव कौं प्राप्त होते साथि न रहै; अपने उपजने का क्षेत्र वा पर्याय विषैं ही विनष्ट होइ; सो उभयाननुगामी कहिए।

बहुरि जो अवधिज्ञान सूर्यमंडल की ज्यों घटै बधै नाहीं, एक प्रकार ही रहै; सो अवस्थित कहिए।

बहुरि जो अवधिज्ञान कदाचित् बधै, कदाचित् घटै, कदाचित् अवस्थित रहै; सो अनवस्थित कहिये।

बहुरि जो अवधिज्ञान शुक्ल पक्ष के चंद्रमंडल की ज्यौं बधता बधता अपनें उत्कृष्ट पर्यंत बधै; सो वर्धमान कहिए।

बहुरि जो अवधिज्ञान कृष्ण पक्ष के चंद्रमंडल की ज्यों घटता घटता अपनें नाश पर्यंत घटै; सो हीयमान कहिए। ऐसैं गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद कहे।

बहुरि तैसें ही सामान्यपनें अवधिज्ञान तीन प्रकार हैं – देशावधि, परमावधि, सर्वावधि ए तीन भेद हैं। तहां गुणप्रत्यय देशावधि ही छह प्रकार जानना।

भवपच्चइगो ओही, देसोही होदि परमसव्वोही।
गुणपच्चइगो णियमा, देसोही वि य गुणे होदि ॥३७३॥

भवप्रत्ययकोवधिः, देशावधिः भवति परमसर्वावधिः।
गुणप्रत्ययको नियमात्, देशावधिरपि च गुणे भवति ॥३७३॥

टीका – भवप्रत्यय अवधि तौ देशावधि ही है, जातैं देव, नारकी, गृहस्थ, तीर्थंकर इनके परमावधि सर्वावधि होइ नाहीं।

बहुरि परमावधि अर सर्वावधि निश्चय सौं गुणप्रत्यय ही है; जातैं संयमरूप विशेष गुण बिना न होंइ।

बहुरि देशावधि भी सम्यग्दर्शनादि गुण होत संतें हो है; तातें गुणप्रत्यय अवधि तौ तीन प्रकार ही है। अर भवप्रत्यय अवधि एक देशावधि ही है।

देसावहिस्स य अवरं, णरतिरिये होवि संजवह्मि वरं।
परमोही सव्वोही, चरमसरीरस्स विरदस्स ॥३७४॥

देशावधेश्च अवरं, नरतिरश्चोः भवति संयते वरम्।
परमावधिः सर्वावधिः, चरमशरीरस्य विरतस्य ॥३७४॥

टीका — देशावधि का जघन्य भेद संयमी वा असंयमी मनुष्य, तिर्यंच विषैं ही हो है; देव, नारकी विषैं न हो है। बहुरि देशावधि का उत्कृष्ट भेद संयमी, महाव्रती, मनुष्य विषैं ही हो है; जातैं और तीन गति विषैं महाव्रत संभवै नाहीं।

बहुरि परमावधि अर सर्वावधि जघन्य वा उत्कृष्ट (वा) चरम शरीरी महाव्रती मनुष्य विषैं संभवै है।

चरम कहिए संसार का अंत विषैं भया, तिस ही भवतैं मोक्ष होने का कारण, असा वज्रवृषभनाराच शरीर जिसका होइ, सो चरमशरीरी कहिए।

पडिवादी देसोही, अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ।
मिच्छत्तं अविरमणं, ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

प्रतिपाती देशावधिः, अप्रतिपातिनौ भवतः शेषौ अहो।
मिथ्यात्वमविरमणं, न च प्रतिपद्यन्ते चरमद्विके ॥३७५॥

टीका — देशावधि ही प्रतिपाती है; शेष परमावधि, सर्वावधि प्रतिपाती नाहीं।

प्रतिपात कहिए सम्यक् चारित्र सौं भ्रष्ट होइ, मिथ्यात्व असंयम कौं प्राप्त होना, तीहिं संयुक्त जो होइ; सो प्रतिपाती कहिए।

जो प्रतिपाती न होइ; सो अप्रतिपाती कहिए। देशावधिवाला तौ कदाचित् सम्यक्त्व चारित्र सौं भ्रष्ट होइ, मिथ्यात्व असंयम कौं प्राप्त हो है। अर चरमद्विक कहिए अंत का परमावधि — सर्वावधि दोय ज्ञान विषैं वर्तमान जीव, सो निश्चय सौं

मिथ्यात्व अर अविरति कौं प्राप्त न हो है । जातें देशावधि तौ प्रतिपाती भी है; अप्रतिपाती भी है । परमावधि, सर्वावधि अप्रतिपाती ही हैं ।

दव्वं खेत्तं कालं, भावं पडि रूवि जाणदे ओही ।
अवराहुक्कस्सो त्ति य, वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं, भावं प्रति रूपि जानीते अवधिः ।
अवरादुत्कृष्ट इति च, विकल्परहितस्तु सर्वावधिः ॥३७६॥

टीका — अवधिज्ञान जघन्य भेद तें लगाइ उत्कृष्ट भेद पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद धरैं है; सो सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रति मर्यादा लीए रूपी जो पुद्गल अर पुद्गल संबंध कौं धरै संसारी जीव, तिनिकौं प्रत्यक्ष जानै है । बहुरि सर्वावधिज्ञान है, सो जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद रहित, हानि – वृद्धि रहित, अवस्थित सर्वोत्कृष्टता कौ प्राप्त है, जातें अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है । तातें देशावधि, परमावधि के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद संभवै हैं ।

णोकम्मुरालसंचं, मज्झिमजोगोज्जियं सविस्सचयं ।
लोयविभत्तं जाणदि, अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

नोकर्मौदारिकसंचयं, मध्यमयोगार्जितं सविस्रसोपचयम् ।
लोकविभक्तं जानाति, अवरावधिः द्रव्यतो नियमात् ॥३७७॥

टीका — मध्यम योग का परिणमन तें निपज्या असा नोकर्मरूप औदारिक शरीर का संचय कहिए द्व्यर्ध गुणहानि करि औदारिक का समयप्रबद्ध कौं गुणिए, तिहि प्रमाण औदारिक का सत्तारूप द्रव्य, बहुरि सो अपने योग्य विस्रसोपचय के परमाणूनि करि संयुक्त, ताकौं लोकप्रमाण असंख्यात का भाग दीएं, जो एक भाग मात्र द्रव्य होइ, तावन्मात्र ही द्रव्य कौं जघन्य अवधिज्ञान जानै है । यातें अल्प स्कंध कौं न जानै है; जघन्य योगनि तें जो निपजै है संचय, सो यातें सूक्ष्म हो है; तातें तिस कौं जानने की शक्ति नाहीं । बहुरि उत्कृष्ट योगनि तें जो निपजै है संचय, सो यातें स्थूल है, ताकौं जानैं ही हैं जातें जो सूक्ष्म कौं जानैं, ताकैं उसतें स्थूल कौं जानने में किछू विरुद्ध (विरोध) नाहीं । तातें यहां मध्यम योगनि करि निपज्या असा औदारिक शरीर का संचय कह्या । बहुरि विस्रसोपचय रहित सूक्ष्म हो है, तातें वाकै जानने की शक्ति

नाहीं; तातै विस्रसोपचय सहित कह्या। असें स्कंध कौं लोक के जितने प्रदेश हैं, उतने खंड करिये। तहां एक खंड प्रमाण पुद्गल परमाणूनि का स्कंध नेत्रादिक इंद्रियनि के गोचर नाहीं। ताकौं जघन्य देशावधिज्ञान प्रत्यक्ष जाने है। असा जघन्य देशावधि ज्ञान का विषयभूत द्रव्य का नियम कह्या।

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स, जादस्स तदियसमयम्हि।
अवरोगाहणमाणं, जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥३७८॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य, जातस्य तृतीयसमये।
अवरावगाहनमानं, जघन्यकमवधिक्षेत्रं तु ॥३७८॥

टीका — बहुरि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक के जन्म तें तीसरा समय के विषैं जघन्य अवगाहना का प्रमाण पूर्वं जीव समासाधिकार विषैं कह्या था, तीहिं प्रमाण जघन्य अवगाहना का क्षेत्र जानना। इतने क्षेत्र विषैं पूर्वोक्त प्रमाण लीए वा तिसतें स्थूल जेते पुद्गल स्कंध होंइ, तिनिकौं जघन्य देशावधिज्ञान जानै है। इस क्षेत्र के बारै तिष्ठते जे होइ, तिनकौं न जानै है, असैं क्षेत्र की मर्यादा कही।

अवरोहिखेत्तदीहं, वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो।
अण्णं पुण समकरणे, अवरोगाहणपमाणं तु ॥३७९॥

अवरावधिक्षेत्रदीर्घं, विस्तारोत्सेधकं न जानीमः।
अन्यत् पुनः समीकरणे, अवरावगाहनप्रमाणं तु ॥३७९॥

टीका — बहुरि जघन्य देशावधिज्ञान का विषय भूत क्षेत्र की लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई का प्रमाण हम न जानै है कितना कितना है; जातैं इहां असा उपदेश नाहीं, परंतु परम गुरुनि का उपदेश की परम्परा तैं इतना जानै हैं; जो भुज, कोटि, वेधनि का समीकरण तैं जो क्षेत्रफल होइ, सो जघन्य अवगाहना के समान घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र हो है।

आम्ही साम्ही दोय दिसानि विषैं जो कोई एक दिशा संबंधी प्रमाण, सो भुज कहिये।

अवशेष दोय दिसानि विषैं कोई एक दिशा संबंधी प्रमाण, सो कोटि कहिए।

ऊंचाई का प्रमाण कौं, वेध कहिए ।

प्रवृत्ति विषै लंबाई, ऊंचाई, चौड़ाई तीन नाम हैं । सो इनिका क्षेत्र, खंड विधान तें समान प्रमाण करि क्षेत्रफल कीए, जो प्रमाण आवै, तितना क्षेत्रफल जानना । जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र का अर जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्र का क्षेत्रफल समान है, इतना तो हम जानैं हैं । अर भुज, कोटि, वेध का प्रमाण कैसें है ? सो हम जानते नाहीं, अधिक ज्ञानी जानै ही हैं ।

अवरोगाहणमाणं, उस्सेहंगुलअसंखभागस्स ।
सूइस्स य घणपदरं, होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ॥३८०॥

अवरावगाहनमानमुत्सेधांगुलासंख्यभागस्य ।
सूच्येश्च घनप्रतरं, भवति हि तत्क्षेत्रसमीकरणे ॥३८०॥

टीका -- इहां कोऊ प्रश्न करै कि जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्र का प्रमाण कह्या, सो कैसाक है ?

ताका समाधान -- जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्र का आकार कोऊ एक नियम रूप नाहीं तथापि क्षेत्र, खंड विधान करि सदृश कीजिए, तब भुज का वा कोटि का वा वेध का प्रमाण उत्सेधांगुल कौं योग्य असंख्यात का भाग दीएं, जो एक भाग का प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि भुज कौं वा कोटि कौं वा वेध कौं परस्पर गुणें, घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र प्रकट क्षेत्रफल भया, सो जघन्य अवगाहना का प्रमाण है । याही के समान जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र है । इहां क्षेत्र, खंड विधान करि समीकरण का उदाहरण और भी दिखाइए है ।

जैसें लोकाकाश ऊंचाई, चौड़ाई, लंबाई विषैं हीनाधिक प्रमाण लीए है । ताका क्षेत्रफल फैलाइए, तब तीन से तेतालीस राजू प्रमाण घनफल होइ, अर जो हीनाधिक कौं बधाइ, घटाइ, समान प्रमाण करि सात -- सात राजू की ऊंचाई, लंबाई, चौड़ाई कल्पि परस्पर गुणन करि क्षेत्रफल कीजिए । तब भी तीन सै तेतालीस ही राजू होइ । ऐसें ही इहां जघन्य क्षेत्र की लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई हीनाधिक प्रमाण लीएं है । परि क्षेत्र खंड विधान करि समीकरण कीजिए, तब ऊंचाई का वा चौड़ाई का वा लंबाई का प्रमाण उत्सेधांगुल के असंख्यातवें भागमात्र होइ ।

इनिकौं परस्पर गुणन कीए, घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाणघन क्षेत्रफल हो है, सो इतना ही प्रमाण जघन्य अवगाहना का है। अर इतना ही प्रमाण जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र का है, तातैं समान कहे हैं।

अवरं तु ओहिखेत्तं, उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा ।
सुहुमोगाहणमाणं, उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥३८१॥

अवरं तु अवधिक्षेत्रं, उत्सेधमंगुलं भवेद्यस्मात् ।
सूक्ष्मावगाहनमानमुपरि प्रमाणं तु अंगुलकम् ॥३८१॥

टीका — बहुरि जो यहु जघन्य अवगाहना समान जघन्य देशावधि का क्षेत्र, घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र कह्या, सो उत्सेधांगुल का घन प्रमाण जो घनांगुल, ताके असंख्यातवें भागमात्र जानना। जातैं इहां सूक्ष्म निगोद, लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना के समान जघन्य देशावधि का क्षेत्र कह्या, सो शरीरनि का प्रमाण है, सो उत्सेधांगुल ही तें है, जातैं परमागम विषैं असा कह्या है कि देह, गेह, ग्राम, नगर इत्यादिक का प्रमाण उत्सेधांगुल तैं है। तातैं इहां जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण भी उत्सेधांगुल की ही अपेक्षा जानना। इस उत्सेधांगुल का ही नाम व्यवहारांगुल है।

बहुरि आगें जो **'अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज'** इत्यादि सूत्र उक्त कांडकनि विषैं अंगुल कह्या है। सो वह अंगुल प्रमाणांगुल जानना। जातैं वाके आगै हस्त, क्रोश, योजन, भरत, क्षेत्रादि उत्तरोत्तर कहैं हैं। बहुरि आगम विषैं द्वीप, क्षेत्रादि का प्रमाण प्रमाणांगुल तैं कह्या है। तातैं तहां प्रमाणांगुल ही का ग्रहण करना।

अवरोहिखेत्तमज्झे, अवरोही अवरदव्वमवगमदि ।
तद्दव्वस्सवगाहो, उस्सेहासंखघणपदरो ॥३८२॥

अवरावधिक्षेत्रमध्ये अवरावधिः अवरद्रव्यमवगच्छति ।
तद्द्रव्यस्यावगाहः उत्सेधासंख्यघनप्रतरः ॥३८२॥

टीका – तीहिं जघन्य अवधिज्ञान संबंधी क्षेत्र विषैं जे पूर्वोक्त जघन्य अवधि ज्ञान के विषय भूत द्रव्य तिष्ठै हैं; तिनकौं जघन्य देशावधिज्ञानी जीव जानैं है। तीहिं क्षेत्र विषैं तैसें औदारिक शरीर के संचय कौं लोक का भाग दीए एक भाग मात्र खंड

असंख्यात पाइए हैं; तिनि सबनि कौं जानैं है । बहुरि इस प्रमाण तैं एक, दोय आदि जिस स्कंधनि के बधते प्रदेश होंहि तिनिकौं तो जाने ही जानैं; जातैं सूक्ष्म कौं जानैं स्थूल का जानना सुगम है । बहुरि जो पूर्वै जघन्य अवधिज्ञान संबंधी द्रव्य कह्या था, तिसकी अवगाहना का प्रमाण, तिस जघन्य अवधि का क्षेत्र का प्रमाण के असंख्यातवें भागमात्र है, तथापि घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र ही है । अर वाकै भुज, कोटि, वेध का भी प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र है । असंख्यात के भेद घने हैं, तातैं यथासंभव जानि लेना ।

आवलिअसंखभागं, तीदभविस्सं च कालदो अवरं ।
ओही जाणदि भावे, कालअसंखेज्जभागं तु ।।३८३।।

आवल्यसंख्यभागमतीतभविष्यच्च कालतः अवरम् ।
अवधिः जानाति भावे, कालसंख्यातभागं तु ।।३८३।।

टीका – जघन्य अवधिज्ञान है, सो काल तैं आवली के असंख्यातवें भागमात्र अतीत, अनागत काल कौं जानैं है । बहुरि भाव तैं आवली का असंख्यातवां भागमात्र काल प्रमाण का असंख्यातवां भाग प्रमाण भाव, तिनकौं जाने है ।

भावार्थ – जघन्य अवधिज्ञान पूर्वोक्त क्षेत्र विषैं, पूर्वोक्त एक द्रव्य के आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अतीत काल विषैं वा तितना ही अनागत काल विषैं जे आकाररूप व्यंजन पर्याय भए, अर होंहिगे तिनकौं जानैं हैं, जातैं व्यवहार काल कैं अर द्रव्य कैं पर्याय ही की पलटन हो है । बहुरि पूर्वोक्त क्षेत्र विषैं पूर्वोक्त द्रव्य के वर्तमान परिणमन रूप अर्थ पर्याय हैं । तिनि विषैं आवली का असंख्यातवां भाग का असंख्यातवां भाग प्रमाण, जे पर्याय, तिनि कौं जानैं है । असैं जघन्य देशावधि ज्ञान के विषय भूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनि की सीमा – मर्यादा का भेद कहि ।

आगें तिस अवधिज्ञान के जे द्वितीयादि भेद, तिनिकौं च्यारि प्रकार विषय भेद कहै हैं —

अवरद्दव्वादुवरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो ।
सिद्धाणंतिमभागो, अभव्वसिद्धादणंतगुणो ।।३८४।।

अवरद्रव्यादुपरिमद्रव्यविकल्पाय भवति ध्रुवहारः ।
सिद्धानंतिमभागः, अभव्यसिद्धादनंतगुणः ॥३८४॥

टीका – जघन्य देशावधि ज्ञान का विषयभूत द्रव्य तैं ऊपरि द्वितीयादि अवधि ज्ञान के भेद का विषयभूत द्रव्य का प्रमाण ल्यावने के अर्थि ध्रुवहार जानना । सर्व भेदनि विषै जिस भागहार का भाग दीएं प्रमाण आवै, सो ध्रुव भागहार कहिए । जैसें इस जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य कौं ध्रुवभागहार के प्रमाण का भाग दीएं, जो एक भाग का प्रमाण आवै, सो देशावधि का द्रव्य संबंधी दूसरा भेद का विषयभूत द्रव्य का प्रमाण जानना । याकौं ध्रुवहार का भाग दीए, जो एक भाग का प्रमाण आवै; सो देशावधि के तीसरे भेद का विषयभूत द्रव्य जानना । ऐसें सर्वावधि पर्यंत जानना । पहले पहले भने परमाणूनि का स्कंधरूप द्रव्य कौं ध्रुवभागहार का भाग दीएं, पीछे पीछे एक भागमात्र थोरे परमाणूनि का स्कंध आवै, सो पूर्वस्कंध तें सूक्ष्म स्कंध होइ, सो ज्यों ज्यों सूक्ष्म कौं जानें, त्यौं त्यौं ज्ञान की अधिकता कहिए है; जातें सूक्ष्म कौं जानें स्थूल का तो जानना सहज ही हो है । बहुरि जो वह ध्रुवभागहार कह्या था, ताका प्रमाण सिद्धराशि कौं अनंत का भाग दीजिए, ताके एक भाग प्रमाण है । अथवा अभव्य सिद्धराशि कौं अनंत तें गुणिए, तीहिं प्रमाण है ।

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे ।
समयपबद्धपमाणं, जाणिज्जो ओहिविसयम्हि ॥३८५॥

ध्रुवहारकार्मणवर्गणागुणकारं कार्मणवर्गणां गुणिते ।
समयप्रबद्धप्रमाणं, ज्ञातव्यमवधिविषये ॥३८५॥

टीका – देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद होंइ, तितने में सौं घटाइए, जो प्रमाण होइ, तितना ध्रुवहार मांडि, परस्पर गुणि, जो प्रमाण होइ, सो कार्माण वर्गणा का गुणकार जानना । तीहिं कार्माण वर्गणा का गुणकार करि कार्माण वर्गणा कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, सो अवधिज्ञान का विषय विषैं समयप्रबद्ध का प्रमाण जानना । जो जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य कह्या था, तिसहीका नाम इहां समयप्रबद्ध जानना । इसका विशेष आगें कहैंगे ।

ध्रुवहार का प्रमाण सामान्यपनें सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र कह्या, अब विशेषपनें ध्रुवहार का प्रमाण कहै हैं –

मणदव्ववग्गणाण, वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो ।
अवरुक्कस्सविसेसा, रूवहिया तव्वियप्पा हु ।।३८६।।

मनोद्रव्यवर्गणानां, विकल्पानंतिमसमः खलु ध्रुवहारः ।
अवरोत्कृष्टविशेषाः, रूपाधिकास्तद्विकल्पा हि ।।३८६।।

टीका – मनोवर्गणा के जितने भेद हैं, तिनिकौं अनंत का भाग दीजिए, एक भाग का जितना प्रमाण होइ, सो ध्रुवहार का प्रमाण जानना । ते मनोवर्गणा के भेद केते है, सो कहिए है - मनोवर्गणा का जघन्य प्रमाण कौं मनोवर्गणा का उत्कृष्ट प्रमाण में सौं घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहै, तीहिंविषैं एक अधिक कीएं, मनोवर्गणा के भेदनि का प्रमाण हो है । आगें सम्यक्त्व मार्गणा का कथन विषैं तेईस जाति की पुद्गल वर्गणा कहैंगे । तहां तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्माणवर्गणा इत्यादिक का वर्णन करेंगे; सो जानना ।

इस मनोवर्गणा का जघन्य भेद अर उत्कृष्ट भेद का प्रमाण दिखाइए है –

अवरं होदि अणंतं, अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं ।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ।।३८७।।

अवरं भवति अनंतमनंतभागेनाधिकमुत्कृष्टं ।
इति मनोभेदानंतिमभागो द्रव्ये ध्रुवहारः ।।३८७।।

टीका – मनोवर्गणा का जघन्य भेद अनंत प्रमाण है । अनंत परमाणूनि का स्कंधरूप जघन्य मनोवर्गणा है । इस प्रमाण कौं अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना उस जघन्य भेद का प्रमाण विषैं जोडैं, जो प्रमाण होइ, सोई मनोवर्गणा का उत्कृष्ट भेद का प्रमाण जानना । इतने परमाणूनि का स्कंधरूप उत्कृष्ट मनोवर्गणा हो है; सो जघन्य तैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत पूर्वोक्त प्रकार जेते मनोवर्गणा के भेद भए, तिनके अनंतवें भागमात्र इहां ध्रुवहार का प्रमाण है ।

अथवा अन्यप्रकार कहै हैं –

धुवहारस्स पमाणं, सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
समयपबद्धणिमित्तं, कम्मणवग्गणगुणा दो दु ।।३८८।।

होवि अणंतिमभागो, तग्गुणगारो वि देसओहिस्स ।
दोऊण दव्वभेदपमाणद्धुवहारसंवग्गो ॥३८९॥

ध्रुवहारस्य प्रमाणं, सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि ।
समयप्रबद्धनिमित्तं, कार्मणवर्गणागुणतस्तु ॥३८८॥

भवत्यनंतिमभागस्तद्गुणकारोऽपि देशावधेः ।
द्विचूनद्रव्यभेदप्रमाणध्रुवहारसंवर्गः ॥३८९॥

टीका – ध्रुवहार का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र है । तथापि अवधि का विषयभूत समयप्रबद्ध का प्रमाण ल्यावने के निमित्त जो कार्माण वर्गणा का गुणकार कह्या, ताके अनंतवें भागमात्र जानना ।

सो तिस कार्माण वर्गणा के गुणकार का प्रमाण कितना है ?

सो कहिए है – देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद हैं, तिनमें दोय घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितना ध्रुवहार मांडि, परस्पर गुणन कीएं, जो प्रमाण आवै, तितना कार्माण वर्गणा का गुणकार जानना । ऐसा प्रमाण कैसें कह्या? सो कहिए है – देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की रचना विषैं उत्कृष्ट अंत का जो भेद, ताका विषय कार्माण वर्गणा कौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि ताके नीचैं द्विचरम भेद, ताका विषय, कार्माण वर्गणा प्रमाण जानना । बहुरि ताके नीचैं त्रिचरम भेद, ताका विषय कार्माण वर्गणा कौं एक बार ध्रुवभागहार तैं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि ताके नीचैं दोय बार ध्रुवभागहार करि कार्माण वर्गणा कौं गुणिए, तब चतुर्थ चरम भेद होइ । ऐसें ही एक एक बार अधिक ध्रुवहार करि कार्माण वर्गणा कौं गुण तैं, दोय घाटि देशावधि के द्रव्यभेद प्रमाण ध्रुवहारनि के परस्पर गुणन तैं जो गुणकार का प्रमाण भया, ताकरि कार्माणवर्गणा कौं गुणें, जो प्रमाण भया, सोई जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत लोक करि भाजित नोकर्म औदारिक का संचयमात्र द्रव्य का परिमाण जानना । इहां उत्कृष्ट भेद तैं लगाइ जघन्य भेद पर्यंत रचना कही; तातैं ऐसैं गुणकार का प्रमाण कह्या है । बहुरि जो जघन्य तैं लगाइ, उत्कृष्ट पर्यंत रचना कीजिए, तो क्रम तैं ध्रुवहार के भाग देते जाइए, अंत का भेद विषैं कार्माण वर्गणा कौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना द्रव्य प्रमाण होइ इस

कथन उस कथन विषें कुछ अन्यथापना नाहीं है । ऊपर तैं कथन कीया तब ध्रुवहार का गुणकार कहते आए, नीचे तैं कथन कीया तब ध्रुवहार का भागहार कहते आए, प्रमाण दोऊ कथन विषें एकसा हैं ।

देशावधि के द्रव्य की अपेक्षा केते भेद हैं ? ते कहिए हैं —

अंगुलअसंखगुणिदा, खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु ।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ ॥३९०॥

अंगुलासंख्यगुणिताः, क्षेत्रविकल्पाश्च द्रव्यभेदा हि ।
क्षेत्रविकल्पा अवरोत्कृष्टविशेषो भवेदत्र ॥३९०॥

टीका – देशावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र की अपेक्षा जितने भेद हैं, तिनकौं अंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना देशावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा भेद हो है ।

ते क्षेत्र की अपेक्षा केते भेद हैं ?

ते कहिए हैं – देशावधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र का जो प्रदेशनि का प्रमाण है, तितना भेद देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण विषें घटाएं, जो अवशेष प्रमाण रहै, तितना भेद देशावधि की क्षेत्र की अपेक्षा है । इनिकौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणिए, तामें एक मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तितना देशावधि का द्रव्य की अपेक्षा भेद है । काहेतें ? सो कहिए हैं – देशावधि का जघन्य भेद विषें पूर्वे जो द्रव्य का परिमाण कह्या था, ताकौं ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ सो देशावधिका द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद है । बहुरि इस दूसरा भेद विषें क्षेत्र का परिमाण तितना ही है ।

भावार्थ – देशावधि का जघन्य तैं बधता देशावधिज्ञान होइ, तौ देशावधि का दूसरा भेद होइ; सो जघन्य करि जो द्रव्य जानिए था, ताकौं ध्रुव भागहार का भाग दीएं, जो सूक्ष्म स्कंधरूप द्रव्य होइ, ताकौं जानैं अर क्षेत्र की अपेक्षा जितना क्षेत्र कौं जघन्यवाला जाने था, तितना ही क्षेत्र कौं दूसरा भेदवाला जानें है । तातैं द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद भया । क्षेत्र की अपेक्षा प्रथम भेद ही है । बहुरि जो द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेदवाला जानैं था, ताकौं ध्रुवहार का भाग दीए, जो सूक्ष्म-

स्कंध भया, ताकौं द्रव्य की अपेक्षा तीसरा भेदवाला जानैं । अर यहु क्षेत्र की अपेक्षा तितना ही क्षेत्र कौं जानैं; तातैं द्रव्य की अपेक्षा तीसरा भेद भया । क्षेत्र की अपेक्षा प्रथम भेद ही है । असैं द्रव्य की अपेक्षा सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद होइ, तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्र मात्र क्षेत्र कौं जानैं । तातैं द्रव्य की अपेक्षा तौ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद भए, अर क्षेत्र की अपेक्षा एक ही भेद भया । बहुरि इहांसे आगें असैं ही ध्रुवहार का भाग देतैं देतैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद होइ, तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्र तैं एक प्रदेश बधता क्षेत्र कौं जानैं, तहां क्षेत्र की अपेक्षा दूसरा ही भेद रहै ।

बहुरि तहां पीछैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र, द्रव्य अपेक्षा भेदनि विषैं एक प्रदेश और बधता क्षेत्र कौं जानैं; तहां क्षेत्र की अपेक्षा तीसरा भेद होइ । असैं ही सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद होतैं होतैं क्षेत्र की अपेक्षा एक एक बधता भेद होइ; सो असैं लोकप्रमाण उत्कृष्ट देशावधि का क्षेत्र पर्यंत जानना । तातैं क्षेत्र की अपेक्षा भेदनि तैं द्रव्य की अपेक्षा भेद सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण गुण कह्या । बहुरि अवशेष पहला द्रव्य का भेद था; सो पीछें मिलाया, तातैं एक का मिलावना कह्या है ।

तिन देशावधि के जघन्य क्षेत्र अर उत्कृष्ट क्षेत्रनि का प्रमाण कहैं हैं —

अंगुलअसंखभागं, अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो ।
इदि वग्गणगुणगारो, असंखधुवहारसंवग्गो ॥३९१॥

अंगुलासंख्यभागमवरमुत्कृष्टकं भवेल्लोकः ।
इति वर्गणागुणकारोऽ, संख्यध्रुवहारसंवर्गः ॥३९१॥

टीका — जघन्य देशावधि का विषयभूत क्षेत्र सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना के समान घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र जानना । बहुरि देशावधि का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र लोकप्रमाण जानना । उत्कृष्ट देशावधिवाला सर्वलोक विषैं तिष्ठता अपना विषय कौं जानैं, असैं दोय घाटि, देशावधि का द्रव्य की अपेक्षा जितनैं भेद होइ, तितना ध्रुवहार मांडि, परस्पर गुणन करना; सोई संवर्ग भया । यौं करतैं जो प्रमाण भया होइ, सोई कार्माण वर्गणा का गुणकार जानना । सो कह्या ही था ।

आगें वर्गणा का परिमाण कहैं हैं —

वग्गणरासिपमाणं, सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराण संवग्गो ॥३९२॥

वर्गणाराशिप्रमाणं, सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि ।
द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्गः ॥३९२॥

टीका – कार्माणवर्गणा राशि का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र है । तथापि परमावधिज्ञान के जेते भेद हैं, तिनमें दोय मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तितना ध्रुवहार मांडि, परस्पर गुणन कीयें, जो प्रमाण होइ, तितना परमाणूनि का स्कंधरूप कार्माणवर्गणा जानना । जातें कार्माणवर्गणा कौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, उत्कृष्ट देशावधि का विषय भूत द्रव्य होइ, पीछें परमावधि के जितने भेद हैं, तेती बार क्रम तें ध्रुवहार का भाग दीएं, उत्कृष्ट परमावधि का विषयभूत द्रव्य होइ, ताकौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, एक परमाणू मात्र सर्वावधि का विषय हो है ।

ते परमावधि के भेद कितने हैं ? सो कहिए हैं —

परमावहिस्स भेदा, सग-ओगाहण-वियप्प-हद-तेऊ ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ॥३९३॥

परमावधेर्भेदाः, स्वकावगाहनविकल्पहततेजसः ।
इति ध्रुवहारं वर्गणागुणकारं वर्गणां जानीहि ॥३९३॥

टीका — अग्निकाय के अवगाहना के जेते भेद हैं; तिनि करि अग्निकाय के जीवनि का परिमाण कौं गुणें, जो परिमाण होइ, तितना परमावधिज्ञान का विषय-भूत द्रव्य की अपेक्षा भेद है । सो अग्निकाय की जघन्य अवगाहना का प्रदेशनि का परिमाण कौं अग्निकाय की उत्कृष्ट अवगाहना का परिमाण विषें घटाए, जो प्रमाण होइ, तिनमें एक मिलाएं, अग्निकाय की अवगाहना के भेदनि का प्रमाण हो है । सो जीवसमास का अधिकार विषें मत्स्यरचना करी है, तहां कहे ही हैं । बहुरि अग्नि-काय का जीवनि का परिमाण कायमार्गणा का अधिकार विषें कह्या है; सो जानना । इनि दोऊनि कौं परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना परमावधिज्ञान का विषयभूत

द्रव्य की अपेक्षा भेद है। ऐसैं ध्रुवहार का प्रमाण, वर्गणा गुणकार का प्रमाण, वर्गणा का प्रमाण हे शिष्य ! तू जानि।

देसोहिअवरदव्वं, धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं।
तदियादिवियप्पेसु वि, असंखवारो त्ति एस कमो ॥३९४॥

देशावध्यवरद्रव्यं, ध्रुवहारेणावहिते भवेद्द्वितीयं।
तृतीयादिविकल्पेष्वपि, असंख्यवार इत्येष क्रमः ॥३९४॥

टीका — देशावधिज्ञान का विषयभूत जघन्य द्रव्य पूर्वै कह्या था, ताकौं ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, सो दूसरा देशावधि के भेद का विषयभूत द्रव्य होइ। ऐसैं ही ध्रुवहार का भाग देतैं देतैं तीसरा, चौथा इत्यादि भेदनि का विषयभूत द्रव्य होहि। ऐसैं असंख्यात बार अनुक्रम करना।

ऐसें अनुक्रम होतैं कहा होइ ? सो कहिए है —

देसोहिमज्झभेदे, सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं।
तेजोभासमणाणं, वग्गणयं केवलं जत्थ ॥३९५॥

पस्सदि ओही तत्थ, असंखेज्जाओ हवंति दीउवही।
वासाणि असंखेज्जा, होंति असंखेज्जगुणिदकमा ॥३९६॥जुम्मं॥

देशावधिमध्यभेदे, सविस्रसोपचयतेजः कर्मांगम्।
तेजोभाषामनसां, वर्गणां केवलां यत्र ॥३९५॥

पश्यत्यवधिस्तत्र, असंख्येया भवंति द्वीपोदधयः।
वर्षाणि असंख्यातानि भवंति असंख्यातगुणितक्रमाणि ॥३९६॥

टीका — देशावधि के मध्य भेदनि विषैं देशावधिज्ञान जिस भेद विषैं विस्रसोपचय सहित तैजस शरीररूप स्कंध कौं जानैं हैं। बहुरि तिस ही क्रम तैं जिस भेद विषैं विस्रसोपचय सहित कार्माण शरीर स्कंध कौं जानै है। बहुरि इहां तैं आगैं जिस भेद विषैं विस्रसोपचय रहित केवल तैजस वर्गणा कौं जानैं हैं। बहुरि इहां तैं आगैं जिस भेद विषैं विस्रसोपचय रहित केवल भाषावर्गणा कौ जानैं हैं। इहां तैं

आगें जिस भेद विषें विस्रसोपचय रहित केवल मनोवर्गणा को जानै है । तहां इनि पांच स्थाननि विषें क्षेत्र का प्रमाण असंख्यात द्वीप – समुद्र जानना । अर काल असंख्यात वर्षमात्र जानना । पूर्वोक्त पंच भेद लीएं अवधिज्ञान असंख्यात द्वीप-समुद्र विषें पूर्वोक्त स्कंध असंख्यात वर्ष पर्यंत अतीत, अनागत, यथायोग्य पर्याय के धारी, तिनिकौं जानै है । परि इतना विशेष है – जो इनि पंच भेदनि विषें पहिला भेद संबंधी क्षेत्रकाल का परिमाण है । तातें दूसरा भेद संबंधी क्षेत्रकाल का परिणाम असंख्यातगुणा है । दूसरे तें तीसरे का असंख्यात गुणा है । ऐसें ही पांचवां भेद पर्यंत जानना । सामान्यपनें सब का क्षेत्र असंख्यात द्वीप – समुद्र अर काल असंख्यात वर्ष कहे हैं; जातें असंख्यात के भेद घने हैं ।

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारस्स विभज्जं, सव्वोही जाव ताव हवे ।।३९७।।

ततः कार्मणस्य, एकसमयप्रबद्धं विविस्रसोपचयम् ।
ध्रुवहारस्य विभाज्यं, सर्वावधिः यावत्तावद्भवेत् ।।३९७।।

टीका — तहां पीछैं तिस मनोवर्गणा कौं ध्रुवहार का भाग दीजिए, ऐसें ही भाग देतें देतें विस्रसोपचय रहित कार्माण का समय प्रबद्धरूप द्रव्य होइ । याकौं भी ध्रुवहार का भाग दीजिए । ऐसें ही ध्रुवहार का भाग यावत् सर्वावधिज्ञान होइ, तहां पर्यंत जानना । विस्रसोपचय का स्वरूप योगमार्गणा विषें कह्या है, सो जानना ।

एदम्हि विभज्जंते, दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं ।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ।।३९८।।

एतस्मिन् विभज्यमाने, द्विचरमदेशावधौ वर्गणा ।
चरमे कार्मणस्यैकवर्गणा एकवारभक्ता तु ।।३९८।।

टीका — इस कार्माण समय प्रबद्ध कौं ध्रुवहार का भाग दीएं संतें देशावधि का द्वि चरम भेद विषें कार्माणवर्गणा रूप विषयभूत द्रव्य हो है; जातें ध्रुवहार मात्र वर्गणानि का समूह रूप समयप्रबद्ध है । बहुरि याकौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, चरम जो देशावधि का अंत का भेद, तिस विषें विषयभूत द्रव्य हो है ।

अंगुलअसंखभागे, दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्हि ।
एगागासपदेसो, वड्ढदि संपुण्णलोगो त्ति ।।३९९।।

अंगुलासंख्यभागो, द्रव्यविकल्पे गते तु क्षेत्रे ।
एकाकाशप्रदेशो, वर्धते संपूर्णलोक इति ॥३९९॥

टीका -सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद होतै संतै, क्षेत्र विषै एक आकाश का प्रदेश बधै असा अनुक्रम जघन्य देशावधि के क्षेत्र तैं, उत्कृष्ट देशावधिज्ञान का विषयभूत सर्व संपूर्ण लोक, तीहिं पर्यंत जानना । सो यहु कथन टीका विषैं पूर्वे विशदरूप कह्या ही था ।

आवलिअसंखभागो, जहण्णकालो कमेण समयेण ।
वड्ढवि देसोहिवरं, पल्लं समऊणयं जाव ॥४००॥

आवल्यसंख्यभागो, जघन्यकालः क्रमेण समयेन ।
वर्धते देशावधिवरं, पल्यं समयोनकं यावत् ॥४००॥

टीका — देशावधि का विषयभूत जघन्य काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है । सो यहु अनुक्रम तैं ध्रुववृद्धि करि अथवा अध्रुववृद्धि करि एक एक करि समय करि तहां पर्यंत बधै, जहां एक समय घाटि पल्य प्रमाण उत्कृष्ट देशावधि का विषयभूत काल होइ, उत्कृष्ट देशावधिज्ञान एक समय घाटि पल्यप्रमाण अतीत, अनागत काल विषै भए वा होंहिगे जे स्वयोग्य विषय तिनैं जानैं है ।

आगैं क्षेत्र काल का परिमाण उगणीस कांडकनि विषैं कह्या चाहैं है । कांडक नाम पर्व का है । जैसें साठे की पैली हो है, सो गांठि तैं अगिली गांठि पर्यंत जो होइ, ताकौं एक पर्व कहिए । तैसें किसी विवक्षित भेद तैं लगाइ, किसी विवक्षित भेद पर्यंत जेते भेद होंहि, तिनिका समूह, सो एक कांडक कहिए । असें देशावधिज्ञान विषैं उगणीस कांडक हैं ।

तहां प्रथम कांडक विषैं क्षेत्र काल का परिणाम अढाई गाथानि करि कहैं हैं —

अंगुलअसंखभागं, धुवरूवेण य असंखवारं तु ।
असंखसंखं भागं, असंखवारं तु अद्धुवगे ॥४०१॥

अंगुलासंख्यवारं, ध्रुवरूपेण च असंख्यवारं तु ।
असंख्यसंख्यं भागं, असंख्यवारं तु अध्रुवगे ॥४०१॥

टीका — घनांगुल कौं आवली का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, असा अंगुल का असंख्यातवां भागमात्र ध्रुवरूप करि वृद्धि का प्रमाण हो है । सो ध्रुववृद्धि प्रथम कांडक विषैं अंत का भेद पर्यंत असंख्यात बार हो है । बहुरि तिस ही प्रथम कांडक विषैं अंत का भेद पर्यंत अध्रुववृद्धि भी असंख्यात बार हो है । सो अध्रुववृद्धि का परिमाण घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण वा घनांगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण है ।

धुवअद्धुवरूवेण य, अवरे खेत्तम्मि वड्ढिदे खेत्ते ।
अवरे कालम्हि पुणो, एक्केक्कं वड्ढदे समयं ॥४०२॥

ध्रुवाध्रुवरूपेण च, अवरे क्षेत्रे वर्द्धिते क्षेत्रे ।
अवरे काले पुनः, एकैको वर्धते समयः ॥४०२॥

टीका — तीहिं पूर्वोक्त ध्रुववृद्धि प्रमाण करि वा अध्रुववृद्धि प्रमाण करि जघन्य देशावधि का विषयभूत क्षेत्र कौं बधतें संतें जघन्य काल के ऊपरि एक एक समय बधै है ।

भावार्थ — पूर्वै यहु क्रम कह्या था, जो द्रव्य की अपेक्षा सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण भेद व्यतीत होइ, तब क्षेत्र विषैं एक प्रदेश बधै । अब इहां कहिए हैं–जघन्य ज्ञान का विषयभूत जेता क्षेत्र प्रमाण कह्या, ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकार करि एक एक प्रदेश बधतें बधतें आवली का भाग घनांगुल कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना प्रदेश बधै, तब जघन्य देशावधि का विषयभूत काल का प्रमाण कह्या था, तातैं एक समय और बधता, काल का प्रमाण होइ । बहुरि तितना ही प्रदेश क्षेत्र विषैं पूर्वोक्त प्रकार करि बधै तब तिस काल तैं एक समय और बधता काल का प्रमाण होइ । असैं तितने तितनै प्रदेश बधैं, जो काल प्रमाण विषैं एक एक समय बधै, सो तौ ध्रुववृद्धि कहिये । बहुरि पूर्वोक्त प्रकार करि ही विवक्षित क्षेत्र तैं कहीं घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेशनि की वृद्धि भए पूर्व काल तैं एक समय बधता काल होइ, कहीं घनांगुल का असंख्यातवां (संख्यातवां)[१] भाग प्रमाण प्रदेशनि की वृद्धि भएं, पहले काल तैं एक समय बधता काल होइ, तहां अध्रुववृद्धि कहिये । असैं प्रथम कांडक विषैं अंत भेद पर्यंत ध्रुववृद्धि होइ, तौ असंख्यात बार हो है । बहुरि अध्रुववृद्धि होइ तौ असंख्यात बार हो है ।

१. सभी छहों हस्तलिखित प्रतियों में असंख्यात मिला । छपि हुई प्रति में संख्यात है ।

संखातीदा समया, पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय, पढमादी कंडये वोच्छं ॥४०३॥

संख्यातीताः समयाः, प्रथमे पर्वे उभयतो वृद्धिः ।
क्षेत्रं कालमाश्रित्य, प्रथमादीनि कांडकानि वक्ष्ये ॥४०३॥

टीका — ऐसें होतें प्रथम पर्व कहिए पहला कांडक, तीहिं विषें उभयतः कहिये ध्रुवरूप – अध्रुवरूप दोऊ वृद्धि कौं लीएं असंख्याते समय हो हैं ।

भावार्थ — प्रथम कांडक विषें जघन्य काल का परिमाण तैं पूर्वोक्त प्रकार ध्रुववृद्धि करि वा अध्रुववृद्धि करि एक एक समयप्रबद्ध तैं असंख्यात समय बधै हैं । ते कितने हैं ? प्रथम कांडक का उत्कृष्ट काल के समयनि का प्रमाण में स्यों जघन्य काल के समयनि का प्रमाण घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहै, तितने असंख्याते समय प्रथम कांडक विषें बधे हैं । ऐसें ही प्रथम कांडक का उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण में स्यों जघन्य क्षेत्र के प्रदेशनि का प्रमाण घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहै, तितने प्रदेश प्रथम कांडकनि विषें पूर्वोक्त प्रकार करि बधै हैं । अब जो वृद्धिरूप समयनि का प्रमाण कह्या, सो जघन्य काल आवली का असंख्यातवां भागमात्र तीहिं विषें जोडिए, तब प्रथम कांडक का अंत भेद विषें आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल हो है । बहुरि वृद्धिरूप प्रदेशनि का परिमाण कौं जघन्य क्षेत्र घनांगुल का असंख्यातवां भागमात्र तीहिं विषें मिलाएं, प्रथम कांडक का अंत भेद विषें घनांगुल का असंख्यातवां[1] भाग प्रमाण क्षेत्र हो हैं ।

इहां तैं आगें विषयभूत क्षेत्र – काल अपेक्षा देशावधि के उगणीस कांडक कहूंगा, ऐसा आचार्य प्रतिज्ञा करी है–

अंगुलमावलियाए, भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जो ।
अंगुलमावलियंतो, आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥४०४॥

अंगुलावल्योः, भागोऽसंख्येयोऽपि संख्येयः ।
अंगुलमावल्यंत, आवलिकाश्चांगुलपृथक्त्वम् ॥४०४॥

---

१. ब प्रति में संख्यात है ।

टीका – प्रथम कांडक विषैं जघन्य क्षेत्र घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अर जघन्य काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है । बहुरि तिस ही प्रथम कांडक विषैं उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुल के संख्यातवे[1] भाग प्रमाण है । अर काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण है । बहुरि आगैं उत्कृष्ट भेद अपेक्षा दूसरा कांडक विषैं क्षेत्र घनांगुल प्रमाण है । अर काल 'आवलियंत' कहिये किछू घाटि आवली प्रमाण है । बहुरि तीसरा कांडक विषैं क्षेत्र पृथक्त्व घनांगुल प्रमाण है । अर काल पृथक्त्व आवली प्रमाण है ।

तीन के तौ ऊपरि अर नवमे के नीचैं पृथक्त्व संज्ञा जाननी ।

आवलियपुधत्तं पुण, हत्थं तह गाउयं मुहुत्तं तु ।
जोयण भिण्णमुहुत्तं, दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥४०५॥

आवलिपृथक्त्वं पुनः हस्तस्तथा गव्यूतिः मुहूर्तस्तु ।
योजनं भिन्नमुहूर्तः, दिवसांतः पंचविंशतिस्तु ॥४०५॥

टीका – चौथा कांडक विषैं काल पृथक्त्व आवली प्रमाण अर क्षेत्र एक हाथ प्रमाण है । बहुरि पांचवां कांडक विषैं क्षेत्र एक कोश अर काल अंतर्मुहूर्त है । बहुरि छठा कांडक विषैं क्षेत्र एक योजन अर काल भिन्न मुहूर्त कहिये, किछू घाटि मुहूर्त है । बहुरि सातवां कांडक विषैं काल किछू घाटि एक दिन अर क्षेत्र पचीस योजन है ।

भरहम्मि अद्धमासं, साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुवलोए, वासपुधत्तं च रुचगम्मि ॥४०६॥

भरते अर्धमासः, साधिकमासश्च जंबूद्वीपे ।
वर्षश्च मनुजलोके, वर्षपृथक्त्वं च रुचके ॥४०६॥

टीका — आठवां कांडक विषैं क्षेत्र भरतक्षेत्र अर काल आधा मास है । बहुरि नवमा कांडक विषैं क्षेत्र जंबूद्वीप प्रमाण अर काल किछू अधिक एक मास है । बहुरि दशवां कांडक विषैं क्षेत्र मनुष्य लोक – अढाई द्वीप प्रमाण अर काल एक वर्ष है । बहुरि ग्यारहवां कांडक विषैं क्षेत्र रुचकद्वीप अर काल पृथक्त्व वर्ष प्रमाण है ।

---

१. सभी हस्तलिखित प्रतियों में संख्यात मिलता है । पूर्व में छपी प्रति में असंख्यात मिलता है ।

संखेज्जपमे वासे, दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
वासम्मि असंखेज्जे, दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥४०७॥

संख्यातप्रमे वर्षे, द्वीपसमुद्रा भवंति संख्याताः ।
वर्षे असंख्येये,द्वीपसमुद्रा असंख्येयाः ॥४०७॥

टीका — बारहवां कांडक विषैं क्षेत्र संख्यात द्वीप - समुद्र प्रमाण अर काल संख्यात वर्ष प्रमाण है । बहुरि तेरहवां कांडक, जे तैजस शरीरादिक द्रव्य की अपेक्षा पूर्वे स्थानक कहे, तिनि विषैं क्षेत्र असंख्यात द्वीप — समुद्र प्रमाण है । अर काल असंख्यात वर्ष प्रमाण है । परि इन विषैं इतना विशेष है — तेरहवां तैं चौदहवां विषैं असंख्यातगुणा क्षेत्रकाल है । ऐसैं ही उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा क्षेत्र — काल जानना बहुरि उगणीसवां अंत का कांडक विषैं द्रव्य तौ कार्माण वर्गणा कौं ध्रुवहार का भाग दीजिए, तीहिं प्रमाण अर क्षेत्र संपूर्ण लोकाकाश प्रमाण अर काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है ।

कालविसेसेणवहिद-खेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी ।
अद्धुववड्ढी वि पुणो, अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥४०८॥

कालविशेषेणावहितक्षेत्रविशेषो ध्रुवा भवेद्वृद्धिः ।
अध्रुववृद्धिरपि पुनः अविरुद्धा इष्टकांडे ॥४०८

टीका — विवक्षित कांडक का जघन्य क्षेत्र के प्रदेशनि का परिमाण, तिस ही कांडक का उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशनि का परिमाण में घटाएं, जो प्रमाण रहै, ताकौं क्षेत्र विशेष कहिये । बहुरि विवक्षित कांडक का जघन्य काल के समयनि का परिमाण तिस ही कांडक का उत्कृष्ट काल के समयनि का परिमाण विषैं घटाएं, अवशेष जो परिमाण रहै, ताकौं काल विशेष कहिए । तहां क्षेत्र विशेष कौं काल विशेष का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, सोई तिस कांडक विषैं ध्रुववृद्धि का परिमाण जानना । सो प्रथम कांडक विषैं ऐसैं करतैं घनांगुल कौं आवली का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ सो ध्रुववृद्धि का प्रमाण जानना । सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्य की अपेक्षा भेद भए, तो क्षेत्र विषैं एक प्रदेश बधै अर आवली करि भाजित घनांगुल प्रमाण प्रदेश बधैं, तब काल विषैं एक समय की बधवारी होइ । ऐसैं प्रथम कांडक का अंत पर्यंत ध्रुववृद्धि करि जेते समय बधैं, तिनकौं जघन्य काल विषैं मिलाएं,

आवली का संख्यातवां[1] भाग प्रमाण प्रथम कांडक का उत्कृष्ट काल हो है। बहुरि जेते जघन्य क्षेत्र तैं प्रदेश बधै, तितने जघन्य क्षेत्र विषैं मिलाएं घनांगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण प्रथम कांडक का उत्कृष्ट क्षेत्र हो है। असैं ही सर्व कांडक विषैं ध्रुववृद्धि का प्रमाण साधन करना। विवक्षित कांडक विषैं समान प्रमाण लीएं, प्रदेशनि की वृद्धि होतें, जहां समय की वृद्धि होइ, तहां ध्रुववृद्धि जाननी। बहुरि अध्रुववृद्धि भी यथायोग्य क्षेत्र – काल का अविरोध करि साधनी।

सो कहिए है–

अंगुलअसंखभागं, संखं वा अंगुलं च तस्सेव।
संखमसंखं एवं, सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥४०६॥

अंगुलासंख्यभागः, संख्यं वा अंगुलं तस्यैव।
संख्यमसंख्यमेवं, श्रेणीप्रतरयोरध्रुवगायाम् ॥४०६॥

टीका — अध्रुववृद्धि विषैं पूर्वोक्त क्रम तैं घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्र विषैं बधैं, तब काल विषैं एक समय बधै। अथवा घनांगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्र विषैं बधैं, तब काल विषैं एक समय बधै। अथवा घनांगुल प्रमाण अथवा संख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा असंख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा श्रेणी का असंख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणी का संख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणी प्रमाण अथवा संख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा असंख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा प्रतर का असंख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतर का संख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतर प्रमाण अथवा संख्यात प्रतर प्रमाण अथवा असंख्यात प्रतर प्रमाण प्रदेश क्षेत्र विषैं बधैं, तब काल विषैं एक समय बधैं, असा अध्रुववृद्धि का अनुक्रम है। इहां किछू नियम नाहीं, जो इतने प्रदेश बधैं ही समय बधैं, तातैं याका नाम अध्रुववृद्धि है। इहां इतना विशेष - जिस कांडक विषैं जिस - जिस प्रकार वृद्धि संभवै, तिस तिस प्रकार ही अध्रुववृद्धि जाननी। जैसें प्रथम कांडक विषैं घनांगुल का असंख्यातवां भाग वा घनांगुल का संख्यातवां भाग करि ही अध्रुववृद्धि संभवै है। जातैं तहां उत्कृष्ट भेद विषैं भी घनांगुल का संख्यातवां भाग मात्र ही क्षेत्र है, तौ तहां घनांगुलादि करि

१. अ तथा च प्रति में असंख्यातवां शब्द है।

वृद्धि कैसें संभवै ? बहुरि अंत के कांडक विषैं घनांगुल का संख्यातवां[1] भाग आदि संख्यात प्रतर पर्यंत सर्व प्रकार करि अध्रुववृद्धि संभवै है। ऐसें ही अन्य कांडकनि विषैं यथासंभव करि अध्रुववृद्धि जाननी।

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं।
उक्कस्सं खेत्तं पुण, लोगो संपुण्णओ होदि ॥४१०॥

कार्मरावर्गणां ध्रुवहारेणैक वार भाजिते द्रव्यं।
उत्कृष्टं क्षेत्रम् पुनः, लोकः संपूर्णो भवति ॥४१०॥

टीका – कार्माण वर्गणा कौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने परमाणूनि का स्कंध कौं उत्कृष्ट देशावधि जानै है। बहुरि क्षेत्र करि संपूर्ण लोकाकाश को जानै है। लोकाकाश विषै जितने पूर्वोक्त स्कंध होंइ, वा तिनतैं स्थूल होंइ, तिन सबनि कौं जानैं है।

पल्ल समऊण काले, भावेण असंखलोगमेत्ता हु।
दव्वस य पज्जाया, वरदेसोहिस्स विसया हु ॥४११॥

पल्यं समयोनं काले, भावेन असंख्यलोकमात्रा हि।
द्रव्यस्य च पर्याया, वरदेशावधेर्विषया हि ॥४११॥

टीका — देशावधि का विषय भूत उत्कृष्ट काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है। बहुरि भाव असंख्यात लोक प्रमाण है। सो इहां काल अर भाव शब्द करि द्रव्य के पर्याय उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान का विषयभूत जानना।

भावार्थ – एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण अतीत काल विषै जे अपने जानने योग्य द्रव्य के पर्याय भए, अर तितने ही प्रमाण अनागत काल विषैं अपने जानने योग्य द्रव्य के पर्याय होहिंगे, तिनकौं उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान जानैं। बहुरि भाव करि तिनि पर्यायनि विषैं असंख्यात लोक प्रमाण जे पर्याय, तिनिकौं जानैं। ऐसैं काल अर भाव शब्द करि द्रव्य के पर्याय ग्रहे। ऐसैं ही अन्य भेदनि विषैं भी

---

१. हस्तलिखित ग, ग, घ प्रति में असंख्यातवां शब्द है।

जहां काल का वा भाग का परिमाण कह्या है, तहां द्रव्य के पर्यायनि का ग्रहण करना ।

बहुरि इहां देशावधि का मध्य भेदनि विषैं भाव का प्रमाण आगें सूत्र कहैंगे, तिस अनुक्रम तैं जानना ।

कालें चउण्ह उड्ढी, कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य ।
उड्ढीए दव्वपज्जय, भजिदव्वा खेत्त-काला हु ॥४१२॥

काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजितव्यः क्षेत्रवृद्धिश्च ।
वृद्धचा द्रव्यपर्याययोः, भजितव्यौ क्षेत्रकालौ हि ॥४१२॥

टीका – इस अवधिज्ञान का विशेष विषैं जब काल की वृद्धि होइ तब तौ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव च्यार्‍यो ही की वृद्धि होइ । बहुरि जब क्षेत्र की वृद्धि होइ तब काल का वृद्धि भजनीय है, होइ भी अर नहिं भी होइ । बहुरि जब द्रव्य की अर भाव की वृद्धि होइ तब क्षेत्र की अर काल की वृद्धि भजनीय है, होइ भी अर न भी होइ । बहुरि द्रव्य की अर भाव की वृद्धि युगपत् हो है । यह सर्व कथन विचार तें युक्त ही है । या प्रकार देशावधि ज्ञान का विषय भूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रमाण कह्या ।

आगें परमावधि ज्ञान की प्ररूपणा कहै हैं —

देसावहिवरदव्वं, धुवहारेणवहिदे हवे णियमा ।
परमावहिस्स अवरं, दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥४१३॥

देशावधिवरद्रव्यं, ध्रुवहारेणावहिते भवेन्नियमात् ।
परमावधेरवरं, द्रव्य प्रमाणं तु जिनदिष्टं ॥४१३॥

टीका – उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान का विषयभूत जो द्रव्य कह्या, ताकौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ तितना परमाणूनि का स्कंध रूप जघन्य परमावधि ज्ञान का विषयभूत द्रव्य नियम करि जिनदेवने कह्या है ।

अब परमावधि का उत्कृष्ट द्रव्य प्रमाण कहैं हैं–

परमावहिस्स भेदा, सग-उग्गाहणवियप्प-हद-तेऊ ।
चरिमे हारपमाणं, जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥४१४॥

परमावधेर्भेदाः, स्वकावगाहनविकल्पाहततेजसः ।
चरमे हारप्रमाणं, ज्येष्ठस्य च भवति द्रव्यं तु ।।४१४।।

टीका – अग्निकाय की अवगाहना का जघन्य ते उत्कृष्ट पर्यंत जो भेदनि का प्रमाण, ताकरि अग्निकाय के जीवनि का परिमाण कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने परमावधि ज्ञान के भेद हैं। तहां प्रथम भेद के द्रव्य कौं ध्रुवहार का भाग दीए, दूसरा भेद का द्रव्य होइ। दूसरा भेद का द्रव्य कौं ध्रुवहार का भाग दीएं, तीसरा भेद का द्रव्य होइ। ऐसें अंत का भेद पर्यंत जानने। अंत भेद विषैं ध्रुवहार प्रमाण द्रव्य है। ध्रुवहार का जो परिमाण तितने परमाणूनि का सूक्ष्म स्कंध कौं उत्कृष्ट परमावधिज्ञान जानै है।

सव्वावहिस्स एक्को, परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो ।
गंगामहाणइस्स, पवाहोव्व धुवो हवे हारो ।।४१५।।

सर्वावधेरेकः, परमाणुर्भवति निर्विकल्पः सः ।
गंगामहानद्याः, प्रवाह इव ध्रुवो भवेत् हारः ।।४१५।।

टीका – उत्कृष्ट परमावधि ज्ञान का विषय ध्रुवहार प्रमाण ताकौं ध्रुवहार ही का भाग दीजिए, तब एक परमाणू मात्र सर्वावधि ज्ञान का विषय है। सर्वावधि ज्ञान पुद्गल परमाणू कौं जानैं हैं। सो यह ज्ञान निर्विकल्प है। यामैं जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद नाहीं। बहुरि जो वह ध्रुवहार कह्या था, सो गंगा महानदी का प्रवाह समान ही है। जैसें गंगा नदी का प्रवाह हिमाचल स्यों निकसि विच्छेद रहित वहि-करि पूर्व समुद्र कौं प्राप्त होइ तिष्ठ्या, तैसें ध्रुवहार जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य तें परमावधि का उत्कृष्ट भेद पर्यंत अवधिज्ञान के सर्व भेदनि विषैं प्राप्त होइ सर्वावधि का विषयभूत परमाणू तहां तिष्ठ्या, जातैं सर्वावधि ज्ञान भी निर्विकल्प है अर याका विषय परमाणू है, सो भी निर्विकल्प है।

परमोहिदव्वभेदा, जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति ।
तस्सेव खेत्त-काल, वियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ।।४१६।।

परमावधिद्रव्यभेदा, यावन्मात्रा हि तावन्मात्रा भवंति ।
तस्यैव क्षेत्र काल, विकल्पा विषया असंख्यगुणितक्रमाः ।।४१६।।

टीका – परमावधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जितने भेद कहे, अग्निकाय की अवगाहना के भेदनि का प्रमाण तैं अग्निकाय के जीवनि का परिमाण कौं गुणिए, तावन्मात्र द्रव्य कीं अपेक्षा भेद कहे, सो एतावन्मात्र ही परमावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र की अपेक्षा वा काल की अपेक्षा भेद हैं। जहां द्रव्य की अपेक्षा प्रथम भेद है, तहां ही क्षेत्र – काल की अपेक्षा भी प्रथम भेद है। जहां दूसरा भेद द्रव्य की अपेक्षा है, तहां क्षेत्र – काल अपेक्षा भी दूसरा ही भेद है। ऐसें अंत का भेद पर्यंत जानना। बहुरि जघन्य तैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत एक एक भेद विषैं असंख्यात गुणा असंख्यात गुणा क्षेत्र व काल जानना।

कैसा असंख्यात गुणा जानना ? सो कहैं हैं–

आवलिअसंखभागा, इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ।
देसावहिस्स खेत्ते, काले वि य होंति संवग्गे ॥४१७॥

आवल्यसंख्यभागा, इच्छितगच्छधनमानमात्राः।
देशावधेः क्षेत्रे, कालेऽपि च भवंति संवर्गे ॥४१७॥

टीका – परमावधिज्ञान का विवक्षित क्षेत्र का भेद विषैं वा विवक्षित काल का भेद विषैं जो तिस भेद का संकलित धन होइ, तितना आवली का असंख्यातवां भाग मांडि, परस्पर गुणन कीया, जो प्रमाण होइ, सो विवक्षित भेद विषैं गुणकार जानना। इस गुणकार करि देशावधि ज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र कौं गुणैं, परमावधि विषैं विवक्षित भेद विषैं क्षेत्र का परिमाण होइ, अर देशावधिज्ञान का उत्कृष्ट काल कौं गुणैं, विवक्षित भेद विषैं काल का परिमाण होइ।

संकलित धन कहा कहिए –

जेथवां भेद विवक्षित होइ, तहां पर्यंत एक तैं लगाइ एक एक अधिक अंक मांडि, तिन सब अंकनि कौं जोड़ैं, जो प्रमाण होइ, सो संकलित धन जानना। जैसैं प्रथम भेद विषैं एक ही अंक है। याके पहिले कोई अंक नाहीं। तातैं प्रथम भेद विषैं संकलित धन एक जानना। बहुरि दूसरा भेद विषैं एक अर दूवा जोडिए, तब संकलित धन तीन भया। बहुरि तीसरा भेद विषैं एक, दोय, तीन अंक जोड़ैं, संकलित धन छह भया। बहुरि चौथा भेद विषैं च्यारि और जोड़ैं, संकलित धन दश भया।

बहुरि पांचवां भेद विषैं पांच को अंक और जोडैं, संकलित धन पंद्रह होइ । असें सब भेदनि विषैं संकलित धन जानना । सो इस एक बार संकलित धन ल्यावने कौं करण सूत्र पर्याय समास श्रुतज्ञान का कथन करते कह्या है; तिसतैं संकलित धन प्रमाण ल्यावना । इस संकलित धन का नाम गच्छ, अन वा पद – धन भी कहिए । अब विवक्षित परमावधिज्ञान का पांचवां भेद ताका संकलित धन पंद्रह, सो पंद्रह जायगा आवली का असंख्यातवां भाग मांडि, परस्पर गुणन कीए, जो परिमाण होइ, सोई पांचवां भेद विषैं गुणकार जानना । इस गुणकार करि उत्कृष्ट देशावधि का क्षेत्र, लोकाकाश प्रमाण, ताकौं गुणिए, जो प्रमाण होइ, तितना परमावधि का पांचवां भेद का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण जानना । अर इस ही गुणकार करि देशावधि का विषयभूत उत्कृष्ट काल, एक समय घाटि, एक पल्य प्रमाण, ताकौं गुणें, इस पांचवां भेद विषैं काल का परिमाण होइ । असें सब भेदनि विषैं क्षेत्र का वा काल का परिमाण जानना ।

आगे संकलित धन का जो प्रमाण कह्या था, ताकौं और प्रकार करि कहै हैं–

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता ।
उभये वि य गच्छस्स य, धणमेत्ता होंति गुणगारा ।।४१८।।

गच्छसमाः तात्कालिकातीते रूपोनगच्छधनमात्राः ।
उभयेऽपि च गच्छस्य च, धनमात्रा भवंति गुणकाराः ।।४१८।।

टीका – जेथवां भेद विवक्षित होइ, तीहि प्रमाण कौं गच्छ कहिए । जैसैं चौथा भेद विवक्षित होइ, तौ गच्छ का प्रमाण च्यारि कहिए । सो गच्छ के समान धन अर गच्छ तैं तत्काल अतीत भया, असा विवक्षित भेद तैं पहिला भेद, तहां विवक्षित गच्छ तैं एक घाटि का गच्छ धन जो संकलित धन, इनि दोऊनि कौं मिलाइए; तब गच्छ का संकलित धन प्रमाण गुणकार होइ ।

इहां उदाहरण कहिए - जैसैं विवक्षित भेद चौथा, सो गच्छ का प्रमाण भी च्यारि, सो च्यारि तौ ए अर तत्काल अतीत भया तीसरा भेद, ताका गच्छ धन छह, इनि दोऊनि कौं मिलाए, दश हूवा । सोई दश विवक्षित गच्छ च्यारि, ताका संकलित धन हो है । सोई चौथा भेद विषैं गुणकार पूर्वोक्त प्रकार जानना; असें ही सर्व भेदनि विषैं जानना –

परमावहि-वरखेत्तेणवहिद-उक्कस्स-ओहिखेत्तं तु ।
सव्वावहि-गुणगारो, काले वि असंखलोगो दु ॥४१९॥

परमावधिवरक्षेत्रेणावहितोत्कृष्टावधिक्षेत्रं तु ।
सर्वावधिगुणकारः, कालेऽपि असंख्यलोकस्तु ॥४१९॥

टीका – उत्कृष्ट अवधिज्ञान के क्षेत्र का परिमाण कहिए । द्विरूप घनाघनधारा विषैं लोक अर गुणकार शलाका अर वर्गशलाका अर अर्धच्छेद शलाका अर अग्निकाय की स्थिति का परिमाण अर अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र का परिमाण ए स्थानक क्रम तें असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान गएं उपजै हैं । तातैं पांच बार असंख्यात लोक प्रमाण परिमाण करि लोक कौं गुणैं, जो प्रमाण होई, तितना सर्वावधिज्ञान का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का परिमाण है । याकौं उत्कृष्ट परमावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र का भाग दीएं, जो परिमाण होइ, सोई सर्वावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण ल्यावनै के निमित्त गुणकार हो है । इस गुणकार करि परमावधि का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र कौं गुणिए, तब सर्वावधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र का परिमाण हो है । बहुरि काल परिमाण ल्यावने के निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार है । इस असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार करि उत्कृष्ट परमावधिज्ञान का विषयभूत काल कौं गुणिये; तब सर्वावधि ज्ञान का विषयभूत काल का परिमाण हो है ।

इहां कोऊ कहै कि रूपी पदार्थ तौ लोकाकाश विषैं ही पाइए है । इहां परमावधि-सर्वावधि विषैं क्षेत्र का परिमाण लोक तें असंख्यातगुणा कैसे कहिए है ?

सो इसका समाधान आगैं द्विरूप घनाघनधारा का कथन विषैं करि आए हैं; सो जानना । शक्ति अपेक्षा कथन जानना ।

अब परमावधि ज्ञान का विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का वा उत्कृष्ट काल का परिमाण ल्यावने के निमित्त करणसूत्र दोय कहिए हैं —

इच्छिदरासिच्छेदं, दिण्णच्छेदेहिं भाजिदे तत्थ ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ॥४२०॥

इच्छितराशिच्छेदं, देयच्छेदैर्भाजिते तत्र ।
लब्धमितदेयराशीनामभ्यासे इच्छितो राशिः ॥४२०॥

टीका – यह करणसूत्र है, सो सर्वत्र संभवै है । याका अर्थ दिखाइए है – इच्छित राशि कहिए विवक्षित राशि का प्रमाण, ताके जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिकौं देयराशि के जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिका भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तिसका विरलन कीजिए, एक एक जुदा जुदा स्थापिए । बहुरि तिस एक एक के स्थान के जिस देय राशि के अर्धच्छेदनि का भाग दीया था, तिसही देयराशि कौं मांडि, परस्पर गुणन कीजिए, तो विवक्षित राशि का प्रमाण होइ ।

सो प्रथम याका उदाहरण लौकिक गणित करि दिखाइए है - इच्छित राशि दोय से छप्पन (२५६), याके अर्धच्छेद आठ, बहुरि देयराशि चौसाठि (६४) का चौथा भाग सोलह, याके अर्धच्छेद च्यारि, कैसें ? भाज्यराशि चौसठि, ताके अर्धच्छेद छह, तिनिमें स्यों भागहार च्यारि, ताके अर्धच्छेद दोय घटाइए; तब अवशेष च्यारि अर्धच्छेद रहे । अब इनि च्यारि अर्धच्छेदनि का भाग उन आठ अर्धच्छेदनि कौं दीजिए; तब दोय पाया (२), सो दोय का विरलन करि (१,१), एक एक के स्थान की एक चौसठि का चौथा भाग, सोला सोला दीया, याहीतें याकौं देय राशि कहिए, सो इनिका परस्पर गुणन कीया, तब विवक्षित राशि का परिमाण दोय सैं छप्पन हुवा ।

ऐसें ही अलौकिक गणित विषैं विवक्षित राशि पल्य प्रमाण अथवा सूच्यंगुल प्रमाण वा जगच्छ्रेणी प्रमाण वा लोक प्रमाण जो होइ, ताके जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिकौं देयराशि जो आवली का असंख्यातवां भाग, ताके जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनिका भाग दीए, जो प्रमाण आवै तिनिका विरलन करि – एक एक करि बखेरि, बहुरि एक एक के स्थान की एक एक आवली का असंख्यातवां भाग मांडि, परस्पर गुणन कीजिए, तो विवक्षित राशि पल्य वा सूच्यंगुल वा जगच्छ्रेणी वा लोकप्रमाण हो हैं ।

दिण्णच्छेदेणवहिद-लोगच्छेदेण पदधणे भजिदे ।
लद्धमिदलोगगुणणं, परमावहि-चरिम-गुणगारो ॥४२१॥

देयच्छेदेनावहितलोकच्छेदेन पदधने भजिते ।
लब्धमितलोकगुणनं, परमावधिचरमगुणकारः ॥४२१॥

टीका – देयराशि के अर्धच्छेदनि का भाग लोक के अर्धच्छेदनि कौं दीए, जो प्रमाण होइ, ताका विवक्षित पद का संकलित धन कौं भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना लोकमात्र परिमाण मांडि, परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण आवै, सो विवक्षित पद विषैं क्षेत्र वा काल का गुणकार जानना । असैं ही परमावधि का अंत भेद विषैं गुणकार जानना । सो यहु कथन प्रथम अंकसंदृष्टि करि दिखाइए है । देयराशि चौसठि का चौथा भाग, ताके अर्धच्छेद च्यारि, तिनका भाग दोय सै छप्पन का अर्धच्छेद आठ, तिनिकौं दीजिए; तब दोय पाया । तिनिका भाग विवक्षित स्थान तीसरा ताका पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावने का सूत्र करि तीन, च्यारि कौं दोय, एक का भाग दीएं, संकलित धन छह तिनिकौं दीजिए, तब तीन पाया; सो तीन जायगा दोय सै छप्पन मांडि, परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण होइ, सोई तीसरा स्थान विषैं गुणकार जानना । अब इहां कथन है सो कहिए है –

देयराशि आवली का असंख्यातवां भाग, ताके अर्धच्छेद राशि, जो आवली के अर्धच्छेदनि में स्यौं भागहारभूत असंख्यात के अर्धच्छेद घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितना जानना । सो असैं इस देयराशि के अर्धच्छेद संख्यात घाटि परीतासंख्यात का मध्य भेद प्रमाण हो हैं । तिनिका भाग लोकप्रमाण के जेते अर्धच्छेद होंइ, तिनकौं दीजिए, जो प्रमाण आवै, ताका भाग विवक्षित जो कोई परमावधि ज्ञान का भेद, ताका जो संकलित धन होइ, ताकौं दीजिए, जो प्रमाण आवै, तितना लोक मांडि, परस्पर गुणन कीए, जो प्रमाण आवै, सो तिस भेद विषै गुणकार जानना । इस गुणकार करि देशावधि का उत्कृष्ट लोकप्रमाण क्षेत्र कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, सो तिस भेद विषैं क्षेत्र का परिमाण जानना ।

बहुरि इस गुणकार करि देशावधि का उत्कृष्ट एक समय घाटि पल्य प्रमाण काल कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, सो तिस भेद विषैं काल का परिमाण जानना । असैं ही परमावधि का अंत का भेद विषैं आवली का असंख्यातवां भाग का अर्धच्छेदनि का भाग लोक का अर्धच्छेद कौं दीए, जो प्रमाण होइ, ताकौं अंत का भेद विषैं जो संकलित धन होइ, ताकौं भाग दीएं जो प्रमाण आवै, तितना लोक मांडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण होइ, सोई अंत का भेद विषैं गुणकार जानना । इहां अंत का भेद विषैं पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावने कौं करणसूत्र के अनुसारि संकलित धन ल्याइए, तब अग्निकायिक के अवगाह भेदनि करि गुणित अग्निकायिक जीवनि का प्रमाण मात्र गच्छ, सो एक अधिक गच्छ अर संपूर्ण गच्छ कौं दोय एक का भाग दीए, जो प्रमाण

का प्रमाण कह्या है, तातैं जघन्य देशावधिज्ञान का विषयभूत भाव का प्रमाण असंख्यात गुणा घाटि जानना ।

सव्वोहि त्ति य कमसो, आवलिअसंखभागगुणिदकमा ।
दव्वाणं भावाणं, पदसंखा सरिसगा होंति ॥४२३॥

सर्वावधिरिति च क्रमशः, आवल्यसंख्यभागगुणितक्रमाः ।
द्रव्याणां भावानां, पदसंख्याः सदृशका भवंति ॥४२३॥

टीका – देशावधि का विषयभूत द्रव्य की अपेक्षा जहां जघन्य भेद है, तहां ही द्रव्य का पर्याय रूप भाव की अपेक्षा आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण भाव का जानने रूप जघन्य भेद हो है । बहुरि तहां द्रव्य की अपेक्षा दूसरा भेद हो है । तहां ही भाव की अपेक्षा तिस प्रथम भेद का आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, तीहिं प्रमाण भाव कौं जानने रूप दूसरा भेद हो है । बहुरि जहां द्रव्य की अपेक्षा तीसरा भेद हो है; तहां ही भाव की अपेक्षा तिस दूसरा भेद तैं आवली का असंख्यातवां भाग गुणा तीसरा भेद हो है । ऐसैं ही क्रम तैं सर्वावधि पर्यंत जानना । अवधिज्ञान के जेते भेद द्रव्य की अपेक्षा हैं; तेते ही भेद भाव की अपेक्षा है । जैसे द्रव्य की अपेक्षा पूर्व भेद संबंधी द्रव्य कौं ध्रुवहार का भाग दीए, उत्तर भेद संबंधी द्रव्य भया, तैसैं भाव की अपेक्षा पूर्व भेद संबंधी भाव कौं आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, उत्तर भेद संबंधी भाव भया । तातैं द्रव्य की अपेक्षा अर भाव की अपेक्षा स्थानकनि की संख्या समान है ।

आगैं नारक गति विषैं अवधिज्ञान का विषभूत क्षेत्र का परिमाण कहैं हैं –

सत्तमखिदिम्मि कोसं, कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव ।
जाव य पढमे णिरये, जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ॥४२४॥

सप्तमक्षितौ क्रोशं, क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते तावत् ।
यावच्च प्रथमे निरये, योजनमेकं भवेत् पूर्णम् ॥४२४॥

टीका – सातवीं नरक पृथ्वी विषैं अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र एक कोश है । बहुरि आधा आधा कोश तहां ताईं बधैं, जहां पहले नरक संपूर्ण एक योजन

होइ । ऐसें सातवें नरक अवधि क्षेत्र एक कोश, छठे ड्याढ कोश, पांचवें दोय कोश, चौथे अढाई कोश, तीसरे तीन कोश, दूसरे साढे तीन कोश, पहले च्यारि कोश प्रमाण एक योजना जानना ।

आगें तिर्यंचगति मनुष्यगति विषैं कहै हैं —

तिरिये अवरं ओघो, तेजोयंते य होदि उक्कस्सं ।
मणुए ओघं देवे, जहाकमं सुणह वोच्छामि ॥४२५॥

तिरश्चि अवरमोघः, तेजोऽन्ते च भवति उत्कृष्टं ।
मनुजे ओघं देवे, यथाक्रमं शृणुत वक्ष्यामि ॥४२५॥

टीका – तिर्यंच जीव विषैं जघन्य देशावधिज्ञान हो है । बहुरि यातैं लगाइ उत्कृष्टपनैं तैजसशरीर जिस देशावधि के भेद का विषय है, तिस भेद पर्यंत सर्व सामान्य अवधिज्ञान के वर्णन विषैं जे भेद कहे, ते सर्व हो हैं । बहुरि मनुष्य गति विषैं जघन्य देशावधि तैं सर्वावधि पर्यंत सामान्य अवधिज्ञान विषैं जैसे भेद कहे,तिनि सर्व भेदनि कौं लीए, अवधिज्ञान हो है ।

बहुरि देवगति विषैं जैसा अनुक्रम है, सो मैं कहों हों, तुम सुनहु —

पणुवीसजोयणाइं, दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं, बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥४२६॥

पंचविंशतियोजनानि, दिवसांतं च च कुमारभौमयोः ।
संख्यातगुणं क्षेत्रं, बहुकः कालस्तु ज्योतिष्के ॥४२६॥

टीका – भवनवासी अर व्यन्तर, इनिकैं अवधिज्ञान का विषयभूत जघन्यपनै क्षेत्र तौ पचीस योजन है । अर काल किछू एक घाटि एक दिन प्रमाण है । बहुरि ज्योतिषी देवनि कैं क्षेत्र तौ इस क्षेत्र तैं असंख्यात गुणा है, अर काल इस काल तैं बहुत है ।

असुराणमसंखेज्जा, कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा, उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुराणामसंख्येयाः, कोटयः शेषज्योतिष्कांतानाम् ।
संख्यातीतसहस्रः, उत्कृष्टावधीनां विषयस्तु ॥४२७॥

टीका – असुरकुमार जाति के भवनवासी देवनि कैं उत्कृष्ट अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र असंख्यात कोडि योजन प्रमाण है । बहुरि अवशेष रहे नव प्रकार भवनवासी अर व्यंतर देव अर ज्योतिषी देव, तिनिकैं उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असंख्यात सहस्र योजन प्रमाण है ।

असुराणमसंखेज्जा, वस्सा पुण सेसजोइसंताणं ।
तस्संखेज्जदिभागं, कालेण य होदि णियमेण ॥४२८॥

असुराणामसंख्येयानि, वर्षाणि पुनः शेषज्योतिष्कांतानाम् ।
तत्संख्यातभागं, कालेन च भवति नियमेन ॥४२८॥

टीका – असुरकुमार जाति के भवनवासीनि कैं अवधि का उत्कृष्ट विषय काल की अपेक्षा असंख्यात वर्ष प्रमाण है । बहुरि इस काल के संख्यातवें भागमात्र अवशेष नव प्रकार भवनवासी वा व्यंतर ज्योतिषी, तिनके अवधि का विषयभूत काल का उत्कृष्ट प्रमाण नियमकरि है ।

भवणतियाणमधोधो, थोवं तिरियेण होदि बहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी, सुरगिरिसिहरो त्ति पस्संति ॥४२९॥

भवनत्रिकाणामधोऽधः, स्तोकं तिरश्चां भवति बहुकं तु ।
ऊर्ध्वेन भवनवासिनः, सुरगिरिशिखरांतं पश्यंति ॥४२९॥

टीका – भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी ए जो भवनत्रिक देव, तिनिकैं अधोऽधो कहिए नीचली दिशा प्रति अवधि का विषयभूत क्षेत्र स्तोक है । बहुरि तिर्यंच कहिए आपका स्थान की बरोबरि दिशानि प्रति क्षेत्र बहुत है । बहुरि भवनवासी अपनैं स्थानक तैं ऊपरि मेरुगिरि का शिखरि पर्यंत अवधिदर्शन करि देखैं हैं ।

सक्कीसाणा पढमं, बिदियं तु सणक्कुमार-माहिंदा ।
तदियं तु बम्ह-लांतव, सुक्क-सहस्सारया तुरियं ॥४३०॥

शक्रैशानाः प्रथमं, द्वितीयं तु सनत्कुमार-माहेंद्राः ।
तृतीयं तु ब्रह्म-लांतवाः शुक्र-सहस्रारकाः तुरियम् ॥४३०॥

टीका – सौधर्म - ईशानवाले देव अवधि करि प्रथम नरक पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं । बहुरि सनत्कुमार माहेंद्रवाले देव दूसरी पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं । बहुरि ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठवाले देव तीसरी पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं । बहुरि शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रारवाले देव चौथी पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं –

आणद-पाणदवासी, आरण तह अच्चुदा य पस्संति ।
पंचमखिदिपेरंतं, छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥४३१॥

आनतप्राणतवासिनः, आरणास्तथा अच्युताश्च पश्यंति ।
पंचमक्षितिपर्यंतं, षष्ठीं ग्रैवेयका देवाः ॥४३१॥

टीका – आनत प्राणत के वासी तथा आरण अच्युत के वासी देव पांचवी पर्यंत देखैं हैं । बहुरि नवग्रैवेयकवाले देव छठी पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं ।

सव्वं च लोयणालिं, पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
सक्खेत्ते य सकम्मे, रूवगदमणंतभागं च ॥४३२॥

सर्वां च लोकनालीं, पश्यंति अनुत्तरेषु ये देवाः ।
स्वक्षेत्रे च स्वकर्मणि, रूपगतमनंतभागं च ॥४३२॥

टीका – नव अनुदिश विमान अर पांच अनुत्तर विमान के वासी सर्व लोकनाली, जो त्रसनाली ताकौं देखैं हैं ।

यहु भावार्थ जानना–सौधर्मादिवासी देव ऊपरि अपने २ स्वर्ग का विमान का ध्वजादंड का शिखर पर्यंत देखैं हैं । बहुरि नव अनुदिश, पंच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यंत अर नीचें कौं बाह्य तनुवात पर्यंत सर्व त्रसनाली कौं देखैं है; सो अनुदिश विमानवाले तौ किछू एक अधिक तेरह राजू प्रमाण लंबा अर अनुत्तर विमानवाले के च्यारि सै पचीस धनुष घाटि, इकवीस योजन करि हीन, चौदह राजू प्रमाण लंबा अर एक राजू चौड़ा अवधि का विषयभूत क्षेत्र कौं देखैं हैं । असा इहां क्षेत्र का परिमाण कीया है; सो स्थानक का नियमरूप जानना । क्षेत्र का परिमाण लीएं, नियमरूप न जानना । जातैं अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि

अन्य क्षेत्र कौं जाइ, अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यंत ही होइ, असा नाहीं, जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ, अर तहां सेती डेढ राजू नीचें और जानें। सौधर्मद्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है; सो तहां भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्र ही कौं जानें; असें सर्वत्र जानना। बहुरि अपना क्षेत्र विषैं एक प्रदेश घटावना, अर अपनी अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं एक बार ध्रुवहार का भाग देना, जहां सर्व प्रदेश पूर्ण होंइ, सो तिस अवधि का विषयभूत द्रव्य जानना।

इस ही अर्थ कौं नीचें दिखाइए है —

कप्पसुराणं सग-सग-ओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं।
ओहीदव्वपमाणं, संठाविय धुवहरेण हरे ॥४३३॥

सग-सग-खेत्तपदेस-सलाय-पमाणं समप्पदे जाव।
तत्थतणचरिमखंडं, तत्थतणोहिस्स दव्वं तु ॥४३४॥

कल्पसुराणां स्वकस्वकावधिक्षेत्रं विविस्रसोपचयम्।
अवधिद्रव्यप्रमाणं, संस्थाप्य ध्रुवहरेण हरेत् ॥४३३॥

स्वकस्वकक्षेत्रप्रदेशशलाकाप्रमाणं समाप्यते यावत्।
तत्रतनचरमखंडं, तत्रतनावधेर्द्रव्यं तु ॥४३४॥

टीका — कल्पवासी देवनि कैं अपना अपना अवधि क्षेत्र अर विस्रसोपचय रहित अवधिज्ञानावरण का द्रव्य स्थापि करि अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं एक बार ध्रुवहारका भाग देइ, क्षेत्र विषैं एक प्रदेश घटावना, असें सर्व क्षेत्र के प्रदेश पूर्ण होंइ, तहां जो अंत विषैं सूक्ष्म पुद्गलस्कंधरूप खंड होइ, सोई तिस अवधिज्ञान का विषय-भूत द्रव्य जानना।

इहां उदाहरण कहिए है–सौधर्म ऐशानवालों का क्षेत्र प्रथम नरक पर्यंत कह्या है; सो प्रथम नरक तैं पहला दूसरा स्वर्ग का उपरिम स्थान ड्योढ राजू ऊंचा है। तातैं अवधि का क्षेत्र एक राजू लंबा - चौड़ा, ड्योढ राजू ऊंचा भया। सो इस घन रूप ड्योढ राजू क्षेत्र के जितने प्रदेश होंइ, ते एकत्र स्थापने। बहुरि किंचिदून द्वयर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्वरूप सर्व कर्मनि की परमाणूनि का परिमाण है। तिस विषैं अवधिज्ञानावरण नामा कर्म के जेते परमाणू होंई, तिन विषैं

विस्रसोपचय के परमाणू न मिलाइए, असे ते अवधिज्ञानावरण के परमाणू एकत्र स्थापनें । बहुरि इस अवधिज्ञानावरण के परमाणूनि का प्रमाण कौं एक बार ध्रुवहार का भाग दीजिये; तब उस क्षेत्र के प्रदेशनि का परिमाण में स्यों एक घटाइए, बहुरि एक बार ध्रुवहार का भाग देतैं, एक भाग विषैं जो प्रमाण आया, ताकौं दूसरा ध्रुवहार का भाग दीजिए; तब तिस प्रदेशनि का परिमाण में स्यों एक और घटाइए। बहुरि दूसरा ध्रुवहार का भाग देते एक भाग विषैं जो प्रमाण रह्या ताकौं तीसरा ध्रुवहार का भाग दीजिए, तब तिस प्रदेशनि का परिमाण में स्यों एक और घटाइए। ऐसें जहां ताईं सर्व क्षेत्र के प्रदेश पूर्ण होंइ; तहां ताईं ध्रुवहार का भाग देते जाईये देतें-देतें अंत के विषें जो परिमाण रहै, तितने परमाणू का सूक्ष्म पुद्गल स्कंध जो होइ, ताकौं सौधर्म -ऐशान स्वर्गवाले देव अवधिज्ञान करि जानैं हैं। इसतैं स्थूल स्कंध कौ तौ जानै ही जानैं। असैं ही सानत्कुमार - माहेंद्रवालों के घनरूप चारि राजू प्रमाण क्षेत्र के प्रदेशनि का जो प्रमाण तितनी बार अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं ध्रुवहार का भाग देतैं देतैं जो प्रमाण रहै, तितनैं परमाणूनि का स्कंध कौं अवधिज्ञान करि जानै है। असैं सबनि के अवधि का विषयभूत क्षेत्र के प्रदेशनि का जो प्रमाण होइ, तितनी बार अवधिज्ञानावरण द्रव्य कौं ध्रुवहार का देतैं देतैं जो प्रमाण रहै, तितनें परमाणूनि का स्कंध कौं ते देव अवधिज्ञान करि जानैं हैं। तहां ब्रह्म - ब्रह्मोत्तरवालों के साढा पांच राजू, लांतव - कापिष्ठवालों के छह राजू, शुक्र - महाशुक्रवालों के साढा सात राजू, शतार - सहस्रारवालों के आठ राजू, आनत - प्राणतवालों के साढा नव राजू, आरण - अच्युतवालों के दश राजू, ग्रैवेयकवालों के ग्यारह राजू, अनुदिश विमानवालों के किछू अधिक तेरह राजू, अनुत्तर विमानवालों के किछू घाटि चौदह राजू क्षेत्र का परिमाण जानि, पूर्वोक्त विधान कीएं, तिनि देवनि कैं अवधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य का परिमाण आवै है।

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जाओ हु वस्सकोडीओ ।
उवरिमकप्पचउक्के, पल्लासंखेज्जभागो दु ॥४३५॥

तत्तो लांतवकप्पप्पहुदी सव्वत्थसिद्धिपेरंतं ।
किंचूणपल्लमेत्तं, कालपमाणं जहाजोग्गं ॥४३६॥ जुम्मं ।

सौधर्मैशानानामसंख्येया हि वर्षकोट्यः ।
उपरिमकल्पचतुष्के, पल्यासंख्यातभागस्तु ॥४३५॥

ततो लांतवकल्पप्रभृतिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतम् ।
किंचिदूनपल्यमात्रं, कालप्रमाणं यथायोग्यम् ।।४३६।।

टीका – सौधर्म ईशानवालों के अवधि का विषयभूत काल असंख्यात कोडि वर्ष प्रमाण है । बहुरि तातैं ऊपरि सनत्कुमारादि चारि स्वर्गवालों के यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण है । बहुरि तातैं ऊपरि लांतव आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत-वालों के यथायोग्य किछू घाटि पल्य प्रमाण है ।

जोइसियंताणोहीखेत्ता उत्ता ण होंति घणपवरा ।
कप्पसुराणं च पुणो, विसरित्थं आयदं होदि ।।४३७।।

ज्योतिष्कांतानामवधिक्षेत्राणि उक्तानि न भवंति घनप्रतराणि ।
कल्पसुराणां च पुनः, विसदृशमायतं भवति ।।४३७।।

टीका – ज्योतिषी पर्यंत जे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी असे तीन प्रकार देव, तिनकें जो अवधि का विषयभूत क्षेत्र कह्या है; सो समचतुरस्र कहिए बरोबरि चौकोर घनरूप नाहीं है । जातैं सूत्र विषैं लंबाई, चौड़ाई, उंचाई समान नाहीं कही है, याही तैं अवशेष रहे मनुष्य, नारकी, तिर्यंच तिनि कें जो अवधि का विषयभूत क्षेत्र है; सो बरोबरि चौकोर घनरूप है । अवधिज्ञानी मनुष्यादिक जहां तिष्ठता होइ, तहांतैं अपने विषयभूत क्षेत्र का प्रमाणपर्यंत चौकोररूप घन क्षेत्र कौं जानैं है । बहुरि कल्पवासी देवनि कें जो अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र है; सो विसदृश आयत कहिए लंबा बहुत, चौडा थोडा असा आयतचतुरस्र जानना ।

चिंतियमचिंतियं वा, अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
मणपज्जवं ति उच्चइ, जं जाणइ तं खु णरलोए ।।४३८।।

चिंतितमचिंतितं वा, अर्धं चिंतितमनेकभेदगतम् ।
मनः पर्यय इत्युच्यते, यज्जानाति तत्खलु नरलोके ।।४३८।।

टीका – चिंतितं कहिए अतीत काल में जिसका चिंतवन कीया अर अचिंतितं कहिए जाकौं अनागत काल विषैं चिंतवैगा अर अर्धचिंतितं कहिए जो संपूर्ण चितया नाहीं । असा जो अनेक भेद लीए, अन्य जीव का मन विषैं प्राप्त हुवा अर्थ ताकौं जो जानैं, सो मनः पर्यय कहिए । मनः कहिए अन्य जीव का मन विषैं चिंतवनरूप

प्राप्त भया अर्थ, ताकी पर्येति कहिए जानैं, सो मन:पर्यय है, असा कहिए है । सो इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य क्षेत्र ही विषै हैं, बाह्य नाहीं है ।

पराया मन विषै तिष्ठता जो अर्थ, सो मन कहिए । ताकौ पर्येति, कहिए जानैं, सो मन:पर्यय जानना ।

मणपज्जवं च दुविहं, उजुविउलमदि त्ति उजुमदी तिविहा ।
उजुमणवयणे काए, गदत्थविसया त्ति णियमेण ॥४३९॥

मन:पर्ययश्च द्विविधः, ऋजुविपुलमतीति ऋजुमतिस्त्रिविधा ।
ऋजुमनोवचने काये, गतार्थविषया इति नियमेन ॥४३९॥

टीका – सो यहु मन:पर्यय – ज्ञान सामान्यपनैं एक प्रकार है, तथापि भेद तैं दोय प्रकार है–ऋजुमति मन:पर्यय, विपुलमति मन:पर्यय ।

तहां सरलपनैं मन, वचन, काय करि कीया जो अर्थ अन्य जीव का मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया ताके जानने तैं निष्पन्न भई, असी **ऋज्वी** कहिए सरल है मति जाकी, सो ऋजुमति कहिए ।

बहुरि सरल वा वक्र मन, वचन, काय करि कीया जो अर्थ अन्य जीव का मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया, ताके जानने तैं निष्पन्न भई वा नाही ताई निष्पन्न भई असी **विपुला** कहिए कुटिल है मति जाकी, सो विपुलमति कहिए । असैं ऋजुमति अर विपुलमति के भेद तैं मन:पर्ययज्ञान दोय प्रकार है ।

तहां ऋजुमति मन:पर्यय ज्ञान नियम करि तीन प्रकार है । ऋजु मन विषै प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा बहुरि ऋजु वचन विषै प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, बहुरि ऋजुकाय विषै प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा असैं ए तीन भेद हैं ।

विउलमदी वि य छद्धा, उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं ।
अत्थं जाणदि जम्हा, सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥४४०॥

विपुलमतिरपि च षोढा, ऋजुगानृजुवचनकायचित्तगतम् ।
अर्थं जानाति यस्मात्, शब्दार्थगता हि तेषामर्थाः ॥४४०॥

टीका – विपुलमति ज्ञान भी छह प्रकार है – १. ऋजुमन कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, २. ऋजु वचन कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ३. ऋजु काय कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ४. बहुरि वक्र मन कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ५. बहुरि वक्र वचन कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा, ६. बहुरि वक्र काय कौं प्राप्त भया अर्थ का जानन हारा । ए छह भेद हैं, जातैं सरल वा वक्र मन, वचन, काय कौं प्राप्त भया पदार्थ कौं जानैं है ।

बहुरि तिन ऋजुमति विपुलमति ज्ञान के अर्थाः कहिए विषय ते शब्द कौं वा अर्थ कौं प्राप्त भए प्रगट हो हैं । कैसें ? सो कहिए है – कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनि कौं चिंतवन भया, वा सरल वचन करि निष्पन्न होत संता, तिनकौं कहत भया वा सरल काय करि निष्पन्न होत संता तिनकौं करत भया, पीछैं भूलि करि कालांतर विषैं यादि करने कौं समर्थ न हूवा अर आय करि ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी कौ पूछत भया वा यादि करने का अभिप्राय कौं धारि मौन ही तैं खडा रह्या, तौ तहां ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान स्वयमेव सर्व कौं जानैं है ।

तैसैं ही सरल वा वक्र मन, वचन, काय करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनि कौं चिंतवन भया वा कहत भया वा करत भया । बहुरि भूलि करि केतेक काल पीछै यादि करने कौं समर्थ न हूवा, आय करि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी के निकटि पूछत भया वा मौन तैं खडा रह्या, तहां विपुलमति मनःपर्ययज्ञान सर्व कौं जानैं, ऐसैं इनिका स्वरूप जानना ।

तियकालविसयरूविं, चिंतितं वट्टमाणजीवेण ।
उजुमदिणाणं जाणदि, भूदभविस्सं च विउलमदी ॥४४१॥

त्रिकालविषयरूपि, चिंतितं वर्तमानजीवेन ।
ऋजुमतिज्ञानं जानाति, भूतभविष्यच्च विपुलमतिः ॥४४१॥

टीका – त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्य कौं वर्तमान काल विषैं कोई जीव चिंतवन करै है, तिस पुद्गल द्रव्य कौं ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है । बहुरि त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्य कौं कोई जीव अतीत काल विषैं चिंतया था वा वर्तमान काल विषैं चिंतवै है वा अनागत काल विषैं चिंतवेगा, ऐसे पुद्गल द्रव्य कौं विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ।

सव्वंग-अंग-संभव-चिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही ।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥४४२॥

सर्वांगांगसंभवचिह्नादुत्पद्यते यथावधिः ।
मनःपर्ययं च द्रव्यमनस्त उत्पद्यते नियमात् ॥४४२॥

टीका -- जैसैं पूर्वैं कह्या था, भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंग तैं उपजै है । अर गुणप्रत्यय शंखादिक चिह्ननि तैं उपजै है । तैसैं मनःपर्ययज्ञान द्रव्य मन तैं उपजै है । नियम तैं और अंगनि के प्रदेशनि विषैं नाहीं उपजै है ।

हिदि होदि हु दव्वमणं, वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा ।
अंगोवंगुदयादो, मणवग्गणखंधदो णियमा ॥४४३॥

हृदि भवति हि द्रव्यमनः, विकसिताष्टच्छदारविंदवत् ।
अंगोपांगोदयात्, मनोवर्गणास्कंधतो नियमात् ॥४४३॥

टीका – सो द्रव्य मन हृदय स्थान विषैं प्रफुल्लित आठ पांखुडी का कमल के आकार अंगोपांग नाम कर्म के उदय तैं तेईस जाति की पुद्गल वर्गणानि विषैं मनो-वर्गणा है । तिनि स्कंधनि करि निपजै है, असा नियम है ।

णोइंदिय त्ति सण्णा, तस्स हवे सेसइंदियाणं वा ।
वत्तत्ताभावादो, मण मणपज्जं च तत्थ हवे ॥४४४॥

नोइंद्रियमिति संज्ञा, तस्य भवेत् शेषेंद्रियाणां वा ।
व्यक्तत्वाभावात्, मनो मनःपर्ययश्च तत्र भवेत् ॥४४४॥

टीका – तिस मन का नोइंद्रिय असा नाम है । नो कहिए ईषत्, किंचिन्मात्र इंद्रिय है । जैसैं स्पर्शनादिक इंद्रिय प्रकट है, तैसैं मन के प्रकटपना नाहीं । तातैं मन का नोइंद्रिय असा नाम है; सो तिस द्रव्य मन विषैं मतिज्ञानरूप भाव मन भी उपजै है; अर मनःपर्ययज्ञान भी उपजै है ।

मणपज्जवं च णाणं, सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीणं ।
एगादिजुदेसु हवे, वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ॥४४५॥

मनःपर्ययश्च ज्ञानं, सप्तसु विरतेषु सप्तर्धीनाम् ।
एकादियुतेषु भवेद्वर्धमानविशिष्टाचरणेषु ॥४४५॥

टीका – प्रमत्त आदि सात गुणस्थान विषैं १. बुद्धि, २. तप, ३. वैक्रियिक, ४. औषध, ५. रस, ६. बल, ७. अक्षीण इनि सात रिद्धिनि विषैं एक, दोय आदि रिद्धिनि करि संयुक्त, बहुरि वर्धमान विशेष रूप चारित्र के धारी जे महामुनि, तिनिकैं मनःपर्यय ज्ञान हो है; अन्यत्र नाहीं ।

इंदियणोइंदियजोगादिं, पेक्खित्तु उजुमदी होदि ।
णिरवेक्खिय विउलमदी, ओहिं वा होदि णियमेण ॥४४६॥

इंद्रियनोइंद्रिययोगादिमपेक्ष्य ऋजुमतिर्भवति ।
निरपेक्ष्य विपुलमतिः, अवधिर्वा भवति नियमेन ॥४४६॥

टीका – ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान है; सो अपनें वा अन्य जीव के स्पर्शनादिक इंद्री अर नोइंद्रिय मन अर मन, वचन, काय योग तिनिकी सापेक्ष तैं उपजै है । बहुरि विपुलमति मनःपर्यय है; सो अवधिज्ञान की सी नाईं, तिनकी अपेक्षा बिना ही नियम करि उपजै है ।

पडिवादी पुण पढमा, अप्पडिवादी हु होदि बिदिया हु ।
सुद्धो पढमो बोहो, सुद्धतरो बिदियबोहो दु ॥४४७॥

प्रतिपाती पुनः प्रथमः, अप्रतिपाती हि भवति द्वितीयो हि ।
शुद्धः प्रथमो बोधः, शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु ॥४४७॥

टीका – पहिला ऋजुमति मनःपर्यय है, सो प्रतिपाती है । बहुरि दूसरा विपुलमति मनःपर्यय है, सो अप्रतिपाती है । जाकैं विशुद्ध परिणामनि की घटवारी होइ, सो प्रतिपाती कहिये । जाकैं विशुद्ध परिणामनि की घटवारी न होइ, सो अप्रतिपाती कहिये । बहुरि ऋजुमति मनःपर्यय तौ विशुद्ध है; जातैं प्रतिपक्षी कर्म के क्षयोपशम तैं निर्मल भया है । बहुरि विपुलमति मनःपर्यय विशुद्धतर है; जातैं अतिशय करि निर्मल भया है ।

परमणसि ट्ठियमट्ठं, ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय ।
पच्छा पच्चक्खेण य, उजुमदिणा जाणदे णियमा ॥४४८॥

परमनसि स्थितमर्थमीहामत्या ऋजुस्थितं लब्ध्वा ।
पश्चात् प्रत्यक्षेण च, ऋजुमतिना जानीते नियमात् ॥४४८॥

टीका – पर जीव के मन विषैं सरलपनैं चितवन रूप तिष्ठता जो पदार्थ, ताकौं पहलैं तौ ईहा नामा मतिज्ञान करि प्राप्त होइ, असा विचारै कि याका मन विषैं कहा है। पीछैं ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान करि तिस अर्थ कौं प्रत्यक्षपनैं करि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी जानै है, यहु नियम है।

चिंतियमचिंतियं वा, अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
ओहिं वा विउलमदी, लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४६॥

चिंतितमचिंतितं वा, अर्धं चिंतितमनेकभेदगतम् ।
अवधिर्वा विपुलमतिः, लब्ध्वा विजानाति पश्चात् ॥४४९॥

टीका – अतीत काल विषैं चितया वा अनागत काल विषैं जाका चितवन होगा, असा बिना चितया वा वर्तमान काल विषैं किछू एक आधासा चितया असा अन्य जीव का मन विषैं तिष्ठता अनेक भेद लीएं अर्थ, ताकौं पहिलैं प्राप्त होइ; वाका मन विषैं यहु है, असा जानि । पीछैं अवधिज्ञान की नाईं विपुलमति मनःपर्यय-ज्ञान तिस अर्थ कौं प्रत्यक्ष जानै है ।

दव्वं खेत्तं कालं, भावं पडि जीवलक्खियं रूवि ।
उजुविउलमदी जाणदि, अवरवरं मज्झिमं च तहा ॥४५०॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं, भावं प्रति जीवलक्षितं रूपि ।
ऋजुविपुलमती जानीतः अवरवरं मध्यमं च तथा ॥४५०॥

टीका – द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भाव प्रति जीव करि लक्षित कहिये चितवन कीया हूवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गल के संबंध कौं धरैं संसारी जीव द्रव्य, ताकौं जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि ऋजुमति वा विपुल-मति मनःपर्यय ज्ञान जानै है ।

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु ।
चक्खिंदियणिज्जरणं, उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥४५१॥

अवरं द्रव्यमौरालिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं तु ।
चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमुत्कृष्टमृजुमतेर्भवेत् ॥४५१॥

टीका — ऋजुमति मन:पर्यय ज्ञान जघन्यपने करि औदारिक शरीर का निर्जरारूप समय प्रबद्ध कौं जानें है । औदारिक शरीर विषें समय समय निर्जरा हो है, सो एक समय विषें औदारिक शरीर के जितने परमाणू निर्जरें, तितने परमाणूनि का स्कंध कौं जघन्य ऋजुमति मन:पर्यय ज्ञान जानै हैं । बहुरि उत्कृष्टपनै नेत्र इंद्रिय की निर्जरा मात्र द्रव्य कौं जानें हैं । सो कितना है ? औदारिक शरीर की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है । तिस विषें विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीर का समय प्रबद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भये, तौ नेत्र इंद्रिय की अभ्यंतर निर्वृत्ति अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तिस विषें कितने परमाणू निर्जरारूप भए, असा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया, तितने परमाणूनि का स्कंध कौं उत्कृष्ट ऋजुमति मन:पर्यय ज्ञान जानै हैं ।

मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं ।
खंडिदमेत्तं होदि हु, विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥४५२॥

मनोद्रव्यवर्गणानामनंतिमभागेन ऋजुगोत्कृष्टम् ।
खंडितमात्रं भवति हि, विपुलमतेरवरं द्रव्यम् ॥४५२॥

टीका – बहुरि तेईस जाति की पुद्गल वर्गणानि विषें मनोवर्गणा का जघन्य तें लगाइ, उत्कृष्ट पर्यंत जितने भेद हैं, तिनिकौं अनंत का भाग दीजिए, तहां जो एक भाग विषें प्रमाण होइ, सो मन:पर्यय ज्ञान का कथन विषें ध्रुवहार का परिमाण जानना । सो ऋजुमति का उत्कृष्ट विषयभूत द्रव्य विषें जो परिमाण कह्या था, ताकौं इस ध्रुवहार का भाग दीएं, जो परिमाण आवै, तितने परमाणूनि का स्कंध कौं जघन्य विपुलमति मन:पर्ययज्ञान जानें हैं ।

अटठण्हं कम्माणं, समयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारेणिगिवारं, भजिदे बिदियं हवे दव्वं ॥४५३॥

अष्टानां कर्मणां, समयप्रबद्धं विविस्रसोपचयम् ।
ध्रुवहारेणैकवारं, भजिते द्वितीयं भवेत् द्रव्यम् ॥४५३॥

टीका – आठ कर्मनि का समुदायरूप जो समय प्रबद्ध का प्रमाण तीहिं विषैं विस्रसोपचय के परमाणू न मिलाइए, तिन ही कौं एक बार मनःपर्ययज्ञान संबंधी ध्रुवहार का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने परमाणूनि का स्कंध कौं विपुलमति मनःपर्यय का दूसरा भेदरूप ज्ञान जानै है ।

तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं ।
धुवहारेणवहरिदे, होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥४५४॥

तद्द्वितीयं कल्पानामसंख्येयानां च समयसंख्यासमम् ।
ध्रुवहारेणावहृते, भवति हि उत्कृष्टकं द्रव्यम् ॥४५४॥

टीका – तिस विपुलमति के दूसरे भेद संबंधी द्रव्य कौं तिस ही ध्रुवहार का भाग दीजिए, जो प्रमाण आवै, ताकौं फेरि ध्रुवहार का भाग दीजिए । असैं असंख्यात कल्पकाल के जेते समय हैं; तितनी बार ध्रुवहार का भाग दीजिए, देतैं देतैं अंत विषैं जो परिमाण रहै, तितने परिमाणूनि का स्कंध कौं उत्कृष्ट विपुलमतिज्ञान जानैं हैं; असैं द्रव्य प्रति जघन्य - उत्कृष्ट भेद कहे हैं ।

गाउयपुधत्तमवरं, उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ।
विउलमदिस्स य अवरं, तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

गव्यूतिपृथक्त्वमवरमुत्कृष्टं भवति योजन पृथक्त्वम् ।
विपुलमतेश्च अवरं, तस्य पृथक्त्वं वरं खलु नरलोकः ॥४५५॥

टीका – ऋजुमति का विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व कोश प्रमाण है, सो दोय, तीन, कोश प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है, सो सात वा आठ योजन प्रमाण जानना । बहुरि विपुलमति का विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है, सो आठ वा नव योजन प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्य लोक प्रमाण है ।

णरलोए त्ति य वयणं, विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स ।
जह्मा तग्घणपदरं, मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥४५६॥

नरलोक इति च वचनं, विष्कंभनियामकं न वृत्तस्य ।
यस्मात्तद्घनप्रतरं, मनःपर्ययक्षेत्रमुद्दिष्टम् ॥४५६॥

टीका – नरलोक यहां ऐसा कथन कह्या है, सो यहां मनुष्य लोक का विष्कंभ का जेता परिमाण है, सो लेना । अर मनुष्य लोक तौ गोल है । अर यहु विपुलमति का विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए, समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कह्या है; सो पैंतालीस लाख योजन लंबा, तितना ही चौड़ा ऐसा परिमाण जानना । इहां ऊंचाई थोडी है, तातैं घन प्रतर कह्या है । जातैं मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य च्यारों कोणनि विषैं तिष्ठते देव, तिर्यंच चिंतए हूवे तिनिकौं भी उत्कृष्ट विपुलमति मन:पर्ययज्ञान जानैं हैं, ऐसैं क्षेत्र प्रति जघन्य - उत्कृष्ट भेद कहे ।

दुग-तिग-भवा हु अवरं, सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं ।
अड-णवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ।।४५७।।

द्विक-त्रिक-भवा हि अवरं, सप्ताष्टभवा भवंति उत्कृष्टम् ।
अष्ट-नव-भवा हि अवरमसंख्येयं विपुलोत्कृष्टम् ।।४५७।।

टीका – काल करि ऋजुमति का विषय, जघन्यपनैं अतीत - अनागत रूप दोय, तीन भव है; उत्कृष्टतैं सात, आठ भव है । बहुरि विपुलमति का विषय जघन्य आठ नव भव हैं; उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग मात्र है । ऐसैं अतीत, अनागत अपेक्षा काल प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे ।

आवलिअसंखभागं, अवरं च वरं च वरमसंखगुणं ।
तत्तो असंखगुणिदं, असंखलोगं तु विउलमदी ।।४५८।।

आवल्यसंख्यभागमवरं च वरं च वरमसंख्यगुणम् ।
ततोऽसंख्यातगुणितमसंख्यलोकं च विपुलमतिः ।।४५८।।

टीका – ऋजुमति का विषयभूत भाव जघन्यपनैं आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण है । उत्कृष्टपनैं भी आवली के असंख्यातवां भाग प्रमाण ही कहिए; तथापि जघन्य तैं असंख्यात गुणा है । बहुरि विपुलमति का विषयभूत भाव जघन्य पनैं ऋजुमति का उत्कृष्ट तैं असंख्यात गुणा है । बहुरि उत्कृष्ट पनै असंख्यात लोक प्रमाण है । ऐसैं भाव प्रति जघन्य - उत्कृष्ट भेद कहे ।

मज्झिम दव्वं खेत्तं, कालं भावं च मज्झिमं णाणं ।
जाणदि इदि मणपज्जवणाणं कहिदं समासेण ।।४५९।।

मध्यमद्रव्यं क्षेत्रं, कालं भावं च मध्यमं ज्ञानम् ।
जानातीति मनःपर्ययज्ञानं कथितं समासेन ॥४५९॥

टीका — ऋजुमति अर विपुलमति का जघन्य भेद अर उत्कृष्ट भेद तौ जघन्य वा उत्कृष्ट द्रव्य के क्षेत्र, काल, भावनि कौं जाने है । अर जे जघन्य अर उत्कृष्ट के मध्यवर्ती जे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तिनकौं ऋजुमति अर विपुलमति के जे मध्य भेद हैं, ते जानैं हैं । असैं मनःपर्ययज्ञान संक्षेप करि कह्या है ।

संपुण्णं तु समग्गं, केवलमसवत्तसव्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमिरं, केवलणाणं मुणेदव्वं ॥४६०॥

संपूर्णं तु समग्रं, केवलमसंपत्नं सर्वभावगतम् ।
लोकालोकवितिमिरं, केवलज्ञानं मंतव्यम् ॥४६०॥

टीका – जीव द्रव्य के शक्तिरूप जे सर्व ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद थे, ते सर्व व्यक्त रूप भए, तातैं संपूर्ण हैं । बहुरि ज्ञानावरणीय अर वीर्यांतराय नामा कर्म के सर्वथा नाशतैं जिसकी शक्ति रुकै नाहीं है वा निश्चल है, तातैं समग्र है । बहुरि इंद्रियनि का सहाय करि रहित है, तातैं केवल है । बहुरि प्रतिपक्षी च्यारि घाति कर्म के नाश तैं अनुक्रम रहित सकल पदार्थनि विषैं प्राप्त भया है, तातैं असंपत्न है । बहुरि लोकालोक विषैं अज्ञान अंधकार रहित प्रकाशमान है । असा अभेदरूप केवलज्ञान जानना ।

आगैं ज्ञानमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या कहै हैं–

चदुगदिमदिसुदबोहा, पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा ।
संखेज्जा केवलिणो, सिद्धादो होंति अदिरित्ता ॥४६१॥

चतुर्गतिमतिश्रुतबोधाः, पल्यासंख्येया हि मनः पर्यायाः ।
संख्येयाः केवलिनः, सिद्धात् भवंति अतिरिक्ताः ॥४६१॥

टीका – च्यार्यो गति विषैं मतिज्ञानी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । बहुरि श्रुतज्ञानी भी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । बहुरि मनःपर्यय ज्ञानी मनुष्य संख्याते हैं । बहुरि केवल ज्ञानी सिद्धराशि विषैं तेरह्वां चौदह्वां गुणस्थानवर्ती जीवनिका का परिमाण मिलाएं, जो होइ तीहिं प्रमाण हैं ।

ओहिरहिदा तिरिक्खा, मदिणाणिअसंखभागगा मणुगा ।
संखेज्जा हु तदूणा, मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधिरहिताः तिर्यंचः, मतिज्ञान्यसंख्यभागका मनुजाः ।
संख्येया हि तदूनाः, मतिज्ञानिनः अवधिपरमाणम् ॥४६२॥

टीका – अवधिज्ञान रहित तिर्यंच, मतिज्ञानी जीवनि की संख्या कही । तीहिं के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । बहुरि अवधिज्ञान रहित मनुष्य संख्यात हैं, ए दोऊ राशि मतिज्ञानी जीवनि की जो संख्या कही थी; तिसमैं स्यों घटाइ दीएं जो अवशेष प्रमाण रहै, तितने च्यार्‌यो गति संबंधी अवधिज्ञानी जीव जानने ।

पल्लासंखघणंगुल-हद-सेढि-तिरिक्ख-गदि-विभंगजुदा ।
णर-सहिदा किंचूणा, चदुगदि-वेभंगपरिमाणं ॥४६३॥

पल्यासंख्यघनांगुलहतश्रेणितिर्यग्गतिविभंगयुताः ।
नरसहिताः किंचिदूनाः, चतुर्गतिवैभंगपरिमाणम् ॥४६३॥

टीका – पल्य का असंख्यातवां भाग गुणित घनांगुल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणिए, जो प्रमाण होइ, तितने तौ तिर्यंच । बहुरि संख्याते मनुष्य । बहुरि घनांगुल का द्वितीय मूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणिए, तितना नारकीनि का प्रमाण है । तामैं सम्यग्दृष्टी नारकी जीवनि का परिमाण घटाएं, जो अवशेष रहै, तितना नारकी । बहुरि ज्योतिषी देवनि का परिमाण विषैं भवनवासी, व्यंतर, वैमानिक देवनि का परिमाण मिलाए, सामान्य देवराशि होइ । तामैं सम्यग्दृष्टी देवनि का परिमाण घटाएं, जो अवशेष रहै, तितने देव, इनि सबनि का जोड दीए, जो प्रमाण होइ, तितने च्यार्‌यो गति संबंधी विभंगज्ञानी जानने ।

सण्णाण-रासि-पंचय-परिहीणो सव्वजीवरासी हु ।
मदिसुद-अण्णाणीणं, पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४॥

सज्ज्ञानराशिपंचकपरिहीनः सर्वजीवराशिर्हि ।
मतिश्रुताज्ञानिनां, प्रत्येकं भवति परिमाणम् ॥४६४॥

टीका – सम्यग्ज्ञान पांच, तिनिकरि संयुक्त जीवनि का परिमाण किछू अधिक केवलज्ञानी जीवनि का परिमाण मात्र, सो सर्व जीवराशि का परिमाण विषें घटाएं, जो अवशेष परिमाण रहै, तितने कुमतिज्ञानी जीव जानने। बहुरि तितने ही कुश्रुतज्ञानी जीव जानने।

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा इस भाषा टीका विषें जीवकांड विषें प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषें ज्ञानमार्गणा प्ररूपणा नामा बारह्वां अधिकार संपूर्ण भया ॥१२॥

---:o:---

तेरहवां अधिकार : संयममार्गणा

विमल करत निज गुणनि तैं, सब कौं विमल जिनेश ।
विमल होंन कौं मैं नमौं, अतिशय जुत तीर्थेश ।।

अथ ज्ञानमार्गणा का प्ररूपण करि, अब संयममार्गणा कहै हैं —

वद-समिदि-कसायाणं, दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारण-पालण- णिग्गह-चाग-जओ संजमो भणियो ।।४६५।।[1]

व्रतसमितिकषायाणां, दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानाम् ।
धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ।।४६५।।

टीका — अहिंसा आदि व्रतनि का धारना, ईर्या आदि समितिनि का पालना, क्रोध आदि कषायनि का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दंड का त्याग करना, स्पर्शन आदि पांच इंद्रियनि का जीतना ऐसें व्रतादिक पंचनि का जो धारणादिक, सोई पंच प्रकार संयम जानो । सं — कहिए सम्यक् प्रकार, जो यम कहिए नियम, सो संयम है ।

बादरसंजलणुदये, सुहुमुदये समखये य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।४६६।।

बादरसंज्वलनोदये, सूक्ष्मोदये शमक्षययोश्च मोहस्य ।
संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।४६६।।

टीका — बादर संज्वलन का उदय होत संतैं, बहुरि सूक्ष्म लोभ का उदय होत संतैं, बहुरि मोहनीय का उपशम होत संतैं वा मोहनीय का क्षय होत संतैं निश्चय करि संयम भाव हो है । ऐसें जिनदेवनें कह्या है ।

तहां प्रमत्त - अप्रमत्त गुणस्थाननि विषैं संज्वलन कषायनि के जे सर्वघाती स्पर्धक हैं; तिनिका उदय नाहीं; सो तो क्षय है । बहुरि उदय निषेकनि तैं ऊपरवर्ती

---

१. षट्खंडागम — धवला पुस्तक १, पृष्ठ १४६, गाथा सं. ६२ ।

जे निषेक, तिनिका उदय नाहीं, सोई उपशम । बहुरि बादर संज्वलन के जे देशघातिया स्पर्धक संयम के अविरोधी तिनिका उदय, असैं क्षयोपशम होतें सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हो हैं ।

बहुरि सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप जो अनिवृत्तिकरण, तीहि पर्यंत बादर संज्वलन के उदय करि अपूर्वकरण अर अनिवृत्तिकरण गुणस्थाननि विषैं सामायिक अर छेदोपस्थापना दोय ही संयम हो हैं । बहुरि सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्त हूवा, असा जो संज्वलन लोभ, ताके उदय करि दशवें गुणस्थान सूक्ष्मसांपराय संयम हो है ।

बहुरि सर्व चारित्र मोहनीय कर्म के उपशमतें वा क्षय तें यथाख्यात संयम हो है । तहां ग्यारहवें गुणस्थान उपशम यथाख्यात हो है । बारहवें, तेरहवें, चौदहवें क्षायिक यथाख्यात हो है ।

इस ही अर्थ कौं दोय गाथानि करि कहैं हैं —

बादरसंजलणुदये, बादरसंजमतियं खु परिहारो ।
पमदिदरे सुहुमुदये, सुहुमो संजमगुणो होदि ॥४६७॥

बादरसंज्वलनोदये, बादरसंयमत्रिकं खलु परिहारः ।
प्रमत्तेतरस्मिन् सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ॥४६७॥

टीका — बादर संज्वलन का देशघाती स्पर्धक ते संयम के विरोधी नाहीं, तिनके उदय करि सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हो हैं । तहां परिहारविशुद्धि तौ प्रमत्त - अप्रमत्त दोय गुणस्थाननि विषैं ही हो है । अर सामायिक छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषैं हो है । बहुरि सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्त हूवा संज्वलन लोभ, ताके उदय करि सूक्ष्मसांपराय नामा संयम गुण हो है ।

जहखादसंजमो पुण, उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदो वि य सो णियमा, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥४६८॥

यथाख्यातसंयमः पुनः, उपशमतो भवति मोहनीयस्य ।
क्षयतोऽपि च स नियमात्, भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥४६८॥

टीका – बहुरि यथाख्यात संयम है; सो निश्चय करि मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम तें वा क्षय तें हो है; ऐसें जिनदेवनि करि कह्या है ।

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकसायुदयेण य, असंजमो होदि णियमेण ॥४६९॥

तृतीयकषायोदयेन च, विरताविरतो गुणो भवेद्युगपत् ।
द्वितीयकषायोदयेन च, असंयमो भवति नियमेन ॥४६९॥

टीका – तीसरा प्रत्याख्यान कषाय का उदय करि युगपत् विरत - अविरत-रूप संयमासंयम हो है । जैसें तीसरे गुणस्थान सम्यक्त्व - मिथ्यात्व मिलें ही हो है । तैसें पंचमगुणस्थान विषें संयम - असंयम दोऊ मिश्ररूप हो हैं । तातें यहु मिश्र संयमी है । बहुरि दूसरा अप्रत्याख्यान कषाय के उदय करि असंयम हो है । ऐसें संयम मार्गणा के सात भेद कहे ।

संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो, सामाइयसंजमो होदि ॥४७०॥[1]

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यम् ।
जीवः समुद्वहन्, सामायिकसंयमो भवति ॥४७०॥

टीका – समस्त ही व्रतधारणादिक पंच प्रकार संयम कौं संग्रह करि एकयमं कहिए मैं सर्व सावद्य का त्यागी हौं; ऐसा एकयमं कहिए सकल सावद्य का त्यागरूप अभेद संयम; सोई सामायिक जानना ।

कैसा है सामायिक ? अनुत्तरं कहिए जाके समान और नाहीं, संपूर्ण है । बहुरि दुरवगम्यं कहिए दुर्लभपनें पाइए है, सो ऐसें सामायिक कौं पालता जीव सामयिक संयमी हो है ।

छेत्तूण य परियायं, पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
पंचजमे धम्मे सो, छेदोवट्ठावगो जीवो ॥४७१॥[2]

---

१. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७४, गाथा सं. १८७ ।
२. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७४, गाथा सं. १८८ ।

छित्त्वा च पर्यायं, पुराणं यः स्थापयति आत्मानम् ।
पंचयमे धर्मे स छेदोपस्थापको जीवः ॥४७१॥

टीका – सामायिक चारित्र कौं धारि, बहुरि प्रमाद तैं स्खलित होइ, सावद्य क्रिया कौं प्राप्त हूवा असा जो जीव, पहिले भया जो सावद्यरूप पर्याय ताका प्रायश्चित्त विधि तैं छेदन करि अपने आत्मा कौं व्रतधारणादि पंच प्रकार संयमरूप धर्म विषैं स्थापन करै; सोई छेदोपस्थापन संयमी जानना ।

छेद कहिए प्रायश्चित्त तींहिकरि उपस्थापन कहिए धर्म विषैं आत्मा कौं स्थापना; सो जाकैं होइ, अथवा छेद कहिए अपने दोष दूर करने के निमित्त पूर्वं कीया था तप, तिसका उस दोष के अनुसारि विच्छेद करना, तिसकरि उपस्थापन कहिए निर्दोष संयम विषैं आत्मा कौं स्थापना; सो जाकैं होइ, सो छेदोपस्थापन संयमी है ।

अपना तप का छेद हो हैं, उपस्थापन जाकैं; सो छेदोपस्थापन है, असी निरुक्ति जानना ।

पंच-समिदो ति-गुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं ।
पंचेक्कजमो पुरिसो, परिहारयसंजदो सो हु[2] ॥४७२॥[1]

पंचसमितः त्रिगुप्तः, परिहरति सदापि यो हि सावद्यम् ।
पंचैकयमः पुरुषः, परिहारकसंयतः स हि ॥४७२॥

टीका – पंच समिति, तीन गुप्ति करि संयुक्त जो जीव, सदा काल हिंसारूप सावद्य का परिहार करै; सो पुरुष सामायिकादि पंच संयमनि विषैं परिहारविशुद्धि नामा संयम का धारी प्रकट जानना ।

तीसं वासो जम्मे, वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।
पंचक्खाणं पढिदो, संझूणदुगाउयविहारो ॥४७३॥

त्रिंशद्वार्षो जन्मनि, वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थंकरमूले ।
प्रत्याख्यानं पठितः, संध्योनद्विगव्यूतिविहारः ॥४७३॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७४, गाथा सं. १८९

२. पाठभेद — पंच–जमेम–जमो वा ।

टीका – जो जन्म तें तीस वर्ष का भया होइ । बहुरि सर्वदा खानपानादि से सुखी होइ; असा पुरुष दीक्षा कौं अंगीकार करि पृथक्त्व वर्ष पर्यंत तीर्थकर के पाद मूल प्रत्याख्यान नामा नवमा पूर्व का पाठी होइ; सो परिहारविशुद्धि संयम कौं अंगीकार करि, तीनूं संध्या काल विना सर्व काल विषें दोय कोस विहार करें । अर रात्रि विषें विहार न करें । वर्षा काल विषें किछू नियम नाहीं, गमन करें वा न करें; असा परिहारविशुद्धि संयमी हो है ।

परिहार कहिए प्राणीनि की हिंसा का त्याग, ताकरि विशेषरूप जो **शुद्धिः** कहिए शुद्धता, जाविषें होइ; सो परिहारविशुद्धि संयम जानना ।

इस संयम का जघन्य काल तौ अंतर्मुहूर्त है, जातें कोई जीव अंतर्मुहूर्तमात्र तिस संयम कौं धारि, अन्य गुणस्थान को प्राप्त होइ, तहां सो संयम रहै नाहीं; तातें जघन्य काल अंतर्मुहूर्त कह्या ।

बहुरि उत्कृष्ट काल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व है । जातें कोई जीव कोडि पूर्व का धारी तीस वर्ष का दीक्षा ग्रहि, आठ वर्ष पर्यंत तीर्थकर के निकटि पढै, तहां पीछै परिहारविशुद्धि संयम कौं अंगीकार करै; तातें उत्कृष्टकाल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व कह्या ।

उक्तं च—

परिहारर्धिसमेतो जीवः षट्कायसंकुले विहरन् ।
पयसेव पद्मपत्रं, न लिप्यते पापनिवहेन ॥

याका अर्थ – परिहार विशुद्धि ऋद्धि करि संयुक्त जीव, छह कायरूप जीवनि का समूह विषें विहार करता जल करि कमल पत्र की नाईं पाप करि लिप्त न होइ ।

अणुलोहं वेदंतो, जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसंपराओ, जहखादेणूणओ किंचि[1] ॥४७४॥

अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको वा क्षपको वा ।
स सूक्ष्मसांपरायः यथाख्यातेनोनः किंचित् ॥४७४॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५ गाथा सं. १९० ।

टीका — सूक्ष्मकृष्टि कौं प्राप्त भया लोभ कषाय का अनुभाग, ताके उदय कौं भोगवता उपशमी वा क्षायिकी जीव, सो सूक्ष्म है सांपराय कहिए कषाय जाकें, असा सूक्ष्मसांपराय संयमी जानना। सो यहु यथाख्यात संयमी जे महामुनि, तिनितैं किछू एक घाटि जानना, स्तोकसा ही अंतर है।

उवसंते खीणे वा, असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि।
छदुमट्ठो वा जिणो वा, जहखादो संजदो सो दु[1] ॥४७५॥

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्मणि मोहनीये।
छद्मस्थो वा जिनो वा, यथाख्यातः संयतः स तु ॥४७५॥

टीका — अशुभरूप मोहनीय नामा कर्म, सो उपशम होतैं वा क्षयरूप होतैं उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती वा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ होइ अथवा सयोगी अयोगी जिन होइ; सोई यथाख्यात संयमी जानना। मोहनीय कर्म के सर्वथा उपशम तैं वा नाशतैं जो यथावस्थित आत्मस्वभाव की अवस्था; सोई है लक्षण जाका, असा यथाख्यात चारित्र कहिए है।

पंच-तिहि-चउ-विहेहिं य, अणु-गुण-सिक्खा-वएहिं संजुत्ता।
उच्चंति देस-विरया सम्माइट्ठी झलिय-कम्मा[2] ॥४७६॥

पंचत्रिचतुर्विधैश्च, अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः।
उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयः झरितकर्माणः ॥४७६॥

टीका — पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत असैं बारह व्रतनि करि संयुक्त जे सम्यग्दृष्टी, कर्म निर्जरा के धारक, ते देशविरती संयमासंयम के धारक परमागम विषैं कहिए है।

दंसण-वय-सामाइय, पोसह-सच्चित्त-रायभत्ते य।
बह्मारंभ-परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदेदे[3] ॥४७७॥

दर्शनव्रतसामायिकाः प्रोषधसचित्तरात्रिभक्ताश्च।
ब्रह्मारंभपरिग्रहानुमतोद्दिष्टदेशविरता एते ॥४७७॥

---

१. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा सं. १९१।
२. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा सं. १९२।
३. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा सं. १९३।

टीका – नाम के एक देश तैं सर्व नाम का ग्रहण करना, इस न्याय करि इस गाथा का अर्थ कीजिए है । १ दर्शनिक, २ व्रतिक, ३ सामायिक, ४ प्रोषधोपवास, ५ सचित्तविरत, ६ रात्रिभोजनविरत, ७ ब्रह्मचारी, ८ आरंभविरत, ९ परिग्रह विरत, १० अनुमति विरत, ११ उद्दिष्ट विरत ऐसै ग्यारह प्रतिमा की अपेक्षा देशविरत के ग्यारह भेद जानने । तहां पांच उदुंबरादिक अर सप्त व्यसननि कौं त्यागै अर शुद्ध सम्यक्त्वी होइ; सो दर्शनिक कहिए । पंच अणुव्रतादिक कौं धारै, सो व्रतिक कहिए । नित्य सामायिक क्रिया जाकैं होइ; सो सामायिक कहिए । अवश्य पर्वनि विषैं उपवास जाकैं होइ; सो प्रोषधोपवास कहिए । जीव सहित वस्तु सेवन का त्यागी होइ; सो सचित्त विरत कहिए । रात्रि विषैं भोजन न करै सो रात्रिभक्त विरत कहिए । सदा काल शील पालैं; सो ब्रह्मचारी कहिए । पाप आरंभ कौं त्यागैं; सो आरंभ विरत कहिए । परिग्रह के कार्य को त्यागैं; सो परिग्रह विरत कहिए । पाप की अनुमोदना कौं त्यागैं; सो अनुमति विरत कहिए । अपने निमित्त भया आहारादिक कौं त्यागैं; सो उद्दिष्ट विरत कहिए । इनिका विशेष वर्णन ग्रंथांतर से जानना ।

जीवा चोद्दस-भेया, इंदिय-विसया तहट्ठवीसं तु ।
जे तेसु णेव विरया, असंजदा ते मुणेदव्वा[1] ।।४७८।।

जीवाश्चतुर्दशभेदा, इंद्रियविषयास्तथाष्टविंशतिस्तु ।
ये तेषु नैव विरता, असंयताः ते मंतव्याः ।।४७८।।

टीका – चौदह जीवसमास रूप भेद, बहुरि तैसैं ही अट्ठाईस इंद्रियनि के विषय, तिनिविषैं जे विरत न होंई, जीवनि की दया न करैं, विषयनि विषैं रागी होंइ, ते असंयमी जानने ।

पंच-रस-पंच-वण्णा, दो गंधा अट्ठ-फास-सत्त-सरा ।
मणसहिदट्ठावीसा, इंदीयविसया मुणेदव्वा ।।४७९।।

पंचरसपंचवर्णाः, द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शसप्तस्वराः ।
मनःसहिताः अष्टविंशतिः इंद्रियविषयाः मंतव्याः ।।४७९।।

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३७५, गाथा सं. १९४ ।

टीका – तीखा, कडवा, कसायला, खाटा, मीठा ए पांच रस । बहुरि सुफेद, पीला, हरचा, लाल, काला ए पांच वर्ण । बहुरि सुगंध, दुर्गंध, ए दोय गंध । बहुरि कोमल, कठोर, भारचा, हलका, सीला (ठंडा), ताता, रूखा, चिकना ए आठ स्पर्श । बहुरि षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ए सात स्वर असैं इंद्रियनि के सत्ताईस विषय अर अनेक विकल्परूप एक मन का विषय, असैं विषय के भेद अट्ठाईस जानने ।

आगै संयम मार्गणा विषैं जीवनि की संख्या कहै हैं–

पमदादि-चउण्हं जुदी, सामयियदुगं कमेण सेस-तियं ।
सत्त-सहस्सा णव-सय, णव-लक्खा तीहिं परिहीणा ॥४८०॥

प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः, सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकम् ।
सप्तसहस्राणि नवशतानि, नवलक्षाणि त्रिभिः परिहीनानि ॥४८०॥

टीका – प्रमत्तादि च्यारि गुणस्थानवर्ती जीवनि का जोड दीएं, जो प्रमाण होइ; तितना जीव सामायिक अर छेदोपस्थापना संयम के धारक जानने । तहां प्रमत्तवाले पांच कोडि, तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोय सै छह (५६३६८२०६), अप्रमत्तवाले दोय कोडि छिनवै लाख निन्याणवै हजार एक सै तीन (२६६६६१०३) अपूर्व करण वाले उपशमी दोय सै निन्याणवै (२६६), पांच सौ अठ्याणवै क्षायिकी, अनिवृत्ति करणवाले उपशमी २६६, क्षायिकी पांच सो अठ्याणवै (५६८) इनि सबनिका जोड दीएं, आठ कोडि निव्वे लाख निन्याणवै हजार एक सै तीन भया (८६०६६१०३) सो इतने जीव सामायिक संयमी जानने । अर इतने ही जीव छेदोपस्थापना संयमी जानने । बहुरि अवशेष तीन संयमी रहे, तहां परिहारविशुद्धि संयमी तीन घाटि सात हजार (६६६७) जानने । सूक्ष्म सांपराय संयमी तीन घाटि नवसे (८६७) जानने । यथाख्यात संयमी तीन घाटि नव लाख (८६६६६७) जानने ।

पल्लासंखेज्जदिमं, विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं ।
पुव्वुत्तरासिहीणा, संसारी अविरदाण पमा ॥४८१॥

पल्यासंख्येयं, विरताविरतानां द्रव्यपरिमाणम् ।
पूर्वोक्तराशिहीनाः, संसारिणः अविरतानां प्रमा ॥४८१॥

टीका - पल्य के असंख्यात भाग करिए, तामें एक भाग प्रमाण संयमासंयम का धारक जीव द्रव्यनि का प्रमाण है। बहुरि ए कहे जे छहौं संयम के धारक जीव, तिनका संसारी जीवनि का प्रमाण में स्यों घटाए, जो अवशेष प्रमाण रहै; सोई असंयमी जीवनि का प्रमाण जानना।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा भाषाटीका विषें जीवकाण्ड विषें प्ररूपित बीस प्ररूपणा तिनिविषें संयममार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा तेरह्वां अधिकार संपूर्ण भया ॥१३॥

चौदहवां अधिकार : दर्शनमार्गणा

इस अनन्त भव उदधितैं, पार करनकौं सेतु ।
श्री अनंत जिनपति नमों, सुख अनन्त के हेतु ।।

आगैं दर्शनमार्गणा कौं कहै हैं–

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णदे समये ।।४८२।।[1]

यत्सामान्यं ग्रहणं, भावानां नैव कृत्वाकारम् ।
अविशेष्यार्थान्, दर्शनमिति भण्यते समये ।।४८२।।

टीका – भाव जे सामान्य विशेषात्मक पदार्थ, तिनिका आकार कहिए भेद ग्रहण, ताहि नैव कृत्वा कहिए न करिकैं यत् सामान्यं ग्रहणं कहिए जो सत्तामात्र स्वरूप का प्रतिभासना तत् दर्शनं कहिए सोई दर्शन[2] परमागम विषैं कह्या है। कैसे ग्रहण करैं हैं ? अर्थान् अविशेष्य अर्थ जे बाह्य पदार्थ, तिनिकौं अविशेष्य कहिए जाति, क्रिया, गुण, प्रकार इत्यादि विशेष न करिकैं अपना वा अन्य का केवल सामान्य रूप सत्तामात्र ग्रहण करैं है ।

इस ही अर्थ कौं स्पष्ट करैं हैं—

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहणं, जीवेण य दंसणं होदि ।।४८३।।

भावानां सामान्यविशेषकानां स्वरूपमात्रं यत् ।
वर्णनहीनग्रहणं, जीवेन च दर्शनं भवति ।।४८३।।

टीका – सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ, तिनिका स्वरूप मात्र भेद रहित, जैसें हैं तैसें जीव करि सहित स्वपर सत्ता का प्रकाशना, सो दर्शन है। जो देखै वा जा करि देखिए वा देखनें मात्र, सो दर्शन जानना ।

---

१. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ १५०, गाथा सं. ९३, द्रव्यसंग्रह गाथा सं. ४३ ।

२. दर्शन संबंधी विशेष स्पष्टीकरण के लिए देखो–धवला पुस्तक १, पृष्ठ १४६ से १४९ तक ।

आगें चक्षु – अचक्षु दर्शन के लक्षण कहैं हैं—

चक्खूण जं पयासइ, दिस्सइ तं चक्खु-दंसणं बेंति ।
सेसिंदिय-प्पयासो, णायव्वो सो अचक्खू त्ति[1] ॥४८४॥

चक्षुषोः यत्प्रकाशते, पश्यति तत् चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति ।
शेषेंद्रियप्रकाशो, ज्ञातव्यः स अचक्षुरिति ॥४८४॥

टीका – नेत्रनि का संबंधी जो सामान्य ग्रहण, सो जो प्रकाशिए, देखिए या-करि वा तिस नेत्र के विषय का प्रकाशन, सो चक्षुदर्शन गणधरादिक कहैं हैं । बहुरि नेत्र बिना च्यारि इंद्रिय अर मन का जो विषय का प्रकाशन, सो अचक्षुदर्शन है, असा जानना ।

परमाणु-आदियाइं, अंतिम-खंधं त्ति मुत्ति-दव्वाइं ।
तं ओहि-दंसणं पुण, जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं[2] ॥४८५॥

परमाण्वादीनि, अंतिमस्कंधमिति मूर्तद्रव्याणि ।
तदवधिदर्शनं पुनः, यत् पश्यति तानि प्रत्यक्षम् ॥४८५॥

टीका – परमाणु आदि महास्कंध पर्यंत जे मूर्तीक द्रव्य, तिनिकौं जो प्रत्यक्ष देखै, सो अवधिदर्शन है ।

बहुविह बहुप्पयारा, उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोग वितिमिरो, जो केवलदंसणुज्जोओ[3] ॥४८६॥

बहुविधबहुप्रकारो, उद्योताः परिमिते क्षेत्रे ।
लोकालोकवितिमिरो, यः केवलदर्शनोद्योतः ॥४८६॥

टीका – बहुत भेद कौं लीए बहुत प्रकार के चंद्रमा, सूर्य, रत्नादिक संबंधी उद्योत जगत विषैं हैं । ते परिमित जो मर्यादा लीएं क्षेत्र, तिस विषैं ही अपने प्रकाश

---

१. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृ. ३८४, गा. सं. १९५, १९६ तथा देखो पृ. ३०० से ३८२ तक ।
२. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, गाथा सं. १९६, पृष्ठ ३८४ ।
३. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, गा. सं. १९७, पृ. ३८४ ।

करने कौं समर्थ हैं। तातैं तिनि प्रकाशनि की उपमा देने योग्य नाहीं, ऐसा समस्त लोक अर अलोक विषैं अंधकार रहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामा उद्योत जानना ।

आगैं दर्शनमार्गणा विषैं जीवनि की संख्या दोय गाथानि करि कहैं हैं–

जोगे चउरक्खाणं, पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं ।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ॥४८७॥

योगे चतुरक्षाणां, पंचाक्षाणां च क्षीणचरमाणाम् ।
चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तेषां ज्ञानं च ॥४८७॥

टीका – मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत चक्षुदर्शन ही है। तिनके दोय भेद हैं–एक शक्तिरूप चक्षुदर्शनी, एक व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी । तहां लब्धि अपर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेंद्री तौ, शक्तिरूप चक्षुदर्शनी हैं, जातैं नेत्र इंद्रिय पर्याप्ति की पूर्णता अपर्याप्त अवस्था विषैं नाहीं है। तातैं तहां प्रगटरूप चक्षुदर्शन न प्रवर्तै है। बहुरि पर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेंद्री व्यक्तरूप चक्षुदर्शनी है; जातैं तहां प्रकटरूप चक्षु-दर्शन हैं। तहां बेंद्री, तेंद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री आवली का असंख्यातवां भाग प्रतरांगुल कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, ताका भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने हैं, तो चौइंद्री, पंचेंद्री कितने हैं ? ऐसें प्रमाण राशि च्यारि, फलराशि त्रसनि का प्रमाण, इच्छाराशि दोय; तहां इच्छा कौं फलराशि करि गुणि, प्रमाण का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना चौइंद्री, पंचेंद्री राशि है। तहां बेंद्री आदि क्रम तैं घटते हैं। तातैं किंचिदून करि बहुरि तिस विषैं पर्याप्त जीवनि का प्रमाण घटावना। तातैं तिस प्रमाण में स्यों भी किछू घटायें जो प्रमाण होइ, तितना शक्तिगत चक्षुदर्शनी जानने। बहुरि ऐसें ही त्रस पर्याप्त जीवनि का प्रमाण कौं च्यारि का भाग देइ, दो गुणा करि, तामैं किंचिदून कीए जो प्रमाण होइ, तितना व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी है। इंद्रियमार्गणा विषैं जो चौइंद्री, पंचेंद्रिय जीवनि का प्रमाण कह्या है, तिनकौं मिलाए चक्षुदर्शनी जीवनि का प्रमाण हो है।

बहुरि अवधिदर्शनी जीवनि का प्रमाण अवधिज्ञानी जीवनि का परिमाण के समान जानना।

बहुरि केवलदर्शनी जीवनि का परिमाण केवलज्ञानी जीवनि का परिमाण के समान जानना । सो इनिका प्रमाण ज्ञानमार्गणा विषै कह्या है ।

एइंदियपहुदीणं, खीणकसायंतणंतरासीणं ।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ।।४८८।।

एकेंद्रियप्रभृतीनां, क्षीणकषायांतानंतराशीनाम् ।
योगः अचक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणम् ।।४८८।।

टीका – एकेंद्रिय आदि क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती पर्यंत अनंत जीवनि का जोड दीए, जो परिमाण होइ तितना चक्षुदर्शनी जीवनि का प्रमाण जानना ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकांड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनि विषै दर्शनमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा चौदहवां अधिकार संपूर्ण भया ।।१४।।

पंद्रहवां अधिकार : लेश्या – मार्गणा

सुधाधार सम धर्म तैं, पोषे भव्य सुधान्य ।
प्राप्त कीए निज इष्ट कौं, भजौं धर्म धन मान्य ।।

आगें लेश्या मार्गणा कह्या चाहैं हैं । तहां प्रथम ही निरुक्ति लीएं लेश्या का लक्षण कहैं हैं—

लिपइ अप्पीकीरइ,एदीए णियअपुण्णपुण्णं[1] च ।
जीवो त्ति होदि लेस्सा, लेस्सागुणजाणयक्खादा[2] ।।४८६।।

लिपत्यात्मीकरोति, एतया निजापुण्यपुण्यं च ।
जीव इति भवति लेश्या, लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ।।४८९।।

टीका – लेश्या दोय प्रकार – एक द्रव्य लेश्या, एक भाव लेश्या । तहां इस सूत्र विषें भाव लेश्या का लक्षण कह्या है । **लिंपति एतया इति लेश्या**, पाप अर पुण्य कौं जीव नामा पदार्थ, इस करि लिप्त करै है, अपनें करै है, निज संबंधी करै है; सो सो लेश्या, लेश्या लक्षण के जाननहारे गणधरादिकनि करि कह्या है । इस करि आत्मा कर्म करि आत्मा कौं लिप्त करै हैं, सो लेश्या अथवा कषायनि का उदय करि अनुरंजित जो योगनि की प्रवृत्ति, सो लेश्या कहिए ।

इस ही अर्थ कौं स्पष्ट करै हैं–

जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरंजिया होई ।
तत्तो दोण्णं कज्जं, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ।।४९०।।

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति ।
ततो द्वयोः कार्यं, बंधचतुष्कं समुद्दिष्टम् ।।४९०।।

टीका – मन, वचन, कायरूप योगनि की प्रवृत्ति सो लेश्या है । सो योगनि की प्रवृत्ति कषायनि का उदय करि अनुरंजित हो है । तिसतें योग अर कषाय इनि

---

१. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ १४९, गाथा सं. ९४ ।

२. पाठभेद 'णियय पुण्णयं च' ।

दोऊनि का कार्य च्यारि प्रकार बन्ध कह्या है । योगनि तैं प्रकृत्ति बन्ध अर प्रदेश बन्ध कह्या है । कषायनि तैं स्थिति बन्ध अर अनुभाग बंध कह्या है । तिसही कारण कषायनि का उदय करि अनुरंजित योगनि की प्रवृत्ति, सोई है लक्षण जाका असैं लेश्या करि च्यारि प्रकार बंध युक्त ही है ।

आगें दोय गाथानि करि लेश्या का प्ररूपण विषैं सोलह अधिकार कहै हैं–

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा, खेत्तं फासं तदो कालो ॥४९१॥

अंतरभावप्पबहु, अहियारा सोलसा हवंति त्ति ।
लेस्साण साहणट्ठं, जहाकमं तेहिं वोच्छामि ॥४९२॥ जुम्मम् ।

निर्देशवर्णपरिणामसंक्रमाः कर्म लक्षणगतयश्च ।
स्वामी साधनसंख्ये, क्षेत्रं स्पर्शस्ततः कालः ॥४९१॥

अंतरभावाल्पबहुत्वमधिकाराः षोडश भवंतीति ।
लेश्यानां साधनार्थं, यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ॥४९२॥युग्मम्॥

टीका – १ निर्देश, २ वर्ण, ३ परिणाम, ४ संक्रम, ५ कर्म, ६ लक्षण, ७ गति, ८ स्वामी, ९ साधन, १० संख्या, ११ क्षेत्र, १२ स्पर्शन, १३ काल, १४ अंतर, १५ भाव, १६ अल्प बहुत्व ए सोलह अधिकार लेश्या के भेदसाधन के निमित्त हैं । तिन करि अनुक्रम तें लेश्यामार्गणा कौं कहै हैं ।

किण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥४९३॥

कृष्णा नीला कापोता तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च ।
लेश्यानां निर्देशाः, षट् चैव भवंति नियमेन ॥४९३॥

टीका – नाम मात्र कथन का नाम निर्देश है । सो लेश्या के ए छह नाम हैं – कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म शुक्ल असैं छह ही हैं । इहां **एव** शब्द करि तो नियम आया ही, बहुरि **नियमेन** असा कह्या, सो नैगमनय करि छह प्रकार लेश्या है । पर्यायार्थिक नय करि असंख्यात लोकमात्र भेद हैं, असा अभिप्राय नियम शब्द करि जानना । इति निर्देशाधिकारः ।

वण्णोदयेण जणिदो, सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
सा सोढा किण्हादी, अणेयभेया सभेयेण ॥४९४॥

वर्णोदयेन जनितः, शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।
सा षोढा कृष्णादिः, अनेकभेदा स्वभेदेन ॥४९४॥

टीका – बहुरि वर्ण नामा नामकर्म के उदय तें भया जो शरीर का वर्ण, सो द्रव्य लेश्या कहिए । सो कृष्णादिक छह प्रकार है । तहां एक - एक भेद अपने - अपने भेदनि करि अनेकरूप जानने ।

सोई कहिए हैं–

छप्पय-णील-कवोद-सुहेमंबुज-संखसण्णिहा वण्णे ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं ॥४९५॥

षट्पदनीलकपोतसुहेमाम्बुजशंखसन्निभा वर्णे ।
संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च प्रत्येकम् ॥४९५॥

टीका – कृष्ण लेश्या षट्पद जो भ्रमर, ताके समान है । जिसके शरीर का भ्रमर समान काला वर्ण होइ, ताके द्रव्य लेश्या कृष्ण जानना । ऐसें ही नील लेश्या, नीलमणि समान है । कपोत लेश्या, कपोत समान है । तेजो लेश्या, सुवर्ण समान है । पद्म लेश्या, कमल समान है । शुक्ल लेश्या शंख समान है । बहुरि इन ही एक - एक लेश्यानि के नेत्र इंद्रिय के गोचर अपेक्षा संख्याते भेद हैं । जैसे कृष्णवर्ण हीन - अधिक रूप संख्याते भेद कौं लीए नेत्र इंद्रिय करि देखिये है । बहुरि स्कंध भेद करि एक - एक के असंख्यात असंख्याते भेद हैं । जैसे द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीर संबंधी स्कंध असंख्याते हैं । बहुरि परमाणू भेद करि एक - एक के अनन्त भेद हैं । जैसें द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीर सम्बन्धी स्कंधनि विषैं अनंते परमाणू पाईए है । ऐसें सर्व लेश्यानि के भेद जानना ।

णिरया किण्हा कप्पा, भावाणुगया हु ति-सुर-णर-तिरिये ।
उत्तरदेहे छक्कं, भोगे रवि-चंद-हरिदंगा ॥४९६॥

निरयाः कृष्णाः कल्पा, भावानुगता हि त्रिसुरनरतिरश्चि ।
उत्तरदेहे षट्कं, भोगे रविचन्द्रहरितांगाः ॥४९६॥

टीका – नारकी सर्व कृष्ण वर्ण ही हैं । बहुरि कल्पवासी देव जैसी उनके भावलेश्या है, तैसा ही वर्ण के धारक हैं । बहुरि भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव अर मनुष्य अर तिर्यंच अर देवनि का विक्रिया तैं भया शरीर, ते छहौं वर्ण के धारक हैं । बहुरि उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि संबंधी मनुष्य, तिर्यंच, अनुक्रम तैं सूर्य सारिखे अर चंद्रमा सारिखे अर हरित वर्ण के धारक हैं ।

बादरआऊतेऊ, सुक्का-तेऊ य वाऊकायाणं ।
गोमुत्तमुग्गवण्णा, कमसो अव्वत्तवण्णो य ॥४९७॥

बादराप्तैजसौ, शुक्लतेजसौ च वायुकायानाम् ।
गोमूत्रमुद्गवर्णाः क्रमशः अव्यक्तवर्णश्च ॥४९७॥

टीका – बादर अप्कायिक शुक्ल वर्ण है । बादर तेज कायिक पीतवर्ण है । बादर वात कायिकनि विषैं घनोदधि वात तौ गऊ का मूत्र के समान वर्ण को धरै है । घनवात मूंगा सारिखा वर्ण धरै हैं । तनुवात का वर्ण प्रकट नाहीं, अव्यक्त वर्ण है ।

सव्वेसिं सुहुमाणं, कावोदा सव्व विग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो, कवोदवण्णो हवे णियमा ॥४९८॥

सर्वेषां सूक्ष्माणां, कापोताः सर्वे विग्रहे शुक्लाः ।
सर्वो मिश्रो देहः, कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥४९८॥

टीका – सर्व ही सूक्ष्म जीवनि का शरीर कपोत वर्ण है । बहुरि सर्व जीव विग्रहगति विषैं शुक्ल वर्ण ही हैं । बहुरि सर्व जीव अपने पर्याप्ति के प्रारम्भ का प्रथम समय तैं लगाय शरीर पर्याप्ति की पूर्णता पर्यंत जो अपर्याप्त अवस्था है, तहां कपोत वर्ण ही है, असा नियम है । असैं शरीरनि का वर्ण कह्या, सो जिसका जो शरीर का वर्ण होइ, तिसके सोई द्रव्य लेश्या जाननी । इति वर्णाधिकार : ।

आगें परिणामाधिकार पंच गाथानि करि कहैं हैं–

लोगाणमसंखेज्जा, उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा, सुहा विसुद्धा तदालावा ॥४९९॥

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति ।
तत्र क्लिष्टानि अशुभानि, शुभानि विशुद्धानि तदालापात् ॥४९९॥

टीका – कषाय संबंधी अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यात लोक प्रमाण है । तिनिकौं यथायोग्य असंख्यात लोक का भाग दीजिए । तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र तौ संक्लेश स्थान हैं । ते परिण असंख्यात लोक प्रमाण हैं । बहुरि एक भाग मात्र विशुद्धि स्थान हैं । ते परिण असंख्यात लोक प्रमाण हैं; जातैं असंख्यात के भेद बहुत हैं । तहां संक्लेश स्थान तौ अशुभलेश्या संबंधी जानने, अर विशुद्धिस्थान शुभलेश्या संबंधी जानने ।

तिव्वतमा तिव्वतरा, तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा, छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥५००॥

तीव्रतमास्तीव्रतरास्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मंदाः ।
मंदतरा मंदतमाः, षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ॥५००॥

टीका – पूर्वै जे असंख्यात लोक के बहुभागमात्र अशुभ लेश्या संबंधी संक्लेश स्थान कहे; ते कृष्ण, नील, कपोत भेद करि तीन प्रकार हैं । तहां पूर्वै संक्लेशस्थाननि का जो प्रमाण कह्या, ताकौं यथायोग्य असंख्यात लोक का भाग दीए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र कृष्णलेश्या संबंधी तीव्रतम कषायरूप संक्लेशस्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौं असंख्यात लोक का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र नील लेश्या संबंधी तीव्रतर कषायरूप संक्लेश स्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग मात्र कपोत लेश्या संबंधी तीव्र कषायरूप संक्लेशस्थान जानने । बहुरि असंख्यात लोक का एक भाग मात्र शुभ लेश्या संबंधी विशुद्धि स्थान कहे; ते तेज, पद्म, शुक्ल भेद करि तीन प्रकार हैं । तहां पूर्वै जो विशुद्धिस्थाननि का प्रमाण कह्या, ताकौं यथायोग्य असंख्यात लोक का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र तेजो लेश्या सम्बन्धी मंदकषाय रूप विशुद्धि स्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग कौं असंख्यात लोक का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष भाग मात्र पद्मलेश्या संबंधी मंदतर कषायरूप विशुद्धि-स्थान जानने । बहुरि तिस अवशेष एक भाग मात्र शुक्ललेश्या संबंधी मंदतम कषाय-रूप विशुद्धि स्थान जानने । तहां इनि कृष्णलेश्या आदि छह स्थाननि विषैं एक –

एक में अनन्तभागादिक षट्स्थान संभवै हैं। तहां अशुभ रूप तीन भेदनि विषै तौ उत्कृष्ट तैं लगाइ जघन्य पर्यंत असंख्यात लोक मात्र बार षट् स्थानपतित संक्लेश हानि संभवै है। बहुरि शुभरूप तीन भेदनि विषै जघन्य तैं लगाइ, उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थान पतित विशुद्ध परिणामनि की वृद्धि संभवै है। परिणामनि की अपेक्षा संक्लेश विशुद्धि के अनंतानन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं; तिनकी अपेक्षा षट्स्थानपतित वृद्धि – हानि जानना।

असुहाणं वर-मज्झिम-अवरंसे किण्ह-णील-काउतिए।
परिणमदि कमेणप्पा, परिहाणीदो किलेसस्स ॥५०१॥

अशुभानां वरमध्यमावरांशे कृष्णनीलकापोतत्रिकानाम्।
परिणमति क्रमेणात्मा परिहानितः क्लेशस्य ॥५०१॥

टीका — जो संक्लेश परिणामनि की हानिरूप परिणमै, तौ अनुक्रम तैं कृष्ण के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; नील के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; कपोत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश रूप परिणवै है।

काऊ णीलं किण्हं, परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा।
एवं किलेसहाणी-वड्ढीदो होदि असुहतियं ॥५०२॥

कापोतं नीलं कृष्णं, परिणमति क्लेशवृद्धित आत्मा।
एवं क्लेशहानि-वृद्धितो भवति अशुभत्रिकम् ॥५०२॥

टीका — बहुरि जो संक्लेश परिणामनि की वृद्धिरूप परिणमैं तौ अनुक्रम तैं कपोतरूप, नीलरूप, कृष्णरूप परिणवै है। ऐसैं संक्लेश की हानि - वृद्धि करि तीन अशुभ स्थान हो हैं।

तेऊ पउमे सुक्के, सुहाणमवरादिअंसगे अप्पा।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो, हाणीदो अण्णहा होदि ॥५०३॥

तेजसि पद्मे शुक्ले, शुभानामवरांशगे आत्मा।
शुद्धेश्च वृद्धितो, हानितः अन्यथा भवति ॥५०३॥

टीका – बहुरि जो विशुद्धपरिणामनि की वृद्धि होइ, तौ अनुक्रम तें पीत, पद्म, शुक्ल के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अंशरूप परिणवै है। बहुरि जो विशुद्ध परिणामनि की हानि होइ, तौ अन्यथा कहिए शुक्ल, पद्म, पीत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश रूप अनुक्रम तें परिणवै है। इति परिणामाधिकारः।

आगें संक्रमणाधिकार तीन गाथानि करि कहैं है —

संकमणं सट्ठाण-परट्ठाणं होदि किण्ह-सुक्काणं।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं, उभयं हाणिम्मि सेसउभये वि ॥५०४॥

संक्रमणं स्वस्थान-परस्थानं भवतीति कृष्णशुक्लयोः।
वृद्धिषु हि स्वस्थानमुभयं हानौ शेषस्योभयेऽपि ॥५०४॥

टीका – संक्रमण नाम परिणामनि की पलटनि का है; सो संक्रमण दोय प्रकार है – स्वस्थानसंक्रमण, परस्थानसंक्रमण।

तहां जो परिणाम जिस लेश्यारूप था, सो परिणाम पलटि करि तिसही लेश्यारूप रहै, सो तौ स्वस्थान संक्रमण है।

बहुरि जो परिणाम पलटि करि अन्य लेश्या कौं प्राप्त होइ, सो परस्थान संक्रमण है।

तहां कृष्ण लेश्या अर शुक्ललेश्या की वृद्धि विषें तौ स्वस्थानसंक्रमण ही है; जातें संक्लेश की वृद्धि कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अंश पर्यंत ही है। अर विशुद्धता की वृद्धि शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंश पर्यंत ही है। बहुरि कृष्णलेश्या अर शुक्ल लेश्या के हानि विषें स्वस्थानसंक्रमण परस्थानसंक्रमण दोऊ पाइए हैं। जो उत्कृष्ट कृष्ण-लेश्या तै संक्लेश की हानि होइ, तौ कृष्ण लेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तै, तहां स्वस्थान संक्रमण भया, अर जो नीलादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै, तहां परस्थान संक्रमण भया। ऐसें कृष्ण लेश्या के हानि विषें दोऊ संक्रमण हैं। बहुरि उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या तें जो विशुद्धता की हानि होइ, तौ शुक्ल लेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तै। तहां स्वस्थान संक्रमण भया। बहुरि पद्मादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै, तहां परस्थान संक्रमण भया। ऐसें शुक्ल लेश्या के हानि विषें दोऊ संक्रमण हैं।

बहुरि अवशेष नील, कपोत, तेज, पद्म, लेश्यानि विषैं दोऊ जाति के संक्रमण हानि विषैं भी अर वृद्धि विषैं भी पाइए। वृद्धि - हानि होतैं जो जिस लेश्यारूप था, उस ही लेश्यारूप रहै, तहां स्वस्थानं संक्रमण होइ। बहुरि वृद्धि - हानि होतैं, जिस लेश्यारूप था, तिसतैं अन्य लेश्यारूप प्रवर्ते, तहां परस्थान संक्रमण होइ। ऐसैं च्यारयौं लेश्यानि के हानि विषैं वा वृद्धि विषैं उभय संक्रमण है।

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरड्ढी।
सट्ठाणे अवरादो, हाणी णियमा परट्ठाणे ॥५०५॥

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिः अवरकादवरवृद्धिः।
स्वस्थाने अवरात्, हानिर्नियमात् परस्थाने ॥५०५॥

टीका – कृष्णादि सर्व लेश्यानि का उत्कृष्ट स्थान विषैं जेते परिणाम हैं, तिनतैं उत्कृष्ट स्थानक का समीपवर्ती जो तिस ही लेश्या का स्थान, तिस विषैं अवर वृद्धि कहिए उत्कृष्ट स्थान तैं अनंतभाग हानि लीएं परिणाम हैं। जातैं उत्कृष्ट के अनंतर जो परिणाम, ताकौं उर्वंक कह्या है, सो अनंतभाग की संदृष्टि उर्वंक है। बहुरि स्वस्थान विषैं कृष्णादि सर्व लेश्यानि का जघन्य स्थान के समीपवर्ती जो स्थान है, तिस विषैं जघन्य स्थान के परिणामनि तैं अवर वृद्धि कहिए। अनंतभागवृद्धि लीएं परिणाम पाइए हैं; जातैं जो जघन्यभाव अष्टांकरूप कह्या है; सो अनंतगुण वृद्धि की सहनानी आठ का अंक है; ताके अनन्तर उर्वंक ही है। बहुरि सर्व लेश्यानि के जघन्यस्थान तैं जो परस्थान संक्रमण होइ तौ उस जघन्य स्थानक के परिणमनि तैं अनन्त गुणहानि कौं लीएं, अनन्तर स्थान विषैं परिणाम हो है, सो शुक्ल लेश्या का जघन्य स्थानक के अनन्तर तौ पद्म लेश्या का उत्कृष्ट स्थान है। अर कृष्ण लेश्या के जघन्य स्थान के अनन्तर नील लेश्या का उत्कृष्ट स्थान है। तहां अनंत गुणहानि पाइए है। ऐसैं ही सर्व लेश्यानि विषैं जानना। कृष्ण, नील, कपोत विषैं तौ हानि - वृद्धि संक्लेश परिणामनि की जाननी। पीत, पद्म, शुक्ल विषैं हानि वृद्धि विशुद्ध परिणामनि की जाननी।

इस गाथा विषैं कह्या अर्थ का कारण आगैं प्रकट करि कहिए है–

संकमणे छट्ठाणा, हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा।
परिमाणं च य पुव्वं, उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥५०६॥

संक्रमणे षट्स्थानानि, हानिषु वृद्धिषु भवन्ति तन्नामानि ।
परिमाणं च च पूर्वमिवानुक्रमो भवति श्रुतज्ञाने ॥५०६॥

टीका – इस संक्रमण विषैं हानि विषैं अनन्त भागादिक छह स्थान हैं। बहुरि वृद्धि विषैं अनन्त गुणादिक भागादिक छह स्थान हैं । तिनके नाम वा प्रमाण जो पूर्वै श्रुतज्ञान मार्गणा विषैं पर्याय समास श्रुतज्ञान का वर्णन करते अनुक्रम कह्या हैं; सोई इहां जानना । सो अनन्त भाग, असंख्यात भाग, संख्यात भाग, संख्यात गुणा, असंख्यात गुणा, अनन्त गुणा ए तौ षट् स्थाननि के नाम हैं । इनि अनन्त भागादिक की सहनानी क्रम तैं उर्वंक च्यारि, पांच, छह, सात, आठ का अंक है । बहुरि अनंत का प्रमाण जीवराशि मात्र, असंख्यात का प्रमाण असंख्यात लोक मात्र, संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र असा प्रमाण गुणकार वा भागहार विषैं जानना । बहुरि यंत्र द्वार करि जो तहां अनुक्रम कह्या है, सोई यहां अनुक्रम जानना । वृद्धि विषैं तौ तहां कह्या है, सोई अनुक्रम जानना ।

बहुरि हानि विषैं उलटा अनुक्रम जानना । कैसे ? सो कहिये है – कपोत लेश्या का जघन्य तैं लगाइ, कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट पर्यंत विवक्षा होइ, तौ क्रम तैं संक्लेश की वृद्धि संभवै है । बहुरि कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट तैं लगाइ, कपोत लेश्या का जघन्य पर्यंत विवक्षा होइ, तौ क्रम तैं संक्लेश की हानि संभवै है । बहुरि पीत का जघन्य तैं लगाइ शुक्ल का उत्कृष्टपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रम तैं विशुद्धि की वृद्धि संभवै है । बहुरि शुक्ल का उत्कृष्ट तैं लगाइ पीत का जघन्यपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रम तैं विशुद्धि की हानि संभवै है । तहां वृद्धि विषैं यथासंभव षट्स्थानपतित वृद्धि जाननी हानि विषैं हानि जाननी । तहां पूर्वै कह्या जो वृद्धि विषैं अनुक्रम, तहां पीछें ही पीछें सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग मात्र बार अनन्त भाग वृद्धि होइ, एक बार अनन्त गुणवृद्धि हो है । तहां अनन्त गुण वृद्धि रूप जो स्थान, सो नवीन षट्स्थान पतितवृद्धि का प्रारंभ रूप प्रथम स्थान है । अर याके पहिलैं जो अनंत भागवृद्धिरूप स्थान भया सो विवक्षित षट्स्थान पतित वृद्धि का अंत स्थान है । बहुरि नवीन षट्स्थान पतित-वृद्धि का अनन्त गुणवृद्धिरूप प्रथम स्थान के आगैं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र अनंतभाग वृद्धिरूपस्थान हो है । आगै पूर्वोक्त अनुक्रम जानना । अब इहां कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट स्थान है; सो षट्स्थान पतित का अन्तस्थानरूप है, तातैं पूर्वस्थान तैं अनन्तभाग वृद्धिरूप है । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य स्थान है, सो षट्-स्थानपतित का प्रारंभरूप प्रथम स्थान है । तातैं याके पूर्वै नीललेश्या का उत्कृष्ट

स्थान, तातैं अनंत गुणवृद्धिरूप यहु स्थान जानना । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य के समीपवर्ती स्थान, तिस जघन्य स्थान तैं अनन्त भाग वृद्धिरूप जानना । ऐसें ही अन्य स्थाननि विषैं वा अन्य लेश्यानि विषैं वृद्धि का अनुक्रम जानना ।

बहुरि जो हानि अपेक्षा कथन कीजिए तौ कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट स्थान तैं ताके समीपवर्ती स्थान अनन्त भाग हानि लीएं, जानना । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य स्थान तैं नील लेश्या का उत्कृष्ट स्थान अनन्त गुणहानि लीएं जानना । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य के समीपवर्ती स्थान तैं जघन्य स्थान अनन्त भाग लीए जानना । ऐसें ही अन्य स्थाननि विषैं अन्य लेश्यानि विषैं यंत्र द्वार करि कह्या; अनुक्रम तैं उलटा अनुक्रम लीए हानि का अनुक्रम जानना । ऐसें संक्रमण विषैं वृद्धि - हानि है । इति संक्रमणाधिकारः ।

आगैं कर्माधिकार दोय गाथा करि कहै हैं–

पहिया जे छप्पुरिसा, परिभट्ठारण्णमज्झदेसम्मि ।
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचिंतंति ॥५०७॥

णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइं इदि जं, मणेण वयणं हवे कम्मं ॥५०८॥जुम्मम्॥

पथिका ये षट्पुरुषाः, परिभ्रष्टा अरण्यमध्यदेशे ।
फलभरितवृक्षमेकं, दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति ॥५०७॥

निर्मूलस्कन्धशाखोपशाखं छित्त्वा चित्वा पतितानि ।
खादितुं फलानि इति, यन्मनसा वचनं भवेत् कर्म ॥५०८॥ युग्मम् ।

टीका – कृष्णादिक एक - एक लेश्यावाले छह पथिक पुरुष मार्ग तैं भ्रष्ट भए, तहां वन विषैं एक फलनि करि भरया हुवा वृक्ष कौं देखि, ऐसें चितवै हैं – कृष्ण लेश्यावाला तौ चितवै हैं, जो मैं इस वृक्ष कौं मूल तैं उपाडि, फल खास्यौं । बहुरि नील लेश्यावाला चितवै है, मैं इस वृक्ष के पेड कौं काटि फल खास्यौं । बहुरि कपोत वाला चितवै है, मैं इस वृक्ष की बडी शाखानि छेदि फल खास्यौं । बहुरि पीतवाला चितवै है, मैं इस वृक्ष की छोटी शाखानि को छेदि फल खास्यौं । बहुरि पद्मवाला चितवै है मैं इस वृक्ष के फलनि ही कौं छेद फल खास्यौं । शुक्लवाला चितवै हैं कि

मैं जे आपसे टूटि करि जे पड़े फल, तिनकौं खास्यौं । असैं मनपूर्वक जो वचन होइ सो तिन लेश्यानि का कर्म जानना । इहां एक उदाहरण कह्या है, इस ही प्रकार अन्य जानने । इति कर्माधिकार ।

आगैं लक्षणाधिकार नव गाथानि करि कहै हैं–

चंडो ण मुंचदि वेरं, भंडण-सीलो य धम्म-दय-रहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०९॥[1]

चण्डो न मुञ्चति वैरं, भण्डनशीलश्च धर्मदयारहितः ।
दुष्टो न च एति वशं, लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ॥५०९॥

टीका – प्रचंड तीव्र क्रोधी होइ, वैर न छोडै । भांडने का – युद्ध करने का जाका सहज स्वभाव होइ । दया धर्म करि रहित होइ । दुष्ट होइ । किसी गुरुजनादिक के वश्य न होइ, असे लक्षण कृष्ण लेश्यावाले के हैं ।

मंदो बुद्धि-विहीणो णिव्विण्णाणी य विसय-लोलो य ।
माणी मायी य तहा, आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५१०॥[2]

मन्दो बुद्धिविहीनो, निर्विज्ञानी च विषयलोलश्च ।
मानी मायी च तथा, आलस्यः चैव भेद्यश्च ॥५१०॥

टीका – स्वछंद होइ अथवा क्रिया विषैं मंद होइ, वर्तमान कार्य कौं न जानैं; असा बुद्धिहीन होइ, विज्ञान चातुर्य करि हीन होइ, स्पर्शादिक विषयनि विषैं अतिलंपटी होइ, मानी होइ, मायावी, कुटिल होइ । क्रिया विषैं कुंठ होइ, जिसके अभिप्राय कौं और कोई न जानैं, आलसी होइ, यहु सर्व कृष्ण लेश्यावाले के लक्षण हैं ।

णिद्दा-वंचण-बहुलो, धण-धण्णे होदि तिव्व-सण्णा य ।
लक्खणमेयं भणियं, समासदो णील-लेस्सस्स ॥५११॥[3]

निद्रावञ्चनबहुलो, धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च ।
लक्षणमेतद्भणितं, समासतो नीललेश्यस्य ॥५११॥

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९०, गाथा सं. २०० ।
२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९०, गाथा सं. २०१ ।
३. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा संख्या २०२ ।

टीका – निद्रा जाके बहुत होइ, और को ठिगना जाके बहुत होइ, धन-धान्यादिक विषैं तीव्र वांछा जाके होइ, असा संक्षेप तैं नील लेश्यावाले का लक्षण है ।

रूसदि णिंददि अण्णे, दूसदि बहुसो य सोय-भय-बहुलो ।
असुयदि परिभवदि परं, पसंसदि य अप्पयं बहुसो ॥५१२॥[1]

रुष्यति निन्दति अन्यं, दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।
असूयति परिभवति परं, प्रशंसति आत्मानं बहुशः ॥५१२॥

टीका – पर के ऊपरि क्रोध करै, बहुत प्रकार और कौं निंदै, बहुत प्रकार और कौं दुखावै, शोक जाकै बहुत होइ, भय जाकै बहुत होइ, और कौं नीके देखि सकै नाहीं; और का अपमान करै, आपकी बहुत प्रकार बडाई करै ।

ण य पत्तियदि परं, सो अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो ।
तुसदि अभित्थुवंतो, ण य जाणदि हाणिवड्ढि वा ॥५१३॥[2]

न च प्रत्येति परं, स आत्मानमिव परमपि मन्यमानः ।
तुष्यति अभिष्टुवतो, न च जानाति हानिवृद्धी वा ॥५१३॥

टीका — आप सारिखा पापी - कपटी और कौं मानता संता और का विश्वास न करै, जो आपकी स्तुति करै, ताके ऊपरि बहुत संतुष्ट होइ, अपनी, अर पर की हानि वृद्धि कौं न जानैं ।

मरणं पत्थेदि रणे, देदि सुबहुगं हि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥५१४॥[3]

मरणं प्रार्थयते रणे, ददाति सुबहुकमपि स्तूयमानस्तु ।
न गणयति कार्याकार्यं, लक्षणमेतत्तु कपोतस्य ॥५१४॥

टीका – युद्ध विषैं मरण कौं चाहै, जो आपकी बडाई करै, ताकौं बहुत धन देइ, कार्य–अकार्य कौं गिणै नाहीं, असै लक्षण कपोत लेश्यावाले के हैं ।

---

१. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा सं. २०३ ।
२. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा सं. २०४ ।
३. षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा सं. २०५ ।

जाणदि कज्जाकज्जं, सेयमसेयं च सव्व-सम-पासी ।
दय-दाण-रदो य मिदू, लक्खणमेयं तु तेउस्स ।।५१५।।[1]

जानाति कार्याकार्यं, सेव्यमसेव्यं च सर्वसमदर्शी ।
दयादानरतश्च मृदुः, लक्षणमेतत्तु तेजसः ।।५१५।।

टीका – कार्य - अकार्य कौं जानै, सेवनेयोग्य न सेवनेयोग्य कौं जानैं, सर्व विषैं समदर्शी होइ, दया – दान विषैं प्रीतिवंत होइ; मन, वचन, काय विषैं कोमल होइ, अैसे लक्षण पीतलेश्यावाले के हैं ।

चागी भद्दो चोक्खो, उज्जव-कम्मो य खमदि बहुगं पि ।
साहु-गुरु-पूजण-रदो, लक्खणमेयं तु पम्मस्स ।।५१६।।[2]

त्यागी भद्रः सुकरः, उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि ।
साधुगुरुपूजनरतो, लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ।।५१६।।

टीका — त्यागी होइ, भद्र परिणामी होइ, सुकार्यरूप जाका स्वभाव होइ, शुभभाव विषैं उद्यमी रूप जाके कर्म होइ, कष्ट वा अनिष्ट उपद्रव तिनकौं सहै, मुनि जन अर गुरुजन तिनकी पूजा विषैं प्रीतिवंत होइ, अैसैं लक्षण पद्मलेश्यावाले के हैं ।

ण य कुणदि पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं ।
णत्थि य राय-द्दोसा णेहो वि य सुक्क-लेस्सस्स ।।५१७।।[3]

न च करोति पक्षपातं, नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोऽपि च शुक्ललेश्यस्य ।।५१७।।

टीका — पक्षपात न करै, निदा न करै, सर्व जीवनि विषैं समान होइ, इष्ट अनिष्ट विषैं राग – द्वेष रहित होइ, पुत्र कलत्रादिक विषैं स्नेह रहित होइ; अैसे लक्षण शुक्ल लेश्यावाले के हैं । इति लक्षणाधिकार ।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९१, गाथा सं. २०६ ।
२. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९२, गाथा सं. २०७ ।
३. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९२, गाथा सं. २०८ ।

आगें गति अधिकार ग्यारह सूत्रनि करि कहैं है –

लेस्साणं खलु अंसा, छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा, अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥५१८॥[1]

लेश्यानां खलु अंशाः, षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुर्बंधनयोग्याः, अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ॥५१८॥

टीका – लेश्यानि के छब्बीस अंश हैं । तहां छहौं लेश्यानि के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद करि अठारह अंश हैं । बहुरि कपोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश तैं आगें अर तेजो लेश्या के उत्कृष्ट अंश तैं पहिलैं कषायनि का उदय स्थानकनि विषें आठ मध्यम अंश हैं, ऐसैं छब्बीस अंश भए । तहां आयुकर्म के बंध कौं योग्य आठ मध्यम अंश जानने । तिनिका स्वरूप आगें स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार विषैं भी कहेंगे । ते आठ मध्यम अंश, अपकर्ष काल आठ, तिनि विषैं संभवै है । वर्तमान जो भुज्यमान आयु, ताकौं अपकर्ष, अपकर्ष कहिए । घटाइ घटाइ आगामी पर भव की आयु कौं बांधै; सो अपकर्ष कहिए ।

अपकर्षनि का स्वरूप दिखाइए हैं – तहां उदाहरण कहिए हैं – किसी कर्म भूमिया मनुष्य वा तिर्यंच की भुज्यमान आयु पैंसठि सै इकसठि (६५६१) वर्ष की है । तहां तिस आयु का दोय भाग गएं, इकईस सै सित्तासी वर्ष रहै । तहां तीसरा भाग कौं लागते ही प्रथम समय स्यौं लगाइ अंतर्मुहूर्त पर्यंत कालमात्र प्रथम अपकर्ष है । तहां परभव संबंधी आयु का बंध होइ । बहुरि जो तहां न बंधै तौ, तिस तीसरा भाग का दोय भाग गएं, सात सै गुणतीस वर्ष आयु के अवशेष रहै, तहां अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत दूसरा अपकर्ष, तहां परभव की आयु बांधै । बहुरि तहां भी न बंधै तौ तिसका भी दोय भाग गएं दोय सै तियालीस वर्ष आयु के अवशेष रहैं, अंतर्मुहूर्त काल मात्र तीसरा अपकर्ष विषैं परभव का आयु बांधै । बहुरि तहां भी न बंधै तौ, तिसका भी दोय भाग गएं इक्यासी वर्ष रहैं, अंतर्मुहूर्त पर्यंत चौथा अपकर्ष विषैं पर भव का आयु बांधै । ऐसैं ही दोय दोय भाग गएं, सत्ताईस वर्ष रहैं वा नव वर्ष रहैं वा तीन वर्ष रहैं वा एक वर्ष रहैं अंतर्मुहूर्तमात्र काल पर्यंत पांचवां वा छठा वा सातवां वा

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३९२, गाथा सं. २०६ ।

आठवां अपकर्ष विषें पर भव की आयु कौं बंधने कौं योग्यपना जानना । असें ही जो भुज्यमान आयु का प्रमाण होय, ताके त्रिभाग त्रिभाग विषें आठ अपकर्ष जानने ।

बहुरि जो आठौ अपकर्षनि विषें आयु न बंधे अर नवमां आदि अपकर्ष है नाहीं, तौ आयु का बंध कैसें होइ ?

सो कहै हैं – **असंक्षेपाद्धा** जो आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण काल भुज्यमान आयु का अवशेष रहै ताके पहिले अंतर्मुहूर्त काल मात्र समय प्रबद्धनि करि परभव की आयु कौं बांधि पूर्ण करै है, असा नियम है । इहां विशेष निर्णय कीजिए है – विषादिक का निमित्तरूप कदलीघात करि जिनका मरण होइ, ते सोपक्रमायुष्क कहिए । तातैं देव, नारकी, भोगभूमियां अनुपक्रमायुष्क हैं । सो सोपक्रमायुष्क हैं, ते पूर्वोक्त रीति करि पर भव का आयु कौं बांधै हैं । तहां पूर्वोक्त आठ अपकर्षनि विषें आयु के बंध होने कौं योग्य जो परिणाम तिनकरि केई जीव आठ बार, केई जीव सात बार, केई छह बार, केई पांच बार, केई च्यारि बार, केई तीन बार, केई दो बार, केई एक बार परिणमैं हैं ।

आयु के बंध योग्य परिणाम अपकर्षणनि विषें ही होइ, सो असा कोई स्व-भाव सहज ही है । अन्य कोई कारण नाहीं ।

तहां तीसरा भाग का प्रथम समय विषें जिन जीवनि करि परभव के आयु का बंध प्रारंभ किया, ते अंतर्मुहूर्त ही विषें निष्ठापन करैं । अथवा दूसरी बार आयु का नवमां भाग अवशेष रहैं, तहां तिस बंध होने कौं योग्य होइ । अथवा तीसरी बार आयु का सत्ताईसवां भाग अवशेष रहै, तहां तिस बंध होने कौं योग्य होइ, असें आठवां अपकर्ष पर्यंत जानना । असा किछू नियम है नाहीं – जो इनि अपकर्षनि विषें आयु का बंध होइ ही होइ । इनि विषें आयु के बंध होने कौं योग्य होइ । जो बंध होइ तौ होइ न होइ तौ न होइ । असें आयु के बंध का विधान कह्या ।

जैसें अन्यकाल विषें समय समय प्रति समयप्रबद्ध बंधै हैं, सो आयुकर्म बिना सात कर्मरूप होइ परिणमैं है । तैसें आयुकर्म का बंध जेता काल में होइ, तितने काल विषें जे समय समय प्रति समयप्रबद्ध बंधै ते आठों ही कर्मरूप होइ परिणमैं हैं असैं जानना ।

बहुरि जिस समय विषैं पहिलें ही जिसका बंध होइ, तहां तिसका प्रारंभ कहिए । बहुरि समय समय प्रति तिस प्रकृति का बंध हूवा करै, तहां बंध होइ निवरै, तहां निष्ठापक कहिए ।

बहुरि देव नारकीनि कै छह महीना आयु का अवशेष रहै, तब आयु के बंध करने कौ योग्य होइ, पहिलें न होइ । तहां छह महीना ही विषैं त्रिभाग त्रिभाग करि आठ अपकर्ष हो हैं, तिन विषैं आयु के बंध करने योग्य हो है ।

बहुरि एक समय अधिक कोटि पूर्व वर्ष तैं लगाइ तीन पल्य पर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयु के धारी भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य, ते भी निरुपक्रमायुष्क हैं । इन कैं आयु का नव मास अवशेष रहैं आठ अपकर्षनि करि पर भव के आयु का बंध होने का योग्यपना हो है । बहुरि इतना जानना – जिस गति संबंधी आयु का बंध प्रथम अपकर्ष विषैं होइ पीछैं जो दुतियादि अपकर्षनि विषैं आयु का बंध होइ, तौ तिस ही गति संबंधी आयु का बंध होइ । बहुरि जो प्रथम अपकर्ष विषैं आयु का बंध न होइ, तौ अर दूसरे अपकर्ष विषैं जिस किसी आयु का बंध होइ तौ तृतीयादि अपकर्षनि विषैं आयु का जो बंध होइ, तौ तिस ही गति सम्बन्धी आयु का बन्ध होइ, असैं ही आगें जानना । असैं केई एक जीवनि के तौ आयु का बंध एक अपकर्ष ही विषैं होइ, केई जीवनि के दोय अपकर्षनि करि होइ, केई जीवनि कैं तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनि करि हो है ।

तहां आठ अपकर्षनि करि परभव की आयु के बन्ध करनहारे जीव स्तोक हैं । तिनतैं संख्यात गुणे सात अपकर्षनि करि बन्ध करने वाले हैं । तिनतैं संख्यात गुणे छह अपकर्षनि करि बन्ध करने वाले हैं । असैं संख्यात गुणे संख्यात गुणे पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक अपकर्षनि करि बंध करने वाले जीव जानने ।

बहुरि आठ अपकर्षनि करि आयु कौं बांधता जीव, तिसकैं आठवां अपकर्ष विषैं आयु बंधने का जघन्य काल स्तोक है । तिसतैं विशेष अधिक ताका उत्कृष्ट काल है । बहुरि आठ अपकर्षनि करि आयु कौं बांधता जीव कैं सातवां अपकर्ष विषैं जघन्य काल तिसतैं संख्यात गुणा है, उत्कृष्ट तिसतैं विशेष अधिक है । बहुरि सात अपकर्षनि करि आयु कौं बांधता जीव कैं सातवां अपकर्ष विषैं आयु बंधने का जघन्य काल तिसतैं संख्यात गुणा है, उत्कृष्ट तिसतैं विशेष अधिक है । बहुरि आठ अपकर्षनि करि आयु बांधता जीव के छठा अपकर्ष विषैं आयु बंधने का जघन्य काल तिसतैं

आठ अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना																							
०	जघन्य	उत्कृष्ट	सात अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना																				
८	८	८	०	जघन्य	उत्कृष्ट	छह अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना																	
८	७	७	७	७	७	०	जघन्य	उत्कृष्ट	पांच अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना														
८	६	६	७	६	६	६	६	६	०	जघन्य	उत्कृष्ट	च्यारि अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना											
८	५	५	७	५	५	६	५	५	५	५	५	०	जघन्य	उत्कृष्ट	तीन अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना								
८	४	४	७	४	४	६	४	४	५	४	४	४	४	४	०	जघन्य	उत्कृष्ट	दोय अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना					
८	३	३	७	३	३	६	३	३	५	३	३	४	३	३	३	३	३	०	जघन्य	उत्कृष्ट	एक अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना		
८	२	२	७	२	२	६	२	२	५	२	२	४	२	२	३	२	२	२	२	२	०	जघन्य	उत्कृष्ट
८	१	१	७	१	१	६	१	१	५	१	१	४	१	१	३	१	१	२	१	१	१	१	१

संख्यात गुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है। बहुरि सात अपकर्षनि करि आयु कौं बांधता जीव कै छठा अपकर्ष विषै आयु का बंधने का जघन्य काल तिसतैं संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है। बहुरि छह अपकर्षनि करि आयु कौं बांधता जीव कै छठा अपकर्ष विषै आयु बंधने का जघन्य काल तिसतैं संख्यातगुणा है; उत्कृष्ट किछू अधिक है। असैं एक अपकर्ष करि आयु कौं बांधता जीव कैं तीहिं अपकर्ष के उत्कृष्ट काल पर्यंत बहत्तरि (७२) भेद हो हैं। तहां जघन्य तैं उत्कृष्ट तो अधिक जानना। सो तिस विवक्षित जघन्य कौं संख्यात का भाग दीएं, जो पावै, सो विशेष का प्रमाण जानना। ताकौं जघन्य में जोडैं उत्कृष्ट का प्रमाण हो है। बहुरि उत्कृष्ट तैं आगला जघन्य, संख्यात गुणां जानना। असैं यद्यपि सामान्यपनैं सबनि विषैं काल अंतर्मुहूर्त मात्र है। तथापि हीनाधिकपना जानने कौं अनुक्रम कह्या है, जो अपकर्षनि विषैं आयु का बंध होइ, तौ इतने इतने काल मात्र समयप्रबद्धनि करि बंध हो है।

यह बहत्तरी भेदनि की रचना है। तहां आठ अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना विषैं पहिली पंक्ति के कोठानि विषैं जो आठ - आठ का अंक है, ताका तौ यह अर्थ जानना – जो आठ अपकर्षनि करि आयु बांधने वाले का इहां ग्रहण है। बहुरि दूसरी, तीसरी पंक्तिनि विषैं आठ, सात आदि अंक है, तिनिका यह अर्थ – जो तिनि आठ अपकर्षनि करि बंध करने वाले जीव के आठवां, सातवां आदि अपकर्षनि का ग्रहण है। तहां दूसरी पंक्ति विषैं जघन्य काल अपेक्षा ग्रहण जानना। तीसरी पंक्ति विषैं उत्कृष्ट काल अपेक्षा ग्रहण जानना। असैं ही सात, छह, पांच, च्यारि, तीन, दोय, एक अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना विषैं अर्थ जानना। आठौं रचनानि की दूसरी, तीसरी पंक्तिनि के सर्व कोठे बहत्तरि हो है। इनि बहत्तरि स्थाननि विषैं आयु बंधने के काल का अल्प – बहुत्व जानना। मध्य भेदनि के ग्रहण निमित्त जघन्य उत्कृष्ट के बीचि बिंदी की सहनानी जाननी।

असैं आयु कौं बंधने के योग्य लेश्यानि का मध्यम आठ अंश, तिनकी आठ अपकर्षनि करि उत्पत्ति का अनुक्रम कह्या।

सेसट्ठारसअंसा, चउगइ-गमणस्स कारणा होंति।
सुक्कुक्कस्संसमुदा, सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥५१६॥

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवन्ति।
शुक्लोत्कृष्टांशमृताः, सर्वार्थं यान्ति खलु जीवाः ॥५१६॥

टीका – तिन मध्यम अंशनि तैं अवशेष रहैं, जे लेश्यानि के अठारह अंश, ते च्यारि गति विषैं गमन कौं कारण हैं। मरण इनि अठारह अंशनि करि सहित होइ, सो मरण करि यथायोग्य गति कौं जीव प्राप्त हो है। तहां शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि सहित मरैं, ते जीव सर्वार्थसिद्धि नामा इंद्र के विमान कौं प्राप्त हो हैं।

अवरंसमुदा होंति, सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।
आणदकप्पादुवरिं, सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥५२०॥

अवरांशमृता भवन्ति, शतारद्विके मध्यमांशकेन मृताः ।
आनतकल्पादुपरि, सर्वार्थादिमे भवन्ति ॥५२०॥

टीका– शुक्ल लेश्या का जघन्य अंश करि मरैं, ते जीव शतार –सहस्रार स्वर्ग विषैं उपजैं हैं। बहुरि शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव आनत स्वर्ग के ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रक का विजयादिक विमान पर्यंत यथासंभव उपजैं हैं।

पम्मुक्कस्संसमुदा, जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।
अवरंसमुदा जीवा, सणक्कुमारं च माहिंदं ॥५२१॥

पद्मोत्कृष्टांशमृता, जीवा उपयान्ति खलु सहस्रारम् ।
अवरांशमृता जीवाः, सनत्कुमारं च माहेन्द्रम् ॥५२१॥

टीका – पद्म लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरैं, जे जीव सहस्रार स्वर्ग कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि पद्म लेश्या का जघन्य अंश करि मरैं, ते जीव सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्ग कौं प्राप्त हो हैं।

मज्झिमअंसेण मुदा, तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा ।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥५२२॥

मध्यमांशेन मृताः, तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः ।
सानत्कुमारमाहेंन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रश्रेण्याम् ॥५२२॥

टीका — पद्म लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव सहस्रार स्वर्ग के नीचें अर सनत्कुमार – माहेन्द्र के ऊपरि यथासंभव उपजैं हैं। बहुरि तेजो लेश्या का

उत्कृष्ट अंश करि मरैं, ते सनत्कुमार – माहेन्द्र स्वर्ग का अंत का पटल विषैं चक्र नामा इंद्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमान, तिनि विषैं उपजैं हैं ।

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।
मज्झिमअंसेण मुदा, विमलविमाणादिबलभद्दे ॥५२३॥

अवरांशमृताः सौधर्मेशानादिमर्तौ श्रेण्याम् ।
मध्यमांशेन मृता, विमलविमानादिबलभद्रे ॥५२३॥

टीका – तेजो लेश्या का जघन्य अंश करि मरैं, ते जीव सौधर्म ईशान का पहिला रितु (जु) नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमान, तिनिविषैं उपजैं हैं । बहुरि तेजो लेश्या का मध्यम अंश करि मरैं, ते जीव सौधर्म – ईशान का दूसरा पटल का विमल नामा इंद्रक तैं लगाइ सनत्कुमार – माहेन्द्र का द्विचरम पटल का बलभद्र नामा इंद्रक पर्यंत विमान विषैं उपजैं हैं ।

किण्हवरंसेण मुदा, अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से, मज्झे मज्झेण जायन्ते ॥५२४॥

कृष्णवरांशेन मृता, अवधिस्थाने अवरांशमृताः ।
पञ्चमचरमतिमिस्रे, मध्ये मध्येन जायन्ते ॥५२४॥

टीका – कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरैं, ते जीव सातवीं नरक पृथ्वी का एक ही पटल है, ताका अवधि स्थानक नामा इंद्रक बिल विषैं उपजैं हैं । बहुरि कृष्ण लेश्या का जघन्य अंश करि मरैं, ते जीव पंचम पृथ्वी का अंत पटल का तिमिस्र नामा इंद्रक विषैं उपजैं हैं । बहुरि कृष्ण लेश्या का मध्यम अंश करि मरैं, ते जीव अवधिस्थान इंद्रक का च्यारि श्रेणीबद्ध बिल तिनि विषैं वा छठा पृथ्वी का तीनौं पटलनि विषैं वा पांचवी पृथ्वी का चरम पटल विषैं यथायोग्य उपजैं हैं ।

नीलुक्कस्संसमुदा, पंचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे, मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२५॥

नीलोत्कृष्टांशमृताः, पञ्चमांधेन्द्रके अवरमृताः ।
वालुकासंप्रज्वलिते, मध्ये मध्येन जायन्ते ॥५२५॥

टीका – नील लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरै, ते जीव पंचम पृथ्वी का द्विचरम पटल का अंध्र नामा इंद्रक विषैं उपजै हैं । केई पांचवां पटल विषैं भी उपजै हैं । अरिष्ट पृथ्वी का अंत का पटल विषैं कृष्ण लेश्या का जघन्य अंश करि मरे हुए भी केई जीव उपजैं हैं, इतना विशेष जानना । बहुरि नील लेश्या का जघन्य अंश करि मरैं, ते जीव वालुका पृथ्वी का अंत का पटल विषैं संप्रज्वलित नामा इंद्रक विषैं उपजैं हैं । बहुरि नील लेश्या का मध्यम अंश करि मरै, ते जीव वालुका प्रभा पृथ्वी के संप्रज्वलित इंद्रक तैं नीचैं अर चौथी पृथ्वी का सातौं पटल अर पंचमी पृथ्वी का अंध्र इंद्रक के ऊपरि यथायोग्य उपजैं हैं ।

वर-काओदंसमुदा, संजलिदं जांति तदिय-णिरयस्स ।
सीमंतं अवरमुदा, मज्झे मज्झेण जायंते ।।५२६।।

वरकापोतांशमृताः, संज्वलितं यान्ति तृतीयनिरयस्य ।
सीमन्तमवरमृता, मध्ये मध्येन जायन्ते ।।५२६।।

टीका – कापोत लेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरै, ते जीव तीसरी पृथ्वी का आठवां द्विचरम पटल ताके संज्वलित नामा इंद्रक विषै उपजैं हैं । केई अंत का पटल संबंधी संप्रज्वलित नामा इंद्रक विषैं भी उपजैं है । इतना विशेष जानना । बहुरि कापोत लेश्या का जघन्य अंश करि मरैं, ते जीव पहिली धर्मा पृथ्वी का पहिला सीमंतक नामा इंद्रक, तिस विषैं उपजैं हैं । बहुरि कापोत लेश्या का मध्यम अंश करि मरैं, ते जीव पहिला पृथ्वी का सीमंत इंद्रक तैं नीचैं बारह पटलनि विषैं, बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वी का द्विचरम संज्वलित इंद्रक तैं ऊपरि सात पटलनि विषैं, बहुरि दूसरी पृथ्वी का ग्यारह पटल, तिन विषैं यथायोग्य उपजैं हैं ।

किण्ह-चउक्काणं पुण, मज्झंस-मुदा हु भवणगादि-तिये ।
पुढवी-आउ-वणप्फदि-जीवेसु हवंति खलु जीवा ।।५२७।।

कृष्णचतुष्काणां पुनः, मध्यांशमृता हि भवनकादित्रये ।
पृथिव्यब्वनस्पतिजीवेषु भवन्ति खलु जीवाः ।।५२७।।

टीका — पुनः कहिये यहु विशेष है – कृष्ण - नील - कपोत नील लेश्या, तिनके मध्यम अंश करि मरें असें कर्म भूमियां मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य अर

तेजो लेश्या का मध्यम अंश करि मरें, असे भोगभूमिया मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य ते भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवनि विषें उपजें हैं। बहुरि कृष्ण - नील - कपोत - पीत इन च्यारि लेश्यानि के मध्यम अंशनि करि मरें, असे तिर्यंच वा मनुष्य भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी वा सौधर्म – ईशान स्वर्ग के वासी देव, मिथ्यादृष्टी, ते बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक, अप्कायिक वनस्पती कायिक विषें उपजें हैं। भवनत्रयादिक की अपेक्षा इहां पीत लेश्या जाननी। तिर्यंच मनुष्य अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्या जाननी।

किण्ह-तियाणं मज्झिम-अंस-मुदा तेउ-वाउ-वियलेसु।
सुर-णिरया सग-लेस्सहिं, णर-तिरियं जांति सग-जोग्गं ॥५२८॥

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृताः तेजोवायुविकलेषु।
सुरनिरयाः स्वकलेश्याभिः नरतिर्यञ्चं यान्ति स्वकयोग्यम् ॥५२८॥

टीका – कृष्ण, नील, कपोत के मध्यम अंश करि मरें, असे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजःकायिक वा वातकायिक विकलत्रय असंज्ञी पंचेंद्री साधारण वनस्पती, इनिविषें उपजें हैं। बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत देव अर धम्मादि सात पृथ्वी संबंधी नारकी ते अपनी-अपनी लेश्या के अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगति कौं प्राप्त हो हैं। इहां इतना जानना – जिस गति संबंधी पूर्व आयु बंध्या होइ, तिस ही गति विषें जो मरण होतें जो लेश्या होइ, ताके अनुसारि उपजें है। जैसें मनुष्य के पूर्वं देवायु का बंध भया, बहुरि मरण होते कृष्णादि अशुभ लेश्या होइ तौ भवनत्रिक विषैं ही उपजै है; असैं ही अन्यत्र जानना। इति गत्यधिकारः।

आगें स्वामी अधिकार सात गाथानि करि कहै हैं–

काऊ काऊ काऊ, णीला णीला य णील-किण्हा य।
किण्हा य परमकिण्हा, लेस्सा पढमादि पुढवीणं ॥५२९॥

कपोता कपोता कपोता, नीला नीला च नीलकृष्णे च।
कृष्णा च परमकृष्णा, लेश्या प्रथमादिपृथिवीनाम् ॥५२९॥

टीका — इहां भावलेश्या की अपेक्षा कथन है। तहां नारकी जीवनि के कहिए हैं – तहां धम्मा नामा पहिली पृथ्वी विषें कपोत लेश्या का जघन्य अंश है। वंशा दूसरी पृथ्वी विषें कपोत का मध्यम अंश है। मेघा तीसरी पृथ्वी विषें कपोत

का उत्कृष्ट अंश अर नील का जघन्य अंश है । अंजना चौथी पृथ्वी विषैं नील का मध्यम अंश है । अरिष्टा पांचवी पृथ्वी विषैं नील का उत्कृष्ट अंश है, अर कृष्ण का जघन्य अंश है । मघवी पृथ्वी विषैं कृष्ण का मध्यम अंश है । माघवी सातवीं पृथ्वी विषैं कृष्ण का उत्कृष्ट अंश है ।

णर-तिरियाणं ओघो, इगि-विगले तिण्णि चउ असण्णिस्स ।
सण्णि-अपुण्णग-मिच्छे, सासणसम्मे वि असुह-तियं ।।५३०।।

नरतिरश्चामोघः एकविकले तिस्रः चतस्र असंज्ञिनः ।
संज्ञ्यपूर्णकमिथ्यात्वे सासादनसम्यक्त्वेऽपि अशुभत्रिकम् ।।५३०।।

टीका — मनुष्य अर तिर्यंचनि के 'ओघ' कहिए सामान्यपनैं कहीं ते सर्व छहों लेश्या पाइए हैं । तहां एकेंद्री अर विकलत्रय इनकैं कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या हि पाइए हैं । बहुरि असैनी पचेंद्री पर्याप्तक कैं कृष्णादि च्यारि लेश्या पाइए हैं, जातैं असैनी पंचेंद्री कपोत लेश्या सहित मरैं, तौ पहिले नरक उपजें । तेजो लेश्या सहित मरैं, तौ भवनवासी अर व्यंतर देवनि विषैं उपजै । कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या सहित मरैं, तौ यथायोग्य मनुष्य तिर्यंच विषैं उपजैं, तातैं ताके च्यारि लेश्या हैं । बहुरि सैंनी लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य मिथ्यादृष्टी बहुरि अपि शब्द तैं असैंनी लब्धि पर्याप्तक तिर्यंच – मनुष्य मिथ्यादृष्टी, बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृति अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य वा भवनत्रिक देव इनिविषैं कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही हैं । तिर्यंच अर मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टी होइ, ताके अति संक्लेश परिणाम होंइ, तौ भी देशसंयमीवत् कृष्णादिक तीन लेश्या न होंइ । तथापि जो उपशम सम्यक्त्व की विराधना करि सासादन होइ, ताकैं अपर्याप्त अवस्था विषैं तीन अशुभ लेश्या ही पाइए हैं ।

भोगापुण्णगसम्मे, काउस्स जहण्णियं हवे णियमा ।
सम्मे वा मिच्छे वा, पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ।।५३१।।

भोगाऽपूर्णकसम्यक्त्वे, कापोतस्य जघन्यकं भवेन्नियमात् ।
सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे वा, पर्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः ।।५३१।।

टीका — भोग भूमि विषैं निर्वृति अपर्याप्तक सम्यग्दृष्टी जीव विषैं कपोत लेश्या का जघन्य अंश पाइए है । जातैं कर्मभूमिया मनुष्य वा तिर्यंच पहिलें मनुष्य

वा तिर्यंच आयु का बंध कीया, पीछें क्षायिक वा वेदक सम्यक्त्व कौं अंगीकार करि मरें, तिस सहित ही तहां भोगभूमि विषें उपजै । तहां तिस योग्य संक्लेश परिणाम कपोत का जघन्य अंश, तिसरूप परिणमै है । बहुरि भोगभूमि विषें पर्याप्त अवस्था विषें सम्यग्दृष्टी वा मिथ्यादृष्टी जीव के पीतादिक तीन शुभलेश्या ही पाइए हैं ।

अयदो त्ति छ लेस्साओ, सुह-तिय-लेस्सा हु देसविरद-तिये ।
तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु ।।५३२।।

असंयत इति षड् लेश्याः, शुभत्रयलेश्या हि देशविरतत्रये ।
ततः शुक्ला लेश्या, अयोगिस्थानमलेश्यं तु ।।५३२।।

टीका – असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषें छहौं लेश्या हैं । देशविरत आदि तीन गुणस्थाननि विषें पीतादिक तीन शुभलेश्या ही हैं । तातैं ऊपरि अपूर्वकरण तैं लगाइ सयोगी पर्यंत छह गुणस्थाननि विषें एक शुक्ल लेश्या ही है । अयोगी गुणस्थान लेश्या रहित है जातैं, तहां योग कषाय का अभाव है ।

णट्ठ-कसाये लेस्सा, उच्चदि सा भूद-पुव्व-गदि-णाया ।
अहवा जोग-पउत्ती, मुक्खो त्ति तहिं हवे लेस्सा ।।५३३।।

नष्टकषाये लेश्या, उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात् ।
अथवा योगप्रवृत्तिः, मुख्येति तत्र भवेल्लेश्या ।।५३३।।

टीका – उपशांत कषायादिक जहां कषाय नष्ट होइ गए, ऐसे तीन गुणस्थाननि विषें कषाय का अभाव होतें भी लेश्या कहिए हैं, सो भूतपूर्वगति न्याय तैं कहिए हैं । पूर्वें योगनि की प्रवृत्ति कषाय सहित होती थी, तहां लेश्या का सद्भाव था, इहां योग पाइए है; तातैं उपचार करि इहां भी लेश्या का सद्भाव कह्या । अथवा योगनि की प्रवृत्ति, सोई लेश्या; ऐसा भी कथन है, सो योग इहां है ही, ताकी प्रधानता करि तहां लेश्या है ।

तिण्हं दोण्हं दोण्हं, छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एत्तो य चोद्दसण्हं, लेस्सा भवणादि-देवाणं ।।५३४।।

तेऊ तेऊ तेऊ, पम्मा पम्मा य पम्म-सुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का, भवणतिया पुण्णगे असुहा ।।५३५।।

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः, षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।
एतस्माच्च चतुर्दशानां, लेश्या भवनादिदेवानाम् ।।५३४।।

तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मशुक्ले च ।
शुक्ला च परमशुक्ला, भवनत्रिकाः अपूर्णके अशुभाः ।।५३५।।

टीका – देवनि के लेश्या कहिए हैं – तहां पर्याप्त भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी इनि भवनत्रिक कैं तेजो लेश्या का जघन्य अंश है । सौधर्म – ईशान, दोय स्वर्गवालों कैं तेजो लेश्या का मध्यम अंश है । सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्गवालों कैं तेजो लेश्या का उत्कृष्ट अंश अर पद्म लेश्या का जघन्य अंश है । ब्रह्म आदि छह स्वर्गवालों कैं पद्म लेश्या का मध्यम अंश है । शतार - सहस्रार दोय स्वर्गवालों कैं पद्म लेश्या का उत्कृष्ट अंश अर शुक्ल लेश्या का जघन्य अंश है । आनत आदि च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयक इनि तेरह वालों कैं शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश है । ताके ऊपरि नव अनुदिश अर पंच अनुत्तर इनि चौदह विमान वालों कैं शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अंश है । बहुरि भवनत्रिक देवनि कैं अपर्याप्त अवस्था विषैं कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या ही पाइए हैं । याही तैं यहु जानिए है, जो वैमानिक देवनि कैं पर्याप्त वा अपर्याप्त अवस्था विषैं लेश्या समान ही है । ऐसें जिस जीव कैं जो लेश्या पाइए, सो जीव तिस लेश्या का स्वामी जानना । इति स्वाम्यधिकारः ।

आगैं साधन अधिकार कहै हैं–

वण्णोदय-संपादिद-सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
मोहुदय-खओवसमोवसम खयज-जीवफंदणं भावो ।।५३६।।

वर्णोदयसंपादित-शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।
मोहोदयक्षयोपशमोपशमक्षयजजीवस्पन्दो भावः ।।५३६।।

टीका – वर्ण नामा नामकर्म के उदय तें उत्पन्न भया जो शरीर का वर्ण, सो द्रव्य लेश्या है । तातें द्रव्य लेश्या का साधन नामा नामकर्म का उदय है । बहुरि असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषैं मोहनीय कर्म का उदय तैं, देश विरतादिक तीन गुणस्थाननि विषैं मोहनीय कर्म का क्षयोपशम तैं उपशम श्रेणी विषैं मोहनीय कर्म का उपशम तैं क्षपक श्रेणी विषैं मोहनीय कर्म का क्षय तैं उत्पन्न भया जो जीव का स्पंद, सो भाव लेश्या है । स्पंद कहिए जीव के परिणामनि का चंचल होना वा

जीव के प्रदेशनि का चंचल होना, सो भाव लेश्या है। तहां परिणाम का चंचल होना कषाय है। प्रदेशनि का चंचल होना योग है। तीहि कारण करि योग कषायनि करि भाव लेश्या कहिए है। तातें भाव लेश्या का साधन मोहनीय कर्म का उदय वा क्षयोपशम वा उपशम वा क्षय जानना। इति साधनाधिकारः।

आगें संख्याधिकार छह गाथानि करि कहैं हैं—

किण्हादि-रासिमावलि-असंखभागेण भजिय पविभत्ते।
हीणकमा कालं वा, अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥५३७॥

कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते।
हीनक्रमाः कालं वा, आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ॥५३७॥

टीका – कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण है, सो तीन शुभ लेश्यावालों का प्रमाण कौं संसारी जीवनि का प्रमाण मैं स्यों घटाए, जितना रहै तितना जानना; सो किंचिदून संसारी राशिमात्र भया। ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग रहे, तिनके तीन भाग करिए, सो एक-एक भाग एक-एक लेश्यावालों का समान रूप जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, तहां एक भाग जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहैं, सो पूर्वै समान भागनि विषें जो कृष्ण लेश्यावालों का बट (हिस्सा) था, तिसविषें जोडि दीए, जो प्रमाण होइ, तितने कृष्ण लेश्यावाले जीव जानने। बहुरि जो वह एक भाग रह्या था, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग देइ, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग रहै, ते पूर्वै समान भाग विषें नील लेश्यावालों का बट था, तिसविषें जोडि दीए, जो प्रमाण होइ, तितने नील लेश्यावाले जीव जानने। बहुरि जो वह एक भाग रह्या था, सो पूर्वै समान भाग विषें कपोत लेश्यावालों का बट था; तिसविषें जोडें, जो प्रमाण होइ, तितने कपोत लेश्यावाले जीव जानने। ऐसें कृष्णलेश्यादिक तीन लेश्यावालों का द्रव्य करि प्रमाण कह्या, सो क्रमतें किछू किछू घटता जानना।

अथवा काल अपेक्षा द्रव्य करि परिमाण कीजिए हैं। कृष्ण, नील, कपोत तीनों लेश्यानि का काल मिलाए, जो कोई अंतर्मुहूर्त मात्र होइ, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग

रहै, तिनिका तीन भाग कीजिए, तहां एक एक समान भाग एक एक लेश्या कौं दीजिए। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये, तहां एक भाग कौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे, सो पूर्वोक्त कृष्ण लेश्या का समान भाग विषैं मिलाइए, बहुरि अवशेष जो एक भाग रह्या, ताकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग कौं जुदा राखि, अवशेष बहुभाग पूर्वोक्त नीललेश्या का समान भाग विषैं मिलाइए। बहुरि जो एक भाग रह्या, सो पूर्वोक्त कपोत लेश्या का समान भाग विषैं मिलाइए, ऐसैं मिलाए, जो जो प्रमाण भया, सो सो कृष्णादि लेश्यानि का काल जानना।

अब इहां त्रैराशिक करना। तहां तीनू लेश्यानि का काल जोड़ें, जो प्रमाण भया, सो तौ प्रमाणराशि, बहुरि अशुभ लेश्यावाले जीवनि का जो किंचित् ऊन संसारी जीव मात्र प्रमाण सो फलराशि। बहुरि कृष्णलेश्या का काल का जो प्रमाण सोई इच्छाराशि, तहां फल करि इच्छा कौं गुणैं, प्रमाण का भाग दीए, लब्धराशि किंचित् ऊन तीन का भाग अशुभ लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कौं दीए, जो प्रमाण भया, तितने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने। ऐसैं ही प्रमाणराशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छा-राशि अपना - अपना काल करि नील वा कपोत लेश्या विषैं भी जीवनि का प्रमाण जानना। ऐसैं काल अपेक्षा द्रव्य करि अशुभलेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कह्या है।

खेत्तादो असुहतिया, अणंतलोगा कमेण परिहीणा।
कालादोतीदादो, अणंतगुणिदा कमा हीणा ।।५३८।।

क्षेत्रतः अशुभत्रिका, अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः।
कालादतीतादनंतगुणिताः क्रमाद्धीनाः ।।५३८।।

टीका — क्षेत्र प्रमाण करि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव अनंत लोक मात्र जानने। लोकाकाश के प्रदेशनि तें अनंत गुणे हैं; तहां क्रमतें हीनक्रम जानने। कृष्णलेश्यावालों तें किछू घाटि नील लेश्यावालों का प्रमाण है। नील लेश्यावालों तें किछू घाटि कपोत लेश्यावालों का प्रमाण है। बहुरि इहां प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अपने - अपने जीवनि का प्रमाण कीएं, लब्धि-राशिमात्र अनंत शलाका भई। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक लोक, इच्छा अनंत शलाका कीएं, लब्धराशि अनंत लोक मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का

प्रमाण हो है । बहुरि काल प्रमाण करि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, अतीत काल के समयनिका प्रमाण तैं अनंत गुणे हैं । इहां भी पूर्वोक्त हीन क्रम जानना । बहुरि इहां प्रमाणराशि अतीत काल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अपने - अपने जीवनि का प्रमाण कीए, लब्धराशिमात्र अनंत शलाका भई । बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक अतीत काल, इच्छा अनंत शलाका करि, लब्ध राशि अनंत अतीत कालमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण हो है ।

केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्ह-तिय-जीवा ।
तेउतिया-संखेज्जा, संखासंखेज्जभागकमा ॥५३९॥

केवलज्ञानानंतिमभागा भावात्तु कृष्णत्रिकजीवाः ।
तेजस्त्रिका असंख्येयाः संख्यासंख्येयभागक्रमाः ॥५३९॥

टीका – बहुरि भाव मान करि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण के अनंतवें भाग प्रमाण हैं । इहां भी पूर्ववत् हीन क्रम जानना । बहुरि इहां प्रमाण राशि अपने - अपने लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण, फल एक शलाका, इच्छा केवलज्ञान कीए, लब्ध राशिमात्र अनन्त प्रमाण भया, इसकौं प्रमाणराशि करि फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान कीए केवल-ज्ञान के अनन्तवें भाग मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण हो है । बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यावालों का प्रमाण असंख्यात है, तथापि तेजोलेश्यावालों के संख्यातवें भाग पद्मलेश्या वाले हैं, पद्मलेश्या वालों के असंख्यातवें भाग शुक्ल लेश्यावाले हैं । असैं द्रव्य करि शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कह्या ।

जोइसियादो अहिया, तिरक्खसण्णिस्स संखभागोदु ।
सूइस्स अंगुलस्स य, असंखभागं तु तेउतियं ॥५४०॥

ज्योतिष्कतोऽधिकाः, तिर्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु ।
सूचेरंगुलस्य च, असंख्यभागं तु तेजस्त्रिकम् ॥५४०॥

टीका – तेजो लेश्यावाले जीव ज्योतिष्क राशि तैं किछू अधिक हैं । कैसें ? सो कहिए हैं – पैसठि हजार पांचसै छत्तीस प्रतरांगुल का भाग, जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने तौ ज्योतिषी देव । बहुरि घनांगुल का प्रथम वर्गमूल करि

जगच्छ्रेणी कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने भवनवासी। बहुरि तीन सै योजन के वर्ग का भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने व्यंतर। बहुरि घनांगुल का तृतीय वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने सौधर्म - ईशान स्वर्ग के वासी देव। बहुरि पांच बार संख्यात करि गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने तेजो लेश्यावाले तिर्यंच। बहुरि संख्यात तेजोलेश्यावाले मनुष्य, इनि सबनि का जोड़ दीए, जो प्रमाण होइ, तितने जीव तेजोलेश्यावाले जानने। बहुरि पद्मलेश्यावाले जीव, तेजोलेश्यावाले जीवनि तैं संख्यात गुणे घाटि हैं। तथापि तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंचनि तैं भी संख्यात गुणे घाटि हैं; जातैं पद्मलेश्यावाले पंचेंद्री सैनी तिर्यंचनि का प्रमाण विषैं पद्मलेश्यावाले कल्पवासी देव अर मनुष्य, तिनिका प्रमाण मिलाए, जो जगत्प्रतर का असंख्यातवें भागमात्र प्रमाण भया तितने पद्मलेश्यावाले जीव हैं। बहुरि शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। ऐसैं क्षेत्र प्रमाण करि तीन शुभ लेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कह्या।

बेसदछप्पण्णंगुल-कदि-हिद-पदरं तु जोइसियमाणं।
तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ॥५४१॥

द्विशतषट्पंचाशदंगुलकृतिहितप्रतरं तु ज्योतिष्कमानम्।
तस्य च संख्येयतमं तिर्यक्संज्ञिनां परिमाणं ॥५४१॥

टीका – पूर्वैं जो तेजोलेश्यावालों का प्रमाण ज्योतिषी देवराशि तैं साधिक कह्या, अर पद्मलेश्या का प्रमाण संज्ञी तिर्यंचनि के संख्यातवें भागमात्र कह्या, सो दोय से छप्पन का वर्ग पणट्ठी, तीहि प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो प्रमाण होइ, तितने ज्योतिषी जानने। बहुरि इनिके संख्यातवें भाग प्रमाण सैनी तिर्यंचनि का प्रमाण जानना।

तेउदु असंखकप्पा, पल्लासंखेज्जभागया सुक्का।
ओहि असंखेज्जदिमा, तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

तेजोद्वया असंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागकाः शुक्लाः।
अवध्यसंख्येयाः तेजस्त्रिका भावतो भवंति ॥५४२॥

टीका – तेजोलेश्या, पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्प प्रमाण है। तथापि तेजोलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। कल्पकाल का प्रमाण जितने बीस कोड़ाकोड़ि सागर के समय होंहि, तितना जानना। बहुरि शुक्ललेश्यावाले पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। ऐसें काल प्रमाण करि तीन शुभलेश्यावाले जीवनि का प्रमाण कह्या। बहुरि अवधिज्ञान के जितने भेद हैं, तिनके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं। तथापि तेजोलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भाग मात्र शुक्ललेश्यावाले हैं। ऐसें भाव प्रमाण करि तेज, पद्म, शुक्ल लेश्यावालों का प्रमाण कह्या। इति संख्याधिकारः —

आगे क्षेत्राधिकार कहे हैं —

सट्ठाणसमुग्घादे,उववादे सव्वलोयमसुहाणं।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

स्वस्थानसमुद्घाते, उपपादे सर्वलोकमशुभानाम्।
लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रिके ॥५४३॥

टीका – विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान काल विषैं विवक्षित स्वस्थानादि विशेष लीएं जितनें आकाश विषैं पाइए, ताका नाम क्षेत्र है। सो कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यानि का क्षेत्र स्वस्थान विषैं वा समुद्घात विषैं वा उपपाद विषैं सर्वलोक है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यानि का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, ऐसें संक्षेप करि क्षेत्र कह्या।

बहुरि विशेष करि दश स्थानकनि विषैं कहिए हैं। तहां स्वस्थानकनि के तौ दोय भेद-एक स्वस्थानस्वस्थान, एक विहारवत् स्वस्थान। तहां विवक्षित लेश्यावाले जीव, जिस नरक, स्वर्ग, नगर, ग्रामादि क्षेत्र विषैं उपजे होंहि, सो तौ स्वस्थानस्वस्थान है। बहुरि विवक्षित लेश्यावाले जीवनि कौं विहार करने के योग्य जो क्षेत्र होइ, सो विहारवत्स्वस्थान है।

बहुरि अपने शरीर तैं केते इक आत्मप्रदेशनि का बाह्य निकसि यथायोग्य फैलना, सो समुद्घात कहिए। ताके सात भेद – वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, आहारक, केवल।

तहां जो बहुत पीडा के निमित्त तैं प्रदेशनि का निकसना, सो वेदना समुद्घात है। बहुरि क्रोधादि कषाय के निमित्त तैं प्रदेशनि का निकसना; सो कषायसमुद्घात है। विक्रिया के निमित्त तैं प्रदेशनि का निकसना; सो वैक्रियिक समुद्घात है। मरण होतैं पहिलैं जो नवीन पर्याय के धरने का क्षेत्र पर्यंत प्रदेशनि का निकसना; सो मारणांतिक समुद्घात है। अशुभरूप वा शुभरूप तैजस शरीरनि करि नगरादिक कौं जलावै वा भला करै, ताकी साथि जो प्रदेशनि का निकसना, सो तैजस समुद्घात है। प्रमत्त गुणस्थानवाले कैं आहारक शरीर की साथि प्रदेशनि का निकसना; सो आहारक समुद्घात है। केवलज्ञानी के दंड कपाटादि क्रिया होतैं प्रदेशनि का निकसना; सो केवली समुद्घात है। अैसैं समुद्घात के सात भेद हैं।

बहुरि पहलैं जो पर्याय धरता था, ताकौं छोडि, पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ, अंतराल विषैं जो प्रवर्तना; सो उपपाद कहिए। याका एक भेद ही है। अैसैं ए दश स्थान भए। तहां कृष्णलेश्यावाले जीवनि का स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, उपपाद इनि पंच पदनि विषैं क्षेत्र सर्व लोक जानना। अब इनि जीवनि का प्रमाण कहिए हैं --

कृष्ण लेश्यावालों का जो पूर्वै परिमाण कह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण तौ स्वस्थानस्वस्थानवाले जीव हैं। भाग देइकरि तहां एक भाग कौं तौ जुदा राखिए, अवशेष जो रहै, ताकौं बहुभाग कहिए, यहु सर्वत्र जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातवाले जीव हैं। बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं। बहुरि एक भाग रह्या, ताकौं फलराशि करिए, बहुरि एक निगोदिया का आयु सांस के अठारह्वां भाग तिस प्रमाण अंतर्मुहूर्त के जेते समय होइ, सो प्रमाण राशि करिए। बहुरि एक समय कौं इच्छाराशि करिए। तहां फल कौं इच्छाराशि करि गुणि, प्रमाण का भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितना जीव उपपादवाले हैं। बहुरि इस उपपादवाले जीवनि के प्रमाण कौं मारणांतिक समुद्घात काल अंतर्मुहूर्त, ताके जेते समय होंहि, तिनकरि गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने जीव मूलराशि के संख्यातवें भागमात्र मारणांतिक समुद्घातवाले जानने, अैसैं ए जीव सर्वलोक विषैं पाइए। तातैं इनिका क्षेत्र सर्वलोक है। बहुरि विहारवत्स्वस्थान विषैं क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलनि करि जगत्प्रतर कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना जानना। कैसैं ? सो कहिए हैं —

कृष्ण लेश्यावाले पर्याप्त त्रस जीवनि का जो प्रमाण, पर्याप्त त्रस राशि के किंचिदून त्रिभाग मात्र है । ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान विषैं हैं । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान विषैं जीव जानने । अवशेष एक भाग रह्या, सो अवशेष यथायोग्य स्थान विषैं जानना । अब इहां त्रस पर्याप्त जीवनि की जघन्य, मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार है; सो हीनाधिक बरोबरि करि संख्यात घनांगुल प्रमाण मध्यम अवगाहना मात्र एक जीव की अवगाहना का ग्रहण कीया, सो इस अवगाहना का प्रमाण कौं फलराशि करिए, पूर्व जो विहारवत्स्वस्थान जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौं इच्छाराशि करिए, एक जीव कौं प्रमाणराशि करिए । तहां फलकरि इच्छा कौं गुणि, प्रमाण का भाग दीए, जो संख्यात सूच्यंगुलकरि गुण्या हूवा, जगत्प्रतर प्रमाण भया, सो विहारवत् स्वस्थान विषैं क्षेत्र जानना । बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषैं क्षेत्र घनांगुल का वर्ग करि असंख्यात जगच्छ्रेणी कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । कैसें ? सो कहिए हैं —

कृष्ण लेश्यावाले वैक्रियिक शक्ति करि युक्त जीवनि का जो प्रमाण वैक्रियिक योगी जीवनि का किंचिदून त्रिभाग मात्र है । ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान विषैं जीव हैं । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिये, तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत् स्वस्थान विषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात विषैं जीव हैं । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात विषैं जीव हैं । अवशेष एक भाग प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात विषैं जीव प्रवर्तें हैं । ऐसैं जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौं हीनाधिक बरोबरि करि एक जीव संबंधी वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र संख्यात घनांगुल प्रमाण है; तिसकरि गुणें, जो घनांगुल का वर्ग करि गुण्या हूवा असंख्यात श्रेणीमात्र प्रमाण भया; सो वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र जानना । बहुरि इन ही का सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक, मनुष्यलोक इनि पंच लोकनि की अपेक्षा व्याख्यान कीजिए है —

समस्त जो लोक, सो सामान्यलोक है । मध्यलोक तैं नीचैं, सो अधोलोक है । मध्यलोक के ऊपरि ऊर्ध्वलोक है । मध्यलोक विषैं एक राजू चौडा, लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है । पैंतालीस लाख योजन चौडा, लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है ।

प्रश्न-तहां कृष्ण लेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, उपपाद इनि विषैं प्रवर्तते जीव कितने क्षेत्रविषैं तिष्ठै हैं ?

तहां उत्तर - जो सामान्यादिक पांच प्रकार सर्वलोक विषैं तिष्ठैं हैं । बहुरि विहारवत् स्वस्थान विषैं प्रवर्तते जीव, सामान्यलोक - अधोलोक - ऊर्ध्वलोक का तौ असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र विषैं तिष्ठैं हैं । अर तिर्यक्लोक ऊंचा लाख योजन प्रमाण है । अर एक जीव की उंचाई, वाकै संख्यातवें भाग प्रमाण है । तातैं तिर्यक् लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र विषैं तिष्ठैं हैं । अर मानुषोत्तर पर्वत के मध्यवर्ती जो मनुष्य लोक तातैं असंख्यात गुणा क्षेत्र विषैं तिष्ठैं हैं । बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषै प्रवर्तते जीव, सामान्यादिक च्यारि लोक, तिनके असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र विषैं तिष्ठैं हैं । अर मनुष्य लोक तैं असंख्यात गुणा क्षेत्र विषैं तिष्ठैं हैं; जातैं वैक्रियिक समुद्घातवालों का क्षेत्र असंख्यात गुणा घनांगुल का वर्ग करि गुणित जगच्छ्रेणीमात्र है । ऐसैं सात स्थाननि विषैं व्याख्यान कीया ।

बहुरि तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात इन लेश्यावाले जीवनि कैं होता नाहीं, तातैं, इनिका कथन न कीया ।

इसप्रकार जैसैं कृष्णलेश्या का व्याख्यान कीया; तैसैं ही नीललेश्या, कपोतलेश्या का व्याख्यान जानना । विशेष इतना जहां कृष्णलेश्या का नाम कह्या है; तहां नीललेश्या वा कपोतलेश्या का नाम लेना । अब तेजो लेश्या का क्षेत्र कहिए हैं-

तहां प्रथम ही जीवनि का प्रमाण कहिए हैं - तेजोलेश्यावाले जीवनि का संख्या अधिकार विषैं जो प्रमाण कह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान विषैं जानना । एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग विहारवत् स्वस्थान विषैं जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग वेदना समुद्घात विषैं जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग वेदना समुद्घात विषैं जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग कषाय समुद्घात विषैं जानना । बहुरि एक भाग वैक्रियिक समुद्घात विषैं जानना । ऐसैं जीवनि का परिमाण कह्या । अब तेजो लेश्या मुख्यपनैं भवनत्रिक आदि देवनि कैं पाइए है; तिनिविषैं एक देव का शरीर का अवगाहना का प्रमाण मुख्यता

करि सात धनुष ऊंचा अर सात धनुष के दशवें भाग मुख की चौड़ाई है, प्रमाण जाका असा है, सो याका क्षेत्रफल कीजिए है ।

वासोत्ति गुणो परिही, वास चउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहगुणं, खादफलं होदि सव्वत्थ ।।

इस करणसूत्र करि क्षेत्रफल करना । गोल क्षेत्र विषै चौडाई के प्रमाण तै तिगुणा तौ परिधि होइ । इस परिधि कौं चौडाई का चौथा भाग तैं गुणैं, क्षेत्रफल होइ । इस क्षेत्रफल कौं ऊंचाई रूप जो बेध, ताके प्रमाण करि गुणें, घनरूप क्षेत्रफल हो है । सो इहां सात धनुष का दशवां भागमात्र चौडाई, ताकौं तिगुणी कीए, परिधि होइ । याकौं चौडाई का चौथा भाग करि गुणें, क्षेत्रफल हो है । याकौं बेध सात धनुष करि गुणें, घनरूप क्षेत्रफल हो है । बहुरि जो घनराशि होइ, ताके गुणकार भागहार घनरूप ही होंइ । तातैं इहां अंगुल करने के निमित्त एक धनुष का छिनवै अंगुल होइ, सो जो धनुषरूप क्षेत्रफल भया, ताकौं छिनवे का घन करि गुणिए । बहुरि इहां तौ कथन प्रमाणांगुल तैं है । अर देवनि के शरीर का प्रमाण उत्सेधांगुल तैं है । तातैं पांच सै का घन का भाग दीजिए; असैं करतैं प्रमाणरूप घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण एक देव का शरीर की अवगाहना भई । इसकरि पूर्वं जो स्वस्थानस्वस्थान विषैं जीवनि का प्रमाण कह्या था, ताकौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान विषैं जानना ।

बहुरि वेदनासमुद्घात विषैं वा कषायसमुद्घात विषैं प्रदेश मूल शरीर तैं बाह्य निकसैं, सो एक प्रदेश क्षेत्रकौं रोकैं वा दोय प्रदेश मात्र क्षेत्र कौं रोकैं, असैं एक-एक प्रदेश बधता जो उत्कृष्ट क्षत्र रोकैं, तो मूल शरीर तैं चौडाई विषैं तिगुणा क्षेत्र रोके अर उंचाई मूल शरीर प्रमाण ही है । सो याका घनरूप क्षेत्रफल कीए, मूल शरीर के क्षेत्रफल तैं नव गुणा क्षेत्र भया, सो जघन्य एक प्रदेश अर उत्कृष्ट मूल शरीर तैं नव गुणा क्षेत्र भया; सो हीनाधिक कौं बरोबरि कीएं एक जीव कैं मूल शरीर तैं साढा च्यारि गुणा क्षेत्र भया; सो शरीर का प्रमाण पूर्वं घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण कह्या था, ताकौं साढा चारि गुणा कीजिए, तब एक जीव संबंधी क्षेत्र भया । इसकरि वेदना समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणिए, तब वेदना समुद्घात विषैं क्षेत्र होइ । बहुरि कषायसमुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणिए तब कषाय समुद्घात विषैं क्षेत्र होइ । बहुरि विहार करते देवनि कैं मूल शरीर तैं

बाह्य आत्मा के प्रदेश फैलें, ते प्रदेश एक जीव की अपेक्षा संख्यात योजन प्रमाण तौ लंबा, अर सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा वा ऊंचा क्षेत्र कौं रोकें, सो इसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया। इसकरि जो पूर्वं विहारवत्स्वस्थान विषें जीवनि का प्रमाण कह्या था, ताकौं गुणिए, तब सर्व जीव संबंधी विहारवत् स्वस्थान विषें क्षेत्र का परिमाण होइ। इहां ऐसा अर्थ जानना-जो देवनि कैं मूल शरीर तौ अन्य क्षेत्र विषें तिष्ठै है अर विहार करि विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्र विषें तिष्ठै है। तहां दोऊनिके बीचि आत्मा के प्रदेश सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग मात्र प्रदेश ऊंचे, चौडे, फैलें हैं। अर इहां मुख्यता की अपेक्षा संख्यात योजन लंबे कहे हैं। बहुरि देव अपनी - अपनी इच्छा तैं हस्ती, घोटक इत्यादिक रूप विक्रिया करैं, ताकी अवगाहना एक जीव की अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है। इसकरि पूर्वं जो वैक्रियिक समुद्घात विषें जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौं गुणिए, तब सर्व जीव संबंधी वैक्रियिक समुद्घात विषें क्षेत्र का परिमाण होइ।

बहुरि पीतलेश्यावालेनि विषें व्यंतरदेव घने मरै हैं, तातैं इहां व्यंतरनि की मुख्यता करि मारणांतिक समुद्घात कहिए है। जितना व्यंतर देवनि का प्रमाण है, ताकौं व्यंतरनि की मुख्यपनैं दश हजार वर्ष आदि संख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति के जेते समय होंइ, तिनिका भाग दीएं, जेता प्रमाण आवै, तितना जीव एक समय विषें मरण कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि इनि मरनेवाले जीवनि कैं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये, तहां एक भाग प्रमाण जीवनि के ऋजु गति कहिये, समरूप सूधी गति हो है। बहुरि बहुभाग प्रमाण जीवनि के विग्रह गति कहिये, वक्रता लीए परलोक कौं गति हो है। बहुरि विग्रहगति जीवनि के प्रमाण कौं पल्य के असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण जीवनि के मारणांतिक समुद्घात न हो है।

बहुरि बहुभाग प्रमाण जीवनि कैं मारणांतिक समुद्घात हो है। बहुरि इस मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि के प्रमाण कौं पल्य का असंख्यातवां भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण समीप थोरेसे क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। एक भाग प्रमाण दूर बहुत क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। सो एक समय विषें दूर मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवनि का यह प्रमाण कह्या, अर मारणांतिक समुद्घात का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है। तातैं अंतर्मुहूर्त के जेते समय होंहि, तिनकरि तिस प्रमाण कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने एकठे भए, दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव जानने। तहां एक जीव के दूरि मारणांतिक समुद्घात विषें

शरीर तैं बाह्य प्रदेश फैलें ते मुख्यपनें एक राजू के संख्यातवें भाग प्रमाण लंबे अर सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण चौडे वा ऊंचे क्षेत्र कौं रोकें। याका घनरूप क्षेत्रफल कीजिए, तब प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग करि जगच्छ्रेणी का संख्यातवां भाग कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना क्षेत्र भया। इसकरि दूरि मारणांतिक जीवनि का प्रमाण कौं गुणिये, तब सर्व जीव संबंधी दूर मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र हो है। अन्य मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र स्तोक है, तातें मुख्य ग्रहण तिस ही का कीया। बहुरि तैजस समुद्घात विषै शरीर तैं बाह्यप्रदेश निकसै, ते बारा योजन लंबा, नव योजन चौडा, सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण ऊंचा क्षेत्र कौं रोकें, सो याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया। इसकरि तैजस समुद्घात करनेवालों का प्रमाण संख्यात है। तिसकौं गुणें जो प्रमाण होइ, तितना तैजस समुद्घात विषै क्षेत्र जानना। बहुरि आहारक समुद्घात विषै एक जीव के शरीर तैं बाह्य निकसे प्रदेश, ते संख्यात योजन प्रमाण लंबा, अर सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्र कौं रोकें, याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया। इसकरि आहारक समुद्घातवाले जीवनि का संख्यात प्रमाण है; ताकौं गुणें जो प्रमाण होइ, तितना आहारक समुद्घात विषै क्षेत्र जानना। मूल शरीर तैं निकसि आहारक शरीर जहां जाइ, तहां पर्यंत लंबी आत्मा के प्रदेशनि की श्रेणी सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण चौडी अर ऊंची आकाश विषै हो है; असा भावार्थ जानना। असें ही मारणांतिक समुद्घातादिक विषैं भी भावार्थ जानि लेना।

मरदि असंखेज्जदिमं, तस्सासंखा य विग्गहे होंति।
तस्सासंखं दूरे, उववादे तस्स खु असंखं ॥५४४॥

म्रियते असंख्येयं, तस्यासंख्याश्च विग्रहे भवंति।
तस्यासंख्यं दूरे, उपपादे तस्य खलु असंख्यम् ॥५४४॥

टीका – इस सूत्र का अभिप्राय उपपाद क्षेत्र ल्यावने का है, सो पीत लेश्यावाले सौधर्म - ईशानवर्ती जीव मध्यलोक तैं दूर क्षेत्रवर्ती हैं; सो तिनके कथन में क्षेत्र का परिमाण बहुत आवै। बहुत प्रमाण में स्तोक प्रमाण गर्भित करिए है। तातें तिनकी मुख्यता करि उपपाद क्षेत्र का कथन कीजिए है।

सौधर्म - ईशान स्वर्ग के वासी देव घनांगुल का तृतीय वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणिए, तितने प्रमाण हैं। इस प्रमाण कौं पल्य का असंख्यातवां भाग

का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण एक एक समय विषैं मरणेवाले जीवनि का प्रमाण हो है। इस प्रमाण कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण विग्रहगति करनेवालों का प्रमाण हो है। याकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण हो है। याकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण हो है। याकौं द्वितीय दीर्घ दंड विषैं स्थित मारणांतिक समुद्घात, ताके पूर्वं भया ऐसा उपपादता करि युक्त जीवनि के प्रमाण ल्यावने कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण उपपाद जीवनि का प्रमाण है। तहां तिर्यंच उपजने की मुख्यता करि एक जीव संबंधी प्रदेश फैलने की अपेक्षा डेढ राजू लंबा, संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा वा ऊंचा क्षेत्र है। याका घन क्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुल करि डेढ राजू कौं गुणें, जो प्रमाण भया, तितना जानना। इसकरि उपपाद जीवनि के प्रमाण कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना उपपाद विषैं क्षेत्र जानना। बहुरि केवलि समुद्घात इस लेश्या विषैं है नाहीं; तातैं कथन न कीया। ऐसैं पीत लेश्या विषैं क्षेत्र है। आगैं पद्मलेश्या विषैं क्षेत्र कहिए है —

संख्याधिकार विषैं पद्मलेश्या वाले जीवनि का जो प्रमाण कह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिये, तहां बहुभाग स्वस्थान स्वस्थान विषैं जानना। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग विहारवत् स्वस्थान विषैं जानना। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग वेदना समुद्घात विषैं जाननर। अवशेष एक भाग रह्या, सो कषाय समुद्घात विषैं जानना। ऐसैं जीवनि का प्रमाण कह्या। अब यहां पद्मलेश्यावाले तिर्यंच जीवनि का अवगाहना प्रमाण बहुत है; तातैं तिनकी मुख्यता करि कथन कीजिए है।

तहां स्वस्थानस्वस्थान विषैं अर विहारवत्स्वस्थान विषैं एक तिर्यंच जीव की अवगाहना मुख्यपनें कोस लंबी अर ताके नव मे भाग मुख का विस्तार, सो याका क्षेत्रफल 'वासो त्ति गुणो परिहि' इत्यादि सूत्र करि करिए, तब संख्यात घनांगुल प्रमाण होइ। इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, स्वस्थान स्वस्थान विषैं क्षेत्र होइ। अर विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, विहारवत्स्वस्थान विषैं क्षेत्र हो है। बहुरि पूर्वोक्त तिर्यंच शरीर की अवगाहना तैं पूर्वोक्त प्रकार साढा च्यारि गुणा वेदना अर कषाय समुद्घात विषैं एक जीव की अपेक्षा क्षेत्र है। इसकरि

पूर्वोक्त वेदना समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणिए, तब वेदना समुद्घात विषैं क्षेत्र होइ, कषाय समुद्घातवाले जीवनि के प्रमाण कौं गुणैं, कषाय समुद्घात विषैं क्षेत्र का परिमाण होइ। बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषैं पद्मलेश्यावाले जीव सनत्कुमार - माहेंद्र विषैं बहुत हैं। तातैं तिनकी अपेक्षा कथन करैं हैं –

सनत्कुमार -माहेंद्रविषैं देव जगच्छ्रेणी का ग्यारहवां वर्गमूल भाग जगच्छ्रेणी कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने हैं। इस राशि कौं संख्यात का भाग दीजिए, तब बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान विषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत् स्वस्थान विषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात विषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात विषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या, तीहिं प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात विषैं जीव जानने। इस वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं एक जीव संबंधी विक्रियारूप हस्तिघोटकादिकनि की संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना, तिसकरि गुणैं, जो प्रमाण होइ, सोई वैक्रियिक समुद्घात विषैं क्षेत्र जानना। बहुरि मारणांतिक समुद्घात वा उपपाद विषैं भी क्षेत्र सनत्कुमार - माहेंद्र अपेक्षा बहुत है। तातै सनत्कुमार-माहेंद्र की अपेक्षा कथन कीजिए है ---

मरदि असंखेज्जदिमं, तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे, उववादे तस्स खु असंखं ॥

जो सनत्कुमार माहेंद्रवासी जीवनि का प्रमाण कह्या, ताकौं असंख्य कहिए पल्य का असंख्यातवां भाग, ताका भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण समय समय जीव मरण कौं प्राप्त हो हैं। बहुरि इस राशि कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण विग्रह गतिवालों का प्रमाण है। बहुरि इस राशि कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। बहुरि इसकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घात वाले जीव हैं। बहुरि इसकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां एक भाग प्रमाण उपपाद का दंड विषैं स्थित जीव हैं। तहां एक जीव अपेक्षा मारणांतिक समुद्घात विषैं क्षेत्र तीन राजू लंबा सूच्यंगुल का संख्यातवां भागमात्र चौडा वा ऊंचा क्षेत्र है। इन सनत्कुमार माहें

प्रवासी देवनि करि कीया मारणांतिक दंड का घनरूप क्षेत्रफल प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग करि तीन राजू कौं गुणें जो प्रमाण होइ, तितना है । इसकरि दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कह्या था, ताकौं गुणिए, तब मारणांतिक समुद्घात विषें क्षत्र का प्रमाण होइ, बहुरि उपपाद विषें तिर्यंच जीवनि करि कीया सनत्कुमार माहेंद्र प्रति उपपाद रूप दंड, सो तीन राजू लंबा, संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा वा ऊंचा है । ताका क्षेत्र फल संख्यात प्रतरांगुल करि गुण्या हूवा तीन राजू प्रमाण एक जीव अपेक्षा क्षेत्र हो है । इसकरि उपपाद वालों के प्रमाण कौं गुणें, उपपाद विषें क्षेत्र का प्रमाण हो है । बहुरि तैजस अरु आहारक समुद्घात विषें क्षेत्र जैसें तेजोलेश्या के कथन विषें कह्या है, तैसे इहां भी संख्यात घनांगुल करि संख्यात जीवनि कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्या विषें होता ही नाहीं; असें पद्मलेश्या का क्षेत्र कह्या । आगें शुक्ललेश्या विषें क्षेत्र कहिए हैं ।

संख्या अधिकार विषें जो शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कह्या, ताकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थान स्वस्थान विषें जीव हैं । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान विषें जीव हैं । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घात विषें जीव हैं । अवशेष एक भाग रह्या, ताकौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिए, तहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात विषें जीव हैं । अवशेष एक भाग रह्या, तिस प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात विषें जीव हैं । तहां शुक्ललेश्यावाले देवनि की मुख्यता करि एक जीव का शरीर की अवगाहना तीन हाथ ऊंची इसके दशवें भाग मुख की चौडाई याका **वासो ति गुणो परिही** इत्यादि सूत्र करि क्षेत्रफल कीजिए, तब संख्यात घनांगुल प्रमाण होइ, इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणिए, तब स्वस्थान स्वस्थान विषें क्षेत्र का परिमाण होइ । बहुरि मूल शरीर की अवगाहना तें साढा च्यारि गुणा एक जीव के वेदना अर कषाय समुद्घात विषें क्षेत्र है । इस साढा च्यारि गुणा घनांगुल का संख्यातवां भाग करि वेदना समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणिये, तब वेदना समुद्घात विषें क्षेत्र हो है । अर कषाय समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, कषायसमुद्घात विषें क्षेत्र हो है । बहुरि एक देव के विहार करतें अपनें मूल शरीर तें बाह्य निकसि उत्तर विक्रिया करि

निपजाया शरीर पर्यंत आत्मा के प्रदेश संख्यात योजन लंबा अर सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग चौडा वा ऊंचा क्षेत्र कौं रोकें, याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया । इसकरि पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, विहार-वत्स्वस्थान विषें क्षेत्र हो है । बहुरि अपने अपने योग्य विक्रियारूप बनाया गजादिक शरीरनि की अवगाहना संख्या घनांगुल प्रमाण, तिसकरि वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण कौं गुणें, वैक्रियिक समुद्घात विषें क्षेत्र हो है । बहुरि शुक्ललेश्या आनतादिक देवलोकनि विषें पाइए, सो तहां तें मुख्यपनें आरण अच्युत अपेक्षा मध्यलोक छह राजू है । तातें मारणांतिक समुद्घात विषें एक जीव के प्रदेश छह राजू लंबे अर सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग चौडे, ऊंचे होंइ, सौं याका जो क्षेत्रफल एक जीव संबंधी भया, ताकौं संख्यात करि गुणिए, जातें आनतादिक तें मरिकरि मनुष्य ही होइ । तातें मारणांतिक समुद्घातवाले संख्यातवें ही जीव हैं, तातें संख्यात करि गुणिए, असैं गुणैं, जो होइ, सो मारणांतिक समुद्घात विषें क्षेत्र जानना ।

बहुरि तैजस आहारक समुद्घात विषें जैसें पद्मलेश्या विषें क्षेत्र कह्या था, तैसें इहां भी जानना । अब केवलसमुद्घात विषें क्षेत्र कहिए हैं ।

केवल समुद्घात च्यारि प्रकार दंड, कपाट, प्रतर, लोक पूरण । तहां दंड दोय प्रकार - एक स्थिति दंड, एक उपविष्ट दंड । बहुरि कपाट च्यारि प्रकार पूर्वाभिमुख स्थित कपाट, उत्तराभिमुखस्थित कपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट, उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट । बहुरि प्रतर अर लोक पूरण एक एक ही प्रकार है । तहां स्थिति - दंड समुद्घात विषें एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक की ऊंचाई, किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण हैं । सो इस प्रमाण तें लंबे, बहुरि बारह अंगुल प्रमाण चौडे, गोल आकार प्रदेश हो है । सो – 'वासो ति गुणो परिही' इत्यादि सूत्र करि याका क्षेत्रफल दोय सै सोला प्रतरांगुलनि करि जगच्छ्रेणी कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना हो है; जातें बारह अंगुल गोल क्षेत्र का क्षेत्रफल एक सौ आठ प्रतरांगुल होइ, ताकौं उंचाई दोय श्रेणी करि गुणन करें इतना ही हो है । बहुरि एक समय विषें इस समुद्घातवाले जीव चालीस होंइ, तातें तिसकौं चालीस करि गुणिए, तब आठ हजार छ सै चालीस प्रतरांगुलनि करि जगच्छ्रेणी कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना स्थिति दंड विषें क्षेत्र हो है । बहुरि इस स्थिति दंड के क्षेत्र कौं नव गुणा कीजिए, तब उपविष्ट दंड विषें क्षेत्र हो है, जातें स्थितिदंड विषें बारह अंगुल प्रमाण चौडाई कही, इहां तिसतें तिगुणी छत्तीस अंगुल चौडाई है; सो क्षेत्रफल विषें नव

गुणा क्षेत्र भया, तातैं नव गुणा कीया। ऐसैं करतैं सतहत्तर हजार सात सै साठि प्रतरांगुलनि करि जगच्छ्रेणी कौं गुणैं, जो प्रमाण भया, तितना उपविष्ट दंड विषैं क्षेत्र जानना।

बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घात विषैं एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण तौ लंबे हो हैं; सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तौ लंबे हो हैं बहुरि उत्तर दक्षिण दिशा विषैं लोक की चौडाई प्रमाण चौडे हो हैं। सो उत्तर-दक्षिण दिशा विषैं लोक सर्वत्र सात राजू चौडा है। तातैं सात राजू प्रमाण चौडे हो हैं। बहुरि बारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिम विषैं ऊंचे हो हैं; सो याका क्षेत्रफल भुज कोटि वेध का परस्पर गुणन करि चौईस अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण भया; ताकौं एक समय विषैं इस समुद्घातवाले जीवनि का प्रमाण चालीस है। तातैं चालीस करि गुणिए, तब नव सैं साठि सूच्यंगुलनि करि जगत्प्रतर कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना पूर्वाभिमुख स्थित कपाट विषैं क्षेत्र हो है। बहुरि स्थित कपाट विषैं बारह अंगुल की ऊंचाई कही, उपविष्ट कपाट विषैं ति गुणा छत्तीस अंगुल की ऊंचाई हो है। तातैं पूर्वाभिमुख स्थित कपाट के क्षेत्र कौं ति गुणा अठाइस सैं असी सूच्यंगुलनि करि जगत्प्रतर कौं गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट विषैं क्षेत्र जानना।

बहुरि उत्तराभिमुख स्थित कपाट विषैं एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक प्रमाण लंबे हो हैं; सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तो लंबे हो हैं। बहुरि पूर्व पश्चिम दिशा विषैं लोक की चौडाई के प्रमाण चौडे हो हैं। सो लोक अधोलोक के तौ नीचे सात राजू चौडा है। अर अनुक्रम तैं घटता घटता मध्य लोक विषैं एक राजू चौडा है। याका क्षेत्रफल निमित्त सूत्र कहिए है – **मुहभूमी जोग दले पद गुणिदे पदधणं होदि।** मुख कहिए अंत, अर भूमि कहिए आदि, इनिका जोग कहिए जोड, तिसका दल कहिये आधा, तिसका पद कहिए गच्छ का प्रमाण तिसकौं गुणैं पदधन कहिये, सर्व गच्छ का जोड्या हूआ प्रमाण; सो हो है। सो इहां मुख तौ एक राजू अर भूमि सात राजू जोडिए, तब आठ भये, इनिका आधा च्यारि भया, इसका अधो लोक की ऊंचाई सात राजू, सो गच्छ का प्रमाण सात राजूनि करि गुणैं, जो अठाईस राजू प्रमाण भया, तितना अधो लोक संबंधी प्रतररूप क्षेत्रफल जानना।

बहुरि मध्य विषें लोक एक राजू चौडा, सो बधता बधता ब्रह्मस्वर्ग के निकट पांच राजू भया । सो इहां मुख एक राजू, भूमि पांच राजू मिलाए छह हूवा, ताका आधा तीन, बहुरि ब्रह्मस्वर्ग साढा तीन राजू ऊंचा, सो गच्छ का प्रमाण साढा तीन करि गुणिये, तब आधा ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल साढा दश राजू हुआ । बहुरि ब्रह्मस्वर्ग के निकट पांच राजू सो घटता घटता ऊपरि एक राजू का रह्या, सो इहां भी मुख एक राजू, भूमि पांच राजू, मिलाए छह हुआ, आधा तीन, सो ब्रह्मस्वर्ग के ऊपरि लोक साढा तीन राजू है, सो गच्छ भया, ताकरि गुणें, आधा उर्ध्व लोक का क्षेत्रफल साढा दश राजू हो है । असें उर्ध्वलोक अर अधोलोक का सर्व क्षेत्रफल जोडें, जगत्प्रतर भया, सो असें लंबाई चौडाई करि तो जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेश हो हैं । बहुरि बारह् अंगुल प्रमाण उत्तर - दक्षिण दिशा विषें ऊंचे हो हैं; सो जगत्प्रतर कौं बारह् सूच्यंगुलनि करि गुणें, एक जीव संबंधी क्षेत्र बारह् अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण हो हैं । बहुरि इस समुद्घातवाले जीव चालीस हो हैं । तातें चालीस करि तिस क्षेत्र कौं गुणें, च्यारि सै अस्सी सूच्यंगुलनि करि गुण्या हूआ जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख स्थित कपाट विषें क्षेत्र हो है । बहुरि स्थिति विषें बारह् अंगुल की ऊंचाई कही । उपविष्ट विषें तातें तिगुणी छत्तीस अंगुल की ऊंचाई है । तातें पूर्वोक्त प्रमाण तें तिगुणा चौदा सै चालीस सूच्यंगुलनि करि गुण्या हूवा जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट विषें क्षेत्र जानना । बहुरि प्रतर समुद्घातविषें तीन वातवलय बिना सर्व लोक विषें प्रदेश व्याप्त हो हैं । तातें तीन वातवलय का क्षेत्रफल लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । सो यह प्रमाण लोक का प्रमाण विषें घटाएं, अवशेष रहे, तितना एक जीव संबंधी प्रतर समुद्घात विषें क्षेत्र जानना ।

बहुरि लोक पूरण विषें सर्व लोकाकाश विषें प्रदेश व्याप्त हो हैं । तातें लोक प्रमाण एक जीव संबंधी लोक पूरण विषें क्षेत्र जानना । सो प्रतर अर लोक पूरण के बीस जीव तो करनेवाले अर बीस जीव समेटनेवाले असें एक समय विषें चालीस पाइए । परन्तु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषें एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए; तातें क्षेत्र तितना ही जानना । बहुरि दंड अर कपाट विषें भी बीस जीव करनेवाले बीस समेटनेवालेनि की अपेक्षा चालीस जीव हैं; सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्र कौं भी रोकें; तातें दण्ड अर कपाट विषें चालीस का गुणकार कह्या । यह जीवनि का प्रमाण उत्कृष्टता की अपेक्षा है ।

सुक्कस्स समुग्घादे, असंखभागा य सव्वलोगो य ।

शुक्लायाः समुद्घाते, असंख्यभागाश्च सर्वलोकश्च ।

टीका — इस आधा सूत्र करि शुक्ल लेश्या का क्षेत्र लोक के असंख्यात भागनि विषें एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण वा सर्वलोक प्रमाण कह्या है, सो केवल समुद्घात अपेक्षा जानना । बहुरि उपपाद विषें मुख्यपनें अच्युत स्वर्ग अपेक्षा एक जीव के प्रदेश छह राजू लंबे अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडे वा ऊंचे प्रदेश हो हैं । सो इस क्षेत्रफल कौं अच्युत स्वर्ग विषें एक समय विषें संख्यात ही मरें, तातें तहां संख्यात ही उपजें, तातें संख्यात करि गुणें, जो प्रमाण भया, तितना उपपाद विषें क्षेत्र जानना । इहां भी पूर्वोक्त प्रकार पांच प्रकार लोक की अपेक्षा जैसा भागहार गुणकार संभवै तैसें जानि लेना; ऐसें शुक्ललेश्या विषें क्षेत्र कह्या । इहां छह लेश्यानि का क्षेत्र का वर्णन दश स्थान विषें कीया; तहां ऐसा जानना । जो जिस अपेक्षा क्षेत्र का प्रमाण बहुत आवै तिस अपेक्षा मुख्यपनें क्षेत्र वर्णन कीया है । तहां संभवता अन्य स्तोक क्षेत्र अधिक जानि लेना, ऐसें ही आगें स्पर्शन विषें भी अर्थ समझना । इति क्षेत्राधिकार ।

आगें स्पर्शनाधिकार साढा छह गाथानि करि कहै हैं—

फासं सव्वं लोयं, तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥५४५॥

स्पर्शः सर्वो लोकस्त्रिस्थाने अशुभलेश्यानाम् ॥५४५॥

टीका — क्षेत्र विषें तौ वर्तमानकाल विषें जेता क्षेत्र रोकैं, तिस ही का ग्रहण कीया । बहुरि इहां वर्तमान काल विषें जेता क्षेत्र रोकैं, तीहि सहित जो अतीत काल विषें स्वस्थानादिक विशेषण कौं धरे जीव जेता क्षेत्र रोकि आया होइ, तिस क्षेत्र ही का नाम स्पर्श जानना । सो कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या का स्पर्श स्वस्थान विषें वा समुद्घात विषें वा उपपाद विषें सामान्यपनें सर्व लोक जानना । विशेष करि दश स्थानकनि विषें कहिए हैं । तहां कृष्णलेश्या वालें जीवनि कैं स्वस्थान स्वस्थान विषें वा वेदना अर कषाय अर मरणांतिक समुद्घात विषें वा उपपाद विषें सर्व लोक प्रमाण स्पर्श जानना । बहुरि विहारवत्स्वस्थान विषें एक राजू लंबा वा चौडा अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण ऊंचा तिर्यग् लोक क्षेत्र है । याका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलनि करि

गुण्या हुवा जगत्प्रतर प्रमाण भया, सोई विहारवत्स्वस्थान विषें स्पर्श जानना । जातें कृष्णलेश्यावाले गमन क्रिया युक्त त्रस जीव तिर्यग् लोक ही विषें पाइए हैं ।

बहुरि वैक्रियिक समुद्घात विषें मेरुगिरि के मूल तें लगाइ, सहस्रार नामा स्वर्ग पर्यंत ऊंचा त्रसनाली प्रमाण लंबा, चौडा क्षेत्र विषें पवन कायरूप पुद्गल सर्वत्र आच्छादित रूप भरि रहे हैं । बहुरि पवन कायिक जीवनि कै विक्रिया पाइए है, सो अतीत काल अपेक्षा तहां सर्वत्र विक्रिया का सद्भाव हैं । अैसा कोऊ क्षेत्र तिस विषैं रह्या नाहीं, जहां विक्रिया रूप न प्रवर्तें; तातैं एक राजू लंबा वा चौडा अर पांच राजू ऊंचा क्षेत्र भया ताका क्षेत्रफल लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण भया, सोई वैक्रियक समुद्घात विषें स्पर्श जानना ।

बहुरि तैजस अर आहारक अर केवल समुद्घात इस लेश्या विषें होता ही नाहीं । इहां भी पंच प्रकार लोक का स्थापन करि, यथासंभव गुणकार भागहार जानना । बहुरि जैसे कृष्णलेश्यानि विषें कथन कीया, तैसें ही नीललेश्या कपोतलेश्या विषें भी कथन जानना ।

आगें तेजोलेश्या विषें कहै हैं—

तेउस्स य सट्ठाणे, लोगस्स असंखभागमेत्तं तु ।
अडचोद्दसभागा वा, देसूणा होंति णियमेण ।।५४६।।

तैजसश्च स्वस्थाने, लोकस्य असंख्यभागमात्रं तु ।
अष्ट चतुर्दशभागा वा, देशोना भवंति नियमेन ।।५४६।।

टीका – तेजोलेश्या का स्वस्थान विषें स्पर्श स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षा तौ लोक का असंख्यातवां भागमात्र जानना । बहुरि विहारवत्स्वस्थान अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागनि विषें आठ भाग किछू घाटि प्रमाण स्पर्श जानना ।

एवं तु समुग्घादे, णव चोद्दसभागयं च किंचूणं ।
उववादे पढमपदं, दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ।।५४७।।

एवं तु समुद्घाते, नवचतुर्दशभागश्च किंचिदूनः ।
उपपादे प्रथमपदं, द्व्यर्धचतुर्दश च किंचिदूनम् ।।५४७।।

टीका — बहुरि समुद्घात विषैं असैं स्वस्थानवत् किछू घाटि त्रसनाली के चौदह भागनि विषै आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना. वा मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा किछू घाटि त्रसनाली के चौदह भागनि विषैं नव भाग प्रमाण स्पर्श जानना । बहुरि उपपाद विषैं त्रसनाली के चौदह भागनि विषैं किछू घाटि ड्योढ भाग प्रमाण स्पर्श जानना । असैं सामान्यपनैं तेजोलेश्या का तीनों स्थानकनि विषैं स्पर्श कह्या ।

बहुरि विशेष करि दश स्थानकनि विषैं स्पर्श कहिए है । तिर्यग्लोक एक राजू का लम्बा, चौडा है; तिसविषैं लवणोद, कालोदक, स्वयंभूरमण इनि तीनि समुद्रनि विषैं जलचर जीव पाइए हैं । अन्य समुद्रनि विषैं जलचर जीव नाहीं; सो जिनि विषैं जलचर जीव नाहीं, तिनि सर्व समुद्रनि का जेता क्षेत्रफल होइ, सो तिस तिर्यग्लोक-रूप क्षेत्र विषैं घटाए, अवशेष जेता क्षेत्र रहे, तितना पीत, पद्म, शुक्ललेश्यानि का स्वस्थान स्वस्थान विषैं स्पर्श जानना । जातैं एकेंद्रियादिक कैं शुभलेश्यानि का अभाव है । सो कहिए हैं—

जंबूद्वीप तैं लगाइ स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत सर्व द्वीप - समुद्र दूणां दूणां विस्तार कौं धरैं हैं । तहां जंबूद्वीप लाख योजन विस्तार कौं धरैं है; याका सूक्ष्म तारतम्य रूप क्षेत्रफल कहिए हैं—

सत्त णव सुण्ण पंच य, छण्णव चउरेक्क पंच सुण्णं च ।

याका अर्थ — सात, नव, बिंदी, पंच, छह, नव, च्यारि, एक, पांच, बिंदी इतने अंकनि करि जो प्रमाण भया, तितना जंबूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल है (७९०५६९४१५०) सो एतावन्मात्र एक खण्ड कल्पना कीया । बहुरि असे असे लवण समुद्र विषैं खण्ड कल्पिए, तब चौईस (२४) होंइ । धातकीखंड विषैं एक सौ चवालीस (१४४) होंइ । कालोद समुद्र विषैं छ सै बहत्तरि (६७२) होंइ । पुष्कर द्वीप विषैं अठाइस सै असी (२८८०) होंइ । पुष्कर समुद्र विषैं ग्यारह हजार नव सै च्यारि (११९०४) होंइ । वारुणी द्वीप विषैं अडतालीस हजार तीन सै चौरासी (४८३८४) होंइ । वारुणी समुद्र विषै एक लाख पिचाणवे हजार बहत्तरि (१९५०७२) होंइ । क्षीरवर द्वीप विषैं सात लाख तियासी हजार तीन सै साठि (७८३३६०) होंइ । क्षीरवर समुद्र विषैं इकतीस लाख गुणतालीस हजार पांच सै चउरासी (३१३९५८४) होंइ । असैं स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत विषैं खंड साधन करना इनि खंडनि के प्रमाण का ज्ञान होने के निमित्त सूत्र कहिए हैं—

बाहिर सूईवग्गं, अब्भंतर सूइवग्ग परिहीणं ।
जंबूवासविहत्ते, तेत्तियमेत्ताणि खंडाणि ॥

बाह्य सूची का वर्ग विषें अभ्यंतर सूची का प्रमाण घटाए, जो प्रमाण रहै, ताकौं जंबूद्वीप का व्यास के वर्ग का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जंबूद्वीप समान खंड जानने । अंत तें लगाइ, वाके सन्मुख अंत पर्यंत जेता सूधा क्षेत्र होइ, ताकौं बाह्य सूची कहिए । बहुरि आदि तें लगाइ, वाके सन्मुख आदि पर्यंत जेता सूधा क्षेत्र होइ, ताकौं अभ्यंतर सूची कहिये । सो यहां लवण समुद्र विषें उदाहरण करि कहिये हैं—

लवण समुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, ताका वर्ग कीजिये तब लाख गुणां पचीस लाख भया । बहुरि तिस ही की अभ्यंतर सूची एक लाख योजन, ताका वर्ग लाख गुणा लाख योजन, सो घटाये अवशेष लाख गुणा चौईस लाख, ताका जंबूद्वीप का व्यास लाख योजन, ताका वर्ग लाख गुणा लाख योजन, ताका भाग दीजिए तब चौईस रहे, सो जंबूद्वीप समान चौबीस खंड लवण समुद्र विषें जानने । असें ही सर्व द्वीप समुद्रनि विषें साधने । इस साधन के अर्थि और भी प्रकार कहै हैं—

रूऊण सला बारस, सलागगुणिदे दु वलयखंडाणि ।
बाहिरसूइ सलागा, कदी तदंताखिला खंडा ॥

इहां व्यास विषें जितना लाख कह्या होइ, तितने प्रमाण शलाका जानना । सो एक घाटि शलाका कौं बारह शलाका करि गुणें, जंबूद्वीप प्रमाण वलयखंड हो हैं। जैसे लवण समुद्रनि विषें व्यास दोय लाख योजन है, तातैं शलाका का प्रमाण दोय, तामें एक घटाएं एक, ताकौ बारह शलाका का प्रमाण चौईस करि गुणें, चौईस खंड हो हैं । बहुरि बाह्य सूची संबंधी शलाका का वर्ग प्रमाण तीहिं पर्यंत खंड हो है । जैसें लवण समुद्र विषें बाह्य सूची पांच लाख योजन है । तातैं शलाका का प्रमाण पांच ताका वर्ग पचीस, सोई लवण समुद्र पर्यंत सर्व खंडनि का प्रमाण हो है । जंबूद्वीप विषें एक खंड अर लवण समुद्र विषें चौबीस खंड, मिलि करि पचीस खंड हो है । बहुरि और भी विधान कहै हैं—

बाहिरसूईवलयव्वासूणा चउगुणिद्ठावासहदा ।
इकलक्खवग्गभजिदा, जंबूसमवलयखंडाणि ॥१॥

बाह्य सूची विषैं वलय का व्यास घटाएं, जो रहै, ताका चौगुणा व्यास तैं गुणिये, एक लाख के वर्ग का भाग दीजिए, तब जंबूद्वीप के समान गोलाकार खंडनि का प्रमाण हो है ।

उदाहरण – जैसें लवणसमुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, तिसमें व्यास दोय लाख योजन घटाइए, तब तीन लाख योजन भये, याकौं चौगुणा व्यास आठ लाख योजन करि गुणिये, तब लाख गुणा चौईस लाख भये । याकौं एक लाख का वर्गका भाग दीजिए, तब चौईस पाये, तितने ही जंबूद्वीप समान लवण समुद्र विषैं खंड हैं, असैं सूत्रनि तें साधन करि खंड ज्ञान करना । बहुरि इहां द्वीप संबंधी खंडनि कौं छोडि, सर्व समुद्र संबंधी खंडनि का ही ग्रहण कीजिये, तब जंबूद्वीप समान चौईस खंडनि का भाग समुद्रखंडनि कौं दीएं, जो प्रमाण आवै; तितना सर्व समुद्रनि विषैं लवण समुद्र समान खंड जानने । सो लवण समुद्र के खंडनि कौं चौईस भाग दीए, एक पाया, सो लवण समुद्र समान एक खंड भया । कालोद समुद्र के छ सै बहत्तरि खंडनि कौं चौवीस का भाग दीये, अट्ठाईस पाये, सो कालोद समुद्र विषैं लवणसमुद्र समान अठाईस खंड हो हैं । असैं ही पुष्कर समुद्र के खंडनि कौं भाग दीये ग्यारि सै छिनवै खंड हो हैं । वारुणी समुद्र के खंडनि कौं भाग दीये, आठ हजार एक सै अठाइस खंड हो हैं । क्षीरसमुद्र के खंडनि कौं भाग दीये, एक लाख तीस हजार आठ सै सोलह खंड हो हैं । असैं ही स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत जानना । सो जानने का उपाय कहैं हैं–

यहु लवणसमुद्रसमान खंडनि का प्रमाण ल्यावने की रचना है ।

धनराशि					ऋणराशि					समुद्र
२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षीरवर
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वारुणीवर
२	१६	१६			१	४	४			पुष्कर
२	१६				१	४				कालोद
२					१					लवणोद

दोय आदि सोलह सोलह गुणा तो धन जानना । अर एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण जानना । सो धन विषैं ऋण घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितने लवणसमुद्र समान खंड जानने ।

उदाहरण कहिये हैं – प्रथमस्थान विषैं धन दोय, अर ऋण एक, सो दोय में एक घटाए एक रह्या, सो लवण समुद्र विषैं एक खंड भया । बहुरि दूसरे स्थान के दोय कौं सोलह गुणा कीजिए, तब बत्तीस तो धन होइ, अर एक कौं च्यारि गुणा कीजिए, तब च्यारि ऋण भया, सो बत्तीस में च्यारि घटाएं, अठाइस रह्या, सो दूसरा कालोदक समुद्र विषैं लवण समुद्र समान अठाईस खंड हैं । बहुरि तीसरे स्थानक बत्तीस कौं सोला गुणा कीएं, पांच सै बारा तो धन होइ, अर च्यारि कौं चौगुणा कीएं सोला ऋण होइ, सो पांच सै बारा मैं स्यों सोला घटाएं, च्यारि सै छिनवै रह्या; सो इतना ही तीसरा पुष्कर समुद्र विषैं लवण समुद्र समान खंड जानने । ऐसें स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत जानना । सो अब इहां जलचर रहित समुद्रनि का क्षेत्रफल कहिए हैं–

तहां जो द्वीप समुद्रनि का प्रमाण है, ताकौं इहां समुद्रनि ही का ग्रहण है, तातैं आधा कीजिये, तामैं जलचर सहित तीन समुद्र घटाएं, जलचर रहित समुद्रनि का प्रमाण हो है, सो इहां गच्छ जानना । सो दोय आदि सोला - सोला गुणा धन कह्या था, सो धन का जलचर रहित समुद्रनि का धन विषैं कितना क्षेत्रफल भया ? सो कहिये हैं —

पदमेत्ते गुणयारे, अण्णोण्णं गुणियरूवपरिहीणे ।
रूऊणगुणेणहिये, मुहेणगुणियम्मि गुणगणियं ।।

इस सूत्र करि गुणकार रूपराशि का जोड हो हैं । याका अर्थ - गच्छप्रमाण जो गुणकार, ताकौं परस्पर गुणि करि एक घटाइये, बहुरि एक घाटि गुणकार के प्रमाण का भाग दीजिए, बहुरि मुख जो आदिस्थान, ताकरि गुणिये, तब गुणकाररूप राशि विषैं सर्व जोड होइ ।

सो प्रथम अन्य उदाहरण दिखाइए हैं - जैसें आदिस्थान विषैं दश अर पीछैं चौगुणा – चौगुणा बधता ऐसें पंच स्थानकनि विषैं जो जो प्रमाण भया, तिस सर्व का जोड दीएं कितना भया ?

सो कहिये हैं – इहां गच्छ का प्रमाण पांच, अर गुणकार का प्रमाण च्यारि सो पांच जायगा च्यारि च्यारि मांडि, परस्पर गुणिए, तब एक हजार चौईस हूवा, यामैं एक घटाएं, एक हजार तेईस हूवा । बहुरि याकौं एक घाटि गुणकार का प्रमाण तीन का भाग दीजिये, तब तीन सै इकतालीस हूवा । बहुरि आदिस्थान का प्रमाण दश, तिसकरि याकौं गुणैं, चौतीस सै दश (३४१०) भया, सोई सर्व का जोड जानना कैसें ? पंचस्थानकनि विषें असा प्रमाण है-१०।४०।१६०।६४०।२५६० । सो इनिका जोड चौतीस सै दश ही हो है । असें अन्यत्र भी जानना । सो इस ही सूत्र करि इहां गच्छ का प्रमाण तीन आदि द्वीपसागर के प्रमाण तें आधा प्रमाण लीये हैं । सो सर्व द्वीप - समुद्रनि का प्रमाण कितना है ? सो कहिए हैं - एक राजू के जेते अर्धच्छेद हैं, तिनि में लाख योजन के अर्धच्छेद अर एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल तिनिके अर्धच्छेद अर सूच्यंगुल के अर्धच्छेद अर मेरु के मस्तक प्राप्त भया एक अर्धच्छेद, इतने अर्धच्छेद घटाएं, जेता अवशेष प्रमाण रह्या, तितने सर्व द्वीप - समुद्र हैं । अब इहां गुणोत्तर का प्रमाण सोलह सो गच्छप्रमाण गुणोत्तरनि कौं परस्पर गुणना । तहां प्रथम एक राजू का अर्धच्छेद राशि तें आधा प्रमाण मात्र जायगा सोलह -सोलह मांडि, परस्पर गुणन कीए, राजू का वर्ग हो है । सो कैसें ? सो कहिये हैं–

विवक्षित गच्छ का आधा प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकार (का वर्गमूल)[1] मांडि परस्पर गुणन कीएं, जो प्रमाण होइ, सोई संपूर्ण विवक्षित गच्छ प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकार का वर्गमूल मांडि, परस्पर गुणन कीएं, प्रमाण हो है । जैसें विवक्षित गच्छ आठ, ताका आधा प्रमाण च्यारि, सो च्यारि जायगा विवक्षित गुणकार नव, नव मांडि परस्पर गुणें, पैंसठि सै इकसठि होइ, सोई विवक्षित गच्छ मात्र आठ जायगा विवक्षित गुणकार नव का वर्गमूल तीन - तीन मांडि परस्पर गुणन कीएं, पैंसठि सै इकसठि हो हैं । असें ही इहां विवक्षित गच्छ एक राजू के अर्धच्छेद, ताका अर्धच्छेद प्रमाण मात्र जायगा सोलह - सोलह मांडि परस्पर गुणें, जो प्रमाण होइ, सोई राजू के अर्धच्छेद मात्र सोलह का वर्गमूल च्यारि च्यारि मांडि परस्पर गुणें, प्रमाण होइ, सो राजू के अर्धच्छेद मात्र जायगा दूवा मांडि, गुणें, तौ राजू होइ । अर तितनी ही जायगा दोय - दोय बार दूवा मांडि, परस्पर गुणें, राजू का वर्ग हो है । सो जगत्प्रतर कौं दोय बार सात का भाग दीजिए इतना हो है । बहुरि यामें एक

---

१. 'का वर्गमूल' यह छपी प्रति में मिलता है । छहों हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिलता ।

घटाइये, जो प्रमाण होइ, ताकौं एक जाति गुणकार कौं प्रमाण पंद्रह, ताका भाग दीजिए। बहुरि इहां आदि विषैं पुष्कर समुद्र है। तिस विषैं लवण समुद्र समान खंडनि का प्रमाण दोय कौं दोय बार सोलह करि गुणिए, इतना प्रमाण है, सोई मुख भया, ताकरि गुणिए, ऐसें करतें एक घाटि जगत्प्रतर कौं दोय सोलह सोलह का गुणकार अर सात - सात पंद्रह का भागहार भया। बहुरि इस राशि का एक लवण समुद्र विषैं जंबूद्वीप समान चौईस खंड हो है। तातैं चौईसका गुणकार करना। बहुरि जम्बूद्वीप विषैं सूक्ष्म क्षेत्रफल सात नव आदि अंकमात्र हैं। तातैं ताका गुणकार करना बहुरि एक योजन के सात लाख अडसठि हजार अंगुल हो हैं। सो इहां वर्गराशि का ग्रहण है, अर वर्गराशि का गुणकार भागहार वर्गरूप ही हो है। तातैं दोय बार सात लाख अडसठि हजार का गुणकार जानना। बहुरि एक सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल हो है। तातैं इतने प्रतरांगुलनि का गुणकार जानना। बहुरि—

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स॥

इस करणसूत्र के अभिप्राय करि द्वीप समुद्रनि के प्रमाण विषैं राजू के अर्धच्छेदनि तैं जेते अर्धच्छेद घटाए हैं, तिनिका आधा प्रमाण मात्र गुणकार सोलह कौं परस्पर गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने का पूर्वोक्त राशि विषैं भागहार जानना। सो इहां जाका आधा ग्रहण कीया, तिस संपूर्ण राशि मात्र सोलह का वर्गमूल च्यारि, तिनिकौं परस्पर गुणैं, सोई राशि हो है। सो अपने अर्धच्छेद मात्र दूवानि कौं परस्पर गुणैं तौ विवक्षित राशि होइ, अर इहां च्यारि कहै हैं, तातैं तितने ही मात्र दोय बार, दूवानि कौं परस्पर गुणैं, विवक्षित राशि का वर्ग हो है। तातैं इहां लाख योजन का अर्धच्छेद प्रमाण दोय दूवानि का परस्पर गुणैं, तौ लाख का वर्ग भया। एक योजन का अंगुलनि के प्रमाण का अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानि कौं परस्पर गुणैं, एक योजन के अंगुल सात लाख अडसठि हजार (तीन का) वर्ग भया। बहुरि मेरुमध्य संबंधी एक अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानि कौं परस्पर गुणैं, च्यारि भया, बहुरि सूच्यंगुल का अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानि कौं परस्पर गुणैं, च्यारि भया। बहुरि सूच्यंगुल का अर्धच्छेद मात्र दोय दुवानि कौं परस्पर गुणैं प्रतरांगुल भया। ऐसें ए भागहार जानने। बहुरि जलचर सहित तीन समुद्र मच्छ विषैं घटाए हैं। तातैं तीन बार गुणोत्तर जो सोलह, ताका भी भागहार जानना। ऐसें जगत्प्रतर कौं प्रतरांगुल अर दोय अर सोलह अर सोलह अर चौबीस अर सात से निवे कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार

एक सौ पचास अर सात लाख अडसठि हजार, अर सात लाख अडसठि हजार का तौ गुणकार भया । बहुरि प्रतरांगुल अर सात अर सात अर पंद्रह अर एक लाख अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजार अर च्यारि अर सोलह अर सोलह अर सोलह का भागहार भया । इहां प्रतरांगुल अर दोय बार सोलह अर दोय बार सात लाख अडसठि हजार गुणकार भागहार विषैं समान देखि अपवर्तन कीएं अर गुणकार विषैं दोय चौईस कौं परस्पर गुणें, अडतालीस अर भागहार विषैं पंद्रह सोलह, इनिकौं परस्पर गुणें, दोय सै चालीस, तहां अडतालीस करि अपवर्तन कीएं, भागहार विषैं पांच रहे, असैं अपवर्तन कीएं, जो अवशेष प्रमाण रह्या ७६०५६६४१५० तहां सर्व भागहारनि कौं परस्पर गुणि, ताकौं गुणकारनि के ७ । ७ । १ ल । १ ल । ४ । ५ ।
अंकनि का भाग दीएं किछू अधिक बारह सै गुणतालीस भए । असैं धनराशि विषैं सर्व क्षेत्रफल साधिक 'धगरय' जो बारह सै गुणतालीस, ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण क्षेत्रफल भया । इहां **कटपयपुरस्थवर्णैः** इत्यादि सूत्र के अनुसारि अक्षर संज्ञा करि **धगरय** शब्द तैं नव तीन, दोय, एक जनित प्रमाण ग्रहण करना । अब इहां एक आदि चौगुणा - चौगुणा ऋण कह्या था, सो जलचर रहित समुद्रनि विषैं ऋणरूप क्षेत्रफल ल्याइए है । **'पदमेत्ते गुणयारे'** इत्यादि करणसूत्र करि प्रथम गच्छमात्र गुणकार च्यारि का परस्पर गुणन करना । तहां राजू के अर्धच्छेद प्रमाण का अर्धप्रमाणमात्र च्यारि कौं परस्पर गुणें, एक राजू हो है । कैसें ? सो कहिये हैं—

सर्व द्वीप समुद्र का प्रमाण मात्र गच्छ कल्पें, इहां आधा प्रमाण है, तातैं गुणकार च्यारि का वर्गमूल दोय ग्रहण करना । सो संपूर्ण गच्छ विषैं एक राजू के अर्धच्छेद कहैं हैं, तातैं एक राजू के अर्धच्छेद प्रमाण दूवानि कौं परस्पर गुणें, एक राजू प्रमाण भया, सो जगच्छ्रेणी का सातवां भाग प्रमाण है । यामैं एक घटाइए, जो प्रमाण होइ, ताकौं एक घाटि गुणकार तीन का भाग दीजिए । बहुरि पुष्कर समुद्र अपेक्षा आदि स्थान विषैं प्रमाण सोलह, ताकरि गुणिये, असैं एक घाटि जगच्छ्रेणी कौं सोलह का गुणकार बहुरि सात अर तीन का भागहार भया । याकौं पूर्वोक्त प्रकार चौबीस खंड अर जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल रूप योजननि का प्रमाण अर एक योजन के अंगुलनि का वर्गमात्र बहुरि सूच्यंगुल का इहां वर्ग है; तातैं इतनौं प्रतरांगुलनि करि गुणन करना । बहुरि—

विरलिदरासीदो पुण, जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी, हारो उप्पण्णरासिस्स ॥१॥

इस सूत्र अनुसारि जितने गच्छ विषैं राजू का अर्धच्छेद प्रमाण घटाइए है, ताका जो आधा प्रमाण है, तितने च्यारि के अंकनि कौं परस्पर गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने का भागहार जानना । सो जिस राशि का आधा प्रमाण लिया, तिस राशि-मात्र च्यारि का वर्गमूल दोय कौं परस्पर गुणिये, तहां लक्ष योजन के अर्धच्छेद प्रमाण दूवानि कौं परस्पर गुणें, एक लाख भए । एक योजन के अंगुलनि का अर्धच्छेद प्रमाण दूवानि कौं परस्पर गुणैं, सात लाख अडसठि हजार अंगुल भये । बहुरि मेरुमध्य के अर्धच्छेद मात्र दूवा का दोय भए । बहुरि सूच्यंगुल का अर्धच्छेदमात्र दूवानि कौं पर-स्पर गुणें, सूच्यंगुल भया, ऐसैं भागहार भए । बहुरि तीन समुद्र घटाएं, तातैं तीन बार गुणोत्तर जो च्यारि, ताका भी भागहार जानना । ऐसैं एक घाटि जगच्छेणी कौं सोलह अर च्यारि अर चोईस अर सात से निवै कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार एक सै पचास अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजार का तौ गुणकार भया । बहुरि सात अर तीन अर सूच्यंगुल अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर दोय अर च्यारि अर च्यारि अर च्यारि का भागहार भया । तहां यथायोग्य अपवर्तन कीएं, संख्यात सूच्यंगुल करि गुण्या हूवा जगच्छेणी मात्र क्षेत्रफल भया । सो इतने पूर्वोक्त धन राशिरूप क्षेत्रफल विषैं घटावना, सो तिस महत् राशि-विषैं किंचित् मात्र घट्या सो घटाएं, किंचित् ऊन साधिक बारह सै गुणतालीस करि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण सर्व जलचर रहित समुद्रनि का क्षेत्रफल ऋणरूप सिद्ध भया । याकौं एक राजू लंबा, चौडा ऐसा जो जगत्प्रतर का गुणचासवां भाग मात्र रज्जू प्रतर क्षेत्र, तामें समच्छेद करि घटाइए, तब जगत्प्रतर कौं ग्यारह सै निवै का गुणकार अर गुणचास गुणां बारह से गुणतालीस का भागहार भया । तहां अपवर्तन करने के अर्थि भाज्य के गुणकार का भागहार कौं भाग दीएं किछू अधिक इक्यावन पाए । ऐसैं साधिक काम जो अक्षर संज्ञा करि इक्यावन, ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्र का प्रतररूप तल का स्पर्श भया । याकौं ऊंचाई का स्पर्श ग्रहण के अर्थि जीवनि की ऊंचाई का प्रमाण संख्यात सूच्यंगुल, तिन करि गुणैं, साधिक इक्यावन करि भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणा जगत्प्रतर मात्र शुभलेश्यानि का स्व-स्थान स्वस्थान विषैं स्पर्श हो हैं । याकौं देखि तेजो लेश्या का स्वस्थान स्वस्थान की अपेक्षा स्पर्श लोक का असंख्यातवां भाग मात्र कह्या, जातैं यहु क्षेत्र लोक के असं-ख्यातवें भाग मात्र है । बहुरि तेजोलेश्या का विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घात विषैं स्पर्श किछू घाटि चौदह भाग में आठ भाग प्रमाण है । काहे तैं ? सो कहिये हैं—

लोक चौदह राजू ऊंचा है । त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लंबा - चौड़ा है । सो तहां चौदह राजू विषैं सनत्कुमार–माहेंद्र के वासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव, ऊपरि अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यंत गमन करें हैं । अर नीचैं तीसरी नरक पृथ्वी पर्यंत गमन करें हैं । सो अच्युत स्वर्ग तैं तीसरा नरक आठ राजू है । तातैं चौदह भाग मैं आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरक की पृथ्वी की मोटाई विषैं जहां पटल न पाइए असा हजार योजन घटावने, तातैं किंचित् ऊन कहे हैं । इहां जो चौदह घन-रूप राजूनि की एक शलाका होइ, तौ आठ घनरूप राजूनि की केती शलाका होइ ? असैं त्रैराशिक कीएं आठ चौदहवां भाग आवै है । अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचैं स्वयमेव तौ सौधर्म - ईशान स्वर्ग पर्यंत वा तीसरा नरक पर्यंत गमन करै है । अर अन्य देव के ले गये सोलहवां स्वर्ग पर्यंत विहार करें हैं । तातैं भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवै है । बहुरि तेजोलेश्या का मारणांतिक समुद्घात विषैं स्पर्श चौदह भाग मैं नव भाग किछू घाटि संभवै है । काहे तैं ? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनि के वासी देव तीसरे नरक गएं, अर तहां ही मरण समुद्घात कीया, बहुरि ते जीव आठवीं मुक्ति पृथ्वी विषैं बादर पृथ्वी काय के जीव उपजते हैं । तातैं तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनि का विस्तार करि दंड कीया । तिन आठवीं पृथ्वी तैं तीसरा नरक नव राजू है । अर तहां पटल रहित पृथ्वी की मोटाई घटावनी, तातैं किंचित् ऊन नव चौदहवां भाग संभवै है ।

बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घात विषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना, जातैं ए मनुष्य लोक विषैं ही हो है । बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्या वालों के होता ही नाहीं । बहुरि उपपाद विषैं स्पर्श चौदह भागनि विषैं किछू घाटि डेढ राजू भाग मात्र जानना । सो मध्यलोक तैं तेजोलेश्या तैं मरिकरि सौधर्म ईशान का अंत पटल विषैं उपजें, तीहि अपेक्षा संभवै है ।

इहां कोऊ कहै कि तेजोलेश्या के उपपाद विषैं सनत्कुमार माहेंद्र पर्यंत क्षेत्र देव का स्पर्श पाइए है, सो तीन राजू ऊंचा है, तातैं चौदह भागनि विषैं किंचित् ऊन तीन भाग क्यों न कहिये ?

ताका समाधान – सौधर्म - ईशान तें ऊपरि संख्यात योजन जाइ, सनत्कुमार माहेंद्र का प्रारंभ हो है । तहां प्रथम पटल है, अर डेढ राजू जाइ; अंतिम पटल है, सो अंत पटल विषैं तेजोलेश्या नाहीं है, असा केई आचार्यनि का उपदेश है । तातैं अथवा

चित्रा भूमि विषैं तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनि का उपपाद ईशान पर्यंत ही संभवै है, तातैं किंचित् ऊन डेढ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है । बहुरि गाथा विषैं चकार कह्या है, तातैं तेजोलेश्या का उत्कृष्ट अंश करि मरैं, तिनकैं सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्ग का अंत का चक्र नामा इंद्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमाननि विषैं उत्पत्ति केई आचार्य कहै हैं । तिनि का अभिप्राय करि यथा संभवै तीन भागमात्र भी स्पर्श संभवै है । किछू नियम नाहीं। इस ही वास्ते सूत्र विषैं चकार कह्या । ऐसैं पीतलेश्या विषैं स्पर्श कह्या ।

पम्मस्सय सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।
अडचोद्दसभागा वा, देसूणा होंति णियमेण ॥५४८॥

पद्मायाश्च स्वस्थानसमुद्घातद्विकयोर्भवति प्रथमपदम् ।
अष्ट चतुर्दशभागा वा, देशोना भवंति नियमेन ॥५४८॥

टीका — पद्मलेश्या के स्वस्थान स्वस्थान विषैं पूर्वोक्तप्रकार लोक के असंख्यातवें भाग मात्र स्पर्श जानना । बहुरि विहारवत्स्वस्थान अर वेदना - कषाय - वैक्रियिकसमुद्घात इनिविषैं किंचित् ऊन चौदह भाग विषैं आठमात्र स्पर्श जानना । बहुरि मारणांतिक समुद्घात विषैं भी तैसैं ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भागमात्र स्पर्श जानना; जातैं पद्म लेश्यावाले भी देव पृथ्वी, अप्, वनस्पति विषैं उपजै हैं । बहुरि तैजस आहारक समुद्घात विषैं संख्यात घनांगुल प्रमाणस्पर्श जानना । बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्या विषैं है नाहीं ।

उववादे पढमपदं, पणचोद्दसभागयं च देसूणं ।

उपपादे प्रथमपदं, पंचचतुर्दशभागकश्च देशोनः ।

टीका — यहु आधा सूत्र है । उपपाद विषैं स्पर्श चौदह भाग विषैं पंच भाग किछू घाटि जानना, जातैं पद्मलेश्या शतार – सहस्रार पर्यंत संभवै है । सो शतार-सहस्रार मध्यलोक तैं पांच राजू ऊंचा है । ऐसैं पद्मलेश्या विषैं स्पर्श कह्या ।

सुक्कस्स य तिट्ठाणे, पढमो छच्चोद्दसा हीणा ॥५४९॥

शुक्लायाश्च त्रिस्थाने, प्रथमः षट्चतुर्दशहीनाः ॥५४९॥

टीका — शुक्ललेश्यावाले जीवनि के स्वस्थानस्वस्थान विषैं तेजोलेश्यावत् लोक का असंख्यातवां भाग प्रमाण स्पर्श है । बहुरि विहारवत्स्वस्थान विषैं अर वेदना,

कषाय, वैक्रियिक, मरणांतिक समुद्घातनि विषैं स्पर्श चौदह भागनि विषैं छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना । जातैं अच्युतस्वर्ग के ऊपरि देवनि कै स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन नाहीं है । तातैं अच्युत पर्यंत ही ग्रहण कीया । बहुरि तैजस, आहारक समुद्घात विषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना ।

णवरि समुग्घादम्मि य, संखातीदा हवंति भागा वा ।
सव्वो वा खलु लोगो, फासो होदि त्ति णिद्दिट्ठो ॥५५०॥

नवरि समुद्घाते च, संख्यातीता भवंति भागा वा ।
सर्वो वा खलु लोकः, स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः ॥५५०॥

टीका – केवल समुद्घात विषैं विशेष है, सो कहा ?

दण्ड विषैं तौ स्पर्श क्षेत्र की नाईं संख्यात प्रतरांगुलनि करि गुण्या हूवा जगच्छे्रणी प्रमाण, सो करणे अर समेटने की अपेक्षा दूणा जानना । बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाट विषैं संख्यात सूच्यंगुलमात्र जगत्प्रतर प्रमाण है, सो करणे, समेटने की अपेक्षा दूणा स्पर्श जानना । बहुरि तैसैं ही उत्तराभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाट विषैं स्पर्श जानना । बहुरि प्रतर समुद्घात विषैं लोक कौं असंख्यात का भाग दीजिए, तामैं एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र स्पर्श है । जातैं वात वलय का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, तहां व्याप्त न हो है । बहुरि लोकपूरण विषैं स्पर्श सर्व लोक जानना, ऐसा नियम है ।

बहुरि उपपाद विषैं चौदह भाग विषैं छह भाग किंचित् ऊन स्पर्श जानना । जातैं इहां आरण - अच्युत पर्यंत ही की विवक्षा है । इति स्पर्शाधिकारः ।

आगैं काल अधिकार दोय गाथानि करि कहैं हैं—

कालो छल्लेस्साणं, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।
अंतोमुहुत्तमवरं, एगं जीवं पडुच्च हवे ॥५५१॥

कालः षड्लेश्यानां, नानाजीवं प्रतीत्य सर्वाद्धा ।
अंतर्मुहूर्तोऽवरं एकं, जीवं प्रतीत्य भवेत् ॥५५१॥

टीका – कृष्ण आदि छहौं लेश्यानि का काल नाना जीवनि की अपेक्षा सर्वाद्धा कहिये सर्व काल है । बहुरि एक जीव अपेक्षा छहौं लेश्यानि का जघन्यकाल तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण जानना ।

उवहीणं तेत्तीसं, सत्तरससेव होंति दो चेव ।
अट्ठारस तेत्तीसा, उक्कस्सा होंति अदिरेया ५५२॥

उदधीनां त्रयस्त्रिंशत्, सप्तदश सप्तैव भवंति द्वौ चैव ।
अष्टादश त्रयस्त्रिंशत्, उत्कृष्टाः भवंति अतिरेकाः ॥५५२॥

टीका — बहुरि उत्कृष्ट काल कृष्णलेश्या का तेतीस सागर, नीललेश्या का सतरह सागर, कपोतलेश्या का सात सागर, तेजोलेश्या का दोय सागर, पद्मलेश्या का अठारह सागर, शुक्ललेश्या का तेतीस सागर किछू किछू अधिक जानना । सो अधिक का प्रमाण कितना ? सो कहै हैं – यहु उत्कृष्ट काल नारक वा देवनि की अपेक्षा कह्या है । सो नारकी अर देव जिस पर्याय तें आनि उपजै, तिस पर्याय का अंत का अंतर्मुहूर्त काल बहुरि देव नारक पर्याय छोडि जहां उपजै, तहां आदि विषै अंतर्मुहूर्त काल मात्र सोई लेश्या हो हैं । तातैं पूर्वोक्त काल तैं छहौं लेश्यानि का काल विषैं दोय दोय अंतर्मुहूर्त अधिक जानना । बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्या का काल विषैं किंचित् ऊन आधा सागर भी अधिक जानना; जातैं जाकै आयु का अपवर्तन घात भया असा जो घातायुष्क सम्यग्दृष्टी, ताकैं अंतर्मुहूर्त घाटि आधा सागर आयु बधता हो है जैसैं सौधर्म–ईशान विषैं दोय सागर का आयु कह्या है; तहां घातायुष्क सम्यग्दृष्टी कैं अंतर्मुहूर्त घाटि अढाई सागर भी आयु हो है; असैं ऊपर भी जानना । बहुरि असैं ही मिथ्यादृष्टि घातायुष्क कैं पल्य का असंख्यातवां भाग प्रमाण आयु बधता हो है; सो यहु अधिकपना सौधर्म तैं लगाइ सहस्रार स्वर्ग पर्यंत जानना । ऊपर घातायुष्क का उपजना नाहीं, तातैं तहां जो आयु का प्रमाण कह्या है, तितना ही हो है; असैं अधिक काल का प्रमाण जानना । इति कालाधिकारः ।

आगैं अंतर अधिकार दोय गाथानि करि कहै हैं–

अंतरमवरुक्कस्सं, किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।
उवहीणं तेत्तीसं, अहियं होदि त्ति णिद्दिट्ठं ॥५५३॥

तेउतियाणं एवं, णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु ।
पोग्गलपरिवट्टा हु, असंखेज्जा होंति णियमेण ॥५५४॥

अंतरमवरोत्कृष्टं, कृष्णत्रयाणां मुहूर्तांतस्तु ।
उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टम् ॥५५३॥

तेजस्त्रयाणामेवं, नवरि च उत्कृष्टविरहकालस्तु ।
पुद्गलपरिवर्ता हि, असंख्येया भवंति नियमेन ॥५५४॥

टीका – अंतर नाम विरह काल का है । जैसें कोई जीव कृष्णलेश्या विषें प्रवर्तें था, पीछैं कृष्ण कौं छोडि अन्य लेश्यानि कौं प्राप्त भया । सो जितनें काल पर्यंत फिर तिस कृष्णलेश्या कौं प्राप्त न होइ, तीहिं काल का नाम कृष्णलेश्या का अंतर कहिये । असैं ही सर्वत्र जानना । सो कृष्णादिक तीन लेश्यानि विषें जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण है । बहुरि उत्कृष्ट किछू अधिक तेतीस सागर प्रमाण है ।

तहां कृष्णलेश्या विषें अंतर कहै हैं—

कोई जीव कोडि पूर्व वर्षमात्र आयु का धारी मनुष्य गर्भ तैं लगाय आठ वर्ष होनें विषें छह अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं, तहां कृष्णलेश्या कौं प्राप्त भया, तहां अंतर्मुहूर्त तिष्ठि करि नील लेश्या कौं प्राप्त भया । तब कृष्णलेश्या के अंतर का प्रारंभ कीया । तहां एक - एक अंतर्मुहूर्त मात्र अनुक्रम तैं नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ललेश्या कौं प्राप्त होइ, आठ वर्ष का अंत के समय दीक्षा धरी, तहां शुक्ललेश्या सहित किछू घाटि कोडि पूर्व पर्यंत संयम कौं पालि, सर्वार्थसिद्धि कौं प्राप्त भया । तहां तेतीस सागर पूर्ण करि मनुष्य होइ, अंतर्मुहूर्त पर्यंत शुक्ललेश्या रूप रह्या । पीछैं अनुक्रम तैं एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र पद्म, पीत, कपोत, नील लेश्या कौं प्राप्त होइ, कृष्ण लेश्या कौं प्राप्त भया; असे जीव कैं कृष्ण लेश्या का दश अंतर्मुहूर्त अर आठ वर्ष घाटि कोटि पूर्व इन करि अधिक तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट अंतर जानना । असें ही नील लेश्या अर कपोत लेश्या विषें उत्कृष्ट अंतर जानना । विशेष इतना जो तहां दश अंतर्मुहूर्त कहे हैं, नील विषें आठ कपोत विषें छह अंतर्मुहूर्त ही अधिक जानने ।

अब तेजो लेश्या का उत्कृष्ट अंतर कहैं हैं–

कोई जीव मनुष्य वा तिर्यंच तेजोलेश्या विषें तिष्ठै था, तहां स्यों कपोतलेश्या कौं प्राप्त भया, तब तेजोलेश्या के अंतर का प्रारंभ कीया । तहां एक - एक अंतर्मुहूर्त

पर्यंत कपोत, नील, कृष्ण लेश्या कौं प्राप्त होइ, एकेंद्री भया। तहां उत्कृष्टपनैं आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण जे पुद्गल द्रव्य परिवर्तन, तिनिका जितना काल होइ, तितने काल भ्रमण कीया; पीछैं विकलेंद्री भया। तहां उत्कृष्टपनैं संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल भ्रमण कीया; पीछैं पंचेंद्री भया। तहां प्रथम समय तैं लगाइ एक - एक अंतर्मुहूर्त काल विषैं अनुक्रम तैं कृष्ण, नील, कपोत कौं प्राप्त होइ, तेजो लेश्या कौं प्राप्त भया। अैसे जीव कैं तेजोलेश्या का छह अंतर्मुहूर्त सहित अर संख्यात सहस्र वर्ष करि अधिक आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना।

अब पद्म लेश्या का अंतर कहैं हैं–

कोई जीव पद्मलेश्या विषैं तिष्ठता था, ताकौं छोडि तेजोलेश्या कौं प्राप्त भया, तब पद्म के अंतर का प्रारंभ कीया। तहां तेजोलेश्या विषैं अंतर्मुहूर्त तिष्ठि करि सौधर्म - ईशान विषैं उपज्या, तहां पल्य का असंख्यातवां भाग करि अधिक दोय सागर पर्यंत रह्या। तहां स्यों चय करि एकेंद्री भया। तहां आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन काल मात्र भ्रमण करि पीछैं विकलेंद्री भया। तहां संख्यात सहस्र वर्ष कालमात्र भ्रमण करि पंचेंद्री भया। तहां प्रथमसमय तैं लगाइ, एक - एक अंतर्मुहूर्त कृष्ण, नील, कपोत, तेजोलेश्या कौं प्राप्त होइ, पद्मलेश्या कौं प्राप्त भया। अैसे जीव कैं पद्मलेश्या का पंच अंतर्मुहूर्त अर पल्य का असंख्यातवां भाग करि अधिक दोय सागर अर संख्यात हजार वर्षनि करि अधिक आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना।

आगैं शुक्ल लेश्या का अंतर कहै हैं–

कोई जीव शुक्ललेश्या विषैं तिष्ठै था, तहांस्यों पद्मलेश्या कौं प्राप्त भया। तब शुक्ललेश्या का अंतर का प्रारंभ भया। तहां क्रम तैं एक-एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र पद्म - तेजोलेश्या कौं प्राप्त होइ सौधर्म - ईशान विषैं उपजि, तहां पूर्वोक्त प्रमाण काल रहि, तहां पीछैं एकेंद्री होइ, तहां भी पूर्वोक्त प्रमाण काल मात्र भ्रमण करि, पीछैं विकलेंद्री होइ, तहां भी पूर्वोक्त प्रमाण कालमात्र भ्रमण करि, पंचेंद्री होइ, प्रथम समय तैं एक-एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र क्रम तैं कृष्ण, नील, कपोत, तेज, पद्मलेश्या कौं प्राप्त होइ, शुक्ललेश्या कौं प्राप्त भया। अैसैं जीव कैं सात अंतर्मुहूर्त अर संख्यात सहस्र वर्ष अर पल्य का असंख्यातवां भाग करि अधिक दोय सागर करि अधिक

आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंतर जानना । इति अंतराधिकारः ।

आगें भाव अर अल्पबहुत्व अधिकारनि कौं कहैं हैं—

भावादो छल्लेस्सा, ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु ।
दव्वपमाणे सिद्धं, इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ॥५५५॥

भावतः षड् लेश्या, औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु ।
द्रव्यप्रमाणे सिद्धमिति, लेश्या वर्णिता भवंति ॥५५५॥

टीका – भाव करि छहौ लेश्या औदयिक भावरूप जाननी; जातैं कषाय संयुक्त योगनि की प्रवृत्ति का नाम लेश्या है । सो ते दोऊ कर्मनि के उदय तें हो है । इति भावाधिकारः ।

बहुरि तिनि लेश्यानि का अल्प बहुत्व पूर्वे संख्या अधिकार विषें द्रव्य प्रमाण करि ही सिद्ध है । जिनका प्रमाण थोडा सो अल्प, जिनिका प्रमाण घणा सो बहुत । तहां सबतैं थोरे शुक्लेश्यावाले जीव हैं; ते पणि असंख्यात है । तिनि तैं असंख्यातगुणे पद्मलेश्यावाले जीव हैं । तिनि तैं संख्यातगुणे तेजोलेश्यावाले जीव हैं । तिनि तैं अनंतानंत गुणे कपोतलेश्यावाले जीव हैं । तिनि तैं किछू अधिक नीललेश्यावाले जीव हैं । तिनि तैं किछू कृष्णलेश्यावाले जीव हैं । इति अल्पबहुत्वाधिकारः ।

ऐसें छहौ लेश्या सोलह अधिकारनि करि वर्णन करी हुई जाननी ।

आगें लेश्या रहित जीवनि कौं कहैं हैं—

किण्हादिलेस्सरहिया, संसारविणग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता, अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ॥५५६॥

कृष्णादिलेश्यारहिताः, संसारविनिर्गता अनन्तसुखाः ।
सिद्धिपुरं संप्राप्ता, अलेश्यास्ते ज्ञातव्याः ॥५५६॥

टीका – जे जीव कषायनि के उदय स्थान लिएं योगनि की प्रवृत्ति के अभाव तें कृष्णादि लेश्यानि करि रहित हैं, तिस ही तैं पंच प्रकार संसार समुद्र तैं निकसि

पार भए हैं । बहुरि अतींद्रिय – अनंत सुख करि तृप्त हैं । बहुरि आत्मा की उपलब्धि है लक्षण जाका, ऐसी सिद्धिपुरी कौं सम्यक् पनैं प्राप्त भए हैं, ते अयोगकेवली वा सिद्ध भगवान लेश्या रहित अलेश्य जानने ।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा भाषाटीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित बीस प्ररूपणा तिनिविषैं लेश्यामार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा पंद्रह्वां अधिकार संपूर्ण भया ।।१५।।

जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोग का अभ्यास करते हैं, उन्हें यह उसके विशेषणरूप भासित होता है। जो जीवादिक तत्त्वों को आप जानता है, उन्हीं के विशेष करणानुयोग में किये हैं, वहाँ कितने ही विशेषण तो यथावत निश्चयरूप हैं, कितने ही उपचार सहित व्यवहाररूप हैं, कितने ही द्रव्य-क्षेत्र-काल भावादिक के स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, कितने ही निमित्त आश्रयादि अपेक्षा सहित हैं,–इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषण निरूपित किये हैं, उन्हें ज्यों का त्यों मानता हुआ उस करणानुयोग का अभ्यास करता है।

इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है। जैसे–कोई यह तो जानता था कि यह रत्न है, परंतु उस रत्न के बहुत से विशेषण जानने पर निर्मल रत्न का पारखी होता है, उसी प्रकार तत्त्वों को जानता था कि यह जीवादिक हैं, परन्तु उन तत्त्वों के बहुत विशेष जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान निर्मल होने पर आप ही विशेष धर्मात्मा होता है।

पण्डित टोडरमलः मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ०–२७०

सोलहवां अधिकार : भव्य-मार्गणा

इष्ट फलत सब होत पुनि, नष्ट अनिष्ट समाज ।
जास नामतैं सो भजौं, शांति नाथ जिनराज ।।

आगैं भव्य मार्गणा का अधिकार च्यारि गाथानि करि कहै हैं—

भविया सिद्धी जेसिं, जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाऽभव्वा, संसारादो ण सिज्झंति ।।५५७।।

भव्या सिद्धिर्येषां, जीवानां ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
तद्विपरीता अभव्याः, संसारान्न सिद्ध्यन्ति ।।५५७।।

टीका – भव्याः कहिए होनेयोग्य वा होनहार है सिद्धि कहिये अनंत चतुष्टय रूप स्वरूप की प्राप्ति जिनकैं, ते भव्य सिद्ध जानने । याकरि सिद्धि की प्राप्ति अर योग्यता करि भव्यनि कै द्विविधपना कह्या है ।

भावार्थ – भव्य दोय प्रकार हैं । केई तो भव्य असैं हैं जे मुक्ति होने कौं केवल योग्य ही हैं; परि कबहू सामग्री कौं पाइ मुक्त न होंइ । बहुरि केई भव्य असे हैं, जे काल पाइ मुक्त होहिंगे । बहुरि तद्विपरीताः कहिए पूर्वोक्त दोऊ लक्षण रहित जे जीव मुक्त होने योग्य भी नहीं अर मुक्त भी होते नाहीं, ते अभव्य जानने । तातैं ते वे अभव्य जीव संसार तैं निकसि कदाचित मुक्ति कौं प्राप्त न हो हैं; असा ही केई द्रव्यत्व भाव है ।

इहां कोऊ भ्रम करैंगा जो अभव्य मुक्त न होइ तौ दोऊ प्रकार के भव्यनि कैं तौ मुक्त होना ठहर्या तौ जे मुक्त होने कौं योग्य कहे थे, तिन भव्यनि कैं भी कबहू तौ मुक्ति प्राप्ति होसी सो असे भ्रम कौं दूर करै हैं—

भव्वत्तणस्स जोग्गा, जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमे णियमा, ताणं कणओवलाणमिव ।।५५८।।

भव्यत्वस्य योग्या, ये जीवास्ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
न हि मलविगमे नियमात्, तेषां कनकोपलानामिव ।।५५८।।

टीका — जे भव्य जीव भव्यत्व जो सम्यग्दर्शनादि सामग्री कौं पाइ, अनंत चतुष्टय रूप होना, ताकौं केवल योग्य ही हैं, तद्रूप होने के नाहीं, ते भव्य सिद्ध हैं। सदा काल संसार कौं प्राप्त रहैं हैं। काहे तैं ? सो कहिये हैं – जैसें केई सुवर्ण सहित पाषाण असें है, तिनके कदाचित् मैल के नाश करने की सामग्री न मिले, तैसें केई भव्य असें हैं जिनकें कर्म मल नाश करने की कदाचित् सामग्री नियम करि न संभवै है।

भावार्थ – जैसे अहमिंद्र देवनि कैं नरकादि विषै गमन करने की शक्ति है, परंतु कदाचित् गमन न करैं, तैसें केई भव्य असें हैं, जे मुक्त होने कौं योग्य हैं, परन्तु कदाचित् मुक्त न होइ।

ण य जे भव्वाभव्वा, मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा।
ते जीवा णायव्वा, णेव य भव्वा अभव्वा य ॥५५९॥

न च ये भव्या अभव्या, मुक्तिसुखा अतीतानंतसंसाराः।
ते जीवा ज्ञातव्या, नैव च भव्या अभव्याश्च ॥५५९॥

टीका — जे जीव केई नवीन ज्ञानादिक अवस्था कौं प्राप्त होने के नाहीं; तातैं भव्य भी नाहीं। अर अनंत चतुष्टय रूप भए, तातैं अभव्य भी नाहीं, असे मुक्ति सुख के भोक्ता अनंत संसार रहित भए, ते जीव भव्य भी नाहीं अर अभव्य भी नाहीं; जीवत्व पारिणामिक कौं धरैं हैं; असे जानने।

इहां जीवनि की संख्या कहैं हैं—

अवरो जुत्ताणंतो, अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो, संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

अवरो युक्तानन्तः, अभव्यराशेः भवति परिमाणम्।
तेन विहीनः सर्वः, संसारी भव्यराशेः ॥५६०॥

टीका – जघन्य युक्तानंत प्रमाण अभव्य राशि का प्रमाण है। बहुरि संसारी जीवनि के परिमाण में अभव्य राशि का परिमाण घटाएं, अवशेष रहे, तितना भव्य राशि का प्रमाण है। इहां संसारी जीवनि के परिवर्तन कहिए हैं – परिवर्तन अर परिभ्रमण, संसार ए एकार्थ हैं। सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव, भेद तें परिवर्तन

पंच प्रकार है । तहां द्रव्य परिवर्तन दोय प्रकार है – एक कर्म द्रव्य परिवर्तन, एक नोकर्म द्रव्य परिवर्तन ।

तहां नोकर्म द्रव्य परिवर्तन कहिए हैं —

किसी जीव नें औदारिकादिक तीन शरीरनि विषें किसी ही शरीर संबंधी छह पर्याप्ति रूप परिणमने कौं योग्य पुद्गल किसी एक समय में ग्रहे, ते स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादिक करि तीव्र, मंद, मध्य भाव लीए, यथा संभव ग्रहे, बहुरि ते द्वितीयादि समयनि विषें निर्जरा रूप कीए । बहुरि अनंत बार अगृहीतनि कौं ग्रहि करि छोडे, अनंत बार मिश्रनि कौं ग्रहि करि छोड़े, बीचि ग्रहीतानि कौं अनंत बार ग्रहि करि छोड़े, असें भए पीछें जे पहिले समय पुद्गल ग्रहे, तेई पुद्गल तैसें ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण गंधादिक करि तिस ही जीव कैं नोकर्म भाव कौं प्राप्त होंइ, तितना समुदायरूप काल मात्र नोकर्म द्रव्य परिवर्तन है । जीव करि पूर्वे ग्रहे असे परमाणू जिन समयप्रबद्ध रूप स्कंधनि विषें होंइ, ते गृहीत कहिए । बहुरि जीव करि पूर्वे न ग्रहे असे परमाणू जिनिविषें होंइ, ते अगृहीत कहिये । गृहीत अर अगृहीत दोऊ जाति के परमाणू जिनि विषें होंइ, ते मिश्र कहिए ।

इहां कोऊ कहै अगृहीत परमाणू कैसें हैं ?

ताका समाधान – सर्व जीवराशि के प्रमाण कौं समय प्रबद्ध के परमाणूनिका परिमाण करि गुणिए । बहुरि जो प्रमाण आवें, ताकौं अतीत काल के समयनि का परिमाण करि गुणिए, जो प्रमाण होइ, तिसतें भी पुद्गल द्रव्य का प्रमाण अनंत गुणा है , जातें जीव राशि तें अनंत वर्गस्थान गए पुद्गलराशि हो है । तातें अनादिकाल नाना जीवनि की अपेक्षा भी अगृहीत परमाणू लोक विषें बहुत पाइए है । बहुरि एक जीव का परिवर्तन काल की अपेक्षा नवीन परिवर्तन प्रारंभ भया; तब सर्व ही अगृहीत भए । पीछें ग्रहे तेई ग्रहीत हो हैं । सो इहां जिस अपेक्षा गृहीत, अगृहीत, मिश्र कहे हैं; सो यथासंभव जानना । अब विशेष दिखाइए हैं —

पुद्गल परिवर्तन का काल तीन प्रकार है । तहां अगृहीत के ग्रहण का काल, सो अगृहीत ग्रहण काल है । गृहीत के ग्रहण का काल, सो गृहीत ग्रहण काल है । मिश्र के ग्रहण का काल, सो मिश्र ग्रहण काल है । सो इनिका परिवर्तन जो पलटना सो कैसे हो है ? सो अनुक्रम यंत्र करि दिखाइए हैं–

यंत्र विषैं अगृहीत की सहनानी तौ बिंदी ।।०।। जाननी अर मिश्र की सहनानी हंसपद ।।+।। जाननी । अर गृहीत की सहनानी एक का अंक ।।१।। जाननी । अर दोय बार लिखने तैं अनंत बार जानि लेना ।

द्रव्य परिवर्तन का यंत्र-

० ० +	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + ०
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

तहां विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तन का पहिले समय तैं लगाइ, प्रथम बार समयप्रबद्ध विषैं अगृहीत का ग्रहण करै, दूसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करै, तीसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करै अैसैं निरंतर अनंत बार अगृहीत का ग्रहण होइ निवरै तब एक बार मिश्र का ग्रहण करै । याहीतैं यंत्र विषैं पहिले कोठा विषैं दोय बार बिंदी एक बार हंसपद लिख्या ।

बहुरि तहां पीछैं तैसैं ही निरंतर अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करि एक बार मिश्र का ग्रहण करै, अैसैं ही अनुक्रमतैं अनंत अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करि करि एक - एक बार मिश्र का ग्रहण करै; अैसैं ही मिश्र का भी ग्रहण अनंत बार हो है । याहीतैं अनंत बार की सहनानी के निमित्त यंत्र विषैं जैसा पहिला कोठा था, तैसाही दूसरा कोठा लिख्या ।

बहुरि तहां पीछैं तैसैं ही निरंतर अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करि एक बार गृहीत का ग्रहण करै, याहीतैं तीसरा कोठा विषैं दोय बिंदी अर एक का अंक लिख्या । बहुरि अगृहीत ग्रहण आदि अनुक्रम तैं जैसैं यहु एक बार गृहीत ग्रहण भया, तैसैं ही अनुक्रम तैं एक - एक बार गृहीत ग्रहण करि अनंत बार गृहीत ग्रहण हो है । याहीतैं जैसैं तीन कोठे पहिले लिखे थे, तैसैं ही अनंत की सहनानी के निमित्त दूसरा तीन कोठे लिखे, सो अैसैं होतैं प्रथम परिवर्तन भया । तातैं इतना प्रथमपंक्ति विषैं लिखा ।

अब दूसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है – पूर्वोक्त अनुक्रम भए पीछै निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करै, तब एक बार अगृहीत ग्रहण करै । यातैं प्रथम कोठा विषैं

दोय हंसपद अर एक बिंदी लिखी । बहुरि निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करि, एक बार अगृहीत ग्रहण करै, सो इस ही क्रम तैं अनंत बार अगृहीत ग्रहण करै; यातैं पहला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या ।

बहुरि तहां पीछैं निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करि एक बार गृहीत ग्रहण करै । यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक एक का अंक लिख्या । सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम लीए, एक - एक बार गृहीत ग्रहण होइ, सो असैं गृहीत ग्रहण भी अनंत बार हो है । यातैं जैसैं पहिले तीन कोठे लिखे थे, तैसे ही दूसरा तीन कोठे लिखे; असैं होत संतैं दूसरा परिवर्तन भया ।

अब तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है – पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरंतर अनंत बार मिश्र का ग्रहण करि एक बार गृहीत का ग्रहण करै; यातैं प्रथम कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक-एक का अंक लिख्या, सो अनंत अनंत बार मिश्र ग्रहण करि-करि एक एक बार गृहीत ग्रहण करि अनंत बार गृहीत ग्रहण हो है । यातैं पहिला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या । बहुरि अनंत बार मिश्रका ग्रहण करि एक बार अगृहीत का ग्रहण करै । यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक बिंदी लिखी; सो जैसैं मिश्र ग्रहणादि अनुक्रम तैं एक बार अगृहीत का ग्रहण भया, तैसैं ही एक एक बार करि अनंत बार अगृहीत का ग्रहण हो है । तातैं पहिले तीन कोठे थे, तैसैं ही दूसरा तीन कोठे लिखे; असैं होत संतैं तीसरा परिवर्तन भया ।

आगैं चौथी पंक्ति का अर्थ दिखाइए हैं - पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरंतर अनंत बार गृहीत का ग्रहण करि एक बार मिश्र का ग्रहण करै, यातैं प्रथम कोठा विषैं दोय एका अर एक हंसपद लिख्या है । सो अनंत अनंत बार गृहीत का ग्रहण करि-करि एक एक बार मिश्र ग्रहण करि अनंत बार मिश्र का ग्रहण हो है । यातैं प्रथम कोठा सारिखा दूसरा कोठा कीया । बहुरि तहां पीछैं अनंत बार गृहीत का ग्रहण करि एक बार अगृहीत का ग्रहण करै; यातै तीसरा कोठा विषैं दोय एका अर एक बिंदी लिखी । बहुरि चतुर्थ परिवर्तन की आदि तैं जैसा अनुक्रम करि यहु एक बार अगृहीत ग्रहण भया । तैसैं ही अनुक्रम तैं अनंत बार अगृहीत ग्रहण होइ, यातैं पहिलें तीन कोठे कीए थे, तैसैं ही आगैं अनंत बार की सहनानी के अर्थि दूसरा तीन कोठे कीए । असैं होते संते चतुर्थ परिवर्तन भया । बहुरि तीहिं चतुर्थ परिवर्तन का अनंतर समय विषैं विवक्षित नोकर्म द्रव्य परिवर्तन के पहिले समय विषैं जे पुद्गल जिस

स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि भाव कौं लीए ग्रहण कीए थे; तेई पुद्गल तिस ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण गंधादि भाव कौं लीए शुद्ध गृहीतरूप ग्रहण कीजिए है; सो यहु सब मिल्या हुवा संपूर्ण नोकर्म द्रव्य परिवर्तन जानना ।

आगें कर्म पुद्गल परिवर्तन कहिए हैं-किसी जीवने एक समय विषें आठ प्रकार कर्मरूप जे पुद्गल ग्रहे, ते एक समय अधिक आवली प्रमाण आबाधा काल कौं गए पीछें द्वितीयादि समयनि विषें निर्जरारूप कीए, पीछें जैसा अनुक्रम आदि तैं लगाइ, अंत पर्यंत नोकर्म द्रव्य परिवर्तन विषें कह्या, तैसा ही अनुक्रम सर्व चारयो परिवर्तन संबंधी इस कर्म द्रव्य परिवर्तन विषें जानना।

विशेष इतना--तहां नोकर्म संबंधी पुद्गल थे,इहां कर्म संबंधी पुद्गल जानने । अनुक्रम विषें किछू विशेष नाहीं । पीछें पहिले समय जैसे पुद्गल ग्रहे थे, तेई पुद्गल तिस ही भाव कौं लीए, चतुर्थ परिवर्तन के अनंतर समय विषें ग्रहण होइ; सो यहु सर्व मिल्या हुआ संपूर्ण कर्म परिवर्तन जानना । इस द्रव्य परिवर्तन कौं पुद्गल परिवर्तन भी कहिए है । सो नोकर्म पुद्गल परिवर्तन का अर कर्मपुद्गल परिवर्तन का काल समान है । बहुरि इहां इतना जानना -- पूर्वे जो क्रम कह्या, तहां जैसें पहिले अनंत बार अगृहीत का ग्रहण कह्या, तहां बीचि बीचि मे गृहीत ग्रहण वा मिश्र ग्रहण भी होइ, सो अनुक्रम विषें तो पहिली बार अर दूसरी बार आदि जो अगृहीत ग्रहण होइ; सोई गिणने में आवै है । अर काल परिमाण विषें गृहीत, मिश्र ग्रहण का समय सहित सर्व काल गिणने में आवै है । जिनि समयनि विषें गृहीत का ग्रहण है, ते समय गृहीत ग्रहण के काल विषें गिणने में आवें हैं । जिनि समयनि विषें मिश्र का ग्रहण हो है, ते समय मिश्र ग्रहण के काल विषें गिणने में आवें है । जिन समयनि विषें अगृहीत ग्रहण हो है, ते समय अगृहीत ग्रहण काल विषें गिणने में आवें हैं; सो यहु उदाहरण कह्या है; असें ही सर्वत्र जानना । क्रम विषें तो जैसा अनुक्रम कह्या होइ, तैसें होइ, तब ही गिणने में आवै । अर तिस अनुक्रम के बीचि कोई अन्यरूप प्रवर्तें, सो अनुक्रम विषें गिणने में नाहीं । अर जिनि समयनि विषें अन्यरूप भी प्रवर्तें है, तिनि समयनिरूप जो काल, सो परिवर्तन का काल विषें गिणने में आवै ही है । असें ही क्षेत्रादि परिवर्तन विषें भी जानना ।

जैसे क्षेत्र परिवर्तन विषें किसी जीवने जघन्य अवगाहना पाई, परिवर्तन प्रारंभ कीया, पीछें केते एक काल अनुक्रम रहित अवगाहना पाई, पीछे अनुक्रमरूप अवगा-

हना कौं प्राप्त भया, तहां क्षेत्र परिवर्तन का अनुक्रम विषैं तौ पहिले जघन्य अवगाहना पाई थी, अर पीछैं दूसरी बार अनुक्रमरूप अवगाहना पाई; सो गिणने में आवै है । अर क्षेत्र परिवर्तन का काल विषैं बीचि में अनुक्रम रहित अवगाहना पावने का काल सहित सर्व काल गिणने में आवै है । असैं ही सर्व विषैं जानि लेना ।

अब इहां द्रव्य परिवर्तन विषैं काल का परिमाण कहैं हैं । तहां अगृहीत ग्रहण का काल अनंत है; तथापि यहु सर्व तैं स्तोक है । जातैं जिनि पुद्गलनि स्यौं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावनि का संस्कार नष्ट है, ते पुद्गल बहुत बार ग्रहण में आवते नाहीं, याही तैं विवक्षित पुद्गल परिवर्तन के मध्य गृहीत पुद्गलनि का ही बहुत बार ग्रहण संभवै है । सोई कह्या है —

सुहमट्ठिदिसंजुत्तं, आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं, दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।

जे पुद्गल कर्मरूप परिणए थे, अर जिनकी स्थिति थोरी थी, अर निर्जरा होते कर्म अवस्था करि रहित भए हैं अर जीव के प्रदेशनि स्यों एक क्षेत्रावगाही तिष्ठैं हैं, अर संस्थान आकार जिनिका कह्या न जाय अर विवक्षित पुद्गल परिवर्तन का पहिला समय विषैं जिस स्वरूप ग्रहण में आए, तिसकरि रहित होंइ, असे पुद्गल, जीव करि बाहुल्य पनैं समयप्रबद्धनि विषैं ग्रहण कीजिए है । असा नियम नाहीं, जो असे ही पुद्गलनि का ग्रहण करैं, परंतु बहुत बार असे ही पुद्गलनि का ग्रहण हो है, जातैं ए पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का संस्कार करि संयुक्त हैं ।

बहुरि अगृहीत ग्रहण के काल तैं मिश्र ग्रहण का काल अनंत गुणा है । बहुरि तिस मिश्र ग्रहण के काल तैं गृहीत ग्रहण का जघन्यकाल अनंत गुणा है । बहुरि तिस तैं सर्व पुद्गल परिवर्तन का जघन्य काल किछू अधिक है । जघन्य गृहीत ग्रहण काल कौं अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना जघन्य गृहीत ग्रहण काल विषैं मिलाइए, तब जघन्य पुद्गल परिवर्तन का काल हो है । बहुरि तिसतैं गृहीत ग्रहण का उत्कृष्ट काल अनंत गुणा है, बहुरि तातैं संपूर्ण पुद्गल परिवर्तन का उत्कृष्ट काल किछू अधिक है । उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण काल कौं अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण काल विषैं मिलाइए, तब उत्कृष्ट पुद्गल परिवर्तन का काल हो है । इहां अगृहीत ग्रहण काल अर मिश्र ग्रहण काल विषैं जघन्य उत्कृ-

ष्टपना नाहीं है । जातैं परंपरा सिद्धांत विषैं तिनके जघन्य उत्कृष्टपने का उपदेश का अभाव है ।

इहां प्रासंगिक (उक्तं च) गाथा कहैं हैं—

अगहिदमिस्सं गहिदं, मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं, गहिदं मिस्सं अगहिदं च ।।

पहिला – अगृहीत, मिश्र, गृहीतरूप; दूसरा – मिश्र, अगृहीत, गृहीतरूप; तीसरा – मिश्र, गृहीत, अगृहीतरूप; चौथा – गृहीत, मिश्र, अगृहीतरूप परिवर्तन भए द्रव्य परिवर्तन हो है । सो विशदरूप पूर्वै कह्या ही है ।

उक्तं च (आर्या छंद)—

सर्वेऽपि पुद्गलाः, खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः, पुद्गलपरिवर्तसंसारे ।।

एक जीव पुद्गल परिवर्तनरूप संसार विषैं यथा योग्य सर्व पुद्गल वारंवार अनंत बार ग्रहि छांडे है ।

आगैं क्षेत्र परिवर्तन कहिए हैं – सो क्षेत्रपरिवर्तन दोय प्रकार – एक स्वक्षेत्र परिवर्तन, एक परक्षेत्र परिवर्तन ।

तहां स्वक्षेत्र परिवर्तन कहिए हैं – कोई जीव सूक्ष्म निगोदिया की जघन्य अवगाहना कौं धारि उपज्या, अपना सांस का अठारहवां भाग प्रमाण आयु कौं भोगि मूवा, बहुरि तिस तैं एक प्रदेश बधती अवगाहना कौं धरैं, पीछैं दोय प्रदेश बधती अवगाहना कौं धरै, ऐसैं एक - एक प्रदेश अनुक्रम तैं बधती - बधती महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना के भेदनि कौं सोई जीव प्राप्त होइ । जे अवगाहना के भेद हैं, ते सर्व एक जीव अनुक्रम तैं यावत्काल विषैं धारैं, सो यहु सर्व समुदायरूप स्वक्षेत्र परिवर्तन जानना ।

अब परक्षेत्र परिवर्तन कहिये हैं—

सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जघन्य अवगाहनारूप शरीर का धारक सो लोकाकाश के मध्य जे आठ आकाश के प्रदेश हैं, तिनकौं अपनें शरीर कीं अवगाहना के मध्यवर्ती आठ प्रदेश करि अवशेष, उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेश, तिनकौं रोक करि उपज्या, सांस का अठारहवां भाग मात्र क्षुद्र भव काल जीय करि मूवा । बहुरि सोई जीव तैसैं ही अवगाहना कौं धारि, तिस ही क्षेत्र विषैं दूसरा उपज्या, सो ऐसैं

घनांगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य अवगाहना के जेते प्रदेश हैं, तितनी बार सौ तैसें ही उपज्या, पीछे तहां स्यों एक प्रदेश आकाश का उसके निकटवर्ती, ताकौं रोकि करि उपज्या, ऐसें अनुक्रम तें एक - एक प्रदेश करि सर्व लोकाकाश के प्रदेशनि कौं अपना जन्मक्षेत्र करै, सो यहु सर्व परक्षेत्र परिवर्तन है।

उक्तं च—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे, देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।

अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ।।

क्षेत्र संसार विषें भ्रमण करता जीव करि जाका अपने शरीर की अवगाहना करि स्पर्श न कीया असा सर्व जगच्छ्रेणी का घन प्रमाण लोक विषें कोई प्रदेश नाहीं है। बहुरि जाकौं बहुत बार अंगीकार न कीया, असा कोई अवगाहना का भेद भी नाहीं।

आगें काल परिवर्तन कहिये है—

कोई जीव उत्सर्पिणी काल का पहिला समय विषें उपज्या, अपना आयु कौं पूर्ण करि मूवा। बहुरि दूसरा उत्सर्पिणी काल का दूसरा समय विषें उपज्या, अपना आयु कौं पूर्णकरि मूवा। बहुरि तीसरी उत्सर्पिणी काल का तीसरा समय विषें उपज्या, तैसें ही मूवा। ऐसें दश कोडाकोडि सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल के जेते समय हैं, तिनकौं पूर्ण करै। बहुरि पीछे इस ही अनुक्रम तें दश कोडाकोडि प्रमाण अवसर्पिणी काल के जेते समय हैं, तिनकौं पूर्ण करै। बहुरि जैसें जन्म की अपेक्षा कह्या, अनुक्रम तैसें ही मरण की अपेक्षा अनुक्रम जानना। पहिले समय विषें मूवा, दूसरे समय विषें मूवा, ऐसें कल्पकाल समयनि कौं पूर्ण करै, सो यहु सर्व मिल्या हूवा काल परिवर्तन जानना।

उक्तं च—

उत्सर्पिण्यवसर्पिणिसमयावलिकासु निरवशेषासु ।

जातो मृतश्च बहुशः, परिभ्रमन् कालसंसारे ।।

काल संसार विषें भ्रमण करता जीव, उत्सर्पिणी अवसर्पिणीरूप कल्प काल का समस्त समय, तिनकी पंकति विषें क्रम तें बहुत बार जन्म धर्या है, अर मरण कीया है।

आगें भव परिवर्त कहै हैं—

कोऊ जीव नरक गति विषें जघन्य आयु दशहजार वर्ष की धारि उपज्या, पीछें मरण करि संसार विषें भ्रमण करि तहां ही जघन्य दश हजार वर्ष की आयु कौं

धारि उपज्या, असें दश हजार वर्ष के जेते समय होंहि, तितनी बार तौ जघन्य आयु कौं ही धारि धारि उपजै अर मरै, पीछै दश हजार वर्ष अर एक समय का आयु कौं धारि उपजै, पीछै दश हजार दोय समय के आयु कौं धारि उपजै, असें एक - एक समय बधता अनुक्रम तें उत्कृष्ट आयुमात्र तेतीस सागर पूरण करै, पीछैं तिर्यंच गति विषैं अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य आयु कौं धारि उपजैं, सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्त के जेते समय होंहि, तितनी बार तौ तिस अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आयु कौं धारि धारि उपजै । पीछैं एक समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु कौं धारि उपजे, पीछैं दोय समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु कौं धारि उपजै, असें एक एक समय अनुक्रम तें बधतें बधतें उत्कृष्ट आयु का तीन पल्य पूर्ण करै । बहुरि मनुष्य गति विषैं तिर्यंच गति की ज्यौं अंतर्मुहूर्त तैं लगाइ तीन पल्य कौं पूर्ण करै । बहुरि देवगति विषैं नरक गति की ज्यौं दश हजार वर्ष तें लगाइ, इकतीस सागर पूर्ण करै, जातैं मिथ्यादृष्टी जीव अनुत्तर अनुदिश विमान विषैं उपजै नाहीं, ऊपरि के ग्रैवेयक पर्यंत ही उपजै, तातैं इकतीस सागर ही कहे, असें भ्रमण करि बहुरि नरक विषैं दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य आयु कौं धारि उपजै, तब यहु सर्व संपूर्ण भव परिवर्तन हो है ।

उक्तं च—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु ।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ।।

मिथ्यात्व करि आश्रित जीव, तीहि नरक का जघन्य आयु आदि उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत आयु विषैं संसार की स्थिति बहुत बार भोगई है ।

आगें भाव परिवर्तन कहिये हैं—

सो भाव परिवर्तन योग स्थान, अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान, कषायाध्यवसाय स्थान, स्थिति स्थान इनि च्यारिनि के परिवर्तन तें हो है; सो प्रथम इनिका स्वरूप कहिये हैं—

प्रकृति बंध, प्रदेश बंध कौं कारण असे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग, तिनिके जे जघन्यादिक स्थान, ते योगस्थान हैं । बहुरि जिनि कषाय युक्त परिणामनि तैं कर्मनि का अनुभाग बंध हो है, तिनिके जघन्यादि स्थान ते अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हैं । बहुरि जिनि कषाय परिणामनि तें स्थिति बंध हो है, तिनिके जघन्यादि स्थान ते इहां

कषायाध्यवसाय स्थान कहे हैं । या स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान भी इनिकौं कहिये । बहुरि बंधनेरूप जो कर्मनि की स्थिति, तिनिके जघन्यादिक स्थान, ते स्थिति स्थान कहिए । इनिका विशेष स्वरूप आगें कहैंगे, सो जानना ।

बहुरि इहां एक-एक स्थिति भेद के बंध के कारण अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान पाइये है । बहुरि एक-एक स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान विषैं यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान पाइये । बहुरि एक एक अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान विषैं जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योग स्थान पाइये हैं ।

अब इनिके परिवर्तन का अनुक्रम ज्ञानावरण कर्म का उदाहरण करि कहिये हैं – कोऊ जीव पंचेंद्री सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी सो अपने योग्य जघन्य ज्ञानावरण नामा कर्म की स्थिति अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाण बांधैं हैं, इस जीव के यातैं घाटि स्थिति बंध होता नाहीं, तातैं याकैं यहु ही जघन्य स्थिति स्थान है, सो कोडि के ऊपरि अर कोडाकोडि के नीचे जो होइ, ताकौं अंतःकोटाकोटी कहिये । तहां तिस जघन्य स्थिति बंध करनेवाले जीव कैं तिस जघन्य स्थितिबंध कौं योग्य असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान पाइये है, ते परिणामनि की अपेक्षा अनंत भागादिक षट् स्थान कौं लीए हैं । बहुरि तिनिविषैं भी जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान कौं निमित्तभूत अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण पाइये है । सो पूर्वोक्त कोऊ जीव कैं अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य ही तौ स्थिति स्थान हैं । अर ताके जघन्य ही कषायाध्यवसाय स्थान है, अर जघन्य ही अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हैं । अर तिस जीव के जैसा योग्य होइ, तैसा जघन्य ही योग स्थान पाइये है, तहां भाव परिवर्तन का प्रारंभ हूवा । बहुरि तिसही जीव के स्थिति स्थान कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान ए तौ तीनों जघन्य ही रहे अर जघन्य तैं असंख्यात भागवृद्धि कौं लीए योग स्थान दूसरा भया, पीछें स्थिति स्थानादिक तीनौं तौ जघन्य ही रहे, अर योग स्थान तीसरा भया । ऐसैं अनुक्रम तैं अविभाग प्रतिच्छेदनि की अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धिरूप चतुःस्थान पतित वृद्धि लीएं श्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण योग स्थान भए । बहुरि स्थिति स्थान अर कषायाध्यवसाय स्थान तौ जघन्य ही रहे, अर अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान का दूसरा स्थान भया । तहां योग स्थान जघन्य तैं लगाइ, पूर्वोक्त प्रकार क्रम तैं सर्व भए । बहुरि स्थिति स्थान अर कषायाध्यवसाय स्थान तौ जघन्य ही रहे,

अर अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान का तीसरा स्थान भया । तहां भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार भए, असें क्रमतें अपने योग असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसायस्थान भए । बहुरि स्थिति स्थान तौ जघन्य ही रह्या, अर कषायाध्यवसाय स्थान का दूसरा स्थान भया । तहां पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननि कौं लीए जघन्य तें लगाइ, अनुभागाध्यवसाय स्थान भए । बहुरि स्थिति स्थान तौ जघन्य ही रह्या, अर कषायाध्यवसाय स्थान का तीसरा स्थान भया । तहां भी पूर्वोक्त प्रकार योग स्थाननि कौं लीए, क्रम तें अनुभागाध्यवसायस्थान भए, असें ही क्रम तें अपने योग्य कषायाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण भए । बहुरि जैसें यहु अंत:कोटाकोटी प्रमाण जघन्य स्थिति स्थान विषें अनुक्रम कह्या, तैसें ही जघन्य तें एक समय अधिक दूसरा स्थिति स्थान विषें अपने योग्य योग स्थान अनुभागाध्यवसाय स्थान के परिवर्तन कौं लीए पूर्वोक्त प्रकार क्रम तें अपने योग्य सर्व कषायाध्यवसाय स्थान भए । बहुरि असें ही जघन्य तें दोय समय अधिक तीसरा स्थिति स्थान विषें भए । असें एक-एक समय बधता स्थिति स्थान का अनुक्रम करि तीस कोड़ाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जानना । बहुरि जैसें यहु ज्ञानावरण अपेक्षा कथन कीया, तैसें ही कर्मनि की सर्व मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिनि विषें परिवर्तन का अनुक्रम जानना । असें यहु सर्व मिल्या हुवा भाव परिवर्तन जानना । इहां जघन्य स्थिति आदि विषें सर्व ही कषायाध्यसाय स्थानादिकनि का पलटना न हो है । जघन्य स्थिति आदि विषें जे संभवें तिन ही का पलटना हो है, असा जानना ।

उक्तं च आर्या छंद—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि ।
स्थानान्यनुभूतानि, भ्रमता भुवि भावसंसारे ॥१॥

लोक विषें भाव संसार विषें भ्रमण करता जीव करि प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बंध कौं योग्य, जे योगनि के, कषायनि के, स्थिति के, स्थान ते सब ही भोगिए है । इहां परिवर्तन का अनुक्रम विषें जघन्य स्थिति स्थान संबंधी स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान, अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान, योग स्थान जघन्य तें लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत हो है । तिनिकौं आदि दे करि सर्वोत्कृष्ट स्थिति पर्यंत अपने-अपने संबंधी जघन्य तें उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति बंधाध्यवसायादिक कौं स्थापि, यथासंभव जैसें गुणस्थान प्ररूपणा विषें प्रमाद भेदनि के निमित्ति अक्षसंचार करि परिवर्तन का विधान कह्या था, तैसें इहां भी अक्षसंचार करि परिवर्तन का विधान जानना । असें ए पंच परिवर्तन कहे ।

अब इनिका काल कहिए हैं-

सर्व तैं स्तोक एक पुद्गलपरिवर्तन का काल हैं, सो अनंत है । बहुरि तातैं अनंत गुणा क्षेत्र परिवर्तन का काल है । बहुरि तातैं अनंत गुणा काल परिवर्तन का काल है । बहुरि तातैं अनंत गुणा भव परिवर्तन का काल है । बहुरि तातैं अनंत गुणा भाव परिवर्तन का काल है । याहीं तैं एक जीव के अनादि तैं लगाइ, अतीत काल विषैं भाव परिवर्तन थोरे भए; ते परिए अनंत भए । बहुरि तिनितैं अनंतगुणे भव परिवर्तन भए । बहुरि तिनितैं अनंत गुणे काल परिवर्तन भए । बहुरि तिनितैं अनंत गुणे क्षेत्र परिवर्तन भए, बहुरि तिनितैं अनंत गुणे द्रव्य परिवर्तन भए, असैं जानना ।

बहुरि जैसैं स्वर्गादि विषैं दिन-रात्रि का अभाव है, तहां मनुष्य क्षेत्र अपेक्षा वर्ष आदि का प्रमाण कीजिए हैं, तैसैं निगोदादि विषै जीवनि के जैसें जहां परिवर्तन का अनुक्रम न हो है । तहां अन्य जीव अपेक्षा परिवर्तन का काल ग्रहण कीजिए है ।

उक्तं च आर्याछंद—

पंचविधे संसारे, कर्मवशाज्जैनदर्शित मुक्तेः
मार्गमपश्यन् प्राणी, नानादुःखकुले भ्रमति ।।

जिनमत करि दिखाया जो मुक्तिका मार्ग, ताकौं न श्रद्धान करता प्राणी जीव नाना प्रकार दुःखनि करि आकुलित जो पंच प्रकार संसार, तीहिविषैं भ्रमण करै है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित गोम्मट सार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं भव्यमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका असा सोलहवां अधिकार संपूर्ण भया ।।१६।।

सतरहवां अधिकार : सम्यक्त्व-मार्गणा

ज्ञान उदधि शशि कुंथु जिन, बंदौ अमितविकास।
कुंथ्वादिक कीए सुखी, जनम मरण करि नाश ।।

आगे सम्यक्त्व मार्गणा कौं कहैं हैं —

छ-प्पंच-णव-विहाणं, अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य, सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।।५६१।।[1]

षट्पञ्चनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानाम्।
आज्ञाया अधिगमेन च, श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ।।५६१।।

टीका – द्रव्य भेद करि छह प्रकार, अस्तिकाय भेद करि पांच प्रकार पदार्थ भेद करि नौ प्रकार असे जो सर्वज्ञ देव करि कहे जीवादिक वस्तु तिनका श्रद्धान– रुचि-यथावत् प्रतीति; सो सम्यक्त्व जानना। सो सर्वदेवने जैसें कह्या है, तैसें ही है। असे आप्तवचन करि सामान्य निर्णयरूप है लक्षण जाका असी जो आज्ञा, तीहिकरि बिना ही प्रमाण नयादिक का विशेष जानें, श्रद्धान हो है। अथवा प्रत्यक्ष - परोक्ष प्रमाण अर द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक नय अर नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, निक्षेप अर व्याकरणादि करि साधित निरुक्ति अर निर्देश, स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादि करि विशेष निर्णयरूप है लक्षण जाका, असा जो अधिगम, तीहिकरि श्रद्धान हो है।

उक्तं च —

सरागवीतरागात्म-विषयत्वाद् द्विधा स्मृतम्।
प्रशमादिगुणं पूर्वं, परं चात्मविशुद्धिजम् ।।१।।

सम्यक्त्व दोय प्रकार है, एक सराग, एक वीतराग। तहां उपशम, संवेग, आस्तिक्यादिक गुणनिरूप राग सहित श्रद्धान होइ, सो सराग सम्यक्त्व है। बहुरि केवल चैतन्य मात्र आत्मस्वरूप की विशुद्धता मात्र वीतराग सम्यक्त्व है।

---

१. षट्खंडागम – धवला पुस्तक १, पृष्ठ सं. १५३ गाथा सं. ९६, पृष्ठ ३९७, गाथा सं. २१२

उक्तं च –

आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे, चित्तमस्तित्वसंयुतम् ।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं, सम्यक्त्वेन युते नरे ।

सो सम्यग्दृष्टी जीव के सर्वज्ञ देव विषैं, व्रत विषैं, शास्त्र विषैं, तत्त्व विषैं ऐसैं ही है ऐसा अस्तित्वभाव करि संयुक्त चित्त हो है, सो सम्यक्त्व सहित जीव विषैं आस्तिक्य गुण है । ऐसैं अस्तित्ववादीनि करि कहिए हैं अथवा **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'**[1] ऐसा कह्या है अथवा **'तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वम्'**[2] ऐसा कह्या है, सो ए सर्व विशेषण एकार्थ हैं । इनि सबनि का अर्थ यहु जानना–जो यथार्थ स्वरूप लीएं, पदार्थनि का श्रद्धान, सो सम्यक्त्व है ।

उक्तं च –

प्रदेशप्रचयात्कायाः, द्रवणाद्द्रव्यनामकाः ।
परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः, तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥१॥

अर्थ – सम्यक्त्व के श्रद्धान विषैं आवने योग्य जे जीवादिक, ते बहुत प्रदेशनि का प्रचय - समूह कौं धरैं हैं, तातैं काय कहिए । बहुरि अपने गुण पर्यायनि कौं द्रवैं हैं, व्यापैं हैं, तातैं द्रव्य नाम कहिए । बहुरि जीव करि जानने योग्य हैं, तातैं अर्थ कहिए । बहुरि वस्तुस्वरूपपना कौं धरैं हैं, तातैं तत्त्व कहिए । ऐसैं इनिका सामान्य लक्षण जानना ।

आगैं षट्द्रव्यनि के अधिकार कहैं हैं –

छद्दव्वेसु य णामं, उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो ।
अत्थणखेत्तं संखा, ठाणसरूवं फलं च हवे ॥५६२॥

षड्द्रव्येषु च नाम, उपलक्षणानुवादः अस्तित्वकालः ।
अस्तित्वक्षेत्रं संख्या, स्थानस्वरूपं फलं च भवेत् ॥५६२॥

टीका – षट् द्रव्यनि के वर्णन विषैं १. नाम, २. उपलक्षणानुवाद, ३. स्थिति, ४. क्षेत्र, ५. संख्या, ६. स्थानस्वरूप, ७. फल ए सात अधिकार जानने ।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय १, सूत्र २ ।
२. अष्टपाहुड : मोक्षपाहुड, गाथा ३८ ।

तहां प्रथम कह्या जो नाम अधिकार, ताहि कहैं हैं —

जीवाजीवं दव्वं, रूवारूवि त्ति होदि पत्तेयं ।
संसारत्था रूवा, कम्मविमुक्का अरूवगया ॥५६३॥

जीवमजीवं द्रव्यं, रूप्यरूपीति भवति प्रत्येकम् ।
संसारस्था रूपिणः, कर्मविमुक्ता अरूपगताः ॥५६३॥

टीका — सामान्य संग्रह नय अपेक्षा द्रव्य एक प्रकार है । बहुरि सोई द्रव्य भेद विवक्षा करि दोय प्रकार है । एक जीव द्रव्य, एक अजीवद्रव्य, तहां जीव द्रव्य दोय प्रकार है — एक रूपी, अर एक अरूपी, तहां जे जीव संसार अवस्था विषैं तिष्ठै हैं । तिनिकै मूर्तीक पुद्गल का संबंध पाइए है । तातैं तिनकौं रूपी कहिए । बहुरि सिद्ध भगवान् पुद्गलीक कर्म करि मुक्त भए हैं । तातैं तिनकौं अरूपी कहिए । बहुरि अजीव द्रव्य भी रूपी, अरूपी के भेद तैं दोय प्रकार है ।

सो कहिए हैं —

अज्जीवेसु य रूवी, पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि ।
आगासं कालो वि य, चत्तारि अरूविणो होंति ॥५६४॥

अजीवेषु रूपीणि, पुद्गलद्रव्याणि धर्म इतरोऽपि ।
आकाशं कालोऽपि च, चत्वारि अरूपीणि भवंति ॥५६४॥

टीका — अजीव द्रव्यनि विषैं पुद्गल द्रव्य तौ रूपी है । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण संयुक्त मूर्तीक है । बहुरि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य ए च्यारि अरूपी हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित अमूर्तीक हैं ।

इहाँ उक्तं च —

वर्णगंधरसस्पर्शैः, पूरणं गलनं च यत् ।
कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ॥

अर्थ — पूरण अर गलन कौं जो करै, सो पुद्गल कहिए । युक्त होने का नाम पूरण है, अर बिछुडने का नाम गलन है, जातैं वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुणनि करि पूरण गलन कौं स्कंधवत् करै है । जैसैं स्कंध विषैं कोऊ परमाणू मिलै हैं, कोऊ बिछुरै हैं । तैसैं परमाणू विषैं कोऊ वर्णादिक का भेद उत्पन्न हो है, सो मिलै है । कोऊ नष्ट हो है, सो बिछुरै है । तातैं परमाणू हैं, ते पुद्गल कहे हैं ।

बहुरि अैसै परमाणूनि कै पुद्गलपना होतें द्वयणुक आदि स्कंधनि कै कैसें पुद्गलपना है ?

सो कहिए हैं – कोऊ परमाणू मिले है, कोऊ बिछूरे है, सो असा प्रदेशनि का पूरण गलन करि करि जे द्रवैं हैं, द्रवैंगे द्रए, तातें तिनकौं पुद्गल कहिए है । अपने स्वभाव रूप परिणमने का नाम द्रवत्व है; इस द्रवत्व गुण तें द्रव्य नाम पावै है ।

इहां प्रश्न – जो परमाणू कौं अविभाग निरंश कहिए है, सो परमाणू तौ छह कौंण कौं लीएं गोल आकार है; सो जहां छह कोण भए, तहां छह अंश सहज ही आए, तौ निरंश कैसें कहिए ?

उक्तं च –

षट्कोणयुगपद्योगात्परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशित्वे, पिंडं स्यादणुमात्रकम् ।।१।।

अर्थ — युगपत् छह कौण का समुदाय है; तातैं परमाणू कैं छह अंशपना संभवै है । छहौ कौं समानरूप कहतैं संतैं परमाणू मात्र पिंड हो है ।

ताका उत्तर – परमाणू के द्रव्यार्थिक नय करि निरंशपणा है; परंतु पर्यार्थिक नय करि छह अंश कहने में किछू दोष नाहीं ।

उक्तं च –

आद्यंतरहितं द्रव्यं, विश्लेषरहितांशकम् ।
स्कंधोपादानमत्यक्षं, परमाणुं प्रचक्षते ।।१।।

जो द्रव्य आदि अंत रहित है । बहुरि जिस विषै छह अंश पाइए है । ते कबहूं भिन्न भिन्न न हो हैं, तातैं भिन्न भाव रहित अंश कौं धरैं हैं । बहुरि स्कंध ग्रहण की शक्ति का धारक है । बहुरि इंद्रिय गम्य नाहीं है । अैसे द्रव्य कौं परमाणू कहिए है । परमाणू विषै कोणनि की अपेक्षा छह अंश हैं । ते अंश कबहूं भिन्न भिन्न न होइ । अथवा परमाणू तैं छोटा जगत विषैं कोऊ और पदार्थ भी नाहीं है । जिसकी अपेक्षा करि भाग कल्पना कीजिए; तातैं परमाणू कौं अविभाग कहिए है । बहुरि कोणनि की अपेक्षा छह अंश कहिए; तौ भी किछू दोष नाहीं । बहुरि आदिपुराणादि विषैं

परमाणू गोल कह्या है; सो यहु षट्कोण कौं लीए आकार गोल क्षेत्र ही का भेद है, तातैं गोल कह्या है। ऐसे अणू वा स्कंधरूप पुद्गल द्रव्य तौ रूपी अजीव द्रव्य जानना। बहुरि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य ए च्यार्यों अरूपी अजीव द्रव्य जानने इति। नामाधिकार।

उवजोगो वण्णचऊ, लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ॥५६५॥

उपयोगो वर्णचतुष्कं, लक्षणमिह जीवपुद्गलानां तु।
गतिस्थानावगाहवर्तनक्रियोपकारस्तु धर्मचतुर्णाम् ॥५६५॥

टीका – द्रव्यनि के लक्षण कहै हैं। तहां जीव अर पुद्गलनि के लक्षण (क्रमशः) उपयोग अर वर्ण चतुष्क जानना। तहां दर्शन-ज्ञान उपयोग जीवनि का लक्षण है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गलनि का लक्षण है। बहुरि गति, स्थान, अवगाह, वर्तनारूप क्रिया का उपकार ते धर्मादिक च्यारि द्रव्यनि के लक्षण हैं। तहां गतिहेतुत्व धर्म द्रव्य का लक्षण है। स्थितिहेतुत्व अधर्म द्रव्य का लक्षण है। अवगाहहेतुत्व आकाश द्रव्य का लक्षण है। वर्तनाहेतुत्व काल द्रव्य का लक्षण है।

गदिठाणोग्गहकिरिया, जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे।
धम्मतिये ण हि किरिया, मुक्खा पुण साधगा होंति ॥५६६॥

गतिस्थानावगाहक्रिया, जीवानां पुद्गलानामेव भवेत्।
धर्मत्रिके न हि क्रिया, मुख्याः पुनः साधका भवंति ॥५६६॥

टीका – गति, स्थिति, अवगाह ए तीन क्रिया जीव अर पुद्गल ही के पाइए है। तहां प्रदेश तैं प्रदेशांतर विषै प्राप्त होना, सो गति क्रिया है। गमन करि कहीं तिष्ठना, सो स्थिति क्रिया है। गति-स्थिति लीए वास करना, सो अवगाह क्रिया जानना। बहुरि धर्म, अधर्म, आकाश विषै ए क्रिया नाहीं है; जातैं इनके स्थानचलन प्रदेशचलन का अभाव है। तहां अपने स्थान कौं छोडि अन्य स्थान होना, सो स्थान-चलन कहिए। प्रदेशनि का चंचलरूप होना सो प्रदेशचलन कहिए। बहुरि धर्मादिक द्रव्य गति, स्थिति, अवगाह क्रिया के मुख्य साधक हैं।

जीव पुद्गलनि कें जो गति, स्थिति, अवगाह क्रिया हो है; ताकौं निमित्त मात्र ही हैं; सो कहिए हैं —

जत्तस्स पहं ठत्तस्स, आसणं णिवसगस्स वसदी वा ।
गदिठाणोग्गहकरणे, धम्मतियं साधगं होदि ॥५६७॥

यातस्य पंथाः तिष्ठतः, आसनं निवसकस्य वसतिर्वा ।
गतिस्थानावगाहकरणे, धर्मत्रयं साधकं भवति ॥५६७॥

टीका – जैसे गमन करनेवालों कौं पंथा जो मार्ग, सो कारण है । तिष्ठनेवालों कौं आसन जो स्थान, सो कारण है । निवास करनेवालों कौं वसतिका जो बसने का क्षेत्र, सो कारण है । तैसें गति, स्थिति, अवगाह के कारण धर्मादिक द्रव्य हैं । जैसें ते पंथादिक आप गमनादि नाहीं करें है; जीवनि कौं प्रेरक होइ गमनादि नाहीं करावैं है । स्वयमेव जे गमनादि करैं, तिनको कारणभूत हो हैं । सो कारण इतना ही, जो जहां पंथादिक होंइ, तहां ही वे गमनादिरूप प्रवर्तें । तैसें धर्मादिक द्रव्य आप गमनादि नाहीं करैं है; पुद्गलनि कौं प्रेरक होइ गमनादिक क्रिया नाहीं करावैं हैं; स्वयमेव ही गमनादिक क्रियारूप प्रवर्तते जे जीव पुद्गल, तिनकौं सहकारी कारण हो हैं । सो कारण इतना ही जो धर्मादिक द्रव्य जहां होइ, तहां ही गमनादि क्रियारूप जीव पुद्गल प्रवर्तें हैं ।

वत्तणहेदू कालो, वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य, वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ॥५६८॥

वर्तनाहेतुः कालः, वर्तनागुणमवेहि द्रव्यनिचयेषु ।
कालाधारेणैव च, वर्तंते हि सर्वद्रव्याणि ॥५६८॥

टीका – णिच् प्रत्य संयुक्त जो वृतञ् धातु, ताका कर्म विषैं वा भाव विषैं वर्तना शब्द निपजै है, सो याका अर्थ यहु जो वर्तै वा वर्तन मात्र होइ, ताकौं वर्तना कहिए । सो धर्मादिक द्रव्य अपने अपने पर्यायनि की निष्पत्ति विषैं स्वयमेव वर्तमान हैं । तिनकैं बाह्य कोई कारणभूत उपकार बिना सो प्रवृत्ति संभवै नाहीं; तातैं तिनकैं, तिस प्रवृत्ति करावने कौं कारण काल द्रव्य है; ऐसें वर्तना काल का उपकार जानना । इहां णिच् प्रत्यय का अर्थ यहु - जो द्रव्यनि का पर्याय वर्तै है, ताका वर्तावनेवाला काल है ।

तहां प्रश्न — जो जैसें शिष्य पढै है; अर उपाध्याय पढावै है । तहां दोऊनिकें पठनक्रिया देखिए है । तैसें धर्मादिक द्रव्य प्रवर्तें हैं अर काल प्रवर्तावै है; तौ धर्मादिक द्रव्य की ज्यौं काल कैं भी तिनि पर्यायनि का प्रवर्तनरूप क्रिया का सद्भाव आया ।

तहां उत्तर — जो अैसें नाहीं है । इहां निमित्तमात्र वस्तु कौं हेतु का कर्ता कहिए है । जैसें शीतकाल विषें शीत करि शिष्य पढने कौं समर्थ न भए; तहां कारीषा के अग्नि का निमित्त भैया । तब वै पढने लग गए । तहां निमित्त मात्र देखि अैसा कहिए जो कारीषा की अग्नि शिष्यनि कौं पढावै है; सो कारीषा की अग्नि आप पढनेरूप क्रियावान न हो है । तिनिके पढने कौं निमित्तमात्र है । तैसें काल आप क्रियावान न हो है । काल के निमित्त तें वे स्वयमेव परिणवै हैं । तातें अैसा कहिए है । जो तिनिकौं काल प्रवर्तावै है ।

बहुरि तिस काल का निश्चय कैसें होइ ?

सो कहिए हैं - समय, घडी इत्यादिक क्रियाविशेष, तिनिकौं लोक विषें समयादिक कहिए है । बहुरि समय, घडी इत्यादि करि जे पचनादि क्रिया होइ, तिनिकौं लोक विषें पाकादिक कहिए है । तहां तिनि विषें काल अैसा जो शब्द आरोपण कीजिए है । समय काल, घडी काल, पाक काल इत्यादि कहिए है, सो यहु व्यवहार काल मुख्य काल का अस्तित्व कौं कहै है । जातें गौण है, सो मुख्य की सापेक्षा कौं धरै है । जैसें किसी पुरुष कौं सिंह कह्या, तौ तहां जानिए है, जो कोई सिंह नामा पदार्थ जगत विषें पाइए है । अैसें काल का निश्चय कीजिए है । प्रत्यक्ष केवली जानें है ।

बहुरि षट् द्रव्य की वर्तना कौं कारण मुख्य काल है । वर्तना गुण द्रव्यसमूह विषें ही पाइए है; अैसें होतें काल का आधार करि सर्व द्रव्य प्रवर्तें हैं । अपने अपने पर्यायरूप परिणमैं है; यातें परिणमनरूप जो क्रिया, ताकौं परत्व[1] अर अपरत्व जो आगैं पीछेंपना, सो काल का उपकार है ।

इहां प्रश्न जो क्रिया का परत्व - अपरत्व तौ जीव पुद्गल विषें है, धर्मादिक अमूर्तीक द्रव्यनि विषें कैसें संभवै ? सो कहै हैं ।

---

१. तत्वार्थसूत्र में–'वर्तनापरिणाम क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य' अ. ५ सूत्र २२, ।

धम्माधम्मादीणं, अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं ।
हाणीहिं वि वड्ढंतो, हायंतो वट्टदे जम्हा ॥५६९॥

धर्माधर्मादीनामगुरुकलघुकं तु षड्भिरपि वृद्धिभिः ।
हानिभिरपि वर्धमानं हीयमानं वर्तते यस्मात् ॥५६९॥

टीका-जातैं धर्म अधर्मादिक द्रव्यनि कैं अपने द्रव्यत्व कौं कारणभूत शक्ति के विशेष रूप जे अगुरुलघु नामा गुण के अविभाग प्रतिच्छेद, ते अनंत भागवृद्धि आदि षट्स्थान पतित वृद्धि करि तौ बधै हैं । अर अनंतभागहानि आदि षट्स्थान पतित हानि करि घटै हैं, तातैं तहां असें परिणमन विषैं भी मुख्य काल ही कौं कारण जानना ।

ण य परिणमदि सयं सो, ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं, हवदि हु कालो सयं हेदू ॥५७०॥

न च परिणमति स्वयं स, न च परिणमयति अन्यदन्यैः ।
विविधपरिणामिकानां, भवति हि कालः स्वयं हेतुः ॥५७०॥

टीका – सो कालसंक्रम जो पलटना, ताका विधान करि अपने गुणनि करि परद्रव्यरूप होइ नाहीं परिणवै है । बहुरि परद्रव्य के गुणनि कौं अपने विषैं नाहीं परिणमावै है । बहुरि हेतुकर्ता प्रेरक होइकरि भी अन्य द्रव्य कौं अन्य गुणनि करि सहित नाहीं परिणमावै है । तौ नानाप्रकार परिणमनि कौं धरैं जे द्रव्य स्वयमेव परिणमें है, तिनकौं उदासीन सहज निमित्त मात्र हो है । जैसैं मनुष्य कैं प्रभात संबंधी क्रिया कौं प्रभातकाल कारण है । क्रियारूप तौ स्वमेव मनुष्य ही प्रवर्तें हैं, परन्तु तिनिकौं निमित्त मात्र प्रभात का काल हो है, तैसैं जानना ।

कालं अस्सिय दव्वं, सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं, सुद्धणये होदि खणमेत्तं ॥५७१॥

कालमाश्रित्य द्रव्यं, स्वकस्वकपर्यायपरिणतं भवति ।
पर्यायावस्थानं, शुद्धनयेन भवति क्षणमात्रम् ॥५७१॥

टीका – काल का निमित्तरूप आश्रय पाइ, जीवादिक सर्व द्रव्य स्वकीय स्वकीय पर्यायरूप परिणए हैं । तिस पर्याय का जो अवस्थान, जो रहने का काल, सो ऋजुसूत्रनय करि अर्थ पर्याय अपेक्षा एक समय मात्र जानना ।

ववहारो य वियप्पो, भेदो तह पज्जओ त्ति एयट्ठो ।
ववहार-अवट्ठाण-ट्ठिदी हु ववहारकालो दु ॥५७२॥

व्यवहारश्च विकल्पो, भेदस्तथा पर्याय इत्येकार्थः ।
व्यवहारावस्थानस्थितिर्हि व्यवहारकालस्तु ॥५७२॥

टीका — व्यवहार अर विकल्प अर भेद अर पर्याय ए सर्व एकार्थ हैं । इनि शब्दनि का एक अर्थ है । तहां व्यंजन पर्याय का अवस्थान जो वर्तमानपना, ताकरि स्थिति जो काल का परिमाण, सोई व्यवहार काल है ।

अवरा पज्जायठिदी, खणमेत्तं होदि तं च समओ त्ति ।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥५७३॥

अवरा पर्यायस्थितिः, क्षणमात्रं भवति सा च समय इति ।
द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणं भवेत् स तु ॥५७३॥

टीका — द्रव्यनि कै जघन्य पर्याय की स्थिति क्षण मात्र है । सो क्षण नाम समय का है । समीप तिष्ठती दोय परमाणू मंद गमनरूप परिणई, जेता काल विषैं परस्पर उल्लंघन करैं, तिस काल प्रमाण का नाम समय है ।

इहां प्रसंग पाइ दोय गाथा कहै हैं—

णभ एय पयेसत्थो, परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं, जावदियं जादि तं समयकालो ॥१॥

आकाश का एक प्रदेश विषैं तिष्ठता परमाणू मंदगतिरूप परिणई, सो तिस प्रदेश के अनंतरि दूसरा प्रदेश, ताकौं जेता काल करि प्राप्त होइ, सो समय नामा काल है ।

सो प्रदेश कितना है ? सो कहै हैं—

जेत्ती वि खेत्तमेत्तं, अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं, अवरावरकारणं जस्स ॥२॥

जिस परमाणू के आगे पीछैं कौं कारण असा आकाश द्रव्य आकाश विषैं असा कहिए है, जो यहु आकाश इस परमाणू के आगैं है, यहु पीछै है, सो आकाश द्रव्य, तिस परमाणू करि जितना रुकै, व्याप्त होइ, तिस क्षेत्र का नाम प्रदेश कह्या है ।

आगै व्यवहार काल कौं कहैं हैं--

आवलिअसंखसमया, संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्तुस्सासा थोवो, सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥५७४॥

आवलिरसंख्यसमया, संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः ।
सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः, सप्तस्तोका लवो भणितः ॥५७४॥

टीका – जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण समय, तिनिका समूह, सो आवली है । बहुरि संख्यात आवली का समूह सो उश्वास है । सो उश्वास कैसा है ?

उक्तं च--

अड्ढस्स अरणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो, एगो पाणो त्ति आहीदो ॥१॥

जो कोई मनुष्य आढ्य-सुखी होइ, आलस्य रोगादि करि रहित होइ, स्वाधीन होइ, ताका सासोस्वास नामा एक प्राण कह्या है; ताका काल जानना । बहुरि सात उस्वास का समूह, सो स्तोक नामा काल है । बहुरि सात स्तोक का का समूह, सो लव नामा काल है ।

अट्ठत्तीसद्धलवा, नाली बेनालियो मुहुत्तं तु ।
एगसमयेण हीणं, भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥५७५॥

अष्टात्रिंशदर्धलवा, नाली द्विनालिको मुहूर्तस्तु ।
एकसमयेन हीनो, भिन्नमुहूर्तस्ततः शेषः ॥५७५॥

टीका –– साढा अडतीस लवनि का समूह, सो नाली है । नाली नाम घटिका का है । बहुरि दोय घटिका समूह, सो मुहूर्त है । इस मुहूर्त में एक समय घटाइये तब

भिन्न मुहूर्त हो है वा याकौं उत्कृष्ट अंतर्मूहूर्त कहिए । यातैं आगैं दोय समय घाटि मुहूर्त आदि अंतर्मुहूर्त के विशेष जानने । इहां प्रासांगिक गाथा कहै हैं--

ससमयमावलिअवरं, समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्पं, वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥

एक समय अधिक आवली मात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त है । बहुरि एक समय घाटि मुहूर्त मात्र उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । मध्य समय विषैं दोय समय सहित आवली तैं लगाइ, दोय समय घाटि मुहूर्त पर्यंत असंख्यात भेद लीए, मध्य अंतर्मुहूर्त है । ऐसैं जानहु ।

दिवसो पक्खो मासो, उडु अयणं वस्समेवमादी हु ।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ॥५७६॥

दिवसः पक्षो मासः, ऋतुरयनं वर्षमेवमादिर्हि ।
संख्येयासंख्येयानंता भवंति व्यवहाराः ॥५७६॥

टीका – तीस मुहूर्त मात्र अहोरात्र है । मुख्यपनैं पंचदश अहोरात्र मात्र पक्ष है । दोय पक्ष मात्र एक मास है । दोय मास मात्र एक ऋतु हो है । तीन ऋतु मात्र एक अयन हो है । दोय अयन मात्र एक वर्ष हो है । इत्यादि आवली तैं लगाइ संख्यात, असंख्यात, अनंत पर्यंत अनुक्रम तैं श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, केवलज्ञान का विषय भूत व्यवहार काल जानना ।

ववहारो पुण कालो, माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु ।
जोइसियाणं चारे, ववहारो खलु समाणो त्ति ॥५७७॥

व्यवहारः पुनः कालः, मानुषक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु ।
ज्योतिष्काणां चारे, व्यवहारः खलु समान इति ॥५७७॥

टीका — बहुरि व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्र विषैं प्रगटरूप जानने योग्य हैं; जातैं मनुष्यक्षेत्र विषैं ज्योतिषी देवनि का चलनें का काल अर व्यवहार काल समान है ।

ववहारो पुण तिविहो, तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ।।५७८।।

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्तमानो भविष्यंस्तु ।
अतीतः संख्येयावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ।।५७८।।

टीका — बहुरि व्यवहार काल तीन प्रकार है अतीत, अनागत, वर्तमान । तहां अतीत काल सिद्ध राशि कौं संख्यात आवली करि गुणें, जो प्रमाण होइ, तितना जानना । कैसें ? सो कहिए हैं – छह महीना अर आठ समय माहीं छ सै आठ जीव सिद्ध हो हैं; तो जीव राशि के अनंतवें भाग प्रमाण सर्व सिद्ध केते काल में भये ? असें त्रैराशिक करना । तहां प्रमाण राशि छ सै आठ, फलराशि छह महीना आठ समय, इच्छा राशि सिद्धनि का प्रमाण, सो फल राशि कौं इच्छाराशि करि गुणें, प्रमाणराशि का भाग दीए, लब्धराशि संख्यात आवली करि सिद्धनि कौं गुणें जो प्रमाण होइ, तितना आया । सोई अनादि तें लगाइ अतीत काल का परिमाण जानना।

समओ हु वट्टमाणो, जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो, इदि ववहारो हवे कालो ।।५७९।।

समयो हि वर्तमानो, जीवात् सर्वपुद्गलादपि ।
भावी अनन्तगुणित, इति व्यवहारो भवेत्कालः ।।५७९।।

टीका — वर्तमान काल एक समय मात्र जानना । बहुरि भावी जो अनागत काल, सो सर्व जीवराशि तें वा सर्व पुद्गलराशि तें भी अनंतगुणा जानना । असें व्यवहार काल तीन प्रकार कह्या ।

कालो वि य ववएसो, सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी, अवरो दीहंतरट्ठाई ।।५८०।।

काल इति च व्यपदेशः, सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ।।५८०।।

टीका — काल असा जो लोक विषें कहना है, सो मुख्य काल का अस्तित्व का कहनहारा है । मुख्य बिना गौण भी न होइ । जो सिंह पदार्थ ही न होइ तो यहु पुरुष सिंह असा कैसें कहने में आवै सो मुख्य काल द्रव्य करि नित्य है, तथापि पर्याय

करि उत्पाद व्यय कौं धरै है । तातैं उत्पन्न-प्रध्वंसी कहिए है । बहुरि व्यवहार काल है, सो वर्तमान काल अपेक्षा उत्पाद - व्यय रूप है । तातैं उत्पन्न-प्रध्वंसी है । बहुरि अतीत, अनागत, अपेक्षा बहुत काल स्थिति कौं धरै है । तातैं दीर्घांतर स्थायी है । इहां प्रासांगिक श्लोक कहिये हैं—

निमित्तमांतरं तत्र, योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
बहिर्निश्चयकालस्तु, निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ।।

तीहिं वस्तु विषैं तिष्ठती परिणमनरूप जो योग्यता, सो अंतरंग निमित्त है । बहुरि तिस परिणमन का निश्चय काल बाह्य निमित्त है । असैं तत्त्वदर्शीनि करि निश्चय कीया है । इत्युपलक्षणानुवादाधिकारः ।

छद्दव्वावट्ठाणं, सरिसं तियकालअत्थपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा, मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ।।५८१।।

षड्द्रव्यावस्थानं, सदृशं त्रिकालार्थपर्याये ।
व्यंजनपर्याये वा, मिलिते तेषां स्थितित्वात् ।।५८१।।

टीका – अवस्थान नाम स्थिति का है; सो षट् द्रव्यनि का अवस्थान समान है । काहे तैं ? सो कहिए हैं – सूक्ष्म वचन अगोचर क्षणस्थायी असैं तो अर्थपर्याय अर स्थूल, वचन गोचर चिरस्थायी असैं व्यंजन पर्याय, सो त्रिकाल संबंधी अर्थ पर्याय वा व्यंजन पर्याय मिलैं, तिनि सर्व ही द्रव्यनि की स्थिति हो है । तातैं सर्व द्रव्यनि का अवस्थान समान कह्या । सर्व द्रव्य अनादिनिधन हैं ।

आगैं इस ही अर्थ कौं दृढ करैं हैं—

एय-दवियम्मि जे, अत्थ-पज्जया वियण-पज्जया चा वि ।
तीदाणागद-भूदा, तावदियं तं हवदि दव्वं[1] ।।५८२।।

एकद्रव्ये ये, अर्थपर्याया व्यंजनपर्यायाश्चापि ।
अतीतानागतभूताः तावत्तद् भवति द्रव्यम् ।।५८२।।

---

१ षट्खंडागम–धवला पुस्तक १, पृष्ठ ३८८ गाथा सं० १९९.

टीका — एक द्रव्य विषें जे गुणनि के परिणमनरूप षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि लीए अर्थ पर्याय, बहुरि द्रव्य के आकारादि परिणमनरूप व्यंजन पर्याय, ते अतीत-अनागत अपि शब्द तें वर्तमान संबंधी यावन्मात्र हैं; तावन्मात्र द्रव्य जानना। जातें द्रव्य तिनतें जुदा है नाहीं; सर्व पर्यायनि का समूह सोई द्रव्य है। इति स्थित्य-धिकारः।

आगासं वज्जित्ता, सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं।
वावी धम्माधम्मा, णवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥५८३॥

आकाशं वर्जयित्वा, सर्वाणि लोके चैव न संति बहिः।
व्यापिनौ धर्माधर्मौ, अवस्थितावचलितौ नित्यौ ॥५८३॥

टीका — अब क्षेत्र कहै है; सो आकाश बिना अवशेष सर्वद्रव्य लोक विषें ही हैं, बाह्य अलोक विषें नाहीं हैं। तिन विषें धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य तिल विषैं तेल की ज्यों सर्व लोक विषें व्याप्त है; तातें व्यापी कहिए। बहुरि निजस्थान तें स्थानांतर विषें चले नाहीं है; तातें अवस्थित हैं। बहुरि एक स्थान विषें भी प्रदेशनि का चंचलपना, तिनके नाहीं है; तातें अचलित हैं। बहुरि त्रिकाल विषें विनाश नाहीं है; तातें नित्य है। ऐसें धर्म, अधर्म द्रव्य जाननें। इहां प्रासंगिक श्लोक—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः, कटाकाशतिलेषु च ॥

आधार तीन प्रकार हैं — औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक। तहां चटाई विषें कुमार सोवै है, ऐसा कहिए, तहां औपश्लेषिक आधार जानना। बहुरि आकाश विषें घटादिक द्रव्य तिष्ठैं हैं, ऐसा कहिए; तहां वैषयिक आधार जानना। बहुरि तिल विषैं तेल है, ऐसा कहिए; तहां अभिव्यापक आधार जानना। सो इहां तिलनि विषैं तेल की ज्यों लोकाकाश के सर्व प्रदेशनि विषें धर्म, अधर्म द्रव्य अपने प्रदेशनि करि व्याप्त है। तातें इहां अभिव्यापक आधार है। याहीं तें आचार्यनें धर्म अधर्म द्रव्य कौं व्यापी कह्या है।

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगो त्ति।
अप्पपदेसविप्पणसंहारे वावडो जीवो ॥५८४॥

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्वलोक इति ।
आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ॥५८४॥

टीका – जीव का क्षेत्र कहै हैं, सो शरीरमात्र अपेक्षा तौ सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना तैं लगाइ, एक एक प्रदेश बधता उत्कृष्ट महामत्स्य की अवगाहना पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि समुद्घात अपेक्षा वेदना समुद्घातवाले का एक एक प्रदेश क्षेत्र विषैं बधता बधता महामत्स्य की अवगाहना तैं तिगुणा लंबा, चौड़ा क्षेत्र पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपर एक एक प्रदेश बधता बधता मारणांतिक समुद्घातवाले का स्वयंभू रमण समुद्र का बाह्य स्थंडिल क्षेत्र विषैं तिष्ठता जो महामत्स्य, सो सप्तमनरक विषैं महारौरव नामा श्रेणीबद्ध बिला प्रति कीया जो मारणांतिक समुद्घात तीहिं विषैं पांच सै योजन चौडा, अढाई सै योजन ऊंचा, प्रथम वक्रगति विषैं एक राजू, द्वितीय वक्र विषैं आधा राजू, तृतीय वक्र विषैं छह राजू, लंबाई लीएं जो उत्कृष्ट क्षेत्र हो है; तहां पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि केवलिसमुद्घात विषैं लोकपूरण पर्यंत क्षेत्र जानना । सो असैं सर्व भेदरूप क्षेत्र विषैं अपनें प्रदेशनि का विस्तार - संकोच होतैं जीवद्रव्य व्यापृतं कहिए व्यापक हो है । संकोच होतैं स्तोक क्षेत्र विषैं आत्मा के प्रदेश अवगाहरूप तिष्ठैं हैं । विस्तार होतैं ते फैलिकरि घने क्षेत्र विषैं तिष्ठैं हैं । जातैं जीव कैं अवगाहना का भेद वा उपपाद वा समुद्घात भेद सर्व ही संभवै है । तातैं पूर्वोक्त जीव का क्षेत्र जानना ।

पोग्गलदव्वाणं पुण, एयपदेसादि होंति भजणिज्जा ।
एक्केक्को दु पदेसो, कालाणूणं धुवो होदि ॥५८५॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशादयो भवन्ति भजनीयाः ।
एकैकस्तु प्रदेशः, कालाणूनां ध्रुवो भवति ॥५८५॥

टीका – पुद्गलद्रव्यनि का एक प्रदेशादिक यथासंभव भजनीय कहिए भेद करने योग्य क्षेत्र जानना, सो कहिए हैं – दोय अणू का स्कंध एक प्रदेश विषैं तिष्ठै वा दोय प्रदेशनि विषैं तिष्ठै, बहुरि तीन परमाणूनि का स्कंध एक प्रदेश वा दोय प्रदेश वा तीन प्रदेश विषैं तिष्ठै, असैं जानना । बहुरि कालाणू एक एक लोकाकाश का प्रदेश विषैं एक एक पाइए है, सो ध्रुवरूप है, भिन्न भिन्न सत्त्व धरैं है; तातैं तिनिका क्षेत्र एक एक प्रदेशी है–

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा ।
लोगागासेव ठिदी, एगपदेसो अणुस्स हवे ॥५८६॥

संख्येयासंख्येयानंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः ।
लोकाकाशे एव, स्थितिरेकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ॥५८६॥

टीका - दोय अणू का स्कंध तैं लगाइ, पुद्गल स्कंध संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणूरूप है । तथापि ते वे सर्व लोकाकाश ही विषै तिष्ठें हैं । जैसें संपूर्ण जल करि भर्‌या हूवा पात्र विषै क्रम तै गेरे हुवे लवण, भस्मी, सूई आदि एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठै हैं; तैसें जानना । बहुरि अविभागी परमाणू का क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र ही है-

लोगागासपदेसा, छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं, अण्णेहिं विवज्जियं होदि ॥५८७॥

लोकाकाशप्रदेशाः, षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति ।
सर्वमलोकाकाशमन्यैर्विवर्जितं भवति ॥५८७॥

टीका – लोकाकाश के प्रदेश सर्व ही षट्द्रव्यनि करि सदाकाल प्रगट व्याप्त हैं । बहुरि अलोकाकाश सर्व ही अन्य द्रव्यनि करि रहित है । इति क्षेत्राधिकारः ।

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु ।
धम्मतियं एक्केक्कं, लोगपदेसप्पमा कालो ॥५८८॥

जीवाः अनंतसंख्या, अनंतगुणाः पुद्गला हि ततस्तु ।
धर्मत्रिकमेकैकं, लोकप्रदेशप्रमः कालः ॥५८८॥

टीका – संख्या कहै हैं – तहां द्रव्य परिमाण करि जीव द्रव्य अनंत हैं । बहुरि तिनि तैं अनंत गुणे पुद्गल के परमाणू हैं । बहुरि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य एक-एक ही हैं; जातैं ए तीनौं अखंड द्रव्य हैं । बहुरि जेते लोकाकाश के प्रदेश हैं, तितनै कालाणू हैं----

लोगागासपदेसे, एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव, ते कालाणू मुणेयव्वा[1] ॥५८९॥

१-द्रव्यसंग्रह गाथा सं. २२

लोकाकाशप्रदेशे, एकैके ये स्थिता हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिरिव, ते कालाणवो मंतव्याः ॥५८९॥

टीका – लोकाकाश का एक-एक प्रदेश विषैं जे एक-एक तिष्ठै हैं । जैसैं रत्ननि की राशि भिन्न-भिन्न तिष्ठैं, तैसैं जे भिन्न-भिन्न तिष्ठैं हैं, ते कालाणू जानने ।

ववहारो पुण कालो, पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा, आगासपदेसपरिसंखा ॥५९०॥

व्यवहारः पुनः कालः, पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः ।
ततः अनंतगुणिता, आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥५९०॥

टीका – बहुरि व्यवहार काल पुद्गल द्रव्य तैं अनंत गुणा समयरूप जानना । बहुरि तिनि तैं अनंतगुणी सर्व आकाश के प्रदेशनि की संख्या जाननी ।

लोगागासपदेसा, धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण, परमाणु-अवट्ठिदं खेत्तं ॥५९१॥

लोकाकाशप्रदेशा, धर्माधर्मैकजीवगप्रदेशाः ।
सदृशा हि प्रदेशः, पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रम् ॥५९१॥

टीका – लोकाकाश के प्रदेश अर धर्मद्रव्य के प्रदेश अर अधर्मद्रव्य के प्रदेश अर एक जीवद्रव्य के प्रदेश सर्व संख्याकरि समान हैं; जातैं ए सर्व जगच्छ्रेणी का घनप्रमाण हैं । बहुरि पुद्गल परमाणू जेता क्षेत्र कौं रोकै, सो प्रदेश का प्रमाण है; तातैं जघन्य क्षेत्र अर जघन्य द्रव्य अविभागी है ।

आगैं क्षेत्र प्रमाण करि छह द्रव्यनि का प्रमाण कीजिए है । तहां जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण है । लोकाकाश के प्रदेशनि तैं अनंत गुणा है । कैसैं ? सो त्रैराशिक करि कहिए है–प्रमाण राशि लोक, अर फलराशि एक शलाका, अर इच्छाराशि जीवद्रव्य का प्रमाण । सो फल करि इच्छा कौं गुणैं, प्रमाण का भाग दीए, लब्धराशि जीवराशि कौं लोक का भाग दीजिए, इतना आया, सो यहु शलाका का परिमाण भया । बहुरि प्रमाण राशि एक शलाका, फलराशि लोक, अर इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण, सो पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण जीवराशि कौं लोक का भाग दीए, अनंत पाए; सो जानना । इस अनंत कौं फलराशि लोक करि गुणिए

अर प्रमाण राशि एक का भाग दीजिए, तब लब्धराशि अनंतलोक प्रमाण भया; तातें जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण कहे । ऐसें ही अन्यत्र काल प्रमाणादिक विषें त्रैराशिक करि साधन करि लेना । बहुरि जीवनि तें पुद्गल अनंत गुणे हैं । बहुरि धर्म, अधर्म, लोकाकाश अर काल द्रव्य ए लोकमात्र प्रदेशनि कौं धरें हैं । बहुरि व्यवहार काल पुद्गल द्रव्य तें अनंत गुणा है । बहुरि अलोकाकाश का प्रदेश काल तें अनंत गुणा है ।

बहुरि काल प्रमाण करि जीवद्रव्य का प्रमाण कहिए हैं – प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवनि का परिमाण, इहां लब्धराशिप्रमाण शलाका अनंत भई । बहुरि प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि अतीतकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण, सो पूर्वोक्त प्रकार फल करि इच्छा कौं गुणें, प्रमाण का भाग दीएं, लब्धराशि प्रमाण अतीत काल तें अनंत गुणा जीवनि का प्रमाण जानना । इनि तें पुद्गल द्रव्य अर व्यवहार काल के समय अर अलोकाकाश के प्रदेश अनंत गुणे अनंत गुणे क्रम तें अनंत अतीत काल मात्र जानने ।

बहुरि धर्मादिक का प्रमाण कहिए हैं - प्रमाण कल्पकाल, फल एक शलाका, इच्छा लोक प्रमाण, तहां लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई । बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल कल्पकाल, इच्छा पूर्वोक्त शलाका प्रमाण, सो यथोक्त करतां लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण, धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल ए च्यार्यौ जानने । बीस कोडाकोडी सागर के संख्याते पल्य भए, तीहि प्रमाण कल्पकाल है । इसतें असंख्यात गुणे धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल के प्रदेश हैं ।

बहुरि भाव प्रमाण करि जीवद्रव्य का प्रमाण विषें प्रमाणराशि जीवद्रव्य का प्रमाण, फल एक शलाका, इच्छा केवलज्ञान लब्धप्रमाण शलाका अनंत, बहुरि प्रमाण राशि शलाका का प्रमाण फलराशि केवलज्ञान, इच्छाराशि एक शलाका, सो यथोक्त करतां लब्धराशि प्रमाण केवलज्ञान के अनंतवे भागमात्र जीवद्रव्य जानने । ते पुद्गल, काल, अलोकाकाश की अपेक्षा च्यारि बार अनंत का भाग केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदनि का प्रमाण कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने जीवद्रव्य हैं । तिनि तें अनंत गुणे पुद्गल हैं । तिनि तें अनंत गुणे काल के समय हैं । तिनि तें अनंत गुणे अलोकाकाश के प्रदेश हैं । तेऊ केवलज्ञान के अनंतवें भाग ही हैं । बहुरि धर्मादिक का प्रमाण विषें प्रमाण लोक, फल एक शलाका, इच्छा अवधिज्ञान के भेद,

लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई । बहुरि प्रमाणराशि शलाका का प्रमाण, फल राशि अवधिज्ञान के भेद, इच्छाराशि एक शलाका, सो यथोक्त करतां अवधिज्ञान के जेते भेद हैं, तिनि के असंख्यातवें भाग प्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल इनि च्यार्यों के एक-एक प्रदेशनि का प्रमाण भया । इति संख्याधिकारः ।

सव्वमरूवी दव्वं, अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि ।
रूवी जीवा चलिया, ति-वियप्पा होंति हु पदेसा ।।५९२।।

सर्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि ।
रूपिणो जीवाश्चलितास्त्रिविकल्पा भवंति हि प्रदेशाः ।।५९२।।

टीका – सर्व अरूपी द्रव्य जो मुक्त जीव अर धर्म अर अधर्म अर आकाश अर काल सो अवस्थित है, अपने स्थान तैं चलते नाहीं । बहुरि इनिके प्रदेश भी अचलित ही हैं; एक स्थान विषें भी चलित नाहीं हैं । बहुरि रूपी जीव, जे संसारी जीव ते चलित हैं; स्थान तैं स्थानांतर विषें गमनादि करें हैं । बहुरि संसारी जीवनि के प्रदेश तीन प्रकार हैं । विग्रह गति विषें सो सर्व चलित ही हैं । बहुरि अयोग-केवली गुणस्थान विषें अचलित ही हैं । बहुरि अविशेष जीव रहे, तिनिके आठ प्रदेश तौ अचलित हैं । अवशेष प्रदेश चलित हैं । (योगरूप परिणमन तैं)[1] इस आत्मा के अन्य प्रदेश तौ चलित हो हैं अर आठ प्रदेश अकंप ही रहैं हैं ।

पोग्गल-दव्वम्हि अणू, संखेज्जादी हवंति चलिदा हु ।
चरिम-महक्खंधम्मि य, चलाचला होंति पदेसा ।।५९३।।

पुद्गलद्रव्ये अणवः, संख्यातादयो भवन्ति चलिता हि ।
चरममहास्कन्धे च, चलाचला भवंति हि प्रदेशाः ।।५९३।।

टीका – पुद्गल द्रव्य विषें परमाणू अर द्वयणुक आदि संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणू के स्कंध, ते चलित हैं । बहुरि अंत का महास्कंध विषें केई परमाणू अचलित हैं; अपने स्थान तैं त्रिकाल विषें स्थानांतर कौं प्राप्त न होइ । बहुरि केई परमाणू चलित हैं; ते यथायोग्य चंचल हो हैं ।

---

१. ब, घ प्रति में 'योगरूप परिणमन तैं' इतना ज्यादा है ।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहि अंतरिया ।
आहार-तेज-भासा-मण-कम्मइया धुवक्खधा ॥५९४॥

सांतरणिरंतरेण य, सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा ।
बादरणिगोदसुण्णा, सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा ॥५९५॥ जुम्मं ।

अणुसंख्यातासंख्यातानन्ताश्च अग्राह्यकाभिरन्तरिताः ।
आहारतेजोभाषामनःकार्माणा ध्रुवस्कन्धाः ॥५९४॥

सान्तरनिरन्तरया च, शून्या प्रत्येकदेह-ध्रुवशून्याः ।
बादरनिगोदशून्याः, सूक्ष्मनिगोदा नभो महास्कन्धाः ॥५९५॥ युग्मम्

टीका — पुद्गल द्रव्य के भेदरूप जे वर्गणा, ते तेईस भेद लीएं हैं – १ अणुवर्गणा, २ संख्याताणुवर्गणा, ३ असंख्याताणुवर्गणा, ४ अनंताणुवर्गणा, ५ आहारवर्गणा, ६ अग्राह्यवर्गणा, ७ तैजस शरीरवर्गणा, ८ अग्राह्यवर्गणा, ९ भाषावर्गणा, १० अग्राह्य वर्गणा, ११ मनोवर्गणा, १२ अग्राह्य वर्गणा, १३ कार्माण वर्गणा, १४ ध्रुव वर्गणा, १५ सांतरनिरंतर वर्गणा, १६ शून्य वर्गणा, १७ प्रत्येक शरीरवर्गणा, १८ ध्रुवशून्य वर्गणा, १९ बादरनिगोद वर्गणा, २० शून्यवर्गणा, २१ सूक्ष्मनिगोद वर्गणा, २२ नभो वर्गणा, २३ महास्कंधवर्गणा ए तेईस भेद जानने ।

इहां प्रासंगिक श्लोक कहिये हैं–

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु, संसारिण्यपि पुद्गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥१॥

मूर्तीक पदार्थनि विषै अर संसारी जीव विषै पुद्गल शब्द प्रवर्तै है । बहुरि अकर्म जाति के कर्मजाति के नोकर्म जाति के जे पुद्गल, तिनि विषै वर्गणा शब्द प्रवर्तै है । सो अब इहां तेईस जाति की वर्गणानि विषै केते केते परमाणू पाइये ? सो प्रमाण कहिये हैं–

तहां अणुवर्गणा तौ एक एक परमाणू रूप है । इस विषै जघन्य, उत्कृष्ट, मध्य भेद भी नाहीं है ।

बहुरि अन्य बाईस वर्गणानि विषें भेद हैं। तहां जघन्य अर उत्कृष्ट भेद, सो कहिये हैं – जघन्य के ऊपरि एक एक परमाणू उत्कृष्ट का नीचा पर्यंत बधावने तें जेते भेद होंहि, तितने मध्य के भेद जानने।

बहुरि संख्याताणुवर्गणा विषें जघन्य दोय अणूनि का स्कंध है। अर उत्कृष्ट उत्कृष्ट संख्यातें अणूनि का स्कंध है।

बहुरि असंख्याताणुवर्गणा विषें[1] जघन्य परीतासंख्यात परमाणूनि का स्कंध है, उत्कृष्ट उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणूनि का स्कंध है। इहां विवक्षित वर्गणा ल्यावने के निमित्त गुणाकार का ज्ञान करना होइ तौ विवक्षित वर्गणा कौं ताके नीचे की वर्गणा का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, सोई गुणाकार का प्रमाण जानना। तिस गुणाकार करि नीचे की वर्गणा कौं गुणें, विवक्षित वर्गणा हो है। जैसें विवक्षित तीन अणू का स्कंध अर नीचे दोय परमाणू का स्कंध, तहां तीन कौं दोय का भाग दीए ड्योढ पाया; सोई गुणाकार है। दोय कौं ड्योढ करि गुणिए, तब तीन होइ; असें सर्वत्र जानना। बहुरि इहां संख्याताणु, असंख्याताणु वर्गणा विषें जघन्य का भाग उत्कृष्ट कौं दीए, जो प्रमाण आवै, सोई जघन्य कौं गुणाकार जानना। इस गुणाकार करि जघन्य कौं गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अनंताणुवर्गणा विषें उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भये जघन्य भेद हो है। अर जघन्य कौं सिद्ध राशि का अनंतवां भाग मात्र जो अनंत, ताकरि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि आहार वर्गणा विषें उत्कृष्ट अनंताणुवर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। बहुरि इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग मात्र जो अनंत, ताका भाग दीये, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तें अधिक भये उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्यवर्गणा है। तींहि विषें उत्कृष्ट आहारवर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए, जघन्य भेद हो है। बहुरि जघन्य भेद कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र जो अनंत करि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है।

---

१. घ प्रति में यहां 'जघन्य' शब्द अधिक मिलता है।

बहुरि ताके ऊपरि तैजसशरीरवर्गणा है। ताहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए, जघन्य भेद हो है। इस जघन्य भेद कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग मात्र अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तें अधिक भए उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है; तीहि विषै उत्कृष्ट तैजस वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र अनंत करि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि भाषा वर्गणा है; तीहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र अनंत का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तें अधिक भए उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है। तीहि विषै उत्कृष्ट भाषावर्गणा तें एक परमाणू अधिक भये जघन्यभेद हो है। इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र अनंत करि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि मनोवर्गणा है, तीहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तें अधिक भएं उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है। तीहि विषै उत्कृष्ट मनोवर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग प्रमाण अनंत करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि कार्माणवर्गणा है; तीहि विषै उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणा तें एक परमाणु अधिक भएं जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र अनंत का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने जघन्य तें अधिक भएं उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि ध्रुववर्गणा है, तहां उत्कृष्ट कार्माण वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं अनंतगुणां जीव राशिमात्र अनंत करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है।

बहुरि ताके ऊपरि सांतर निरंतर वर्गणा है; तहां उत्कृष्ट ध्रुववर्गणा तैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं अनंतगुणा जीवराशि का प्रमाण करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है।

असें जो ए अणुवर्गणा तैं लगाइ पंद्रह वर्गणा कही, ते सदृश परिमाण कौं लीएं, एक एक वर्गणा लोक विषै अनंत पुद्गल राशि का वर्गमूल प्रमाण पाइए है। परि किछू घाटि घाटि क्रम तैं पाइए है। तहां प्रतिभागहार सिद्ध अनंतवां भागमात्र है। सो इस कथन कौं विशेष करि आगें कहिएगा।

बहुरि ताके ऊपरि शून्यवर्गणा है, तहां उत्कृष्ट सांतर निरन्तर वर्गणा तैं एक एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य कौं अनंतगुणा जीवराशि का प्रमाण करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है। असें सोलह वर्गणा सिद्ध भई।

बहुरि ताके ऊपरि प्रत्येक शरीर वर्गणा है; सो एक शरीर एक जीव का होइ, ताकौं प्रत्येक शरीर कहिए। तहां जो विस्रसोपचय सहित कर्म वा नोकर्म, तिनिका एक स्कंध ताकौं प्रत्येक शरीर वर्गणा कहिये। तहां शून्यवर्गणा का उत्कृष्ट तैं एक परमाणू करि अधिक जघन्य भेद हो है; सो यहु जघन्य भेद कहां पाइये है? सो कहिए हैं—

जाका कर्म के अंश क्षयरूप भए है, असा कोई क्षपितकर्मांश जीव, सो कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी मनुष्य होइ, अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपरि सम्यक्त्व अर संयम दोऊ एक काल अंगीकार करि सयोग केवली भया, सो किछू घाटि कोटि पूर्व पर्यंत औदारिक शरीर अर तैजस शरीर की तौ जो प्रकार कह्या है, तैसे निर्जरा करत संता अर कार्माण शरीर की गुण श्रेणी निर्जरा करत संता, अयोगकेवली का अंत समय कौं प्राप्त भया, ताकैं आयु कर्म, औदारिक, तैजस शरीर अधिक नाम, गोत्र, वेदनीय कर्म के परिमाणूनि का समूह रूप जो औदारिक, तैजस, कार्माण, इनि तीनि शरीरनि का स्कंध, सो जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा है। बहुरि इस जघन्य कौं पल्य का असंख्यातवां भागकरि गुणें, उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा हो है। सो कहां पाइए? सो कहिए हैं—

नंदीश्वर नामा द्वीप विषै अकृत्रिम चैत्यालय है। तहां धूप के घड़े हैं। तिनि विषै वा स्वयंभूरमण द्वीप विषै उपजे दावानल, तिनि विषै जे बादर पर्याप्त अग्नि-

काय के जीव हैं, तहां असंख्यात आवली का वर्ग प्रमाण जीवनि के शरीरनि का एक स्कंध है । तहां गुणितकर्मांश कहिए, जिनके कर्म का संचय बहुत हैं, असे जीव बहुत भी होंइ तौ आवली का असंख्यातवां भागमात्र होंइ, तिनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण इनि तीनि शरीरनि का जो एक स्कंध, सो उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा है । बहुरि ताके ऊपरि ध्रुव शून्य वर्गणा है । तहां उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा तें एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौं सब मिथ्यादृष्टी जीवनि का जो प्रमाण, ताकौं असंख्यात लोक का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तीहिं करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि ताके ऊपरि बादर निगोद वर्गणा है, सो बादर निगोदिया जीवनि का विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परिमाणूनि का जो एक स्कंध, ताकौं बादर-निगोद वर्गणा कहिए है । सो ध्रुवशून्य वर्गणा तें एक परमाणू अधिक जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है । सो कहां पाइए है ? सो कहैं हैं—

क्षय कीएं हैं कर्म अंश जानें, असा कोई क्षपितकर्मांश जीव, सो कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारी मनुष्य होइ, गर्भ तें अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपरि सम्यक्त्व अर संयम कौं युगपत अंगीकार करि, किछू घाटि कोडि पूर्ववर्ष पर्यंत कर्मनि की गुणश्रेणी निर्जराकौं करत संता जब अंतर्मुहूर्त सिद्धपद पावने का रह्या, तब क्षपक श्रेणी चढि उत्कृष्ट कर्मनिर्जरा कौं करत संता क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती भया, तिसके शरीर विषें जघन्य वा उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी एक बंधनरूप बंधे पाइए हैं, जातें सर्व स्कंधनि विषें पुलवी असंख्यात लोक प्रमाण कहे हैं । बहुरि एक एक पुलवी विषें असंख्यात लोक प्रमाण शरीर पाइए है । बहुरि एक एक शरीर विषें सिद्धनि तें अनंतगुणे संसारी राशि के असंख्यातवें भागमात्र जीव पाइए है । सो आवली का असंख्यातवां भाग कौं असंख्यात लोक करि गुणें, तहां शरीरनि का प्रमाण भया । ताकौं एक शरीर विषें निगोद जीवनि का जो प्रमाण, ताकरि गुणें, जो प्रमाण भया, तितना तहां एक स्कंध विषें बादर निगोद जीवनि का प्रमाण जानना । तिनि जीवनि कैं क्षीणकषाय गुणस्थान का पहिला समय विषें अनन्त जीव स्वयमेव अपना आयु का नाश तें मरें है । बहुरि दूसरे समय जेते पहिले समय मरे, तिनिकौं आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने पहिले समय मरे जीवनि तें अधिक मरें हैं । इस ही अनुक्रम तें क्षीणकषाय का प्रथम समय तें लगाइ, पृथक्त्व आवली का प्रमाण काल पर्यंत मरें हैं । पीछें पूर्व पूर्व समय संबंधी मरे जीवनि के प्रमाण कौं आवली का संख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ

तितने तितने पहिले पहिले समय तैं अधिक समय समय तैं मरैं हैं । सो क्षीणकषाय गुणस्थान का काल आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण अवशेष रहै तहां ताईं इस ही अनुक्रम तैं मरैं है । ताके अनन्तर समय विषैं पल्य का असंख्यातवां भाग करि पहिले पहिले समय संबंधी जीवनि कौं गुणैं, जितने होंहि तितने तितने मरैं हैं । तहां पीछैं संख्यात पल्य करि पूर्व पूर्व समय सम्बन्धी मरे जीवनि कौं गुणैं, जो जो प्रमाण होइ, तितने तितने मरैं हैं । सो असैं क्षीणकषाय गुणस्थान का अंत समय पर्यंत जानना । तहां अंत के समय विषैं जे जुदे जुदे असंख्यात लोक प्रमाण शरीरनि करि संयुक्त असैं आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी, तिनिविषैं जे गुणितकर्मांश जीव मरे, तिनकरि हीन अवशेष जे अनंतानन्त जीव गुणित कर्मांश रहे । तिनिका विस्रसोपचय-सहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि के परमाणूनि का जो एक स्कंध,सोई जघन्य बादर निगोद वर्गणा है । बहुरि इस जघन्य कौं जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा हो है । सो कैसैं पाइए ? सो कहिए हैं–

स्वयंभूरमण नामा द्वीप विषै जे मूला नै आदि देकरि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती हैं, तिनके शरीरनि विषैं एक बंधन विषैं बंधे जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग-मात्र पुलवी हैं । तिनि विषैं तिष्ठते जे गुणितकर्मांश जीव अनंतानंत पाइये हैं । तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि के परमाणूनि का एक स्कंध, सोई उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा है । बहुरि ताके ऊपरि तृतीय शून्य-वर्गणा है । तहां उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा तैं एक प्रदेश अधिक भए, जघन्य भेद हो है । इस जघन्य कौं सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि ताके ऊपरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है, सो सूक्ष्मनिगोदिया जीवनि का विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परमाणूनि का एक स्कंधरूप जानना । तहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। सो जघन्य भेद कैसैं पाइए है ? सो कहिए हैं —

जल विषैं वा स्थल विषैं वा आकाश विषैं जहां तहां एक बंधन विषैं बंधें, असे जे आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी, तिनिविषैं क्षपितकर्मांश अनंतानन्त सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं । तिनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि का परमाणूनि का जो एक स्कंध, सोई जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है ।

इहां प्रश्न – जो बादरनिगोद उत्कृष्ट वर्गणा विषैं पुलवी श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण कहे अर जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा विषैं पुलवी आवली का असं-

ख्यातवां भाग प्रमाण कहे, तातें बादरनिगोद वर्गणा के पहिलें याकौं कहना युक्त था। जातें पुलवीनि का बहुत प्रमाण तें परमाणूनि का भी बहुत प्रमाण संभवै हैं ?

ताका समाधान – जो यद्यपि पुलवी इहां घाटि कहे हैं; तथापि बादरनिगोद वर्गणा सम्बन्धी निगोद शरीरनि तें सूक्ष्मनिगोद वर्गणा संबन्धी शरीरनि का प्रमाण सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग गुणा है। तातें तहां जीव भी बहुत हैं। तिनि जीवनि कैं तीन शरीर संबंधी परमाणू भी बहुत हैं। तातें बादरनिगोद वर्गणा के पीछे सूक्ष्म निगोद वर्गणा कही है। बहुरि जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा कौं पल्य का असंख्यातवां भाग करि गुणें, उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा हो है, सो कैसें पाइये है ? सो कहिए हैं-

यहां महामत्स्य का शरीर विषें एक स्कंधरूप आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी पाइयें है। तहां गुणितकर्मांश अनंतानंत जीवनि का विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण तीन शरीरनि के परमाणूनि का एक स्कंध, सोई उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा हो है।

बहुरि ताके ऊपरि नभोवर्गणा है। तहां उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा तें एक अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्य भेद कौं जगत्प्रतर का असंख्यातवां भाग करि गुणें, उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि महास्कंध है। तहां उत्कृष्ट नभोवर्गणा तें एक परमाणू अधिक भए, जघन्यभेद हो है। बहुरि इस जघन्य कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, ताकौं जघन्य विषें मिलाये, उत्कृष्ट महास्कंध के परमाणूनि का प्रमाण हो है। ऐसें एक पंक्ति करि तेईस वर्गणा कहीं।

आगें जो अर्थ कह्या, तिस ही कौं संकोचन करि तिन वर्गणानि ही का उत्कृष्ट, जघन्य, मध्य भेदनि कौं वा अल्प-बहुत्व कौं छह गाथानि करि कहैं हैं—

परमाणुवग्गणम्मि ण, अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहक्खंधाणं, वरमहियं सेसगं गुणियं ॥५९६॥

परमाणुवर्गणायां न, अवरोत्कृष्टं च शेषके अस्ति ।
ग्राह्यमहास्कंधानां, वरमधिकं शेषकं गुणितम् ॥५९६॥

टीका – परमाणु वर्गणा विषें जघन्य उत्कृष्ट भेद नाहीं है; जातें अणू अभेद है। बहुरि अवशेष बाईस वर्गणानि विषें जघन्य उत्कृष्ट भेद पाइए हैं। तहां ग्राह्य

कहिए जीव के ग्रहण करने के योग्य अैसी जे आहार, तैजस, भाषा, मनः, कार्माण- वर्गणा । इहां आहार वर्गणा तैं आहार, शरीर, इन्द्री, सासोस्वास ए च्यारि पर्याप्ति हो हैं । तैजस वर्गणा तैं तैजस शरीर हो है । भाषा वर्गणा तैं वचन हो है । मनो वर्गणा तैं मन निपजै है । कार्माण वर्गणा तैं ज्ञानावरणादिक कर्म हो हैं । तातैं इनि पंच वर्गणानि कौं ग्राह्य वर्गणा कही है । अर एक महास्कंध, इनि छहों वर्गणानि का उत्कृष्ट तौ अपने-अपने जघन्य तैं किछू अधिक प्रमाण लीएं है । अर अवशेष सोलह वर्गणानि का उत्कृष्ट भेद अपने-अपने जघन्य कौं गुणकार करि गुणिए, तब हो है ।

सिद्धाणंतिमभागो, पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं, अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ॥५९७॥

सिद्धानंतिमभागः, प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थम् ।
पल्यासंख्येयमंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थम् ॥५९७॥

टीका – ग्राह्य पंच वर्गणा, तिनिका उत्कृष्ट के निमित्त सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र प्रतिभाग है । अपने-अपने जघन्य कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितने जघन्य विषै मिलाएं, अपना-अपना उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि अंत का महास्कंध का उत्कृष्ट का निमित्त पल्य का असंख्यातवां भागमात्र प्रतिभाग है । महास्कंध के जघन्य कौं पल्य का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना जघन्य विषै मिलें, उत्कृष्ट महास्कंध हो है ।

संखेज्जासंखेज्जे, गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्जेसु वि, सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥५९८॥

संख्यातासंख्याताग्रां गुणकारः स तु भवति हि अनंतायाम् ।
चतसृषु अग्राह्यास्वपि, सिद्धानामनंतिमो भागः ॥५९८॥

टीका – संख्याताणुवर्गणा अर असंख्याताणुवर्गणा विषै अपने-अपने उत्कृष्ट कौं अपना-अपना जघन्य का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, सोई गुणकार जानना । इस गुणकार करि जघन्य कौं गुणैं, उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि अनंताणुवर्गणा विषै अर जीव करि ग्रहण योग्य नाहीं । अैसी च्यारि अग्राह्य वर्गणा विषै गुणकार सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र है । इसकरि जघन्य कौं गुणैं, उत्कृष्ट भेद हो है ।

जीवादोणंतगुणो, धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो, असंखलोगवहिदो मिच्छो ॥५९९॥

जीवादनंतगुणो, ध्रुवादितिसृणामसंख्यभागस्तु ।
पल्यस्य ततस्ततः, असंख्यलोकावहिता मिथ्या ॥५९९॥

टीका – बहुरि ध्रुवादिक तीन वर्गणानि विषै जीवराशि तैं अनंतगुणा गुणकार है । याकरि जघन्य कौं गुणैं, उत्कृष्ट हो है । बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणा विषै पल्य का असंख्यातवां भागमात्र गुणकार है । याकरि जघन्य कौं गुणैं, उत्कृष्ट हो है । काहे तें ? सो कहिए हैं । प्रत्येक शरीर वर्गणा विषै जो कार्माण शरीर है । तातैं समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है । तातैं जघन्य समय प्रबद्ध के परमाणू का प्रमाण तें याका प्रमाण पल्य का अर्धच्छेदनि का असंख्यातवां भाग गुणा है । ताकी सहनानी बत्तीस का अंक है । तातैं इहां पल्य का असंख्यातवां भाग का गुणकार कह्या है । बहुरि ध्रुव, शून्य वर्गणा विषै असंख्यात लोक का भाग मिथ्यादृष्टी जीवनि कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितना गुणकार है । याकरि जघन्य कौं गुणैं उत्कृष्ट हो है ।

सेढी-सूई-पल्ला-जगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पणअवरादो, उक्कस्से होंति णियमेण ॥६००॥

श्रेणी-सूची-पल्य, जगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः ।
आत्मात्मनोवरादुत्कृष्टे भवंति नियमेन ॥६००॥

टीका – जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग, बहुरि सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग, बहुरि पल्य का असंख्यातवां भाग, बहुरि जगत्प्रतर का असंख्यातवां भाग ए अनुक्रम तें बादरनिगोदवर्गणा अर शून्यवर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा अर नभोवर्गणा इनि विषै गुणकार है । इनिकरि अपने-अपने जघन्य कौं गुणैं, उत्कृष्ट भेद हो है । इहां शून्यवर्गणा विषै सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग गुणकार कह्या है; सो सूक्ष्म-निगोद वर्गणा का जघन्य एक घाटि भये उत्कृष्ट शून्यवर्गणा हो है; तातैं कह्या है । बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा विषै पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार कह्या है; सो ताके उत्कृष्ट का कार्माण संबंधी समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है । तातैं कह्या है । ऐसैं ए तेईस वर्गणा एक पंक्ति अपेक्षा कहीं । अब नानापंक्ति अपेक्षा कहिए

है । नाना पंक्ति कहा ? जो ए वर्गणा कहीं, ते वर्गणा लोक विषै वर्तमान कोई एक काल में केती-केती पाइए है ? अैसी अपेक्षा करि कहै हैं –

परमाणु वर्गणा तैं लगाइ, सांतरनिरंतरवर्गणा पर्यंत पन्द्रह वर्गणा समान परमाणूनि का स्कंधरूप लोक विषै पुद्गलद्रव्य का जो प्रमाण, ताका जो वर्गमूल, ताका अनंत गुणा कीए, जो प्रमाण होइ, तितनी-तितनी पाइए है । तहां इतना विशेष है जो ऊपरि किछू घाटि-घाटि पाइए है । तहां प्रतिभागहार सिद्धराशि का अनंतवां भाग (मात्र) है । सो कहिए है —

अणुवर्गणा लोक विषै जेती पाइए हैं, तिस प्रमाण कौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण आवैं, तितना अणुवर्गणा का परिमाण में घटाए, जो प्रमाण रहै, तितनी दोय परमाणू का स्कंधरूप संख्याताणुवर्गणा जगत विषैं पाइए है । इसकौं सिद्धराशि का अनंतवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, तितना तिस ही मैं घटाइए, जो प्रमाण रहै, तितनी तीन परमाणू का स्कंध रूप संख्याताणु वर्गणा लोक विषै पाइए है । इस ही अनुक्रम तैं एक-एक अधिक परमाणू का स्कंध का प्रमाण करते जहां उत्कृष्ट संख्याताणुवर्गणा भई, तहां जो प्रमाण भया, ताकौं सिद्ध राशि का अनंतवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण होइ, तितना तिस ही मैं घटाए, जो अवशेष रहै, तितना जघन्य असंख्याताणु वर्गणा लोक विषैं पाइए हैं । याकौं तैसैं ही भाग देइ घटाए, जो प्रमाण रहै, तितनी मध्य असंख्याताणु वर्गणा का प्रथम भेद रूप वर्गणा लोक विषैं पाइए है । सो अैसैं ही एक-एक अधिक परमाणूनि का स्कंध का प्रमाण अनुक्रम तैं सांतरनिरंतर वर्गणा का उत्कृष्ट पर्यंत जानना । सामान्यपनैं सर्व जुदी-जुदी वर्गणानि का प्रमाण अनंत पुद्गल राशि का वर्गमूल मात्र जानना । बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणा का जघन्य तौ पूर्वोक्त अयोग केवली का अन्त समय विषैं पाइए; सो उत्कृष्ट पनैं च्यारि पाइए हैं । बहुरि उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा स्वयंभूरमण द्वीप का दावानलादिक विषैं पाइए; सो उत्कृष्ट पनैं आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है । बहुरि बादर निगोद वर्गणा का जघन्य तौ पूर्वोक्त क्षीण कषाय गुणस्थान का अंत समय विषैं पाइए; सो उत्कृष्ट पनैं च्यारि पाइए है । अर बादर निगोद वर्गणा का उत्कृष्ट महामत्स्यादिक विषैं पाइए; सो उत्कृष्ट पनैं आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है । बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा जघन्य तौ वर्तमान काल विषैं जल में वा स्थल में वा आकाश में आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है, अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा उत्कृष्ट भी आवली का

असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है । इहां प्रत्येक शरीर, बादरनिगोद, सूक्ष्मनिगोद, इनि तीन सचित्तवर्गणानि का मध्य भेद वर्तमान काल विषै असंख्यात लोक प्रमाण पाइए है । बहुरि महास्कंध वर्गणा वर्तमान काल मैं जगत विषैं एक ही है । सो भवनवासीनि के भवन देवनि के विमान, आठ पृथ्वी, मेरु गिरि, कुलाचल इत्यादिकनि का एक स्कंध रूप है ।

इहां प्रश्न – जो जिनि कैं असंख्यात, असंख्यात योजननि का, अन्तर पाइए, तिनिका एक स्कंध कैसें संभवै है ?

ताका उत्तर – जो मध्य विषैं सूक्ष्म परमाणू हैं, सो वे विमानादिक अर सूक्ष्म परमाणू, तिनि सबनि का एक बंधान है । तातैं अंतर नाहीं, एक स्कंध है । सो अैसा जो एक स्कंध है, ताही का नाम महास्कंध है ।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण, रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा, पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ॥६०१॥

अधस्तनोत्कृष्टं पुनः, रूपाधिकमुपरिमं जघन्यं खलु ।
इति त्रयोविंशतिविकल्पानि, पुद्गलद्रव्याणि हि जिनदिष्टानि ॥६०१॥

टीका – तेईस वर्गणानि विषैं अणुवर्गणा बिना अवशेष वर्गणानि कैं जो नीचे का उत्कृष्ट भेद होइ, तामैं एक अधिक भए, ताके ऊपरि जो वर्गणा, ताका जघन्य भेद हो है । अैसें तेईस वर्गणा भेद कौं लीए पुद्गल द्रव्य, जिनदेवनें कहे हैं । इनि विषैं प्रत्येक वर्गणा अर बादरनिगोद वर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा ए तीन सचित्त हैं; जीव सहित हैं, सो इनिका विशेष कहिए हैं –

अयोग केवली का अंतसमय विषैं पाइये अैसी जघन्य प्रत्येक वर्गणा, सो लोक विषैं होइ भी वा न भी होइ, जो होइ तौ एक ही होइ वा दोय होइ वा तीन होइ उत्कृष्ट होइ तौ च्यारि होइ । बहुरि जघन्य तैं एक परमाणू अधिक अैसी मध्य प्रत्येक वर्गणा, सो लोक विषैं होइ वा न होइ; जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा उत्कृष्ट पनैं च्यारि होइ, अैसें ही एक एक परमाणू का बधाव तैं इस ही अनुक्रम तैं जब अनंत वर्गणा होंइ, तब ताके अनंतर जो एक परमाणू अधिक वर्गणा, सो लोक विषैं होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा च्यारि वा उत्कृष्टपनैं पांच होंइ । अैसें एक एक परमाणू बधतैं अनंतवर्गणा पर्यंत पंच ही उत्कृष्ट हैं । ताके अनन्तरि जो

वर्गणा सो होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा उत्कृष्ट छह होइ । अैसैं अनंतवर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट छह ही होइ । बहुरि इस ही अनुक्रम तैं अनंत अनंत वर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट सात, आठ, सात, छह, पांच, च्यारि, तीन, दोय वर्गणा जगत विषैं समान परमाणूनि का प्रमाण लीएं हो हैं । यहु यवमध्य प्ररूपणा है, जैसैं यव नामा अन्न का मध्य मोटा हो है, तैसैं इहां मध्य विषैं वर्गणा आठ कहीं । पहिले वा पीछैं थोडी थोडी कहीं । तातैं याकौं यवमध्य प्ररूपणा कहिए है । सो यहु प्ररूपणा मुक्तिगामी भव्य जीवनि की अपेक्षा है । अैसैं प्रत्येक वर्गणा समान संसारी जीवनि कैं न पाइए है ।

इहां तैं आगैं संसारी जीवनि कैं पाइए अैसी प्रत्येक वर्गणा कहिये हैं—

सो पूर्वैं कथन कीया, ताके अनंतरि पूर्व प्रत्येक वर्गणा तैं एक परमाणू अधिकता लीएं, जो प्रत्येक वर्गणा सो जगत विषैं होइ, वा न होइ. जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन इत्यादि उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ । अैसैं ही अनन्तवर्गणा भए, अनंतरि जो प्रत्येक वर्गणा, सो लोक विषैं होइ वा न होई,जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण पूर्व प्रमाण तैं एक अधिक होइ । अैसैं अनंत अनंत वर्गणा भए, एक एक अधिक प्रमाण उत्कृष्ट विषैं होता जाय, जहां यवमध्य होइ, तहां ताईं अैसैं जानना । यवमध्य विषैं जेता परमाणू का स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा भई, तितने तितने परमाणूनि का स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा जगत विषैं होइ वा न होइ, जो होइ, तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ । यहु प्रमाण इस तैं जो पूर्वप्रमाण तातैं एक अधिक जानना । अैसैं अनंत वर्गणा भएं, अनंतरि जो वर्गणा भई, सो जगत विषैं होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भागप्रमाण होइ । सो यहु प्रमाण यवमध्य संबंधी पूर्वप्रमाण तैं एक घाटि जानना । अैसैं एक एक परमाणू के घटने तैं एक एक वर्गणा होइ । सो अनंत अनंत वर्गणा भए उत्कृष्ट विषैं एक एक घटाइये जहां ताईं उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा होइ, तहां ताईं अैसैं करना । उत्कृष्ट प्रत्येकवर्गणा लोक विषैं होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ । अैसैं प्रत्येक वर्गणा भव्य सिद्ध, अभव्य सिद्धनि की अपेक्षा कही । बहुरि बादरनिगोद वर्गणा का भी कथन प्रत्येक वर्गणावत जानना, किछू विशेष नाहीं । जैसैं प्रत्येक वर्गणा विषैं अयोगी का अंतसमय विषैं संभवती जघन्य वर्गणा, ताकौं आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन कीया है । तैसैं इहां क्षीणकषायी का अंत समय विषैं संभवती तिसका शरीर के आश्रित जघन्य बादरनिगोदवर्गणा ताकौं

आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन जानना। बहुरि सामान्य संसारी अपेक्षा दोऊ जायगे समानता संभवै है। बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा का कथन कहिए हैं–

सो इहां भव्य सिद्ध अपेक्षा तौ कथन है नाहीं। तातैं जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा लोक विषैं होइ वा न होइ, जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। आगैं जैसें संसारीनि की अपेक्षा प्रत्येक वर्गणा का कथन कीया, तैसें ही यवमध्य ताईं अनंतानन्त वर्गणा भए, उत्कृष्ट विषैं एक एक बधावना। पीछे उत्कृष्ट सूक्ष्मवर्गणा पर्यंत एक एक घटावना। सामान्यपनैं सर्वत्र उत्कृष्ट का प्रमाण आवली का असंख्यातवां भाग कहिये। इहां सर्वत्र संसारी सिद्ध कौं योग्य असी जो प्रत्येक बादर निगोद, सूक्ष्मनिगोद वर्गणा तिनिका यव आकार प्ररूपणा विषैं गुणहानि का गच्छ जीवराशि तैं अनन्त गुणा जानना। नाना गुण हानिशलाका का प्रमाण यवमध्य तैं ऊपरि वा नीचे आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण जानना।

भावार्थ – संसारी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा विषैं जो यवमध्य प्ररूपणा कही, तहां लोक विषैं पावनें की अपेक्षा जेते एक एक परमाणू बधनें रूप जे वर्गणा भेद तिनि भेदनि का जो प्रमाण सो तो द्रव्य है। अर जिनि वर्गणानि विषैं उत्कृष्ट पावने की अपेक्षा समानता पाइये, तिनिका समूह सो निषेक, तिनिका जो प्रमाण, सो स्थिति है। बहुरि एक गुणहानि विषैं निषेकनि का जो प्रमाण सो गुणहानि का गच्छ है। ताका प्रमाण जीवराशि तैं अनन्त गुणा है। बहुरि यवमध्य के ऊपरि वा नीचैं गुणहानि का प्रमाण, सो नानागुणहानि है। सो प्रत्येक आवली का असंख्यातवां भागमात्र है। असें द्रव्यादिक का प्रमाण जानि, जैसें निषेकनि विषैं द्रव्य प्रमाण ल्यावने का विधान है। तैसें उत्कृष्ट पावने की अपेक्षा समान रूप जे वर्गणा, तिनिका प्रमाण यवमध्य तैं ऊपरि वा नीचैं चय घटता क्रम लीए जानना।

इहां प्रश्न – जो इहां तो प्रत्येकादिक तीन सचित्त वर्गणानि के अनंते भेद कहे, एक एक भेदरूप वर्गणा लोक विषैं आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण सामान्यपनैं कही। बहुरि पूर्वैं मध्यभेदरूप सचित्तवर्गणा सर्व असंख्यात लोक प्रमाण ही कही सो उत्कृष्ट जघन्य बिना सर्व भेद मध्यभेद विषैं आय गए, तहां असा प्रमाण कैसें संभवै ?

ताका समाधान – इहां सर्वभेदनि विषैं ऐसा कह्या है, जो होइ भी न भी होइ, होइ तौ एक वा दोय इत्यादि उत्कृष्ट आवली का असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। सो नानाकाल अपेक्षा यहु कथन है। बहुरि तहां एक कोई विवक्षित वर्तमान काल अपेक्षा वर्तमान काल विषैं सर्व मध्यभेदरूप प्रत्येकादि वर्गणा असंख्यात लोक प्रमाण ही पाइये है। अधिक न पाइए है। तिनि विषैं किसी भेदरूप वर्गणानि की नास्ति ही है। किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाण लीएं पाइए हैं। किसी भेद-रूप वर्गणा उत्कृष्टपनैं प्रमाण लीएं पाइये है। ऐसा समझना। इस प्रकार तेईस वर्गणा का वर्णन कीया।

पुढवी जलं च छाया, चउरिंदियविसय-कम्म-परमाणू।
छ-व्विह-भेयं भणियं, पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥६०२॥

पृथ्वी जलं च छाया, चतुरिन्द्रियविषयकर्मपरमाणवः।
षड्विधभेदं भणितं, पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ॥६०२॥

टीका – पृथ्वी अर जल अर छाया अर नेत्र बिना च्यारि इन्द्रियनि का विषय अर कार्माण स्कंध अर परमाणू ऐसैं पुद्गल द्रव्य छह प्रकार जिनेश्वर देवनि करि कह्या है।

बादरबादर बादर, बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं, धरादियं होदि छब्भेयं ॥६०३॥

बादरबादरं बादरं, बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च।
सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं, धरादिकं भवति षड्भेदम् ॥६०३॥

टीका – पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादरबादर है। जो पुद्गल स्कंध छेदने कौं भेदने कौं और जायगै ले जाने कौं समर्थ हूजै, तिस स्कंध कौं बादरबादर कहिए। बहुरि जल है, सो बादर है, जो छेदने कौं भेदने कौं समर्थ न हूजै अर और जायगै ले जाने कौं समर्थ हूजै, सो स्कंध, बादर जानने। बहुरि छाया बादर सूक्ष्म है, जे छेदने-भेदने और जायगै ले जाने कौं समर्थ न हूजै, सो बादरसूक्ष्म है। बहुरि नेत्र बिना च्यारि इन्द्रियनि का विषय सूक्ष्म स्थूल है। बहुरि कार्माण के स्कंध सूक्ष्म हैं। जो द्रव्य देशावधि परमावधि के गोचर होइ, सो सूक्ष्म है। बहुरि परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है। जो सर्वावधि के गोचर होइ, सो सूक्ष्म सूक्ष्म हैं।

इहां एक एक वस्तु का उदाहरण कह्या है। सो पृथ्वी, काष्ठ, पाषाण इत्यादि बादरबादर हैं। जल, तैल, दुग्ध इत्यादि बादर है। छाया, आतप, चांदनी इत्यादि बादरसूक्ष्म है। शब्द गन्धादिक सूक्ष्मबादर है। इन्द्रियगम्य नाहीं; देशावधि परमावधिगम्य होंहि ते स्कंध सूक्ष्म हैं। परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म हैं, ऐसें जानने।

खंधं सयलसमत्थं, तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति।
अद्धद्धं च पदेसो, अविभागी चेव परमाणू ॥६०४॥

स्कंधं सकलसमर्थं, तस्य चार्धं भणंति देशमिति।
अर्धार्धं च प्रदेशमविभागिनं चैव परमाणुम् ॥६०४॥

टीका – जो सर्व अंश करि संपूर्ण होइ, ताकौं स्कंध कहिए। ताका आधा कौं देश कहिये। तिस आधा के आधा कौं प्रदेश कहिए। जाका भाग न होइ, ताकौं परमाणू कहिये।

भावार्थ – विवक्षित स्कंध विषें संपूर्ण तें एक परमाणू अधिक अर्ध पर्यंत तौ स्कंध संज्ञा है। अर्ध तें लगाय एक परमाणू अधिक चौथाई पर्यंत देश संज्ञा है। चौथाई ते लगाय दोय परमाणू का स्कंध पर्यंत प्रदेश संज्ञा है। अविभागी कौं परमाणू संज्ञा है। इति स्थानस्वरूपाधिकारः।

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्म-तियं।
वत्तणकिरिया-साहणभूदो णियमेण कालो दु ॥६०५॥

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवति धर्मत्रयम्।
वर्तनाक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ॥६०५॥

टीका – क्षेत्र तें क्षेत्रांतर प्राप्त होने कौं कारण, सो गति कहिये। गति का अभाव रूप स्थान कहिये। अवकाश विषें रहने कौं अवगाह कहिए। तहां जैसें मत्स्यनि के गमन करने का साधनभूत जल द्रव्य है। तैसें गति क्रियावान जे जीव पुद्गल, तिनकैं गतिक्रिया का साधनभूत सो धर्मद्रव्य है। बहुरि जैसें पंथी जननि कैं स्थान करने का साधन भूत छाया है। तैसें स्थान - क्रियावान जे जीव पुद्गल, तिनकै स्थान क्रिया का साधन भूत अधर्म द्रव्य है। बहुरि जैसें वास करनेवालों के साधनभूत

वसतिका है । तैसें अवगाह क्रियावान जे जीव - पुद्गलादिक द्रव्य तिनिकें अवगाह क्रिया का साधनभूत आकाश द्रव्य है ।

इहां प्रश्न – जो अवगाह क्रियावान तौ जीव - पुद्गल हैं । तिनिकौं अवकाश देना युक्त कह्या है । बहुरि धर्मादिक द्रव्य तौ निष्क्रिय हैं, नित्य सम्बन्ध कौं धरैं हैं, नवीन नाहीं आए, जिनिकौं अवकाश देना संभवै ऐसें इहां कैसें कहिये ? सो कहौ–

ताका समाधान – जो उपचार करि कहिए हैं; जैसें गमन का अभाव होते संतें भी सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा आकाश कौं सर्वगत कहिए हैं । तैसें धर्मादिक द्रव्यनि कें अवगाह क्रिया का अभाव होते संतें भी लोक विषें सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा अवगाह का उपचार कीजिए है ।

इहां प्रश्न – जो अवकाश देना आकाश का स्वभाव है, तौ वज्रादिक करि पाषाणादिक का अर भीति इत्यादिक करि गऊ इत्यादिकनि का रोकना कैसें हो है । सो रोकना तौ देखि रहे हैं । तातैं आकाश तौ तहां भी था, पाषाणादिक कौं अवकास न दीया, तब आकाश का अवगाह देना स्वभाव न रह्या ?

तहां उत्तर – जो आकाश तौ अवगाह देइ, परन्तु पूर्वें तहां अवगाह करि तिष्ठै है, वज्रादिक स्थूल हैं, तातें परस्पर रोकैं हैं । यामैं आकाश का अवगाह देने का स्वभाव गया नाहीं; जातैं तहां ही अनंत सूक्ष्म पुद्गल हैं, ते परस्पर अवगाह देवैं हैं ।

बहुरि प्रश्न – जो ऐसें हैं तौ सूक्ष्म पुद्गलादिकनि कें भी अवगाहहेतुत्व स्वभाव आया । आकाश ही का असाधारण लक्षण कैसें कहिए है ?

तहां उत्तर – जो सर्व पदार्थनि कौं साधारण अवगाहहेतुत्व इस आकाश ही का असाधारण लक्षण है । और द्रव्य सर्व द्रव्यनि कौं अवगाह देने कौं समर्थ नाहीं ।

इहां प्रश्न – जो अलोकाकाश तौ सर्व द्रव्यनि कौं अवगाह देता नाहीं, तहां ऐसा लक्षण कैसें संभवै ?

ताका समाधान – जो स्वभाव का परित्याग होइ नाहीं । तहां कोई द्रव्य होता तौ अवगाह देता, कोई द्रव्य तहां गमनादि न करै, तौ अवगाह कौन कौं देवै तिसका तौ अवगाह देने का स्वभाव पाइए है । बहुरि सर्व द्रव्यनि कौं वर्तना क्रिया का साधन भूत नियम करि काल द्रव्य है ।

अण्णोण्णुवयारेण य, जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो ।
देहादी-णिव्वत्तण-कारणभूदा हु णियमेण ॥६०६॥

अन्योन्योपकारेण च, जीवा वर्तन्ते पुद्गलाः पुनः ।
देहादिनिर्वर्तनकारणभूता हि नियमेन ॥६०६॥

टीका – बहुरि जीव द्रव्य हैं, ते परस्पर उपकार करि प्रवर्तै हैं । जैसें स्वामी तौ चाकर कौं धनादिक देवै है, अर चाकर स्वामी का जैसें हित होइ अर अहित का निषेध होइ तैसें करै है; सो असें परस्पर उपकार है । बहुरि आचार्य तौ शिष्य कौं इहलोक परलोक विषैं फल कौ देनेहारा उपदेश, क्रिया का आचरण करावना असें उपकार करै है । शिष्य उन आचार्यनि की अनुकूलवृत्ति करि सेवा करै है । असें परस्पर उपकार है; असें ही अन्यत्र भी जानना । बहुरि चकार तैं जीव परस्पर अनुपकार, जो बुरा करना, तिसरूप भी प्रवर्तै हैं वा उपकार – अनुपकार दोऊ रूप नाहीं प्रवर्तै हैं । बहुरि पुद्गल हैं, सो देहादिक जे कर्म, नोकर्म, वचन, मन, स्वासोस्वास इनिके निपजावने का नियम करि कारणभूत है । सो ए पुद्गल के उपकार हैं ।

इहां प्रश्न – जो जिनिका आकार देखिये असें औदारिकादि शरीर, तिनिकौं पुद्गल कहौ, कर्म तौ निराकार है, पुद्गलीक नाहीं ।

तहां उत्तर – जैसें गोधूमादिक, अन्न - जलादिक मूर्तीक द्रव्य के संबंध तैं पचैं हैं, ते गोधूमादिक पुद्गलीक हैं । तैसें कर्म भी लगुड, कंटकादिक मूर्तीक द्रव्य के संबंध तैं उदय अवस्थारूप होइ पचैं हैं, तातैं पुद्गलीक ही हैं ।

वचन दोय प्रकार है – एक द्रव्यवचन १, एक भाववचन २ । तहां भाववचन तौ वीर्यांतराय, मति, श्रुत आवरण का क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्म का उदय के निमित्त तैं हो है । तातैं पुद्गलीक है । पुद्गल के निमित्त बिना भाववचन होता नाहीं । बहुरि भाववचन की सामर्थ्य कौं धरै, असा क्रियावान जो आत्मा, ताकरि प्रेरित हुवा पुद्गल वचनरूप परिणवै हैं, सो द्रव्यवचन कहिए है । सो भी पुद्गलीक ही है, जातैं सो द्रव्यवचन कर्ण इंद्रिय का विषय है, जो इन्द्रियनि का विषय है, सो पुद्गल ही है ।

इहां प्रश्न – जो कर्ण बिना अन्य इंद्रियनि का विषय क्यों न होइ ?

तहां उत्तर – जो जैसें गंध नासिका ही का विषय है, सो रसनादिक करि ग्रह्या न जाय । तैसें शब्द कर्ण ही का विषय है, अन्य इंद्रियनि करि ग्राह्य नाहीं ।

इहां तर्क – जो वचन अमूर्तीक है, तहां कहिए है, असा कहना भी अयुक्त है, जातैं वचन मूर्तीक करि ग्रह्या जाय हैं। वा मूर्तीक द्रव्य करि रुकै है वा नष्ट हो है; तातैं मूर्तीक ही है। बहुरि द्रव्य भाव के भेद तैं मन भी दोय प्रकार है। तहां भावमन तौ लब्धि उपयोग रूप है, सो क्षयोपशमादिक पुद्गलीक निमित्त तैं हो हैं। तातैं पुद्गलीक ही है। बहुरि ज्ञानावरण, वीर्यांतराय का क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्म का उदय, इनिके निमित्त तैं गुण - दोष का विचार, स्मरण, इत्यादिकरूप सन्मुख भया, जो आत्मा, ताकौं उपकारी जे पुद्गल, सो मनरूप होइ परिणवै हैं। तातैं द्रव्यमन भी पुद्गलीक है।

इहां कोऊ कहै कि मन तौ एक जुदा ही द्रव्य है, रूपादिकरूप न परिणवै है। अणूमात्र है। तहां आचार्य कहैं हैं – तीहि मन स्यौं आत्मा का संबंध है कि नाहीं है? जो संबंध नाहीं है तौ आत्मा कौं उपकारी न होइ, इन्द्रियनि विषै प्रधानता कौं न धरै और जो संबंध है सो, वह तौ अणूमात्र है, सो एकदेश विषै उपकार करेगा अन्य प्रदेशनि विषै कैसैं उपकार करै है?

तहां तार्किक कहै है – अमूर्तीक, निष्क्रिय आत्मा का एक अदृष्टनामा गुण है। सो अदृष्ट जो कर्म ताका वश करि तिस मन का कुंभार का चक्रवत परिभ्रमण करै है, सो असा कहना भी अयुक्त है। अणूमात्र जो होइ ताकै भ्रमण की समर्थता नाहीं। बहुरि अमूर्तीक निष्क्रिय का अदृष्ट गुण कह्या, सो औरनि कै क्रिया का आरंभ करावने कौं समर्थ न होइ। जैसैं पवन आप क्रियावान है, सो स्पर्श करि वनस्पती कौं चंचल करै है, सो यह तौ अणूमात्र निष्क्रिय का गुण सो आप क्रियावान नाहीं, अन्य कौं कैसे क्रियावान प्रवर्तावै है? तातैं मन पुद्गलीक ही है।

बहुरि वीर्यांतराय अर ज्ञानावरण का क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामकर्म के उदय, तीहि करि संयुक्त जो आत्मा, ताकै निकसतौ जो कंठ संबंधी उस्वासरूप पवन, सो प्राण कहिए। बहुरि तीहि पवन करि बाह्य पवन कौं अभ्यंतर करता निस्वासरूप पवन, सो अपान कहिए। ते प्राण-अपान जीवितव्य कौं कारण हैं। तातैं उपकारी हैं; सो मन अर प्राणापान ए मूर्तीक हैं। जातैं भय के कारण वज्रपातादिक मूर्तीक, तिनितैं मन का रुकना देखिए है। बहुरि भय के कारण दुर्गंधादिक, तीहि करि वा हस्तादिक तैं मुख के आच्छादन करि वा श्लेष्मादिक करि प्राण-अपान का रुकना देखिये है, तातैं दोऊ मूर्तीक ही हैं। अमूर्तीक होइ तौ मूर्तीक करि रुकना न

संभवै है । बहुरि ताही तैं आत्मा का अस्तित्व की सिद्धि हो है । जैसैं कोई काष्ठादिक करि निपज्या प्रतिबिम्ब, सो चेष्टा करै तौ तहां जानिए यामैं तौ स्वयं शक्ति नाहीं, चेष्टा करानेवाला कोई पुरुष है । तैसैं अचेतन जड शरीर विषैं जो प्राणापानादिक चेष्टा हो है, तिस चेष्टा का प्रेरक कोई आत्मद्रव्य अवश्य हैं । ऐसैं आत्मा का अस्तित्व की सिद्धि हो है । बहुरि सुख, दुःख, जीवित, मरण ए भी पुद्गल द्रव्य ही के उपकार हैं तहां साता - असाता वेदनीय का उदय तो अंतरंग कारण अर बाह्य इष्ट अनिष्ट वस्तु का संयोग इनिके निमित्त तैं जो प्रीतिरूप वा आतापरूप होना, सो सुख दुःख है । बहुरि आयुकर्म के उदय तैं पर्याय की स्थिति कौं धारता जीव कैं प्राणापान क्रिया विशेष का नाश न होना, सो जीवित कहिए । प्राणापान क्रियाविशेष का उच्छेद होना, सो मरण कहिए । सो ए सुख, दुःख, जीवित, मरण मूर्तीक द्रव्य का निमित्त निकट होत संतैं ही हो है; तातैं पुद्गलीक ही है । बहुरि पुद्गल है, सो केवल जीव ही कौं उपकारी नाहीं, पुद्गल कौं भी पुद्गल उपकारी है । जैसैं कांसी इत्यादिक कौं भस्मी इत्यादिक अर जलादि कौं कतक फलादिक अर लोहादिक कौं जलादिक उपकारी देखिए है । ऐसैं और भी जानिए है । बहुरि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक नामा नामकर्म के उदय तैं तैजस आहार वर्गणा करि निपजे तीन शरीर हैं, अर सासोस्वास है । बहुरि तैजस नामा नामकर्म के उदय तैं तैजस वर्गणा तैं निपज्या तैजस शरीर है । बहुरि कार्माण नामा नामकर्म के उदय तैं कार्माण वर्गणा करि निपज्या कार्माण शरीर है । बहुरि स्वर नामा नामकर्म के उदय तैं भाषावर्गणा तैं निपज्या वचन है । बहुरि नोइंद्रियावरण का क्षयोपशम करि संयुक्त सैनी जीव कैं अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय तैं मन वर्गणा तैं निपज्या द्रव्य मन है, ऐसैं ए पुद्गल के उपकार हैं ।

इस ही अर्थ कौं दोय सूत्रनि करि कहैं हैं —

आहारवग्गणादो, तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो ।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ॥६०७॥

आहारवर्गणात् त्रीणि शरीराणि भवन्ति उच्छ्वासः ।
निश्वासोऽपि च तेजोवर्गणास्कन्धात्तुतेजोऽङ्गम् ॥६०७॥

टीका — तेईस जाति की वर्गणानि विषैं आहारक वर्गणा तैं औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तीन शरीर हो हैं । अर उस्वास निश्वास हो है । बहुरि तैजस वर्गणा का स्कंधनि करि तैजस शरीर हो है ।

भास-मण-वग्गणादो, कमेण भाषा मणं च कम्मादो ।
अट्ठ-विह-कम्मदव्वं, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६०८॥

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषा मनश्च कार्मणतः ।
अष्टविधद्रव्यं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६०८॥

टीका – भाषावर्गणा का स्कंधनि करि च्यारि प्रकार भाषा हो है । मनोवर्गणा का स्कंधनि करि द्रव्यमन हो है । कार्माण वर्गणा का स्कंधनि करि आठ प्रकार कर्म हो है, असैं जिनदेवने कह्या है ।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं, बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा[1] ॥६०९॥

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं, बन्धस्य च कारणं तु एकादयः ।
संख्येयासंख्येयानन्तविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ॥६०९॥

टीका — बाह्य अभ्यंतर कारण के वश तैं जो स्निग्ध पर्याय का प्रगटपना करि चिकणास्वरूप होइ, सो स्निग्ध है । ताका भाव, सो स्निग्धत्व कहिये । बहुरि रूखारूप होई,सो रूक्ष है; ताका भाव, सो रूक्षत्व कहिए । सो जल वा छेली का दूध वा गाय का दूध वा भैंसि का दूध वा ऊंटणी का दूध वा घृत इनि विषैं स्निग्धगुण की अधिकता वा हीनता देखिए है । अर धूलि, वालू, रेत वा तुच्छ पाषाणादिक इनिविषैं रूक्षगुण की अधिकता वा हीनता देखिए है । तैसें ही परमाणू विषैं भी स्निग्ध रूक्षगुण की अधिकता हीनता पाइए है । ते स्निग्ध - रूक्षगुण द्वयणुकादि स्कंधपर्याय का परिणमन का कारण हो हैं । बहुरि चकार तैं स्कंध तैं बिछुरने के भी कारण हो हैं । स्निग्धरूप दोय परिमाणूनि का वा रूक्षरूप दोय परमाणू का एक रूक्ष वा एक स्निग्ध परमाणू का परस्पर जुडनेरूप बंध होतैं द्वयणुक स्कंध हो है । असैं संख्यात, असंख्यात, अनंते परिमाणूनि का स्कंध भी जानना । तहां स्निग्ध गुण वा रूक्षगुण अंशनि की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात, अनंत भेद कौं लीए है ।

एयगुणं तु जहण्णं, णिद्धत्तं बिगुण-तिगुण-संखेज्जाऽ- ।
संखेज्जाणंतगुणं, होदि तहा रुक्खभावं च ॥६१०॥

---

१. 'स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधः' तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-५, सूत्र-३३ ।

एकगुणं तु जघन्यं, स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयाऽ-।
संख्येयानन्तगुणं, भवति तथा रूक्षभावं च ॥६१०॥

टीका – स्निग्ध गुण जो एक गुण है; सो जघन्य है, जाके एक अंश होइ, ताकौं एक गुण कहिए। ताकौं आदि देकरि द्विगुण, त्रिगुण, संख्यातगुण, असंख्यातगुण अनंतगुणरूप स्निग्ध गुण जानना। तैसें ही रूक्षगुण भी जानना। केवलज्ञानगम्य सब तें थोरा जो स्निग्धत्व रूक्षत्व, ताकौं एक अंश कल्पि, तिस अपेक्षा स्निग्ध-रूक्ष गुण के अंशनि का इहां प्रमाण जानना।

एवं गुणसंजुत्ता, परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया।
जोग्गदुगाणं बंधे, दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥६११॥

एवं गुणसंयुक्ताः, परमाणव आदिवर्गणायां स्थिताः।
योग्यद्विकयोः बन्धे, द्वयोर्बन्धो भवेन्नियमात् ॥६११॥

टीका – ऐसें स्निग्ध - रूक्ष गुण करि संयुक्त परमाणू, ते प्रथम अणु वर्गणा विषें तिष्ठें हैं। सो यथायोग्य दोय का बंध स्थान विषें, तिनही दोय परमाणूनि का बंध हो है।

नियमकरि स्निग्ध-रूक्ष गुण के निमित्त तें सर्वत्र बंध हो है। किछू विशेष नाहीं। ऐसें कोऊ जानैगा, तातें जहां बंध होने योग्य नाहीं ऐसा निषेध पूर्वक जहां बंध होनें योग्य है, तिस विधि कौं कहै हैं–

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति, रुक्खरुक्खा य पोग्गला।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥६१२॥

स्निग्धस्निग्धा न बध्यन्ते, रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः।
स्निग्धरूक्षाश्च बध्यन्ते, रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः ॥६१२॥

टीका – स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलनि करि स्निग्ध गुण युक्त पुद्गल बंधै नाहीं। बहुरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गलनि करि रूक्ष गुण युक्त पुद्गल बंधै नाहीं, सो यहु कथन सामान्य है। बंध भी हो है। सो विशेष आगें कहैंगे। बहुरि स्निग्ध गुण युक्त

पुद्गलनि करि रूक्ष गुण युक्त पुद्गल बंधै हैं। बहुरि तिनि पुद्गलनि की दोय संज्ञा है – एक रूपी, एक अरूपी।

तिनि संज्ञानि कौं कहैं हैं–

णिद्धिदरोलीमज्झे, विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं[1]।
रूवि त्ति होदि सण्णा, सेसाणं ता अरूवि त्ति ॥६१३॥

स्निग्धेतरावलीमध्ये, विसदृशजातेः समगुण एकः।
रूपीति भवति संज्ञा, शेषाणां ते अरूपिण इति ॥६१३॥

टीका – स्निग्ध-रूक्ष गुणनि की पंकति, तिनके विषै विसदृश जाति कहिए। स्निग्ध कै अर रूक्ष कै परस्पर विसदृश जाति है, ताकैं जो कोई एक समान गुण होइ ताकौं रूपी असी संज्ञा करि कहिए है। अर समान गुण बिना अवशेष रहे, तिनिकौं अरूपी असी संज्ञा करि कहिए है।

ताही कौं उदाहरण करि कहैं हैं–

दोगुणणिद्धाणुस्स य, दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी।
इगि-तिगुणादि अरूवी, रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे ॥६१४॥

द्विगुणस्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुको भवेत् रूपी।
एकत्रिगुणादिः अरूपी, रूक्षस्यापि तद् व इति जानीहि ॥६१४॥

टीका – दूसरा है गुण जाकैं वा दोय हैं गुण जाकैं असा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणू, ताकैं द्वि गुण रूक्ष परमाणू रूपी कहिए, अवशेष एक, तीन, च्यारि इत्यादि गुण धारक परमाणू अरूपी कहिए। असें ही द्वि गुण रूक्षाणु के द्वि गुण स्निग्धाणू रूपी कहिए; अवशेष एक, तीन इत्यादिक गुणधारक परमाणू अरूपी कहिए।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण, लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण[2]।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो, जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥६१५॥

---

१. 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-५, सूत्र-३५।
२. 'द्व्यधिकादिगुणानांतु' तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-५, सूत्र-३६ २ न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन, रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बन्धो, अघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ।।६१५।।

टीका — स्निग्ध अणू का आप तैं दोय गुण अधिक स्निग्ध अणू सहित बंध होइ । बहुरि रूक्ष अणू का आपतैं दोय गुण अधिक रूक्ष अणू सहित बंध होइ । बहुरि स्निग्ध अणू का आपतैं दोय गुण अधिक रूक्ष अणू सहित बंध होइ । तहां एक गुण सहित जघन्य स्निग्ध अणू वा रूक्ष अणू ताकै तीन गुण युक्त परमाणू सहित बंध नाहीं यद्यपि यहां दोय अंश अधिक है, तथापि एक अंश युक्त परमाणू बंधने योग्य नाहीं; तातैं बंध नाहीं हो है । स्निग्ध वा रूक्ष परमाणूनि का समधारा विषैं वा विषमधारा विषैं दोय अधिक अंश होतैं बंध हो है । तहां दोय, च्यारि, छह, आठ इत्यादिक दोय दोय बधता अंश जहां होइ, तहां समधारा विषैं कहिये । बहुरि तीन, पांच, सात, नव इत्यादिक दोय दोय बधता अंश जहां होइ, तहां विषमधारा विषैं कहिए । सो समधारा विषैं दोय अंश परमाणू अर च्यारि अंश परमाणू का बंध होइ । च्यारि अंश परमाणू अर छह अंश परमाणू का बंध होइ, इत्यादिक दोय अंश अधिक होतैं बंध हो है । बहुरि विषमधारा विषैं तीन अंश परमाणु का पंच अंश परमाणू सहित बंध होइ, पंच अंश परमाणू का सप्त अंश परमाणू सहित बंध हो है । ऐसैं दोय अंश अधिक होतैं बंध हो है । बंध होनेका अर्थ यहु जो एक स्कंधरूप हो है । बहुरि समान गुण धरैं ऐसे जे रूपी परमाणू, तिनिकैं परस्पर बंध नाहीं है । जैसैं दोय अंश एक के भी होइ, दोय अंश दूसरे के भी होइ, तौ बंध न होइ । बहुरि सम गुणधारक परमाणू अर विषम गुण धारक परमाणू बंधै नाहीं । जैसैं दोय अंश युक्त परमाणू का पंच अंश युक्त परमाणू सहित बंध न होइ । जातैं इहां दोय अधिक अंश का अभाव है —

णिद्धिदरे समविसमा, दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति ।
उभये वि य समविसमा, सरिसिदरा होंति पत्तेयं ।।६१६।।

स्निग्धेतरयोः समविषमा, द्वित्र्यादयः द्व्युत्तरा भवन्ति ।
उभये पि च समविषमा, सदृशेतरे भवन्ति प्रत्येकम् ।।६१६।।

टीका — स्निग्ध रूक्ष विषैं दोय आदि दोय बधता तौ सम पंक्ति विषैं गुण जानना । दोय, च्यारि, छह, आठ इत्यादिक जानने । अर विषम पंक्ति विषैं तीन आदि दोय दोय बधता जानना । तीन, पांच, सात, नव इत्यादिक जानना । ते सम

अर विषम रूपी भी हो है । अर अरूपी भी हो है । जहां दोनों के समान गुण होई सो रूपी, जहां समान गुण न होंइ, सो अरूपी कहिए । जैसें स्निग्ध - रूक्ष की सम पंक्ति विषें दोय गुण के दोय गुण रूपी हैं, च्यारि गुण के च्यारि गुण रूपी है । छह गुण के छह गुण रूपी है । इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनंतगुणा पर्यंत जानने । बहुरि दोय गुण के दोय गुण बिना अर एक, तीन, च्यारि, पांच इत्यादिक अरूपी हैं ।

भावार्थ – एक परमाणू दोय गुण धारक है । अर दूसरा परमाणू भी दोय गुणधारक है । तौ तहां तिनकौं परस्पर रूपी कहिए । और हीनाधिक गुण धारक परमाणू कौं अरूपी असी संज्ञा कहिए । असें ही च्यारि, छह इत्यादिक विषें जानना । बहुरि विषम पंक्ति विषें तीन गुण के तीन गुण, पंच गुण के पंच गुण इत्यादिक संख्यात, असंख्यात, अनंत पर्यंत सम . गुणधारक परमाणू परस्पर रूपी हैं । अवशेष हीनाधिक गुण धारक हैं, ते परस्पर अरूपी हैं, असी संज्ञा करि कहिये है । सो सम अर विषम दोऊ पंक्तिनि विषें ही समान गुण धारक रूपी परमाणू, तिनकै परस्पर बंध न हो है । तत्त्वार्थसूत्र विषें भी कह्या है – **'गुणसाम्ये सदृशानां'**[1] याका अर्थ यहु ही– गुणनि की समानता होतें सदृश परमाणूनि कैं परस्पर बंध न हो है । बहुरि अरूपी परमाणूनि कै यथोचित स्वस्थान वा परस्थान विषें बंध हो है । स्निग्ध अर स्निग्ध का, बहुरि रूक्ष अर रूक्ष का बंध, सो स्वस्थान बंध कहिए । स्निग्ध अर रूक्ष का बंध होइ, सो परस्थान बंध कहिए ।

आगें इस ही अर्थ कौं और – प्रकार करि कहैं हैं–

दो-त्तिग-पभवदुउत्तरगदेसुणंतरदुगाण बंधो दु ।
णिद्धे लुक्खे वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ ॥६१७॥

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनन्तरद्विकयोः बन्धस्तु ।
स्निग्धे रूक्षेऽपि तथापि जघन्योभयेऽपि सर्वत्र ॥६१७॥

टीका – स्निग्ध विषें वा रूक्ष विषें समपंक्ति विषें दोय आदि दोय दोय बधता अर विषम पंक्ति विषें तीन आदि दोय दोय बधता अंश क्रम करि पाइए है । तहां अनंतर द्विकनि का बंध होइ । कैसें ? स्निग्ध का च्यारि अंश वा रूक्ष का च्यारि अंश

---

1. तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-५, सूत्र-३५ ।

सहित पुद्गल कें दोय अंश सहित रूक्ष पुद्गल सहित बंध होइ । वा पंच अंश स्निग्ध का वा रूक्ष का सहित पुद्गल कैं स्निग्ध तीन अंश युक्त पुद्गल सहित बंध होइ । असें दोय अधिक भएं बंध जानना । परंतु एक अंशरूप जघन्य गुण युक्त विषैं बंध न हो है । अन्यत्र स्निग्ध रूक्ष विषैं सर्वत्र बंध जानना ।

णिद्धिदरवरगुणाणू, सपरट्ठाणे वि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंग-हेदुहि, गुणंतरं संगदे एदि ॥६१८॥

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेऽपि नैति बंधार्थम् ।
बहिरंतरंगहेतुभिर्गुणांतरं संगते एति ॥६१८॥

टीका – स्निग्ध वा रूक्ष सो जघन्य एक गुण युक्त परमाणू होइ, सो स्वस्थान वा परस्थान विषैं बंध के अर्थि योग्य नाहीं है । बहुरि सो परमाणू, जो बाह्य अभ्यंतर कारण तैं दोय आदि और अंशनि कौं प्राप्त होइ जाइ, तो बंध योग्य होइ । तत्त्वार्थ सूत्र विषैं भी कह्या है, 'न जघन्यगुणानां' याका अर्थ यहु ही जो जघन्य गुण धारक पुद्गलनि कें परस्पर बंध न हो है ।

णिद्धिदरगुणा अहिया, हीणं परिणामयंति बंधम्मि[1] ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥६१९॥

स्निग्धेतरगुणा अधिका, हीनं परिणामयंति बंधे ।
संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशानां स्कंधानाम् ॥६१९॥

टीका – संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेशनि के स्कंध, तिनिविषैं स्निग्ध गुण स्कंध वा रूक्ष गुण स्कंध जे दोय गुण अधिक होंइ, ते बंध कौं होत संतें हीन स्कंध कौं परिणमावै हैं । जैसें दोय स्कंध हैं एक स्कंध विषैं स्निग्धका वा रूक्ष का पचास अंश है । अर एक में बावन अंश है अर तिनि दोऊ स्कंधनि का एक स्कंध भया, सौ तहां पचास अंशवाले कौं बावन अंश रूप परिणमावै है । जैसें सर्वत्र जानना । तत्त्वार्थ सूत्र विषैं भी कह्या है – 'बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च' याका अर्थ यहु ही जो बंध होतैं अधिक अंश हैं, सो हीन अंशनि कौं अपनेरूप परिणमावनहारे हैं । इति कलाधिकारः ।

1. बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च । तत्त्वार्थसूत्र : अध्याय-५, सूत्र-३७ ।

ऐसें सात अधिकारनि करि षट् द्रव्य कहे ।

आगें पंचास्तिकायनि कौं कहैं हैं—

दव्वं छक्कमकालं, पंचत्थीकायसण्णिदं होदि[1] ।
काले पदेसपचयो, जम्हा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ॥६२०॥

द्रव्यं षट्कमकालं, पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति ।
काले प्रदेशप्रचयो, यस्मात् नास्तीति निर्दिष्टम् ॥६२०॥

टीका — पूर्वं जे षट् द्रव्य कहे, ते अकालं कहिए काल द्रव्य रहित पंचास्तिकाय नाम पावै हैं । जातें काल कै प्रदेश प्रचय नाहीं है । काल एक प्रदेश मात्र ही है । अर पुद्गलवत् परस्पर मिलै नाहीं; तातैं काल कैं कायपणां नाहीं है । जे प्रदेशनि का प्रचय जो समूह ताकरि युक्त होंहि, ते अस्तिकाय हैं; ऐसा परमागम विषै कह्या है ।

आगें नव पदार्थनि कौं कहैं हैं —

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसव-संवर[2]-णिज्जर-बंधा मोक्खो य होंति त्ति ॥६२१॥

नव च पदार्था जीवाजीवाः तेषां च पुण्यपापद्विकम् ।
आस्रवसंवरनिर्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ॥६२१॥

टीका — जीव अर अजीव ए तौ दोय मूल पदार्थ अर तिनही के पुण्य अर पाप दो ए पदार्थ हैं । अर पुण्य - पाप ही का आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए पांच पदार्थ; ऐसें सर्व मिले हुए ए नव पदार्थ हैं । पदार्थ शब्द सर्वत्र लगावना । जीव पदार्थ, अजीव पदार्थ इत्यादि जानना ।

जीवदुगं उत्तट्ठं, जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदा वि य पावा, तव्विवरीया हवंति त्ति ॥६२२॥

---

१. उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकाया दु । द्रव्यसंग्रह गाथा सं. २३ ।

२. संवर, निर्जरा और मोक्ष इनके द्रव्य और भाव की अपेक्षा दो-दो भेद हैं । देखो द्रव्यसंग्रह गाथा सं. ३४, ३६, ३७, तथा समयसार गाथा १३ की टीका आदि ।

जीवद्विकमुक्तार्थं, जीवाः पुण्या हि सम्यक्त्वगुणसहिताः ।
व्रतसहिता अपि च, पापास्तद्विपरीता भवंति ।।६२२।।

टीका — जीव पदार्थ अर अजीव पदार्थ तौ पूर्वे जीवसमास अधिकार विषै वा इहां षट् द्रव्य अधिकार विषै कहे हैं । बहुरि जे सम्यक्त्व गुणयुक्त होंइ अर व्रत युक्त होइ, ते पुण्य जीव कहिए । बहुरि इनिस्यों विपरीत सम्यक्त्व व्रत रहित जे जीव ते पाप जीव नियमकरि जानने ।

तहां गुणस्थाननि विषै जीवनि की संख्या कहिए हैं– तिनि विषै मिथ्यादृष्टी अर सासादन ए तौ पाप जीव हैं; असा कहै हैं ।

मिच्छाइट्ठी पावा, णंताणंता य सासणगुणा वि ।
पल्लासंखेज्जदिमा, अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा[1] ।।६२३।।

मिथ्यादृष्टयः पापा, अनंतानंताश्च सासनगुणा अपि
पल्यासंख्येया, अनन्यतरोदयमिथ्यात्वगुणाः ।।६२३।।

टीका — मिथ्यादृष्टी पापी जीव हैं, ते अनंतानंत हैं । जातैं संसारी राशि मैं अन्य गुणस्थानवालों का प्रमाण घटाए, मिथ्यादृष्टी जीवनि का प्रमाण हो है । बहुरि सासादन गुणस्थानवाले भी पाप जीव है; जाते अनंतानुबंधी की चौकड़ी विषैं किसी एक प्रकृति का उदय करि मिथ्यात्व सदृश गुण कौं प्राप्त हो है । ते सासादन वाले जीव पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ।

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य ।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं[2] ।।६२४।।

मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंताश्च ।
पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ।।६२४।।

टीका – मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसार राशि प्रमाण है; तातै अनंतानंत हैं । बहुरि देशसंयत गुणस्थानवाले जीव तेरह कोडि मनुष्यनि करि अधिक, तिर्यंच

१. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ १० ।
२. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ ६३ ।

पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । इहां अन्य गुणस्थान कथन की अपेक्षा पल्य कौं तीन बार असंख्यात अर एक बार संख्यात का भाग जानना । बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती जीव बावन कोडि मनुष्यनि करि अधिक इतर तीन गति के जीव देशसंयमी तिर्यंचनि स्यों असंख्यात गुणे जानने । इहां पल्य कौं दोय बार असंख्यात अर एक बार संख्यात का भाग जानना । बहुरि मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव एक सौ च्यारि कोडि मनुष्यनि करि सहित इतर तीन गति के जीव सासादन वालों तें संख्यातगुणे जानने। इहां पल्य कौं दोय बार असंख्यात का भाग जानना । बहुरि अविरत गुणस्थानवर्ती जीव सात से कोडि मनुष्यनि करि सहित इतर तीन गति के जीव मिश्रवालों तें असंख्यात गुणे जानने । इहां पल्य कौं एक बार असंख्यात का भाग जानना ।

तिरधिय-सय-णव-णउदी, छण्णउदी अप्पमत्त बे कोडी ।
पंचेव य तेणउदी णव-ट्ठ-बि-सय-च्छउत्तरं पमदे ॥६२५॥[1]

अधिकशतनवनवतिः षण्णवतिः अप्रमत्ते द्वे कोटी ।
पंचैव च त्रिनवतिः, नवाष्टद्विशतषडुत्तरं प्रमत्ते ॥६२५॥

टीका – प्रमत्तगुणस्थान विषैं जीव पांच कोडि तिराणवै लाख अठयाणवै हजार दोय से छह (५९३९८२०६) हैं । बहुरि अप्रमत्त गुणस्थान विषैं जीव तीन अधिक एक सौ अर निन्याणवै हजार अर छिनवै लाख अर दोय कोडी (२९६९९१०३) इतनै हैं । गाथा विषैं पहिलैं अप्रमत्त की संख्या कही प्रमत्त की संख्या छंद मिलने के अर्थी कही है ।

ति-सयं भणंति केई, चउरुत्तरमत्थपंचयं केई ।
उवसामग-परिमाणं, खवगाणं जाण तद्दुगुणं[2] ॥६२६॥

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तरमस्तपंचकं केचित् ।
उपशामकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणम् ॥६२६॥

टीका — आठवें, नवें, दशवें, ग्यारवें गुणस्थान उपशम श्रेणीवाले जीवनि का प्रमाण केई आचार्य तीन सैं कहैं हैं । केई तीन सैं च्यारि कहैं है । केई पांच घाटि

---

१. षट्खण्डागम – धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ ९०, गाथा सं. ४१.
२. षट्खण्डागम – धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ ९४, गाथा सं. ४५.

अर च्यारि अधिक तीन सै कहैं है। ताके एक घाटि तीन सै भए। बहुरि आठवें, नवें, दशवें, बारहवें गुणस्थानी क्षपक जीवनि का प्रमाण उपशमकवालों तैं दूणा हे शिष्य! तू जानि।

इहां तीन सै च्यारि उपशम श्रेणीवाले जीवनि की संख्या का निरंतर आठ समयनि विषैं विभाग करैं हैं—

सोलसयं चउवीसं, तीसं छत्तीस तह य बादालं।
अडदालं चउवण्णं, चउवण्णं होंति उवसमगे[1] ॥६२७॥

षोडशकं चतुर्विंशतिः, त्रिंशत् षट्त्रिंशत् तथा च द्वाचत्वारिंशत्।
अष्टचत्वारिंशत् चतुःपंचाशत् चतुःपंचाशत् भवंति उपशमके ॥६२७॥

टीका — बीचि में अंतराल न पडै अर उपशम श्रेणी कौं जीव मांडै तौ आठ समयनि विषैं उत्कृष्टपनै एते जीव उपशम श्रेणी मांडै, पहिला समय तैं लगाइ आठवां समय पर्यंत अनुक्रम तैं सोलह, चौईस, तीस, छत्तीस, बियालीस, अडतालीस, चौवन, चौवन जीव निरन्तर अष्ट समयनि विषैं होंहि (१६, २४, ३०, ३६, ४२, ४८, ५४, ५४)।

बत्तीसं अडदालं, सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी।
छण्णउदी अट्ठुत्तर-सयमट्ठुत्तर-सयं च खवगेसु[2] ॥६२८॥

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत्, षष्टिः द्वासप्ततिश्च चतुरशीतिः।
षण्णवतिः अष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतं च क्षपकेषु ॥६२८॥

टीका — बहुरि निरन्तर अष्ट समयनि विषैं क्षपक श्रेणी कौ मांडै ऐसे जीव उपशम श्रेणीवालों तैं दूणे जानने। तहां पहिला समय तैं लगाइ अनुक्रम तैं बत्तीस, अडतालीस, साठि, बहत्तरि, चउरासी, छिनवै, एक सौ आठ, एक सौ आठ (३२, ४८, ६०, ७२, ८४, ९६, १०८, १०८) जीव निरंतर अष्ट समयनि विषैं हो हैं। इस ही संख्या को घाटि बाधि कौं बरोबरि करि पहिलैं चौंतीस मांडै, पीछैं आठ समय ताईं बारह-२ अधिक मांडै, तहां आदि चौंतीस (३४) उत्तर बारह (१२) गच्छ आठ ८,

२. षट्खण्डागम — धवला : पुस्तक ३, पृष्ठ ९१, गाथा सं० ४२.

१. षट्खण्डागम — धवला : पुस्तक ३, पृष्ठ ९१, गाथा सं० ४३.

याका 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादिक सूत्र करि जोड़ दीजिए । तहां गच्छ आठ, तामैं एक घटाएं सात रहे, दोय का भाग दीएं, साढातीन रहे, उत्तर करि गुणें बियालीस भए, आदि करि युक्त कीएं, छिहंतरि भए, गच्छ करि गुणैं, छह सै आठ भए, सो निरन्तर आठ समयनि विषैं क्षपक श्रेणी मांडि करि जीव एकठे होहिं, तिनिका प्रमाण छह सै आठ जानना । बहुरि उपशमकनि विषै आदि सतरह (१७) उत्तर छह (६) गच्छ आठ (८) जोड दीए, तीन सैं च्यारि भए, सो प्रमाण जानना ।

अट्ठेव सय-सहस्सा, अट्ठा-णउदी तहा सहस्साणं ।
संखा जोगिजिणाणं, पंच-सय-बि-उत्तरं वंदे[1] ॥६२९॥

अष्टैव शतसहस्राणि, अष्टानवतिस्तथा सहस्राणाम् ।
संख्या योगिजिनानां, पञ्चशतद्व्युत्तरं वन्दे ॥६२९॥

टीका — सयोग केवली जिननि की संख्या आठ लाख अठयाणवै हजार पांच सै दोय (८९८५०२) है । तिनिकौं मैं सदाकाल वंदौं हूं । इहां निरन्तर आठ समयनि विषैं एकठे भए सयोगी जिन अन्य आचार्य अपेक्षा सिद्धांत विषैं असैं कहैं हैं— **छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयेसु संचिदजीवा बावीसा हवंति ॥१॥**

याका अर्थ — छह शुद्ध समयनि विषैं तीन तीन जीव केवलज्ञान कौं उपजावैं हैं । दोय समयनि विषैं दोय दोय जीव केवलज्ञान कौं उपजावैं है । असैं आठ समयनि विषैं एकठे भए जीव बावीस हो हैं ।

भावार्थ — केवलज्ञान उपजने का छह महिने का अंतराल होइ, तब बीचि मैं अन्तराल न पडै, असैं निरंतर आठ समयनि विषैं बाईस जीव केवलज्ञान उपजावै हैं।

सो इहां विशेष कथन विषैं छह त्रैराशिक हो है ।

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ ९६ गाथा सं. ४९ । पाठभेद—पंचसदविउत्तर जाण ।

छह त्रैराशिक का यंत्र			
प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धप्रमाण
केवली २२	काल मास ६, समय ८	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा
काल मास ६, समय ८	समय ८	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा	समय ३२६७२८
समय ८	केवली २२	समय ३२६७२८	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८/२ आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८/४ चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ ८ (आठवां) भाग	केवली ८९८५०२

तहां बाईस केवलज्ञानी आठ समय अधिक छह मास मात्र काल विषैं होइ, तौ आठ लाख अठ्याणवै हजार पांच सै दोय केवलज्ञानी केते काल विषैं होंइ ? अैसैं त्रैराशिक कीएं चालीस हजार आठ सै इकतालीस कौं छह मास आठ समयनि करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितना काल का प्रमाण आवै है । बहुरि आठ समय अधिक छह मास काल विषैं निरंतर केवल उपजने के आठ समय हैं; तौ पूर्वोक्त काल प्रमाण विषैं केते समय हैं ? अैसैं त्रैराशिक कीए तीन लाख छब्बीस हजार सात सै अठाईस समय आवै हैं । बहुरि आठ समयनि विषैं आचार्यनि के मतनि की अपेक्षा बाईस वा चवालीस वा अठयासी वा एक सौ छिहंतरि केवलज्ञान उपजावैं, तौ पूर्वोक्त समयनि का प्रमाण विषैं वा तिसतैं आधा विषैं वा चौथाई विषैं वा आठवां भाग विषैं केते केवलज्ञान उपजावै अैसैं चारि प्रकार त्रैराशिक कीए केवलानि का प्रमाण आठ लाख अठ्याणवै हजार पाच सै दोय आवै है, अैसैं जानना ।

आगै एक समय विषैं युगपत् संभवती अैसी क्षपक वा उपशमक जीवनि की विशेष संख्या गाथा तीनि करि कहैं हैं—

होंति खवा इगिसमये, बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥६३०॥

पत्तेयबुद्ध-तित्थयर-त्थि-णउंसय-मणोहिणाणजुदा ।
दस-छक्क-वीस-दस-वीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥६३१॥[1]

जेट्ठावरबहुमज्झिम-ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा, उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥६३२॥ विसेसयं ।

भवन्ति क्षपका एकसमये, बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च ।
उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमाः, स्वर्गतश्च च्युताः ॥६३०॥

प्रत्येकबुद्धतीर्थंकरस्त्रीपुंनपुंसकमनोऽवधिज्ञानयुताः ।
दशषट्कविंशतिदशविंशत्यष्टाविंशो यथाक्रमशः ॥६३१॥

ज्येष्ठावरबहुमध्यमावगाहा द्वौ चत्वारः अष्टैव ।
युगपद् भवन्ति क्षपकाः, उपशमका अर्द्धमेतेषाम् ॥६३२॥ विशेषकम् ।

टीका – युगपत् एक समय विषैं क्षपक श्रेणीवाले जीव अैसैं उत्कृष्टता करि पाइये हैं । बोधित-बुद्ध तौ एक सौ आठ, पुरुषवेदी एक सौ आठ, स्वर्ग तैं चय करि मनुष्य होइ क्षपक भए अैसे एक सौ आठ, प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि के धारक दश, तीर्थंकर छह, स्त्री वेदी बीस, नपुंसक वेदी दश, मनःपर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अठाईस मुक्त होने योग्य शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना के धारक दोय, जघन्य अवगाहना के धारक च्यारि, सर्व अवगाहना के मध्यवर्ती अैसी अवगाहना के धारक आठ अैसै ए सर्व मिले हुवे च्यारि सै बत्तीस भए । बहुरि उपशमक इनि तैं आधे सर्व पाइए । तातैं सर्व मिले हुवे दोय सै सोलह भए पूर्वैं गुणस्थाननि विषैं एकठे भए जीवनि की संख्या कही थी, इहां अैसा कह्या है – जो श्रेणी विषैं युगपत् उत्कृष्ट होंइ तौ पूर्वोक्त जीव पूर्वोक्त प्रमाण होंइ, अधिक न होंइ ।

---

१. गाथा सं. ६३०, ६३१ के लिए षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ५ के पृष्ठ क्रम से ३०४, ३११, ३२१ और ३०७, ३२०, २३ देखें ।

आगें सर्वसंयमी जीवनि की संख्या कहैं हैं—

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलि-मौलिय-हत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि[1] ॥६३३॥

सप्तादय अष्टान्ताः षण्णवमध्याश्च संयताः सर्वे ।
अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्धया नमस्यामि ॥६३३॥

टीका – सात का अंक आदि अर आठ का अंक अंत अर मध्य विषै छह नव के अंक ८९९९९९९७ असैं लिखैं भई तीन घाटि नव कोडि संख्या तीहिं प्रमाण जे संयमी छठे गुणस्थान तैं लगाइ चौदहवां गुणस्थान पर्यंत हैं । तिनिकौं अंजुली करि मस्तक हस्त लगावतौं संतौ मन, वचन, कायरूप त्रिकरण शुद्धता करि नमस्कार मैं करौं हौं । तहां प्रमत्तवाले ५९३९८२०६, अप्रमत्तवाले २९६९९१०३, ग्यार्यों गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणीवाले ११९६, ग्यारवों गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणीवाले २३९२, सयोगी जिन ८९८५०२, मिले हूवे जे (८९९९९३९९) भए ते नव कोडि तीन घाटि विषैं घटाएं अवशेष पांच सै अठ्याणवै रहे, ते अयोगी जिन जानने ।

आगें च्यारि गतिनि का मिथ्यादृष्टी, सासादन, मिश्र, अविरत गुणस्थानवर्ती तिनकी संख्या का साधक पल्य के भागहार का विशेष कहै हैं – जाका भाग दीजिए ताकौं भागहार कहिए सो आगें जो जो भागहार का प्रमाण कहैं हैं; तिस तिसका पल्य कौं भाग दीजिए, जो जो प्रमाण आवै, तितना तितना तहां जीवनि का प्रमाण जानना । जहां भागहार का प्रमाण थोरा होइ, तहां जीवनि का प्रमाण बहुत जानना । जहां भागहार का प्रमाण बहुत होइ, तहां जीवनि का प्रमाण थोरा जानना । असैं एक हजार कौं पांच का भाग दीए दोय सै पावैं, दोय सै का भाग दीए पांच ही पावै असैं जानना ।

सो अब भागहार कहैं हैं—

ओघा-संजद-मिस्सय-सासण-सम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते[2] ॥६३४॥

---

१. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ ९८, णिर्जरसोज्झा समगुणिदापमत्तरासी प्रमत्ता ।

२. षट्खण्डागम – धवला पुस्तक ३, पृष्ठ १६०-१६४ ।

देवाणं अवहारा, होंति असंखेण ताणि अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते, सोहम्मीसाणअवहारा[1] ॥६३५॥ जुम्मं ।

ओघा असंयतमिश्रकसासनसमीचां भागहारा ये ।
रूपोनावलिकासंख्यातेनेह भक्त्वा तत्र निक्षिप्ते ॥६३४॥

देवानामवहारा, भवंति असंख्येन तानवहृत्य ।
तत्रैव च प्रक्षिप्ते, सौधर्मेशानावहाराः ॥६३५॥

टीका – गुणस्थान संख्या विषैं पूर्वं जो असंयत, मिश्र, सासादन की संख्या विषैं जो पल्य कौं भागहार कह्या है, तिनकौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीए, जो प्रमाण आवै, तितना तितना तिन भागहारनि में मिलाए देवगति विषैं भागहार हो हैं । तहां पूर्वं असंयत गुणस्थान विषैं भागहार का प्रमाण एक बार असंख्यात कह्या था, ताकौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीजिये, जो प्रमाण आवै, तितने तिस भागहार में मिलाइए, जो प्रमाण होइ, तितना देवगति सम्बन्धी असंयत गुणस्थान विषैं भागहार जानना । इस भागहार का भाग पल्य कौं दीए, जो प्रमाण होइ, तितने देवगति विषैं असंयत गुणस्थानवर्ती जीव हैं। ऐसें ही आगें भी पल्य के भागहार जानने । बहुरि मिश्र विषैं दोय बार असंख्यात रूप अर सासादन विषैं दोय बार असंख्यात अर एक बार संख्यात रूप पूर्वं जो भागहार का प्रमाण कह्या था, तिसका एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो जो प्रमाण आवै, तितना तितना तहां मिलाए, देवगति संबंधी मिश्र विषैं वा सासादन विषैं भागहार का प्रमाण हो है । बहुरि देवगति संबंधी असंयत वा मिश्र वा सासादन विषैं जो जो भागहार का प्रमाण कह्या, तिस तिसकौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो जो प्रमाण आवै, तितना तितना तिस तिस भागहार में मिलाये, जो जो प्रमाण होइ, सो सो सौधर्म-ईशान संबंधी अविरत वा मिश्र वा सासादन विषैं भागहार जानना । जो देवगति संबंधी अविरत विषैं भागहार कह्या था, ताकौं एक घाटि आवली का असंख्यातवां भाग का भाग दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना तिस भागहार विषैं मिलाए, सौधर्म – ईशान स्वर्ग संबंधी असंयत विषैं भागहार हो है । इस ही प्रकार मिश्र विषैं वा सासादन विषैं भागहार जानना ।

---

१. षट्खण्डागम – धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ १६०–१६४ ।

सोहम्मेसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे ।
उवरि असंजद-मिस्सय-सासणसम्माण अवहारा[1] ॥६३६॥

सौधर्मैशानहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते ।
उपरि असंयतमिश्रकसासनसमीचामवहाराः ॥६३६॥

टीका – बहुरि ताके ऊपरि सनत्कुमार - माहेंद्र स्वर्ग है । तहां असंयत विषै सौधर्म - ईशान संबंधी सासादन का भागहार तैं असंख्यात गुणा भागहार जानना । इस असंयत का भागहार तैं चकार करि असंख्यात गुणा मिश्र विषैं भागहार जानना । यातैं संख्यात गुणा सासादन विषैं भागहार जानना ।

आगैं इस गुणने का अनुक्रम की व्याप्ति दिखावैं हैं–

सोहम्मादासारं, जोइसि-वण-भवण-तिरिय-पुढवीसु ।
अविरद-मिस्सेऽसंखं, संखासंखगुण सासणे देसे[2] ॥६३७॥

सौधर्मादासहस्रारं, ज्योतिषिवनभवनतिर्यक्पृथ्वीषु ।
अविरतमिश्रेऽसंख्यं संख्यासंख्यगुणं सासने देशे ॥६३७॥

टीका – सौधर्म - ईशान के ऊपरि सानत्कुमार - माहेन्द्र तै लगाइ शतार-सहस्रार पर्यंत पंच युगल अर ज्योतिषी अर व्यंतर अर भवनवासी अर तिर्यंच अर सात नरक की पृथ्वी इनि सोलह स्थान संबंधी अविरत विषैं अर मिश्र विषैं असंख्यात गुणा अनुक्रम जानना । अर सासादन विषैं संख्यात गुणा अनुक्रम जानना । अर तिर्यंच संबंधी देशसंयत विषैं असंख्यात गुणा अनुक्रम जानना, सो इस कथन कौं दिखाइए हैं–

सानत्कुमार - माहेंद्र विषैं जो सासादन का भागहार कह्या, तीहिस्यौं ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । संख्यात की सहनानी च्यारि ।४। का अंक है । बहुरि यातैं लांतव कापिष्ठ विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भाग-

---

१. षट्खण्डागम – धवला : पुस्तक ३, पृष्ठ संख्या २८२ से २८५ तक ।
२. षट्खण्डागम – धवला : पुस्तक ३, पृष्ठ संख्या २८२ से २८५ तक ।

हार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं शुक्र - महाशुक्र विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं शतार-सहस्रार विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भाग हार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं ज्योतिषीनि विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं व्यंतरनि विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं भवनवासीनि विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है ।

बहुरि यातैं तिर्यंचनि विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। यातैं तिर्यंच विषैं ही देशसंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । सो जो देशसंयत विषैं जो भागहार का प्रमाण है, सोई प्रथम नरक पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं दूसरी नरक पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं तीसरी नरक पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । यातैं चौथी नरक पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं पंचम नरक पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं षष्ठम पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है । बहुरि यातैं सप्तम नरक पृथ्वी विषैं असंयत का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है । यातैं सासादन का भागहार संख्यात गुणा है ।

आगैं आनतादि विषैं तीनि गाथानि करि कहैं हैं—

चरम-धरासण-हारा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं ।
अंतिम-गेवेज्जंतं, सम्माणमसंखसंखगुणहारा ॥६३८॥

चरमधरासनहारादानतसमीचामारणप्रभृति ।
अंतिमग्रैवेयकांतं, समीचामसंख्यसंख्यगुणहाराः ॥६३८॥

टीका – तीहिं सप्तम पृथ्वी संबंधी सासादन के भागहार तैं आनत-प्राणत संबंधी अविरत का भागहार असंख्यात गुणा है । बहुरि यातैं आरण-अच्युत तैं लगाइ नवमां ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनि विषैं असंयत का भागहार अनुक्रम तैं संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना । इहां संख्यात की सहनानी पांच का अंक है ।

तत्तो ताणुत्ताणं, वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो, आणदमिस्से असंखगुणो[1] ॥६३९॥

ततस्तेषामुक्तानां, वामानामनुदिशानां विजयादि ।
समीचां संख्यगुणः, आनतमिश्रे असंख्यगुणः ॥६३९॥

टीका – तीहिं अंतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयत का भागहार तैं आनत-प्राणत युगल तैं लगाइ, नवमां ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनि विषैं वामे जे मिथ्यादृष्टी जीव, तिनिका संख्यात गुणा, संख्यात गुणा भागहार अनुक्रम तैं जानना । इहां संख्यात की सहनानी छह का अंक है । बहुरि तीहिं अंतिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिथ्यादृष्टी का भागहार तैं नवानुदिश विमान वा विजयादिक च्यारि विमान, इनि दोऊ स्थानकनि विषैं असंयत का भागहार संख्यात गुणा, संख्यात गुणा क्रमतैं जानना । इहां संख्यात की सहनानी सात का अंक है । बहुरि विजयादिक सम्बन्धी असंयत का भागहार तैं आनतप्राणत सम्बन्धी मिश्र का भागहार असंख्यात गुणा है ।

तत्तो संखेज्जगुणो, सासाणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो, पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी[2] ॥६४०॥

---

१. षट्खंडागम धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ सं. २८५ ।
२. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ सं. २८५ ।

ततः संख्येयगुणः, सासनसमीचां भवति संख्यगुणः ।
उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुःसंदृष्टिः ॥६४०॥

टीका – तीहिं आनत-प्राणत सम्बन्धी मिश्र का भागहार तें आरण-अच्युत ते लगाइ नवमा ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनि विषें मिश्र गुणस्थान संबंधी भागहार अनुक्रम तें संख्यात गुणा, संख्यात गुणा जानना । इहां संख्यात की सहनानी आठ का अंक है । बहुरि अंतिम ग्रैवेयक के मिश्र का भागहार तें आनत - प्राणत तें लगाइ नवमां ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनि विषें सासादन का भागहार अनुक्रम तें संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना । इहां संख्यात की सहनानी च्यारि ।४। का अंक है । ए कहे पंच स्थानक, तिनिविषें संख्यात की सहनानी क्रमतें पांच, छह, सात, आठ, च्यारि का अंक जानना; सो कहते ही आए हैं ।

सग-सग-अवहारेहिं, पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सग-सग-गुणपडिवण्णे सग-सग-रासीसु अवणिदे वामा ॥६४१॥

स्वकस्वकावहारैः, पल्ये भक्ते भवंति स्वकराशयः ।
स्वकस्वकगुणप्रतिपन्नेषु, स्वकस्वकराशिषु अपनीतेषु वामाः ॥६४१॥

टीका — पूर्वें कह्या जो अपना–अपना भागहार, तिनिका भाग पल्य कौं दीएं, जो जो प्रमाण आवै, तितने–तितने जीव तहां जानने । बहुरि अपना-अपना सासादन, मिश्र, असंयत अर देशसंयत गुणस्थाननि विषें जो-जो प्रमाण भया, तिनिकों जोड दीएं, जो-जो प्रमाण होइ, तितना-तितना प्रमाण अपना-अपना राशि का प्रमाण में घटाएं, जो-जो अवशेष प्रमाण रहैं, तितने-तितने जीव, तहां मिथ्यादृष्टी जानने। तहां सामान्यपनें मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसारी-राशि प्रमाण हैं। सामान्यपनें देवगति विषें ऊन किंचित् देवराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टी जानने । सौधर्मादिक विषें जो-जो जीवनि का प्रमाण कह्या है, तहां द्वितीयादि गुणस्थान संबंधी प्रमाण घटावने के निमित्त किंचित् ऊनता कीएं, जो-जो प्रमाण रहै, तितने-तितने मिथ्यादृष्टी हैं । सो सौधर्मादिक विषें जीवनि का प्रमाण कितना-कितना है ? सो गति मार्गणा विषें कह्या ही है । इहां भी किछू कहिए हैं–

सौधर्म - ईशानवाले घनांगुल का तृतीय वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने हैं । सनत्कुमार युगल आदिक पंच युगलनि विषें क्रम तें जग-

च्छ्रेणी का ग्यारह्वां, नवमां, सातवां, पांचवां, चौथा वर्गमूल का भाग जगच्छ्रेणी कौं दीएं, जो-जो प्रमाण आवै, तितने-तितने हैं। ज्योतिषी पण्णट्ठि प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने हैं। व्यंतर संख्यात प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर कौं दीएं, जो प्रमाण आवै, तितने हैं। भवनवासी घनांगुल के प्रथम वर्गमूल करि जगच्छ्रेणी कौं गुणें, जो प्रमाण आवै, तितने हैं। तिर्यंच किंचित् ऊन संसारीराशि प्रमाण हैं। प्रथम पृथ्वी विषैं नारकी घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल करि साधिक बारह्वां भाग करि हीन जो जगच्छ्रेणी, ताकौं गुणें, जो प्रमाण होइ, तितने हैं। द्वितीयादिक पृथ्वी विषैं क्रमतैं जगच्छ्रेणी का बारह्वां, दशवां, आठवां, छठा, तीसरा, दूसरा वर्गमूल का भाग जगच्छ्रेणी कौं दीए, जो जो प्रमाण होइ, तितने-तितने जानने। इनि सबनि विषैं अन्य गुणस्थानवालों का प्रमाण घटावने के अर्थि किंचित् ऊन कीएं, मिथ्यादृष्टी जीवनि का प्रमाण हो है। बहुरि आनतादिक विषैं मिथ्यादृष्टी जीवनि का प्रमाण इहां ही पूर्वै कह्या है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि विषैं अहमिंद्र सर्व असंयत ही हैं। ते द्रव्य स्त्री मनुष्यणी तिनितैं तिगुणे वा कोई आचार्य के मत करि सात गुणे कहे हैं।

आगें मनुष्य गति विषैं संख्या कहे हैं–

तेरसकोडी देसे, बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्सा वि य तद्दुगुणा, असंजदा सत्त-कोडि-सयं[1] ॥६४२॥

त्रयोदशकोट्यो देशे, द्वापंचाशत् सासने मंतव्याः।
मिश्रा अपि च तद्द्विगुणा असंयताः सप्तकोटिशतम् ॥६४२॥

टीका – मनुष्य जीव देशसंयत विषैं तेरह् कोडि है। बावन कोडि सासादन विषैं जानने। मिश्र विषैं तिनतैं दुगुणे एक सौ च्यारि कोडि जानने। असंयत विषैं सातसै कोडि जानने और प्रमत्तादिक की संख्या पूर्वै कही है; सोई जाननी। ऐसैं गुणस्थाननि विषैं जीवनि का प्रमाण कह्या है।

जीविदरे कम्मचये, पुण्णं पावो त्ति होदि पुण्णं तु।
सुहपयडीणं दव्वं, पावं असुहाण दव्वं तु ॥६४३॥

---

१ षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–३, पृष्ठ–२५२, गाथा सं. ६८ तथा पृष्ठ–२५४, गाथा सं. ७० तक

जीवेतरस्मिन् कर्मचये, पुण्यं पापमिति भवति पुण्यं तु ।
शुभप्रकृतीनां द्रव्यं, पापं अशुभप्रकृतीनां द्रव्यं तु ।।६४३।।

टीका — जीव पदार्थ संबंधी प्रतिपादन विषैं सामान्यपनैं गुणस्थाननि विषैं मिथ्यादृष्टी अर सासादन ए तौ पापजीव हैं। बहुरि मिश्र हैं ते पुण्य-पापरूप मिश्र जीव हैं; जातैं युगपत् सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप परिणए हैं। बहुरि असंयत तौ सम्यक्त्व करि संयुक्त हैं। अर देशसंयत सम्यक्त्व अर देशव्रत करि संयुक्त हैं। अर प्रमत्तादिक सम्यक्त्व अर सकलव्रत करि संयुक्त हैं। तातैं ए पुण्यजीव हैं। असैं कहि, याके अनंतरि अजीव पदार्थ संबंधी प्ररूपणा करै हैं।

तहां कर्मचय कहिए कार्माणस्कंध, तिसविषैं पुण्यपापरूप दोय भेद हैं। तातैं अजीव दोय प्रकार है। तहां साता वेदनी नरक बिना तीन आयु, शुभ नाम, उच्च-गोत्र ए शुभ प्रकृति हैं। तिनिकौं द्रव्यपुण्य कहिए। बहुरि घातिया कर्मनि की सर्व प्रकृति, असाता वेदनी, नरक आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र ए अशुभ प्रकृति हैं। तिनिकौं द्रव्यपाप कहिए।

आसव-संवरदव्वं, समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं, उक्कस्सं होदि णियमेण ।।६४४।।

आस्रवसंवरद्रव्यम्, समयप्रबद्धं तु निर्जराद्रव्यम् ।
ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ।।६४४।।

टीका — बहुरि आस्रव द्रव्य अर संवर द्रव्य समयप्रबद्ध प्रमाण है; जातैं एक समय विषैं आस्रव समयप्रबद्ध प्रमाण पुद्गल परमाणूनि ही का हो है। बहुरि संवर होइ तौ तितने ही कर्मनि का आस्रव न होइ, तातैं द्रव्य संवर भी तितना ही कह्या। बहुरि उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य समयप्रबद्ध तैं असंख्यात गुणा नियम करि जानना; जातैं गुणश्रेणी निर्जरा विषैं उत्कृष्टपनैं एक समय विषैं असंख्यात समय-प्रबद्धनि की निर्जरा करै है।

बंधो समयपबद्धो, किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं, सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ।।६४५।।

बंधः समयप्रबद्धः, किंचिदूनद्व्यर्धमात्रगुणहानिः ।
मोक्षश्च भवत्येवं, श्रद्धातव्यास्तु तत्त्वार्थाः ।।६४५।।

टीका – बहुरि बंध द्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण है; जातैं एक समय विषैं समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणूनि ही का बंध हो है । बहुरि मोक्ष द्रव्य किंचिदून द्वयर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है; जातैं अयोगी कैं चरम समय विषैं द्वयर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्ता पाइए । तिस ही का मोक्ष हो है; इस प्रकार तत्वार्थ हैं, ते श्रद्धान करणे, इस तत्त्वार्थ श्रद्धान ही का नाम सम्यक्त्व है ।

आगें सम्यक्त्व के भेद कहैं है—

खीणे दंसणमोहे, जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई[1] ।
तं खाइय-सम्मत्तं, णिच्चं कम्म-क्खवण-हेदू ॥६४६॥

क्षीणे दर्शनमोहे, यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥६४६॥

टीका – मिथ्यात्व मोहनी, सम्यग्मिथ्यात्व मोहनी, सम्यक् मोहनी अर अनंतानुबंधी की चौकड़ी इनि सात प्रकृतिनि कौं करणलब्धिरूप परिणामनि का बल तैं नाश होत संतै जो अति निर्मल श्रद्धान होइ, सो क्षायिक सम्यक्त्व है । सो प्रतिपक्षी कर्म का नाश करि आत्मा का गुण प्रगट भया है; तातैं नित्य है । बहुरि समय समय प्रति गुणश्रेणी निर्जरा कौं कारण है; तातैं कर्मक्षय का हेतु है ।

उक्तं च—

दंसणमोहे खविदे, सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं च ॥

दर्शन मोह का क्षय होतैं, तीहि भव विषैं वा देवायु का बंध भए तीसरा भव विषैं वा पहिलैं मिथ्यात्वदशा विषैं मनुष्य, तिर्यंच आयु का बंध भया होइ तौ चौथा भव विषैं सिद्ध पद कौं प्राप्त होइ, चौथा भव कौं उलंघै नाहीं । बहुरि अन्य सम्यक्त्ववत् यह क्षायिक सम्यक्त्व विनशै भी नाहीं; तीहिस्यों नित्य कह्या है । सादि अक्षयानंत है । आदि सहित अविनाशी अंत रहित है; यह अर्थ जानना ।

---

1. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–१, पृष्ठ ३९७, गाथा सं. २१२ ।

इस ही अर्थ कौं कहैं हैं–

वयणेहिं वि हेदूहिं वि, इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।
बीभच्छजुगंछाहिं य, तेलोक्केण वि ण चालेज्जो[1] ॥६४७॥

वचनैरपि हेतुभिरपि इंद्रियभयानीतैः रूपैः ।
बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चाल्यः ॥६४७॥

टीका – श्रद्धान नष्ट होने कौं कारण असें कुत्सित वचननि करि वा कुत्सित हेतु दृष्टांतनि करि वा इंद्रियनि कौं भयकारी असे विकाररूप अनेक भेष आकारनि करि वा ग्लानि कौं कारण असी वस्तु तें निपज्या जुगुप्सा, तिन करि क्षायिक सम्यक्त्व चलै नाहीं । बहुत कहा कहिए तीन लोक मिलि करि क्षायिक सम्यक्त्व कौं चलाया चाहैं तौ क्षायिक सम्यक्त्व चलावने कौं समर्थ न होइ।

सो क्षायिक सम्यक्त्व कौन कैं हो है ? सो कहैं हैं–

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले, णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥६४८॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि ।
मनुष्यः केवलिमूले, निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥६४८॥

टीका – दर्शन मोह की क्षपणा का प्रारंभ तौ कर्मभूमि का उपज्या मनुष्य ही का केवली के पादमूल विषैं ही हो है । अर निष्ठापक सर्वत्र च्यारयौं गति विषैं हो है ।

भावार्थ — जो दर्शन मोह का क्षय होने का विधान है, तिसका प्रारंभ तौ केवली वा श्रुतकेवली के निकट कर्मभूमिया मनुष्य ही करै है । बहुरि सो विधान होतैं मरण हो जाय तौ जहां संपूर्ण दर्शन मोह के नाश का कार्य होइ निवरै, तहां ताकौं निष्ठापक कहिए; सो च्यारयौं गति विषैं हो है ।

आगें वेदक सम्यक्त्व का स्वरूप कहै हैं–

दंसणमोहुदयादो, उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं, वेदयसम्मत्तमिदि जाणे[2] ॥६४९॥

---

१. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–१ पृष्ठ ३९७, गाथा सं. २१४ ।
२. षट्खण्डागम धवला : पुस्तक–१ पृष्ठ ३९८, गाथा सं. २१५ ।

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
चलमलिनमगाढं तद् वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥६४९॥

टीका – दर्शनमोह का भेद सम्यक्त्वमोहनी, ताका उदय करि जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल वा मल वा अगाढ होइ, सो वेदक सम्यक्त्व है; ऐसा तू जानि । चल, मलिन, अगाढ का लक्षण पूर्वं गुणस्थानप्ररूपणा विषै कह्या है ।

आगें उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप अर तिस ही की सामग्री का विशेष तीन गाथानि करि कहैं हैं–

दंसणमोहुवसमदो, उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं, पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६५०॥

दर्शनमोहोपशमादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमम् ॥६५०॥

टीका – अनंतानुबंधी की चौकड़ी अर दर्शनमोह का त्रिक, इनि सात प्रकृतिनि के उदय का अभाव है लक्षण जाका ऐसा प्रशस्त उपशम होतें जैसैं कतक फलादिक तैं मल कर्दम के नीचें बैठने करि जल प्रसन्न हो है; तैसें जो तत्त्वार्थ श्रद्धान उपजै, सो यहु उपशम नामा सम्यक्त्व है ।

खयउवसमिय-विसोही, देसण-पाउग्ग-करणलद्धीय ।
चत्तारि वि सामण्णा, करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६५१॥

क्षायोपशमिकविशुद्धी, देशना प्रायोग्यकरणलब्धी च ।
चतस्रोऽपि सामान्याः करणं पुनर्भवति सम्यक्त्वे ॥६५१॥

टीका – सम्यक्त्व के पूर्वं जैसा कर्म का क्षयोपशम चाहिए तैसा होना, सो क्षयोपशमिकलब्धि । बहुरि जैसी विशुद्धता चाहिए तैसी होनी, सो विशुद्धिलब्धि । बहुरि जैसा उपदेश चाहिए तैसा पावना, सो देशनालब्धि । बहुरि पंचेंद्रियादिक रूप योग्यता जैसी चाहिए तैसी होनी, सो प्रायोग्यलब्धि । बहुरि अधः, अपूर्व, अनिवृत्ति-करणरूप परिणामनि का होना, सो करणलब्धि जाननी ।

तहां च्यारि लब्धि तौ सामान्य हैं; भव्य-अभव्य सर्व कैं हो हैं । बहुरि करण-लब्धि है, सो भव्य कैं ही हो है । सो भी सम्यक्त्व अर चारित्र का ग्रहण विषैं ही हो है ।

भावार्थ — च्यारि लब्धि तौ संसार विषैं अनेक बार हो हैं। बहुरि करण-लब्धि की प्राप्ति भएं सम्यक्त्व वा चारित्र अवश्य हो है।

आगैं उपशमसम्यक्त्व के ग्रहणे को योग्य जो जीव ताका स्वरूप कहै हैं—

चदुगदिभव्वो सण्णी, पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो।
जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी, पर्याप्तश्च शुद्धकश्च साकारः।
जागरूकः सल्लेश्यः, सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥६५२॥

टीका – जो जीव च्यारि गति में कोई एक गति विषैं प्राप्त ऐसा भव्य होइ, सैनी होइ, पर्याप्त होइ, मंदकषायरूप परिणामता विशुद्ध होइ, स्त्यानगृद्धयादिक तीन निद्रा तैं रहित होने तैं जागता होइ, भावित शुभ तीन लेश्यानि विषैं कोई एक लेश्या का धारक होइ, करणलब्धिरूप परिणया होइ; ऐसा जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौं प्राप्त हो है।

चत्तारि वि खेत्ताइं, आउगबंधेण होइ सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं, ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥६५३॥

चत्वार्यपि क्षेत्राणि, आयुष्कबंधेन भवति सम्यक्त्वम्।
अणुव्रतमहाव्रतानि, न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥६५३॥

टीका – च्यारि आयु विषैं किसी ही परभव का आयु बंध कीया होइ, तिस बद्धायु जीव कैं सम्यक्त्व उपजै, इहां किछू दोष नाहीं। बहुरि अणुव्रत अर महाव्रत जिसके देवायु का बंध भया होइ, तिसहीकैं होइ। जो पहिलैं नारक, तिर्यंच, मनुष्यायु का बंध मिथ्यात्व में भया होइ, तौ पीछे अणुव्रत, महाव्रत होइ नाहीं। यह नियम है।

ण य मिच्छत्तं पत्तो, सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो।
सो सासणो त्ति णेयो, पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५४॥

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः।
स सासन इति ज्ञेयः, पंचमभावेन संयुक्तः ॥६५४॥

टीका – जो जीव सम्यक्त्व तें पड्या अर मिथ्यात्व कौं यावत् प्राप्त न भया, तावत् काल सासादन है; असा जानना। सो दर्शन मोह ही की अपेक्षा पांचवां पारणामिक भाव करि संयुक्त है, जातें चारित्र मोह की अपेक्षा अनंतानुबंधी के उदय तें सासादन हो है, तातें इहां औदयिक भाव है। यहु सासादन जुदी ही जाति का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व मार्गणा का भेद जानना।

सद्दहणासद्दहणं, जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु।
विरयाविरयेण समो, सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ॥६५५॥

श्रद्धानाश्रद्धानं, यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु।
विरताविरतेन समः, सम्यग्मिथ्य इति ज्ञातव्यः ॥६५५॥

टीका – जिस जीव कें जीवादि पदार्थनि विषें श्रद्धान वा अश्रद्धान एक काल विषें होइ, जैसें देशसंयत कें संयम वा असंयम एकै काल हो है; तैसें होइ, सो जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टी है, असा जानना। यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिश्र नामा भेद कह्या है।

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं, उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥६५६॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं, उपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ॥६५६॥

टीका – मिथ्यादृष्टी जीव जिन करि उपदेशित असे आप्त, आगम, पदार्थ, तिनिका श्रद्धान करै नाहीं। बहुरि कुदेवादिक करि उपदेश्या वा अनुपदेश्या झूठा आप्त, आगम, पदार्थ, तिनिका श्रद्धान करै है। यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिथ्यात्व नामा भेद कह्या। असें सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद कहे। उपशम, क्षायिक, सम्यक्त्व का विशेष विधान लब्धिसार नामा ग्रंथ विषें कह्या है। ताके अनुसारि इहां भाषा टीका विषें आगें किछू लिखेंगे, तहां जानना।

आगें सम्यक्त्व मार्गणा विषें जीवनि की संख्या तीन गाथानि करि कहै हैं–

वासपुधत्ते खइया, संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे।
तो संखपल्लठिदिये, केवडिया एवमणुपादे ॥६५७॥

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः, संख्येया यदि भवंति सौधर्मे ।
तर्हि संख्यपल्यस्थितिके, कति एवमनुपाते ।।६५७।।

टीका – क्षायिक सम्यक्त्वी बहुत कल्पवासी देव हो है । बहुरि कल्पवासी देव बहुत सौधर्म – ईशान विषैं हैं, तातैं कहैं । जो पृथक्त्व वर्ष विषैं क्षायिक सम्यक्त्वी सौधर्म - ईशान विषैं संख्यात प्रमाण उपजैं तौ संख्यात पल्य की स्थिति विषैं कितने उपजें ? ऐसा त्रैराशिक करना । इहां प्रमाण राशि पृथक्त्व वर्ष प्रमाण काल, फलराशि संख्यात जीव, इच्छा राशि संख्या पल्य प्रमाण, कालसो फलतैं इच्छा कौं गुणैं, प्रमाण का भाग दीएं जो लब्धि राशि भया, सो कहैं हैं—

संखावलिहिदपल्ला, खइया तत्तो य वेदमुवसमया ।
आवलिअसंखगुणिदा, असंखगुणहीणया कमसो ।।६५८।।

संख्यावलिहितपल्याः, क्षायिकास्ततश्च वेदमुपशमकाः ।
आवल्यसंख्यगुणिता, असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ।।६५८।।

टीका — सो लब्ध राशि का प्रमाण संख्यात आवली का भाग पल्य कौं दीएं, जो प्रमाण होइ, तितना आया, सो तितने ही क्षायिक सम्यग्दृष्टी जानने । बहुरि इनिकौं आवली का असंख्यातवां भाग करि गुणैं, जो प्रमाण होइ, तितने वेदक सम्यग्दृष्टी जानने । बहुरि क्षायिक जीवां का परिमाण ही तैं असंख्यात गुणा घाटि उपशम सम्यग्दृष्टी जीव जानने ।

पल्लासंखेज्जदिमा, सासाणमिच्छा य संखगुणिदा हु ।
मिस्सा तेहिं विहीणो, संसारी वामपरिमाणं ।।६५९।।

पल्यासंख्याताः, सासनमिथ्याश्च संख्यगुणिता हि ।
मिश्रास्तैर्विहीनः, संसारी वामपरिमाणम् ।।६५९।।

टीका – पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादन, तेई मिथ्याती सामान्य हैं, तिनिका परिमाण है, तिनतैं संख्यात गुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव हैं । बहुरि इन पंच सम्यक्त्व संयुक्त जीवनि का मिलाया हुवा परिमाण कौं संसारी राशि में घटाएं, जो प्रमाण अवशेष रहे, तितने वाम कहिए मिथ्यादृष्टी, तिनिका परिमाण है ।

अब इहां नव पदार्थनि का परिमाण कहिए हैं–

जीव द्रव्य तौ द्विरूपवर्गधारा विषैं कहे अपने प्रमाण लीए हैं। बहुरि अजीवविषैं पुद्गल द्रव्य जीवराशि तैं अनंत गुणे हैं। धर्मद्रव्य एक है। अधर्मद्रव्य एक है। आकाश द्रव्य एक है। कालद्रव्य जगच्छ्रेणी का घन, जो लोक, तीहि प्रमाण है। सो पुद्गल का परिमाण विषैं धर्म, अधर्म, आकाश, काल का परिमाण मिलाएं, अजीव पदार्थ का परिमाण हो है।

बहुरि असंयत अर देशसंयत का परिमाण मिलाए, तिन विषैं प्रमत्तादिकनि का प्रमाण संख्यात मिलाएं, जो प्रमाण होइ, तितनें पुण्य जीव हैं। बहुरि किंचिदून द्व्यर्द्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनि की सत्ता है ताके संख्यातवें भागमात्र शुभ प्रकृतिरूप अजीव पुण्य हैं। बहुरि मिश्र अपेक्षा किछू अधिक जो पुण्य जीवनि का प्रमाण, ताकौं संसारी राशि में घटाएं, जो प्रमाण रहै, तितने पाप जीव हैं। बहुरि द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध कौं संख्यात का भाग दीजिए, तहां एक समय बिना बहुभाग प्रमाण अशुभ प्रकृतिरूप अजीव पाप हैं। बहुरि आस्रव पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। संवर पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। निर्जराद्रव्य गुणश्रेणी निर्जरा विषैं उत्कृष्टपनै जितनी निर्जरा होइ तीहि प्रमाण है। बंध पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। मोक्षद्रव्य द्व्यर्ध गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत की टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनविषैं सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा नाम सतरहवां अधिकार संपूर्ण भया ॥१७॥

> जो उपदेश सुनकर पुरुषार्थ करते हैं, वे मोक्ष का उपाय कर सकते हैं और जो पुरुषार्थ नहीं करते वे मोक्ष का उपाय नहीं कर सकते। उपदेश तो शिक्षामात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करे, वैसा लगता है।
>
> – मोक्षमार्ग प्रकाशक – अध्याय ९–पृष्ठ–३१०

अठारहवां अधिकार : संज्ञीमार्गणा

अरि रजविघ्न विनाशकर, अमित चतुष्टय थान ।
शत इंद्रनि करि पूज्य पद, सो श्री अर भगवान ।।१८।।

आगें संज्ञी मार्गणा कहैं हैं–

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी, इदरो सेसिंदिअवबोहो ।।६६०।।

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जबोधनं संज्ञा ।
सा यस्य स तु संज्ञी, इतरः शेषेंद्रियावबोधः ।।६६०।।

टीका – नो इन्द्रिय जो मन, ताके आवरण का जो क्षयोपशम तीहिंकरि उत्पन्न भया जो बोधन, ज्ञान, ताकौं संज्ञा कहिए । सो संज्ञा जाकै पाइए ताकौं संज्ञी कहिए है । मन-ज्ञान करि रहित अवशेष यथासंभव इन्द्रियनि का ज्ञान करि संयुक्त जो जीव, सो असंज्ञी है ।

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी, तव्विवरीओ असण्णी दु ।।६६१।।

शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही मनोवलंबेन ।
यो जीवः स संज्ञी, तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ।।६६१।।

टीका – हित-अहित का करने – त्यजनेरूप शिक्षा, हाथ-पग का इच्छा करि चलावने आदिरूप क्रिया, चामठी (बेंत) इत्यादि करि उपदेश्या वधविधानादिक सो उपदेश, श्लोकादिक का पाठ सो आलाप, इनिका ग्रहण करणहारा जो मन ताका अवलंबन करि क्रम तैं मनुष्य वा बलध वा हाथी वा सूवा इत्यादि जीव, सो संज्ञी नाम हैं । बहुरि इस लक्षण तैं उलटा लक्षण का जो जीव, सो असंज्ञी नाम जानना ।

मीमंसदि जो पुव्वं, कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य, समणो अमणो य विवरीदो ।।६६२।।

सीमांसति यः पूर्वं, कार्यमकार्यं च तत्त्वमितरच्च ।
शिक्षते नाम्ना एति च, समनाः अमनाश्च विपरीतः ।।६६२।।

टीका – जो पहिलें कार्य – अकार्य कौं विचारें, तत्व – अतत्व कौं सीखै, नाम करि बुलाया हुवा आवै, सो जीव मन सहित समनस्क, संज्ञी जानना । इस लक्षण तैं उलटा लक्षण कौं जो धरै होइ, सो जीव मन रहित अमनस्क असंज्ञी जानना ।

इहां जीवनि की संख्या कहैं हैं –

देवेहिं सादिरेगो, रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी, सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ।।६६३।।

देवैः सातिरेको, राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणम् ।
तेनोनः संसारी सर्वेषामसंज्ञिजीवानाम् ।।६६३।।

टीका – च्यारि प्रकार के देवनि का जो प्रमाण, तिनितैं किछू अधिक संज्ञी जीवनि का प्रमाण है । संज्ञी जीवनि विषै देव बहुत हैं । तिनिविषैं नारक, मनुष्य, पंचेंद्री सैनी तिर्यंच मिलाए संज्ञी जीवनि का प्रमाण हो है । इस प्रमाण कौं संसारी जीवनि का प्रमाण में घटाएं, अवशेष सर्व असंज्ञी जीवनि का प्रमाण हो है ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व-प्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नाम भाषा टीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषैं संज्ञी-मार्गणा प्ररूपणा नामा अठारहवां अधिकार संपूर्ण भया ।।१८।।

> तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग न लगावे वह तो इसी का दोष है । तथा पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगावे तब स्वयमेव ही मोह का अभाव होने पर सम्यक्त्वादि रूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है ।
>
> – मोक्षमार्ग प्रकाशक : अध्याय ९, पृष्ठ–३११

उन्नीसवां अधिकार : आहार-मार्गणा

मल्लिकुसुम समगंधजुत मोह शत्रुहर मल्ल ।
बहिरंतर श्रीसहित जिन, मल्लि हरहु मम शल्ल ।।१९।।

आगै आहार-मार्गणा कहैं हैं-

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं णाम ।।६६४।।

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानाम् ।
नोकर्मवर्गणानां, ग्रहणमाहारकं नाम ।।६६४।।

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीर नामा नामकर्म विषैं किसी ही का उदय करि जो तिस शरीररूप वा वचनरूप वा द्रव्य मनरूप होने योग्य जो नोकर्म वर्गणा, तिनिका जो ग्रहण करना, सो आहार ऐसा नाम है ।

आहरदि सरीराणं, तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं, तम्हा आहारयो भणियो ।।६६५।।

आहरति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्गणाश्च ।
भासामनसोर्नित्यं तस्मादाहारको भणितः ।।६६५।।

टीका – औदारिकादिक शरीरनि विषैं जो उदय आया कोई शरीर, तीहि रूप आहारवर्गणा, बहुरि भाषावर्गणा, बहुरि मनोवर्गणा इन वर्गणानि कौं यथायोग्य जीवसमास विषैं यथायोग्य काल विषैं यथायोग्यपनैं नियमरूप आहरति कहिए ग्रहण करै, सो आहार कह्या है ।

विग्गहगदिमावण्णा, केवलिणो समुग्घदो अयोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा ।।६६६।।

विग्रहगतिमापन्नाः, केवलिनः समुद्घाता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्च अनाहाराः, शेषा आहारका जीवाः ।।६६६।।

टीका – विग्रहगति कौं जे प्राप्त भए, असे च्यारयों गतिवाले जीव, बहुरि प्रतर अर लोकपूरणरूप केवल समुद्घात कौं प्राप्त भए असे सयोगी-जिन, बहुरि सर्व अयोगी-जिन, बहुरि सर्व सिद्ध भगवान ए सर्व अनाहारक हैं । अवशेष सर्व जीव आहारक ही हैं ।

सो समुद्घात कै प्रकार है ? सो कहैं हैं–

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो, सत्तमओ केवलीणं तु ॥६६७॥

वेदनाकषायवैगूर्विकाश्च, मारणांतिकः समुद्घातः ।
तेजआहारः षष्ठः, सप्तमः केवलिनां तु ॥६६७॥

टीका – वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, छठा आहारक, सातवां केवल ए सात समुद्घात जानने । इनिका स्वरूप लेश्या मार्गणा विषें क्षेत्राधिकार में कह्या था, सो जानना ।

समुद्घात का स्वरूप कह्या, सो कहैं हैं–

मूलसरीरमछंडिय, उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो, होदि समुग्घादणामं तु ॥६६८॥

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य ।
निर्गमनं देहाद्भवति समुद्घातनाम तु ॥६६८॥

टीका – मूल शरीर कौं तौ छोडै नाहीं, बहुरि कार्माण, तैजसरूप उत्तर शरीर सहित जीव के प्रदेश समूह का मूल शरीर तें बाह्य निकसना, सो समुद्घात असा नाम जानना ।

आहारमारणंतिय दुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु ।
दस-दिसि गदा हु सेसा, पंच समुग्घादया होंति ॥६६९॥

आहारमारणांतिकद्विकमपि नियमेन एकदिशिकं तु ।
दशदिशि गताहि शेषाः पंच समुद्घातका भवंति ॥६६९॥

टीका – आहारक अर मारणांतिक ए दोऊ समुद्घात तौ नियम करि एक दिशा कौं ही प्राप्त हो हैं; जातैं इन विषैं सूच्यंगुल का संख्यातवां भाग प्रमाण ही उंचाई, चौड़ाई होइ। अर लंबाई बहुत होइ। तातैं एक दिशा कौं प्राप्त कहिए। बहुरि अवशेष पंच समुद्घात रहे, ते दशों दिशा कौं प्राप्त हैं, जातैं इनि विषैं यथायोग्य लंबाई, चौड़ाई, उंचाई सर्व ही पाइए है।

आगैं आहार अनाहार का काल कहैं हैं–

अंगुलअसंखभागो, कालो आहारयस्स उक्कस्सो।
कम्मम्मि अणाहारो, उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥६७०॥

अंगुलासंख्यभागः, कालः आहारकस्योत्कृष्टः।
कार्मणे अनाहारः, उत्कृष्टः त्रयः समया हि ॥६७०॥

टीका – आहार का उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है। सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग के जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारक का काल है।

इहां प्रश्न – जो मरण तौ आयु पूरी भएं पीछें होइ ही होइ, तहां अनाहार होइ इहां आहार का काल इतना कैसे कह्या ?

ताका समाधान – जो मरण भए भी जिस जीव के वक्ररूप विग्रह गति न होइ, सूधी एक समय रूप गति होइ, ताकैं अनाहारकपणा न हो है। आहारकपणा ही रहै है, तातैं आहारक का पूर्वोक्तकाल उत्कृष्टपनैं करि कह्या है। बहुरि आहारक का जघन्य काल तीन समय घाटि सांस का अठारहवां भाग जानना; जातैं क्षुद्रभव विषैं विग्रहगति के समय घटाए इतना काल हो है। बहुरि अनाहारक का काल कार्माण शरीर विषैं उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना; जातैं विग्रह गति विषैं इतने काल पर्यंत ही नोकर्म वर्गणानि का ग्रहण न हो है।

आगैं इहां जीवनि की संख्या कहैं हैं–

कम्मइयकायजोगी, होदि अणाहारयाण परिमाणं।
तव्विरहिदसंसारी, सव्वो आहारपरिमाणं ॥६७१॥

कार्मणकाययोगी, भवति अनाहारकाणां परिमाणम्।
तद्विरहितसंसारी, सर्वं आहारपरिमाणम् ॥६७१॥

टीका – कार्माण काययोगवाले जीवनि का जो प्रमाण योगमार्गणा विषैं कह्या, सोई अनाहारक जीवनि का प्रमाण जानना । इसकौं संसारी जीवनि का प्रमाण में घटाएं, अवशेष रहै, तितना आहारक जीवनि का प्रमाण जानना । सोई कहैं हैं – प्रथम योगनि का काल कहिए है – कार्माण का तौ तीन समय, औदारिक मिश्र का अंतर्मुहूर्त प्रमाण, औदारिक का तीहिस्यों संख्यात गुणा काल, तहां सर्वकाल मिलाएं तीन समय अधिक संख्यात अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल भया । याका किंचित् ऊन संसारी राशि का भाग दीएं, जो प्रमाण आवै, ताकौं तीन करि गुणें, जो प्रमाण आवै तितने अनाहारक जीव हैं; अवशेष सर्व संसारी आहारक जीव हैं । वैक्रियिक, आहारकवाले थोरे हैं, तिन की मुख्यता नाहीं है ।

इहां **प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति**, ऐसा यह करणसूत्र जानना । **याका अर्थ** – प्रक्षेप कौं मिलाय करि मिश्र पिंड का भाग देइ, जो प्रमाण होइ ताकौं प्रक्षेपक करि गुणें, अपना अपना प्रमाण होइ । जैसें कोई एक हजार प्रमाण वस्तु है, तातें किसी का पंच बट है, किसी का साल बट है, किसी का आठ बट है । सब कौं मिलाएं प्रक्षेपक का प्रमाण बीस भए । तिस बीस का भाग हजार कौं दीएं पचास पाए, तिनकौं पंच करि गुणें, अढाई सै भए, सो पंच बटवाले कैं आए । साल करि गुणें, साढा तीन सौ भए, सो साल बटवाले कैं आए । आठ करि गुणें, च्यारि सै भए, सो आठ बटवाले कै आए । ऐसे मिश्रक व्यवहार विषैं अन्यत्र भी जानना ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं आहार-मार्गणा प्ररूपणा नाम उगनीसवां अधिकार संपूर्ण भया ।।१६।।

> सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर भ्रम दूर होता है, परंतु ऐसा पुरुषार्थ नहीं करता, इसी से भ्रम रहता है । निर्णय करने का पुरुषार्थ करे–तो भ्रम का कारण जो मोह-कर्म, उसके भी उपशमादि हों, तब भ्रम दूर हो जाये, क्योंकि निर्णय करते हुए परिणामों की विशुद्धता होती है, उससे मोह के स्थिति अनुभाग घटते हैं ।
>
> – मोक्षमार्ग प्रकाशक : अधिकार ९, पृष्ठ–३१०

बीसवां अधिकार : उपयोगाधिकार

सुव्रत पावन कौं भजैं, जाहि भक्त व्रतवंत ।
निज सुव्रत श्री देहु मम, सो सुव्रत अरहंत ॥२०॥

आगैं उपयोगाधिकार कहैं हैं—

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स जो हु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो, सायारो चेव णायारो ॥६७२॥

वस्तुनिमित्तं भावो, जातो जीवस्य यस्तूपयोगः ।
स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चेवानाकारः ॥६७२॥

टीका — बसैं हैं, एकीभाव रूप निवसैं हैं; गुण, पर्याय जा विषैं, सो वस्तु, ज्ञेय पदार्थ जानना । ताके ग्रहण के अर्थि जो जीव का परिणाम विशेष रूप भाव प्रवर्तै, सो उपयोग है । बहुरि सो उपयोग साकार - अनाकार भेद तैं दोय प्रकार जानना ।

आगैं साकार उपयोग आठ प्रकार हैं, अनाकार उपयोग च्यारि प्रकार हैं, ऐसा कहै हैं—

णाणं पंचविहं पि य, अण्णाण-तियं च सागरुवजोगो ।
चदु-दंसणमणगारो, सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥६७३॥

ज्ञानं पंचविधमपि च, अज्ञानत्रिकं च साकारोपयोगः ।
चतुर्दर्शनमनाकारः, सर्वे तल्लक्षणा जीवाः ॥६७३॥

टीका — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ए पंच प्रकार ज्ञान, बहुरि कुमति, कुश्रुत, विभंग ए तीन अज्ञान, ए आठौं साकार उपयोग हैं । बहुरि चक्षु, अचक्षु अवधि, केवल ए च्यारचों दर्शन अनाकार उपयोग हैं । सो सर्व ही जीव ज्ञान - दर्शन रूप उपयोग लक्षण कौं धरैं हैं ।

इस लक्षण विषैं अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंभवी दोष न संभवै हैं । जहां लक्ष्य विषैं वा अलक्ष्य विषैं लक्षण पाइए, तहां अतिव्याप्ति दोष हैं । जैसैं जीव का

लक्षण अमूर्तिक कहिए तौ अमूर्तिकपना जीव विषें भी है अर धर्मादिक विषें भी है। बहुरि जहां लक्षण का एकदेश विषें लक्षण पाइए, तहां अव्याप्ति दोष है। जैसें जीव का लक्षण रागादिक कहिए तौ रागादिक संसारी विषें तौ संभवै, परि सिद्ध जीवनि विषें संभवै नाहीं। बहुरि जो लक्ष्य तें विरोधी लक्षण होइ, सो असंभवी कहिए। जैसे जीव का लक्षण जड़त्व कहिए, सो संभवै ही नाहीं। अैसें त्रिदोष रहित उपयोग ही जीव का लक्षण जानना।

मदि-सुद-ओहि-मणेहिं य सग-सग-विसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो दु सायारो ॥६७४॥

मतिश्रुतावधिमनोभिश्च स्वकस्वकविषये विशेषविज्ञानं।
अंतर्मुहूर्तकाल, उपयोगः स तु साकारः ॥६७४॥

टीका – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञाननि करि अपने - अपने विषय विषें जो विशेष ज्ञान होइ, अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण पदार्थ का ग्रहण रूप लक्षण धरें, जो उपयोग होइ, सो साकार उपयोग है। इहां वस्तु का ग्रहण रूप जो चैतन्य का परिणमन, ताका नाम उपयोग है। मुख्यपनें उपयोग है, सो छद्मस्थ कें एक वस्तु का ग्रहण रूप चैतन्य का परिणमन अंतर्मुहूर्त मात्र ही रहै है। तातें अंतर्मुहूर्त ही कह्या है।

इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो अणायारो ॥६७५॥

इंद्रियमनोऽवधिना, वा अर्थे अविशेष्य यद्ग्रहणम्।
अंतर्मुहूर्तकालः उपयोगः स अनाकारः ॥६७५॥

टीका – नेत्र इन्द्रियरूप चक्षुदर्शन वा अवशेष इन्द्रिय अर मनरूप अचक्षु दर्शन वा अवधि दर्शन, इनकरि जो जीवादि पदार्थनि का विशेष न करिकें निर्विकल्पपनें ग्रहण होइ, सो अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण सामान्य अर्थ का ग्रहण रूप निराकार उपयोग है।

भावार्थ – वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। तहां सामान्य का ग्रहण कौं निराकार उपयोग कहिए, विशेष का ग्रहण कौं साकार उपयोग कहिए। जातैं सामान्य विषें वस्तु का आकार प्रतिभासै नाहीं; विशेष विषें आकार प्रतिभासै है।

आगें इहां जीवनि की संख्या कहैं हैं –

णाणुवजोगजुदाणं, परिमाणं णाणमग्गणं व हवे ।
दंसणुवजोगियाणं, दंसणमग्गण व उत्तकमो ॥६७६॥

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्गणावद्भवेत् ।
दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्गणावदुक्तक्रमः ॥६७६॥

टीका – ज्ञानोपयोगी जीवनि का परिमाण ज्ञानमार्गणावत् है । बहुरि दर्शनोपयोगी जीवनि का परिमाण दर्शनमार्गणावत् है । सो कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, बहुरि तिर्यंच-विभंगज्ञानी, मनुष्य-विभंगज्ञानी, नारक–विभंगज्ञानी, इनिका प्रमाण जैसें ज्ञानमार्गणा विषैं कह्या है । तैसें हीं ज्ञानोपयोग विषैं प्रमाण जानना । किछू विशेष नाहीं । बहुरि शक्तिगत चक्षुर्दर्शनी, व्यक्तगत चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनी, अवधिदर्शनी केवल दर्शनी, इनिका प्रमाण जैसें दर्शन–मार्गणा विषैं कह्या है; तैसें इहां निराकार उपयोग विषैं प्रमाण जानना । किछू विशेष नाहीं ।

इति श्री आचार्य नेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्व प्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीका विषैं जीवकाण्ड विषैं प्ररूपित बीस प्ररूपणा तिनिविषैं उपयोग-मार्गणाप्ररूपणा नामा बीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥२०॥

तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष नहीं है, तेरा ही दोष है, परंतु तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, सो जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव नहीं है । तुझे विषय कषाय रूप ही रहना है इसलिए झूठ बोलता है । मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो ऐसी युक्ति किसलिए बनाए ? सांसारिक कार्यों में अपने पुरुषार्थ से सिद्धि न होती जाने तथापि पुरुषार्थ उद्यम किया करता है, यहाँ पुरुषार्थ खो बैठा है, इसलिए जानते हैं कि मोक्ष को देखा-देखी उत्कृष्ट कहता है, उसका स्वरूप पहिचान कर उसे हितरूप नहीं जानता । हित जानकर उसका उद्यम बने सो न करे यह असंभव है ।

– मोक्षमार्ग प्रकाशक : अधिकार ९, पृष्ठ–३११

इक्कीसवां अधिकार : अंतरभावाधिकार

विभव अमित ज्ञानादि जुत, सुरपति नुत नमिनाथ ।
जय मम ध्रुवपद देहु जिहि, हत्यो घातिया साथ ॥२१॥

आगें बीस प्ररूपणा का अर्थ कहि, अब उत्तर अर्थ कौं कहै हैं—

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविदव्वा, ओघादेसेसु पत्तेयं ॥६७७॥

गुणजीवाः पर्याप्तयः, प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणोपयोगौ ।
योग्याः प्ररूपितव्या, ओघादेशयोः प्रत्येकम् ॥६७७॥

टीका – कही जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषैं गुणस्थान अर मार्गणास्थान, इनि विषैं गुणस्थान अर जीवसमास अर पर्याप्ति अर प्राण अर संज्ञा अर चौदह मार्गणा अर उपयोग ए बीस प्ररूपणा जैसें संभवैं, तैसें निरूपण करनी । सोई कहै हैं–

चउ पण चोद्दस चउरो, णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥६७८॥

चत्वारि पंच चतुर्दश, चत्वारि निरयादिषु चतुर्दश तु पंचाक्षे ।
त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यात्वं गुणस्थानम् ॥६७८॥

टीका – गति-मार्गणा विषैं क्रम तैं गुणस्थान मिथ्यादृष्ट्यादि नरक विषैं च्यारि, तिर्यंच विषैं पांच, मनुष्य विषैं चौदह, देव विषैं च्यारि जानने । बहुरि इन्द्रिय-मार्गणा विषैं अर काय-मार्गणा विषैं पचेंद्रिय मैं अर त्रसकाय मैं तौ चौदह गुणस्थान हैं । अवशेष इंद्रिय अर काय मैं एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान है । बहुरि जीवसमास नरकगति अर देवगति विषैं सैनी पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त ए दोय हैं; अर तिर्यंच विषैं सर्व चौदह ही हैं । मनुष्य विषैं सैनी पर्याप्त, अपर्याप्त ए दोय हैं । इहां नरक देवगति विषैं लब्धि-अपर्याप्तक नाहीं; तातैं निर्वृत्ति-अपर्याप्त कह्या । मनुष्य विषैं निर्वृत्ति-अपर्याप्त, लब्धि-अपर्याप्त दोऊ पाइए; तातैं सामान्यपनैं अपर्याप्त ही कह्या है । बहुरि इंद्रिय-मार्गणा विषैं एकेंद्रिय मैं बादर, सूक्ष्म, एकेंद्री तौ पर्याप्त अर अपर्याप्त ऐसैं च्यारि जीवसमास हैं । बेंद्री, तेइन्द्री मैं अपना अपना पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोय जीवसमास हैं । पंचेंद्रिय मैं सैनी, असैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए च्यारि

जीवसमास हैं। बहुरि कायमार्गणा विषें पृथ्वी आदि पंच स्थावरनि में एकेंद्रियवत् च्यारि च्यारि जीवसमास हैं। त्रस विषें अवशेष दश जीवसमास हैं।

मज्झिम-चउ-मण-वयणे, सण्णिप्पहुदिं दु जाव खीणो त्ति।
सेसाणं जोगि त्ति य, अणुभयवयणं तु वियलादो ॥६७९॥

मध्यमचतुर्मनवचनयोः, संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् क्षीण इति।
शेषाणां योगीति च, अनुभयवचनं तु विकलतः ॥६७९॥

टीका – मध्यम जो असत्य अर उभय मन वा वचन इनि च्यारि योगनि विषें सैनी मिथ्यादृष्टी तें लगाइ क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान हैं। बहुरि सत्य अर अनुभय मनोयोग विषें अर सत्य वचन योग विषें सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी तें लगाइ सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थान हैं। बहुरि इनि सबनि विषें जीवसमास एक सैनी पर्याप्त है। बहुरि अनुभय वचनयोग विषें विकलत्रय मिथ्यादृष्टी तें लगाइ तेरह गुणस्थान हैं। बहुरि बेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, सैनी पंचेंद्री, असैनी पंचेंद्री इनका पर्याप्तरूप पांच जीवसमास हैं।

ओरालं पज्जत्ते, थावरकायादि जाव जोगो त्ति।
तम्मिस्समपज्जत्ते, चदुगुणठाणेसु णियमेण ॥६८०॥

औरालं पर्याप्ते, स्थावरकायादि यावत् योगीति।
तन्मिश्रमपर्याप्ते, चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ॥६८०॥

टीका – औदारिक काययोग एकेंद्री स्थावर पर्याप्त मिथ्यादृष्टी तें लगाइ, सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थाननि विषें है। बहुरि औदारिक मिश्रकाययोग अपर्याप्त च्यारि गुणस्थाननि विषें ही है नियमकरि। किनविषें ? सो कहैं हैं–

मिच्छे सासणसम्मे, पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि।
णर-तिरिये वि य दोण्णि वि, होंति त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८१॥

मिथ्यात्वे सासनसम्यक्त्वे, पुंवेदायते कपाटयोगिनि।
नरतिरश्चोरपि च द्वावपि भवंतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६८१॥

टीका – मिथ्यादृष्टी, सासादन पुरुषवेद का उदय करि संयुक्त असंयत, कपाट समुद्घात सहित सयोगी इनि अपर्याप्तरूप च्यारि गुणस्थाननि विषें, सो औदा-

रिक मिश्रयोग पाइए है । बहुरि औदारिक वा औदारिक-मिश्र ए दोऊ योग मनुष्य अर तिर्यंचनि ही कै हैं; अैसा जिनदेवने कह्या है । बहुरि औदारिक विषैं तौ पर्याप्त सात जीवसमास हैं, अर औदारिक मिश्र विषैं अपर्याप्त सात जीवसमास अर सयोगी कैं एक पर्याप्त जीवसमास अैसैं आठ जीवसमास हैं ।

वेगुव्वं पज्जत्ते, इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुर-णिरय-चउट्ठाणे, मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु ॥६८२॥

वैगूर्वं पर्याप्ते, इतरे खलु भवति तस्य मिश्रं तु ।
सुरनिरयचतुःस्थाने, मिश्रे नहि मिश्रयोगो हि ॥६८२॥

टीका – वैक्रियिक योग पर्याप्त देव, नारकीनि के मिथ्यादृष्टी तें लगाइ च्यारि गुणस्थाननि विषैं हैं । बहुरि वैक्रियिक-मिश्र योग मिश्रगुणस्थान विषैं नाहीं; तातैं देवनारकी संबंधी मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत इनही विषैं हैं । बहुरि जीवसमास वैक्रियिक विषैं एक सैनी पर्याप्त है । अर वैक्रियिक मिश्र विषैं एक सैनी निर्वृत्ति-अपर्याप्त है ।

आहारो पज्जत्ते, इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु ।
अंतोमुहुत्तकाले, छट्ठगुणे होदि आहारो ॥६८३॥

आहारः पर्याप्ते, इतरे खलु भवति तस्य मिश्रस्तु ।
अंतर्मुहूर्तकाले, षष्ठगुणे भवति आहारः ॥६८३॥

टीका – आहारक योग सैनी पर्याप्तक छट्ठा गुणस्थान विषैं जघन्यपनें वा उत्कृष्टपनें अंतर्मुहूर्त काल विषैं ही है । बहुरि आहारक-मिश्र योग है, सो इतर जो संज्ञी अपर्याप्तरूप छट्ठा गुणस्थान विषैं जघन्यपनें वा उत्कृष्टपनें अंतर्मुहूर्त काल विषैं ही हो है । तातैं तिन दोऊनि कैं गुणस्थान एक प्रमत्त अर जीवसमास सोई एक एक जानना ।

ओरालियमिस्सं वा, चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगदिविग्गहकाले, जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ॥६८४॥

औरालिकमिश्रो वा, चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्मणम् ।
चतुर्गतिविग्रहकाले, योगिनश्च प्रतरलोकपूरणके ॥६८४॥

टीका – कार्माणयोग औदारिक मिश्रवत् च्यारि गुणस्थाननि विषै है। सो कार्माणयोग च्यार्यों गति संबंधी विग्रहगति विषै वा सयोगी के प्रतर लोक पूरण काल विषै पाइए हैं। तातैं गुणस्थान च्यारि अर जीवसमास आठ औदारिक मिश्रवत् इहां जानने।

थावरकायप्पहुदी, संढो सेसा असण्णिआदी य।
अणियट्टिस्स य पढमो, भागो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८५॥

स्थावरकायप्रभृतिः, षंढः शेषा असंज्ञ्यादयश्च।
अनिवृत्तेश्च प्रथमो, भागः इति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६८५॥

टीका – वेदमार्गणा विषै नपुंसकवेद है, सो स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ अनिवृत्तिकरण का पहिला सवेद भागपर्यंत हो है; तातैं गुणस्थान नव, जीवसमास सर्व चौदह हैं। बहुरि शेष स्त्रीवेद अर पुरुषवेद सैनी, असैनी पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ, अनिवृत्तिकरण का अपना-अपना सवेद भागपर्यंत हैं। तातैं गुणस्थान नव, जीवसमास सैनी, असैनी, पर्याप्त वा अपर्याप्तरूप च्यारि जिनदेवनि करि कहे हैं।

थावरकायप्पहुदी, अणियट्टीबितिचउत्थभागो त्ति।
कोहतियं लोहो पुण, सुहुमसरागो त्ति विण्णेयो ॥६८६॥

स्थावरकायप्रभृति, अनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्थभाग इति।
क्रोधत्रिकं लोभः पुनः, सूक्ष्मसराग इति विज्ञेयः ॥६८६॥

टीका – कषायमार्गणा विषै स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी तैं लगाइ क्रोध, मान, माया तौ क्रमतैं अनिवृत्तिकरण का दूसरा, तीसरा, चौथा भागपर्यंत हैं। अर लोभ सूक्ष्मसांपराय पर्यंत है; तातैं क्रोध, मान, माया विषै गुणस्थान नव, लोभविषै दश; अर जीवसमास सर्वत्र चौदह जानने।

थावरकायप्पहुदी, मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु।
सण्णीपुण्णप्पहुदी, सासणसम्मो त्ति णायव्वो ॥६८७॥

स्थावरकायप्रभृति, मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु।
संज्ञिपूर्णप्रभृति, सासनसम्यगिति ज्ञातव्यः ॥६८७॥

टीका – ज्ञानमार्गणा विषें कुमति, कुश्रुत अज्ञान दोऊ स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी तें लगाइ सासादनपर्यंत हैं। तातैं तहां गुणस्थान दोय, अर जीवसमास चौदह हैं। बहुरि विभंगज्ञान संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी आदि सासादन पर्यंत जानना; तातैं गुणस्थान दोय अर जीवसमास एक सैनी पर्याप्त ही है।

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो।
खीणकसायं जाव दु, केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥६८८॥

सद्ज्ञानत्रिकमविरतसम्यगादि षष्ठकादिर्मनःपर्ययः।
क्षीणकषायं यावत्तु, केवलज्ञानं जिने सिद्धे ॥६८८॥

टीका – मति, श्रुत, अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत हैं; तातैं गुणस्थान नव अर जीवसमास सैनी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय जानने। बहुरि मनःपर्ययज्ञान छट्ठा तैं क्षीणकषाय पर्यंत है; तातैं गुणस्थान सात अर जीवसमास एक सैनी पर्याप्त ही है। मनःपर्ययज्ञानी कैं आहारक ऋद्धि न होइ; तातैं आहारक मिश्र अपेक्षा भी अपर्याप्तपना न संभवै है। बहुरि केवलज्ञान सयोगी, अयोगी अर सिद्ध विषें हैं; तातैं गुणस्थान दोय, जीवसमास सैनी पर्याप्त अर सयोगी की अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय जानने।

अयदो त्ति हु अविरमणं, देसे देसो पमत्त इदरे य।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलो त्ति ॥६८९॥

सुहुमो सुहुमकसाये, संते खीणे जिणे जहक्खादं।
संजममग्गणभेदा, सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६९०॥ जुम्मं।

अयत इति अविरमणं, देशे देशः प्रमत्तेतरस्मिन् च।
परिहारः सामायिकश्छेदः षष्ठादिः स्थूल इति ॥६८९॥

सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये, शांते क्षीणे जिने यथाख्यातम्।
संयममार्गणा भेदाः, सिद्धे न संतीति निर्दिष्टम् ॥६९०॥

टीका – संयममार्गणा विषें असंयम है; सो मिथ्यादृष्ट्यादिक असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषें है। तहां जीवसमास चौदह हैं। बहुरि देशसंयम एकदेश

संयत गुणस्थान विषैं ही है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि सामायिक छेदोपस्थापना संयम प्रमत्तादिक अनिवृत्तिकरण पर्यंत च्यारि गुणस्थानन विषैं है । तहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अर आहारक मिश्र अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय हैं । बहुरि परिहारविशुद्धि संयम प्रमत्त अप्रमत्त दोय गुणस्थाननि विषैं ही है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त हैं; जातैं इस सहित आहारक होइ नाहीं । बहुरि सूक्ष्मसांपराय संयम सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान विषैं ही है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि यथाख्यात संयम उपशांतकषायादिक च्यारि गुणस्थाननि विषैं है । तहां जीवसमास एक सैनी पर्याप्त अर समुद्घात केवली की अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय हैं । बहुरि सिद्ध विषैं संयम नाहीं है, जातैं चारित्र है, सो मोक्ष का मार्ग है, मोक्षरूप नाहीं है, ऐसे परमागम विषैं कह्या है ।

चउरक्खथावराविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहो त्ति ।
चक्खु-अचक्खू-ओही, जिणसिद्धे केवलं होदि ॥६९१॥

चतुरक्षस्थावराविरतसम्यग्दृष्टिस्तु क्षीणमोह इति ।
चक्षुरचक्षुरवधिः, जिनसिद्धे केवलं भवति ॥६९१॥

टीका – दर्शनमार्गणा विषैं चक्षुदर्शन है । सो चौइंद्री मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान विषैं है । तहां जीवसमास चौइंद्री, सैनी पंचेंद्री असैनी पंचेंद्री पर्याप्त वा अपर्याप्त ए छह हैं । बहुरि अचक्षु दर्शन स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान विषैं हैं । तहां जीवसमास चौदह हैं । बहुरि अवधि दर्शन असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत नव गुणस्थान विषैं है । तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त दोय हैं । बहुरि केवलदर्शन सयोग - अयोग दोय गुणस्थान विषैं है । तहां जीवसमास केवलज्ञानवत् दोय हैं अर सिद्ध विषैं भी केवल दर्शन है ।

थावरकायप्पहुदी, अविरदसम्मो त्ति असुह-तिय-लेस्सा ।
सण्णीदो अपमत्तो, जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥६९२॥

स्थावरकायप्रभृति, अविरतसम्यगिति अशुभत्रिकलेश्याः ।
संज्ञितोऽप्रमत्तो यावत्तु शुभास्तिस्रो लेश्याः ॥६९२॥

टीका – लेश्यामार्गणा विषें कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्याएं हैं । ते स्थावर मिथ्यादृष्टी आदि असंयत पर्यंत हैं । तहां जीवसमास चौदह हैं । बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि अप्रमत्त पर्यंत है । तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं ।

णवरि य सुक्का लेस्सा, सजोगिचरिमो त्ति होदि णियमेण ।
अयजोगिम्मि वि सिद्धे, लेस्सा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ॥६९३॥

नवरि च शुक्ला लेश्या, सयोगिचरम इति भवति नियमेन ।
अयोगेऽपि च सिद्धे, लेश्या नास्तीति निर्दिष्टम् ॥६९३॥

टीका – शुक्ललेश्या विषें विशेष है, सो कहा ? शुक्ललेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत है । तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं नियम करि; जातें केवलसमुद्घात का अपर्याप्तपना इहां अपर्याप्त जीवसमास विषें गर्भित है । बहुरि अयोगी जिन विषें वा सिद्ध विषें लेश्या नाहीं, ऐसा परमागम विषें कह्या है ।

थावरकायप्पहुदी, अजोगिचरिमो त्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे, अभव्वसिद्धा हवंति त्ति ॥६९४॥

स्थावरकायप्रभृति, अयोगिचरम इति भवंति भवसिद्धाः ।
मिथ्यादृष्टिस्थाने, अभव्यसिद्धा भवंतीति ॥६९४॥

टीका – भव्यमार्गणा विषें भव्यसिद्ध हैं, ते स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि अयोगी पर्यंत हैं । अर अभव्यसिद्ध एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान विषें ही हैं । इनि दोऊनि विषें जीवसमास चौदह-चौदह हैं ।

मिच्छो सासणमिस्सो, सग-सग-ठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तो त्ति ॥६९५॥

मिथ्यात्वं सासनमिश्रौ, स्वकस्वकस्थाने भवति अयतात् ।
प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकमप्रमत्त इति ॥६९५॥

टीका – सम्यक्त्वमार्गणा विषें मिथ्यादृष्टी, सासादन, मिश्र ए तीन तौ अपने-अपने एक-एक गुणस्थान विषें हैं । बहुरि जीवसमास मिथ्यादृष्टी विषें तौ

चौदह हैं । सासादन विषै बादर एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री, चौइन्द्री, सैनी, असैनी अपर्याप्त अर सैनी पर्याप्त ए सात पाइए । द्वितीयोपशम सम्यक्त्व तै पड़ि जो सासादन कौं प्राप्त भया होइ, ताकी अपेक्षा तहां सैनी पर्याप्त अर देव अपर्याप्त ए दोय ही जीवसमास हैं । मिश्र विषै सैनी पर्याप्त एक ही जीवसमास है । बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदक सम्यक्त्व ए दोऊ असंयतादि अप्रमत्त पर्यंत हैं । तहां जीवसमास प्रथमोपशम सम्यक्त्व विषै तौ मरण नाहीं है, तातैं एक संज्ञी पर्याप्त ही है । अर वेदक सम्यक्त्व विषै सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं; जातैं धम्मानरक, भवनत्रिक बिना देव, भोगभूमिया मनुष्य वा तिर्यंच, इनिकै अपर्याप्त विषै भी वेदक सम्यक्त्व संभवै हैं ।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को कहैं हैं–

बिदियुवसमसम्मत्तं, अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति ।
खइगं सम्मं च तहा, सिद्धो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६९६॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यगादिशांतमोह इति ।
क्षायिकं सम्यक्त्वं च तथा, सिद्ध इति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६९६॥

टीका – द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असंयतादि उपशांत कषाय पर्यंत है; जातैं इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कौं अप्रमत्त विषै उपजाय ऊपरि उपशांतकषाय पर्यंत जाइ, नीचैं पड़ै, तहां असंयत पर्यंत द्वितीयोपशम सम्क्त्व सहित आवै, तातैं असंयत आदि विषै भी कह्या । तहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अर देव असंयत अपर्याप्त ए दोय पाइए हैं, जातैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषै मरण है, सो मरि देव ही हो है । बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व असंयतादि अयोगी पर्यंत ही है । तहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त है । अर जाकैं आयु बंध हुवा होइ, ताकै धम्मा नरक, भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंच, वैमानिक देव, इनिका अपर्याप्त भी है, तातैं दोय जीवसमास हैं । बहुरि सिद्ध विषैं भी क्षायिक सम्यक्त्व है; असा जिनदेवने कह्या है ।

सण्णी सण्णिप्पहुदी, खीणकसाओ त्ति होदि णियमेण ।
थावरकायप्पहुदी, असण्णि त्ति हवे असण्णी हु ॥६९७॥

संज्ञी संज्ञिप्रभृतिः क्षीणकषाय इति भवति नियमेन ।
स्थावरकायप्रभृतिः, असंज्ञीति भवेदसंज्ञी हि ॥६९७॥

टीका – संज्ञी मार्गणा विषैं संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत है। तहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय हैं। बहुरि असंज्ञी जीव स्थावर कायादिक असैनी पंचेंद्री पर्यंत मिथ्यादृष्टी गुणस्थान विषैं ही है नियमकरि। तहां जीवसमास सैनी संबंधी दोय बिना बारह जानने।

थावरकायप्पहुदी, सजोगिचरिमो त्ति होदि आहारी।
कम्मइय अणाहारी, अजोगिसिद्धे वि णायव्वो ॥६९८॥

स्थावरकायप्रभृतिः, सयोगिचरम इति भवति आहारी।
कार्मण अनाहारी, अयोगिसिद्धेऽपि ज्ञातव्यः ॥६९८॥

टीका – आहारमार्गणा विषैं स्थावर काय मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत आहारी हैं। तहां जीवसमास चौदह हैं। बहुरि मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत, सयोगी इनिकैं कार्माण अवस्था विषैं अर अयोगी जिन अर सिद्ध भगवान इनि विषैं अनाहार है। तहां जीवसमास अपर्याप्त सात, अयोगी की अपेक्षा एक पर्याप्त ए आठ हैं।

आगैं गुणस्थाननि विषैं जीवसमासनि कौं कहैं हैं–

मिच्छे चोद्दसजीवा, सासण अयदे पमत्तविरदे य।
सण्णिदुगं सेसगुणे, सण्णीपुण्णो दु खीणो त्ति ॥६९९॥

मिथ्यात्वे चतुर्दश जीवाः, सासानायते प्रमत्तविरते च।
संज्ञिद्विकं शेषगुणे, संज्ञिपूर्णस्तु क्षीण इति ॥६९९॥

टीका – मिथ्यादृष्टी विषैं जीवसमास चौदह हैं। सासादन विषैं, अविरत विषैं, प्रमत्त विषैं चकार तैं सयोगी विषैं संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त ए दोय जीवसमास हैं। इहां प्रमत्त विषैं आहारक मिश्र अपेक्षा अर सयोगी विषैं केवल समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्तपना जानना। बहुरि अवशेष आठ गुणस्थाननि विषैं अपि शब्द तैं अयोगी विषैं भी एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास है।

आगैं मार्गणास्थाननि विषैं जीवसमासनि कौं दिखावैं हैं–

तिरिय-गदीए चोद्दस, हवंति सेसेसु जाण दो दो दु।
मग्गणठाणस्सेवं, णेयाणि समासठाणाणि ॥७००॥

तिर्यग्गतौ चतुर्दश, भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु ।
मार्गणास्थानस्यैवं, ज्ञेयानि समासस्थानानि ।।७००।।

टीका – तिर्यंचगति विषैं जीवसमास चौदह हैं । अवशेष गतिनि विषैं संज्ञी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय दोय जीवसमास जानने । असें मार्गणास्थानकनि विषैं यथायोग्य पूर्वोक्त अनुक्रम करि जीवसमास जानने ।

आगें गुणस्थाननि विषैं पर्याप्ति वा प्राण कहैं हैं–

पज्जत्ती पाणा वि य, सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि ।
तहिं वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ।।७०१।।

पर्याप्तयः प्राणा अपि च, सुगमा भावेंद्रियं न योगिनि ।
तस्मिन् वागुच्छ्वासायुष्ककायत्रिकद्विकमयोगिन आयुः ।।७०१।।

टीका – चौदह गुणस्थाननि विषैं पर्याप्ति अर प्राण जुदे न कहिए है; जातैं सुगम है । तहां क्षीणकषाय पर्यंत तौ छहौ पर्याप्ति हैं, दशौ प्राण हैं । बहुरि सयोगी जिन विषैं भावेंद्रिय तौ है नाहीं, द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा छह पर्याप्ति हैं । बहुरि सयोगी कैं प्राण च्यारि हैं – १ वचनबल, २ सासोस्वास, ३ आयु, ४ कायबल ए च्यारि हैं । अवशेष पंचेंद्रिय अर मन ए छह प्राण नाहीं हैं । तहां वचनबल का अभाव होतैं तीन ही प्राण रहैं हैं । उस्वास निश्वास का अभाव होतैं दोय ही रहैं हैं । बहुरि अयोगी विषैं एक आयु प्राण ही रहे है । तहां पूर्वें संचित भया था, जो कर्मनोकर्म का स्कंध, सो समय समय प्रति एक एक निषेक गलतैं अवशेष द्व्यर्धगुणहानि करि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्व रह्या, सो द्रव्यार्थिक नय करि तौ अयोगी का अंतसमय विषैं नष्ट हो है । पर्यायार्थिक नय करि ताके अनंतर समय विषैं नष्ट हो है – यह तात्पर्य है ।

आगें गुणस्थाननि विषैं संज्ञा कहैं हैं–

छट्ठो त्ति पढमसण्णा, सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा ।
पुव्वो पढमणियट्टी, सुहुमो त्ति कमेण सेसाओ ।।७०२।।

षष्ठ इति प्रथमसंज्ञा, सकार्या शेषाश्च कारणापेक्षाः ।
अपूर्वः प्रथमानिवृत्तिः, सूक्ष्म इति क्रमेण शेषाः ।।७०२।।

टीका – मिथ्यादृष्टी आदि प्रमत्तपर्यंत अपना कार्यसहित च्यार्यों संज्ञा हैं। तहां छठे गुणस्थानि आहार संज्ञा का विच्छेद हूवा, अवशेष तीन संज्ञा अप्रमत्तादि विषें हैं; सो तिनिका निमित्तभूत कर्म पाइए है। तहां ताकी अपेक्षा है, कार्य रहित है, सो अपूर्वकरण पर्यंत तीन संज्ञा है। तहां भय संज्ञा का विच्छेद भया। अनिवृत्तिकरण का प्रथम सवेदभाग पर्यंत मैथुन, परिग्रह दोय संज्ञा हैं। तहां मैथुन संज्ञा का विच्छेद भया। सूक्ष्मसांपराय विषें एक परिग्रह संज्ञा रही। ताका तहां ही विच्छेद भया। ऊपरि उपशांत कषायादिक विषें कारण का अभाव तें कार्य का भी अभाव है। तातें कार्य रहित भी सर्व संज्ञा नाहीं हैं।

मग्गण उवजोगा वि य, सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो।
गदिआदिसु मिच्छादी, परूविदे रूविदा होंति ॥७०३॥

मार्गणा उपयोगा अपि च, सुगमाः पूर्वं प्ररूपितत्वात्।
गत्यादिषु मिथ्यात्वाद्यौ, प्ररूपिते रूपिता भवंति ॥७०३॥

टीका – गुणस्थानकनि विषें चौदह मार्गणा अर उपयोग लगाना सुगम हैं, जातें पूर्वे प्ररूपण करि आए हैं। मार्गणानि विषें गुणस्थान वा जीवसमास कहे। तहां ही कथन आय गया, तथापि मंदबुद्धिनि के समझने के निमित्त बहुरि कहिए हैं। नरकादि गतिनामा नामकर्म के उदय तें उत्पन्न भई पर्याय, ते गति कहिए, सो मिथ्यादृष्टी विषें च्यार्यों नारकादि गति, पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं। सासादन विषें नारक अपर्याप्त नाहीं, अवशेष सर्व हैं। मिश्र विषें च्यार्यों गति पर्याप्त ही हैं। असंयत विषें घम्मानारक तौ पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं। अवशेष नारक पर्याप्त ही हैं। बहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमियां मनुष्य अर वैमानिक देव तौ पर्याप्त वा अपर्याप्त दोऊ हैं। अर कर्मभूमियां तिर्यंच अर भवनत्रिक देव ए पर्याप्त ही चतुर्थ गुणस्थान विषें पाइए हैं। बहुरि देशसंयत विषें कर्मभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य पर्याप्त ही हैं। बहुरि प्रमत्त विषें मनुष्य पर्याप्त ही है, आहारक सहित पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ हैं। बहुरि प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत मनुष्य पर्याप्त ही हैं, सयोगी विषें पर्याप्त वा समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्त हैं। अयोगी पर्याप्त ही हैं।

बहुरि एकेंद्रियादिक जातिनामा नामकर्म के उदय तें निपज्या जीव के पर्याय सो इन्द्रिय है। तिनकी मार्गणा एकेंद्रियादिक पंच हैं। ते मिथ्यादृष्टी विषें तौ पांचौं

पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं । सासादन विषैं अपर्याप्त तौ पांचौं पाइए अर पर्याप्त एक पंचेंद्रिय पाइए है । मिश्र विषैं पर्याप्त पंचेंद्रिय ही है । असंयत विषैं पर्याप्त वा अपर्याप्त पंचेंद्री है । देशसंयत विषैं पर्याप्त पंचेंद्री ही है । प्रमत्त विषैं आहारक अपेक्षा दोऊ हैं । अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत एक पंचेंद्रिय पर्याप्त ही है । सयोगी विषैं पर्याप्त है, समुद्घात अपेक्षा दोऊ हैं । अयोगी विषैं पर्याप्त ही पंचेंद्रिय हैं ।

पृथ्वीकायादिक विशेष कौं लीए एकेंद्रिय जाति अर स्थावर नामा नामकर्म का उदय अर त्रस नामा नामकर्म का उदय तैं निपजे जीव के पर्याय ते काय कहिए, ते छह प्रकार हैं । तहां मिथ्यादृष्टी विषैं तौ छहौं पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं । सासादन विषैं बादर पृथ्वी, अप, वनस्पती ए स्थावर अर त्रस विषैं बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पंचेंद्री ए तौ अपर्याप्त ही है । अर सैनी त्रस काय पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ हैं । आगैं संज्ञी पंचेंद्रिय त्रस काय ही हैं, तहां मिश्र विषैं पर्याप्त ही हैं । अविरत विषैं दोऊ हैं। देशसंयत विषैं पर्याप्त ही हैं । प्रमत्त विषैं पर्याप्त हैं । आहारक सहित दोऊ हैं । अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत पर्याप्त ही हैं, सयोगी विषैं पर्याप्त ही है । समुद्घात सहित दोऊ हैं । अयोगी विषैं पर्याप्त ही है ।

पुद्गल विपाकी शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय तैं मन, वचन, काय करि संयुक्त जो जीव, ताके कर्म नोकर्म आवने कौं कारण जो शक्ति वा ताकरि उत्पन्न भया जो जीव के प्रदेशनि का चंचलपना, सो योग है । सो मन-वचन-काय भेद तैं तीन प्रकार हैं । तहां वीर्यांतराय अर नोइन्द्रियावरण कर्म, तिनके क्षयोपशम करि अंगोपांग नामकर्म के उदय करि मनःपर्याप्ति संयुक्त जीव कैं मनोवर्गणारूप जे पुद्गल आए, तिनिका आठ पांखड़ी का कमल के आकार हृदय स्थानक विषैं जो निर्माण नामा नामकर्म तैं निपज्या, सो द्रव्य मन है । तहां जो कमल की पांखड़ीनि का अग्रभागनि विषैं नोइन्द्रियावरण का क्षयोपशमयुक्त जीव का प्रदेश समूह है, तिनिविषैं लब्धि उपयोग लक्षण कौं धरै, भाव मन है । ताका जो परिणमन, सो मनोयोग है । सो सत्य, असत्य, उभय, अनुभय रूप विषय के भेद तैं च्यारि प्रकार है । बहुरि भाषापर्याप्ति करि संयुक्त जो जीव, ताकै शरीर नामा नामकर्म के उदय करि अर स्वरनामा नामकर्म का उदय का सहकारी कारण करि भाषावर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका च्यारि प्रकार भाषारूप होइ परिणमन, सो वचन योग है। सो वचन योग भी सत्यादिक पदार्थनि का कहनहारा है, तातैं च्यारि प्रकार है ।

बहुरि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर नामा नामकर्म के उदय करि आहार वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध, तिनिका निर्माण नामा नामकर्म के उदय करि निपज्या जो शरीर, ताके परिणमन के निमित्त तैं जीव का प्रदेशनि का जो चंचल होना, सो औदारिक आदि काय योग है। बहुरि शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होइ तावत् एक समय घाटि अंतर्मुहूर्त पर्यंत, तिनके मिश्र योग है। इहां मिश्रपना कह्या है, सो औदारिकादिक नोकर्म की वर्गणानि का आहरण आप ही तें न हो है, कार्माण वर्गणा का सापेक्ष लीए है; तातैं कह्या है। बहुरि विग्रह गति विषै औदारिकादिक नोकर्म की वर्गणानि का तौ ग्रहण है नाहीं, कार्माण शरीर नामा नामकर्म का उदय करि कार्माण वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध, तिनिका ज्ञानावरणादिक कर्म पर्याय करि जीव के प्रदेशनि विषैं बंध होतैं भया जो जीव के प्रदेशनि का चंचलपना, सो कार्माण काययोग है। असैं ए पंद्रह योग हैं।

तिसु तेरं दस मिस्से, सत्तसु णव छट्ठयम्मि एगारा।
जोगिम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥७०४॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे, सप्तसु नव षष्ठे एकादश।
योगिनि सप्त योगा, अयोगिस्थानं भवेत् शून्यम् ॥७०४॥

टीका – कहे पंद्रह योग, तिनि विषैं मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत इन तीनों विषैं तेरह तेरह योग हैं, जातैं आहारक, आहारकमिश्र, प्रमत्त बिना अन्यत्र नाहीं हैं। बहुरि मिश्र विषैं औदारिक मिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण ए तीनों भी नाहीं; तातैं दश ही हैं। बहुरि ऊपरि सात गुणस्थानकनि विषैं वैक्रियिक योग भी नाहीं है; तातैं प्रमत्त विषैं तौ आहारकद्विक के मिलने तैं ग्यारह योग हैं, औरनि विषैं नव नव योग हैं। बहुरि सयोगी विषैं सत्य-अनुभय मनोयोग, सत्य-अनुभय वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण ए सात योग हैं। अयोगी गुणस्थान विषैं योग नाहीं तातैं शून्य है। बहुरि स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदनि करि उदय करि वेद हो है, ते तीनों अनिवृत्तिकरण के सवेदभाग पर्यंत हैं; ऊपरि नाहीं।

बहुरि क्रोधादिक च्यारि कषायनि का यथायोग्य अनंतानुबंधी इत्यादि रूप उदय होत संतैं क्रोध, मान, माया, लोभ हो हैं। तहां मिथ्यादृष्टी सासादन विषैं तौ अनंतानुबंधी आदि च्यारि च्यारि प्रकार है। मिश्र असंयत विषैं अनंतानुबंधी बिना

तीनतीन प्रकार हैं। देशसंयत विषें अप्रत्याख्यान बिना दोय दोय प्रकार हैं। प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण का दूसरा भागपर्यंत संज्वलन क्रोध है। तीसरा भाग पर्यंत मान है। चौथा भाग पर्यंत माया है। पंचम भाग पर्यंत बादर लोभ है। सूक्ष्मसांपराय विषें सूक्ष्म लोभ है। ऊपर सर्व कषाय रहित हैं।

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम तें मति आदि ज्ञान हो हैं। केवल ज्ञानावरण के समस्त क्षय तें केवलज्ञान हो है। मिथ्यात्व का उदय करि सहवर्ती असें मति, श्रुत, अवधि ज्ञानावरण के क्षयोपशम तें कुमति, कुश्रुत, विभंग ज्ञान हो हैं; सो सर्व मिलि आठ ज्ञान भए। तहां मिथ्यादृष्टी सासादन विषें तौ तीन कुज्ञान हैं। मिश्र विषें तीन कुज्ञान वा सुज्ञान मिश्ररूप है। अविरत अर देशसंयत विषें मति, श्रुत, अवधि ए आदि के तीन सुज्ञान हैं। प्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यंत विषें मन:पर्यय सहित आदिक के च्यारि सुज्ञान हैं। सयोगी, अयोगी विषें एक केवलज्ञान है।

बहुरि संज्वलन की चौकड़ी अर नव नोकषाय इनके मंद उदय करि व्रत का धारना, समिति का पालना, कषाय का निग्रह, दंड का त्याग, इंद्रियनि का जय असें भावरूप संयम हो है। सो संयम सामान्यपनें एक सामायिक स्वरूप है; जातें 'सर्वसावद्ययोगविरतोऽस्मि' मैं सर्व पाप सहित योग का त्यागी हूं; असें भाव विषें सर्व गर्भित भए। विशेषपनें असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात भेद तें सात प्रकार है। तहां असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननि विषें असंयम ही है। देशसंयत विषें देशसंयम है। प्रमत्तादिक अनिवृत्तिकरण पर्यंत सामायिक, छेदोपस्थापना है। प्रमत्त-अप्रमत्त विषें परिहार विशुद्धि भी है। सूक्ष्मसांपराय विषें सूक्ष्मसांपराय है। उपशांत कषायादिक विषें यथाख्यात संयम है।

बहुरि चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण के क्षयोपशम तें अर केवलदर्शनावरण के समस्त क्षय तें चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन हो हैं। तहां मिश्रगुणस्थान पर्यंत तौ चक्षु, अचक्षु, दोय दर्शन हैं। असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत विषें चक्षु, अचक्षु, अवधि तीन दर्शन हैं। सयोग, अयोग अर सिद्ध विषें केवल दर्शन है।

कषाय के उदय करि अनुरंजित असी मन, वचन, कायरूप योगनि की प्रवृत्ति सो लेश्या है। सो शुभ-अशुभ के भेद तें दोय प्रकार है। तहां अशुभलेश्या कृष्ण, नील, कपोत भेद तें तीन प्रकार है। शुभ लेश्या तेज, पद्म, शुक्लभेद तें तीन प्रकार

है । तहां असंयत पर्यंत तौ छहों लेश्या हैं। देशसंयतादि अप्रमत्त पर्यंत विषै तीन शुभ-लेश्या ही हैं । अपूर्वकरणादि सयोगी पर्यंत विषै शुक्ललेश्या ही है । अयोगी, योग के अभाव तैं लेश्या रहित हैं ।

सामग्रीविशेष करि रत्नत्रय वा अनंत चतुष्टयरूप परिणमने कौं योग्य, सो भव्य कहिए । परिणमनें को योग्य नाहीं, सो अभव्य कहिए । इहां अभव्य राशि जघन्य युक्तानन्त प्रमाण है । संसारी राशि में इतना घटाएं, अवशेष रहैं, तितने भव्य सिद्ध हैं । सो भव्य तीन प्रकार – १ आसन्नभव्य, २ दूरभव्य, ३ अभव्यसमभव्य । जे थोरे काल में मुक्त होने योग्य होइ, ते आसन्नभव्य हैं । जे बहुत काल में मुक्त होने होंइ, ते दूर भव्य हैं । जे त्रिकाल विषैं मुक्त होने के नाहीं, केवल मुक्त होने की योग्यता ही कौं धरें हैं, ते अभव्यसम भव्य हैं। सो इहां मिथ्यादृष्टी विषैं भव्य-अभव्य दोऊ हैं । सासादनादि क्षीणकषायपर्यंत विषै एक भव्य ही है । सयोग-अयोग विषैं भव्य अभव्य का उपदेश नाहीं है ।

बहुरि अनादि मिथ्यादृष्टी जीव क्षयोपशमादिक पंचलब्धि का परिणामरूप परिणया । तहां मिथ्यादृष्टी ही विषैं करण कीए, तहां अनिवृत्तिकरण का अंत समय विषैं अनंतानुबंधी अर मिथ्यात्व इनि पंचनि का उपशम करि ताके अनंतर समय विषैं मिथ्यात्व का ऊपरि के वा नीचे के निषेक छोडि, बीचि के निषेकनि का अभाव करना; सो अंतर कहिए, सो अंतर्मुहूर्त के जेते समय तितने निषेकनि का अभाव अनिवृत्तिकरण विषैं ही कीया था, सो तिनि निषेकनिरूप जो अंतरायाम संबंधी अंतर्मुहूर्त काल, ताका प्रथम समय विषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौं पाइ असंयत हो है । वा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर देशव्रत, इनि दोऊनि कौं युगपत् पाइ करि देशसंयत हो है । अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर महाव्रत, इनि दोऊनि कौं युगपत् पाइ करि अप्रमत्तसंयत हो है । तहां तिस पावने के प्रथम समय तैं लगाइ, अंतर्मुहूर्त ताईं गुण संक्रमण विधान करि मिथ्यात्वरूप द्रव्यकर्म कौं गुणसंक्रमण भागहार करि घटाइ घटाइ तीन प्रकार करै है । गुणसंक्रमण विधान अर गुणसंक्रमण भागहार का कथन आगे करेंगे, तहां जानना । सो मिथ्यात्व प्रकृतिरूप अर सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृतिरूप वा सम्यक्त्व प्रकृतिरूप असें एक मिथ्यात्व तीन प्रकार तहां कीजिए है; सो इनि तीनों का द्रव्य जो परमाणूनि का प्रमाण, सो असंख्यात गुणा, असंख्यात गुणा घाटि अनुक्रम तैं जानना ।

इहां प्रश्न – जो मिथ्यात्व कौं मिथ्यात्व प्रकृतिरूप कहा कीया ?

ताका समाधान – पूर्व जो उस मिथ्यात्व की स्थिति थी, तामैं अतिस्थापनावली मात्र घटावै है, सो अतिस्थापनावली का भी स्वरूप आगे कहैंगे । जो अप्रमत्त गुणस्थान कौं प्राप्त हो हैं, सो अप्रमत्तस्यों-प्रमत्त में अर प्रमत्तस्यों-अप्रमत्त में संख्यात हजार बार आवै जाय है । तातैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्रमत्त विषैं भी कहिए ते ए च्यार्यों गुणस्थानवर्ती प्रथमोपशमसम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त काल विषैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं, अर तहां अनंतानुबंधी की किसी प्रकृति का उदय होइ तौ सासादन होइ । बहुरि जो भव्यता गुण का विशेष करि सम्यक्त्व गुण का नाश न होइ तौ उस उपशम सम्यक्त्व का काल कौं पूर्ण होतें सम्यक्त्व प्रकृति के उदय तें वेदक सम्यग्दृष्टी हो है । बहुरि जो मिश्र प्रकृति का उदय होइ, तौ सम्यग्मिथ्यादृष्टी हो है । बहुरि जो मिथ्यात्व ही का उदय आवै तो मिथ्यादृष्टी ही होइ जाइ।

बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व विषैं विशेष है, सो कहा ?

उपशम श्रेणी चढने के निमित्त कोई सातिशय अप्रमत्त वेदक सम्यग्दृष्टी तहां अप्रमत्त विषैं तीन करण की सामर्थ्य करि अनंतानुबंधी का प्रशस्तोपशम बिना अप्रशस्तोपशम करि ऊपरि के जे निषेक, जिनिका काल न आया है, ते तौ हैं ही; जे नीचे के निषेक अनंतानुबंधी के हैं, तिनिकौं उत्कर्षण करि ऊपरि के निषेकनि विषैं प्राप्त करै है वा विसंयोजन करि अन्य प्रकृतिरूप परिणमावै है; अैसें क्षपाइ दर्शनमोह की तीन प्रकृति, तिनिका बीचि के निषेकनि का अभाव करने रूप अंतरकरण करि अंतर कीया । बहुरि उपशमविधान करि दर्शनमोह की प्रकृतिनि कौं उपशमाइ, अंतर कीएं निषेक संबंधी अंतर्मुहूर्त काल का प्रथम समय विषैं द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होइ, उपशम श्रेणी कौं चढि, क्रम तैं उपशांत कषाय पर्यंत जाइ, तहां अंतर्मुहूर्त काल तिष्ठि करि, अनुक्रम तैं एक एक गुणस्थान उतरि करि, अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त होइ, तहां अप्रमत्त स्यों प्रमत्त में वा प्रमत्त स्यों अप्रमत्त में हजारों बार आवै जाइ, तहांस्यों नीचैं देशसंयत होइ, तहां तिष्ठै; वा असंयत होइ तहां तिष्ठै । अथवा जो ग्यारह्वां आदि गुणस्थाननि विषैं मरण होइ, तौ तहां स्यों अनुक्रम बिना देव पर्यायरूप असंयत हो है । वा मिश्र प्रकृति के उदय तैं मिश्र गुणस्थानवर्ती हो है वा अनंतानुबंधी के उदय होतें द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कौं विराधै है; अैसी किसी आचार्य की पक्ष की अपेक्षा सासादन हो है । वा मिथ्यात्व का उदय करि मिथ्या-

दृष्टी हो है। बहुरि असंयतादिक च्यारि गुणस्थानवर्ती जे मनुष्य, बहुरि असंयत, देश-संयत गुणस्थानवर्ती उपचार महाव्रत जिनके पाइए है, असी आर्या स्त्री, ते कर्मभूमि के उपजे असें वेदक सम्यक्त्वी होइ, तिनहीके केवली श्रुतकेवली दोन्यों विषें किसी का चरणां के निकटि सात प्रकृति का सर्वथा क्षय होते क्षायिक सम्यक्त्व हो है, सो असें सम्यक्त्व का विधान कह्या।

सो सम्यक्त्व सामान्यपनें एक प्रकार है। विशेषपनें १ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ उपशम, ५ वेदक, ६ क्षायिक भेद तें छह प्रकार है। तहां मिथ्यादृष्टी विषें तो मिथ्यात्व ही है। सासादन विषें सासादन है। मिश्र विषें मिश्र है। असंयतादिक अप्रमत्त पर्यंत विषें उपशम (औपशमिक), वेदक, क्षायिक तीन सम्यक्त्व हैं। अपूर्वकरणादि उपशांत कषाय पर्यंत उपशमश्रेणी विषें उपशम, क्षायिक दोय सम्यक्त्व हैं। क्षपक श्रेणीरूप अपूर्वकरणादिक सिद्ध पर्यंत एक क्षायिक सम्यक्त्व ही है।

बहुरि नो इंद्रिय, जो मन, ताकै आवरण के क्षयोपशम तें भया जो ज्ञान, ताकौं संज्ञा कहिए। सो जिसके पाइए, सो संज्ञी है। जाकै न पाइए अर यथासंभव अन्य इन्द्रियनि का ज्ञान पाइए, सो असंज्ञी है। तहां संज्ञी मिथ्यादृष्टि आदि क्षीण कषाय पर्यंत हैं। असंज्ञी मिथ्यादृष्टी विषें ही है। सयोग अयोग विषें मन-इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान नाहीं है; तातें संज्ञी-असंज्ञी न कहिए है।

बहुरि शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय तें उत्पन्न भया जो शरीर वचन, मन रूप नोकर्म वर्गणा का ग्रहण करना, सो आहार है। विग्रहगति विषें वा प्रतर लोक पूर्ण सहित सयोगी विषें वा अयोगी विषें वा सिद्ध विषें अनाहार है; तातें मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत, सयोगी इनि विषें तौ दोऊ हैं। अवशेष नव गुणस्थान विषें आहार ही है। अयोगी विषें वा सिद्ध विषें अनाहार ही है।

गुणस्थाननि विषें उपयोग कहैं हैं –

दोण्हं पंच य छच्चेव, दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा।
सत्तुवजोगा सत्तसु, दो चेव जिणे य सिद्धे य ॥७०५॥

द्वयोः पंच च षट्चैव, द्वयोर्मिश्रे भवंति व्यामिश्राः।
सप्तोपयोगाः सप्तसु, द्वौ चैव जिने च सिद्धे च ॥७०५॥

टीका – गुण पर्यायवान् वस्तु है, ताके ग्रहणरूप जो व्यापार प्रवर्तन, सो उपयोग है। ज्ञान है, सो जानने योग्य जो वस्तु, तातैं नाहीं उपजै हैं। सो कह्या है।–

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः, परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं, परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥१॥

याका अर्थ – जैसैं वस्तु अपने ही उपादान कारण तैं निपज्या, आपही तैं जानने योग्य है। तैसैं ज्ञान अपने ही उपादान कारण तैं निपज्या, आपही तैं जानने-हारा है। बहुरि ज्ञेय पदार्थ अर प्रकाशादिक ए ज्ञानका कारण नाहीं, जातैं ए तौ ज्ञेय हैं। जैसैं अंधकार ज्ञेय है, तैसे ए भी ज्ञेय हैं – जानने योग्य हैं। जानने कौं कारण नाहीं, ऐसा जानना। बहुरि सो उपयोग ज्ञान दर्शन के भेद तैं दोय प्रकार है। तहां कुमति, कुश्रुत, विभंग, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल भेद तैं ज्ञानोपयोग आठ प्रकार है। चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल भेद तैं दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार है। तहां मिथ्यादृष्टी सासादन विषै तौ कुमति, कुश्रुत, विभंग ज्ञान, चक्षु, अचक्षु, दर्शन ए पांच उपयोग हैं। बहुरि मिश्रविषै मिश्ररूप मति, श्रुत, अवधि ज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ए छह उपयोग हैं। असंयत देशसंयत विषै मति, श्रुत, अवधिज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन ए छह उपयोग हैं। प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत विषै तेई मनःपर्यय सहित सात उपयोग हैं। सयोगी, अयोगी, सिद्ध विषै केवलज्ञान केवलदर्शन ए दोय उपयोग हैं।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा, तिनिविषै गुणस्थाननिविषै बीस प्ररूपणा निरूपण नामा इकवीसवां अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२१॥

बाईसवां अधिकार : आलापाधिकार

सुरनर गणपति पूज्यपद, बहिरंतर श्री धार ।
नेमि धर्मरथनेमिसम, भजौं होहु भोसार ।।२२।।

आगें आलाप अधिकार कौं अपने इष्टदेव कौं नमस्कार पूर्वक कहनेकौं प्रतिज्ञा करें हैं –

गोयमथेरं पणमिय, ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं, वोच्छामि जहाकमं सुणह ।।७०६।।

गौतमस्थविरं प्रणम्य, ओघादेशयोर्विशभेदानाम् ।
योजनिकानामालापं, वक्ष्यामि यथाक्रमं शृणुत ।।७०६।।

टीका – विशिष्ट जो सो कहिए भूमि, आठवीं पृथ्वी, सो है स्थविर कहिए सास्वती, जाकैं असा सिद्धसमूह, अथवा गौतम है स्थविर कहिए गणधर जाके असा वर्धमान स्वामी अथवा विशिष्ट है गो कहिए वाणी जाकी असा स्थविर कहिए मुनि-समूह, सो असे जु गौतम स्थविर ताहि प्रणम्य नमस्कार करिकें ओघ जो गुणस्थान अर आदेश जो मार्गणास्थान, इनिविषैं जोडनेरूप जो गुणस्थानादिक बीस प्ररूपणा, तिनिका आलाप, ताहि यथाक्रम कहौंगा, सो सुनहु । जहां बीस प्ररूपणा प्ररूपिए, असे विवक्षित स्थाननि का कहना ताका नाम आलाप जानना । सो कहैं हैं –

ओघे चोदसठाणे, सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे, अणियट्टीपंचभागे य ।।७०७।।

ओघे चतुर्दशस्थाने, सिद्धे विंशतिविधानामालापाः ।
वेदकषायविभिन्ने, अनिवृत्तिपंचभागे च ।।७०७।।

टीका – ओघ जो गुणस्थान अर चौदह मार्गणास्थान ए परमागम विषैं प्रसिद्ध हैं । सो इनिविषैं गुणजीवा पज्जत्ती इत्यादिक बीस प्ररूपणानि का सामान्य पर्याप्त, अपर्याप्त ए तीन आलाप हो है । बहुरि वेद अर कषाय करि है भेद जिनि विषैं असे अनिवृत्तिकरण के पंच भाग तिनिविषैं आलाप जुदे-जुदे जानने ।

तहां गुणस्थाननि विषें कहै हैं --

ओघे मिच्छदुगे वि य, अयदपमत्ते सजोगिठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा, सेसेसिक्को हवे णियमा ॥७०८॥

ओघे मिथ्यात्वद्विकेऽपि च, अयतप्रमत्तयोः सयोगिस्थाने ।
त्रय एव चालापाः, शेषेष्वेको भवेन्नियमात् ॥७०८॥

टीका -- गुणस्थाननि विषें मिथ्यादृष्टी, सासादन, असंयत, प्रमत्त, सयोगी इनि विषें तीन तीन आलाप हैं । अवशेष गुणस्थाननि विषें एक पर्याप्त आलाप है नियमकरि ।

इस ही अर्थ कौं प्रकट करें हैं --

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं, चेदि तिण्णि आलावा ।
दुवियप्पमपज्जत्तं, लद्धी णिव्वत्तगं चेदि ॥७०९॥

सामान्यः पर्याप्तः, अपर्याप्तश्चेति त्रय आलापाः ।
द्विविकल्पोऽपर्याप्तो, लब्धिनिर्वृत्तिकश्चेति ॥७०९॥

टीका -- ते आलाप तीन हैं, सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त । जहां पर्याप्त-अपर्याप्त दोऊ का समुदायरूप सामान्यपनें ग्रहण कीजिए, सो सामान्य आलाप है । बहुरि जहां पर्याप्त ही का ग्रहण होइ, सो पर्याप्त आलाप है । जहां अपर्याप्त ही का ग्रहण होइ, तहां अपर्याप्तालाप है । तहां अपर्याप्तालाप दोय प्रकार है - एक लब्धि अपर्याप्त १, एक निर्वृत्ति अपर्याप्त । जाका क्षुद्रभव प्रमाण आयु होइ, पर्याप्ति पूर्ण भएं पहिलें ही मरण कौं प्राप्त होइ, सो लब्धि अपर्याप्त है । बहुरि जाकै शरीर पर्याप्ति पूरण होगा यावत् पूर्ण न हुआ होइ, तावत् निर्वृत्ति अपर्याप्त है ।

दुविहं पि अपज्जत्तं, ओघे मिच्छेव होदि णियमेण ।
सासणअयदपमत्ते, णिव्वत्तिअपुण्णगो होदि ॥७१०॥

द्विविधोऽप्यपर्याप्त, ओघे मिथ्यात्व एव भवति नियमेन ।
सासादनायतप्रमत्तेषु निर्वृत्त्यपूर्णको भवति ॥७१०॥

टीका – सो दोऊ प्रकार अपर्याप्त आलाप सामान्य मिथ्यादृष्टी विषैं ही पाइए हैं। बहुरि सासादन, असंयत, प्रमत्त विषैं निर्वृत्ति अपर्याप्त ही आलाप है।

जोगं पडि जोगिजिणे, होदि हु णियमा अपुण्णगत्तं तु।
अवसेस-णव-ट्ठाणे, पज्जत्तालावगो एक्को ॥७११॥

योगं प्रति योगिजिने, भवति हि नियमादपूर्णकत्वं तु।
अवशेषनवस्थाने पर्याप्तालापक एकः ॥७११॥

टीका – सयोगीजिन विषैं नियमकरि योगनि की अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप है। ऐसें अपर्याप्त आलाप विषैं विशेष है, सो इनि पंच गुणस्थाननि विषैं तौ तीनूं आलाप हैं। बहुरि अवशेष नव गुणस्थान रहे, तिनिविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है।

आगें चौदह मार्गणा स्थानकनि विषैं कहै हैं–

सत्तण्हं पुढवीणं, ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा।
पढमाविरदे वि तहा, सेसाणं पुण्णगालावो ॥७१२॥

सप्तानां पृथिवीनां, ओघे मिथ्यात्वे च त्रय आलापाः।
प्रथमाविरतेऽपि तथा, शेषाणां पूर्णकालापः ॥७१२॥

टीका – नरकगति विषैं सामान्यपनैं सप्तपृथ्वी संबंधी मिथ्यादृष्टी विषैं तीन आलाप हैं। अर तैसें ही प्रथम पृथ्वी संबंधी असंयत विषैं तीन आलाप हैं। जो नरकायु पहिलें बांध्या होइ, ऐसा वेदक, क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव सो तहां ही प्रथम पृथ्वी विषैं उपजै है। बहुरि अवशेष पृथ्वी संबंधी अविरत अर सर्व पृथ्वी का सासादन, मिश्र, इनकैं एक पर्याप्त आलाप ही है।

तिरियचउक्काणोघे, मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव।
णवरि य जोणिणि अयदे, पुण्णो सेसे वि पुण्णो दु ॥७१३॥

तिर्यक्चतुष्काणामोघे, मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव।
नवरि च योनिन्ययते, पूर्णः शेषेऽपि पूर्णस्तु ॥७१३॥

टीका – तिर्यंच पंच प्रकार। सर्व भेद जामैं गर्भित ऐसा सामान्य तिर्यंच। बहुरि जाकैं पांचों इन्द्रिय पाइए ऐसा पंचेंद्री तिर्यंच। बहुरि जो पर्याप्त अवस्था कौं

धारै सो पर्याप्त तिर्यंच । बहुरि जो स्त्रीवेदरूप है, सो योनिमत तिर्यंच । जो लब्धि अपर्याप्त अवस्था कौं धारै सो लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच ।

तहां सामान्यादिक च्यारि प्रकार तिर्यंचनि कैं पंच गुणस्थान पाइए । तहां मिथ्यादृष्टी, सासादन, अविरत विषैं तीन तीन आलाप हैं । तहां इतना विशेष है - योनिमत तिर्यंच कैं अविरत विषैं एक पर्याप्त आलाप ही है; जातैं जो पहिलैं तिर्यंच आयु बांध्या होइ तो भी सम्यग्दृष्टी स्त्रीवेद नपुंसकवेद विषैं न उपजै । बहुरि मिश्र वा देशविरत विषैं पर्याप्त आलाप ही है ।

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते, एक्को अपुण्ण आलावो ।
मूलोघं मणुसतिए, मणुसिणिअयदम्हि पज्जत्तो ॥७१४॥

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्ते, एक अपूर्ण आलापः ।
मूलोघं मनुष्यत्रिके, मानुष्ययते पर्याप्तः ॥७१४॥

टीका - लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच विषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है ।

बहुरि मनुष्य च्यारि प्रकार - तहां सर्वभेद जामैं गर्भित होइ असा सामान्य मनुष्य । बहुरि जो पर्याप्त अवस्था कौं धारैं, सो पर्याप्त मनुष्य, बहुरि जो स्त्री वेद-रूप सो योनिमत मनुष्य, बहुरि जो लब्धि अपर्याप्तपनां कौं धारै, सो लब्धि अपर्याप्त मनुष्य है ।

तहां सामान्यादिक तीन प्रकार मनुष्यनि के प्रत्येक चौदह गुणस्थान पाइए । इहां भाव वेद अपेक्षा योनिमत मनुष्य के चौदह गुणस्थान कहे हैं । गुणस्थानवत् आलाप जानने । विशेष इतना - जो योनिमत मनुष्य कैं असंयत विषैं एक पर्याप्त आलाप ही है । कारण पूर्वैं कह्या ही है ।

बहुरि इतना विशेष है - जो असंयत तिर्यंचिणी कैं प्रथमोपशम, वेदक ए दोय सम्यक्त्व हैं । अर मनुष्यणी कैं प्रथमोपशम, वेदक, क्षायिक ए तीन सम्यक्त्व संभवैं हैं । तथापि जहां सम्यक्त्व हो है, तहां पर्याप्त आलाप ही है । सम्यक्त्व सहित मरै, सो स्त्रीवेदनि विषैं न उपजै है । बहुरि द्रव्य अपेक्षा योनिमती पंचम गुणस्थान तैं ऊपरि गमन करै नाहीं, तातैं तिनकैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नाहीं है ।

मणुसिणि पमत्तविरदे, आहारदुगं तु णत्थि णियमेण ।
अवगदवेदे मणुसिणि, सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥७१५॥

मानुष्यां प्रमत्तविरते, आहारद्विकं तु नास्ति नियमेन ।
अपगतवेदायां मानुष्यां, संज्ञा भूतगतिमासाद्य ॥७१५॥

टीका – द्रव्य पुरुष अर भाव स्त्री असा मनुष्य प्रमत्तविरत गुणस्थान विषैं होइ, ताकैं आहारक अर आहारक आंगोपांग नामकर्म का उदय नियम करि नाहीं है ।

तु शब्द तैं स्त्रीवेद, नपुंसकवेद का उदय विषैं मन:पर्ययज्ञान अर परिहार विशुद्धि संयम ए भी न हो हैं ।

बहुरि भाव मनुष्यणी विषैं चौदह गुणस्थान हैं। द्रव्य मनुष्यणी विषैं पांच ही गुणस्थान हैं ।

बहुरि वेद रहित अनिवृत्तिकरण विषैं मनुष्यणी कै मैथुन संज्ञा कही है । सो कार्य रहित भूतपूर्वगति न्याय करि जाननी । जैसैं कोऊ राजा था, ताकौं राजभ्रष्ट भए पीछैं भी राजा ही कहिए है; तैसैं जाननी । सो भाव स्त्री भी नववां ताई ही है। इहां चौदह गुणस्थान कहे, सो भूतपूर्वगति न्यायकरि ही कहे हैं । बहुरि आहारक ऋद्धि कौं जो प्राप्त भया, ताकैं भी वा परिहार विशुद्धि संयम विषैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अर मन:पर्यय ज्ञान न हो है; जातैं तैतीस वर्ष बिना सो परिहार विशुद्धि संयम होइ नाहीं । प्रथमोपशम सम्यक्त्व की इतनी स्थिति नाहीं । अर परिहार विशुद्धि संयम सहित श्रेणी न चढ़ै, तातैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी बनै नाहीं; तातैं तिन दोऊनि का संयोग नाहीं संभवै है ।

णरलद्धिअपज्जत्ते, एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो ।
लेस्साभेदविभिण्णा, सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा ॥७१६॥

नरलब्ध्यपर्याप्ते, एकस्तु अपूर्णकस्तु आलापः ।
लेश्याविभिन्नानि, सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि ॥७१६॥

टीका – बहुरि लब्धि अपर्याप्त मनुष्य विषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है । बहुरि लेश्या भेद करि भिन्न असे देवनि के स्थानक सात हैं, ते कहे हैं ।

भवनत्रिक देव, बहुरि सौधर्म युगल, बहुरि सनत्कुमार युगल, बहुरि ब्रह्मादिक छह, बहुरि शतारयुगल, बहुरि आनतादिक नवम ग्रैवेयक पर्यंत तेरह, बहुरि अनुदिश, अनुत्तर विमान चौदह, इनि सात स्थानकनि विषैं क्रम तैं तेज का जघन्यांश, बहुरि तेज का मध्यमांश, बहुरि तेज का उत्कृष्टांश, पद्म का जघन्यांश, बहुरि पद्म का मध्यमांश, बहुरि पद्म का उत्कृष्टांश, शुक्ल का जघन्यांश, बहुरि शुक्ल का मध्यमांश, बहुरि शुक्ल का उत्कृष्टांश ए लेश्या पाइए हैं।

सव्वसुराणं ओघे, मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव ।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ॥७१७॥

सर्वसुराणामोघे, मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव ।
नवरि च भवनत्रिकल्पस्त्रीणां च च अविरते पूर्णः ॥७१७॥

टीका – सर्व सामान्य देव विषैं मिथ्यादृष्टी सासादन, असंयत इनिविषैं तीन तीन आलाप हैं। बहुरि इतना विशेष – जो भवनत्रिक देव अर कल्पवासिनी स्त्री, इनकें असंयत विषैं एक पर्याप्त आलाप ही है। जातैं असंयत तिर्यंच मनुष्य मरि करि तहां उपजैं नाहीं।

मिस्से पुण्णालाओ, अणुद्दिसाणुत्तरा हु ते सम्मा ।
अविरद तिण्णालावा, अणुद्दिस्साणुत्तरे होंति ॥७१८॥

मिश्रे पूर्णालापः, अनुदिशानुत्तरा हि ते सम्यक् ।
अविरते त्रय आलापाः, अनुदिशानुत्तरे भवंति ॥७१८॥

टीका – नव ग्रैवेयक पर्यंत सामान्य देव, तिनिकैं मिश्र गुणस्थान विषैं एक पर्याप्त आलाप ही है। बहुरि अनुदिश अर अनुत्तर विमानवासी अहमिंद्र सर्व सम्यग्दृष्टी ही हैं। तातैं तिनके असंयत विषैं तीन आलाप हैं।

आगैं इंद्रिय मार्गणा विषैं कहै हैं–

बादरसुहमेइंदिय-बि-ति-चउ-रिंदियअसण्णिजीवाणं ।
ओघे पुण्णे तिण्ण य, अपुण्णगे पुण अपुण्णो दु ॥७१९॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवानाम् ।
ओघे पूर्णे त्रयश्च, अपूर्णके पुनः अपूर्णस्तु ॥७१९॥

टीका – बादर सूक्ष्म एकेंद्रिय, बहुरि बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असैनी पंचेंद्री इनकी सामान्य रचना पर्याप्त नामकर्म का उदय संयुक्त, तीहिं विषै तीन आलाप हैं। निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था विषै भी पर्याप्त नामकर्म ही का उदय जानना।

सण्णी ओघे मिच्छे, गुणपडिवण्णे य मूलआलावा।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२०॥

संज्ञ्योघे मिथ्यात्वे, गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः।
लब्ध्यपूर्णे एकः, अपर्याप्तो भवति आलापः ॥७२०॥

टीका – सैनी पंचेंद्री तिर्यंच की सामान्य रचना विषै पंच गुणस्थान हैं। तिनि विषै मिथ्यादृष्टी मैं तौ मूल मैं कहे थे, तेई तीन आलाप हैं। बहुरि जो विशेष गुण को प्राप्त भया, ताकैं सासादन अर संयत विषै मूल मैं कहे ते तीन, तीनों आलाप हैं। मिश्र अर देशसंयत विषै एक पर्याप्त आलाप है। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्त विषै एक लब्धि अपर्याप्त आलाप ही है।

आगैं कायमार्गणा विषैं दोय गाथानि करि कहै हैं –

भू-आउ-तेउ-वाऊ-णिच्चचदुग्गदि-णिगोदगे तिण्णि।
ताणं थूलिदरेसु वि, पत्तेगे तद्दुभेदे वि ॥७२१॥

तसजीवाणं ओघे, मिच्छादिगुणे वि ओघ आलाओ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२२॥ जुम्मं।

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदके त्रयः।
तेषां स्थूलेतरयोरपि, प्रत्येके तद्द्विभेदेऽपि ॥७२१॥

त्रसजीवानामोघे, मिथ्यात्वादिगुणेऽपि ओघ आलापः।
लब्ध्यपूर्णे एकः, अपर्याप्तो भवत्यालापः ॥७२२॥ युग्मम्।

टीका – पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद इनके बादर-सूक्ष्म भेद, बहुरि प्रत्येक वनस्पती याके सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेद, इनि सबनि विषैं तीन-तीन आलाप हैं। त्रस जीवनि के सामान्य करि चौदह गुणस्थाननि विषैं,

गुणस्थाननि विषें कहे तैसें ही आलाप हैं, किछू विशेष नाहीं। पृथ्वी आदि त्रस पर्यंत जो लब्धि अपर्याप्त है, ताकें एक लब्धि अपर्याप्त ही आलाप है।

आगें योगमार्गणा विषें कहै हैं-

एक्कारसजोगाणं, पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो, सगएक्कअपुण्ण आलाओ ॥७२३॥

एकादशयोगानां, पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः।
मिश्रचतुष्कस्य पुनः, स्वकैकापूर्णालापः ॥७२३॥

टीका – पर्याप्ति अवस्था विषें होहिं असें च्यारि मन, च्यारि वचन, औदारिक, वैक्रियक, आहारक इन ग्यारह योगनि कें अपना-अपना एक पर्याप्त आलाप ही है। जैसें सत्य मनोयोग के सत्य मन पर्याप्त आलाप है। असें सबनि कें जानना। बहुरि अवशेष रहे च्यारि, मिश्र योग, तिनिकें अपना अपना एक अपर्याप्त आलाप ही है। जैसें औदारिक मिश्र के एक औदारिक मिश्र अपर्याप्त आलाप है। असें सबनि कें जानना।

आगें अवशेष मार्गणा विषें कहै हैं –

वेदादाहारो त्ति य, सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ।
णवरि य संढिच्छीणं, णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥७२४॥

वेदादाहार इति च, स्वगुणस्थानानामोघ आलापः।
नवरि च षंढस्त्रीणां, नास्ति हि आहारकानां द्विकम् ॥७२४॥

टीका – वेदमार्गणा तें लगाइ आहारमार्गणा पर्यंत दश मार्गणानि विषें अपना अपना गुणस्थाननि को आलापनि का अनुक्रम गुणस्थाननि विषें कहे, तैसें ही जानना। इतना विशेष है जो भावनपुंसक वा स्त्री वेद होइ अर द्रव्य पुरुष होइ असें जीव के आहारक, आहारकमिश्र आलाप नाहीं है; जातें आहारक शरीर विषें प्रशस्त प्रकृतिक का ही उदय है। तहां वेदनि के अनिवृत्तिकरण का सवेद भाग पर्यंत गुणस्थान है। क्रोध, मान, माया, बादर लोभ इनिकें अनिवृत्तिकरण के वेद रहित च्यारि भाग तहां पर्यंत क्रम तें गुणस्थान हैं। सूक्ष्म लोभ के सूक्ष्म सांपराय ही है। कुमति, कुश्रुत, विभंग इनि कें दोय गुणस्थान हैं। मति, श्रुत, अवधि के नव हैं।

मनःपर्यय कैं सात हैं। केवलज्ञान कैं दोय हैं। असंयम कैं च्यारि हैं। देशसंयम कैं एक है। सामायिक, छेदोपस्थापना कैं च्यारि हैं। परिहार विशुद्धि कैं दोय हैं। सूक्ष्मसांपराय कैं एक है। यथाख्यात चारित्र कैं च्यारि हैं। चक्षु, अचक्षु दर्शन कैं बारह हैं। अवधि दर्शन के नव हैं। केवल दर्शन कैं दोय हैं। कृष्ण, नील, कपोत लेश्या कैं च्यारि हैं। पीत पद्म कैं सात हैं। शुक्ल कैं तेरह हैं। भव्य कैं चौदह हैं। अभव्य कै एक है। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र कैं एक एक है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कैं आठ हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदक कैं च्यारि हैं। क्षायिक के ग्यारह हैं। संज्ञी कैं बारह हैं। असंज्ञी कैं एक है। आहारक कैं तेरह हैं। अनाहारक कैं पांच हैं। असैं ए गुणस्थान कहे, तिन गुणस्थाननि विषैं आलाप मूल में जैसें सामान्य गुणस्थाननि विषैं अनुक्रम करि आलाप कहे थे, तैसें ही जानने।

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया, णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥७२५॥

भव्वा सम्मत्ता वि य, सण्णी आहारगा य उवजोगा।
जोग्गा परूविदव्वा, ओघादेसेसु समुदायं ॥७२६॥ जुम्मं।

गुणजीवाः पर्याप्तयः, प्राणाः संज्ञाः गतींद्रियाणि कायाः।
योगा वेदकषायाः, ज्ञानयमाः दर्शनानि लेश्याः ॥७२५॥

भव्याः सम्यक्त्वान्यपि च, संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगाः।
योग्याः प्ररूपितव्या, ओघादेशयोः समुदायम् ॥७२६॥ युग्मम्।

टीका – गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह, तहां पर्याप्त सात, अपर्याप्त सात, पर्याप्ति छह, तहां संज्ञी पंचेंद्रिय कैं पर्याप्ति अवस्था विषैं पर्याप्ति अवस्था संबंधी छह अर अपर्याप्ति अवस्था विषैं अपर्याप्त संबंधी छह, असंज्ञी वा विकलत्रय के पर्याप्ति-अपर्याप्ति संबंधी पांच-पांच, एकेंद्री कैं च्यारि-च्यारि जानने।

प्राण – संज्ञी पंचेंद्रिय कैं दश, तीहि अपर्याप्त के सात, असंज्ञी पंचेंद्री के नव तीहि अपर्याप्त के सात, चौइन्द्री के आठ, तीहि अपर्याप्त के छह, तेइन्द्री के सात, तीहि अपर्याप्त के पांच, बेइन्द्री के छह, तीहि अपर्याप्त के च्यारि, एकेंद्रिय के च्यारि, तीहि अपर्याप्त के तीन हैं। सयोग केवली कैं वचन, काय, उस्वास, आयु ए च्यारि

प्राण हैं। तिसही कैं वचन बिना तीन हो हैं। कायबल बिना दोय होय हैं। अयोगी कैं एक आयु प्राण है।

बहुरि संज्ञा च्यारि, गति च्यारि, इन्द्रिय पांच, काय छह, योग पंद्रह तिनमें पर्याप्त अवस्था संबंधी ग्यारह, अपर्याप्त अवस्था संबंधी तीन मिश्र अर एक कार्माण ए च्यारि हैं। वेद तीन, कषाय च्यारि, ज्ञान आठ, संयम सात, दर्शन च्यारि, लेश्या छह, भव्य दोय, सम्यक्त्व छह, संज्ञी दोय, आहार दोय, उपयोग बारह, ए सर्व समुच्चय गुणस्थान वा मार्गणा स्थाननि विषैं यथायोग्य प्ररूपण करने।

जीवसमास विषैं विशेष कहैं हैं –

ओघे आदेसे वा, सण्णीपज्जंतगा हवे जत्थ।
तत्थ य उणवीसंता, इगि-बि-ति-गुणिदा हवे ठाणा ॥७२७॥

ओघे आदेशे वा, संज्ञिपर्यन्तका भवेयुर्यत्र।
तत्र चैकोनविंशान्ता, एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः स्थानानि ॥७२७॥

टीका – गुणस्थान वा मार्गणास्थान विषैं जहां संज्ञी पंचेंद्री पर्यंत मूल चौदह जीवसमास निरूपण करिए, तहां उत्तर जीवसमास एक नै आदि देकरि उगणीस पर्यंत सामान्य करि, दोय पर्याप्त अपर्याप्त करि, तीन पर्याप्त, अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त करि गुणैं, एकनै आदि देकरि उगणीस पर्यंत वा दोय नैं आदि देकरि अठतीस पर्यंत वा तीन नैं आदि देकरि सत्तावन पर्यंत जीवसमास के भेद हैं। ते सर्व भेद तहां जानने। सामान्य जीवसमास एक, त्रस-स्थावर भेदतैं दोय, इत्यादि सर्वभेद जीवसमास अधिकार विषैं कहे हैं; सो जानने। इनिकौं एक, दोय, तीन करि गुणैं क्रमतैं एक, दोय, तीन आदि उगणीस, अठतीस सत्तावन पर्यंत भेद हो हैं।

इहां तैं आगैं गुणस्थानमार्गणा विषैं गुणस्थान, जीवसमास इत्यादि बीस भेद जोडिए है; सो कहिए है –

वीर-मुह-कमल-णिग्गय-सयल-सुय-ग्गहण-पयडण-समत्थं।
णमिऊण गोयममहं, सिद्धंतालावमणुवोच्छं ॥७२८॥

वीरमुखकमलनिर्गतसकलश्रुतग्रहणप्रकटनसमर्थम्।
नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्ये ॥७२८॥

टीका – वर्धमान स्वामी के मुख कमल तैं निकस्या अैसा सकल शास्त्र महा-गंभीर, ताके प्रकट करने कौं समर्थ अैसा सिद्धपर्यंत आलाप, सो श्रीगौतम स्वामी कौं नमस्कार करि मैं कहौं हौं ।

तहां सामान्य गुणस्थान रचना विषैं जैसे चौदह गुणस्थानवर्ती जीव हैं । गुणस्थान रहित सिद्ध हैं । चौदह जीवसमास युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । छह-छह, पांच-पांच, च्यारि-च्यारि, पर्याप्ति, अपर्याप्ति युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । दश, सात, नव, सात, आठ, छह, सात, पांच, छह, च्यारि, च्यारि, तीन, च्यारि, दोय, एक प्राण के धारी जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । पंद्रह योग युक्त जीव हैं । अयोगी जीव हैं । तीन वेद युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । च्यारि कषाय युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । आठ ज्ञान युक्त जीव हैं । ज्ञान रहित जीव नाहीं । सप्त संयम युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । च्यारि दर्शन युक्त जीव हैं । दर्शन रहित जीव नाहीं । द्रव्य, भाव छह लेश्या युक्त जीव हैं । लेश्या रहित जीव हैं । भव्य वा अभव्य जीव हैं । दोऊ रहित जीव हैं । छह सम्यक्त्व युक्त जीव हैं । सम्यक्त्व रहित नाहीं । संज्ञी वा असंज्ञी जीव हैं । दोऊ रहित जीव हैं । आहारी जीव हैं । अनाहारी जीव हैं । दोऊ रहित नाहीं । साकारोपयोग वा अनाकारोपयोग वा युगपत् दोऊ उपयोग युक्त जीव हैं । उपयोग रहित जीव नाहीं हैं । अैसें अन्यत्र यथासंभव जानना ।

अथ गुणस्थान वा मार्गणास्थाननि विषैं यथायोग्य बीस प्ररूपणा निरूपणा कीजिए है ।

सो यन्त्रनि करि विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थान का आलाप विषैं जो जो प्ररूपणा पाइए, सो सो लिखिए हैं । तहां यन्त्रनि विषैं अैसी सहनानी जाननी । पहिलें तौ एक बडा कोठा, तिस विषैं तौ जिस आलाप विषैं बीस प्ररूपणा लगाई, तिसका नाम लिखिए है । बहुरि तिस कोठे के आगें आगें बरोबरि बीस कोठे, तिनविषैं प्रथमादि कोठे तैं लगाइ, अनुक्रम तैं गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञी, गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार, उपयोग ए बीस प्ररूपणा जो जो पाइए, सो सो लिखिए है । तिनविषैं गुणस्थानादिक का नाम नाहीं लिखिए हैं । तथापि पहिला कोठा विषैं गुणस्थान, दूसरा विषैं जीवसमास, तीसरा विषैं पर्याप्ति इत्यादि बीसवां कोठा विषैं उपयोग पर्यंत जानने । तहां तिनि कोठेनि विषैं जहां जिस प्ररूपणा का जितना प्रमाण होइ, तितने

ही का अंक लिख्या होइ, तहां तौं सो प्ररूपणा सर्व जाननी । जैसें पहिले कोठे में चौदह का अंक जहां लिख्या होइ, तहां सर्व गुणस्थान जानने । दूसरा कोठे विषें जहां चौदह का अंक लिख्या होइ, तहां सर्व जीवसमास जानने । असें ही तृतीयादि कोठेनि विषें जहां छह, दश, च्यारि, च्यारि, छह, पंद्रह, तीन, च्यारि, आठ, सात, च्यारि, छह, दोय, छह, दोय-दोय बारह के अंक लिखे होइ, तहां अपने अपने कोठेनि विषें सो सो प्ररूपणा सर्व जाननी । बहुरि जहां प्ररूपणा का अभाव होइ, तहां बिंदी लिखिए है । जैसें पहिले कोठे विषें जहां बिंदी लिखी होइ, तहां गुणस्थान का अभाव जानना । दूसरा कोठा विषें जहां बिंदी लिखी होइ, तहां जीवसमास का अभाव जानना । असें अन्यत्र जानना । बहुरि जहां प्ररूपणा विषें केतेक भेद पाइए, तहां अपने अपने कोठानि विषें जितने भेद पाइए, तितनेका अंक लिखिए है । बहुरि तिन भेदनि के नाम जानने के अर्थि नाम का पहिला अक्षर वा पहिले दोय आदि अक्षर वा दोय विशेषण जानने के अर्थि दोऊ विशेषणनि के आदि के दोय अक्षर वा तिन अक्षरनि के आगें अपनी संख्या के अंक लिखिए है, सोई कहिए हैं–

जितने गुणस्थान पाइए, तितने का अंक पहिले कोठे में लिखिए है । तिस अंक के नीचें तिन गुणस्थाननि का नाम जानने के अर्थि तिनके नामनि के आदि अक्षर लिखिए है । सो आदि अक्षर की सहनानी तैं सर्व नाम जानि लेना ।

तहां मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननि के नाम की असी सहनानी । **मि । सा । मिश्र । अवि । देश । प्र । अप्र । अपू । अनि । सू । उ । क्षी । स । अ ।**

बहुरि जहां आदि के असा लिख्या होइ, तहां मिथ्यादृष्टि आदि जितने लिखे होइ, तितने गुणस्थान जानने । बहुरि असें ही दूसरा कोठा विषें जीवसमास, सो जीवसमास दोय प्रकार पर्याप्ति वा अपर्याप्ति, तहां सहनानी असी **प । अ ।** बहुरि तहां सूक्ष्म, बादर, बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी, संज्ञी की सहनानी असी **सू । बा । बें । तें । चौं । अ । सं ।** तहां सूक्ष्म के पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ होइ, तौ सहनानी असी **सू २** पर्याप्त ही होइ तौ सहनानी असी **सू प १ ।** अपर्याप्ति ही होइ तौ असी **सूअ १** संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त की असी **सं २** पर्याप्त की असी **सं प १** संज्ञी अपर्याप्त की असी **सं अ १** सहनानी है । असें ही औरनि की जाननी । बहुरि जहां अपर्याप्त ही जीवसमास होइ, तहां **'अपर्याप्त'** असा लिखिए है । जहां पर्याप्त ही होइ, तहां **'पर्याप्त'** असा लिखिए है । बहुरि अप्रमत्त विषें आहारक अपेक्षा, सयोगी विषें केवल-

समुद्घात अपेक्षा, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवसमास जानने । बहुरि कायमार्गणा की रचना विषैं जहाँ सत्तावन, अठ्यारणवैं, च्यारि सैं छह जीवसमास कहे हैं, ते यथासंभव पर्याप्त, अपर्याप्त सामान्य आलाप विषैं जानि लेने । बहुरि वनस्पती रचना विषैं प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक बादर सूक्ष्म, नित्य-इतर निगोद के पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षा यथासंभव जीवसमास बारह नैं आदि देकरि जानने ।

बहुरि तीसरा कोठा विषैं पर्याप्ति, सो पर्याप्ति जितनी पाइए, तिनके अंक ही लिखिए है, नाम नाहीं लिखिए है । तहां अैसा जानना छह तौ संज्ञी पंचेंद्री के, पंच असंज्ञी वा विकलत्रय के, च्यारि एकेंद्री के जानने । ते पर्याप्त आलाप विषैं तौ पर्याप्त जानने । अपर्याप्त आलाप विषैं अपर्याप्त जानने । सामान्य आलाप विषै ते दोय दोय बार जहां लिखे होइ, तहां पर्याप्त, अपर्याप्त दोऊ जानने ।

बहुरि चौथा कोठा विषैं प्राण, ते प्राण जितने पाइए हैं तिनके अंक ही लिखिए है, नाम नाहीं लिखिए है । तहां अैसा जानना ।

पर्याप्त आलाप विषैं तौ दश संज्ञी के अर नव असंज्ञी के आठ चौंद्री के, सात तेंद्री के, छह बेंद्री के, च्यारि एकेंद्री के, बहुरि च्यारि सयोगी के, एक अयोगी का यथासंभव जानने । बहुरि अपर्याप्त आलाप विषैं सात संज्ञी के, सात असंज्ञी के, छह चौंद्री के, पांच तेंद्री के, च्यारि बेंद्री के, तीन एकेंद्री के, बहुरि दोय सयोगी के, यथा-संभव जानने । बहुरि जहां सामान्य आलाप विषैं ते पूर्वोक्त दोऊ लिखिए, तहां पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ जानने ।

बहुरि पांचवां कोठा विषैं संज्ञा, तहां आहारादिक की अैसी सहनानी है आ । भ । मै । प ।

बहुरि छठा कोठा विषैं गति, तहां नरकादिक की अैसी सहनानी है न । ति । म । दे ।

बहुरि सातवां कोठा विषैं इन्द्रिय, तहां एकेंद्रियादिक की अैसी सहनानी है ए । बें । तें । चौं । पं ।

बहुरि आठवां कोठा विषैं काय, सो पृथ्वी आदि की अैसी पृ । अ । ते । वा । व । बहुरि पांचों ही स्थावरनि की अैसी–स्था ५ । बहुरि त्रस की अैसी त्र । सहनानी हैं।

बहुरि नवमां कोठा विषैं योग, तहां मन के च्यारि, तिनकी ऐसी **म ४** । वचन के च्यारि, तिनकी ऐसी **व ४** ।काय के विषैं औदारिकादिकनि की ऐसी **औ** । **औ मि** । **वै** । **वै मि** । **आ** । **आ मि** । **का** । अथवा औदारिक, औदारिकमिश्र इनि दोऊनि की ऐसी **औ २** । वैक्रियिक द्विक की ऐसी **वै २** । आहारक द्विक की ऐसी **आ २** । बहुरि सयोगी के सत्य, अनुभय, मन-वचन पाइए । तिनकी ऐसी **म २** । **व २** । बहुरि बेंद्रियादिक के अनुभय वचन पाइए, ताकी ऐसी **अनु व १** । सहनानी है ।

बहुरि दशवां कोठा विषैं वेद, तहां नपुंसकादिक की ऐसी **न** । **पु** । **स्त्री** सहनानी है ।

बहुरि ग्यारहवां कोठा विषैं कषाय, तहां क्रोधादिक की ऐसी **क्रो** । **मा** । **माया** । **लो** । सहनानी है । बहुरि बारह्वां कोठा विषैं ज्ञान, तहां कुमति, कुश्रुत, विभंग की ऐसी **कुम** । **कुश्रु** । **वि** । अथवा इन तीनों की ऐसी **कुज्ञान ३** । बहुरि मतिज्ञानादिक की **म** । **श्रु** । **अ** । **म** । **के** । अथवा मति, श्रुत, अवधि तीनों की ऐसी **मत्यादि ३** । मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय की ऐसी **मत्यादि ४** । सहनानी है ।

बहुरि तेरहवां कोठा विषैं संयम, तहां संयमादिक की ऐसी **अ** । **दे** । **सा** । **छे** । **प** । **सू** । **य** । सहनानी है ।

बहुरि चौदहवां कोठा विषैं दर्शन, तहां चक्षु आदि की ऐसी **च** । **अच** । **अव** । **के** । अथवा चक्षु अचक्षु अवधि तीनों की ऐसी **चक्षु आदि ३** सहनानी है ।

बहुरि पंद्रह्वां कोठा विषैं लेश्या, तहां द्रव्य लेश्या की सहनानी ऐसी **द्र** । याके आगैं जितनी द्रव्य लेश्या पाइए, तितने का अंक जानना । बहुरि भाव लेश्या की सहनानी ऐसी **भा** । याके आगैं जितनी भावलेश्या पाइए तितने का अंक जानना । दोऊ ही जागै कृष्णादिक नामनि की ऐसी **कृ** । **नी** । **क** । इनि तीनों की ऐसी **अशुभ ३** । तेज आदिक की ऐसी **ते** । **प** । **शु** । इन तीनों की ऐसी **शुभ ३** । सहनानी जाननी ।

बहुरि सोलहवां कोठाविषैं भव्य, सो भव्य अभव्य की ऐसी **भ** । **अ** । सहनानी है।

सतरहवां कोठा विषै सम्यक्त्व, तहां मिथ्यादिक की ऐसी **मि** । **सा** । **मिश्र** । **उ** । **वे** । **क्षा** । सहनानी है ।

बहुरि अठारहवां कोठा विषैं संज्ञी, तहां संज्ञी असंज्ञी की ऐसी सं । अ । सहनानी है ।

बहुरि उगणीसवां कोठा विषैं आहार, तहां आहार-अनाहार की ऐसी आ । अन । सहनानी है ।

बहुरि बीसवां कोठा विषैं उपयोग, तहां ज्ञानोपयोग – दर्शनोपयोग की ऐसी ज्ञा । द । सहनानी है । ऐसैं इन सहनानीनि करि यंत्रनि विषैं कहिए है अर्थ सो नीकैं जानना ।

बहुरि जहां गुणस्थानवत् वा मूलौघवत् ऐसा कह्या होइ, गुणस्थान वा सिद्ध रचना विषैं जैसें प्ररूपणा होइ, तैसैं यथसंभव जानना । बहुरि और भी जहां जिसवत् कह्या होइ, तहां ताके समान प्ररूपणा जानि लेना । तहां जो किछू जिस कोठा विषैं विशेष कह्या होइ, सो विशेष जानि लेना । बहुरि जहां स्वकीय ऐसा कह्या होइ, तहां जिसका आलाप होइ, तहां तिस विषैं संभवती प्ररूपणा वा जिसका आलाप कीजिए, सो ही प्ररूपणा जानि लेना । बहुरि इतना कथन जानि लेना –

> **सव्वेसिं सुहमाणं, काऊदा सव्वविग्गहे सुक्का ।**
> **सव्वो मिस्सो देहो, कओदवण्णो हवे णियमा ।।१।।**

इस सूत्र करि सर्व पृथ्वीकायादिक सूक्ष्म जीवनि कैं द्रव्यलेश्या कपोत है । विग्रहगति संबंधी कार्माण विषैं शुक्ल है । मिश्र शरीर विषैं कपोत है । ऐसैं अपर्याप्त आलापनि विषैं द्रव्यलेश्या कपोत अर शुक्ल ही जानि लेना ।

बहुरि द्वितीयादि पृथ्वी का रचना विषैं लेश्या अपनी अपनी पृथ्वी विषैं संभवती स्वकीय जाननी ।

बहुरि मनुष्य रचना विषैं प्रमत्तादिक विषैं तीन भेद भाव अपेक्षा हैं । द्रव्य अपेक्षा एक पुरुषवेद ही है । बहुरि सप्तमादि गुणस्थाननि विषैं आहार संज्ञा का अभाव, साता-असाता वेदनीय की उदीरणा का अभाव तैं जानना । बहुरि स्त्री, नपुंसक वेद का उदय होतें आहारकयोग, मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम न होइ, ऐसा जानना । बहुरि श्रेणी तैं उतरि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी चतुर्थादि गुणस्थाननि तैं मरि देव होइ, तीहि अपेक्षा वैमानिक देवनि कैं अपर्याप्तकाल विषैं उपशम सम्यक्त्व कह्या है ।

बहुरि एकेंद्री जीवनि कैं पर्याप्त नामकर्म के उदय तें पर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था है। बहुरि अपर्याप्त नामकर्म के उदय तें लब्धि अपर्याप्तक हो है; असा जानना। बहुरि कायमार्गणा रचना विषें पर्याप्त, बादर, पृथ्वी, वनस्पती, त्रस कैं द्रव्यलेश्या छहों हैं। अप कैं शुक्ल, तेज कैं पीत, वायु कैं हरित वा गोमूत्र वा अव्यक्त वर्णरूप द्रव्य लेश्या स्वकीय जानना।

बहुरि साधारण शरीर जानने के अर्थि गाथा—

पुढवी आदि चउण्हं, केवलि आहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदाहु सव्वे, परिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥१॥

पृथ्वी आदि च्यारि, अर केवली, आहारक, देव, नारक के शरीर निगोद रहित अप्रतिष्ठित हैं। अवशेष सर्व निगोद सहित सप्रतिष्ठित हैं; असा साधारण रचना विषें स्वरूप जानना।

बहुरि सासादन सम्यग्दृष्टि मरि नरक न जाय, तातें नारकी अपर्याप्त सासादन न होइ। बहुरि पंचमी आदि पृथ्वी के आये अपर्याप्त मनुष्यनि के कृष्ण नील लेश्या होतें वेदक सम्यक्त्व हो है, तातें कृष्ण – नील लेश्या की रचना विषें अपर्याप्त आलाप विषें मनुष्यगति कहिए है। बहुरि पर्याप्त विषें कृष्णलेश्या नाहीं। अपर्याप्त में मिश्रगुणस्थान नाहीं, तातें कृष्णलेश्या का मिश्रगुणस्थान विषें देव बिना तीन गति हैं। इत्यादिक यथासंभव अर्थ जानि यंत्रनि करि कहिए है अर्थ, सो जानना। अथ यन्त्र रचना—

रचनादि ९ भेदकरि है तिनके नाम	गुणस्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्री	काय	जोग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहारक	उपयोग
पर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	१४	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९ ८।७।६।४ ४।१ पर्याप्त	४	४	५	६ पर्याप्त	११ पर्याप्त	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहारक	१२
अपर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ सयो १	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५ ४।३।२ अपर्याप्त	४	४	५	६	४ औमि १ वैमि १ आमि १ कार्मा १	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी सामान्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६।५।५।४।४	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी पर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९।८।७।६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहारक	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २
सासादन सामान्यकी रचना	१ सासादन	२ संप १ संअ १	६।६।	१०।७।	४	४	१ पंचेंद्री	१ त्रस	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासादन	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा ३ द २

सासादन पर्याप्तका रचना	१ सासा	१ संप	६। प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४औ १वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	१ आहा	५ का३ द २
सासादन अपर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ तिर्म १ दे १	१ पं	१ त्र	३औ मि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	४ का२ द २
सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४औ१ वै १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ का३ द २
असंयत सामान्य रचना	१ असंयत	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहा रक द्विक विना	३	४	३ म१ श्रु१ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उप१ वे१ क्षा १	१ सं	२	६ का३ द ३
असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४औ१ वै १	३	४	३ म श्रु१ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ का३ द३
असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३औ मि१ वैमि१ का १	२ न१पु१	४	३ म१ श्रु म१ अ१	१ असं	३ आदि के	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ का३ द ३
देशसंयम रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्या दिक	१ देश संयत	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ का३ द ३
प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ संप१ संअ १	६।६	१०।७	४	१ मनु	१ पं	१ त्र	११ म४व ४औ १ आहार२	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प १	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा२	१ सं	१ आ	७ का४ द ३

अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत्त	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म०४ व०४ औ०१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ सं१	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म०४ व०४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्तिकरण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्तिकरण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	३ क्रोध बिना	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्तिकरण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्तिकरण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ लो	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सूक्ष्मसांपराय रचना	१ सूक्ष्म	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ लो	४ मत्यादिक	१ सूक्ष्म	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३

उपशांतकषाय रचना	१ उप	१ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ स	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
क्षीणकषाय रचना	१ क्षीण	१ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदि क	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सयोगकेवली की रचना	१ सयो	२ प१ अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	०	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
अयोगकेवली की रचना	१ सयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
सामान्य नारक जीवों की रचना	४ आदि के	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	१ नपुं	४	६ अज्ञा३ मत्यादिक३	१ असं	३ आदि के	द्रव्य३ कृ१ क १शु१ भा३ अशुभ	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
सामान्य नारक पर्याप्त रचना	४ आदि के	१ सं प	६ प	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	६ अज्ञा३ मत्यादिक३	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ १ भा३ अशुभ	२	६	१ सं	१ आहारक	९ ज्ञा६ द३

सामान्य नारक अपर्याप्त रचना	२ मि १ अवि १	१ सं अ	६ अप	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ का शु १ भा ३ अशुभ	२	३ मिथ्या १ वेद १ क्षा १	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
सामान्य नारक मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वैमि २ का १	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ३ का क शु भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य नारक मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र १ कृ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य नारक मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का शु भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
सामान्य नारक सासादन रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र १ कृष्ण भा ३ अशुभ	१ भ	१ सासा	१ सं	१	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य नारक मिश्र गुण स्थान रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र १ कृष्ण भा ३ अशुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य नारक असंयत रचना	१ असं	२ सं प १ सं अ १	६-६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का १	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ का १ क १ शु १ भा ३ अशुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

सामान्यनारक असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिके	द्र१ क१ भा३ अशुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
सामान्यनारक असंयतअपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ पं	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	३ मत्यादि ३	१ असं	३ आदिके	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
धर्मानारक सामान्य रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ अज्ञान ३ मत्यादि ३	१ असं	२ आदिके	द्र३ कृ१ का१ शु१ भा१ कपोत	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
धर्मानारक पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ आदिके	द्र३ क१ भा१ कपोत	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
धर्मानारक अपर्याप्त रचना	२ मि१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ असं	३ आदिके	द्र२ का१ शु१ भा१ कपोत	२	३ मि१ वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
धर्मानारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र३ कृ१ का१ शु१ भा१ कपोत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
धर्मानारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	१ कृष्ण भा१ कपोत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

धर्मानारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु०	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु१ भा १ कपोत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
धर्मानारक सासादन रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र १ कृष्ण भा१ कपोत	१ भ	१ सासा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
धर्मानारक मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ कृष्ण भा१ कपोत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
धर्मानारक असंयम रचना	१ असं	२ सं प सं अ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ कृ१ क १ शु१ भा१ क	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
धर्मानारक असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र१ क भा१ क	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
धर्मानारक असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र २ का१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
द्वितीयादिक पृथ्वीके नारकियोंकी सामान्य रचना	४ आदिके	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का १	१ नपुं	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ असं	३ आदि के	द्र ३ कृ१ का१ शु१ भा१ स्व स्व पृथ्वी संबंधी	२	५ उ वे१ मि१ सा१ मि १	१ सं	२	६ ज्ञा६ द ३

द्वितीयादि पृथ्वीके नारक अपर्याप्तकी रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	६ कुज्ञान ३ [illegible] मिश्र	१ असं	३ आदिके	द्रव्य [illegible] स्वकीय	२	५ [illegible] मि [illegible] १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
द्वितीयादि पृथ्वीके नारक अपर्याप्त मिथ्यात्व रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वीके नारक मिथ्यात्व एवं [illegible] रचना	१ मि	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ [illegible] शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीयादि पृथ्वीके नारक [illegible] की रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ [illegible] भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीयादि पृथ्वीके नारक मिथ्यात्व [illegible] रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वीके नारक सासादन की रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ कृ भा१ स्वकीय	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
द्वितीयादि पृथ्वीके नारक मिश्र की रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ क भा१ स्वकीय	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञान ३ द २

द्वितीयादि-पृथ्वीके नारक असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र १ क भा १ स्वकीय	१ भ	२ उ १ क्षे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पंचप्रकार तिर्यंचोंमें तिर्यंचसामान्य तिर्यंच रचना	५ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	१ ति	५	६	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मनःपर्ययके वल विना	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३
सामान्यतिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदि के	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुअ३ मत्या दि३	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
सामान्यतिर्यंच अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अपर्याप्त	६। ५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मि१ सा१ क्षा१ क्षे१	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
सामान्य तिर्यंच मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७। ९।७।८।६। ७।५।६। ४।४।३।	४	१ ति	५	६	११ म ४ व ४ औ२ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अप	६।५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २

सामान्य तिर्यंच सासादन रचना	१ सासा	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ का ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ का ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सासा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क २ शु २ भा ३ अशु	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ का २ द २
सामान्य तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ का ३ द २
सामान्य तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ का ३ द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ का ३ द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पुरुष	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा १ कपोत	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ का ३ द ३

सामान्यति-र्यञ्चदेश सं-यम रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ औ१ वे १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पंचेंद्री ति-र्यंच रचना	५ आदिके	४संप१ संअ १ असंप १असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मत्या दिक३ कुज्ञा- न ३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	९ ज्ञा ६ द ३
पंचेंद्री तिर्य-च पर्याप्त रचना	५ आदिके	१ संप१ असं प१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञा न ३ मत्या दि३	२ असं १ देश १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्य-च अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा १ अवि १	२ संअ १ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	३	४	५ कुम १ कुश्रु त १ मत्या दि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मिथ्या १सा१ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा५ द ३
पंचेंद्री तिर्य-च मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	४संप १संअ १ असं प१ अ संअ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्री तिर्य-च मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं प१ अ- सं प१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री तिर्य-च मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ संअ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २

पंचेंद्री तिर्यंच सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ का१	३	४	२ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	२ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
पंचेंद्री तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप १ संअ १	६ ६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पुरुष	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ का१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	२ क्षा १ वे १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

पंचेंद्री तिर्यंच देश संयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	२ उ १ क्षे १	१ स	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच रचना- पंचेंद्री तिर्यंच वत् है	पंचेंद्रीवत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्
योनिमती तिर्यंच अर्थात् तिर्यंचणी नामकी रचना	५ आदिके	४ सं प १ सं अ १ असं प १ असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	२ असं १ देश १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	५ क्षायिक बिना	२	२	९ ज्ञा ६ द ३
योनिमती तिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदिके	२ सं प १ असं प १	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादिक ३	२ असं १ देश १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	५ क्षायिक बिना	२	१ आहा	९ ज्ञा ६ द ३
योनिमती तिर्यंच अपर्याप्त रचना	२ मिथ्या १ सा १	२ सं अ १ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सासा १	२	२	४ ज्ञा २ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	४ सं प १ सं अ १ असं प १ असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ सं प १ असं प १	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २

योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ संज्ञी १ असं ज्ञी १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औ१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	१	४ ज्ञा२ द२
योनिमती तिर्यंच सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु १भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमती तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	२ उ१ वे१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
योनिमती तिर्यंच देशसंयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	२ उ१ वे	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	२ संअ१ असअ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द२
उक्तप्रकार मनुष्यनिर्विशेष सामान्यमनुष्यरचना	१४	२ सप१ सअ१	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैक्रियकद्विक विना	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१२
सामान्य मनुष्य पर्याप्त रचना	१४	१ सप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
सामान्य मनुष्य अपर्याप्त रचना	५ मिथ्या१ सा१ अवि१ प्र१स१	१ सअ	६	७ २	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं१ सा१ छे१ यथा१	४	द्र २ का१शु १ भा६	२	४ मिथ्या१ सा१ क्षे१ क्षा१	१ सं	२	१० ज्ञा६ द४
सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहार	५ ज्ञा३ द२
सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

सामान्यमनुष्य सासादन रचना	१ सा	२ संप १ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ सा३ द२
सामान्य मनुष्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ सा३ द२
सामान्य मनुष्य सासादन अपर्याप्तरच.	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ सा२ द२
सामान्य मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ सा३ द२
सामान्यमनुष्य असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ सा३ द३
सामान्य मनुष्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ सा३ द३
सामान्य मनुष्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ पुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र२ का१ शु१ भा६	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ सा३ द३

सामान्य मनुष्य देश संयतरचना	१ दे	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सामान्य मनुष्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आहा२	३ भाव अपेक्षा द्रव्य पुरुष	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य प्रमत्त पर्याप्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ आ१	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य प्रमत्त आहारक अपेक्षा अपर्याप्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहारक मिश्र	१ पुरुष	४	३ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा ३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सामान्य मनुष्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ द्वितीयोपशम१ क्षायिक१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३

सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	४	४ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	३ मान१ माया१ लोभ१	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	२ माया१ लोभ१	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप १	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	०	१ लोभ	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य सूक्ष्म सांपराय रचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ लोभ	४ मत्यादिक	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य उपशांत कषाय रचना	१ उ	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामान्य मनुष्य क्षीण कषाय रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३

सामान्य मनुष्य सयोग केवलीरचना	१ सयो	२ स प१ सं अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
सामान्य मनुष्य अयोग केवली रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा १ द १
स्त्री मनुष्य रचना सामान्य मनुष्य पर्याप्तवत्	सामान्य मनुष्य पर्याप्त वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
योनिमत् मनुष्यणी की रचना	१४	२ स प१ सं अ	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	७ मनःपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ सं प	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	७ मनःपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२ आहा	११ ज्ञा७ द ४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ सयो १	१ सं अ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ स्त्री	४	३ कुम १ कुश्रु१ केवल १	२ अस १ यथा १	३ च १ अच १ केव १	द्र२ का१ शु१ भा ४ अशु भ २ शुक्ल१	२	३ मिथ्या १ सा१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ आ ३ द २
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ आ २ द २
मनुष्यणी सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ आ ३ द २
मनुष्यणी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ आ ३ द २
मनुष्यणी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ आ २ द २
मनुष्यणी सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी असंयत रचना	१ असं	१ सं प १	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ असं १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३

मनुष्यणी देश संयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप १	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा छे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अपूर्व करण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अनिवृत्ति करण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिकरणद्वितीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिकरणतृतीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	३ मान १ माया १ लोभ १	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३

मनुष्यणी अनिवृत्तिकरण चतुर्थ भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अनिवृत्तिकरण पंचम भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ बादर लोभ	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी सूक्ष्मसांपराय रचना	१ सू	१ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ सूक्ष्म लोभ	३ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी उपशांत कषाय रचना	१ उप	१ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	२ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी सयोगी रचना	१ सयो	२ सं प१ सं अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
मनुष्यणी अयोगी रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा०	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१

मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
देवगति रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
देवगति पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
देवगति अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
देवमिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
देवमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप१	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देवमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु१ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

देव सामान्य पर्याप्त रचना	१ सा	२ सं प१ संअ१	३।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१	५ ज्ञा३ द२
देव सासादन अपर्याप्त रचना	[illegible]	१ स अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ [illegible]	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा२ द२
देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देव असंयत रचना	१ असं	२ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
देव असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र२ का१ शु१ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

भवनत्रिक देव रचना	४ आदि के	२ सं प१ सं अ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा४ अशुभ ३ पी१	२	५ क्षायिक बिना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
भवनत्रिक देव पर्याप्त रचना	४ आदि के	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पीत	२	५ क्षायिक बिना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
भवनत्रिक देव अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या१ सा१	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ सं प१ सं अ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पीत१	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प १	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देव सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पु १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पीत१	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

भवनत्रिक देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पु १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पु१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव असंयत रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	२ उ १ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सौधर्म ईशान देव रचना	४ आदि के	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पु १	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ३ पी१ क१ शु१ भा१ पीत	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द ३
सौधर्म ईशान देव पर्याप्त रचना	४ आदि के	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत	२	६	१ सं	१ आहार	९ ज्ञा६ द ३
सौधर्म ईशान देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	५ कुम१ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ पीत	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिरचना	१ मि	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ पी१ क१ शु१ भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ पीत भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
सौधर्मईशान देवसासादनरचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र पी१ क१ शु१ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशानदेवसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द
सौधर्मईशानसासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द
सौधर्मईशानदेवसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प१	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	१ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २

सौधर्म ईशान देव असंयत रचना	१ अस	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्यादि	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र ३ पी१ का१ शु१ भा१ पीत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ आ३ द३
सौधर्म ईशान देव असंयत पर्याप्त रचना	१ अस	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्यादिक	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ आ३ द३
सौधर्म ईशान देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ अस	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मत्यादिक	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ पीत	१ भ	३ द्विती० उप१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ आ३ द३
कल्पवासिनी देवांगनाके असंयतविषै पर्याप्तापर्याप्तकी रचना	सौधर्म असंयत पर्याप्तवत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	१ स्त्री	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	२ उ१ वे१	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्
सनत्कुमार माहेंद्र देव रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ पुरुषवेद [illegible] सौधर्मादिक में ही उपजै है	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र ४ पी१ प१ का१ शु१ भा२ पी१ प१	२	६	१ सं	२	६ आ३ द३
सनत्कुमार माहेंद्र देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ पु	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र २ पी१ प१ भा२ पी१ प१	२	६	१ सं	१ आहा	६ आ३ द३
सनत्कुमार माहेंद्र देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ अस	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा पी१ प१	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ आ५ द३

सनत्कुमार माहेंद्र मिश्र इत्यादि धर्म शब्दगैस सौ धर्मं पुरुष वत् रचना	सौधर्म वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	१ पुरुष वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	स्वकीय स्वर्गवं भवती	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्
प्राणतकल्पिता दि वैमानिक सनत्कुमार वत् रचना	सनत्कुमार वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स्वकीय स भ वती	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्
आदिशतार सहस्त्रारकल्प सौधर्मपुरुष वत् वत्	सौधर्मं असंयत वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	१ पुरुष वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	स्वकी असंयम वती	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्	सौध वत्
सिद्धगति रचना	०	०	०	०	०	मिश्र गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ आह द १
एकेंद्रियमार्गणाविषै सामान्य एकेंद्री रचना	१ मि	५ बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औदा का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आह द १
सामान्यएकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ आह द १
सामान्यएकेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आ द १

बादरएकेंद्री रचना	१ मि	२ बादर पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आ२ द१
बादरएकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ बादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ आ२ द१
[illegible] एकेंद्रीय पर्याप्तरचना बादरएकेंद्री लब्धिअपर्याप्तरचना	१ मि	१ बादर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आ२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री रचना	१ मि	२ सूक्ष्म प१ अ१	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आ२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र१ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ आ२ द१
सूक्ष्मएकेंद्री अपर्याप्तरचना पर्याप्तनामकर्मके उदयमें लब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आ२ द१
बेंद्री रचना	१ मि	२ बेंद्री प१ अ१	५।५	६।४	४	१ ति	१ बे	१ त्र	४ औ२ का१ व१ अनु	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ२ द१

बेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ बेंद्री पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ बे	१ त्र	२ व१ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ आर द१
बेंद्री अपर्याप्त या लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ बेंद्री अप र्याप्त	५	४	४	१ ति	१ बे	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु१ भा३ अशुभ	२	२ मि	१ अ	२	३ आर द१
तेंद्री रचना	१ मि	२ तेंद्री प१ अ१	५।५	७।५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	४ व१ अनु औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आर द१
तेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री पर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ व१ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ आर द१
तेंद्रीअपर्याप्त या लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री अप र्याप्त	५	५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र२ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आर द१
चौंद्री रचना	१ मि	२ चौंद्री प१ अ१	५।५	८।६	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	४ व१ अनु औ२ का१	१ नपुं १	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ आर द२
चौंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री पर्याप्त	५	८	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	२ व१ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	४ आर द२

चौइंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ चौइंद्री अपर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ आ२ द२
पंचेंद्री रचना	१४	४ संअ संज्ञीप असंअ पर्याप्त रचना	६।६ ५।५	१०।७। ९।७। ८।२। ७।०१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१२ आ८ द४
पंचेंद्री पर्याप्त रचना	१४	२ संज्ञी असंज्ञी पर्याप्त	६।५	१०।९ स७।४ अ० १	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१० आ८ द५
पंचेंद्री अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ स१	२ संज्ञी असंज्ञी अपर्याप्त	६।५	७।७ सं०२	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० आ६ द४
पंचेंद्री मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सं०अ सं.प० अ०	६।६। ५।५	१०।७ ७।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ आ३ द२
पंचेंद्रीमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ सं प पर्याप्त	६।५	१०।९	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहार	५ आ३ द२
पंचेंद्रीमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ सं प पर्याप्त	६।५	७।७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ आ२ द२

पंचेंद्री सा स.दनादिक रचना गुण स्थान वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
असंज्ञीपंचेंद्री रचना	१ मि	२ असंज्ञी पर्याप्त अप र्याप्त	५।५	९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	४ अनुभ- वच १ औदा र का१	१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा४ अशुभ ३पीत२	२	१ मि	१ असं	१	४ आ२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री पर्याप्तरचना	१ मि	१ असंज्ञी पर्याप्त	५	९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ अनुभ यवचन १औदा १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पीत १	२	१ मि	१ असं	१ आहा	४ आ२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अप- र्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ आ२ द २
पंचेंद्रीलब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं० असं० अ२	६।५	७।७	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ आ२ द २
संज्ञीपंचेंद्रीलब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संज्ञी अप र्याप्त	६	७	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ सं	२	४ आ२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री लब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अप र्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ आ२ द २

षट्कायमार्गणा सिद्धगति वत्	सिद्धगति वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्
षट्कायमार्गणाविषैसामान्यषट्काय रचना	१७	५७। ६८। ७०६।	६६ ५१० ४४	१०।७।८। ७।८।६। ७।५।६।४। ७।३।७। ५।११	४	४	५	६	१५	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१
षट्कायपर्याप्तरचना	१७	२५। ३७। २८८।	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।५। ४।१	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आ	१२
षट्कायअपर्याप्तरचना	५ मि: सा१ अवि१ प्र१स१	३८। ३२। २२०।	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि१ १कार	३	४	६ मनपर्य विभं गविना	४ असंय १ छेद१ यथा१	४	द्र२ काशु भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० आह द४
षट्कायमिथ्यादृष्टिआदिरचना गुणस्थान वत्	गुण स्थान वत्	मिथ्यादृष्टि गुणस्थान विषै न शेष गुणस्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
पृथ्वीकायिकरचना	१ मि	४ बादर सूक्ष्मपर्याप्त अपर्याप्त	४।३	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औ० का१	१ नपु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आहा द१
पृथ्वीकायिकपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औदा	१ नपु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ आहा द१

पृथ्वीकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ आ २ द १
पृथ्वीकायिक बादर रचना	१ मि	२ बादर पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ २ द १
पृथ्वीकायिक बादरपर्याप्त रचना	१ मि	१ बादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ आ २ द १
पृथ्वीकायिक बादरअपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्तरचना	१ मि	१ बादर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ २ द १
पृथ्वीकायिक सूक्ष्मरचनासु सूक्ष्मपर्याप्तेष्वपि	सूक्ष्मापर्याप्तके द्रष्टव्य	सू० प० वत्	सू० प० वत्	सू०प० वत	सू० प० वत	सू० प० वत्	१ पृ	सू० प० वत्	सू० प० वत्	सू०प० वत्	सू० प० वत्	सू०प० वत्	सू० प० वत्	सू० प० वत्	सू०प० वत्	सू० प० वत्	सू० प० वत्	सू० प० वत्	सू० प० वत्	सू० प० वत्
अप्कायिकमें तेजस्कायिकवा वायुकायिकरचना पृथ्वीवत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत	पृ. वत्	पृ. वत्	१ स्थावरकाय पृ० वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत	स्थावरकाय संभवती	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्
वनस्पतीकायिक रचना	१ मि	१२ नित्यनिगोद इतरनिगोद प्रत्येक बादर सूक्ष्म निगोद सप्रतिष्ठित पर्याप्त अप०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औमि कार्	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच १	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ २ द २

[illegible]स्पतिकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	६ पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ का१ द१
[illegible]स्पतिकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	४ अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
प्रत्येकवन स्पतिरचना	१ मि	४ प्र०अ० प०अ०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
प्रत्येकवन स्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रति ष्ठित अप्र तिष्ठित पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
प्रत्येकवनस्पतिअपर्याप्त लब्ध्यप र्याप्त रचना	१ मि	२ प्रति. अप्र. अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
साधारणवन स्पति रचना	१ मि	८ सू.बा. नि.इ. प.अ.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
साधारणवन स्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू.बा. नि.इ. पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द १

साधारण वनस्पती अपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू.बा. नि.इ. अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ प	१ च	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ २ द १
साधारणपर्याप्त वनस्पतीबादर रचना	१ मि	४ बादनि इतरनि गोसूप र्याप्त पर्याप्त	४।४	३।३	४	१ ति	१ प	१ च	३ औ. का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ २ द
साधारण वनस्पती बादरपर्याप्त रचना	१ मि	२ बा.नि त्यइतर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ प	१ च	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ आ२ द१
साधारणवनस्पतीबादर अपर्याप्त वनस्पति अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बा.नि त्यइतर अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ प	१ च	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ आ२ द१
साधारणवनस्पति सर्वसूक्ष्मनि गोदवनस्पति सूक्ष्मपृथ्वीकायवत्	सूक्ष्मपृथ्वीकायवत्	सूक्ष्मनि त्यइतर पर्याप्त अपर्याप्त	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	अप स्पति	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्
नित्यनिगोद चतुर्गतिनि गोदरचना साधारण वत्	साधारणवत्	स्वकीयवत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
त्रसकाय रचना	१४	१० वैक्रे २ स्त्री संद अद	६।६ ५।५	१०।७।९।८।६।४ ५।६।४ ४।२।१	४	५	४ वैक्रि१ स्त्री१ पं१	१	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	२	१२

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	४	[illegible]	१ स	[illegible]	३	४	८	[illegible]	४	[illegible] भा ६	२	६	८	१ आहा	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	३	४	[illegible]	[illegible]	४	[illegible]	२	[illegible] मिश्र	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	३	४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२	[illegible]	[illegible]	२	[illegible]
[illegible] लेश्या	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	३	४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२	[illegible]	[illegible]	आहा	[illegible]
[illegible] रचना	१ मि	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	४	[illegible]	१ प	[illegible]	३	४	[illegible] कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ [illegible] १ अचक्षु १	[illegible]	२	१ मि	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	शुभ स्थान वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्	शु० वत्
अकाय रचना	०	०	०	०	०	लिंग गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ शा र १

त्रसकायके लब्धअपर्याप्त रचना	१ मि	५।४४ पर्याप्त बे१ते१ चौ१सं १अ१	६।५	७।७ ६।६ ४	४	२ ति१ म१	४ बे१ते१ चौ१ पं१	१ त्र	२ औमि १कार्म१	१ न	४	२ कुमति१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा२ द१
सामान्य पर विशेष गुणस्थान वत् गुणस्थान संदृ	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
मनोयोगी रचना	१३ आ पृ के	१ सं प	६	१० ४	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
मनोयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनोयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनोयोगी मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनोयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

मनोयोगी देश संयत रचना	१ दे	१ क्षयो	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनो योगी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ क्षयो	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	४ मत्यादिक	३ सामा आदि	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२ आहा	७ ज्ञा४ द३
[illegible] योग [illegible] मिथ्यात्व वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	चार मनका	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सत्यमनोयोगी अनुभय मनोयोगीकी का मनोयोग वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	सत्य वाअनुभय म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
असत्यमनो योगी का उभयमनो योगी रच ।	१२ आदिके	१ क्षयो	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ असत्यमन वाउभय मन	३	४	७ केवल विना	७	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
असत्यमन मनोयोगीका [illegible] [illegible] मनोयोगी	सत्यमनो योगी वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	२ असत्य उभय	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्
वचन योगी रचना	१३ आदिके	५ पर्या [illegible] संज्ञी	६।६ ५।५	१०।९।८।७ [illegible]	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वचन का	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२ आहा	१२

वचनयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	५ पर्या स वे १ ते १ चौ १ अ १ सं १	६।५	१०।९। ८।७। ६।४	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वचन	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
वचनयोगी सासादनादि सयोगीपर्यंत मनोयोगीवत् [illegible] मैं विशेष	मनोयोगीवत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	वचन काय	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
काययोगी रचना	१३ आदिके	१४	६।६। ५।५। ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४।४। ३।४।२।	४	४	५	६	७ काय के	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१२
काययोगी पर्याप्तरचना	१३ आदि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	४	५	६	३ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	५	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
काययोगी अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ स१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३ २	४	४	५	६	४ औ मि१ वै मि१ आमि १ का१	३	४	६ विभ मनः पर्यय विना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द४
काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७।५। ६।४। ४।३	४	३	५	६	५ काय के आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
कायपयोगी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

काययोगी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ का २ द २
काययोगी सासादन रचना	१ सा	२ संपं० संअ०	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै २ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ का३ द २
काययोगी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ का३ द२
काययोगी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ कार्म	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ का२ द २
काययोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ का३ द२
काययोगी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै२ का१	३	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ का३ द३
काययोगी असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ का३ द३

काययोगी अविरत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संज्ञ	६	७	४	४	१ ते	१ प	३ औमि १ वैमि १ कार्म	२ नपु १ पुरु	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ कापशु भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	०	२ आह द २
काययोगी देश संयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ तिर्य१ म१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्या दिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	२ आह द ३
काययोगी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ सं अ१	६६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ१ आ२	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ आ४ द ३
काययोगी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ आ४ द ३
क. योगीमें पू. करणादि [illegible] गुणस्थान वत् योजनाय	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	काय योग औ	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
काययोगी सयोगकेवली रचना	१ सयो	२ प अ	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ आह१ द१
औदारिककाययोगी रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९।८।७ ७।६।५।४	४	२ म१ ति१	५	६	१ औदा	३	४	८	७	४	द्र ५ भा६	२	६	२	१ आ	१२

औदारिकका पर्याप्तिमिथ्या दृष्टि रचना	२ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८।७ ।६।४	४	२ म१ ति१	५	६	१ औ	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	५ क्षा३ द२
औदारिक काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ सप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ क्षा३ द२
औदारिक काययोगी असंयतसम्य दृष्टि रचना	१ [illegible]	१ पर्या	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ क्षा३ द२
औदारिककाययोगीअसंयत रचना	१ अ	१ पर्या	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ औ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ क्षा३ द३
औदारिक काययोगी देशसंयत रचना	१ देश	१ प	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ औ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ क्षा३ द३
औदारिककाययोगीप्रमत्तादिकयोगीपर्यन्त सयोगकेवली तक औदारिक	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	औदारिक	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्
औदारिक मिश्र योगी रचना	४ मि१ सा१ अवि१ स१	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६।५ ।४।२	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	६ विभंग मनः पर्यय विना	२ अ१ य१	४	द्र२ कपोत भा६	२	४ मि१ सा१ वे१ क्षा१	२	१ आहा	१० क्षा६ द४

औदारिक मिश्रयोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कापोत भा३ अशुभ	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअप	६	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कापोत भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअप	६ अ	७ प	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	१ औमि	१ पु	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कापोत भा६	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
औदारिक मिश्रयोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ अ	६ प	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ औमि	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ कापोत भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आ	२ ज्ञा१ द१
वैक्रियिक काययोगी रचना	४ मि१ सा१ मि१ अ१	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	६ ज्ञा६ द३
वैक्रियिककायोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
वैक्रियिक योगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

वैक्रियिककायोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
वैक्रियिककायोगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
वैक्रियिकमिश्रयोगी रचना	मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	२	५ मिश्र बिना	१ सं	१ आ	८ ज्ञा५ द३
वैक्रियिकमिश्रयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र १ कपोत भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ स्त्री १ पु १	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ नपु १ पु १	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा४ शु३ कपोत१	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारककाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ पर्याप्त	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आ	१ पु	४	३ मत्यादि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र १ शुक्ल भा ३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३

आहारकमिश्रकाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ अपर्याप्त	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आमि	१ पु	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कार्माण काययोगी रचना	४ मि १ सा १ अवि १ स १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	१ का	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	२ अ १ य १	४	द्र १ शुक्ल भा ६	२	५ मिश्र विना	२	१ अनाहारक	१० ज्ञा ६ द ४
कार्माण काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१ का	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ शुक्ल भा६	२	१ मि	२	१ अना	४ ज्ञा २ द २
कार्माण काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	१ का	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र१ शुक्ल भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा २ द २
कार्माण काययोगी असंयत रचना	१ अस	१ सं अ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	१ का	२ नपुं १ पु १	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र१ शुक्ल भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द३
कार्माण काययोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ प	६	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ का	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ शुक्ल भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ क्षा१ द १
वेदमार्गणामें स्त्रीवेदी रचना	९ आदिके	४ संज्ञी असंज्ञी प०२ अ०२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ म१ ति१ दे१	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	६ मनःपर्यय केवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द ३

स्त्रीवेदीपर्या म रचना	९ आदिके	२ सं० अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	६ मन:पर्ययकेवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द२
स्त्रीवेदी अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	२ सं० अ० अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६ अशुभ	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टि रचना	२ मि	४ सं० अ, प २ अप२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	६	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं. अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टिअपर्याप्तरचना	१ मि	२ सं. अ. अपर्याप्त	६।६	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

स्त्रीवेदी सासादनसम्यक्त्व रचना	१ सा	१ संभ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ का१ शु१ भा३ अशुभ३	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मतिआदि मनःपर्यय नाहीं	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि रचना	२ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहा०२ कवि ना	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ१ वै १	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
क्रोधी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधी सासादन रचना	१ सा	१ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक बिना	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
क्रोधी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
क्रोधी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	३ नारक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
क्रोधी सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २

कोधीअसंयत रचना	१ असं	२ संप १ संअ १	६६	१०७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक बिना	३	१ को	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	१ को	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पु १	१ को	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीदेशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	१ को	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
कोधीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
कोधीअपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

नपुंसकसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ आहारद्विक वै०मि विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	२ सं	२	५ आ३ द२
नपुंसकवेदी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संज्ञी पर्याप्त	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ आ३ द२
नपुंसकवेदी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	२ कुम कुश्रु	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा३ अशु	१ भ	१ सा	२ सं	२	४ आ३ द२
नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ आ३ द२
नपुंसकवेदी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै२ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ आ३ द३
नपुंसकवेदी असंयतपर्याप्त रचना	१ असं	२ संप१	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ आ३ द३
नपुंसकवेदी असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ०	६ अ	७ अ	४	१ नरक	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ आ३ द२

नपुंसकवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ न	४	३ मत्यादि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी प्रमत्तादि[illegible] अनिवृत्ति पर्यंत स्त्रीवेदिवत् वेद १ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	१ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्
वेदरहित अपगतवेदी रचना	६ अनिवृत्ति आदिक	२ संप सं४	२।६	११ ७।२।१	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ का१	०	४।३ २।१	५ मति आदि सूक्ष्मान्त	सा १ छे १ सू १ य १	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
अपगतवेदीनि[illegible] मूलौघवत्	मूलौघ वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्
कषायमार्गणानुवादेन क्रोधकषायी रचना	९ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८ ९।७।५ २।४ ७।१	४	४	५	६	१५	३	१ क्रो	७ केवल बिना	५ अ१ सा१ छे१ प१ दे१	३ केवल बिना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोधकषायी पर्याप्त रचना	९ आदिके	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।१० ८।७ ६ ४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ आ१	३	१ क्रो	७ केवल बिना	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ केवल बिना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोधकषायी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	१ क्रो	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	३ अ१ सा१ छे१	३ केवल बिना	द्र २ क१ शु१ भा ६	२	५ मिश्र बिना	२	२	८ ज्ञा५ द३

स्त्रीवेदीअनि वृत्तिकरण रचना	१ अनि	१ सं प	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पुरुषवेदी रचना	९ आदिके	४ सं अ. प० २ अ० २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	१ पुं	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	२ सं. अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ मध्ये ४ औ १ वै १ आ १	१ पुं	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	२ सं. अ. अप र्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	५ औ मि १ वै मि १ आ मि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्या दि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ सं अ. पर्याप्त अप	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ. अप र्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ कार्मा १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

पुंवेदी सासादनादि अनिवृत्ति पर्यंत गुणस्थानवत् वे मिश्रण देर	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	मिश्र असंयत प्रमत्त तिर्यंच ० ० गुणवत्	गु० वत्	गु० वत्	१ नृं	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
नपुंसकवेदी रचना	६ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।७ ७।६ ४।२	४	३ देव विना	५	६	१३ आहारक काययुक विना	१ न	४	६ मनःप र्ययके वल विना	४ अ १ दे १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ सा ६ द ३
नपुंसकवेदी पर्याप्त रचना	६ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६ ४	४	३ देव विना	५	६	१० मनु वचनौ १ वै १	१ न	४	६ मनः पर्यय केवल विना	४ सा १ छे १ दे १ अ१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा ६ द ३
नपुंसकवेदी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा१ अवि १	७ अप र्याप्त	६। ५।४	७।७ ६।४ ४ ३	४	३ देव विना	५	६	३ औ मि १ वै १ का १	१ न	४	५ कुम १ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा६ अशुभ	२	४ मि १ सा १ वे १ क्षा१	२	२	८ ज्ञा ५ द३
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।७ ७।६ ४।३	४	३ देव विना	५	६	१३ आहारकद्विक विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	३ देव विना	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१शु१ भा६ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

क्रोधीअनिवृत्तिकरण प्रथमभाग रचना	१ अनि	२ सं प	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
क्रोधीअनिवृ[illegible]	[illegible]	१ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	२	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
[illegible] अपगतवेद [illegible] तिर्यंचरचना	एवं मान मायाभ्यां लोभ १० गुणस्थान वत्	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ स्वकीय	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
अकषायी रचना	४ उपशांत कषायादि	२ प १ अ १	६।६	१०।४।२।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४
अकषायी उपशांतकषायादि सिद्ध गुणस्थानवत् रचना	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
ज्ञानमार्गणाविषै गुणस्थानवत् तहाँ कुमतिकुश्रुत रचना	२ मि १ सा १	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ७।६।७ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक बिना	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	२	२	४ ज्ञा २ द २
कुमतिकुश्रुत पर्याप्त रचना	२ मि १ सा १	७ पर्याप्त	६ ५।६	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २

कुमतिकुश्रुत अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा६	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	६ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादनपर्याप्तरचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादनअपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

परिहारविशुद्धिसंयमस्य अप्रमत्तवत्	१ स्वकीय	प १	१	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	३ चा१ अच१ अव१	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ २ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ क्षा ३ द ३
सूक्ष्मसांपरायसंयमीरचना सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवत्	१ सू	१ प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ लो	४ मति आदि	१ सू	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा १	१ सं	१ आ	७ क्षा ४ द ३
यथाख्यातसंयमीरचना	४ उपशांतकषायादि	२ प१ अ१	६।६	१०।४ २।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	२	६ क्षा५ द ४
यथाख्यातसंयमीउपशांतकषायादि अयोगीपर्यंत गु० वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
देशसंयमीरचना देशसंयतगुणस्थानवत्	१ दे	१ प	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ क्षा ३ द ३
असंयमी रचना	४ मिथ्यादृष्टि आदि	१२	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	६ क्षा ६ द ३
असंयमी पर्याप्त रचना	४ मिथ्यादृष्टि आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८।७।६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आ	६ क्षाद द३

[illegible] अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।२	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा५ द ३
असंयमी मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय पर्यंत गुणवत्	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_	गु० वत्_
दर्शनमार्गणाविषैगुणस्थानवत् तहांचक्षुदर्शनरचना	१२ आदिके	६ चौ२अ२ सं २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	१ चक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द१
चक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	३प च१ अ१ सं१	६ ५	१० ९ ८	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	११ म४ व४ औ १ वै १ आ१	३	४	७ केवल विना	७	१ चक्षु	द्र ३ भा ६	२	६	२	१ आ	८ ज्ञा७ द१
च० अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि१ प्र१	३अ च१ अ१ सं१	६ ५	७ ७ ६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि १का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या त्रि३	३ अ१ सा१ छे१	१ च	द्र२ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र	२	२	६ ज्ञा५ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	६ च२ अ २ सं२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ च	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा३ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	३ प च१ अ१ सं१	६।५	१०।९ ८	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ च	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा३ द१

मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ पु	४	१ मनःपर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहारक विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	१ मनःपर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्ययज्ञानी अपूर्वकरणादि क्षीणकषायपर्यन्त गुणस्थानवत् भेद १ ज्ञान १	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	पुंवेद नास्ति	गु० वत्	१ मनःपर्यय	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	४ ज्ञा १ द ३
केवलज्ञानी रचना	२ सयो१ अयो१	२ प१ अप१	६।६	४।२।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
केवलज्ञानी सयोगी अयोगी सिद्ध रचना गुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामान्यसंयम मार्गणा रचना	९ प्रमत्त आदि	२ प१ अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ वैक्रियिक द्विक विना	३	४	५ मति ज्ञान आदि	५ सा१ छे१ प १ सू१ य१	४	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४

सामान्यसंयमीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	३ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअपूर्वकरणादिअयोगीपर्यंतगुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामायिकसंयमी रचना	४ प्रमत्तादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	१ सा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामायिकसंयमीअप्रमत्तादिअनिवृत्तिपर्यंतगुणस्थानवत्	गुणस्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
छेदोपस्थापनासंयमीरचनासामायिकवत्	सामायक वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	छे	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
परिहारविशुद्धिसंयमी रचना	२ प्र१ अप्र१	१ प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	३ च१ अच१ अव१	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

विभंग ज्ञानीरचना	२ मि १ सा १	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	१ सं	१ आ	३ सा१ द२
विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै १	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	३ सा१ द२
विभंगज्ञानी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै१	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच १	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	३ सा१ द२
मतिश्रुत ज्ञानी रचना	९ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	२ म१ श्रु १	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत पर्याप्त रचना	९ असंयतादि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१ वै १ आ १	३	४	२ म १ श्रु १	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द३
मतिश्रुत अपर्याप्त रचना	२ अस १ प्र १	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	२ न १ पु १	४	२ म १ श्रु १	३ अ १ सा १ छे १	३ च १ अच १ अव १	द्र२ क१ शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी असंयत रचना	१ अस १	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ म १ श्रु १	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द ३

मतिश्रुतज्ञानी असंयतपर्याप्त रचना	२ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	२	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा १	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानीअसंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	४ संअ.	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ म१ पु१	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी देशसंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतगुणस्थानवत्ज्ञान २।	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	२ म१ श्रु१	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	५ ज्ञा २ द ३
अवधिज्ञानरचनाप्यसंमतिश्रुतवत्ज्ञान १ अवधिमतिश्रुतत्रयात्रकाणाज्ञान३ मतिश्रुतअवधिचामतिश्रुत मनःपर्ययज्ञानचमत्यादि	मतिश्रुतवत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	१ अवधि ३ म १ श्रु १ अ १ का म तिश्रु शि मिन वा ४ म १ श्रु १ अ १ म १	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
मनःपर्यय ज्ञानी रचना	७ प्रमत्त आदि	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	१ मनःपर्यय	४ सा१ छे१ सू१ य१	३ च १ अच १ अव१	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	३ अ च १ अ १ स १	६ ५	७ अ६	४	४	२ ती १ च १	१ त्र	३ औ मि१ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ च	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा २ द १
चक्षुदर्शनी सासादनादि क्षीणकषाय पर्यंत गुणवत् दर्शन १	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ चक्षु	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अचक्षुदर्शनी रचना	१२ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१५	३	४	७ केवल बिना	७	१ अचक्षु	द्र ६ भा६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द १
अचक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ वै १ आ१	३	४	७ केवल बिना	७	१ अचक्षु	द्र६ भा ६	२	६	२	१ आ	८ ज्ञा ७ द १
अचक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि १ प्र १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औ मि १ वैमि१ आमि १का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	१ अचक्षु	द्र२ का१ शु १ भा ६	२	५ मिश्र बिना	२	२	६ ज्ञा५ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा ३ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा ३ द १

अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७७ ६५ ४३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र२ का१शु १भा६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा२ द १
अचक्षुदर्शनी सासादनादि क्षीणकषाय पर्यंतयथासंभव गुणवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ अच	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	यथा संभव
अवधिदर्शनी रचना	९ असंयतादि	२ प अ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा४ द१
अवधिदर्शनी पर्याप्त रचना	९ असंयतादि	१ प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	५ ज्ञा४ द१
अवधिदर्शनी अपर्याप्त रचना	२ असंय१ प्र१	१ अ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ का१ आमि १	२ पुं१ न१	४	३ म१ श्रु१ अ१	३ अ१ सा१ छे१	१ अवधि	द्र २ का१ शु १ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
अवधिज्ञानी असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत अवधि ज्ञानवत्	अवधिज्ञानवत्	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	४ ज्ञान मत्यादि	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	यथासंभव अवधि ज्ञानवत्
केवलदर्शनी रचना केवलज्ञानीवत्	केवल ज्ञानवत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्

लेश्यामार्गणाविषैं गुणस्थानवत् तहां कृष्णलेश्या रचना	४ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८।६ ७।५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक बिना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३
कृष्णलेश्या पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कृष्ण	२	६	२	१ आ	९ ज्ञा६ द३
कृष्णलेश्या अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अ	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ का१ शु१ भा१ कृष्ण	२	३ मि१ सा१ वे१	२	२	८ ज्ञा५ द३
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कृष्णलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

कृष्णलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्य सासादन अपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कृष्णलेश्य सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्यअसंयत रचना	१ असं	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै१ का१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयत पर्याप्तरचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ मनुष्यपं मादिपृ थ्वी के अपे	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु १ भा १ कृष्ण	१ भ	१ वेद कापेक्ष मादि पृ० के अपे	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
नीललेश्य रचना कृष्ण लेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	द्र १ कृ० वत् भा १ नील	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्

कपोतलेश्या रचना	४ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	२	९ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्या पर्याप्त रचना	४ आदि के	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देवगति [illegible] भवनत्रिक के भी [illegible] पीत	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	१ आ	९ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्या अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ अवि १	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा १ कपोत	२	४ मि १ सा १ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
कपोतलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २

कपोतलेश्या सासादनपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ सा ३ अ २
कपोतलेश्या सासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ सा २ अ २
कपोतलेश्या सम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ सा ३ अ २
कपोतलेश्या असंयतरचना	१ असं	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ सा ३ अ ३
कपोतलेश्या असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ सा ३ अ ३
कपोतलेश्या असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ पु १ न १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा १ कपोत	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ सा ३ अ ३
तेजोलेश्या रचना	७ आदि के	३ सं प १ सं अ १ अप १	६।६ ५	१०।७ [illegible]	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ आदि के सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेजो १	२	६	२ सं १ अ १	२	१० सा ७ अ ३

तेजोलेश्या पर्याप्त रचना	७ अप्रदिकै	२ सं प १ अप १	६ ५	१० ६	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल बिना	५ अ १ सा १ छे १ प १ दे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	२	६	२ सं १ अ १	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
तेजोलेश्या अपर्याप्त रचना।	४ मि १ सा १ प्रमा १ प १	१ संधी	६ अ	७ अ	४	२ मनु १ देव १	१ पं	१ त्र	५ औ मि १ वैमि १ आमि १ का १	२ स्त्री १ पु १	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	२ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा १ तेज १	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	३ सं प १ सं अ १ अप १	६ ६ ५	१० ७ ६	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ तेज	२	१ मि	२ सं १ अ १	२	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ स प १ अप १	६ ५	१० ६	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ तेज	२	१ मि	२ सं १ अ १	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री १ पु १	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ तेज	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
तेजोलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

तेजोलेश्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	३ अ	७ अ	४	२ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा १ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
तेजोलेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्यायां असंयतरचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप१	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ कार्म१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२ आ	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आहा२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३

तेजोलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६ प	१० प	३ आहारकविना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
पद्मलेश्य रचना	७ आदि के	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा ७ द ३
पद्मलेश्य पर्याप्त रचना	७ आदि के	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
पद्मलेश्य अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	१ संअ	६ अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा १ पद्म	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २

पद्मलेश्यासासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११म४ व४औ १वै१ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्यसासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र२ का१ शु १भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
पद्मलेश्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मि	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१०म४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
पद्मलेश्य असंयत रचना	१ असं	२ सं प १ सं अ१	६।६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ आहारक द्विक विना	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
पद्मलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च १ अच१ अव १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पद्मलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ१	६। अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १का १	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र २ क १शु १ भा१ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ सा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

पद्मलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ सं प	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	६ क्षा ३ द ३
पद्मलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ आ २ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ क्षा ४ द ३
पद्मलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ क्षा ४ द ३
शुक्ललेश्य रचना	१३ आदिके	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७ ४।२	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	२	१२
शुक्ललेश्य पर्याप्त रचना	१३ आदिके	१ सं प	६	१०। ४।	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	१ आ	१२
शुक्ललेश्य अपर्याप्त रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ स १	१ सं अ	६	७ २	४	३ म २ दे १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ क १ शु १ भा १ शुक्ल	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	१० क्षा ६ द ४
शुक्ललेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	२	५ आ३ द२

शुक्ललेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्ललेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु १	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ शुक्ल १	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
शुक्ललेश्य सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६ ६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
शुक्ललेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्ललेश्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
शुक्ललेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	अ १	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्ललेश्य असंयत रचना	१ अवि	२ सं प १ सं अ १	६ ६	१० ७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ औ १ क्षे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

शुक्ललेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ अस	२ सं प १	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
शुक्ललेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ अस	२ सं अ	६ अ	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ का१ शु१ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
शुक्ललेश्य देश संयतरचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
शुक्ललेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
शुक्ललेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
शुक्ललेश्यानु- [illegible]करचनैसं नामोफर्मनयां अशेषअयो गोविन्द्र० गु.	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
भव्यमार्गणा विषै भव्य रचना गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

अभव्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
अभव्य पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४	१०।९।८।७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
अभव्य अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा६	१ अभव्य	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
भव्याभव्य रहितसिद्ध रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
सम्यक्त्व मार्गणाविषै सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंय आदि	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
सामान्य सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंय आदि	१ सं प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	९ ज्ञा५ द४
सामान्य सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं१ प्र१ सयोगी१	१ संअ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	२ न१ पु१	४	४ म१ श्रु१ अ१ के१	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र २ का१ शु१ भा६ का१ शु१	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा४ द४

सामान्यसम्यग्दृष्टिमसंयतादिअयोगीपर्यन्तगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
क्षायिक सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ प १ अ १	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	९ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	९ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं १ प्रम १ सयोग १	१ अ	६ अ	७ अ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वै १ आमि १ का १	२ न १ पु	४	४ म १ श्रु १ अ १ के १	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ का १ शु १ भा ४ का० शु भा ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	८ ज्ञा ४ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक बिना	३	४	३ म १ श्रु १ अव १	१ अ	३ च १ अच १ अव १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं०	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पु १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ४ का १ शु भा ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतरचना	१ देश	१ सं प	६ प	१० प	४	१ मनुष्य	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
क्षायिक सम्यग्दृष्टिप्रमत्तादिसिद्धपर्यंत गुणस्थानवत् रचना	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ क्षायिक	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
वेदक सम्यग्दृष्टि रचना	४ असंयतादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	७ ज्ञा४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टिपर्याप्त रचना	४ असंयतादि	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै१ आ१	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तरचना	२ असं १ प्रम१	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि१ का १	२ म १ पु १	४	३ मति आदि	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टिअसंयत रचना	१ असं	२ सं अ१ सं प१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक रहित	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पु १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि रचना	८ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	४ मति आदि	३ परिहार विशुद्धि बिना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उपशम	१ सं	२	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	८ असंयतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	४ मति आदि	६ परिहार विशुद्धि बिना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु	४	३ मति आदि	१ असंयम	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ सं प १ सं अ १	६।६ स	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ १ वै २ औ १	३	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ आ ३ द ३
उपशमसम्यग्दृष्टिअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ आ ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ आ ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि देश संयतरचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ आ ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
उपशमसम्यग्दृष्टिअपूर्वकरणोपशांतकषाय पर्यंतगुणवत्, मिथ्यासासादनमिश्रसम्यक्‌ अकथितसास्त्र[illegible]	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ सं भवती	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

संज्ञीमार्गणा विषैसंज्ञी रचना	१२ आदिके	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१० सा७ द३
संज्ञी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१वै१ आ१	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	१० सा७ द३
संज्ञी अपर्याप्त रचना	४ मि१सा१ अवि१प्र१	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ सा५ द३
संज्ञी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
संज्ञीमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञीमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१शु१ भा६	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६ ६	१० ७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

संज्ञीसासादनपर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा[illegible]	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
संज्ञीअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
संज्ञीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ पुं१ न१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१ शु१ भा६	१ भ	३ औ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
[illegible] संज्ञी[illegible] पर्याप्तगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

असंज्ञी रचना	१ मिथ्या	१२ संज्ञीपर्याप्त अपर्याप्त बिना	५।५ ४।४	९।७।८ ६।७।५ ६।४ ४।३	४	१ ति	५	६	४ अनुभय वच१ और का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असंज्ञी	२	४ ज्ञा २ द २
असंज्ञी पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ पर्याप्तसंज्ञीबिना पर्याप्त	५ ४	९।८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	२ अनुभय वच१ औ१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असंज्ञी	१ आ	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञी अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ संज्ञीअपर्याप्तबिना अपर्याप्त	५।४	७।६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१कर शु१भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
संज्ञीअसंज्ञी व्यपदेशरहित स्थानमिश्रयोगि सयोग च गु०वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
आहारमार्गणा मिथ्यादृष्टि सयोगि रचना	१३ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८ ६।७।५ ६।७।४ ३।४।२	४	४	५	६	१४ कार्माण बिना	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक पर्याप्त रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६ ४ ४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ सयो१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ आमि१	३	४	६ विभंग मनः० बिना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र १ कपोत भा ६	२	५ मिश्र बिना	२	१ आहा १	१० ज्ञा ६ द ४

आहारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६६ ५५ ४४	१०७९७ ८६७५ ६४४३	४	४	५	६	१३ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७७ ६५ ४३	४	४	५	६	२ औमि १ वैमि १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ क भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २
आहारक सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	२ औमि१ वैमि १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ कापोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

आहारक असंयत रचना	१ असं	२ सं अ१ संप१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व २ औ २ वै २	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
आहारक असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारक असंयत अपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ मि १ वैमि १	२ न १ पु १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ आ३ द ३
आहारक देशसंयत रचना	१ दे	१ सं प	६ प	१० प	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
आहारक प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
आहारक अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ ३	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
आहारक अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ सं प	६	१०	३ आहार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

आहारक अनिवृत्तिकरण प्रथमभाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
आहारक अनिवृत्तिकरणके द्वितीयादि विभागरचना गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
आहारक सूक्ष्मसांपराय रचना	१ सू	१ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ लोभ	४ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
आहारक उपशान्तकषाय रचना	१ उप	१ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
आहारक क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	१ सं प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मति आदि	१ य	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
आहारक सयोगकेवली रचना इसका [illegible]	१ सयो	२ प१ अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	६ म२ व२ औ२	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आ	२ ज्ञा१ द१
अनाहारक रचना	५ मि१ सा१ अवि१ स२ अयो१	८ अपर्याप्त ७ अयोगोपयोगि१	६ ५।१	७।७।६।५ ४।३।२।१	४	४	५	६	१ का	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	२ अ१ य१	४	द्र१ शुक्ल भा६	२	५ मिश्र विना	२	१ अनाहारक	१० ज्ञा६ द४

अनाहारकमिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	७ अप चौत	६ ५ ४	७।७ दो१ भा३	४	४	५	६	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	२	१ मि	२	२ अनाहारक	४ ज्ञा २ द २
अनाहारक सासादन रचना	१ सा	१ संज्ञ	६ अ	७ अ	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा२ द २
अनाहार असंयत रचना	१ असं	१ संज्ञ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	२ न१ पु१	४	३ मति१ श्रुति१ अवधि१	१ असं	३ च१ अचक्षु१ अव१	द्र१ शुक्ल भाद	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द ३
आहारकमिश्रकाद्विग्मस औदारिकमिश्रानाहार ही तात्पर्य	१ प्र	१ अ	६ अ	७ अ	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहारक मिश्र	१ पु	४	३ म१ श्रु१ अ१	२ सा१ छे१	३ च१ अच१ अव१	द्र१ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
अनाहारक सयोगकेवली रचना	१ सयोगी	१ अ	६ अ	२ काय १ आयु १	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ शुक्ल भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द१
अनाहारकअयोगकेवली रचना	१ अयोगी	१ पर्याप्त	६ प	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द१
अनाहारक सिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द१

मणपज्जयपरिहारो, पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारो ।
एदेसु एक्कपगदे, णत्थि त्ति असेसयं जाणे ॥७२९॥

मनःपर्ययपरिहारौ, प्रथमोपसम्यक्त्वं द्वावाहारौ ।
एतेषु एकप्रकृते, नास्तीति अशेषकं जानीहि ॥७२९॥

टीका – मनःपर्यय ज्ञान अर परिहारविशुद्धि संयम अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर आहारकद्विक योग, इनि च्यारों विषैं एक कोई होत संतैं अवशेष तीन न होंइ, असा नियम है ।

बिदियुवसमसम्मत्तं, सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु ।
सग-सग-लेस्सा-मरिदे देवअपज्जत्तगेव हवे ॥७३०॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं, श्रेणितोऽवतीर्णेऽविरतादिषु ।
स्वकस्वकलेश्यामृते देवापर्याप्तक एव भवेत् ॥७३०॥

टीका – उपशम श्रेणी तैं संक्लेश परिणामनि के वशतैं नीचैं असंयतादि गुणस्थाननि विषैं उतरे । ते असंयतादिक अपनी अपनी लेश्या करि जो मरैं, तो अपर्याप्त असंयत देव होंइ नियमकरि; जातैं देवायु का जाकैं बंध भया होइ, तींहि बिना अन्य जीव का उपशम श्रेणी विषैं मरण नाहीं । अन्य आयु जाकैं बंध्या होइ, ताकैं देशसंयम, सकल संयम भी न होइ । तातैं सो जीव अपर्याप्त असंयत देव ही है । तिनि विषैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व संभवै है; तातैं वैमानिक अपर्याप्त देव विषैं उपशम सम्यक्त्व कह्या है ।

सिद्धाणं सिद्धगई, केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं, उवजोगाणक्कमपउत्ती ॥७३१॥

सिद्धानां सिद्धगतिः, केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारमुपयोगानामक्रमप्रवृत्तिः ॥७३१॥

टीका – सिद्ध परमेष्ठी, तिनकै सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, अनाहार अर ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग की अनुक्रमता करि रहित प्रवृत्ति ए प्ररूपणा पाइए है ।

गुणजीव ठाणरहिया, सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा, सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥७३२॥

गुणजीवस्थानरहिताः, संज्ञापर्याप्तिप्राणपरिहीनाः ।
शेषनवमार्गणोनाः, सिद्धाः शुद्धाः सदा भवंति ॥७३२॥

टीका – चौदह गुणस्थान वा चौदह जीवसमासनि करि रहित हैं । बहुरि च्यारि संज्ञा, छह पर्याप्ति, दश प्राणनि करि रहित हैं । बहुरि सिद्ध गति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, अनाहार इनि बिना अवशेष नव मार्गणानि करि रहित हैं । असें सिद्ध परमेष्ठी द्रव्यकर्म भावकर्म के अभाव तें सदा काल शुद्ध हैं ।

णिक्खेवे एयत्थे, णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइ वीसं भेयं, सो जाणइ अप्पसब्भावं ॥७३३॥

निक्षेपे एकार्थे, नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगयोः ।
मार्गयति विंशं भेदं, स जानाति आत्मसद्भावम् ॥७३३॥

टीका – नाम, स्थापना, द्रव्य, भावरूप च्यारि निक्षेप बहुरि प्राणी, भूत, जीव, सत्व इनि च्यारयोंनि का एक अर्थ है, सो एकार्थ । बहुरि द्रव्यार्थिक, पर्यार्थिक नय; बहुरि मतिज्ञानादिरूप प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण, बहुरि जीवै है, जीवैगा, जीया असा जीव शब्द का निरुक्ति । बहुरि

"किं कस्स केण कत्थवि केवचिरं कतिविहा य भावा"

कहा ? किसकैं ? किसकरि ? कहां ? किस काल ? कै प्रकार भाव है । असें छह प्रश्न होतें निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान इन छहों तें साधना, सो यह नियोग असें निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति, नियोगनि विषें जो भव्य जीव गुणस्थानादिक बीस प्ररूपणा रूप भेदनि कौं जाने है, सो भव्य जीव आत्मा के सत-समीचीन भाव कौं जानें है ।

अज्जज्जसेण-गुणगणसमूह-संधारि अजियसेणगुरू ।
भुवणगुरू जस्स गुरू, सो रायो गोम्मटो जयदु ॥७३४॥

आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः ।
भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ।।७३४।।

टीका – आर्य जो आर्यसेन नामा आचार्य तिनके गुण अर तिनका गण जो संघ, ताका धरनहारा, असा जगत का गुरु, जो अजितसेन नामा गुरु, सो जिसका गुरु है असा गोम्मट जो चामुंडराय राजा, सो जयवंत प्रवर्तौ ।

इहां प्रश्न – जो जयवंत प्रवर्तौ असा शब्द तौ जिनदेवादिक पूज्य कौं कहना संभवै, इहां अपने सेवक कौं आचार्यनै असा कैसें कह्या ?

ताका समाधान – जैसें इहां प्रवृत्ति विषै याचक आदि हीन पुरुषकौं सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै, सो इच्छापूर्वक नम्रता लीएं वचन हैं । तैसें जिन देवादिक कौं जयवंत प्रवर्तौ, असा शब्द कहना जानना । बहुरि जैसें पिता आदि पूज्य पुरुष पुत्रादिक कौं सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै; सो आशीर्वाद रूप वचन हैं । तैसें इहां राजा कौं जयवंत प्रवर्तौ, असा कहना युक्त जानना ।

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीका विषै जीवकाण्ड विषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै आलाप प्ररूपणा नामा बावीसमां अधिकार संपूर्ण भया ।

श्रित्वा कार्णाटिकीं वृत्तिं, वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः ।
कृतेयमन्यथा किञ्चिद्, विशोध्यं तद्बहुश्रुतैः ।।१।।

अथ संस्कृत टीकाकार के वचन–

दोहा– अभयचन्द्र श्रीमान के हेतु करी जो टीक ।
सोधी बहु श्रुतधर सुधी, सो रचना करि ठीक ।।१।।

चौपाई–केशव वर्णी भव्य विचार । कर्णाटक टीका अनुसार ।।
संस्कृत टीका कीनी एहु । जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ।।१।।

अथ भाषा टीकाकार के वचन–

दोहा– जीवकांड कौं जानिकैं, ज्ञानकांडमय होइ ।
निज स्वरूप में रमि रहै, शिवपद पावै सोइ ।।

सोरठा– मंगल श्री अरहंत सिद्ध साधु जिन धर्म फुनि ।
मंगल च्यारि महंत एई हैं उत्तम शरण ।।

सवैया

अरथ के लोभी ह्वै कै करिकै सहास अति, अगम अपार ग्रंथ पारावार में परै ।
थाह लौं न आयो तहां फेरि कौन पायो पार, तातैं सूधे मारग ह्वै आधे पार उतरै ।।

इहां परजंत जीव कांडको है मरजाद, याके अर्थ जानें निज काज सब सुधरै ।
निजमति अनुसारि अर्थ गहि टोडर हू, भाषा बनवाई यातें अर्थ गहौ सगरे ।।

इति जीवकांड सम्पूर्णम् ।।

अकारादि क्रम से गाथासूची

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
अ		
अइभीमदंसणेण	१३६	२८२
अंगुलअसंख	३२६	४५७
अंगुलअसंख	३१०	५३४
अंगुलअसंख	३११	५३५
अंगुलअसंख	३९९	५३८
अंगुलअसंख	४०१	५३९
अंगुलअसंख	४०४	५४१
अंगुलअसंख	४०६	५४४
अंगुलअसंख	६७०	७२८
अंगुलमावलियाए	४०४	५४१
अंगोवंगुदया	२२९	३६२
अज्जज्जसेणगुण	७३४	८५६
अज्जवमलेच्छ	८०	१८८
अजजीवेसु य रूवी	५६४	६६०
अट्ठत्तीसद्धलवा	५७५	६६७
अट्ठविहकम्म	६८	१७६
अट्ठण्हं कम्माणं	४५३	५६६
अट्ठारसछत्तीसं	३५८	५०४
अट्ठेव सयसहस्सा	६२९	७०६
अडकोडिएय	३५१	४९१
अण्णाणतियं होदि	३०१	४३८
अण्णोण्णुवयारेण	६०६	६९३
अणुलोहं वेदंतो	४७४	५७६
अणुसंखासंखे	६०	१६७
अत्थक्खरं च	३४८	४८८
अत्थादो अत्थंतर	३१५	४५०
अत्थि अणंता जीवा	१९७	३३६
अंतरभावप्पब	४९२	५८६
अंतरमवरुक्कस्सं	५५३	६४०
अंतोमुहुत्तकालं	५०	१५३
अंतोमुहुत्तमेत्तो	५३	१५५
अंतोमुहुत्तमेत्तो	४९	१३५
अंतोमुहुत्तमेत्तं	२५३	३७७
अंतोमुहुत्तमेत्ता	२६२	३९९
अट्ठतेरस बारस	११५	२३३
अपदिट्ठिदपत्तेयं	९८	२०३
अप्पपरोभय	२८९	४२०
अयदोत्तिछ	५३२	६०८
अयदोत्ति हु अवि	६८९	७३७
अवरद्दव्वादुवरिम	३८४	५३०
अवरट्ठे अवरुव	१०६	२१६
अवरपरित्ता	१०९	२१८
अवरमपुण्णं	९९	२०४
अवरमहोदि	३८७	५३२
अवरापज्जाय	५७३	६६६
अवरुवरि इगि	१०२	२१२
अवरुवरिम्मि	३२३	४५५
अवरे वरसंख	१०८	२१७
अवरोग्गाहण	१०३	२१४
अवरोग्गाहमाणं	३८०	६४६
अवरोग्गाहमाण	१०३	५२८
अवरो जुत्ताणंतो	५६०	६४६
अवरोहिखेत्त	३७९	५२७
अवरोहिखेत्तमज्झे	३८२	५२९
अवरं तु ओहि	३८१	५२९
अवरं दव्वमुदा	४५१	५६५
अवरंसमुदा होंति	५२०	६०३
अवरंसमुदा सो	५२२	६०४
अवरं होदि अणंतं	३०७	५३२
अवहीयदित्ति	३७०	५२१
अव्वाघादी अंतो	२३८	३६८
असहायणाण	६४	१६९

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
असुराणमणा	४२७	५५५
असुराणमण	४२८	५५६
असुहाणं वर	५०१	५९०
अहमिदा अह देवा		
अहिमुहणिय	३०६	४४१
अहियारो पाहुडयं	३४१	४८५
आ		
आउड्डरासि	२०४	३४१
आगासं वज्जित्ता	५८३	६७७
आणादपाणद	४३१	५५७
आदिमछट्ठाण	३२७	४६९
आदिमसम्मत्त	१९	९५
आदेसे	४	८३
आभीयमासुर	३०४	४४०
आमंतणि आण	२२५	३५८
आयारे सुद्दयडे	३५६	४९९
आवलिअसंखसमया	५७४	६६७
आवलि असंखभा	३८३	५३०
आवलिअसंख	२१३	३४७
आवलिअसंख	२१२	३४७
आवलिअसंख	४००	५३९
आवलिअसंख	४१७	५४८
आवलिअसंख	४२२	५५३
आवलिअसंख	४५८	५६८
आवलिअपुधत्त	४०५	५४२
आवासया हु	२५१	३७६
आसवसंवर	६४४	७१६
आहरदि अणेण	३३९	३६८
आहरदि सरीराणं	६६५	७२६
आहारसरीर	११९	२६८
आहारदंसणेण	१३५	२८१
आहारस्सुदयेण	२३५	३६६
आहारयमुत्तत्थं	२४०	३६८
आहारकायजो	२७०	४०५
आहारावग्गणादो	६०७	६९५
आहारमरणं	६६९	७२७
आहारो पज्जत्ते	६८३	७३५
आहारकायजो	२७०	४०५
आहारावग्गणादो	६०७	६९५
आहारमरणं	३६९	७२७
आहारो पज्जत्ते	६८३	७३५
इ		
इगिदुगपंचे	३५९	५०४
इगिपुरिसे बत्तीसं	२७८	४११
इगिवण्णं इगि	७९	१८८
इगिवितिचपण	४३	११७
इगिवितिचखच	४४	१२०
इगवीसमोह	४७	१३३
इच्छिदरासिच्छे	४२०	५५०
इंदियकाये	५	८३
इंदियकायाऊणि	१३२	२७९
इंदियणोइंदिय	४४६	५६४
इंदियमणोहिणा	६७५	७३१
इगिदुगपंचे	३५९	५०४
इगिपुरिसे बत्तीसं	२७८	४११
इगिवण्णं इगि	७९	१८८
इगिवितिचपण	४३	११७
इगिवितिचखच	४४	१२०
इगवीसमोह	४७	१३३
इच्छिदरासिच्छे	४२०	५५०
इंदियकाये	५	८३
इंदियकायाऊणि	१३२	२७९
इंदियणोइंदिय	४४६	५६४
इंदियमणोहिणा	६७५	७३१
इह आहि वाहिया	१३४	२८१
ई		
ईहणकरणेण	३०९	४४५

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
ईह आइ वाहिया	१३४	२८१
ईहणकरणेण	३०९	४४५
उ		
उक्कस्सट्ठिदि	२५०	३७६
उक्कस्ससंकमेत्तं	३३१	४७३
उत्तम अंगम्हि	२३७	३६७
उदयावण्णसरी	६६४	७२६
उदये दु अपुण्ण	१२२	२७१
उदये दु वणप्फ	१८५	३२६
उप्पायपुव्वगाणिय	३४५	४८७
उवजोगो वण्ण	५६५	६६२
उववादगब्भजेसु	९२	१९७
उववादमारणंतिय	१९९	३३८
उववादा सुरणिरया	९०	१९६
उववादे अच्चित्तं	८५	१९४
उववादे सीदुसणं	८६	१९४
उवयरण	१३८	२८३
उवसम सुहमाहारे	१४३	२८५
उवसंतेखीणे	४७५	५७७
उवसंतखीण	१०	८६
उववादे पढम	५४९	६३८
उवहीणं तेत्तीसं	५५२	६४०
उववंकं चउरंकं	३२५	४५६
उक्कस्सट्ठिदि	२५०	३७६
उक्कस्ससंकमेत्तं	३३१	४७३
उत्तम अंगम्हि	२३७	३६७
उदयावण्णसरी	६६४	७२६
उदये दु अपुण्ण	१२२	२७१
उदये दु वणप्फ	१८५	३२६
उप्पायपुव्वगाणिय	३४५	४८७
उवजोगो वण्ण	५६५	६६२
उववादगब्भजेसु	९२	१९७
उववादमारणंतिय	१९९	३३८

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
उववादा सुरणिरया	९०	१९६
उववादे अच्चित्तं	८५	१९४
उववादे सीदुसणं	८६	१९४
उवयरण	१३८	२८३
उवसम सुहमाहारे	१४३	२८३
उवसंतेखीणे	४७५	५७७
उवसंतखीण	१०	८६
उववादे पढम	५४९	६३८
उवहीणं तेत्तीसं	५५२	६४०
उववंकं चउरंकं	३२५	४५६
ए		
एइंदियपहुदीणं	४८८	५८४
एइंदियस्सफुसणं	१६७	३१३
एकट्ठचचय	३५४	४९३
एकम्हि काल	५६	१५९
एक्कं खलु अट्ठंकं	३२९	४७१
एक्कचउक्कं चउ	३१४	४४९
एक्कदरमदि	३३८	४८३
एक्कं समयपबद्धं	२५४	३८८
एक्कारस जीवाणं	७२३	७५८
एयगुणं तु जं	६१०	६९६
एदम्हि गुणट्ठाणे	५१	१५३
एदम्हि विभज्जंते	३९८	५३८
एदे भावा णियमा	१२	८९
एयक्खरादु	३३५	४८१
एयदवियम्मि	५८२	६७०
एयपदादो उव	३३७	४८३
एया य कोडिकोडी	११७	२३४
एयंत बुद्ध	१६	९२
एवं उवरि विणेओ	१११	२१९
एवं गुणसंजुत्त	६११	६९७
एवं तु समुग्घादे	५४७	६?८

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
ओ		
ओगाहु	२४७	३७३
ओघे आदे से	७२७	७६०
ओघासंकद	६३४	७०६
ओघे चोद्दसठाणे	७०७	७५१
ओघे मिच्छदुगेवि	७०८	७५२
ओरालिय उत्त	२३१	३६४
ओरालं पज्जत्ते	६८०	७३४
ओरालियवर	२५६	३९०
ओरालिय वे	२४४	३७१
ओरालियमिस्सं	६८४	७३५
ओहिरिहिदा	४६२	५७०
क		
कदकफलजुद	६१	१६७
कंदस्स व मूलस्स	१९०	३२९
कप्पवहार	३६८	५१६
कप्पसुराणं	४३३	५५८
कम्मइयकाय	६७१	७२८
कम्मइयवग्गणं	४१०	५४५
कम्मेव य कम्मभवं	२४१	३६९
कम्मोरालिय	२६४	४०१
कमवण्णुत्तर	३४९	४८८
काऊणल किण्हु	५०२	५९०
काऊणीलं किण्हा	५२६	
काऊ काऊ काऊ	५२९	६०७
कालविसेसेण	४०८	५४३
काले चउण्णा	४१२	५४६
कालो छल्लेस्सा	५५१	६३९
कालोवि य ववएसो	५८०	६६९
कालं अस्सिय	५७१	६६५
किण्हचदक्काणं	५२७	६०५
किण्हलियाणं	५२८	६०६
किण्हवरंसेण मुदा	५२४	६०४
किण्हं सिलासं	२९२	४२१
किण्हा णीला काऊ	४९३	५८६
किण्हादिरासि	५३७	६१०
किण्हादिलेस्सा	५५६	६४३
किमिरायचक्क	२८७	४१९
कुम्मुण्णय जो	८२	१९१
केवलणाणादि	६३	१६९
केवलणाणाणं	५३९	६१२
कोडिसय	११४	२३३
कोहादिकसा	२९०	४२१
ख		
खंधं सयल	६०४	६९१
खंधा असंखलोगा	१९४	३३२
खयउवसमिय	६५१	७१९
खवगे य खीणमोहे	६७	१७०
खीणे दंसणमोहे	६४६	७१७
खेत्तादो असुह	५३८	६११
ग		
गइइंदियेसु	१४२	२८५
गइउदयज	१४६	२९७
गच्छसमा तक्का	४१८	५४९
गलनमपनगं	३६३	५०७
गदि ठाणोगह किरिया	५६६	६६२
गदिठाणोग्गह	६०५	६९१
गब्भजजीवाणं	८७	१९५
गब्भणपुइत्थि	२८०	४१२
गाउवपुधल	४५५	५६७
गुणजीवा पज्जत्ती	२	८१
गुणजीवा पज्जत्तीपाणा	६७७	७३३
गुणजीवठाणरहिया	७५६	७३२
गुणजीवपज्जत्ती पाणासण्णा	७२५	७५९
गुणपच्चइगो	३७२	५२३
गूढसिरसंधि	१८८	३२८
गोयमथेरं	७०६	७५१
घ		
घणअंगुलपढम	१६१	३०७
च		
चउगइसरूव	३३९	४८४
चउ पण चोद्दस	६७८	७३३

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
चउरक्खथावर	६६१	७३८
चउसट्ठिपदं	३५३	२४९
चक्खूण जं पया	४८४	२५८
चक्खूसोदं	१७१	३१६
चंडो ण मुचइ	५०९	५९५
चत्तारिविसे	६५३	७२०
चदुगदिभव्वो	६५२	७२०
चदुगदिमदि	४६१	५६९
चंदरविजंबु	३६१	५०६
चरमधरासण	६३८	७१३
चरिमुव्वंकेण	३३३	४७९
चागीभद्दो चोक्खो	५१६	५९७
चिंतियमचिंतियं	४३८	५६०
चिंतियमचिंतियं	४४९	५६५
चोद्दससमगण	३४०	४८४
छ		
छट्ठाणाणं आदी	३२८	४७०
छट्ठात्ति पढम	७०२	७४२
छद्दव्वावट्ठाणं	५८१	६७०
छद्दव्वेसुयणामं	५६२	६५८
छप्पयणील	४९५	५८७
छप्पचाधिय	११६	२३४
छप्पंचणवविहाणं	५६१	३५८
छस्सय जोयण	१५६	३०४
छस्सयपण्णासाइं	३६६	५०९
छादयदि सयं	२७४	४०८
छेत्तूणय परि	४७१	५७४
ज		
जणवदसम्मदि	२२२	३५६
जत्तस्स पहं	५६७	६६३
जत्थेक्कमरइ	१९३	३३१
जम्मं खलु सम्मु	८३	१९२
जम्बूदीवं भरहो	१९५	३३३
जम्हा उवरिमभावा	४८	१३४
जं सामण्णं	४८२	५८१
ज ह कंचणमम	२०३	३४१
जहखादसंजमो	४६८	५७३
जहपुण्णापुण्णाइं	११८	२६८
जह भारवहो	२०२	३४०
जाइ जरामरण	१५२	३०१
जाई अविणाभावी	१८१	३२२
जाणइ कज्जाकज्जं	५१५	५९७
जाणइ तिकाल	२९९	४३६
जाहिव जासु व	१४१	२८४
जीवदुगं उत्तट्ठं	६२२	७०२
जीवा अणंतसंखा	५८८	३७३
जीवा चोद्दसभेयं	४७८	५७८
जीवाजीवं दव्वं	५६३	६६०
जीवाणं च य रासी	३२४	४५६
जीवादोणंत	२४९	३७५
जीवादोणंतगु	५९९	६८५
जीविदरे कम्म	६४३	७१५
जेट्ठावरबहु	६३२	७०८
जेसिं ण संति	२४३	३७०
जेहिं अणेया	७०	१८०
जेहिं दु	८	८५
जोइसियवाण	२७७	४१०
जोइसियणंताणो	४३७	५६०
जोइसियादो अहिया	५४०	६१२
जोगपउत्ती	४९०	५८५
जोगं पडि जोगि	७११	७५३
जोगे चउरक्खा	४८७	५८३
जो णेव सच्चमोसो	२२१	३५५
जो तसवहा उ	३१	१०४
ठ		
ठाणेहिंवि जोणीहिं	७४	१८४
ण		
णट्ठकसाये	५३३	६०८
णट्ठपमाये पढमा	१३९	२८०
णट्ठासेसपमादो	४६	१३३
ण य कुणइ पक्खवायं	५१७	५९७
ण य जे भव्वा भव्वा	५५९	६४६
ण य पत्तियइ	५१२	५९६

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
ण य परिणमदि	५७०	६६५
ण य मिच्छत्त	६५४	७२०
ण य सव्वमोस	२१८	३५४
णरतिरियाणं	५००	६०७
णरलिरिय	२९८	४३३
परमंति जदो	१४७	२९८
णरलद्धिअपज्जेते	७१६	७५५
णरलोएत्तिय	४५६	५६७
णवमी अणक्खर	२२६	३५९
णव य पदत्था	६२१	७०३
णवरि य दुस	२५५	३८९
णवरि विसेसं	३१९	४५३
णवरि समुग्घा	५५०	६३९
णवरि य [illegible]	६[illegible]१	[illegible]
णवि इंदिय	१७४	३१८
णाणं पंचविहं	६७३	७३०
णाणुवजोगजुदाणं	६७६	७३२
णारयतिरिक्ख	२८८	४४९
णिक्खिवदु विदिय	३८	१०८
णिक्खेवे एयत्थे	७३३	८५६
णिच्चिदरधादु	८९	१९६
णिद्दापयले	५५	१५८
णिद्दाबंचण	५११	५६५
णिद्दे सवणधवरि	४९१	५८६
णिद्धत्तं लुक्खत्तं	६०९	६९६
णिद्धणिद्धा ण	६१२	६९७
णिद्धस्स णिद्धेण	६१५	६९८
णिद्धिदरोली	६१३	६९८
णिद्धिदरवरगुणा णू	६१८	७०१
णिद्धिदरगुणा	६१९	७०१
णिद्धिदरे सम	६१६	६९९
णिम्मूलखंध	५०८	५९४
णियखेत्ते केवलि	२३६	३६७
णिरया किण्हा	४९६	५८७
णिस्सेसखीण	६२	१६८
णेरइया खलु	९३	१९७

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
णोनित्थी गेम	२७५	४०९
णोइंदियआवरण	६६०	७२४
णोइंदियत्ति	४४४	५६३
णोइंदियेसु वि	२९	१०३
णो कम्मुरालसं	३७७	५२६
त		
तज्जोगो सामण्णं	२६०	४००
तत्तो उवरिं	१४	९१
तत्तो एगार	१६२	३०८
तत्तोकम्मइय	३९७	५३८
तत्तो ताणुत्ताणं	६३९	७१३
तत्तो लांतव	४३६	५५९
तत्तो संखेज्ज	६४०	७१३
तद्देहमंगुलस्स	१८४	३२४
तदियक्खो अंत	४०	११२
तदियकसायु	४६९	५७४
तल्लीनमधुग	११८	२०४
तव्वड्ढीए चरिमो	१०५	२१५
तव्विदियं कप्पाणं	४५४	५६७
तसचदुजुगाणं	७१	१८१
तसजीवाणं	७२२	७५७
तसरासिपुढवि	२०६	३४३
तस्समयबद्ध	२४८	३७४
तस्सुवरि इगि	१०४	२१४
तसहीणो संसारी	१७६	३१९
तहि सव्वे सुद्ध	२६७	४०३
तहिं सेसदेव	२६९	४०४
तं सुद्धसलागा	२६८	४०४
ताणं समयपबद्धा	२४६	३७२
तारिसपरिणाम	५४	१५७
तिगुणा सत्तगुणा	१६३	३०८
तिणकारिसिट्ठ	२७६	४०९
तिण्णिसयजोय	१६०	३०७
तिण्णिसया छत्तीसा	१२३	२७१
तिण्णिसयसट्ठि	१७०	३१५
तिण्हं दोण्हं दोण्हं	५३४	६०८
तिविपच पुण्ण	१८०	३२१

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
तिमकालविसय	४४१	५६२
तिरचिक्खय	६२५	७०४
तिरियगदीए	७००	७४१
तिरियचउक्कं	७१३	७५३
तिरिये अवरं	४२५	५५५
तिरियंति कुडिल	१४८	२९९
तिव्वतमा तिव्व	५००	५८९
तिसयं भणंति	६२६	७०४
तिसु तेरं दस	७०४	७४५
तीसं वासो जम्मे	४७३	५७५
तेउतियाणं एवं	५५४	६४१
तेउदु असंखं	५४२	६१३
तेउस्सय सट्ठा	४५६	६२८
तेऊ तेऊ तेऊ	५३५	६०८
तेउ पउमे सुक्के	५०३	५९०
तेया सरीरजेट्ठं	२५८	३९२
तेत्तीसवेंजणाई	३५२	४९१
तेरसकोडी देसे	६४२	७१५
तेरिच्छियलद्धि	७१४	७५४
ते विविसेसेण	२१४	३४८
तेसिं च समासे	३१८	४५२
तो वासय अज्झय	३५७	५०२
थ		
थावरकायप्पहुदी—संढो	६८५	७३६
थावरकायप्पहुदी—अणिय	६८६	७३६
थावरकायप्पहुदी—मदि	६८७	७३६
थावरकायप्पहुदी—अवि	६९२	७३८
थावरकायप्प हुदी, अजोगि	६९४	७३९
थावरकायप्पहुदी, सजोगि	६९८	७४१
थावरसंख	१७५	३१८
थोवा तसु	२८१	४१२
दव्वेद खेत्तं कालं	३७६	५२६
दव्वं खेत्तं कालं	४५०	५६५
दव्वं छक्कमकाल	६२०	७०२
दस चोदसट्ठ	३४४	४८६
दस विहसच्चे	२२०	३५५
दस सण्णीणं	१३३	२८०
दंसणमोह	६४८	७१८
दंसणमोहुव	६४९	७१८
दंसणमोहुव	६५०	७१९
दंसणवयसामाइय	४७७	५७७
दहिगुडमिव वा	२२	६६
दिण्णच्छेदेणवहिद	४२१	५५१
दिण्णच्छेदेणवहिद	२१५	३५०
दिवसो पक्खो	५७६	६६८
दीव्वति जदो	१५१	३००
दुगतिगभवाहु	४५७	५६८
दुगवारपाहुडादो	३४२	४८५
दुविहंपि अप	७१०	७५२
देवाणं अवहारा	६३५	७१०
देवेहिं सादिरेया	२७९	४११
देसविरदे	१३	६०
देसावहिवर खय	३७४	५२६
देसावहिवर दव्वं	४१३	५५४
देसोहिअवर	३९४	५३७
देसोहिमज्झ	३९५	५३७
देसोहिस्स य	३७४	५२५
दोगुणसिहाणु	६१४	६९८
दोण्हं पंच य	७०५	७४९
दोत्तिगपभव	५१७	६००
देवेहिंसादिरेगो	६६३	७२५
ध		
धणुवीसडदस	१६८	३१३
धम्मागुणमग्गणा	१४०	२८४
धम्माधम्मादीणं	५६९	६६५
धुवअद्धुवरूवे	४०२	५४०
धुवकोसु भय	५८	१६०
धुवहारकम्म	३८५	५३६
धुवहारस्स	३८८	५३२
धूलिगछक्कट्ठाणे	२९४	४२५

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
न		
नीलुक्कस्संस	५२५	६०४
प		
पच्चक्खाणुदयादो	३०	१०३
पच्चक्खाणे	३४६	४८७
पंचक्खसिरि	६१	१६७
पंचतिहिचहु	४७६	५७७
पंचवि इंदिय	१३०	२७८
पंचरस पंच	४७९	५७८
पंचसमिदी तिगुत्तो	४७२	५७५
पंचेव होंति णाणा	३००	४३७
पज्जत्तस्स य	१२१	२७१
पज्जत्तसरीरस्स	१२६	२७४
पज्जत्तमणुस्साणं	१५९	३०६
पज्जत्तीपट्ठवणं	१२०	२७०
पज्जत्ती पाणावि य	७०१	७४२
पज्जायक्खर	३१७	४५२
पडिवादी दे	३७५	५२५
पडिवादी पुण	४४७	५६४
पढमक्खो अंत	३९	१११
पढमं पमदपमा	३६	१०८
पढमुवसमसहि—	१४५	२८६
पणजुगले तस	७६	१८५
पणणउदवाल पण—	३६५	५०९
पणणउदिसया	३४७	४८८
पण्णवणिज्जा	३३४	४८१
पणिदरसभोय	१३७	२८२
पणुवीस जोय—	४२६	५५५
पत्तेयबुद्धतित्थ	६३१	७०८
पमदादिचउ—	४८०	५७९
पम्मस्स य सट्ठाण	५२८	६३८
पम्मुक्कस्संसमुदा	५२१	६०३
परमणसिट्ठियमट्ठं	४४८	५६४
परमाणुआ	४८५	५८२
परमाणुवग्गणम्मि	५९६	६८३
परमाणुहिं अणं	२४५	३७२
परमावहिवर	४१९	५५०
परमावहिस्स	३९३	५३६
परमावहिस्स	४१४	५४६
परमोहिदव्व	४१६	५४७
पल्लतियं उव	२५२	३७६
पल्लसमऊण	४११	५४५
पल्लासंखघणं	४६३	५७०.
पल्लासंखेज्ज	२०९	३४५
पल्लासंखेज्ज	४८१	५७९
पल्लासंखेज्जादिमा	६५९	७२२
पल्लासंखेज्जा	२६०	३९८
परसदि ओही	३९६	५३७
पहिया जे छप्पु	५०७	५९४
पुक्खरगहणे	३१३	४४८
पुग्गलविवाइ	२१६	३५२
पुढविदगागणि	१२५	२७२
पुढवी आऊ तेऊ	१८२	३२३
पुढवी आदि	२००	३३९
पुढवी जलं च	६०२	६९०
पुण्णजहण्णं	१००	२०५
पुरिसिच्छिसंढ	२७१	४०६
पुरुगुणभोगे	२७३	४०८
पुरुमहदुदारु	२३०	३६३
पुव्वं जलथल	३६२	५०६
पुव्वापुव्वप्पद्दय	५९	१६१
पुहपुहकसाय	२९६	४३०
पोग्गलदव्वम्हि	५९३	६७६
पोग्गलदव्वाणं	५८५	६७२
पोतजरायुज	८४	१९३
भ		
फासरसगंध	१६६	३१२
ब		
बत्तीसं अडदाल	६२८	७०५
बंधा समयप—	६०५	७१६
बहुवहुविहं च	३१०	४४६
बहुभागे समभागो	१७९	३२०
बहुवत्तिजादि	३११	४४७

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
बहुविहुबहुप्प	४८६	५८२
बादरआऊ	४९७	५८८
बादरतेऊवाऊ	२३३	३६५
बादरसुण्णातेऊ	२५९	३६६
बादरबादरबादर	६०३	६९०
बादरसुहुमे	७२	१८३
बादरसुहुमदयेण	१८३	३२४
बादरसुहुमतेसि	१७७	३१६
बादरसुहुमेइंदिय	७१६	७४६
बादरसंजलणु	६६६	५७२
बादरसंजलणु	४६७	५७२
बाबीस सत्त	११३	२३२
बारुत्तरसय	३५०	४६०
बाहिरपाणेहिं	१२९	२७७
बितिअप पुव्व	९६	२०२
बितिअपमाण	५७८	३२०
बिबिपुवसम	७३०	८५५
बिहिसिहिं चदुहिं	१९८	३३७
बीये जोणीभूदे	१८७	३२७
बेसद छप्पणे	५४१	६१३
भ		
भत्तं देवी चंदप्पह	२२३	३५६
भरहम्मि मद	४०६	५४२
भवणतियाणं	४२९	५५६
भवपच्चइगो	३७१	५२२
भवपच्चइगो	३७३	५२४
भव्वत्तणस्स जोग्गा	५५८	६४५
भव्वासम्मत्तादि	७२६	७५९
भविया सिद्धी	५५७	६४५
भावाणं सामण्ण	४८३	५८१
भावादो छल्लेस्सा	५५५	६४३
भासमणवग्ग	६०८	६९६
भिण्णसमयट्ठिद	५२	१५४
भूआउतेउ	७३	१८३
भूआउतेउवाऊ	७२१	७५७
भोगा पुण्णग	५३१	६०७
म		
मग्गण उवजोगा	७०३	७४३
मज्झिमचउ-मण	६७९	७३४
मज्झिमअंसेण	५२२	६०३
मज्झिमदव्वं खेत्तं	४५९	५६८
मज्झिमपदक्खर	३५५	४९८
मणु ति जदो	१४९	२९९
मणदव्ववग्गणा	३८६	५३२
मणदव्ववग्गणा	४५२	५६६
मणपज्जवं च णाणं	४४५	५६३
मणपज्जवं च	४३९	५६१
मणपज्जव परिहारो	७२९	७५९
मणवयणाण	२१७	३५३
मणवयणाणं	२२७	३६०
मणसहियाणं	२२८	३६१
मणुसिणिपमत्त	७१५	७५५
मदिआवरण	१६५	३०९
मदिसुदओहि	६७४	७३१
मंदो बुद्धिविहीणो	५१०	५९५
मरणं पत्थइ	५१४	५९९
मरदिअसंखेज्ज	५४४	६२०
मसुरंबुबिंदु	२०१	३३९
मायालोहे	६	८४
मिच्छत्तं वेदंतो	१७	९३
मिच्छाइट्ठि जीवो	१८	९३
मिच्छाइट्ठी जीवो	६५६	७२१
मिच्छाइट्ठी पावा	६२३	७०२
मिच्छा सावय	६२४	७०३
मिच्छे खलु	११	८८
मिच्छे चोद्दस जीवा	६९९	७४१
मिच्छे सासण	६८१	७३४
मिच्छोदयेण	१५	९१
मिच्छो सासण	९	८६
मिच्छो सासण मिस्सो	६९५	७३९
मिस्सुदये सम्मिस्सं	३०२	४३८
मिस्सेपुण्णालाओ	७१८	७५६
मीमंसदि जो पुव्वं	६६२	७२४

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
मूलग्गपोरबीजा	१८६	३२६
मूलसरीरमछंडिय	६६८	७२७
मूलेकंदे छल्ली	१८९	३२६
य		
याजकनामवानन	३६४	५०८
र		
रुऊणवरे अवर	१०७	२१९
रूवुत्तरेण तत्तो	११०	२१९
रूसइ णिंदइ	५१२	५६६
ल		
लद्धिअपुण्णं	१२७	२७५
लिंपइ अप्पीकीरइ	४८९	५८५
लेस्साणं खलु	५१८	५९८
लेस्साणुक्कस्सा	५०५	५९२
लोगस्स असंखे–	५८४	५८१
लोगागासपदेसे	५८६	६८६
लोगागासपदेसा	५८१	६७४
लोगाणमसं	३१६	४५२
लोगाणमसं	४९९	५८८
लोगागासपदेसा	५८७	६७३
व		
वग्गणरासि	३९२	५३६
वण्णोदयेण	४९४	५८७
वण्णोदयसंपा–	५३६	६०९
वत्तणहेदू कालो	५६८	६६३
वत्तावत्तपमादे	३३	१०५
वत्थुणिमित्तं	६७२	७३०
वत्थुस्स पदे	३१२	४४८
वदसमिदिकसा–	४६५	५७२
वयणेहिं वि	६४७	७१८
वरकाओदस	५२६	६०५
ववहारो पुण कालो	५९०	६७४
ववहारो पुण ति–	५७८	६६९
ववहारो पुण कालो	५७७	६६८
ववहारो य वियप्पो	५७२	६६६
वाणणनरनो	३६०	५०४
वासपुधत्ते खइया	६५७	७२१
विउलमदी वि	४४०	५६१
विकहा तहा	३४	१०६
विग्गहगदिमा–	६६६	७२६
विदावलिलोगाण	२१०	३४६
विदियुवसम	६९६	७४०
विवरीयमोहि	३०५	४४१
विविहगुण	२३२	३६४
विसजंतकूड	३०३	४३९
विसयाणं विस–	३०८	४४४
वीरमुहकमल	७२८	७६०
वीरियजुदमदि	१३१	२७९
वीसं वीसं पाहुड	३४३	४८५
वेगुव्वं पज्जत्ते	६८२	७३५
वेगुव्विय आहारय	२४२	३७०
वेगुव्वि उत्तरत्थं	२३४	३६६
वेगुव्वियवरसं	२५७	३९१
वेंजणअत्थ	३०७	४४२
वेणुवमूलोर	२८६	४१८
वेदस्सुदीरणाए	२७२	४०७
वेदादाहारोत्ति	७२४	७५८
वेयणकसाय	६६७	७२७
स		
संकमणे छट्ठाणा	५०६	५९२
संकमणं सट्ठाणा	५०४	५९१
सक्कीसाणा पढमं	४३०	५५६
सक्को जम्बूदीवं	२२४	३५८
संखा तह पत्थारो	३५	१०७
संखातीदा समया	४०३	५४१
संखावत्तय जोणी	८१	१९१
संखावलिहिद	६५८	७२२
संखेओ ओघो	३	८२
संखेज्जपमे वासे	४०७	५४३
संखेज्जासंखेज्जे	५९८	६८४
संखेज्जासंखेज्जाणं	५८६	६७३
सगमाणेहिं विभत्ते	७७	१८६
सगमाणेहिं विभत्ते	४१	११३

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०	गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सगसगप्रसंख	२०७	३४४	सव्वसुराण ओघे	७१७	७५६
सगसगखेत्ता	४३४	५५८	सव्वावहिस्स एक्को	४१५	५४७
सगसगअद्दुवा	६४१	७१४	सव्वे पि पुव्वभंगा	३६	१०७
संगहियसयल	४७०	५७४	सव्वेसिं सुहुमाणं	४९८	५८८
संजलणणोकसा	३२	१०४	सव्वोहित्ति य क	४२३	५५४
संजलणणोकसा	४५	१३२	संसारी पंचक्खा	१५५	३०३
[illegible]	५२३	६१४	सागारो उवजोगो	७	८५
संठाविदूण रूवं	४२	११५	सांतरणिरंतरेण	५९५	६७७
सण्णाणलिंगं	६८८	७३७	सामण्णजीव	७५	१८४
सण्णासुरासि	४६४	५७०	सामण्णा णेरइया	१५०	३०२
सणिस्स बार	१६१	३१४	सामण्णा पंचिंदी	१५०	३००
सण्णी ओघो मिच्छे	७२०	७५७	सामण्णेण य एवं	८८	१९५
सण्णी सणिणप्प हुदी	६९७	७४०	सामण्णेण तिपंती	७८	१८६
सत्तण्हं उवसमदो	२६	१०१	सामण्णं पज्जत्त	७०९	७५२
सत्तण्हं पुढवीणं	७१२	७५३	सामाइयचउ	३६७	५११
सत्तदिणा छम्मासा	१४४	२८६	साहारण बादरेसु	२११	३४६
सत्तमखिदिम्मि	४२४	५५४	साहारणोदयेण	१९१	३३०
सत्तादी अट्ठंता	६३३	७०९	साहारणमाहारो	१९२	३३०
सदसिवसंखो	६६	१७६	साहियसहस्समेकं	९५	१९९
संपुण्णं तु समग्गं	४६०	५६९	सिक्खाकिरियु	६६१	७२४
सद्दहणासद्दहणं	६५५	७२१	सिद्धं सुद्धं	१	७५
सब्भावमणो सच्चो	२१८	३५४	सिद्धाणंतिम	५९७	६८४
समयो हु वट्टमाणो	५७९	६६९	सिद्धाणं सिद्धगई	७३१	८५५
सम्मत्तदेस घादि	२५	९८	सिलपुढवि	२८४	४१६
सम्मत्त देस सयल	२८३	४१५	सिलसेलवेणु	२९१	४२१
सम्मत्तमिच्छपरि	२४	९७	सीदी सट्ठी तालं	१२४	२७२
सम्मत्तरयण	२०	९५	सीलेसिं संपत्तो	६५	१६९
सम्मत्तुप्पत्तीये	६६	१७०	सुक्कस्स समुग्घा	५४५	६२७
समयसयसंखा	१६५	४०१	सुण्णं दुगइगि	२९५	४२६
सम्माइट्ठी जीवो	२७	१०२	सत्तादी सं सम्मं	२८	१०२
सम्मामिच्छुदये	२९	९६	सुदकेवलं च णाणं	३६९	५२०
सव्वंगअंगसंभव	४४२	५६३	सुहुमणिगोद	९४	१९८
सव्वं च लोयणालिं	४३२	५५७	सुहुमणिगोद	३२०	४५४
सव्वमरूवी	५९२	६७६	सुहुमणिगोद	३२१	४५४
सव्वसमासेण	२६७	४३२	सुहुमणिगोद	३२२	४५५
सव्वसमासो	३३०	४७२	सुहुमणिगोद	३७८	५२७
			सुहुमणिगोद	९४	१९८

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सुहदुवखसुबहु	२८२	४१४
सुहमेसु संख	२०८	३४४
सुहमेदरगुण	१०१	२०५
सुहमणिगोदे	९७	२०२
सुहमो सुहम	६६०	७३७
सेढी सूई अंगुल	१५७	३०४
सेढी सूई पल्ला	६००	६८५
सेसमकिण्हे	२९३	४२४
[illegible]	२८५	४२७
सेसट्ठारसअंसा	५१९	६०२
सोलससय	३३६	४८२
सोलसयं चउ	६२७	७०५
सोवक्कमाणुवक्कम	२६६	४०२
सो संजमं ण गि–	२३	९७
सोहम्मेसाण	६३६	७११
सोहम्मादासारं	३०७	७६६
सोहम्मीसाणा	४३५	५५९
ह		
हिदि होदि हु	४४३	५६३
हेट्ठिमउक्कस्सं	६०१	६८७
हेट्ठा जेसिं	११२	२२७
हेट्ठिमछप्पुढवीणं	१२८	२७६
हेट्ठिमछप्पुढवीणं	१५४	००२
होंति अणियट्टिणो	५७	१५९
होंति खवा इगि	६३०	७०८
होदि असंखिम	३८९	५३३

जैसा केवलज्ञान द्वारा जाना वैसा करणानुयोग में व्याख्यान है। तथा केवलज्ञान द्वारा तो बहुत जाना, परन्तु जीव को कार्यकारी जीव-कर्मादिक का व त्रिलोकादिक का ही निरूपण इसमें होता है। तथा उनका भी स्वरूप सर्व निरूपित नहीं हो सकता, इसलिए जिस प्रकार वचनगोचर होकर छद्मस्थ के ज्ञान में उनका भाव भासित हो, उस प्रकार संकुचित करके निरूपण करते हैं। यहां उदाहरण—जीव के भावों की अपेक्षा गुणस्थान कहे हैं, वे भाव अनन्तस्वरूप सहित वचनगोचर नहीं हैं, वहां बहुत भावों की एक जाति करके चौदह गुणस्थान कहे हैं। तथा जीवों को जानने के अनेक प्रकार हैं, वहां मुख्य चौदह मार्गणा का निरूपण किया है। तथा कर्म परमाणु अनन्त प्रकार शक्ति युक्त हैं; उनमें बहुतों की एक जाति करके आठ व एक सौ अड़तालीस प्रकृतियां कही हैं। तथा त्रिलोक में अनेक रचनाएँ हैं वहां कुछ मुख्य रचनाओं का निरूपण करते हैं। तथा प्रमाण के अनन्त भेद हैं, वहां संख्यातादि तीन भेद व इनके इक्कीस भेद निरूपित किये हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

पं० टोडरमल : मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ सं० २७५